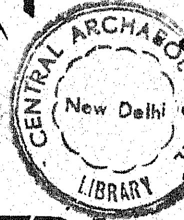
जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-
विरचितयाऽऽचारचिन्तामणि-व्याख्यया समलङ्कृतं
हिन्दीगुर्जरभाषाऽनुवादसहितम्-

आचाराङ्गसूत्रम् ।



(प्रथमो भागः अध्य० १)

[प्रथमः श्रुतस्कन्धः]

ACHARANGA SUTRA

PART 1
CHAPTER 1

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-
पण्डित-मुनिश्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

卐

प्रकाशकः
अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः
श्रेष्ठि-श्री-शान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः
मु० राजकोट

द्वितीय आवृत्ति	वीर संवत	विक्रम संवत	ईस्वीसन
प्रति १०००	२४८४	२०१४	१९५८

मूल्यम्-रू० १२-०-०

મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ઠે. ગરેડિયા કૂવારોડ, ગ્રીન લૉજ
પાસે, **રાજકોટ.** (સૌરાષ્ટ્ર)

★
બીજી આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત : ૨૪૮૪
વિક્રમ સંવત : ૨૦૧૪
ઈસ્વીસન : ૧૯૫૮
★

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ઘીકાંટા રોડ : : **અમદાવાદ.**

રૂા. ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બી સમિતિના પ્રમુખ:
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મંતવ્યો

*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો



जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–प्रधानाचार्य–पण्डित–मुनि–
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकायां

सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लब्धसपर्य्याचार्यवर्य्यघासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुहरीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव, अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषण प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनोरञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागमसिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानकवासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति–लुध्यानामण्डल–स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-रुपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

જૈનાગમવારિધિ-જૈનધર્મદિવાકર પ્રધાનાચાર્ય પણ્ડિત-મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ (પંજાબ) ના એ આચારાંગસૂત્રની આચારચિંતામણિ ટીકાપર આપેલ

સંમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

મેં પૂજ્ય આચાર્યવર્ય ઘાસીલાલજી (મહારાજ) ની બનાવેલ શ્રીમદ્ આચારાંગ સૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનની આચારચિતામણિ ટીકા સમ્પૂર્ણ ઉપયોગપૂર્વક સાંભળી.

આ ટીકા ન્યાય સિદ્ધાંતથી યુક્ત, વ્યાકરણના નિયમથી નિબદ્ધ છે. તથા એમાં પ્રસંગે પ્રસંગે ક્રમથી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સંગ્રહ પણ ઉચિતરૂપથી જણાઇ આવે છે.

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો સમ્યક્ પ્રકારથી સ્પષ્ટ કરેલ છે. તેમજ પ્રૌઢ વિષયોનો વિશેષરૂપથી સંસ્કૃત-ભાષામાં સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન અતિ મનોરંજક છે. એ માટે આચાર્ય મહોદય ખરેખર ધન્યવાદને પાત્ર છે.

હું આશા રાખું છું કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો એના સારી રીતે પઠન પાઠન દ્વારા જૈનાગમ સિદ્ધાંતરૂપ અમૃત પીય પીયને મનને આનંદિત કરે. અને તેના મનનથી દક્ષજનો ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે.

તથા આચાર્યવર્ય આવી જ રીતે બીજા પણ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક વિવેચન દ્વારા શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી સમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને યશસ્વી બને.

વિ. સં. ૨૦૦૨
માગસર સુદી ૧

જૈનમુનિ-ઉપાધ્યાય આત્મારામ
લુધિયાના (પંજાબ)
શુભમસ્તુ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी महाराज तथा न्यायव्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७ श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई
(पुण्णमासी) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि। वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्तं चित्तियं, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीणं य परमोवयारी कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं परमप्पसंसणिज्जमत्थि। पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अह य सावयस्स बारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंबहुणा इमोए वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णणं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम-पंचनईओ,

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ल १५ (पूर्णिमा) शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्दजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली–अच्छी बनी–है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री–संयमरूप जीवनको देनेवाली–ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप, कर्म–पुरुषार्थ–वाद और श्रावकोंको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पूरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढनेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें! श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावक के बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुप्तप्राय (सोई हुई सी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज-कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने वडे परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है, सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये वडे गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



રૂા. ૬૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



શેઠ હરખચંદ કાળીદાસ વારીયા
ભાણવડ.

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र की 'अनगारधर्मामृतवर्षिणी' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म० ने बडे परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रमाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार देवें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखशाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

मैं आशा करता हूं कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२ } जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
मृगसर सुदि १ } लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु॥

*

बीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियाका अभिप्राय-

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुंचेगा।

(ता. २८-३-५६ के पत्रमेंसे)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–जैनाचार्य–पूज्यश्री आत्मारामजी–
महाराजानां पञ्चनद–(पंजाब) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा–
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्–

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेयं वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान–दर्शन–चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान–दर्शन–चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च " मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः " इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना } उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

*

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम्

मए पंडितमुणि–हेमचंदेण य पंडिय–मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय–रयण–मुणि–घासीलालेण विरइया सक्कय–हिन्दी–भासाहिं जुत्ता सिरि–दसवेयालिय–नामसुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा–तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ। सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज–मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ ? जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ। अओहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि–॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन शुक्लत्रयोदशी मङ्गले (अलवरस्टेट)

इइ–
उवज्झाय-जइण-मुणी, आयारामो
(पंचनईओ)

ऐसे ही :—

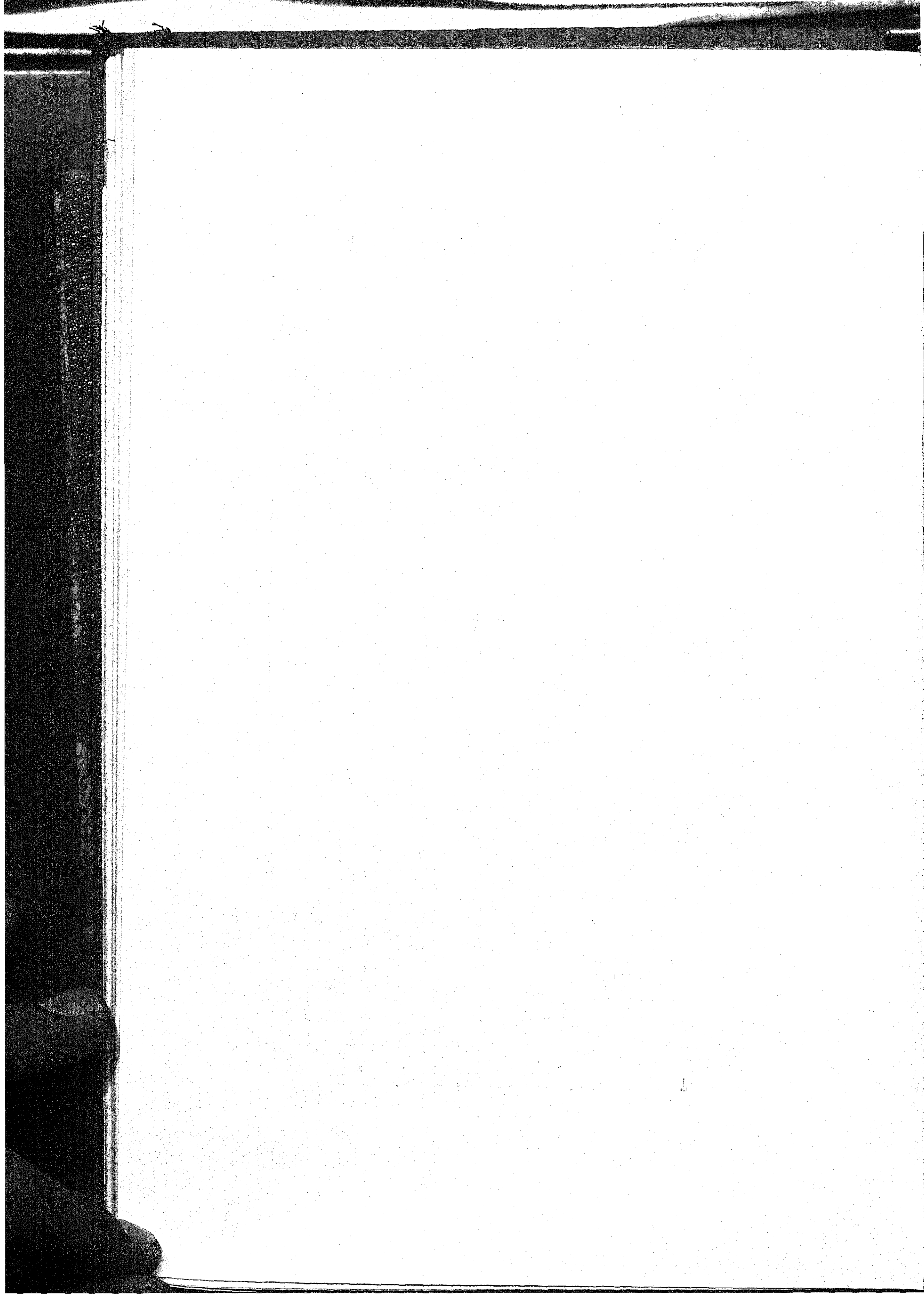
मध्यभारत सैलाना–निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग–सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

રૂા. ૫૨૫) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



કોઠારી હરગોવિંદભાઈ જેચંદ
રાજકોટ.



निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
आगमवाराधि–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–जैनाचार्य पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।।

भवदीय.
गूजरमल–बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचंद्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी–गुर्जर–भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद–व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संकृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी–गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री–घासीलालजी–महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो, धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्री–समीरमल्लजी–श्रीकन्हैलालजी–मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाध्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

(१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमाका पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.

(२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.

(३) खीचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) बालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.

(५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचंद्रजी महाराज.

(६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत्-वल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज.

(७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद है मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे, यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खांचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है, वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला। श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

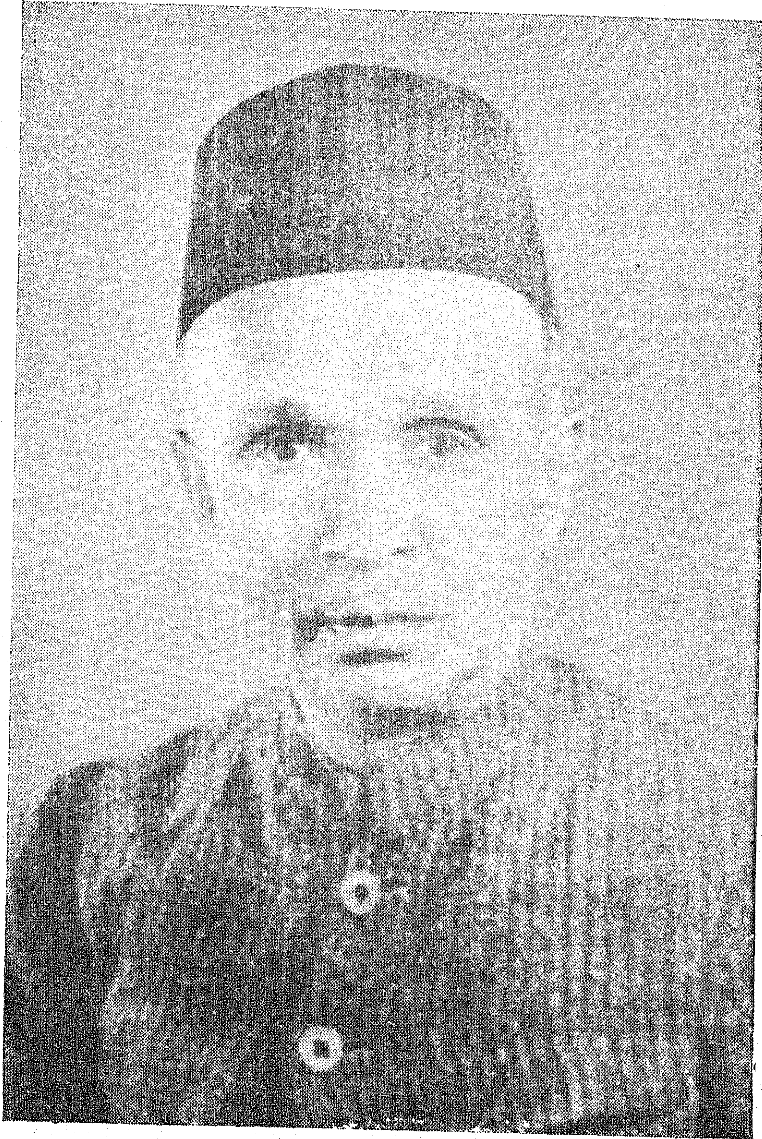
आपका

शशिभूषण शास्त्री

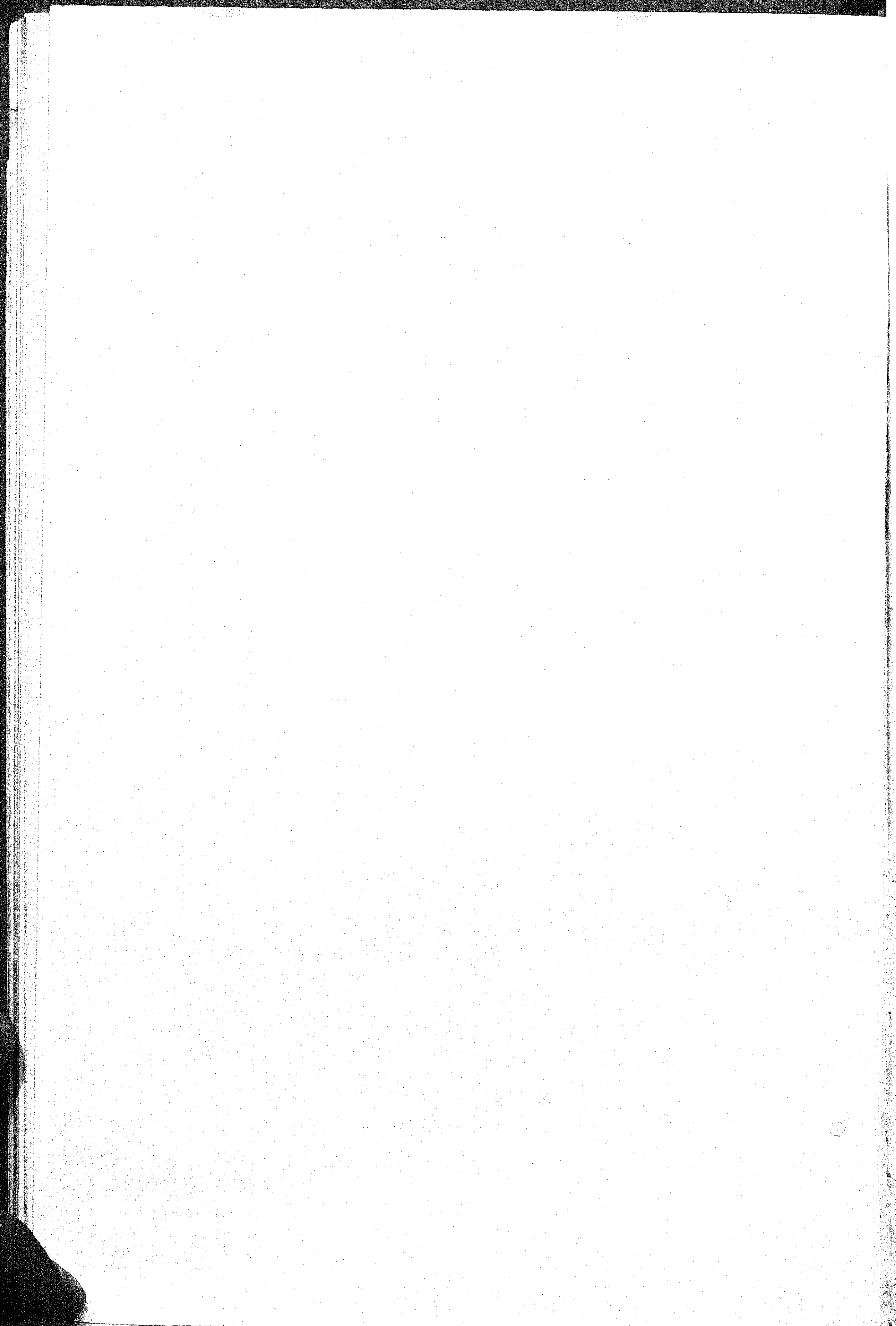
अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

રૂા. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર.



शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचंदजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने उपासकदशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखनेमें बडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका लाभ मिल सकता है।

*

बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूलसूत्रनी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, वळी करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.

*

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

*

खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडितरत्न मुनि श्री समर्थमलजी फरमाते हैं कि–विद्वान् महात्मा पुरुषों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी ही सुंदरता से लिखी है।

*

श्री वीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

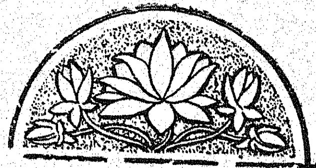
*

इतवारी बाजार
नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धारा हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न
मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (नागौर मारबाडवाला) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈ ને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું ? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ તેરસ મંગળવાર (અલવર સ્ટેટ)	ઈતિ ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ (પંજાબી)

શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંજાબકેશરી મહારાજ **શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ** જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલ હતાં ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માઠે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશકિત ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનામાં લીન હશો.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે, ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ.

આસો સુદ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,
દયામુનિના પ્રણિપાત.

*

દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઇચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશો.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો મેં જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઇ પડે તેવી છે. સૂત્રપ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ૦ શ્રી ભાઇચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો.

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વિરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શકયા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારૂં અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળું જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઇ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
મુ. ખીચન.

*

લીંબડી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ—શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કેઃ—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે સારૂં સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઇ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશકિતનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઇએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી
સં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ

લી.
સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃતટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય. તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ. અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આ મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ
તા. ૨૨–૪–૫૬ રવીવાર
મહાવીર જયંતિ

મુનિ પુનમચંદ્રજી

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા. ૨૫–૪–૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ.
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા. આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ પુરૂષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણો લાભ થવા સંભવ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોક કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુંદર તકને ચૂકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યમાં આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છો તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ.

લી. શારદાબાઈ સ્વામી
ખંભાત સંપ્રદાય.

*

બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭–૧–૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ
પ્રમુખ અ૦ ભા૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ૦ રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ ગુ૦ના ભંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઇ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાતમાં બીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઇ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે. હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂં કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી **મોંઘીબાઈ સ્વામી**
ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શકયો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે. એ એમનો ટુંક પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદાન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. તે જોઈ મને આનંદ થયો.સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી,મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિદ્વત્તા; ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું. પૂ૦ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોકકસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, **વડોદરા** — **કામદાર કેશવલાલ હિંમનરામ**

તા. ૨૭–૨–૧૯૫૬

મુંબઇની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઇ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઇને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રીના આ મહાન કર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. **રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ**
સેંટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, **મુંબાઈ.**
પ્રો. **તારા રમણલાલ શાહ**
સોફીયા, કલોજ, **મુંબાઈ**

*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઇ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જોઇએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂ૦ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવનાં ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ. સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસીકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ. એ. એલ. એલ. બી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફોરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુંભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઇ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમંત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે. તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પંડિતોની અને નાણાંની તે તે પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે, ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિડર લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના તંત્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

> "આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે."

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્ચા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઈ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણુસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને. અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે. વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું કામ આપણું નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. બીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધમાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવા તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, બે સૂત્રો–અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્ર–લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ.

'જૈન સિદ્ધાંત' પત્ર–મે ૧૯૫૫

*

૨૧

શ્રુત-ભક્તિ

(પૂ૦ આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ૦ સા૦ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય. જ્ઞાનદિવાકર પં૦ મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ૦ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા **શ્રી જિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે, અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ, સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે. એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો. શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યાં. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષની ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઈસાઇ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ

ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઇએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઇએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઇએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧) ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઇએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઇએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઇએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬)

*

શ્રી. અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે. **રાણપુર**

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનીત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે. એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજાકાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પણ વો દિન........

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે. તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણાં શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિવાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઇએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સારૂં. મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશો. લી. **સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી**

૨૨

"જૈનસિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે, અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે-તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુકયાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઇ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાંકરચંદ ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે पढमं णाणं तओ दया પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મ યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઇએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઇએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

"જૈનસિદ્ધાંત" ડીસેમ્બર-૫૬

*

શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ગ્રીન લૌજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું પુઠું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂા. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે. એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તેજ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં अरिहंतचेइयाइं શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને अरिहंतचेइयाइंનો અર્થ સાધુ થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

"જૈનસિદ્ધાંત" જાન્યુઆરી-૫૭

*

સેંકડો સર્ટીફીકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલ કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે. તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલાં શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખઋષીજી મહારાજે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાંગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા. ૨૫૧) ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે. આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ. બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે. રૂા. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે.

આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં. મુનિશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે. અને અત્યાર સુધીમાં મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઈચ્છવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે. અને બદલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે. જેનું વાંચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રાજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી જયંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર " સ્થાનકવાસી જૈન " તા. ૫–૯–૫૭ ના અંકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭–૮–૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરાવા સારૂ લખું છું.

' શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઇએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્રલેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે; કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે. જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે.

લી.

શતાવધાની શ્રી જયંત મુનિ–અમદાવાદ



શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂકયા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કોન્ફરન્સ જેમ ખોટાં બણગાં ફુંકનારી સંસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઇ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભર્યું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ.

"જૈનસિદ્ધાંત પત્ર" ઓકટોમ્બર ૧૯૫૭

*

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવદ્ય અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બજાવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ 'કલ્પ શું અને અકલ્પ શું' એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવદ્ય સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થનારને રૂા. ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ફ્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. **તંત્રી**-

"રત્નજ્યોત" પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

*

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર.....થી ....કન્યાકુમારી

તેમજ **કરાંચી.....થી.....કલકત્તા**

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય હજુ સુધી કોઇ કરી શક્યું નથી

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી તથા અન્ય મુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપંથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે.

* * *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો લાભ લઈ રહ્યા છે.

હમણાંજ લંડનની ઈન્ડિઆ ઓફીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મંગાવ્યાં છે.

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાંચસો સુધીની કિંમતનાં શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો.

વધુ વિગત માટે લખો:

ઠે. ગ્રીન લોજ પાસે,
ગરેડીઆકુવા રોડ
રાજકોટ.

મંત્રી
શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

श्री आचाराङ्गसूत्र प्रथमश्रुतस्कन्ध प्रथम अध्ययनका

विषयानुक्रम

श्रीवीतरागाय नमः



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजीमहाराजविरचिता-
ऽऽचारचिन्तामणिटीकासमलङ्कृतम्

आचाराङ्गसूत्रम् ।

[प्रथमः श्रुतस्कन्धः]

मङ्गलाचरणम्.

अर्थप्रदं वीरजिनं प्रणम्य,
लब्धेर्धरं गौतम-मात्तशक्तिम् ।
गणीश्वरं पूर्वधरं च चित्ते,
सन्धाय जैनीं गिरमुज्ज्वलन्तीम् ॥ १ ॥

आचाराङ्गसूत्रकी
आचारचिन्तामणिटीका का हिन्दीभाषानुवाद ।
मङ्गलाचरण

(१)

भव्य जीवोंके मनोरथ पूर्ण करते जो जुदा,
उन वीतराग जिनेन्द्र के चरणाम्बुजों मे नति सदा ।

आचारसूत्रे मुनिघासिलालः,
प्रयत्नतः साधुजनेष्टसिद्धयै ।
आचारचिन्तामणिमादधेऽहं,
भव्याः सदैनं हृदि धारयन्तु ॥ २ ॥

अनेक लब्धिग्राहि चौदह पूर्वधारक जो तथा,
अध्यात्मशक्ति विभूतियुक्त विराजते हैं जिन यथा ॥

(२)

आचार्य गणधर लोक हित गौतमपदाम्बुज में नती,
मेरी विराजे सर्वदा देवे विमल मति शुभ गती ।
निर्दोषतत्त्वनिरूपिणी उनकी समुज्ज्वल भारती,
धरते उसे हिय में सदा जो भव्यजन को तारती ॥

(३)

विनीत 'घासीलाल' मुनि जनता तथा मुनि के लिये,
भगवत्सुभाषितरत्न 'आचाराङ्ग गुणगुंफित किये ।
मणिमालिका के रूपमें करते प्रकाशित हैं अभी,
आचारचिन्तामणि हृदयगृह में रखे जनता सभी ॥

(४)

जड द्रव्य चिन्तामणि हृदयपैं बाहिरे जाते धरे,
'आचारचिन्तामणि' (टीका) हृदयमें धारिता तमको हरे ॥
सब भव्यजन संसार वन में घूमते इसको गहे,
जिससे प्रकाशित मार्ग हो निज लक्ष्य पद सत्वर लहे ॥

इह सार्द्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे पञ्चदशक्षेत्रात्मकनन्दनकानने सम्यक्त्वालवालमध्ये आत्मरूपाः कलम्बा विंशतिस्थानकपुनःपुनःसमाराधनसलिलेन संवर्द्धिताः सन्तस्तीर्थङ्करस्वरूपा अभिनवकल्पपादपाः प्रादुर्भवन्ति।

भव्यजीवों के समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाले श्री वीर भगवान् को प्रणाम करके, तथा विविध प्रकार की लब्धियों के धारक चौदह १४ पूर्वों के ज्ञाता आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके समस्त दोषों से रहित होने के कारण, तथा वास्तविक वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने के कारण उज्ज्वल जिनवाणीको हृदय में धारण करके–

मैं **'घासीलाल'** मुनि प्रयत्न करके भव्य पुरुषों की तथा मुनिजनों की इष्टसिद्धि के लिये आचाराङ्ग रूप सूत्र (दोरे) में भगवद्भाषित विविध आचाररूप मणियां मालारूपमें पिरोता हूँ। भव्यजन इसे सदैव अपने हृदयमें धारण करें। जडद्रव्यरूप चिन्तामणि हृदय पर अर्थात् वक्षःस्थल पर धारण किया जाता है किन्तु यह आचारचिन्तामणि (टीका) हृदय में धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

इस अढाई द्वीप के भीतर पन्द्रह कर्मभूमि रूप नन्दनवन में सम्यक्त्वरूप क्यारीमें आत्मारूपी कलम्ब, तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के कारणभूत बीस स्थानों की वारंवार आराधना रूपी जलसे वृद्धिको प्राप्त होकर तीर्थङ्कररूप नूतन कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं।

આચારાંગ સૂત્રની આચારચિન્તામણિ ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ.

મંગલાચરણ.

ભવ્ય જીવોના તમામ મનોરથ પૂર્ણ કરવાવાળા શ્રી વીર ભગવાનને પ્રણામ કરીને, તથા વિવિધ પ્રકારની લબ્ધિઓના ધારક, ચૌદ પૂર્વોના જ્ઞાતા, આધ્યાત્મિક શક્તિથી સમ્પન્ન શ્રી ગૌતમ ગણધરને નમસ્કાર કરીને સકલ દોષોથી રહિત હોવાના કારણે તથા વાસ્તવિક વસ્તુસ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાના કારણે ઉજ્જવલ જિનવાણીને હૃદયમાં ધારણ કરીને—

હું ઘાસીલાલ મુનિ પ્રયત્ન કરીને, ભવ્ય પુરૂષો–જીવોની તથા મુનિજનોની ઇષ્ટ સિદ્ધિ માટે, શ્રી આચારાંગરૂપ સૂત્ર (દોરા)માં ભગવદ્ભાષિત–વિવિધ આચાર રૂપ મણિયોને માલારૂપમાં પરોવું છું. ભવ્ય મનુષ્ય તેને હમેશાં હૃદયમાં ધારણ કરે. જડદ્રવ્ય રૂપ ચિન્તામણિ હૃદય પર અર્થાત્ વક્ષસ્થળ ઉપર ધારણ કરાય છે. કિન્તુ આ આચારચિન્તામણિ (ટીકા) હૃદયમાં ધારણ કરવા યોગ્ય છે. ૨.

આ અઢી દ્વીપની અંદર, પંદર કર્મભૂમિરૂપી નન્દન–વનમાં સમ્યક્ત્વરૂપ ક્યારીમાં આત્મરૂપી કલમ્બ–કલમ (ડાળી), તીર્થંકરગોત્ર બાંધવામાં કારણભૂત વીસ સ્થાનોની વારંવાર આરાધનારૂપી જલથી વૃદ્ધિ પામીને તીર્થંકરરૂપ નૂતન–નવીન કલ્પવૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે.

तद्वचनेषु हि कल्पतरुकुसुमगतसौन्दर्यादिगुणाः समुपलभ्यन्ते । यथा–

(१)–सौन्दर्यम्, (२)–सुगन्धः, (३)–त्रिदोषनाशकत्वम्, (४)–सप्तधातुपौष्टिकत्वम्, (५)–त्वग्रोमबलकरत्वम्, (६)–हृदयाह्लादकत्वम्, (७)–तापशमनत्वम्, (८) शोभाकारित्वम्, (९) उत्साहकत्वम्, (१०) स्फूर्त्तिकारकत्वम्, (११) वीर्यवर्द्धकत्वम्, (१२)–श्रमहारित्वम्, (१३)–मधुरत्वम्, (१४)–स्निग्धत्वम्, (१५)–बहुदलत्वम्, (१६)–विषविनाशकत्वम्, (१७)–मकरन्दधारित्वम्, (१८)–व्याधिनाशकत्वम्, (१९)–विकशनशीलत्वम्, (२०)–तृष्णानिवारकत्वम्,

---

जैसे कल्प वृक्षों के फूलों में सौन्दर्य आदि गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार तीर्थङ्करोंके वचनोंमें भी सौन्दर्य आदि सभी गुण पाये जाते हैं। दोनोंमें समान रूपसे पाये जाने वाले गुण इस प्रकार हैं—

(१)–सौन्दर्य, (२)–सुगन्ध, (३)–त्रिदोषनाशकता, (४)–सप्तधातुपुष्टिकरता, (५)–त्वक्–रोम–बलकारित्व, (६) हृदयाह्लादकत्व, (७) तापशमनत्व, (८) शोभाकारित्व, (९)–उत्साहकता, (१०)–स्फूर्तिजनकता, (११)–वीर्यवर्धकता, (१२)–श्रमहारित्व, (१३)–मधुरता, (१४)–स्निग्धता, (१५)–बहुदलता, (१६)–विषविनाशकता, (१७)–मकरन्द-(पुष्परस) धारित्व, (१८)–व्याधिविनाशकता, (१९)–विकसनशीलता, (२०)–तृष्णा-

---

જેવી રીતે કલ્પવૃક્ષોના ફૂલોમાં સૌન્દર્ય આદિ ગુણો દેખાય છે, તે પ્રમાણે તીર્થંકરોના વચનોમાં પણ સૌન્દર્ય આદિ તમામ ગુણો દેખાય છે. બન્નેમાં સમાન રૂપથી દેખાતા ગુણો આ પ્રકારના છે—

(૧)–સૌન્દર્ય, (૨)–સુગંધ, (૩)–ત્રિદોષનાશકપણું, (૪)–સાત ધાતુની પુષ્ટિ કરનાર, (૫)–ચામડી, વાળ–બળકારીપણું, (૬)–હૃદયને આનંદકારક, (૭)–તાપનું શમન કરવાપણું, (૮)–શોભાકારીપણું, (૯)–ઉત્સાહકપણું, (૧૦)–સ્ફૂર્તિજનકપણું, (૧૧)–વીર્યવર્ધકપણું, (૧૨)–શ્રમનિવારણપણું, (૧૩)–મધુરતા (૧૪)–સ્નિગ્ધતા–ચિકણાપણું, (૧૫)–બહુદલતા, (૧૬)–વિષવિનાશકપણું, (૧૭)–મકરંદ–પુષ્પરસ–ધારકતા, (૧૮)–વ્યાધિવિનાશકતા, (૧૯)–વિકસનશીલતા, (૨૦)–તૃષ્ણાનિવારકતા,

(२१) मूर्छाहारकत्वम्, (२२) पथ्यत्वम्, (२३) मेध्यत्वम्, (२४) उत्कृष्ट-भावोत्पादकत्वम्, (२५) अवयवसन्निवेशविशेषवत्वम्।

तत्र सौन्दर्यादिकं यथा कल्पतरुकुसुमेषु भगवद्वचनेषु च विद्यते, तथा प्रदर्शयाम :—

सं. गुणाः	कल्पतरुकुसुमपक्षे	भगवद्वचनपक्षे
१ सौन्दयम्	मनोहराकृतिमत्त्वम्,	माधुर्यप्रसादगुणवत्त्वम्,
२ सुगन्धः	घ्राणेन्द्रियतृप्तिजनकत्वम्।	दिव्यध्वनिरूपत्वेन भगवद्वचनस्यार्यानार्यद्विपदचतुष्पदादीनां

निवारकता, (२१)-मूर्छाहारित्व, (२२)-पथ्यता, (२३) मेध्यता (२४)-उत्कृष्टभावोत्पादकता, (२५)-अवयवसन्निवेशविशेषवत्त्व।

ये पचीस गुण कल्प वृक्षके फूलों में तथा भगवान् के वचनों में किस प्रकार समानरूप से पाये जाते हैं यह बतलाते हैं.

सं. गुण	कल्पवृक्षके फूलोंके पक्षमें	भगवानके वचनोंके पक्षमें।
(१) सौन्दर्य,	मनोहर आकृति वाला,	माधुर्य और प्रसाद गुण वाला
(२) सुगन्ध,	घ्राणेन्द्रियको तृप्तकरने वाला,	दिव्यध्वनिरूप होने के कारण आर्य, अनार्य, द्विपद, तथा

---

(२१)-મૂર્છાનિવારકતા, (૨૨)-પથ્યતા, (૨૩)-મેધ્યતા, (૨૪)-ઉત્કૃષ્ટ ભાવોનું ઉત્પાદકપણું અને (૨૫)-અવયવસન્નિવેશવિશેષપણું.

આ પચીસ ગુણો કલ્પવૃક્ષના ફૂલોમાં તથા ભગવાનના વચનોમાં કેવી રીતે સમાનપણે દેખાય છે તે બતાવે છે—

સં. ગુણ	કલ્પવૃક્ષના ફુલોના પક્ષમાં	ભગવાનના વચનોના પક્ષમાં
(૧) સૌન્દર્ય,	મનોહર આકૃતિવાળા,	મધુર અને મોહક શબ્દ સૌન્દર્ય.
(૨) સુગન્ધ,	નાસિકાને તૃપ્ત કરનાર,	દિવ્યધ્વનિરૂપ હોવાથી આર્ય, અનાર્ય, બે પગવાળાં તથા ચાર પગવાળાં

		स्वस्वभाषापरिणतत्वेन तृप्ति-जनकत्वम् ।
३ त्रिदोषनाशकत्वम् ,	वात-पित्त-कफ नाश-कत्वम् ,	मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीय दोषनाशकत्वम् ।
४ सप्तधातुपौष्टिक-त्वम् ,	रसासृङ्-मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्र–वर्द्धकत्वम् ,	द्रव्यार्थिक–पर्यायार्थिक-नयाभ्यां स्यादस्त्यादिसप्तभङ्गानां पुष्टिकरत्वम् ।

		चतुष्पद आदि की अपनी २ भाषा में परिणत होजानेके कारण तृप्तिकारक ।
(३) त्रिदोषनाशकत्व,	वात पित्त और कफ इन तीन दोषों को दूर करने वाला ।	मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन कर्मों को नष्ट करने वाला ।
(४) सप्तधातुपोष्टि-कत्व,	रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी और वीर्य, इन सात धातुओं को बढाने वाला ।	द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथंचित् अनित्यता आदि सात भंगो का पोषक ।

		જીવોને પોત પોતાની ભાષામાં પરિણત હોવાના કારણે તૃપ્તિકારક.
(૩) ત્રિદોષનાશકત્વ,	વાત, પિત્ત અને કફ, આ ત્રણ દોષોને દુર કરવા વાળા	મિથ્યાત્વ, મિશ્ર અને સમ્યક્ત્વ–મોહનીય, આ ત્રણકર્મોનો નાશ કરનાર
(૪) સાતધાતુને પુષ્ટ, કરવાપણું	રસ, રક્ત માંસ, મેદ, હાડકાં મજ્જા અને વીર્ય, આ સાત ધાતુને બલવાન કરનાર.	દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક-નયની અપેક્ષાએ કથંચિત્ નિત્યતા કથંચિત્ અનિત્યતા આદિ સાત ભંગોના પોષક

५ त्वगूरोमबलकरत्वम्,	शारीरिकविकारहारकत्वम्	आत्मवर्तिन आर्त्तरौद्रध्यानात्मकविकारस्य निवारकत्वम्।
६ हृदयाह्लादकत्वम्,	दर्शनमात्रेण हृदयसुखजनकत्वम्	श्रवणमात्रेण सर्वेषां प्राणिनाममन्दानन्दजनकत्वम्।
७ तापशमनत्वम्,	शैत्यगुणवत्त्वेन तापहारकत्वम्,	शान्तरसवत्त्वेन कषायानलतापहारकत्वम्।
८ शोभाकारित्वम्,	भूषणरूपेण द्युतिवर्द्धकत्वम्,	मिथ्यात्वादिकालुष्यापहरणपूर्वकमात्मतेजःप्रकाशकत्वम्।

(५) त्वग् रोमबलकरत्व,	शरीरसंबंधी विकार दूर करने वाला।	आत्मा के आर्तध्यान और रौद्रध्यानरूप विकारोंका नाशक।
(६) हृदयाह्लादकत्व,	दृष्टि पडते ही हृदयको आनन्दित करने वाला।	कानमें पडतेही प्राणिमात्र को अत्यन्त आनन्द देने वाला।
(७) तापशमनत्व,	शीतल होने से सन्ताप हरने वाला।	शान्तरसमय होने के कारण कषायजनित सन्तापको नष्ट करने वाला।
(८) शोभाकारित्व,	आभूषणरूप होने के कारण शोभा बढाने वाला।	मिथ्यात्व आदि की मलीनता दूर करके आत्माका तेज चमकाने वाला।

(५) ચામડી અને વાળને બળકારક.	શરીરસંબંધી વિકાર દૂર કરનાર.	આત્માના આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્ર ધ્યાનરૂપ વિકારોનો નાશ કરનાર
(૬) હૃદયને આનંદકારી,	દૃષ્ટિ પડતાં જ હૃદયને આનંદ આપનાર	કાનમાં પડતાં જ પ્રાણી માત્રને અત્યન્ત આનંદ આપનાર
(૭) તાપનિવારણ કરનાર,	શીતલ હોવાથી સંતાપ હરનાર,	શાન્તરસમય હોવાથી કષાય-જનિત સંતાપનો નાશ કરનાર.
(૮) શોભાકારીપણું,	ઘરેણાંરૂપ હોવાથી શોભા વધારનાર	મિથ્યાત્વ આદિની મલિનતા દૂર કરીને આત્માના તેજને પ્રકાશિત કરનાર.

९ उत्साहकत्वम् ,	उत्साहजनकत्वम् ,	प्रमादपञ्चकनिवारकत्वेन धर्माराधने योगत्रयोत्तेजकत्वम् ।
१० स्फूर्तिकारकत्वम् ,	हर्षोत्पादकत्वेन स्वेष्टलाभाय प्रवृत्तिजनकत्वम् ,	मोक्षाय पराक्रमस्फोटनत्वम् ।
११ वीर्यवर्द्धकत्वम् ,	सकलेन्द्रियशक्तिदायकत्वम् ,	तपःसंयमाभ्यामात्मबलोत्कर्षकत्वम् ।

(९) उत्साहकत्व,	उत्साह उत्पन्न करने वाला ।	पांच प्रमादों का निवारण करके धर्म की आराधना में तीनों योगों को उत्तेजित करने वाला ।
(१०) स्फूर्तिकारकत्व,	हर्षजनक होने के कारण अपनी इष्ट सिद्धि के लिये प्रवृत्ति कराने वाला ।	मोक्ष के लिये पराक्रम फोडने की प्रेरणा करने वाला ।
(११) वीर्यवर्धकत्व	सब इन्द्रियों को शक्ति देने वाला ।	तप, और संयम द्वारा आध्यात्मिक बल बढाने वाला ।

(૯) ઉત્સાહકપણું.	ઉત્સાહ ઉત્પન્ન કરનાર	પાંચ પ્રમાદોનું નિવારણ કરીને ધર્મની આરાધનામાં ત્રણેય યોગોને ઉત્તેજન આપનાર.
(૧૦) સ્ફૂર્તિ ઉત્પન્ન કરવાપણું.	હર્ષ ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી પોતાની ઇચ્છાનુસાર સિદ્ધિ માટે પ્રવૃત્તિ કરાવનાર	મોક્ષ માટે પરાક્રમ કરવાની પ્રેરણા કરનાર.
(૧૧) વીર્યવર્ધકપણું.	તમામ ઇન્દ્રિયોને શક્તિ આપનાર	તપ અને સંયમ દ્વારા આધ્યાત્મિક બળ વધારનાર.

१२ श्रमहारित्वम् ,	सौगन्ध्यादिविविधगुणोत्कर्षेण तत्तदिन्द्रियाणां शैथिल्यनिवारकत्वम् ,	चतुर्गतिपरिभ्रमणेन श्रान्तानां भवभ्रमणोपरमेण खेदात्यन्तिकविध्वंसकत्वम् ।
१३ मधुरत्वम् ,	मधुररसवत्त्वम् ,	अपूर्वाक्षयशिवसुखानुभवात्मकरसत्वम् ।
१४ स्निग्धत्वम् ,	सुखदस्पर्शकत्वम् ,	श्रवणमात्रेणाऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशं धर्मानुरागजनकत्वम् ।

(१२) श्रमहारित्व,	सुगन्ध आदि अनेक गुणों की अधिकता होनेसे उससे इन्द्रियों की शिथिलता दूर करने वाला ।	चार गतियों में भ्रमण करके थके हुए प्राणियों का भव-भ्रमण मिटाकर उनके खेदको सर्वथा नाश करने वाला ।
(१३) मधुरत्व,	मधुर रस वाला ।	अपूर्व अविनाशी मोक्षसुखकी-अनुभूति रस वाला ।
(१४) स्निग्धत्व	चिकनापन ।	कान में पडते ही आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में धर्मानुराग जगाने वाला ।

(१२) श्रमनिवारणु करवापणुं.	सुगंध आदि अनेक गुणोनी विशेषता होवाथी ते ते इंद्रियोनी शिथिलता दूर करनार.	चार गतिओमां भ्रमणु करीने थाकी गयेला જીવોના ભવ ભ્રમણને નિવારણ કરીને તેના ખેદનો સર્વથા નાશ કરનાર
(१३) मधुरपणुं.	મધુર રસવાળા.	અપૂર્વ, અવિનાશી મોક્ષ સુખના અનુભવ રૂપ રસવાળા
(१४) स्निग्धता.	ચિકણાપણું.	કાનમાં પડતાં જ આત્માના દરેકે-દરેક પ્રદેશમાં ધર્માનુ-રાગ જગાડનાર

१५ बहुदलत्वम्,	शतपत्रसहस्रपत्रादिरूपेणाऽधिकपत्रवत्त्वम्,	स्वपरसमयस्वरूपप्रदर्शकबहुविधप्रमाणनयनिक्षेपादिवत्त्वम्।
१६ विषविनाशकत्वम्,	स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्,	विषयवासनाऽपहारकत्वम्।
१७ मकरन्दधारित्वम्,	परागवत्त्वम्,	अनित्यादिभावनाजनितवैराग्यवत्त्वम्। (१)

(१५) बहुदलत्व,	शतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे बहुत पत्तोंवाला।	स्वसमय और परसमय के स्वरूपका प्रकाशक होने के कारण भांति-भांति के प्रमाण, नय, निक्षेप, आदि से युक्त।
(१६) विषविनाशकत्व,	स्थावर और जङ्गम विष का नाश करने वाला।	विषय वासनारूप विषका नाश करने वाला।
(१७) मकरन्दधारित्व,	पुष्परसवाला।	अनित्य आदि बारह भावनाओं से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्त रस वाला।

(૧૫) બહુદળતા.	સો પત્ર, હજાર પત્ર આદિ રૂપથી ઘણાં પત્રો (પાંદડા) વાળા.	સ્વસમય અને પરસમયના સ્વરૂપના પ્રકાશક હોવાના કારણે જૂદી જૂદી જાતના પ્રમાણ, નય, નિક્ષેપ આદિથી યુક્ત.
(૧૬) વિષનાશકણું.	સ્થાવર અને જંગમ વિષનો નાશ કરનાર	વિષયવાસનારૂપ વિષનો—ઝેરનો નાશ કરનાર.
(૧૭) મકરન્દ-ધારિત્વ.	ફુલોના રસ વાળા.	અનિત્ય આદિ બાર ભાવનાઓથી ઉત્પન્ન વૈરાગ્યજનિત શાંતરસ પ્રગટાવનાર.

१....वैराग्यवत्त्वम्—प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन।

१८ व्याधिनाशकत्वम्,	क्षतक्षयादिसकलातङ्कनिवारकत्वम्,	सर्वघातिप्रभृतिसकलकर्मनाशकत्वम्।
१९ विकसनशीलत्वम्,	मुकुलितपत्रस्फुटनस्वभावत्वम्,	अनन्तकालप्रसुप्तात्मगुणविकासित्वम्।
२० तृष्णानिवारकत्वम्,	अभिलाषापहारकत्वम्,	विषयाभिलाषनिवर्त्तकत्वम्।
२१ मूर्छाहारकत्वम्,	नष्टचेष्टानिवारकत्वम्,	मोहविनाशकत्वम्।

(१८) व्याधिनाशकत्व,	भय आदि समस्त व्याधियोंको हटानेवाला।	सर्वघाति आदि समस्त कर्मोंका नाश करने वाला।
(१९) विकसनशीलत्व,	क्रमशः विकसित होता जानेवाला।	अनादिकालसे सोये पडे आत्माके गुणोंका विकास करनेवाला।
(२०) तृष्णानिवारकत्व,	लालसा हटानेवाला।	विषयों की अभिलाषा दूर करने वाला।
(२१) मूर्च्छाहारकत्व,	मूर्च्छा (बेहोशी) मिटाने वाला।	मोह का नाशक।

(૧૮) વ્યાધિ વિનાશકપણું.	ભય આદિ તમામ વ્યાધિઓને નિવારણ કરનાર.	સર્વઘાતિ પ્રકૃતિ આદિ તમામ કર્મોનો નાશ કરનાર.
(૧૯) વિકાસવાપણું	ક્રમશઃ વિકાસ પામવાવાળા.	અનાદિ કાલથી સુતા પડેલા આત્માના ગુણોનો વિકાસ કરનાર.
(૨૦) તૃષ્ણાનિવારકપણું.	લાલચ દૂર કરનાર.	વિષયોની અભિલાષા દૂર કરનાર.
(૨૧) મૂર્છાનિવારકપણું.	બેભાનપણું મટાડનાર	મોહ નાશ કરનાર

२२	पथ्यत्वम्	हितकरत्वम् ,	ऐहिकपारत्रिकसुखोत्पादकत्वेनात्मनो नितान्तोपकारित्वम् ।
२३	मेध्यत्वम् ,	पवित्रत्वम् ,	मिथ्यात्वमलाभावेन नैर्मल्यम् ।
२४	उत्कृष्टभावोत्पादकत्वम्	दैन्यशोकादिजनितदुश्चिन्तनापनयेन विशुद्धविचाराऽऽविष्कारकत्वम् ।	विभावपरिणामजन्यदुर्वासनापनयनेन तीर्थङ्करगोत्रोपार्जनयोग्यविशिष्टभावनाजनकत्वम् ।

(२२)	पथ्यत्व,	हितकर ।	इहलोक और परलोक सम्बन्धी सुखजनक होनेसे आत्मा का अत्यन्त उपकारी ।
(२३)	मेध्यत्व,	पवित्रता वाला।	मिथ्यात्वादि पांच आस्रव रूपी मल से रहित होने के कारण निर्मल ।
(२४)	उत्कृष्टभावोत्पादकत्व,	दैन्यशोक आदि से उत्पन्न हुई चिन्ता को दूर करके विशुद्ध विचार उत्पन्न करने वाला ।	विभाव परिणति द्वारा जनित दुर्वासना को दूर करके तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के योग्य विशिष्ट भावनाको उत्पन्न करने वाला ।

(२२)	પથ્યતા.	હિતકર.	આ લોક અને પરલોક સંબંધી સુખ ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી આત્માને અત્યન્ત ઉપકારી.
(२३)	મેધ્યતા.	પવિત્રતા કરનાર.	મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ આશ્રવ રૂપી મળથી રહિત હોવાના કારણે નિર્મલ.
(२४)	ઉત્કૃષ્ટ ભાવો ઉત્પન્ન. કરવાપણું.	દૈન્યશોક આદિથી ઉત્પન્ન થનાર ચિંતાને દૂર કરીને વિશુદ્ધ વિચાર ઉત્પન્ન કરનાર	વિભાવ પરિણુતિ દ્વારા ઉત્પન્ન થયેલી દુર્વાસનાને દૂર કરીને તીર્થંકર ગોત્ર બાંધવા યોગ્ય વિશિષ્ટ ભાવના ઉત્પન્ન કરનાર.

२५ अवयवसंनिवेश- सकलावयवपूर्णत्वम् , सकलाङ्गोपाङ्गपूर्णत्वम् ।
विशेषवत्त्वम्

तीर्थङ्करकल्पपादपानां वचनप्रसूनानि गणधराः श्रद्धासूत्रे संग्रन्थ्य गद्य-पद्यात्मकविविधाङ्गोपाङ्गरूपा माला व्यरीरचन् । अथ ता माला हृदये निधाय तत्तद्गतमहत्त्वं स्वात्मनि भावयन्तो भावितात्मानः सन्तो ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मरजोऽपनीय बाधापीडाऽपवर्जितमपुनरावृत्तिं सिद्धिगतिनामधेयं शिवपदं समाश्रयन्ति, भवभीरून् भव्यानपि तत्पदं प्रापयन्ति ।

(२५) अवयवसन्निवेश- सब अवयवों से परिपूर्ण । सब अङ्गों और उपाङ्गोंसे युक्त ।
विशेषवत्त्व,

तीर्थङ्कररूपी कल्पवृक्षों के वचनरूपी पुष्पों को गणधरोंने श्रद्धारूपी सूतमें गूंथकर गद्य-पद्यरूप विविध अङ्गउपाङ्गमय मालाएँ रचीं, उन मालाओं को धारण करके उनकी महत्ता का अन्तःकरण में विचार करते हुए भावितात्मा पुरुष ज्ञान और क्रिया के द्वारा कर्मरजको हटाते हैं । तथा सब प्रकार की बाधा और पीडासे रहित, जिहें पाकर फिर कभी आना नहीं पडता, ऐसे सिद्धिगतिरूप शिवपद प्राप्त करते हैं, साथ ही भवभीरु अन्य भव्य जीवों को भी उसी पद की प्राप्ति कराते हैं ।

(૨૫) અવયવસન્નિવેશનું. સર્વ અવયવોથી પરિપૂર્ણ. સર્વ અંગો અને ઉપાંગોથીયુક્ત
વિશેષપણું.

તીર્થંકરરૂપી કલ્પવૃક્ષોના વચનરૂપ પુષ્પોને, ગણધરોએ શ્રદ્ધારૂપી સૂતર-દોરામાં ગુંથી કરી ગદ્ય-પદ્યરૂપ વિવિધ અંગ-ઉપાંગમય માળાઓ રચી. તે માળાઓને હૃદયમાં ધારણ કરીને, તેની મહત્તાનો અંતઃકરણમાં વિચાર કરનાર ભાવિતાત્મા પુરૂષજ્ઞાન અને ક્રિયા દ્વારા કર્મરજકણને દૂર કરે છે. તથા સર્વ પ્રકારની ઉપાધિ અને પીડાથી રહિત, જેને પ્રાપ્ત કરીને ફરીથી કોઈ વખત આવવું પડતું નથી. એવી સિદ્ધિગતિરૂપ શિવપદને પ્રાપ્ત કરે છે, તેમજ ભવભીરૂ અન્ય ભવ્ય જીવોને પણ તે પદ (શિવપદ)ની પ્રાપ્તિ કરાવે છે.

कल्पपादपा हि ऐहिकमेवाध्रुव क्षणभङ्गुरं सुखं प्रदातुमीशते, इमे तु लोकोत्तरमक्षयं शाश्वतं सुखं वितरन्ति। लौकिकसुखं तु सुतरां सिद्धमेव, न पुनस्तत्र प्रदानापेक्षेति भावः।

भगवद्वचनेषु पञ्चत्रिंशद् अतिशया लोकोत्तराः सर्वैरनुभूयन्ते, पञ्चत्रिंशतोऽतिशयानां समवायाङ्गसूत्रे निर्देशात्। तथा च सूत्रम्-"पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पन्नत्ता" इति। पञ्चत्रिंशत् सत्यवचनातिशेषाः प्रज्ञप्ताः, इति च्छाया। सत्यवचनं - भगवद्वचनं सकलहितकरत्वात्, तस्य अतिशेषाः = अतिशयाः पञ्चत्रिंशत् प्रज्ञप्ताः कथिताः, इत्यर्थः। तत्रैते पञ्चत्रिंशदतिशयाः-परंपरयाऽवगम्यन्ते-

---

कल्पवृक्ष तो इसी लोकसम्बन्धी सुख दे सकते हैं और वह सुख भी अध्रुव और क्षणभङ्गुर होता है, किन्तु तीर्थङ्कर भगवान् लोकोत्तर अक्षय और शाश्वत सुख प्रदान करते हैं। लौकिक सुख तो किसान के लिये भूसे के समान स्वतः सिद्ध है ही—वह आनुषङ्गिक है।

भगवान् के वचनों में पैंतीस लोकोत्तर अतिशयों का सभी प्राणियों को अनुभव होता है। श्री समवायाङ्गसूत्र में पैंतीस अतिशयों का उल्लेख पाया जाता है। मूल पाठ इस प्रकार है—**"पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता।"**

अर्थात् सत्य वचन के पैंतीस अतिशय—गुण कहे गये हैं।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સંબંધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ અને ક્ષણભંગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થંકર ભગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત–નિત્ય સુખ આપેછે; લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા (અનાજ વિનાનાં ફોતરાં) સમાન સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે.

ભગવાનના વચનોમાં પાંત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ થાય છે, શ્રી સમવાયાંગ સૂત્રમાં એ પાંત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામાં આવે છે. મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— **" पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पणत्ता "**

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાંત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામાં આવ્યા છે. અહિં સત્ય-વચનનો અર્થ છે–ભગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે. તે વચનોનો અતિશય અર્થાત્ ગુણ પાંત્રીશ છે. પરંપરાના નિયમ પ્રમાણે પાંત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે માનવામાં આવ્યા છે—

(१) संस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = श्रोतृसुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अग्राम्यजनभाषावदश्लीलादि दोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवत्त्वम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिशब्दोपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = ऋजुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोशरागः प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् भगवद्वचनं द्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग-

---

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—भगवान के वचन, क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं । उन वचनों के—वाणीके अतिशय अर्थात् गुण पैंतीस हैं । परम्परा के अनुसार वाणीके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, वचन आदि से युक्त होना (२) उदात्तता—श्रोताओं के लिये सुगम। (३) उपचारोपेतता—गँवारो की भाषा में पाये जाने वाले अश्लीलता आदि दोषों से रहित। (४) गंभीरध्वनित्व—मेघकी समान गम्भीर नाद होना। (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनिसे युक्त होना। (६) दक्षिणता—सरलता। (७) उपनीतरागवत्त्व—मालकोश राग सरीखा गुण होना, अर्थात् जैसे— मालकोश राग पाषाण को भी पिघला देता है, उसी प्रकार भगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिघला देते हैं। तात्पर्य यह है कि—भगवान के वचन बडे ही हृदयद्रावक होते हैं। (८) महार्थता—भगवान् के बचन मोक्ष—मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

---

(૧) સંસ્કારવત્ત્વ—પ્રકૃતિ, પ્રત્યય, લિંગ, વચન આદિથી યુક્ત બનવું. (૨) ઉદાત્તતા—શ્રોતાઓ માટે સુગમ. (૩) ઉપચારોપેતતા—મૂર્ખ—જંગલી માણુસોની ભાષામાં જોવામાં આવતા અશ્લીલ—ખરાબ, શરમ આવે તેવા ભાષાના દોષો રહિત. (૪) ગંભીરધ્વનિત્વ-મેઘના જેવો ગંભીર શબ્દ. (૫) અનુનાદિત્વ—પ્રતિધ્વનિ યુકત હોવું (પડઘારૂપ થવું). (૬) દક્ષિણુતા-સરલતા (૭) ઉપનીતરાગત્વ—માલકોશ રાગ જેવો ગુણુ હોવું. અર્થાત્—જેવી રીતે માલકોશ રાગ પથ્થરને પણ પિગળાવી દે છે. તે પ્રમાણે ભગવાનના વચનો કઠોર હૃદય-વાળા માણુસને પણ પિગલાવી દે છે, તાત્પર્ય એ છે કે—ભગવાનના વચન મહાન હૃદય દ્રાવક હોય છે. (૮) મહાર્થતા—ભગવાનના વચન મોક્ષમાર્ગનું પ્રતિપાદન કરનારા છે તેથી મહત્વપૂર્ણ અને અર્થથી યુક્ત હોય છે. (૯) અવ્યાહતપૌર્વાપર્ય—પૂર્વાપર

प्रतिपादकत्वेन महत्त्वविशिष्टार्थकत्वम् (९) अव्याहतपौर्वापर्यत्वम् । = पूर्वापर-विरोधराहित्यम् । (१०) शिष्टत्वम् = शिष्टाभिमततत्त्वबोधकत्त्वम् । (११) असंदिग्धत्वम् = अभिधेयार्थानां स्फुटतया प्रतिपादनेन संशयाजनकत्वम् । (१२) अपहृतान्योत्तरत्वम् = सकलगुणपूर्णत्वेन परकृतदोषान्वेषणाऽविषयत्वम् । (१३) हृदयग्राहित्वम् = सर्वेषां प्राणिनां श्रवणमात्रेण हृदयहारित्वम् । (१४) देशकालाव्यतीतत्वम् = द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलत्वम् । (१५) तत्त्वानुरूपत्वम् = विवक्षितवस्तुद्रव्यपर्यायस्वरूपप्रकाशकत्वम् । (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्वम् = प्रसङ्गं विना न विस्तीर्णत्वं नातिसंक्षिप्तत्वम् (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्वम् = पदानामर्थानां वा

से युक्त होते हैं । (९) अव्याहतपौर्वापर्य–पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं । (१०) शिष्टता–शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकृत तत्त्व का बोध कराते हैं । (११) असंदिग्धता–अभिधेय अर्थ का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण संशयजनक नहीं होते । (१२) अपहृतान्योत्तरत्व–समस्त गुणों से युक्त होने के कारण दूसरे वादी उनमें कोई दोष नहीं निकाल सकते । (१३) हृदयग्राहित्व–समस्त श्रोतागणों के हृदय को हरण करने वाले । (१४) देशकालाव्यतीतत्व–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल । (१५) तत्त्वानुरूपत्व–विवक्षित वस्तुके द्रव्य और पर्याय का स्वरूप प्रकाशित करने वाले (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व–

વિરોધથી રહિત હોય છે. (૧૦) શિષ્ટ પુરૂષો દ્વારા સ્વીકારેલા તત્ત્વનો બોધ કરાવે છે. (૧૧) અસંદિગ્ધતા—અભિધેય–વાકયાર્થનું સ્પષ્ટ રૂપથી પ્રતિપાદન કરવાના કારણે સંશય ઉત્પન્ન થતો નથી. (૧૨) અપહૃતાન્યોત્તરત્વ- સમસ્ત ગુણોથી યુક્ત હોવાથી બીજા પક્ષના વાદી તેમાં કોઈ પણ પ્રકારનો દોષ કાઢી શકતા નથી. (૧૩) હૃદયગ્રાહિત્વ–તમામ શ્રોતા-વર્ગના હૃદયને હરણ કરવાવાળા (૧૪) દેશકાલાવ્યતીત્વ—દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર કાલ અને ભાવને અનુકૂળ. (૧૫) તત્ત્વાનુરૂપત્વ—વિવક્ષિત-વસ્તુ એટલે બોલવા માટે મનમાં નક્કી કરેલુ, તેના દ્રવ્ય અને પર્યાયના સ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાવાળા. (૧૬) અપ્રકીર્ણ-પ્રસૃતત્વ પ્રસંગ વિના વિસ્તાર સહિત નહિ કહેવું, તથા સંક્ષેપમાં નહિ કહેવું. (૧૭) અન્યોન્ય પ્રગૃહીતત્વ–પૂર્વાપર પદોની અને અર્થોની અપેક્ષા રાખવા વાળા, અર્થાત્ પ્રકરણ સંગત.

पूर्वापरसापेक्षत्वम् । (१८)-अभिजातत्वम् = सूक्ष्मस्यापि जीवादिस्वरूपस्य चाक्षुषप्रत्यक्षीकरणवत्प्रतिपादकत्वम् । (१९)-अतिस्निग्धमधुरत्वम्=अमृतवत्तृप्तिजनकत्वम् । (२०)-अपरमर्मवेधित्वम् = परमर्मोद्घाटनरहितत्वम् । (२१)-अर्थधर्माभ्यासानपेतत्वम्=पारमार्थिकार्थधर्मबोधकत्वम् (२२)-उदारत्वम्=सर्वप्राणिकल्याणकारित्वं, तुच्छार्थानभिधायकत्वं वा । (२३)-परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्वम् = परोत्क्षेपात्मप्रशंसाहीनत्वम् (२४)-उपगतश्लाघत्वम् = सकलहितकरत्वेन समादृतत्वम् (२५)-

---

प्रसङ्ग के विना न कहना, न विस्तारयुक्त और न संक्षिप्त कहना, (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व पूर्वापर पदों की और अर्थ की अपेक्षा रखनेवाले, अर्थात् प्रकरणसङ्गत, (१८) अभिजातता – जीव आदि के अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूपको भी इतना स्पष्ट निरूपण करने वाले जैसे कि आंखों से देख रहे हों, (१९) अतिस्निग्धमधुरता – अमृत के समान तृप्तिकारक, (२०) अपरमर्म्मवेधित्व – दूसरों के मर्म को न प्रगट करने वाले, अथवा प्रतिपक्षियों के मर्म (हेतुओं एवं युक्तिओं) का निराकरण करने वाले, (२१) अर्थधर्माभ्यासानपेतता – परमार्थ अर्थात् मोक्ष तथा मोक्ष के साधनरूप धर्म का बोध कराने वाले, (२२) उदारता – प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले अथवा तुच्छ अर्थों का प्रतिपादन न करने वाले, (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता – परनिंदा और आत्मप्रशंसा रहित, (२४) उपगतश्लाघत्व – सर्वहितकारी होने के कारण सभी

---

(૧૮) અભિજાતતા—જીવ આદિ તત્ત્વોના અત્યન્ત સૂક્ષ્મ સ્વરૂપનું પણ એટલું સ્પષ્ટ નિરૂપણ કરવાવાળા જેમકે નેત્રથી જોઈ રહ્યા હોય. (૧૯) અતિસ્નિગ્ધમધુરતા–અમૃત સમાન તૃપ્તિ કરવા વાળા. (૨૦) અપરમર્મવેધિત્વ—બીજાના મર્મને પ્રગટ નહિ કરવા વાળા, અથવા પ્રતિપક્ષીઓના મર્મ (હેતુઓ-યુક્તિઓ) નું નિરાકરણ–કરવા વાળા. (૨૧) અર્થધર્માભ્યાસાનપેતતા—પરમાર્થ–અર્થાત્ મોક્ષ તથા મોક્ષના સાધનરૂપ ધર્મનો બોધ કરવાવાળા. (૨૨) ઉદારતા—પ્રાણીમાત્રનું કલ્યાણ કરવા કરાવાવાળા, અથવા તુચ્છ અર્થોનું પ્રતિપાદન નહિ કરવા વાળા. (૨૩) પરનિન્દાઽઽત્મોત્કર્ષવિપ્રમુક્તતા–પર નિન્દા અને આત્મપ્રશંસાથી રહિત (૨૪) ઉપગતશ્લાઘત્વ–સર્વહિતકારી હોવાને

अनपनीतत्वम् = श्रुतिकटुत्वादिवचनदोषापेतत्वम् (२६)–उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्वम् = नवनवार्थप्रतिपादकत्वेन पुनः पुनः श्रवणाभिलाषजनकत्वम् । (२७)–अद्रुतत्वम् = शीघ्रतारहितत्वम् । (२८)–अनतिविलम्बितत्वम्=वाक्यापरिसमाप्तौ विश्रामरहितत्वम् । (२९)–विभ्रमविक्षेपरोषावेशादिराहित्यम् = विभ्रमो=भ्रान्तिः, विक्षेपः=विवक्षितार्थे प्रत्यनासक्तता, रोषावेशः=क्रोधावेगस्तैर्विमुक्तत्वम् । (३०)–विचित्रत्वम् = वर्णनीयवस्तुस्वरूपप्रकाशनेन लोकोत्तरत्वम् । (३१)–आहितविशेषत्वम् =द्रव्य–पर्याय–विशेषप्रतिपादकत्वम् । (३२)–साकारत्वम्=हेतुकारणादिभिः स्फुटतया

के लिये उपादेय, (२५) अनपनीतत्व – कर्णकटुकता आदि दोषों से रहित, (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व – नूतन नूतन अर्थ का निरूपण करने के कारण वार वार सुनने की अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले, अर्थात्–भगवानके वचनोंको वार वार सुनने की इच्छा होती है । (२७) अद्रुतत्व–शीघ्रता से रहित, (२८) अनतिविलम्बितत्व–बहुत विलम्ब से उच्चारण न किये जाने वाले, अर्थात् वाक्य समाप्त होने से पहले विश्राम लिए विना ही बोले जाने वाले । (२९) विभ्रम–विक्षेप–रोषाऽऽवेशादिराहित्य, विभ्रम अर्थात् भ्रान्ति, विक्षेप अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु के प्रति असावधानी, रोष अर्थात् क्रोध, के आवेश से रहित, (३०) विचित्रता वर्णन की जाने वाली वस्तु का स्वरूप प्रकाशित करने के कारण लोकोत्तर, (३१) आहितविशेषता – द्रव्य और पर्याय की विशेषता का प्रतिपादन करने वाले,

---

કારણે સર્વને માટે ઉપાદેય–ગ્રહણ કરવા યોગ્ય. (૨૫) અનપનીતત્વ—કાનને અપ્રિય લાગે એવા દોષોથી રહિત. (૨૬) ઉત્પાદિતાચ્છિન્નકૌતૂહલત્વ—નવા-નવા અર્થનું નિરૂપણ કરવાના કારણે વારંવાર સાંભળવાની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરવાવાળા, અર્થાત્ ભગવાનના વચનોને વારંવાર સાંભળવા અભિલાષા–ઇચ્છા થાય છે, (૨૭) અદ્રુતત્વ—શીઘ્રતાથી રહિત (૨૮) અનતિવિલમ્બિતત્વ—બહુજ વિલંબથી ઉચ્ચારણ નહિ કરવાવાળા, અર્થાત્–વાકય સમાપ્ત થયા પહેલાં વિશ્રામ લીધા વિનાજ બોલવાવાળા. (૨૯) વિભ્રમ–વિક્ષેપ–રોષા–વેશાદિરહિતત્વ–વિભ્રમ અર્થાત્–ભ્રાંતિ, વિક્ષેપ–અર્થાત્ પતિપાદ્ય વસ્તુ તરફ ગફલત, રોષ–અર્થાત્ ક્રોધના આવેશથી રહિત (૩૦) વિચિત્રતા–વર્ણન કરવા યોગ્ય વસ્તુના સ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાના કારણે લોકોત્તર (૩૧) આહિતવિશેષતા–દ્રવ્ય અને પર્યાયની

प्रकाशनेनार्थानां साक्षात्कारजनकत्वम्। (३३)–सत्त्वपरिगृहीतत्वम्=उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तसत्तयाऽर्थप्रकाशकत्वम्। (३४)–अपरिखेदितत्वम् = स्वपरखेदानुत्पादकत्वम्। (३५)–अव्युच्छेदित्वम् = वर्णनीयपदार्थनिर्णयं यावदविच्छिन्नत्वम्।

वृद्धसम्प्रदायविद्भिरप्युक्तम्—

(१)–सक्कारवत्तं, (२)–उदत्तत्तं, (३)–उवयारोवेयत्तं (४)–गंभीरज्झुणित्तं, (५)–अणुणादित्तं, (६)–दक्खिणत्तं, (७)–उवणीयरागत्तं, (८)–महत्थत्तं, (९)–अव्वाहयपुव्वावज्जत्तं, (१०)–सिट्ठत्तं, (११)–असंदिद्धत्तं, (१२)–अवहरियअन्नुत्तरत्तं, (१३)–हिययग्गाहित्तं, (१४)–देसकालअव्वईयत्तं, (१५)–तत्ताणुरूवत्तं, (१६)–अण्णपइण्णसरियत्तं, (१७)–अन्नुन्नप्पग्गहीयत्तं, (१८)–अहिजायत्तं, (१९)–अइणिद्धमहुरत्तं, (२०)–अवरमम्मवेहित्तं, (२१)–अत्थधम्मब्भासाणवेयत्तं, (२२)–उयारत्तं, (२३)–परनिंदाअप्पुक्करिसविप्पजुत्तत्तं, (२४)–उवगयसिलाघत्तं, (२५)–अणवणीयत्तं, (२६)–उप्पाइयच्छिन्नकोउहलत्तं, (२७)–अदुयत्तं, (२८)–अणइविलंवियत्तं, (२९)–विब्भमविक्खेवरोसावेसाइराहिच्चं, (३०)–विचित्तत्तं, (३१)–आहियविसेसत्तं, (३२)–सागारत्तं, (३३)–सत्तपरिग्गहीयत्तं, (३४)–अपरिखेइयत्तं, (३५)–अव्वुच्छेइत्तं।

---

(३२) साकारता–हेतु कारण आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पदार्थों का साक्षात्कार कराने वाले, (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व – उत्पाद व्यय और ध्रौव्यमय सत्ता के रूपमें अर्थ के प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व – स्व को और पर को खेद न पहुँचाने वाले, (३५) अव्युच्छेदित्व – प्रतिपाद्य विषय का निर्णय हुए विना न रुकने वाले, अर्थात् विवक्षित वस्तु का पूर्ण निर्णय करने वाले।

વિશેષતાનું પતિપાદન કરવા વાળા (૩૨) સાકારતા—હેતુ, કારણ આદિ વડે સ્પષ્ટ રૂપથી પ્રકાશિત કરીને પદાર્થોનો સાક્ષાત્કાર કરાવવા વાળા. (૩૩) સત્ત્વપરિગૃહીતત્વ—ઉત્પાદ, વ્યય, અને ધ્રૌવ્ય-મય સત્તાના રૂપમાં અર્થના પ્રકાશક (૩૪) અપરખેદિતત્વ પોતાને અને પારકાને ખેદ નહિ પહોંચાડનાર (૩૫) અવ્યુચ્છેદિત્વ—પ્રતિપાદ્ય વિષયનો નિર્ણય થયા વિના નહિ અટકનારા, અર્થાત્ વિવક્ષિત વસ્તુનો પૂર્ણ નિર્ણય કરવા વાળા.

भगवद्वचनानि चतुर्विधेऽनुयोगे प्रविभक्तानि, स चेत्थम्-
(१)-चरणकरणानुयोगः,(२)-धर्मकथानुयोगः, (३)-गणितानुयोगः, (४)-द्रव्यानुयोगश्च।

युज्यते=संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः = गणधरकथनरूपः, अनु = अनुकूलो योगोऽनुयोगः। भगवद्वचनानुरूपा गणधरोक्तिरित्यर्थः। (१)

(१) अथ चरणकरणानुयोगः—

(१) चर्यते = गम्यते = प्राप्यते भवोदधेः परं कूलं चतुर्दशगुणस्थाना-

---

भगवान् के वचनों में ये पैंतीस अतिशय अर्थात् गुण होते हैं। प्राचीन आचार्यों ने भी कहा है —'सक्कारवत्तं' इत्यादि ३५।

(वाणी के पैंतीस गुण पहले कह चुके हैं अतः यहाँ इनका अर्थ कहने की आवश्यकता नहीं।

भगवान् के वचन चार अनुयोगों में विभक्त हैं। चार अनुयोग ये हैं :—

१ चरणकरणानुयोग, २ धर्मकथानुयोग, ३ गणितानुयोग, और ४ द्रव्यानुयोग।

भगवानके वचनों के अनुकूल गणधरों का व्याख्यान अनुयोग कहलाता है।

(१) चरणकरणानुयोग-

जिसके द्वारा भव-सागर का किनारा अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया जाय

ભગવાનના વચનોમાં આ પ્રમાણે પાંત્રીશ અતિશય અર્થાત્-ગુણ હોય છે. પ્રાચીન આચાર્યોએ પણ કહ્યું છે:- "सक्कारवत्तं" ઇત્યાદિ ૩૫. (પાંત્રીશ વાણીના ગુણો પહેલા કહી ગયા છીએ જેથી અહિં એનો અર્થ કહેવાની આવશ્યકતા નથી.)

ભગવાનના વચન ચાર અનુયોગોમાં વહેંચાયેલા છે. ચાર અનુયોગ આ છે- (૧) ચરણકરણાનુયોગ. (૨) ધર્મકથાનુયોગ, (૩) ગણિતાનુયોગ અને (૪) દ્રવ્યાનુયોગ.

ભગવાન-દ્વારા પ્રરૂપિત અર્થની સાથે ગણધરોના વચનનો યોગ હોય તે અનુયોગ કહેવાય છે, તાત્પર્ય એ છે કે:—ભગવાનના વચનોને અનુકૂળ ગણધરોએ કરેલું વ્યાખ્યાન તે અનુયોગ કહેવાય છે.

(૧) ચરણકરણાનુયોગ—

જેનાથી ભવસાગરનો કિનારો અર્થાત્ ચૌદમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરી શકાય, તેને અર્થાત્ મૂલગુણને 'ચરણ' કહે છે, અથવા વ્રત આદિ ચરણ કહેવાય છે. તે સિત્તેર (૭૦) છે. કહ્યું પણ છે—

वस्थास्वरूपमनेनेति चरणं = मूलगुणरूपम् । यद्वा चरणं=व्रतादि, तच्च सप्तति-संख्यकम्, उक्तञ्च—

"वय५ समणधम्म१० संजम१७, वेयावच्चं१० च बंभगुत्तीओ ९ ।
णाणाइतियं३ तव१२ कोहनिग्गहाई४ चरणमेयं ॥ १ ॥" इति ।

क्रियते चरणस्य पुष्टिरनेनेति करणम् = उत्तरगुणरूपम् । यद्वा करणं=पिण्डविशुद्ध्यादि, एतदपि सप्ततिसंख्यकम्, उक्तञ्च—

उसे अर्थात् मूलगुणको 'चरण' कहते हैं । अथवा व्रत आदि 'चरण' कहलाते हैं । वे ७० सत्तर हैं । कहा भी है —

पांच महाव्रत, दश श्रमणधर्म, सत्रह संयम, दश वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियां, रत्नत्रय – (सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र), बारह प्रकारका तप, चार क्रोधादि-विजय–(क्रोधविजय, मायाविजय, मानविजय, लोभविजय), यह ७० सत्तर प्रकारका 'चरण' कहलाता है ।

चरण की पुष्टि करने वाला 'करण' कहलाता है । करण का अभिप्राय है— उत्तर गुण । अथवा पिण्डविशुद्धि आदिको करण कहते हैं । इसके भी सत्तर ७० भेद हैं । कहा भी है :—

પાંચ મહાવ્રત, દસ શ્રમણધર્મ, સત્તર સંયમ, દશ વૈયાવૃત્ય, નવ બ્રહ્મચર્યની ગુપ્તિઓ, રત્નત્રય-(સમ્યગ્જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્ર) બાર પ્રકારનો તપ, ચાર ક્રોધાદિવિજય,-(ક્રોધવિજય, માનવિજય, માયાવિજય, લોભવિજય) આ પ્રમાણે સિત્તેર (૭૦) પ્રકારના ચરણ કહેવાય છે. ॥ ૧ ॥

ચરણની પુષ્ટિ કરવા વાળા કરણ કહેવાય છે. કરણનો અભિપ્રાય છે-ઉત્તર ગુણ, અથવા પિંડવિશુદ્ધિ આદિને કરણ કહે છે, તેના પણ સિત્તેર ભેદ છે. કહ્યું પણ છે —

"पिंडविसोही४ समिई५, भावण१२ पडिमा१२ य इंदियनिरोहो५ ।
पडिलेहण२५ गुत्तीओ३, अभिग्गहा४ चेव करणं तु ॥ १ ॥" इति ।
तयोरनुयोगश्चरणकरणानुयोगः (१) ।

धर्मकथानुयोगादयश्चरणकरणयोर्भव्यजीवान् प्रवर्त्तयन्तीति तेषां चरणकरणाङ्गतया प्राधान्यमेतस्यानुयोगस्य, अत एवास्य प्राथम्यम् । उक्तञ्च—

आत्मन् ! जानीहि पूर्वं चरणकरणयोराश्रये यन्महत्त्वं,
मोहं दूरीकरोति प्रकटयति परं निश्चयात्मस्वरूपम् ।

"चार पिण्डविशुद्धि, पांच समितियां, बारह भावना, बारह पडिमा, पांच इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रतिलेखना, तीन गुप्तियां, चार अभिग्रह, यह सत्तर ७० प्रकारका करण कहलाता है ।

इस तरह चरण और करण के अनुयोग को, अर्थात् भगवान् की वाणी के अनुकूल व्याख्यान को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिस शास्त्र में चारित्र सम्बन्धी निरूपण है, वह चरणकरणानुयोग समझना चाहिए ।

धर्मकथानुयोग आदि शेष तीन अनुयोग भव्यजीवों को चरण और करण में प्रवृत्त करते हैं, अतः वे इसी अनुयोग के अङ्ग हैं । इस प्रकार चारों अनुयोगो में चरणकरणानुयोग ही प्रधान है । प्रधान होने के कारण ही इस की गणना सर्वप्रथम की गई है । कहा भी है—

हे आत्मन् ! चरण और करण में जो महत्त्व है, उसे पहले समझ ले । वह मोह को निवारण करता है, आत्मा के निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, वह सब

"ચાર પિંડવિશુદ્ધિ, પાંચ સમિતિઓ, બાર ભાવના, બાર પડિમા, પાંચ ઇન્દ્રિય નિરોધ, પચીશ પ્રતિલેખના, ત્રણ ગુપ્તિઓ, ચાર અભિગ્રહ, આ સર્વ કરણ કહેવાય છે." ॥ ૧ ॥

આ પ્રમાણે ચરણ અને કરણના અનુયોગને અર્થાત્ ભગવાનની વાણીને અનુકૂલ વ્યાખ્યાનને ચરણકરણાનુયોગ કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જે શાસ્ત્રમાં ચારિત્રસમ્બન્ધી નિરૂપણ છે તે ચરણકરણાનુયોગ સમજવું જોઇએ.

ધર્મકથાનુયોગ આદિ બાકીના ત્રણ અનુયોગ ભવ્ય જીવોને ચરણ અને કરણમાં પ્રવૃત્ત કરે છે; તેટલા માટે તે પણ એ અનુયોગનું અંગ છે. આ પ્રકારે ચારેય અનુયોગોમાં ચરણકરણાનુયોગ પ્રધાન—મુખ્ય છે.
મુખ્ય હોવાના કારણે જ તેની ગણના સૌથી પ્રથમ કરી છે. કહ્યું પણ છે:—

"હે આત્મન્! ચરણ અને કરણમાં જે મહત્ત્વ છે, તેને પ્રથમ સમજી લે, તે

आधारोऽयं गुणानामपनयति सदाऽनादिमिथ्यात्वदोषं,
हेतुर्योऽयं विशुद्धेर्दमयति नितरामिन्द्रियाणि द्रुतं यः ॥ १ ॥
सम्यग्ज्ञानस्य दाता शिवसुखजनकः कर्मधूलेश्च हर्ता,
कर्त्ता विद्योतनस्याऽऽत्मनि सकलगुणस्याऽद्वितीयः प्रकाशः ।
आत्मन्नेवात्मनीनश्चरणकरणयोराश्रयः काऽत्र शङ्का ?,
शङ्कारो नैष लोकः परिणतिविरसः किं सुखाशां करोषि ? ॥ २ ॥

(२) अथ धर्मकथानुयोगः—

भवजलनिधौ निपतन्तं भव्यजातं धारयति=तरिरिव तारयति शुभस्थानं प्रापयतीति धर्मः, तस्य कथा भगवद्देशनालक्षणो वाक्यप्रबन्धः धर्मकथा। अहिंसादिप्ररूपणा वा धर्मकथा। अथवा श्रुतचारित्रलक्षणधर्मप्रधानकथा-धर्मकथा। यद्वा

गुणों का आधार है, और अनादिकालीन मिथ्यात्व दोष को दूर करता है, विशुद्धि का कारण है, और इन्द्रियों को शीघ्र ही दमन करने वाला है ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान का दाता है, मोक्षसुख उत्पन्न करने वाला है, कर्मरूपी धूलको दूर करने वाला है, आत्मामें उद्योत–प्रकाश करने वाला है और समस्त गुणों का अद्वितीय प्रकाशक है, हे आत्मन् ! चरण और करण का आश्रय लाभकारी है, इस विषयमें शंका को स्थान ही कहां है ? अर्थात् निश्चितरूपसे ही वह कल्याण करने वाला है, यह लोक (संसार) तो परिणाम में एकदम नीरस है, तू इस से सुख की अभिलाषा क्यों करता है ॥ २ ॥

(२) धर्मकथानुयोग

संसाररूपी सागरमें डूबते हुए भव्य जीवों को धारण करनेवाला—नौका के समान

મોહનું નિવારણ કરે છે, આત્માના નિશ્ચય અર્થાત્ વાસ્તવિક સ્વરૂપને પ્રગટ કરે છે, તે સર્વ ગુણોનો આધાર અને અનાદિ કાલના મિથ્યાત્વ દોષને દૂર કરે છે, વિશુદ્ધિનું કારણ અને ઇન્દ્રિયોના શીઘ્ર દમન માટે તે સહાયક છે ॥ ૧ ॥

સમ્યગ્જ્ઞાન દેનાર છે અને મોક્ષસુખ ઉત્પન્ન કરવાવાળું છે. કર્મરૂપી ધૂળને દૂર કરવાવાળું છે. આત્મામાં ઉદ્યોત–પ્રકાશ કરવા વાળું છે. અને સમસ્ત ગુણોનો અદ્વિતીય પ્રકાશક છે. હે આત્મન્! ચરણ અને કરણનો આશ્રય કલ્યાણકારી છે, આ વિષયમાં શંકાને સ્થાન જ ક્યાં છે? અર્થાત્ નિશ્ચિત રૂપથી જ તે કલ્યાણ કરવાવાળું છે, આ લોક (સંસાર) તો પરિણામે એકદમ નીરસ–રસરહિત છે, તું તેમાં સુખની અભિલાષા શા માટે કરે છે ? ॥ ૨ ॥

(૨) ધર્મકથાનુયોગ

સંસારરૂપી સાગરમાં ડુબતા ભવ્ય જીવોને ધારણ કરવાવાળી, વહાણ પ્રમાણે

शुभाशुभकर्मविपाकोपदर्शनं धर्मकथा। किञ्च – तिर्थङ्करचक्रवर्त्यादिचारित्रवर्णनं धर्मकथा। तस्या अनुयोगः धर्मकथानुयोगः।

धर्मकथा चतुर्विधा—(१)-आक्षेपणी-(२)-विक्षेपणी- (३)-संवेदनी-(४)-निर्वेदनीभेदात्।

आक्षेपण्यादिधर्मकथाभिराक्षिप्ताः विक्षिप्ताः संवेदिता निर्वेदिताः सन्तो भव्यप्राणिनश्चारित्रं प्राप्नुवन्ति।

किनारे लगादेने वाला, अर्थात् शुभस्थानमें पहुंचा देनेवाला धर्म कहलाता है। उस धर्म की कथा अर्थात् भगवान की देशना जिसमें पाई जाय उसे धर्मकथा कहते हैं। अथवा अहिंसा आदि की प्ररूपणा धर्मकथा कहलाती है। अथवा श्रुत और चारित्र की प्रधानता वाली कथा को धर्मकथा कहते हैं। अथवा शुभ और अशुभ कर्मफल को प्रकाश करना धर्मकथा है। या तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि महापुरुषों का चरित्र वर्णन करना धर्मकथा है। उसके अनुयोग–व्याख्यान को धर्मकथानुयोग कहते हैं।

धर्मकथा चार प्रकार की है:—(१) आक्षेपणी (२) विक्षेपणी (३) संवेदनी और (४) निर्वेदनी।

आक्षेपणी आदि धर्मकथाओं से आक्षिप्त संवेदित और निर्वेदित (विरक्त) हुए भव्य जीव चारित्र प्राप्त करते हैं।

કિનારે લઈ જનારી, અર્થાત્ શુભ સ્થાનમાં પહોંચાડી દેવા વાળી વસ્તુને ધર્મ કહેવામાં આવે છે. તે ધર્મની કથા અર્થાત્ ભગવાનનો ઉપદેશ જેમાં જોવામાં આવે છે. તેને ધર્મકથા કહે છે. અથવા અહિંસા આદિની પ્રરૂપણા તે ધર્મકથા કહેવાય છે. અથવા તો શ્રુત અને ચારિત્રની પ્રધાનતાવાળી કથાને ધર્મકથા કહે છે, અથવા શુભ અને અશુભ કર્મ–ફલને પ્રગટ કરવું તે ધર્મકથા છે. અથવા તીર્થંકર, ચક્રવર્તી આદિ મહાપુરૂષોના ચરિત્રનું વર્ણન કરવું તે ધર્મકથા છે. તેનાં અનુયોગ–વ્યાખ્યાનને ધર્મકથાનુયોગ કહે છે.

ધર્મકથા ચાર પ્રકારની છે. (૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સંવેદની અને (૪) નિર્વેદની.

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓથી આક્ષિપ્ત, વિક્ષિપ્ત, સંવેદિત અને નિર્વેદિત (વિરક્ત) થયેલા ભવ્ય જીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે.

(१) आक्षेपणी—

आक्षिप्यते=मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति समाकृष्यते श्रोताऽनयेति-आक्षेपणी, उक्तञ्च—

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, यया साऽऽक्षेपणी कथा।
यथेषुकारं कमला,-वती धर्मे व्यतिष्ठिपत् ॥ १ ॥"

बाल्यावस्थतनयद्वयसमन्वितः सपत्नीको भृगुपुरोहितः सर्वस्वं परिहाय दीक्षार्थं सदनान्निर्ययौ। तदीयं सकलं वसु परिगृहीतं पत्येति विदित्वा कमलावती राज्ञी वैराग्यमुपगता स्वपतिमिषुकारं नृपतिं प्रत्यबोधयत्। 'राजन्! किं वान्ताशिवद्

(१) आक्षेपणी

जिस कथा के द्वारा श्रोता मोह से हटकर चारित्र के प्रति आकर्षित होते हैं, वह आक्षपणी धर्मकथा कहलाती है, कहा भी है —

" जिस के द्वारा श्रोता सन्मार्ग में स्थापित किये जाते हैं, उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं। जैसे कमलावतीने इषुकार को धर्म में स्थिर किया ॥ १ ॥ "

छोटी उम्र वाले अपने दो बालकों के साथ पत्नीसहित भृगु पुरोहित सर्वस्व त्याग कर दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने घर से निकला। उस पुरोहित का समस्त धन मेरे पति (राजा) ने ले लिया है, ऐसा जान करके रानी कमलावती को वैराग्य हो गया और उसने अपने पति राजा इषुकार को समझाया—"महाराज! जिस धनका भृगु पुरोहित ने

(१) આક્ષેપણી—

જે કથાદ્વારા શ્રોતા મોહથી હઠી જઈને ચારિત્ર તરફ આકર્ષિત થાય છે તે આક્ષેપણી ધર્મકથા કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે:—

"જેનાથી શ્રોતાને સન્માર્ગમાં સ્થાપિત કરી શકાય છે તેને આક્ષેપણી કથા કહે છે, જેવી રીતે કમલાવતીએ ઇષુકારને ધર્મમાં સ્થિર કર્યો. ॥ ૧ ॥

નાની ઉમરવાળા પોતાના બે બાળકોની સાથે તથા પત્ની સહિત ભૃગુ પુરોહિત સર્વસ્વ ત્યાગ કરીને દીક્ષા ગ્રહણ કરવા માટે પોતાના ઘેરથી નીકળ્યા, તે પુરોહિતનું તમામ ધન મારા પતિ (રાજા) એ લઈ લીધું છે. એવું જાણીને રાણી કમલાવતીને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો અને તેણે પોતાના પતિ રાજા ઇષુકારને સમજાવ્યા-

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंजातप्रतिबोध इषुकारः कमलावती च दीक्षार्थं सहैव निष्क्रान्तौ ।

(२) विक्षेपणी—

विक्षिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति विक्षेपणी । उक्तञ्च—

"सम्यग्वादप्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम्" ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की लालसा क्यों करते हैं?" इत्यादि । इषुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद स हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती हैं। कहा भी है —

"મહારાજ ! જે ધનને ભૃગુ પુરોહિતે વમન કરી નાખ્યું છે તે ધનને આપ ભોગવશો ? આપ વમનનું સેવન કરવાવાળાની પેઠે ભોગની લાલસા શા માટે કરો છો ?" ઈત્યાદિ

રાજા ઈષુકાર પોતે કમલાવતીના વચન સાંભળતાં જ વૈરાગ્ય પામ્યા અને રાજા તથા રાણી બન્ને સાથે-સાથે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. ॥ ૧ ॥

(૨) વિક્ષેપણી

સમ્યગ્વાદ અર્થાત્ અનેકાન્તવાદ, અથવા સત્યસિદ્ધાંતના ગુણોનું દિગદર્શન કરાવીને શ્રોતાઓને મિથ્યાવાદ અર્થાત્ એકાન્તવાદથી દૂર કરાવનારી કથા તે વિક્ષેપણી કથા કહેવાય છે. કહ્યું પણ છેઃ—

केशिश्रमणतः करुणारसपरिपूर्णमास्तिकतावादमाकर्ण्य प्रदेशी नाम भूपालो नास्तिकतावादं परित्यज्य द्वादशव्रतधारी श्रावको भूत्वा मृत्वा च प्रथमकल्पे सूर्याभ-नामा देवो बभूव ।

(३) संवेदनी—

संवेद्यते = संसारासारताप्रदर्शनेन मोक्षाभिलाष उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी । उक्तञ्च—

"यस्याः श्रवणमात्रेण, मुक्तिवाञ्छा प्रजायते ।
संवेदनी यथा मल्ली, षड् नृपान् प्रत्यबोधयत् ॥३॥"

"सम्यग्वाद का उत्कर्ष दिखला कर मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्यामान्यता का खण्डन करने वाली विक्षेपणी कथा है। जैसे—केशी श्रमणने प्रदेशी राजा को मिथ्यावाद से हटाया था" ॥ २ ॥

श्री केशी श्रमण के श्रीमुखसे करुणा–रस से परिपूर्ण आस्तिकवाद सुन कर प्रदेशी नामक राजा नास्तिकवाद त्याग कर बारह व्रतधारी श्रावक हो कर मरकर प्रथम सौधर्म कल्पमें सूर्याभ नामक देव हुआ ।

(३) संवेदनी

जो धर्मकथा संसार की असारता प्रदर्शित करके भव्य जीवों में मोक्षकी अभिलाषा जागृत करती है, वह संवेदनी धर्मकथा है । कहा भी है—

"સમ્યગ્વાદનો ઉત્કર્ષ બતાવીને મિથ્યાવાદ અર્થાત્ મિથ્યા માન્યતાનું ખંડન કરવાવાળી વિક્ષેપણી કથા છે. જેવી રીતે કેશી શ્રમણે પ્રદેશી રાજાને મિથ્યાવાદથી મુક્ત કર્યા હતા. ॥ ૨ ॥"

શ્રી કેશી શ્રમણના શ્રીમુખથી કરૂણારસથી પરિપૂર્ણ આસ્તિકવાદ સાંભળીને પ્રદેશી નામના રાજાએ નાસ્તિકવાદ ત્યાગ કર્યો, બાર વ્રતધારી શ્રાવક થઈને મરીને પ્રથમ સૌધર્મકલ્પમાં સૂર્યાભ નામના દેવ થયા.

(૩) સંવેદની

જે કથા સંસારની અસારતા બતાવીને ભવ્યજીવોમાં મોક્ષની અભિલાષા જાગ્રત કરે છે, તે સંવેદની ધર્મકથા છે. કહ્યું પણ છેઃ—

मल्लीकुमारी षड् भूमिपालान् स्वस्मिन्ननुरक्तान् विज्ञाय, तेभ्यः संसारासारतां प्रदर्श्य मोक्षाभिलाषं जनयामास ।

(४) निर्वेदनी—

निर्वेद्यते=विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तञ्च—
" यदाऽऽकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते ।
निर्वेदनी यथा शालि,–भद्रो वीरेण बोधितः " ॥ ४ ॥

" जिस कथा को श्रवण करने मात्र से ही मोक्ष की आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है, वह संवेदनी धर्मकथा है । जैसे—मल्ली नामक राजकन्याने छह राजाओं को बोध दिया " ॥३॥

छह राजा मेरे उपर अनुरक्त हैं, यह जानकर मल्लीकुमारीने उन्हें संसारकी निःसारता समझाई और उन में मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न कर दी । मल्ली कुमारी का वह उपदेश संवेदनी धर्मकथा है ॥ ३ ॥

(४) निर्वेदनी

जो कथा श्रोताओं को विषयभोगसे विरक्त बनाती है, वह निर्वेदनी धर्मकथा कहलाती है । कहा भी है :—

" जिसका श्रवण करते ही वैराग्य उत्पन्न होता है, वह निर्वेदनी धर्मकथा है । जैसे भगवान् महावीरने शालिभद्र को प्रतिबोध दिया " ॥ ४ ॥

" જે કથા સાંભળવામાત્રથી જ મોક્ષની ઈચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તે સંવેદની ધર્મકથા છે. જેવી રીતે મલ્લી નામની રાજકન્યાએ છ રાજાઓને બોધ આપ્યો. ॥૩॥"

છ રાજા મારા ઉપર આસક્ત-પ્રેમવાળા છે. એવું જાણીને મલ્લી કુમારીએ તેઓને સંસારની નિઃસારતા સમજાવી અને તેઓમાં મુક્તિની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરી, મલ્લીકુમારીનો તે ઉપદેશ સંવેદની ધર્મકથા છે.

(૪) નિર્વેદની

જે કથા શ્રોતાઓને વિષય ભોગથી વિરક્ત બનાવે છે તે નિર્વેદની કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે:—

"જેનું શ્રવણ કરતાં જ વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે, તે નિર્વેદની ધર્મકથા છે જેવી રીતે ભગવાન મહાવીરે શાલિભદ્રને પ્રતિબોધ આપ્યો. ॥ ૪ ॥"

कमलकोमलकान्ताकारः शालिभद्रकुमारः श्रीमहावीरतीर्थङ्करकथितधर्मदेशना-श्रवणसमनन्तरं त्वरया वैराग्यमुपगतश्चारित्रं प्राप। उक्तञ्च—

"भवस्य सर्वं क्षणभङ्गुरं सुखं,
विदन्ति ये धर्मकथानुरागिणः।
विहाय ते भोगमनन्तदुःखदं,
चरन्ति चारित्रवने विरागिणः" ॥ ४ ॥

उत्तराध्ययनसूत्रस्यैकोनत्रिंशेऽध्ययने धर्मकथाफलमाह—

"धम्मकहाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?। धम्मकहाए णं जीवे निज्जरं जणयइ। धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ। पवयणपभावणेणं जीवे आगमेसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ।"

कमल के समान कोमल और कान्तिमान आकृति वाला शालिभद्र कुमार श्री महावीर भगवान् को धर्मदेशना सुनते ही वैराग्य को प्राप्त हुआ, और उसने चारित्र धारण कर लिया। कहा भी है :—

"धर्मकथा में अनुराग रखने वाले जो पुरुष संसार के सुख क्षणभङ्गर समझ लेते हैं, वे अनन्त दुःख देने वाले भोगका त्याग करके, विरागी हो कर चारित्ररूपी बगीचे में विहार करते हैं" ॥ १ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में धर्मकथा का फल बतलाया गया है। वह इस भांति है —

કમલના જેવા કોમલ અને કાન્તિમાન આકૃતિવાળા શાલિભદ્રકુમાર શ્રી મહાવીર ભગવાનની ધર્મદેશના સાંભળતાં જ વૈરાગ્યને પ્રાપ્ત થયા અને ચારિત્ર ધારણ કર્યું. કહ્યું પણ છેઃ—

"ધર્મકથામાં પ્રીતિ રાખવાવાળા જે પુરૂષ સંસારના સુખને ક્ષણભંગુર સમજી લે છે તે અનન્ત દુઃખ આપવાવાળા ભોગનો ત્યાગ કરીને વૈરાગ્ય ધારણ કરી ચારિત્રરૂપી બગીચામાં વિહાર કરે છે. ॥ ૧ ॥"

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ઓગણત્રીસમાં અધ્યયનમાં ધર્મકથાનું ફલ બતાવ્યું છે, તે આ પ્રમાણે છેઃ—

आक्षेपण्यादिचतुर्विधधर्मकथासंचारोद्भावितानन्दधारातरङ्गसमुल्लसितस्वान्तप्रभूतभव्यभावितात्मा धर्मकथी जन्मजरामरणादिभीषणपीनपाठीनमीनमकरगणसंक्रमणप्रियवियोगाप्रियसंयोगवडवानलाकुलितापारसंसारसागरात् स्वयं तरति, परानपि तारयति।

स च प्रभूतभव्यान् प्रव्राजयन् भवकूपपतत्प्राणत्राणसमाश्वासनजिनशासनमहिमानमुपबृंहयन् समस्तमेव जगत् जिनशासनरसिकं कुर्वन्, मिथ्यात्वमुत्थापयन्,

---

"भगवन्! धर्मकथा से जीव को क्या लाभ होता है? उत्तर—धर्मकथा से जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती है। धर्मकथा से जीव प्रवचन की प्रभावना करता है। प्रवचन की प्रभावना से आगे के लिये भद्र (शुभ) कर्मों का बन्ध करता है" ॥ ४ ॥

आक्षेपणी आदि चार प्रकार की धर्मकथा से उत्पन्न होने वाली आनन्द की धाराओं की तरङ्गों से जिन का अन्तःकरण उल्लास को प्राप्त हुआ है, ऐसे अनेक भावितात्मा भव्य धर्मकथा करने वाले पुरुष जन्म जरा और मरण रूपी भयानक और विशाल मगरमच्छोंसे व्याप्त, एवं इष्ट—वियोग और अनिष्ट—संयोग रूपी वडवानल से आकुल—व्याप्त अपार संसार सागर से स्वयं भी पार होते हैं और दूसरों को भी पार करते हैं।

वह धर्मकथाकार अनेकानेक भव्य जीवों को दीक्षित करता हुआ, संसाररूपी कूप में पडनेवाले प्राणियों को त्राण करने का आश्वासन देने वाले जिनशासन की महिमा बढाता हुआ समस्त जगत् को जिनशासन का रसिक—अनुरागी बनाता हुआ मिथ्यात्व की उत्थापना

"ભગવન્! ધર્મકથાથી જીવને શું લાભ થાય છે?

ઉત્તર—ધર્મકથાથી જીવને નિર્જરાની પ્રાપ્તિ થાય છે, ધર્મકથાથી જીવ પ્રવચનની પ્રભાવના કરે છે, પ્રવચનની પ્રભાવનાથી આગળ શુભ કર્મોનો બંધ કરે છે."

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકારની ધર્મકથાથી ઉત્પન્ન થનારા આનન્દની ધારાઓના તરંગોથી જેનું અંતઃકરણ ઉલ્લાસને પ્રાપ્ત થયું છે, એવા અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય-ધર્મકથા કરવાવાળા પુરૂષ જન્મ. જરા અને મરણરૂપી ભયાનક અને વિશાલ મગર-મચ્છોથી વ્યાપ્ત એ પ્રમાણે ઇષ્ટ-વિયોગ અને અનિષ્ટ-સંયોગરૂપી વડવાનલથી સહિત અપાર સંસારસાગરથી પોતે પણ પાર ઉતરે છે, અને બીજાને પણ પાર ઉતારે છે.

सम्यक्त्वमुपस्थापयन्, कर्मकोटिं क्षपयति। उत्कृष्टरसायनपरिणाममसौ लभेत चेत्, त्रैलोक्यपवित्रं तीर्थङ्करनामगोत्रं समुपार्जयति।

अपि चासौ स्वतःप्रकाशस्वभावस्यापि जिनशासनस्य मिथ्यात्वादि-तिमिरावृतदेशकालादिषु यथोचितप्रचारलक्षणाराधनतः प्रभावकपदं बिभर्ति। उक्तञ्च—

"पावयणी धम्मकही, वाई लद्धीसरो तवस्सी य।
विज्जासिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया॥ १"

और सम्यक्त्व की उपस्थापना करता हुआ कर्मकोटि को खपाता है। कदाचित् परिणाम में उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह त्रिलोक में पवित्र तीर्थङ्कर गोत्र का भी उपार्जन करता है।

जिन भगवान का शासन स्वतः उज्ज्वल है, तथापि जिस देशविशेष और काल विशेष में मिथ्यात्व का अन्धकार फैल जाता है, वहां भगवान के शासन का प्रचाररूप आराधन करके धर्मकथाकार प्रभावक पद प्राप्त करता है। कहा भी है :—

"**प्रभावक आठ प्रकार के हैं** :— (१) प्रावचनिक, (२) धर्मकथी, (३) वादी, (४) लब्धियों का स्वामी, (५) तपस्वी, (६) विद्यावान्–रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या के धारक, (७) सिद्ध–वचनसिद्धि आदि सिद्धियों वाला, (८) कवि"।

તે ધર્મકથા કહેનાર અનેક–અનેક ભવ્ય જીવોને દીક્ષિત કરે છે અને સંસાર રૂપી કુવામાં પડવાવાળા પ્રાણીઓને રક્ષણ કરવાનું આશ્વાસન દેવાવાળા જિનશાસનનો મહિમા વધારતા થકા સમસ્ત જગતને જિનશાસનમાં પ્રીતિવાળા બનાવી મિથ્યાત્વ નિવારણ અને સમ્યકત્વની સ્થાપના કરી કર્મકોટીને ખપાવે છે. કદાચિત્ પરિણામમાં ઉત્કૃષ્ટ રસાયન આવી જાય તો ત્રિલોકમાં પવિત્ર તીર્થંકર ગોત્રની પણ પ્રાપ્તિ કરે છે.

જિન ભગવાનનું શાસન પોતે ઉજ્જવલ છે તો પણ જે દેશવિશેષ અને કાલ-વિશેષમાં મિથ્યાત્વનો અંધકાર ફેલાઈ જાય છે, ત્યાં ભગવાનના શાસનપ્રચારરૂપ આરાધન કરીને ધર્મકથાકાર "પ્રભાવક"નું પદ પ્રાપ્ત કરે છે. કહ્યું પણ છેઃ-

"પ્રભાવક આઠ પ્રકારના છે. (૧) પ્રાવચનિક, (૨) ધર્મકથાકાર (૩) વાદી, (૪) લબ્ધિઓનો ધણી, (૫) તપસ્વી, (૬) વિદ્યાવાન્–રોહિણી–પ્રજ્ઞપ્તિ આદિ વિદ્યાના ધારક, (૭) સિદ્ધ–વચનસિદ્ધિઆદિસિદ્ધિઓવાળા, (૮) કવિ" ॥ ૧ ॥

अथ धर्ममहिमोच्यते—

"जम्मंतरेवि सुलहा, पिउभाउसुयाइया।
परंतु सुयचारित्त,-धम्मो णो सुलहो भुवि ॥ १ ॥
बारसंगावणे धम्मं, णिच्छयव्ववहारिणो।
लहंते संजया भव्वा, भत्तिपण्णेण नन्नहा ॥ २ ॥

संस्कृतच्छाया—

जन्मान्तरेऽपि सुलभा,-पितृ-भ्रातृ-सुतादयः।
परन्तु श्रुतचारित्र,-धर्मो न सुलभो भुवि ॥ १ ॥
द्वादशाङ्गापणे धर्मं, निश्चयव्यवहारिणः।
लभन्ते संयता भव्या,-भक्तिपण्येन नान्यथा ॥ २ ॥
तथा-विना सिद्धाञ्जनं भूमि,-निधानं नैव लभ्यते

धर्म-महिमा —

"पिता, भ्राता और पुत्र आदि तो जन्मान्तर में-आगामी भव में-भी सुलभ हैं किन्तु संसार में श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नहीं है" ॥ १ ॥

"द्वादशाङ्गीरूपी दुकान में निश्चयनय और व्यवहारनय को जानने वाले संयमी पुरुष भक्तिरूपी मूल्य चुकाकर धर्म प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे किये विना धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती" ॥ २ ॥

ધર્મમહિમા—

"પિતા ભાઈ અને પુત્ર વગેરે તો આગલા ભવમાં-હવે પછીના ભવમાં પણ સુલભ છે, પરન્તુ સંસારમાં શ્રુત-ચારિત્ર ધર્મ સુલભ નથી" ॥ ૧ ॥

"દ્વાદશાંગીરૂપી દુકાનમાં નિશ્ચયનય અને વ્યવહારનયને જાણવાવાળા સંયમી પુરુષ ભક્તિરૂપી મૂલ્ય આપીને ધર્મ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. એમ કર્યા વિના ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી." ॥ ૨ ॥

विणा सिद्धंजणं भूमि,-णिहाणं णेव लब्भइ ।
सुयचारित्तधम्मेण, विणा णो णाणमप्पणो ॥ ३ ॥
अप्पणाणं विणा णेव, तत्तातत्तविणिच्छओ ।
तं विणा णेव भव्वाणं, जायएऽमियभावणा ॥ ४ ॥
विसुद्धज्झाणसंपत्ती, णंतराऽमियभावणं ।
विणा विसुद्धझाणं णो, खवगस्सेणिरप्पई ॥ ५ ॥
अन्नोवाएण केणावि,-खवगस्सेणिणा विणा ।
बितीयपाओ सुक्कस्स, झाणस्स नहि लब्भई ॥ ६ ॥

छाया—

श्रुतचारित्रधर्मेण, विना नो ज्ञानमात्मन ॥ ३ ॥
आत्मज्ञानं विना नैव, तत्त्वाऽतत्त्वविनिश्चयः ।
तं विना नैव भव्यानां, जायतेऽमृतभावना ॥ ४ ॥
विशुद्धध्यानसंप्राप्ति, — र्नान्तराऽमृतभावनाम् ।
विना विशुद्धध्यानं नो, क्षपकश्रेणिराप्यते ॥ ५ ॥
अन्योपायेन केनापि, क्षपकश्रेणिना विना ।
द्वितीयपादः शुक्लस्य, ध्यानस्य नहि लभ्यते ॥ ६ ॥

सिद्धअञ्जन के अभाव में पृथ्वी के भीतर का खजाना नहीं प्राप्त किया जा सकता, इसी प्रकार श्रुत चारित्र के विना आत्मा को सम्यग्ज्ञान नहीं होता ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के अभाव में तत्त्व—अतत्त्व का निश्चय नहीं हो सकता, और तत्त्व अतत्त्व का निश्चय हुए विना भव्य जीवों को अमृतभावना नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

अमृतभावना के अभाव में विशुद्ध ध्यान की प्राप्ति नहीं होती, और विशुद्ध ध्यान के विना क्षपकश्रेणी पर आरोहण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

क्षपक श्रेणी के सिवाय किसी अन्य उपाय से शुक्ल-ध्यान का एकत्ववितर्क अविचार नामक दूसरा पाया नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ६ ॥

સિદ્ધાંજન વિના પૃથ્વીની અંદરનો ખજાનો પ્રાપ્ત કરી શકાતો નથી. એવી જ રીતે શ્રુત–ચારિત્ર વિના આત્મજ્ઞાન થતું નથી. ॥ ૩ ॥

આત્મજ્ઞાનના અભાવથી તત્ત્વ–અતત્ત્વનો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી, અને તત્ત્વ–અતત્ત્વનો નિશ્ચય કર્યા વિના ભવ્ય જીવોને અમૃતભાવના થતી નથી ॥ ૪ ॥

અમૃતભાવનાના અભાવથી વિશુદ્ધ ધ્યાનની પ્રાપ્તિ થતી નથી; અને વિશુદ્ધ

सुक्कज्झाणस्स पायं च, बितीयं पप्प संजमी ।
केवलण्णाणलाहेण, केवलित्ति णिगज्जई ॥ ७ ॥
अवत्था णहि सेलेसी, केवलण्णाणमंतरा ।
भवई समणिंदस्स, सव्वकम्मक्खओ तओ ॥ ८ ॥
सव्वकम्मक्खए सिद्धी,-तओ सिद्धो हि सासओ ।
मोक्खट्ठी सुयचारित्त, - धम्मं तम्हा समायरे ॥ ९ ॥

छाया—

शुक्लध्यानस्य पादं च, द्वितीयं प्राप्य संयमी ।
केवलज्ञानलाभेन, केवलीति निगद्यते ॥ ७ ॥
अवस्था नहि शैलेशी, केवलज्ञानमन्तरा ।
भवति श्रमणेन्द्रस्य, सर्वकर्मक्षयस्ततः ॥ ८ ॥
सर्वकर्मक्षये सिद्धि, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ।
मोक्षार्थी श्रुतचारित्र,-धर्मं तस्मात्समाचरेत् ॥ ९ ॥

संयमी पुरुष शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया प्राप्त करके, केवल ज्ञान प्राप्त करता है और केवली कहलाता है । ॥ ७ ॥

केवल ज्ञान के विना शैलेशी अवस्था प्राप्त नहीं होती । शैलेशी अवस्था जब प्राप्ति हो जाती है तो मुनिराज समस्त कर्मों का क्षय कर डालता है ॥ ८ ॥

समस्त कर्मों का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है । सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध होजाता है, अतःमोक्षार्थी पुरुष को श्रुत—चारित्ररूप धर्म का आचरण करना चाहिये ॥९॥

ધ્યાન વિના ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આરોહણુ થઈ શકતું નથી. ॥ ૫ ॥

ક્ષપકશ્રેણી વિના બીજા કોઈ ઉપાયથી શુકલ ધ્યાનનો એકત્વ-વિતર્ક-અવિચાર નામક બીજો પાયો પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી. ॥ ૬ ॥

સંયમી પુરુષ શુકલ ધ્યાનનો બીજો પાયો પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને કેવલી કહેવાય છે. ॥ ૭ ॥

કેવલજ્ઞાન વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત થતી નથી, શૈલેશી અવસ્થા જ્યારે પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, ત્યારે મુનિરાજ સકલ કર્મોનો ક્ષય કરી નાખે છે. ॥ ૮ ॥

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે, સિદ્ધિ લાભ થયા પછી શાશ્વત સિદ્ધ થાય છે, એ માટે મુક્ષાર્થી પુરુષોએ શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મનું આચરણ કરવું જોઈએ. ॥ ૯ ॥

अथ गणितानुयोगः—

गणितं = संख्यानं तस्यानुयोगो-गणितानुयोगः—

जीवाऽजीवादिषड्द्रव्यतत्पर्यायपरिगणनं गणितानुयोगसाध्यम् । तेन जिनोक्तपदार्थानां यथावस्थितं परिगणनात् सम्यक्त्वशुद्धिस्ततश्चारित्रशुद्धिः ।

पूर्वानुपूर्व्यादीनां भङ्गजालादीनां च परिगणनया चित्तस्थैर्यम्, ततश्च कषायानलप्रशमनम्, तेन चारित्रनैर्मल्यम् ।

अपि च गणितानुयोगेन भगवतः केवलज्ञानादिगुणपर्यायाणामानन्त्यमावेदयति । संख्यानमतिक्रान्तानां तेषां संख्यातुमशक्यता संख्याज्ञानं विना नैव

---

(३) गणितानुयोग—

गणित अर्थात् संख्याका अनुयोग गणितानुयोग कहलाता है ।

जीव, पुद्गल आदि छह द्रव्यों की गणना करने के लिए, तथा द्रव्यों की पर्यायों की गिन्ती करने के लिए गणितानुयोग की आवश्यकता होती है । गणितानुयोगसे जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट पदार्थों की ठीक-ठीक गणना होने से सम्यक्त्व की शुद्धि होती है, और सम्यक्त्व की शुद्धि से चारित्र की शुद्धि होती है ।

पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी तथा अनानुपूर्वी आदि से, तथा भङ्ग-जालों की गणना करनेसे चित्तमें स्थिरता आती है, और चित्तकी स्थिरता से कषायरूपी अग्नि शान्त होती है और उससे चारित्र निर्मल होता है ।

गणितानुयोग ही भगवान के केवलज्ञान आदि गुण एवं पर्यायोंकी अनन्तता को प्रगट करता है, 'संख्यातीत गुणों एवं पर्यायों की संख्या का ज्ञान मुश्किल है' यह बात

---

(૩) ગણિતાનુયોગ—

ગણિત અર્થાત્ સંખ્યાનો અનુયોગ તે ગણિતાનુયોગ કહેવાય છે. જીવ પુદ્ગલ આદિ છ દ્રવ્યોની ગણના કરવા માટે, તથા દ્રવ્યોના પર્યાયોની ગણતરી કરવા માટે ગણિતાનુયોગની આવશ્યકતા હોય છે, ગણિતાનુયોગથી જિન ભગવાન દ્વારા કહેલા પદાર્થોની ઠીક ઠીક ગણના થઈ શકતી હોવાથી સમ્યકત્વની શુદ્ધિ થાય છે, અને સમ્યકત્વની શુદ્ધિથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે.

પૂર્વાનુપૂર્વી પશ્ચાનુપૂર્વી તથા અનાનુપૂર્વી આદિથી, અને ભંગજાળોની ગણના કરવાથી ચિત્તમાં સ્થિરતા આવે છે, અને ચિત્તની સ્થિરતાથી કષાયરૂપી અગ્નિ શાંત થાય છે. અને તેથી ચારિત્ર નિર્મલ થાય છે.

विज्ञातुं शक्यते, तद्धि गणितानुयोगगम्यम् । भगवद्गुणानुस्मरणेन भगवतः स्तुतिः संपद्यते, तया च दर्शनशुद्धिस्ततश्चारित्रशुद्धिः ।

प्रव्रज्याप्रदानादयोऽपि शोभनतिथिनक्षत्रादियुक्तसमय एव विधेया इति तादृशसमयावबोधकतया गणितानुयोगस्यापि चरणप्राप्तिं प्रति साधनता सिद्ध्यति । तथा चास्यापि फलं चारित्ररक्षणमेव ।

अथ प्रसङ्गाज्ज्योतिष्कविषयः किञ्चित्प्रदर्श्यते—
तत्र पूर्वं प्रव्रज्याप्रदानसमयो निर्णीयते—

भी संख्या का ज्ञान किये विना जानी नहीं जा सकती है। भगवान के गुणों का वारंवार स्मरण करने से भगवान की स्तुति होती है, उससे दर्शन–शुद्धि होती है, दर्शन–शुद्धि के होने से चारित्र की शुद्धि होती है ॥

शुभ तिथि तथा शुभ नक्षत्र से युक्त समय में ही दीक्षा आदि देना चाहिए, इस प्रकार के समय का बोध कराने वाला होने से गणितानुयोग भी चारित्रकी प्राप्ति का कारण है, ऐसा सिद्ध होता है, उससे गणितानुयोग का फल भी चारित्र की रक्षा करना ही है।

यहां प्रसङ्ग होनेसे कुछ ज्योतिष का विषय दिखलाया जाता है—

दीक्षादानसमयका निर्णय—

ગણિતાનુયોગ જ ભગવાનના કેવલજ્ઞાન આદિ એ ગુણો એ પ્રમાણે પર્યાયોની અનંતતા પ્રગટ કરે છે. 'સંખ્યાતીત ગુણો અને પર્યાયોની સંખ્યા જાણવી અશક્ય છે' તે વાત પણ સંખ્યાનું જ્ઞાન કર્યા વિના જાણી શકાતી નથી, તે ગણિતાનુયોગ દ્વારા જાણી શકાય છે. ભગવાનના ગુણોનું વારંવાર સ્મરણ કરવાથી ભગવાનની સ્તુતિ થાય છે, અને તેથી દર્શન–શુદ્ધિ થઈ શકે છે, અને દર્શન વિશુદ્ધ થવાથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે.

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્રથી યુક્ત સમયમાં જ દીક્ષા આદિ આપવી જોઈએ, આ પ્રકારના સમયનું જ્ઞાન કરાવવાવાળો હોવાથી ગણિતાનુયોગ પણ ચારિત્રની પ્રાપ્તિનું કારણ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. તેથી ગણિતાયોગનું ફલ પણ ચારિત્રની રક્ષા કરવી એજ છે.

અહીં પ્રસંગથી થોડો જ્યોતિષનો વિષય બતાવવામાં આવે છે—

દીક્ષા આપવાના સમયનો નિર્ણય—

(१) तत्र मासविचारः

पौष-चैत्र-ज्येष्ठा-षाढ-मासान् विहाय शेषा मासाः प्रशस्ताः ।

विशेषतो मासफलमाह-

(१) श्रावणे-शुभम् । (७) माघे-ज्ञानवृद्धिः ।
(२) भाद्रपदे-शिष्यालपता । (८) फाल्गुने-सुख-सौभाग्य-यशोवृद्धिः ।
(३) आश्विने-सुखम् । (९) चैत्रे-अल्पसुखम् ।
(४) कार्त्तिके-विद्यावृद्धिः । (१०) वैशाखे-रत्नत्रयलाभः ।
(५) मार्गशीर्षे-शुभम् । (११) ज्येष्ठे-सामान्यम् , तत्रान्यबलसत्त्वे शुभम् ।
(६) पौषे-विद्यावृद्ध्यभावः । (१२) आषाढे-गुरुबन्धुना सह प्रेमाल्पता ।

---

(१) मास-विचार

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ और आषाढ मास को छोडकर शेष महीनों में दीक्षा देना प्रशस्त है।

विशेष मास-विचार

(१) श्रावण – शुभ । (७) माघ – ज्ञान की वृद्धि
(२) भाद्रपद – शिष्यों कमी । (८) फाल्गुन-सुख-सौभाग्य और यश की वृद्धि
(३) आश्विन – सुख । (९) चैत्र – अल्प सुख
(४) कार्तिक – विद्यावृद्धि । (१०) वैशाख – रत्नत्रय का लाभ
(५) मार्गशीर्ष – शुभ । (११) ज्येष्ठ – साधारण, यह मास दूसरे नक्षत्र आदि का बल हो तो शुभ है ।
(६) पौष-विद्यावृद्धि का अभाव। (१२) आषाढ-गुरुभाइयों के साथ प्रेम की कमी ।

---

(१) માસ-વિચાર—

પોષ, ચૈત્ર, જેઠ અને આષાઢ માસને ત્યજીને બાકીના બીજા મહિનાઓ દીક્ષા આપવા માટે ઉત્તમ છે.

વિશેષ માસ-વિચાર—

(૧) શ્રાવણ—શુભ. (૭) માઘ-જ્ઞાનની વૃદ્ધિ.
(૨) ભાદ્રપદ—શિષ્યોની કમી. (૮) ફાલ્ગુન—સુખ સૌભાગ્ય અને યશની વૃદ્ધિ.
(૩) આસો—સુખ. (૯) ચૈત્ર-અલ્પ સુખ.
(૪) કાર્તિક—વિદ્યાવૃદ્ધિ. (૧૦) વૈશાખ—રત્નત્રયનો લાભ.
(૫) માર્ગશીર્ષ—શુભ. (૧૧) જેઠ-સાધારણ, આમાસમાં બીજા નક્ષત્ર વગેરેનું બલ હોય તો શુભ છે.
(૬) પોષ-વિદ્યાવૃદ્ધિનો અભાવ. (૧૨) અષાઢ-ગુરૂભાઇઓની સાથે પ્રેમની કમી.

(२) पक्ष–विचारः—

कृष्णपक्षे–प्रतिपद आरभ्य पञ्चमीं यावत्तिथयः शुभाः । षष्ठीतः समारभ्य दशमीं यावत्तिथयो मध्यमाः । एकादशीतः प्रारभ्यामावास्यां यावदशुभाः ।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः । षष्ठीतो दशमीं यावन्मध्यमाः । एकादशीतः समारभ्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः ।

(४) तिथि–विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता ।

---

(२) पक्ष–विचार—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं । षष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथियां मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथियां हैं ।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ हैं, षष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथियां शुभ हैं ।

(३) तिथि–विचार—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं ।

---

(२) પક્ષ-વિચાર—

કૃષ્ણ પક્ષમાં પડવેથી પાંચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે. છઠ્ઠથી લઈને દશમ સુધીની તિથિઓ મધ્યમ છે, અને એકાદશી-અગીયારસથી લઈને અમાવાસ્યા સુધીની તિથિઓ અશુભ છે.

શુકલ પક્ષમાં-પડવેથી લઈને પાંચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે. છઠ્ઠથી દશમી સુધી મધ્યમ છે, અને એકાદશીથી પુનમ સુધીની તિથિઓ શુભ છે.

(૩) તિથિ-વિચાર—

દીક્ષાના વિષયમાં પડવે, ત્રીજ, પાંચમ, સાતમ, એકાદશી અને તેરસ, આ તિથિઓ ઉત્તમ છે.

नव तिथयश्च वर्जनीयाः—

(१) शुक्ला चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा। (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी।

(४) वार-विचारः—

रवि – चन्द्र – बुध – गुरु – वाराः प्रशस्ताः

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि- (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरः, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्तः (७) अनुराधा, (८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) श्रवणम्, (१२) उत्तरभाद्रपदा, (१३) रेवती।

नौ तिथियां त्याज्य हैं—

(१)-शुक्ला चतुर्दशी, (२)-अमावास्या, (३)-जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो वह, (४)-द्वितीया (५)-चतुर्थी (६)-षष्ठी (७)-अष्टमी (८)-नवमी (९)-द्वादशी।

(४) वार-विचार—

रवि, सोम, बुध, गुरु, और शनिवार प्रशस्त हैं।

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा के विषय में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं। (१)-अश्विनी, (२)-रोहिणी, (३)-मृगशीर्ष, (४)-पुष्य. (५)-उत्तराफाल्गुनी (६)-हस्त, (७)-अनुराधा, (८)-ज्येष्ठा, (९)-उत्तराषाढा, (१०)-अभिजित्, (११)-श्रवण, (१२)-उत्तराभाद्रपद, (१६)-रेवती।

નવ તિથિઓ ત્યાજ્ય છે—

(૧) શુકલ ચતુર્દશી, (૨) અમાવાસ્યા (૩) જે તિથિમાં સૂર્ય-સંક્રમણ થાય તે, (૪) દ્વિતીયા, (૫) ચતુર્થી, (૬) ષષ્ઠી, (૭) અષ્ટમી (૮) નવમી (૯) દ્વાદશી

(૪) વાર વિચાર—

રવિ, સોમ, બુધ, ગુરૂ અને શનિવાર ઉત્તમ છે.

(૫) નક્ષત્ર-વિચાર—

દીક્ષાના વિષયમાં તેર નક્ષત્ર ઉત્તમ છેઃ— (૧) અશ્વિની, (૨) રોહિણી, (૩) મૃગશીર્ષ, (૪) પુષ્ય, (૫) ઉત્તરાફાલ્ગુની, (૬) હસ્ત, (૭) અનુરાધા (૮) જ્યેષ્ઠા (૯) ઉત્તરાષાઢા, (૧૦) અભિજિત (૧૧) શ્રવણ (૧૨) ઉત્તરભાદ્રપદ, (૧૩) રેવતી.

नक्षत्रेषु सप्त दोषाः सन्ति, यथा-

(१) संध्यागतम्-यत्र नक्षत्रे सूर्योऽनन्तरं स्थास्यति तादृशं नक्षत्रम्। यथा हस्ते रविर्वर्त्तते चेत् तदा दैनिकं चित्रानक्षत्रं संध्यागतं बोध्यम्।

(२) रविगतम्- यत्र रविस्तिष्ठति तादृशं दैनिकं नक्षत्रं रविगतं बोध्यम्।

(३) दुर्गतम्-यत्रोन्मार्गगामी-वक्री ग्रहो भवति, तादृशं नक्षत्रम्।

(४) सग्रहम्-यत्र क्रूरो ग्रहस्तिष्ठति, तादृशं नक्षत्रम्।

(५) विलम्बितम्-सूर्येण परिभुज्य मुक्तं नक्षत्रम्।

(६) राहुगतम्-यत्र चन्द्र-सूर्योपरागः संजातस्तादृशं नक्षत्रम्। ईदृशे नक्षत्रे षण्मासान् यावत् प्रव्रज्या न देया।

नक्षत्रों में सात दोष

(१) सन्ध्यागत--जिस नक्षत्र में सूर्य आगे जाने वाला है वह नक्षत्र। जैसें--अगर हस्त नक्षत्र में सूर्य हो तो दैनिक चित्रा नक्षत्र सन्ध्यागत कहलाता है।

(२) रविगत--जिस नक्षत्र में रवि हो, वह दैनिक नक्षत्र रविगत जानना चाहिए।

(३) दुर्गत--जिस में उन्मार्गगामी-वक्र ग्रह हो वह नक्षत्र दुर्गत कहलाता है।

(४) सग्रह--जिस नक्षत्र में क्रूर ग्रह हो।

(५) विलम्बित--सूर्य--द्वारा भोग कर छोडा हुआ नक्षत्र।

(६) राहुगत--जिस नक्षत्र में चन्द्र--ग्रहण या सूर्य--ग्रहण हुआ हो। ऐसे नक्षत्र में छह मास तक दीक्षा देना वर्जनीय है।

નક્ષત્રમાં સાત દોષ—

(૧) સંધ્યાગત-જે નક્ષત્રમાં સૂર્ય આગળ આવવાવાળો છે તે નક્ષત્ર, જેવી રીતે કે હસ્ત નક્ષત્રમાં સૂર્ય હોય તો દૈનિક ચિત્રા નક્ષત્ર સંધ્યાગત કહેવાય છે.

(૨) રવિગત-જે નક્ષત્રમાં રવિ હોય તે દૈનિક નક્ષત્ર રવિગત જાણવું જોઇએ.

(૩) દુર્ગત-જેમાં ઉન્માર્ગગામી-વક્ર-ગ્રહ હોય તે નક્ષત્ર દુર્ગત કહેવાય છે.

(૪) સગ્રહ-જે નક્ષત્રમાં ક્રૂર ગ્રહ હોય.

(૫) વિલમ્બિત-સૂર્યદ્વારા ભોગવીને છુટું કરાયેલું નક્ષત્ર.

(૬) રાહુગત-જે નક્ષત્રમાં ચંદ્રગ્રહણ અથવા સૂર્યગ્રહણ થયું હોય. એવા નક્ષત્રમાં છ માસ સુધી દીક્ષા આપવી વર્જનીય છે.

(७) ग्रहभिन्नम्-यत्र त्रयो ग्रहास्तिष्ठन्ति तादृशं नक्षत्रम् ।

(६) योग-विचारः—

योगास्तु नाम्नैव शुभाशुभफलाः, यथा-विष्कम्भादिषु दैनिकयोगेषु प्रीत्यादयः शुभफलाः, विष्कम्भादयोऽशुभफलाः । आनन्दादिषु सांयोगिकेषुवारनक्षत्र-संयोगजनितेषु योगेषु आनन्दादयः शुभाः, कालदण्डादयोऽशुभाः ।

(७) अथ करण-विचारः-

करणानि एकादश सन्तिः यथा-(१) बवम्, (२) बालवम्, (३) कौलवम्,

---

(७) ग्रह-भिन्नजिस में तीन ग्रह हों ऐसा नक्षत्र ।

(६) योग-विचार—

योगों के नामसे ही शुभ अशुभ फल प्रतीत हो जाता है । जैसे-विष्कम्भ, आदि दैनिक योगो में से प्रीति आदि योग शुभफल वाले, और विष्कम्भ आदि योग अशुभ फल वाले हैं । आनन्द आदि सांयोगिक (वार नक्षत्र के संयोग से बनने वाले) योगो में से आनन्द आदि योग शुभफलदाता हैं, और कालदण्ड आदि अशुभफलदायक हैं ।

(७) करण-विचार

करण ११ ग्यारह होते हैं, जैसे—(१) बव, (२) बालव, (३) कौलव,

---

(७) ગ્રહભિન્ન-જેમાં ત્રણ ગ્રહો હોય, એવું નક્ષત્ર.

(૬) યોગ-વિચાર—

યોગોના નામથી જ શુભ-અશુભ ફળની પ્રતીતિ થઈ જાય છે. જેમકેઃ-વિષ્કંભ આદિ દૈનિક યોગોમાંથી પ્રીતિ આદિ શુભ ફળવાળાં છે, અને વિષ્કંભ આદિ યોગ તે અશુભ ફળ આપનારા છે. આનન્દ આદિક સાંયોગિક (વાર-નક્ષત્રના સંયોગથી બનવાવાળા) યોગોમાં આનન્દ આદિ યોગ શુભ ફળ દેનારા છે, અને કાળદંડ આદિ અશુભ ફળ આપનારા છે.

(૭) કરણુ-વિચાર—

કરણુ અગિઆર હોય છે. (૧) બવ (૨) બાલવ (૩) કૌલવ (૪) શ્રીવિલોચન

(४) स्त्रीविलोचनम्, इदं तैतिलमिति, केचिदाहुः (५) गरादि, इदं गरमित्याहुरन्ये, (६) वणिजम्, (७) विष्टिः, (८) शकुनिः, (९) चतुष्पदं, (१०) नागम्, (११) किंस्तुघ्नम्, इति।

अत्र बवादिविष्ट्यन्तानि सप्त करणानि चराणि, शकुन्यादीनि चत्वारि स्थिराणि वेदितव्यानि।

बवादिविष्टघन्तानां सप्तानां कस्यांश्चिदेकस्यां तिथौ नियमतः स्थित्यभावात्तानि सप्त चराणि, शकुन्यादीनां कृष्णपक्षीयचतुर्दश्यमावस्याशुक्लप्रतिपत्तिथिषु नियतस्थित्या तानि चत्वारि स्थिराणि प्रोच्यन्ते। स्पष्टं चेदं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ सप्तमवक्षस्कारे। उक्तञ्च तत्र-"एएसिणं भंते! एक्कारसण्हं करणाणं कइ करणा चरा?

(४) स्त्रीविलोचन (कोई कोई इसे 'तैतिल' भी नहते हैं), (५) गरादि ('गर' नाम भी है), (६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किंस्तुघ्न।

इन ग्यारह करणो में बव से लेकर विष्टि तक सात करण चर हैं, और अन्त के शकुनि आदि चार स्थिर हैं।

बव से लेकर विष्टि तक सात करण किसी एक तिथि में नियम से नहीं रहते इस कारण ये चर कहलाते हैं, शकुनि आदि अन्तिम चार करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अमावास्या तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में नियम से होते हैं, अत एव ये स्थिर कहलाते हैं। इस विषय का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में स्पष्ट रूप से विवेचन किया

(કોઈ કોઈ એને 'તૈતિલ' પણ કહે છે) (૫) ગરાદિ (તેનું 'ગર' નામ પણ છે) (૬) વણિજ (૭) વિષ્ટિ (૮) શકુનિ (૯) ચતુષ્પદ (૧૦) નાગ (૧૧) કિંસ્તુઘ્ન.

આ અગિયાર કરણોમાં બવથી લઈને વિષ્ટિ સુધી સાત કરણ ચર છે; અને છેલ્લા શકુનિ આદિ ચાર સ્થિર છે.

બવથી લઈને વિષ્ટિ સુધીના સાત કરણ કોઈ એક તિથિમાં નિયમિત રહેતા નથી તે કારણથી તેને ચર કહે છે; શકુનિ આદિ છેલ્લાં ચાર, કૃષ્ણ પક્ષની ચૌદસ, અમાવાસ્યા તથા શુકલ પક્ષની પ્રતિપદા-પડવો તિથિમાં નિયમિત રહે છે એટલે તે સ્થિર કહેવાય છે. આ વિષયનું વિવેચન જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિના સાતમા વક્ષસ્કારમાં સ્પષ્ટ

कइ करणा स्थिरा पण्णत्ता ?, गोयमा सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता ।" इत्यादि ।

तत्र दिवाशब्देन तिथेः पूर्वार्द्धभागः, रात्रिशब्देन तिथेरुत्तरार्द्धभागो गम्यते ।

एकादशसु करणेसु बवम् , बालवम् , कौलवम् , वणिजम्, एतानि चत्वारि शुभफलानि ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं भद्रा । इयं दीक्षादौ वर्जनीया । उक्तञ्च-
"यदि भद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिद्ध्यति ।

गया है । वहां कहा है —

"हे भदन्त ! इन ग्यारह करणों में कितने करण चर और कितने करण स्थिर कहे गये हैं ?, हे गौतम ! सात करण चर और चार करण स्थिर कहे गये हैं ।" इत्यादि ।

यहां दिन शब्द का अर्थ है—तिथिका पूर्वार्ध भाग और रात्रि शब्द का अर्थ है—तिथि का उत्तरार्ध भाग ।

इन ग्यारह करणों में से बव, बालव, कौलव, और वणिज, ये चार करण शुभ फल दायक हैं ।

विष्टि करण का दूसरा नाम भद्रा, है । दीक्षा आदि कार्यों में यह वर्जनीय है । कहा भी है —

રૂપથી કરેલું છે, ત્યાં કહ્યું છેઃ—

"હે ભદંત ! આ અગ્યાર કરણોમાં કેટલા કરણ ચર અને કેટલા કરણ સ્થિર કહેવામાં આવ્યા છે ?, હે ગૌતમ ! સાત કરણ ચર અને ચાર કરણ સ્થિર કહેવામાં આવ્યા છે" ઈત્યાદિ.

આ સ્થળે દિન શબ્દનો અર્થ છે કે–તિથિનો પૂર્વાર્ધ ભાગ, અને રાત્રી શબ્દનો અર્થ છે કે–તિથિનો ઉત્તરાર્ધ ભાગ.

એ અગિયાર કરણોમાંથી બવ, બાલવ, કૌલવ અને વણિજ, આ ચાર કરણ શુભફલદાયક છે.

વિષ્ટિકરણનું બીજું નામ ભદ્રા છે. દીક્ષા આદિ કાર્યોમાં તે ભદ્રા ત્યજવા યોગ્ય છે. કહ્યું પણ છે—

मासे तु षोडशे मासे, समूलं तद्विनश्यति ॥ १ ॥" इति ।

शुक्लपक्षे भद्रा चतुर्थ्यामेकादश्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, अष्टम्यां पूर्णिमायां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति, कृष्णपक्षे तु सा तृतीयायां दशम्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, सप्तम्यां चतुर्दश्यां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति।

तत्र तिथिपश्चार्द्धभागस्थायिनी भद्रा दिवसं व्याप्नोति, तथा तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी रात्रिं व्याप्नोति चेत्तदा न दोषावहा ।

भद्रायास्त्रिंशद्घटिकामानेन पश्चिमं घटिकात्रयं पुच्छमित्यभिधीयते। तद् भद्रापुच्छं शुभम् ।

"भद्रा करण में किया हुआ कार्य प्रथम तो सिद्ध ही नहीं होता, कदाचित् सिद्ध भी होजाय तो सोलहवाँ महीना आने पर उसका समूल विनाश हो जाता है" ॥१॥

भद्रा शुक्लपक्ष में चौथ तथा एकादशी तिथि के उत्तरार्ध में रहती है, और अष्टमी तथा पूर्णिमा के दिन तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के दिन तिथि के उत्तरार्ध में और सप्तमी एवं चतुर्दशी को तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

तिथि के उत्तरार्ध में रहने वाली भद्रा दिनको व्याप्त करती हो और पूर्वार्धभाग में रहने वाली रात्रिको व्याप्त करती हो तो कोई दोष नहीं है ।

तीस घडीकी भद्रा की अन्तिम तीन घडियाँ पूंछ कहलाती हैं । भद्राकी यह पूंछ शुभ है ।

"ભદ્રા કરણમાં કરેલું કામ પ્રથમ તો સિદ્ધ થતું નથી, કદાચિત્ સિદ્ધ પણ થાય તો સોળમો મહિનો આવતાં તેનો સમૂળ વિનાશ થાય છે." ॥ ૧ ॥

ભદ્રા શુકલ પક્ષમાં ચોથ તથા એકાદશી તિથિના ઉત્તરાર્ધમાં રહે છે, અને આઠમ તથા પૂનમના દિવસે તિથિના પૂર્વાર્ધમાં રહે છે.

કૃષ્ણપક્ષમાં ત્રીજ અને દશમીના દિન તિથિના ઉત્તરાર્ધમાં અને સાતમ તથા ચૌદશના દિન તિથિના પૂર્વાર્ધમાં રહે છે.

તિથિના ઉત્તરાર્ધમાં રહેવાવાળી ભદ્રા દિવસને વ્યાપ્ત કરતી હોય, અને પૂર્વાર્ધ ભાગમાં રહેવાવાળી રાત્રીને વ્યાપ્ત કરતી હોય તો કોઈ દોષ નથી.

ત્રીશ ઘડીની ભદ્રાની છેલ્લી ત્રણ ઘડીઓ પૂંછ કહેવાય છે; અને ભદ્રાની તે પૂંછ શુભ છે.

शकुनि-चतुष्पद-नाग-किंस्तुघ्ननामानि करणानि तु कृष्णचतुर्दश्यमावास्या-शुक्लप्रतिपद्योगभावित्वात्त्याज्यानि। अवशिष्टे द्वे करणे स्त्रीविलोचनगरादिसञ्ज्ञके सामान्ये, इति साम्प्रदायिकाः।

यत्तु गणिविद्याप्रकीर्णककृतश्चतुष्पदं नागं चेति द्वे करणे निष्क्रमणे प्रशंसन्ति, यथा—"नागे चउप्पए यावि, सेहनिक्खमणं करे" इति।

तन्न समीचीनम्, निष्क्रमणेऽमावास्यायाः प्रतिषिद्धत्वेन नियमतस्तद्योग-भाविनोस्तयोः प्राशस्त्याऽसंभवात्।

शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न नामक करण कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी, अमावास्या, शुक्लपक्षकी प्रतिपदा के योगसे भावित होने के कारण त्याज्य हो जाते हैं। शेष दो करण स्त्रीविलोचन और गरादि नामक साधारण हैं। परम्परा को जानने वालों का यह मत है।

गणिविद्याप्रकीर्णककारने दीक्षा के विषय में चतुष्पद और नाग नामक दो करण प्रशस्त माने हैं, उन्हों ने कहा है कि-"**नागे चउप्पए यावि सेहनिकखमणं करे**" अर्थात् नाग और चतुष्पद नक्षत्र में निष्क्रमण करना चाहिये, अर्थात् शिष्यको दीक्षा देना चाहिए, उनका यह कथन समीचीन नहीं है, कारण यह है कि निष्क्रमण में अमावास्या निषिद्ध मानी गई है, इसीलिये अमावास्या के योग से भावित उक्त दोनों करणों का प्रशस्त होना असम्भव है।

શકુનિ, ચતુષ્પદ, નાગ અને કિંસ્તુઘ્ન નામના કરણ કૃષ્ણ પક્ષની ચૌદશ, અમાવાસ્યા, શુકલ પક્ષના પડવાના યોગથી ભાવિત હોવાથી ત્યાજ્ય બની જાય છે. બાકી બે કરણ સ્ત્રીવિલોચન અને ગરાદિ નામના સાધારણ છે. પરમ્પરા જાણવા-વાળાનો આ પ્રમાણે મત છે.

ગણિવિદ્યાપ્રકીર્ણકકારે દીક્ષાના વિષયમાં ચતુષ્પદ અને નાગ નામના બે કરણોને ઉત્તમ માન્યા છે. તેણે કહ્યું છે કેઃ-"**नागे चउप्पए यावि सेहनिक्खमणं करे**" નાગ અને ચતુષ્પદ નક્ષત્રમાં નિષ્ક્રમણ કરવું જોઈએ, અર્થાત્ શિષ્યને દીક્ષા આપવી જોઈએ. તેમનું આ કથન બરાબર નથી, કારણ એ છે કે-નિષ્ક્રમણમાં-દીક્ષામાં-અમાવાસ્યા નિષિદ્ધ માની છે, એટલા માટે અમાવાસ્યાના યોગથી ભાવિત ઉપર કહેલા બન્ને કરણો ઉત્તમ હોય તે વાત અસંભવ છે.

अथ लग्नविचारः-

निष्क्रमणे मिथुन-सिंह-कन्या-वृश्चिक-धनु-मकर-कुम्भ-मीनानि लग्नानि शुभानि । अन्यानि चत्वारि वर्जनीयानि ।

(९) ग्रहविचारः-

दीक्षालग्ने शनश्चरं मध्यमबलं, गुरुं बलीयांसं, शुक्रं बलहीनं विधाय दीक्षा देया । द्वितीये, पञ्चमे, षष्ठे, सप्तमे, एकादशे स्थाने शनिर्मध्यमबली भवति । त्रिकोणे केन्द्रे एकादशे च स्थानेऽवस्थितो गुरुर्बलीयान् भवति । तृतीये, षष्ठे, नवमे, द्वादशे च स्थाने स्थितः शुक्रो बलहीनो भवति, अत एव शुक्रास्तेऽपि दीक्षा ग्राह्येति संप्रदायविदः ।

---

(८) लग्न-विचार—

दीक्षा अङ्गीकार करने में-मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन, लग्न शुभ हैं। शेष चार वर्जनीय हैं ।

(९)ग्रह-विचार—

दीक्षालग्न में शनैश्चर मध्यम बल वाला, गुरु बलशाली और शुक्र बलहीन हो तो दीक्षा देनी चाहिए । दूसरे पांचवें, छठे, सातवें और ग्यारहवें स्थान में शनि मध्यम बल वाला होता है । त्रिकोण में केन्द्र में और ग्यारवें स्थान में रहा हुआ गुरु (बृहस्पति) बलशाली समझा जाता है । तीसरे, छठे, नौवें और ग्यारहवें स्थान में स्थित शुक्र निर्बल होता है । अत एव शुक्र का अस्त होने पर भी दीक्षा ग्रहण करना प्रशस्त माना गया है, ऐसा कई आचार्यों का कथन है ।

---

(૮) લગ્ન-વિચાર—

દીક્ષા અંગીકાર કરવામાં મિથુન, સિંહ, કન્યા, વૃશ્ચિક, ધનુ, મકર, કુંભ અને મીન-લગ્ન શુભ છે. બાકીના ચાર ત્યાજ્ય છે.

(૯) ગ્રહ-વિચાર—

દીક્ષાલગ્નમાં શનૈશ્ચર મધ્યમ બળવાળો ગુરૂ બલશાળી અને શુક્ર બલહીન હોય તો દીક્ષા આપવી જોઇએ, બીજા, પાંચમા, છઠા, સાતમા અને અગિઆરમા સ્થાનમાં શનિ મધ્યમ બળવાળો હોય છે, ત્રિકોણમાં કેન્દ્રમાં અને અગિઆરમા સ્થાનમાં રહેલો ગુરુ (બૃહસ્પતિ) બળશાલી સમજવામાં આવે છે.

चन्द्रतो लग्नतश्च सप्तमे स्थाने रविकुजभार्गवास्त्याज्याः, तत्र त्रयाणां संगमे दीक्षणीयः प्रतिपाती भवति। एषु त्रिषु द्वावन्यतमो वा तत्र तिष्ठति चेत्तदा कुशीलः क्रोधादिवशगश्च भवति। यदि सप्तमं स्थानं रिक्तं, चन्द्रश्च ग्रहान्तरवर्जितस्तदा दीक्षा शुभा। यदि चन्द्रस्य गुरु-बुधयोरन्यतरेण संगमस्तर्हि शुभम्।

(१०) अथ त्वरितकर्त्तव्यदीक्षासमयनिरूपणम्।

(क) सिद्धच्छायालग्नम्।

चन्द्रमासे तथा लग्न से सातवें स्थान पर सूर्य, कुज (मङ्गल) भार्गव, (शुक्र) हों तो त्याज्य हैं। अगर इन तीनों का सङ्गम हो तो दीक्षा लेने वाला प्रतिपाती (पडिवाई) हो जाता है। अगर इन तीनों में से दो अथवा कोई भी एक वहां हो तो दीक्षा लेने वाला कुशील और क्रोध आदि दुर्गुणों का धारक होता है। अगर चन्द्र दूसरे ग्रहों से वर्जित हो तो दीक्षा शुभ समझनी चाहिए। अगर गुरु और बुध में से किसी एक के साथ चन्द्रमाका सङ्गम हो तो शुभ है।

(१०) तुरन्त दीक्षा देनेका समय—

(क) सिद्धच्छाया-लग्न—

त्रीजा, छठा, नवमा अने अगिआरमा स्थानमां स्थित शुक्र निर्बल होय छे, तेथी करी शुक्र अस्त होय तो पण दीक्षा ग्रहण करवी ते उत्तम मानवामां आव्युं छे. एवो कोई आचार्यनो मत छे.

चंद्रमाथी तथा लग्नथी सातमा स्थानमां सूर्य, मंगल शुक्र होय तो त्याज्य छे. अथवा ए त्रणेयनो संगम होय तो दीक्षा लेनार प्रतिपाती (पडिवाई) थई जाय छे, अथवा ए त्रणमांथी बे अथवा कोई पण एक त्यां होय तो दीक्षा लेवावाळो कुशील अने क्रोध आदि दुर्गुणोनो धारण करनार बने छे, अथवा चन्द्र तथा लग्नथी सातमुं स्थान खाली होय अथवा चंद्रमा बीजा ग्रहोथी वर्जित होय तो दीक्षा शुभ समजवी जोईए, अथवा गुरु अने बुधमांथी कोई पण एकनी साथे चंद्रनो संगम होय तो शुभ छे.

(१०) तुरत दीक्षा आपवानो समय—

(क) सिद्धछायालग्न—

शुभतिथिवारनक्षत्रलग्नादीनामभावे त्वरितकर्त्तव्येषु कार्येषु सिद्धच्छायालग्न-मुपादेयम् ।यदि समतलभूमौ स्वशरीरच्छाया चन्द्र-शुक्र-शनि-वासरेषु सार्द्धाऽष्टपद-प्रमाणा, भौमे नवपदप्रमाणा, बुधेऽष्टपदप्रमाणा, रवावेकादशपदप्रमाणा, गुरौ सप्त-पदप्रमाणा भवेत्तदा सा सिद्धच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादिशुभकार्यं विधेयम् । अस्मिन् सिद्धच्छायालग्ने संप्राप्ते तिथिवारनक्षत्रभद्रालग्नादिचिन्तनमनाव-श्यकम् । उक्तञ्च-

---

शुभ तिथि, वार; नक्षत्र और लग्न आदि के अभाव में तुरन्त करने योग्य कार्यों में सिद्धच्छायालग्न ही उपादेय है ।

समतल भूमि पर अपने शरीर की छाया सोमवार, शुक्रवार, और शनिवार, के दिन साढे आठ पैर बराबर हो, मङ्गलवार को नौ पैर बराबर हो, बुधवार को आठ पद प्रमाण हो, रविवार को ग्यारह पद प्रमाण हो, और गुरुवार को सात पैर छाया हो तो उसे सिद्धच्छाया लग्न कहते हैं, उस में दीक्षा आदि शुभ कार्य किये जा सकते हैं । यह सिद्धच्छायालग्न प्राप्त हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा और लग्न आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है । कहा भी है —

શુભ તિથિ, વાર, નક્ષત્ર અને લગ્ન આદિના અભાવમાં તુરત કરવા યોગ્ય કાર્યોમાં સિદ્ધછાયાલગ્ન જ ગ્રહણુ કરવા યોગ્ય છે.

સમતલ ભૂમિ ઉપર પોતાના શરીરની છાયા, સોમવાર શુક્રવાર અને શનિવારના દિવસે સાડા આઠ પગ પ્રમાણુ હોય, મંગળવારના દિવસે નવ પગ પ્રમાણુ હોય, બુધવારે આઠ પગ પ્રમાણુ, રવિવારે અગિઆર પગ, ગુરૂવારે સાત પગલાં છાયા હોય તો તેને સિદ્ધ છાયાલગ્ન કહે છે. આ લગ્નમાં દીક્ષા આદિ શુભ કાર્ય કરી શકાય છે. આ સિદ્ધછાયાલગ્ન પ્રાપ્ત હોય તો તિથિ, વાર, નક્ષત્ર, ભદ્રા અને લગ્ન આદિના વિચાર કરવાની આવશ્યકતા નથી. કહ્યું પણુ છે—

नक्षत्राणि तिथिर्वारा-स्ताराश्चन्द्रबलं ग्रहाः ।
दुष्टान्यपि शुभं भावं, भजन्ते सिद्धछायया ॥ १ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न वारा न च चन्द्रमाः ।
ग्रहा नोपग्रहाश्चैव, छायालग्नं प्रशस्यते ॥ २ ॥

न योगिनी न विष्टिश्च, न शूलं न च चन्द्रमाः ।
एषा वज्रमयी सिद्धि,-रभेद्या त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

"सिद्धच्छाया लग्न हो तो दूषित तिथि नक्षत्र, वार, तारा, चन्द्र तथा दूषित ग्रह भी शुभफलदायक हो जाते हैं, अर्थात् सिद्धच्छायालग्न की विद्यमानता में नक्षत्र आदि का दोश नहीं माना जाता हैं ॥ १ ॥

एक मात्र छाया लग्न ही उत्तम है, उसकी समानता न तिथि कर सकती है, न नक्षत्र कर सकता है, न वार कर सकता है, न चन्द्रमा, न ग्रह कर सकने हैं और न उपग्रह ही कर सकते हैं ॥ २ ॥

योगिनी उसके सामने कुछ नहीं है, विष्टि (भद्रा) कोई चीज नहीं है, शूल और चन्द्रमा भी उस की विद्यमानता में कुछ भी नहीं बिगाड सकता । सिद्धच्छाया लग्न एक ऐसी बज्रमयी सिद्धि है, जिसे देवता भी नहीं भेद सकते ॥ ३ ॥

"સિદ્ધછાયાલગ્ન હોય તો દૂષિત નક્ષત્ર, તિથિ, વાર, તારા, ચંદ્ર તથા દૂષિત ગ્રહ પણ શુભ થઈ જાય છે, અર્થાત્ સિદ્ધછાયાલગ્નની હાજરીમાં નક્ષત્ર આદિનો દોષ માનવામાં આવતો નથી. ॥ ૧ ॥"

એક માત્ર છાયાલગ્ન જ ઉત્તમ છે. તેનો મુકાબલો તિથિ, નક્ષત્ર, વાર, ચંદ્રમા ગ્રહ અને ઉપગ્રહ કોઇ પણ કરી શકતા નથી. ॥ ૨ ॥

યોગિનીનું તેના સામે બળ નથી. વિષ્ટિનું પણ બળ નથી, શૂળ અને ચન્દ્ર પણ છાયાલગ્નની હાજરીમાં કોઈ પ્રકારે કાંઇ પણ બગાડી શકતા નથી. સિદ્ધ-છાયાલગ્ન એક એવી વજ્રમયી સિદ્ધિ છે જેને દેવતા પણ ભેદી શકતા નથી. ॥૩॥"

(ख) शङ्कुच्छायालग्नम्—

द्वादशाङ्गुलपरिमितशङ्कोश्छाया रवि-सोम-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-वासरेषु क्रमेण विंशति-षोडश-पञ्चदश-चतुर्दश-त्रयोदश-द्वादश-द्वादशाङ्गुलपरिमिता, तथा शनिवासरे द्वादशाङ्गुलप्रमाणा चेत्तर्हि सा शङ्कुच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते। तत्र दीक्षादि कार्यं शुभम्।

(ग) अत्युत्कण्ठितयोग्यशिष्यार्थं दीक्षासमयः—

विषयाटवीदावदहनज्वालामालाकलितस्वान्तोऽनन्तजन्मजरामरणादिभयोद्विग्निः समन्ततः प्रज्वलिते सद्मनि सुप्तमिवादीप्तप्रदीप्तसंसारान्तः सरन्तमात्मनं रक्षितुमुपाया-न्तरमनवलोक्य प्रव्रज्यामात्रशरणदर्शी तीव्रवैराग्यप्रभाभासमानः प्रतिरोमोज्ज्वलिता-

---

(ख) शङ्कुच्छायालग्न—

बारह अङ्गुल लम्बी कीली की परछाई अगर रविवार को बीस अंगुल, सोमवार को सोलह अंगुल, मंगलवार को पन्द्रह अंगुल, बुधवार को चौदह अंगुल, गुरुवार को तेरह अंगुल, शुक्रवार को बारह अंगुल, तथा शनिवार को भी बारह अंगुल हो उसे शङ्कुच्छाया लग्न कहते हैं। इस लग्न में दीक्षा आदि कार्य शुभ हैं।

(ग) तीव्र उत्कण्ठा वाले दीक्षार्थी का दीक्षासमय—

विषयवासना की विषय अटवी में व्याप्त दावानल की विकट ज्वालाओं से जिसका अन्तः-करण झुलस गया है, और जो अनन्त जन्म जरा मरण आदि के भय से उद्विग्न है, चारों ओर से मकान में आग लग जाने पर जिस का सर्वस्व भस्म हो गया है ऐसे पुरुष की भांति

(ख) શંકુછાયાલગ્ન—

બાર આંગળ લાંબી ખીલીનો પડછાયો રવિવારે વીશ આંગળ, સોમવારે સોળ આંગળ, મંગળવારે પંદર આંગળ, બુધવારે ચૌદ આંગળ, ગુરૂવારે તેર આંગળ, શુક્રવારે બાર આંગળ, તથા શનિવારે પણ બાર આંગળ હોય તો તેને શંકુછાયા-લગ્ન કહે છે. તે લગ્નમાં દીક્ષા આદિ કાર્ય શુભ છે.

(ग) તીવ્ર ઉત્કંઠાવાલા દીક્ષાર્થીનો સમય—

વિષયવાસનાની વિષમ અટવી (વન)માં વ્યાપ્ત દાવાનલની વિકટ જ્વાલાઓથી જેનું અંતઃકરણ બળી ગયું છે, અને જે અનન્ત જન્મ, જરા, મરણ વગેરેના ભયથી ચિંતાતુર છે, ચારે બાજુથી મકાનમાં આગ લાગવાથી જેનું સર્વસ્વ ભસ્મ

नलवन्नितान्तमातुरः सन् निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तरसार्णवं द्रव्यक्षेत्रकालभावविदं निर्ग्रन्थप्रवचनमर्मज्ञं गुरुं दीक्षादानार्थं प्रार्थयते तदा तस्मै तदानीमेव प्रव्रज्याप्रदानं शुभम्, नहि तत्र तिथिवारनक्षत्रादीनां विचारापेक्षा ।

(११) अथ केशलुञ्चनम्—

दीक्षाग्रहणानन्तरं यदा कदापि केशलुञ्चनं कर्त्तुमिच्छेत्तदा शनिमङ्गल दिवसौ त्याज्यौ, कृत्तिका, विशाखा, मघा, भरणी, एतानि चत्वारि नक्षत्राणि च वर्जनीयानि ।

आत्मरक्षा का अन्य उपाय न देखकर एकमात्र दीक्षा को ही शरण समझने वाला तीव्र वैराग्य की प्रभा से चमकता हुआ मोक्षाभिलाषी शिष्य, रोम–रोम में जिस के आग लगी हो ऐसे पुरष की भाँति अत्यन्त आतुर होकर तरङ्गरहित समुद्र के समान, शान्त रस के सागर द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव के ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचन के मर्मज्ञ गुरुसे दीक्षा देने के लिये प्रार्थना करे तो उसको उसी समय दीक्षा दे देना शुभ है, ऐसे प्रसंग पर तिथि, वार, नक्षत्र आदि के विचार की आवश्यकता नहीं है ।

(११) केशलोच—

दीक्षा धारण करने के पश्चात् केशलोच करने में शनिवार और मंगल वार त्यज्य है, तथा कृत्तिका, विशाखा. मघा, और भरणी, ये चार नक्षत्र वर्जनीय हैं ।

થઈ ગયું છે એવા પુરૂષની જેમ, આત્મરક્ષાનો અન્ય કોઈ ઉપાય નહિ દેખવાથી એક માત્ર દીક્ષાને જ શરણ–આશ્રય સમજવાવાળા, તીવ્ર વૈરાગ્યની પ્રભા–તેજથી ચમકતો મોક્ષાભિલાષી શિષ્ય રોમ–રોમમાં જેને અગ્નિ લાગી છે, એવા પુરૂષની જેમ અત્યન્ત આતુર બનીને તરંગરહિત સમુદ્ર પ્રમાણે શાન્ત રસના સાગર, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને ભાવના જાણનાર અને નિર્ગ્રંથ પ્રવચનના મર્મજ્ઞ ગુરૂથી દીક્ષા દેવા માટે પ્રાર્થના કરે, તો તેને તેજ વખતે દીક્ષા આપવી શુભ છે એવા પ્રસંગે તિથિ, વાર, નક્ષત્ર આદિનો વિચાર કરવાની જરૂર નથી.

(૧૧) કેશલોચ

દીક્ષા ધારણ કર્યા પછી કેશલોચ કરવામાં શનિવાર અને મંગળવાર ત્યાજ્ય છે તથા કૃત્તિકા, વિશાખા, મઘા, અને ભરણી, આ ચાર નક્ષત્ર ત્યજવા યોગ્ય છે.

(१२) अथ नवदीक्षितस्य प्रथमगोचरीविचारः–

प्रथमगोचरीविषये तीक्ष्णोग्रमिश्रनक्षत्राणि शनिमङ्गलदिवसौ च वर्जयेत् ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूलम्, एतानि चत्वारि तीक्ष्णनक्षत्राणि । भरणी, पूर्वात्रयं, मघा, एतानि पञ्चोग्रनक्षाणि । कृत्तिका, विशाखा, इमे द्वे मिश्रनक्षत्रे ।

रिक्ताऽमावास्याक्षयतिथयस्त्याज्याः । शनिमङ्गलवारयोगे रिक्ताऽपि प्रशस्ता विज्ञेया ।

(१२) नव दीक्षित की प्रथम गोचरी—

पहली वार गोचरी के विषय में तीक्ष्ण उग्र और मिश्र नक्षत्र एवं शनि तथा मङ्गल वार त्याज्य हैं ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल, ये चार नक्षत्र तीक्ष्ण हैं । भरणी, पूर्वात्रय–(पूर्वाषाढा पूर्वभाद्रपदा और पूर्वाफाल्गुनी) और मघा, ये पाँच उग्र नक्षत्र हैं । कृत्तिका और विशाखा, ये दो नक्षत्र मिश्र कहलाते हैं ।

रिक्ता तिथि, अमावास्या और क्षय तिथि त्याज्य है, हाँ यदि शनि और मंगल वार का योग हो तो रिक्ता तिथि भी प्रशस्त है ।

(૧૨) નવદીક્ષિતની પ્રથમ ગોચરી—

પહેલીવાર ગોચરીના વિષયમાં તીક્ષ્ણ, ઉગ્ર અને મિશ્ર નક્ષત્ર તથા શનિ અને મંગળવાર ત્યાજ્ય છે.

આર્દ્રા, અશ્લેષા, જ્યેષ્ઠા, અને મૂલ, આ ચાર નક્ષત્ર તીક્ષ્ણ છે, ભરણી, ત્રણ પૂર્વા (પૂર્વાષાઢા, પૂર્વાભદ્રાપદ, અને પૂર્વાફાલ્ગુની) અને મઘા એ પાંચ નક્ષત્ર ઉગ્ર નક્ષત્ર છે. કૃત્તિકા અને વિશાખા, આ બે નક્ષત્ર મિશ્ર કહેવાય છે.

રિક્તા તિથિ, અમાવાસ્યા અને ક્ષય તિથિ ત્યાજ્ય છે, પરન્તુ જો શનિ અને મંગલવારનો યોગ હોય તો રિક્તા તિથિ પણ ઉત્તમ છે.

(१३) अथ नूतनपात्रव्यापृतिः—

गोचर्यादिनिमित्तं नूतनपात्रव्यापृतिश्च, मृगशिरःपुष्याश्विनीहस्तानुराधा-चित्रारेवतीषु, सोमगुरुवासरयोश्च शुभदा ।

(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमयः—

आचार्यादिपदप्रदाने-श्रवणं, ज्येष्ठा, पुष्यम् , अभिजित् , हस्तः, अश्विनी, रोहिणी, उत्तरात्रयं, मृगशिरः, अनुराधा, रेवती, एतानि नक्षत्राणि शुभानि शोभनतिथिवारादयोऽपि द्रष्टव्याः ।

अथ (४) द्रव्यानुयोगः—

द्रवति=गच्छति प्राप्नोति मुञ्चति वा तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् । अथवा-

---

(१३) नूतन पात्र का प्रयोग

गोचरी आदि के लिए नवीन पात्र का उपयोग मृगशिर, पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में, तथा सोमवार और गुरुवार के दिन करना शुभ है ।

(१४) आचार्य आदि पदवीदान का समय

आचार्य आदि पदवी देने में श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी, रोहिणी, उत्तरात्रय, (उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी) मृगशिर, अनुराधा और रेवती, ये नक्षत्र शुभ हैं । इस प्रसङ्ग पर शुभ तिथि और शुभ वार आदि भी देखना चाहिए ।

(४) द्रव्यानुयोग—

आगे की पर्याय प्राप्त करने वाला और पूर्व पर्यायों का त्याग करने वाला द्रव्य

---

(१३) नवा पात्रनो उपयोग

गोचरी आदि माटे नवा पात्रनो उपयोग मृगशीर्ष, पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, चित्रा, अने रेवती नक्षत्रोमां, तथा सोमवार अने गुरुवारना दिवसे करवो ते शुभ छे.

(१४) आचार्य आदि पदवीदाननो समय—

आचार्य आदि पदवी आपवामां श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अभिजीत, हस्त. अश्विनी रोहिणी, उत्तरात्रय (उत्तरा-षाढा, उत्तरा-भाद्रपद. उत्तरा-फाल्गुनी) मृगशिर, अनुराधा अने रेवती, आ नक्षत्रो शुभ छे. आ प्रसंग उपर शुभ तिथि अने शुभ वार वगेरे पण जोवुं जोईए.

(४) द्रव्यानुयोग—

आगळनी पर्याय प्राप्त करनारा अने प्रथमनी पर्यायनो त्याग करवावाळाने

द्रूयते = प्राप्यते मुच्यते वा तैस्तैः पर्यायैरिति द्रव्यम्। द्रव्यस्य – अनुयोगः द्रव्यानुयोगः।

द्रव्यानुयोगो हि द्रव्याणां यथावस्थितस्वरूपाववोधने समीचीनयुक्तिं प्रदर्शयति। तया दर्शनस्य नैर्मल्यम्। ततश्च सम्यक् चारित्रं संपद्यते। तथा चायमपि चरणकरणानुयोगं पोषयतीति बोध्यम्।

द्रव्यलक्षणम्—

अथ किं तावद् द्रव्यम्? उच्यते- "गुणाश्रयो द्रव्यम्"। यथा जीवे ज्ञानदर्शनचारित्रसुखोपयोगादयो विशेषगुणाः, अस्तित्व-द्रव्यत्व-ज्ञेयत्वा

कहलाता है। अथवा जो पर्यायों के द्वारा प्राप्त हो, अथवा पर्यायों से मुक्त हो उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य के अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं।

द्रव्यानुयोग द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिए समीचीन मार्ग प्रदर्शित करता है। उस से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, और सम्यग्दर्शन की निर्मलता से सम्यक् चारित्र की प्राप्ति होती है। इस प्रकार यह अनुयोग भी चरणकरणानुयोग का पोषक है।

द्रव्य का लक्षण—

द्रव्य किसे कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—जो गुणों का आधार हो वह द्रव्य है, जैसे जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख और उपयोग आदि विशेष गुण हैं।

દ્રવ્ય કહે છે, અથવા જે પર્યાયો દ્વારા પ્રાપ્ત હોય અથવા પર્યાયોથી યુક્ત હોય તેને દ્રવ્ય કહે છે. એવા દ્રવ્યના અનુયોગને દ્રવ્યાનુયોગ કહે છે.

દ્રવ્યાનુયોગ દ્રવ્યોના યથાર્થ સ્વરૂપને સમજાવવા માટે બરાબર સાચો માર્ગ પ્રદર્શિત કરે છે, તેથી સમ્યગ્દર્શન નિર્મલ થાય છે, અને સમ્યગ્દર્શનની નિર્મલતાથી સમ્યક્ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે. એ પ્રમાણે આ અનુયોગ પણ ચરણ કરણાનુયોગનો પોષક છે.

દ્રવ્યનું લક્ષણ—

દ્રવ્ય કોને કહે છે? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે–જે ગુણોનો આધાર હોય તે દ્રવ્ય છે, જે પ્રમાણે જીવમાં જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર સુખ અને ઉપયોગ આદિ વિશેષ ગુણ છે.

दयः सामान्यगुणाः सन्ति। एवं गतिहेतुत्वं धर्मे, स्थितिहेतुत्वमधर्मे, अवकाश-दानहेतुत्वमाकाशे, वर्त्तनहेतुत्वं काले, रूपादिमत्त्वं पुद्गले विशेषगुणाः सन्तीति द्रव्यलक्षणसमन्वयः।

कश्चित्तु 'सद् द्रव्यलक्षणम्' इति सूत्रयित्वा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' इति सूत्रेण सच्छब्दविवरणं कुर्वन् द्रव्यसामान्यलक्षणमुक्त्वा विशेष-विज्ञानजननाय विशेषलक्षणमवोचत्-'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' इति। तदपि प्रकृत-

---

अस्तित्व (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी विनाश न हो) वस्तुत्व-द्रव्यत्व (जिस शक्ति के निमित्त से पर्याय सदैव बदलती रहे) और प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो) आदि सामान्य गुण हैं। इसीप्रकार धर्मास्तिकाय में गतिहेतुत्व (गतिकारणता) अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता) आकाश में अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायिता) काल में वर्तनाहेतुत्व, (नवपुराण-कारणता) आदि, और पुद्गल में रूपादिमत्त्व विशेष गुण हैं ? अतः इन सब में द्रव्य के लक्षण की संगति होजाती है।

किसी आचार्यने 'सद् द्रव्यलक्षणम्' ऐसा सूत्र रचकर 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्' अर्थात् जिस में उत्पाद विनाश और ध्रौव्य युगपत् पाये जायँ, वह सत् है, इस सूत्र के द्वारा सत् की व्याख्या करते हुए सामान्य द्व्य का स्वरूप बतला कर विशेष बोध

અસ્તિત્વ (જે શક્તિના નિમિત્તથી દ્રવ્યનો કયારેય પણ નાશ ન હોય.) વસ્તુત્વ-દ્રવ્યત્વ (જે શક્તિના નિમિત્તથી પર્યાય હંમેશાં બદલતી રહે) અને પ્રમેયત્વ-જ્ઞેયત્વ (જે શક્તિના નિમિત્તથી દ્રવ્ય કોઈ ન કોઈ જ્ઞાનનો વિષય હોય) આદિ સામાન્ય ગુણ છે. એ પ્રમાણે ધર્માસ્તિકાયમાં ગતિહેતુત્વ (ગતિકારણતા) અધર્માસ્તિકાયમાં સ્થિતિહેતુત્વ (સ્થિતિકારણતા) આકાશમાં અવકાશદાનહેતુત્વ (અવકાશદાયિત્વ) કાલમાં વર્તનાહેતુત્વ (નવપુરાણકારણતા) આદિ, અને પુદ્ગલમાં રૂપાદિમત્ત્વ વિશેષ ગુણ છે. તેથી એ સર્વમાં દ્રવ્યના લક્ષણની સંગતિ થઇ જાય છે.

કોઈ આચાર્યે "सद् द्रव्यलक्षणम्" એવું સૂત્ર રચીને 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' અર્થાત્ જેમાં ઉત્પાદ, વિનાશ અને ધ્રૌવ્ય એક કાળે જોવામાં આવે તે "સત્" છે. આ સૂત્ર દ્વારા સત્‌ની વ્યાખ્યા કરતા થકા સામાન્ય દ્રવ્યનું સ્વરૂપ બતાવીને

लक्षणे समाविष्टमेवेति गुरुतरलक्षणं नावश्यकमिति ज्ञेयम् ।

परमार्थतस्तु पर्याया न गुणतो भिन्नाः कार्यकारणयोरभेदात् । यथा कटककुण्डलादीनि कनकतो न भिन्नानि, घटशरावादीनि मृदो नातिरिक्तानि, तथा गुणजन्मनां पर्यायाणां न भेदो गुणेभ्य इति द्रव्यलक्षणे पर्यायशब्दप्रवेशो नावश्यक इत्यवसेयम् ।

गुणलक्षणम्—

द्रव्यस्याऽऽश्रयाश्रयिभावेन नित्यसहवर्तिनो धर्मा गुणाः, ते द्रव्यस्य शक्तिविशेषाः । द्रव्यमात्राश्रितं गुणस्य लक्षणम् । यथा जीवस्य ज्ञानदर्शन-

---

कराने के लिये विशेष लक्षण यह बतलाया है-'**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**' यह लक्षण भी प्रकृत लक्षण '**गुणाश्रयो द्रव्यम्**' में समाविष्ट है, इस लिये उनका बडा लक्षण करने की आवश्यकता नहीं है ।

वास्तव में तो पर्याय, गुण से भिन्न नहीं है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद नहीं होता । जैसे-कटक, कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से भिन्न नहीं है, अतः गुणों से उत्पन्न होने वाले गुणों से भिन्न नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्रव्य के लक्षण में पर्याय शब्द डालना आवश्यक नहीं है ।

गुण का लक्षण—

द्रव्य के आश्रय आश्रयी रूपसे अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे नित्य सहवर्ती धर्म, 'गुण' कहलाते हैं । 'गुण' द्रव्य की शक्तिविशेष है । सिर्फ द्रव्याश्रित होना गुण का

વિશેષ બોધ કરાવવા માટે વિશેષ લક્ષણ એ બતાવ્યું છે કે:-"**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**" આ લક્ષણ પણ પ્રકૃત (ચાલૂ) લક્ષણ (**गुणाश्रयो द्रव्यम्**) માં સમાવિષ્ટ છે તેથી વિશેષ લક્ષણ કરવાની આવશ્યકતા નથી.

વાસ્તવમાં તો પર્યાય, ગુણથી ભિન્ન નથી, કારણ કે કાર્ય અને કારણમાં ભેદ નથી, જેવી રીતે કડાં અને કુંડલ આદિ પર્યાય સુવર્ણથી ભિન્ન નથી ઘટ અને શકોર આદિ પર્યાય મૃત્તિકા-માટીથી ભિન્ન નથી, કારણ કે ગુણોથી ઉત્પન્ન થવા વાળા પર્યાય, ગુણોથી ભિન્ન નથી, એવી અવસ્થામાં દ્રવ્યના લક્ષણમાં પર્યાય શબ્દ નાખવો તે જરૂરી નથી.

ગુણના લક્ષણ—

દ્રવ્યના આશ્રય-આશ્રયી-રૂપથી અથવા કંથચિત્ તાદાત્મ્યરૂપથી નિત્ય સહવર્તી ધર્મ ગુણ કહેવાય છે. ગુણ એ દ્રવ્યની શક્તિવિશેષ છે. માત્ર દ્રવ્યાશ્રિત

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः। 'मात्र'-शब्दोपादनं पर्यायेऽतिप्रसङ्गवारणाय।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'-मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धशाखाप्रशाखादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदेशवत्त्वादिसामान्यगुणानां चेतनत्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - ऽवकाशदानहेतुत्व - वर्त्तनाहेतुत्व - वर्ण - गन्ध - रस - स्पर्श-

---

लक्षण है, जैसे-जीव के गुण-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि हैं। उपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है; वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है। अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है। जैसे मूल, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व, वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि-विभिन्न द्रव्यों के

રહેવું તે ગુણનું લક્ષણ છે. જેવી રીતે જીવના ગુણ-જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્ય આદિ છે. તથા પુદ્ગલના ગુણ-વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ આદિ છે. ઉપર જે 'માત્ર' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તે પર્યાયમાં અતિપ્રસંગ નિવારણ કરવા માટે છે, અર્થાત્ ગુણ કેવલ દ્રવ્યમાં હોય છે, પર્યાયમાં હોય નહિ.

દ્રવ્યના સ્વરૂપ પર વિચાર કરવાથી જણાય છે કે ગુણોનો સમુદાય જ દ્રવ્ય છે. જે રીતે-મૂલ, સ્કંધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિનો સમૂહ તે વૃક્ષ છે. એ પ્રમાણે અસ્તિત્વ, પરિણામિત્વ વસ્તુત્વ, જ્ઞેયત્વ, પ્રમેયત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ આદિ સામાન્ય ગુણોનો, તથા ચેતના ગતિહેતુત્વ, સ્થિતિહેતુત્વ, અવકાશદાનહેતુત્વ, વર્તનાહેતુત્વ, વર્ણ, રસ, ગંધ, સ્પર્શવત્ત્વ આદિ વિશેષ ગુણોનો સમૂહ તે દ્રવ્ય છે. અહિં એ યાદ

वत्त्वादिविशेषगुणानां च समुदायो द्रव्यम् । एवं 'द्रव्यपर्यायस्वरूपमपी'-त्यनुपदमेव वक्ष्यते ।

पर्यायलक्षणम्—

परियन्ति=उत्पादविनाशौ प्राप्नुवन्ति न सर्वदा तिष्ठन्तीति पर्यायाः । यद्वा-परि=सर्वथा अयन्ते=गच्छन्ति द्रव्यगुणौ समाश्रयन्तीति पर्यायाः ।

द्रव्यस्योत्पादविनाशशालिनो धर्माः पर्यायाः । पर्याया हि द्रव्यं गुणं चाश्रित्य वर्त्तन्ते । कालभेदादेकमेव ज्ञानं जीवस्यान्यदन्यद्रूपं दधत् पर्यायशब्द-वाच्यं भवति, यथा कश्चिदष्टवर्षीयो विनयी प्रमादविकथावर्जितो बालमुनि-र्गुरुचरणसरोजं सेवमानः पूर्वमावश्यकमात्रमधीत्य समितिगुप्तिज्ञानं संपादयति,

---

विशेष गुणों का समूह नहीं बन सकता है । ऐसे द्रव्य और पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए, वह अभी आगे बतायेंगे ।

पर्याय का लक्षण—

जिनके निरन्तर उत्पाद और व्यय होता है, जो सदैव स्थिर नहीं रहते उन्हें पर्याय कहते हैं । अथवा द्रव्य और गुण का आश्रय लेने वाले पर्याय कहलाते हैं ।

द्रव्य के उत्पाद और विनाश-शील धर्म पर्याय कहलाते हैं । पर्याय, द्रव्य में भी रहते हैं और गुण में भी रहते हैं । जीवका एक ही ज्ञानगुण काल के भेदसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करता हुआ पर्याय कहलाता है । जैसे एक आठ वर्ष का विनयी प्रमाद और विकथा से दूर रहने वाला बाल मुनि अपने गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुआ

રાખવું જોઇએ કે વિભિન્ન દ્રવ્યોના વિશેષ ગુણોનો સમૂહ બની શકતો નથી. એવી રીતે દ્રવ્ય અને પર્યાયના વિષયમાં પણ સમજવું જોઇએ. વિશેષ આગળ બતાવીશું.

પર્યાયનું લક્ષણ—

જેની અંદર હંમેશાં ઉત્પાદ અને વ્યય થયા કરે છે. અને જે હંમેશાં-સદાકાળ સ્થિર રહેતું નથી તેને પર્યાય કહે છે, અથવા દ્રવ્ય અને ગુણનો આશ્રય લેનાર તેને પર્યાય કહેવામાં આવે છે.

દ્રવ્યનો ઉત્પાદ અને વિનાશ-શીલ ધર્મ તે પર્યાય કહેવાય છે. પર્યાય, દ્રવ્યમાં પણ રહે છે અને ગુણમાં પણ રહે છે. જીવનો એકજ જ્ઞાનગુણ કાલના ભેદથી ભિન્ન ભિન્ન રૂપ ધારણ કરીને પર્યાય કહેવાય છે. જેવી રીતે કે એક આઠ વર્ષના વિનયવંત, પ્રમાદ અને વિકથાથી દૂર રહેવાવાળા બાલમુનિ પોતાના ગુરૂના ચરણ

क्रमेण द्वादशाङ्गतत्त्वं विज्ञाय ज्ञानधारां प्रवर्द्धयति। तत्र तस्य बालसंयमिनो ज्ञानं प्रतिक्षणं विलक्षणतामापद्यमानमपूर्वमपूर्वं जायमानं ज्ञानं पर्यायशब्दवाच्यतां भजति। एवं दर्शनचारित्रादीनामपि पर्याया ज्ञातव्या। जीवस्य मानुषत्वबाल्यादयोऽपि पर्यायाः। पुद्गलस्य तु एकगुणकालत्वादयो पर्याया ज्ञेयाः। एवं च द्रव्यगुणाश्रितत्वं पर्यायस्य लक्षणमिति निश्चीयते। तथा चोक्तमुत्तराध्ययने-(अ. २८)

पहले-पहल आवश्यक मात्र का अध्ययन करता है, फिर समिति और गुप्ति का ज्ञान सम्पादन करता है। तदनन्तर क्रम से द्वादशाङ्ग का तत्त्व जान कर ज्ञान की धारा में वृद्धि करता है, उस बाल मुनि का ज्ञान क्षण-क्षण में विलक्षण होकर नवीन-नवीन रूपों में उत्पन्न होता हुआ 'पर्याय' शब्द द्वारा कहा जाता है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र आदि गुणों के पर्याय भी समझ लेना चाहिए। मनुष्यता, बालकपन आदि जीव के पर्याय हैं और एक-गुण-कालापन आदि पुद्‌गल के, वर्ण-गुण के पर्याय हैं। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों में ही रहता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

"गुणों का जो आश्रय हो उसे द्रव्य कहते हैं, गुण एक मात्र द्रव्य में ही रहते हैं। पर्यायों का लक्षण उभयाश्रित होना है, अर्थात् पर्याय, द्रव्य और गुण दोनों में ही पाये जाते हैं"।

કમળોની સેવા કરતા થકા પ્રથમ આવશ્યક માત્રનું અધ્યયન કરે છે, પછી સમિતિ અને ગુપ્તિનું જ્ઞાન સંપાદન કરે છે; ત્યાર પછી ક્રમથી દ્વાદશાંગનું તત્ત્વ જાણી જ્ઞાનની ધારામાં વૃદ્ધિ કરે છે; તે બાલમુનિનું જ્ઞાન ક્ષણ-ક્ષણમાં વિલક્ષણ-તરેહવાર બની નવીન રૂપોમાં ઉત્પન્ન થાય છે તેને 'પર્યાય' શબ્દથી ઓળખવામાં આવે છે, એ પ્રમાણે દર્શન અને ચારિત્ર આદિ ગુણોના પર્યાય પણ સમજી લેવા જોઇએ. મનુષ્યતા, બાલકપણું આદિ જીવના પર્યાય છે, અને એકગુણકાળાપણું આદિ પુદ્‌ગલના વર્ણગુણનો પર્યાય છે. આ પ્રમાણે આ નિશ્ચિત થાય છે કે-પર્યાય, દ્રવ્ય અને ગુણ એ બન્નેમાં રહે છે. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે—

"ગુણોનો જે આશ્રય હોય, તેને દ્રવ્ય કહે છે; ગુણ એક માત્ર દ્રવ્યમાં જ રહે છે, અને પર્યાયોનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, અર્થાત્ પર્યાય, દ્રવ્ય અને ગુણ બન્નેમાં જોવામાં આવે છે".

"गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, दुहओ अस्सिया भवे ॥ ६ ॥" इति ।

छाया—

"गुणानामाश्रयो द्रव्यम् , एकद्रव्याश्रिता गुणा ः
लक्षणं पर्यवाणां तु, उभयोराश्रिता भवेयुः" ॥ ६ ॥ इति ।

द्रव्यलक्षणे पर्यायानुक्त्या कार्यकारणयोरभेदविवक्षया पर्यायाणां गुणेषु समावेश इति भगवदभिप्रायो गम्यते । "एकद्रव्याश्रिता गुणाः" इति, एकं=केवलं द्रव्यमाश्रित्य गुणा वर्त्तन्त इत्यर्थः । अनेन गुणलक्षणमुक्तम् । 'पर्यवाणां लक्षणं तु उभयोराश्रिता भवेयुः' इत्यन्वयः । पर्यवः, पर्ययः, पर्यायः, इति समानार्थकाः । उभयोः=द्रव्यगुणयोराश्रिताः पर्यायाः, इति पर्यायलक्षणं बोध्यमित्यर्थः । पर्यायास्तु द्रव्यं गुणं चोभयमाश्रित्य वर्त्तन्त इति भावः ।

द्रव्य के लक्षण में 'पर्याय' पद का समावेश न करने के कारण भगवान् का अभिप्राय यह है कि—कार्य कारण के अभेदसे गुण में ही पर्याय का समावेश हो जाता है । **'एगदव्वस्सिया गुणा'** इस वाक्य का अर्थ यह है कि—गुण केवल द्रव्य में ही होते हैं । इस कथनद्वारा गुण का लक्षण भी कह दिया गया है ।

पर्याय का लक्षण उभयाश्रित होना है, दोनो में अर्थात् द्रव्य में भी और गुण में भी पर्याय रहते हैं । पर्यव, पर्यय और पर्याय ये सभी समानार्थक हैं ।

દ્રવ્યના લક્ષણમાં 'પર્યાય' પદનો સમાવેશ નહિ કરવાથી ભગવાનનો અભિપ્રાય એ છે કે–કાર્ય કારણના અભેદથી ગુણમાં જ પર્યાયનો સમાવેશ થઈ જાય છે. 'एगदव्वस्सिया गुणा' આ વાકયનો અર્થ એ છે કેઃ—ગુણ કેવલ દ્રવ્યમાં જ હોય છે. આ કથનદ્વારા ગુણનું લક્ષણ પણ કહી આપ્યું છે.

પર્યાયનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, બન્નેમાં અર્થાત્ દ્રવ્યમાં અને ગુણમાં પણ પર્યાય રહે છે. પર્યવ, પર્યય અને પર્યાય શબ્દ સમાન અર્થવાળા છે.

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं षड्विधम्-धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवभेदात् । उक्तञ्च श्रीभगवतीसूत्रे—

"कइ णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ?, गोयमा ! छ दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमये" ॥

उत्तराध्ययनसूत्रेऽपि-(अ. २८)

"धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

द्रव्य के भेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५) पुद्गल और (६) जीव । श्री भगवतीसूत्र में कहा है –

"भगवान् ! द्रव्य कितने कहे गये हैं ?, गौतम ! छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस प्रकार-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और अद्धा-समय" ।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी कहा है—

"धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन भगवान् ने लोकसंज्ञा दी है ॥ ७ ॥

દ્રવ્યના ભેદ—

દ્રવ્યના છ પ્રકાર છે-(૧) ધર્મ (૨) અધર્મ (૩) આકાશ (૪) કાલ (૫) પુદ્ગલ અને (૬) જીવ. શ્રી ભગવતી સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-

"ભગવાન ! દ્રવ્ય કેટલાં કહ્યાં છે ? ગૌતમ ! છ દ્રવ્ય કહેલા છે. તે આ પ્રમાણે-ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય અને અદ્ધા-સમય,"

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે-

"ધર્મ અધર્મ, આકાશ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવને સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી જિન ભગવાને લોકસંજ્ઞા આપી છે" ॥ ૭ ॥

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ॥ ८ ॥"

अत्र कालमात्रं विहाय धर्मादयोऽस्तिकाया उच्यन्ते । 'अस्ती' ति तिङन्त-प्रतिरूपकमव्ययं प्रदेशवाचकम् । प्रदेशः स्वस्थानादनपायि निर्विभागं खण्डम् । इदं निर्विभागं खण्डं यदा पुद्गलस्य गलनस्वभावात्तदीयस्कन्धदेशाभ्यामवयुत्य= पृथग्भूत्वा वर्त्तते तदा परमाणुनाम्ना व्यवह्रियते । यावदपृथग्भूत्वा वर्त्तते तावत्तदेव निर्विभागं खण्डं प्रदेश इत्युच्यते । अनेनैवाशयेन पुद्गलास्तिकायस्य चत्वारो भेदा भगवता कथिताः—स्कन्धः, देशः, प्रदेशः, परमाणुश्चेति । कायः=

धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीन द्रव्य एक एक है, काल, पुद्गल, जीव, अनन्त अनन्त द्रव्य हैं" ॥ ८ ॥

काल को छोड कर शेष पांच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं । 'अस्ति' यह तिङन्तरूप प्रतीत होने वाला एक अव्यय है और प्रदेश का वाचक है । जो अपने स्थान से च्युत न होने वाला, अर्थात् जो द्रव्य के साथ ही जुडा हुआ निर्विभाग—जिस का फिर विभाग न हो सके वह खण्ड, प्रदेश कहलाता है । पुद्गल गलनस्वभाव वाला है अत एव जब यह निर्विभाग खण्ड पुद्गल के स्कन्ध या देश से बिछुड कर अलग हो जाता है तब वही खण्ड परमाणु कहलाता है । जब वही परमाणु पुद्गल के स्कन्ध या देश में फिर मिलजाता है तब

ધર્મ અધર્મ અને આકાશ આ ત્રણ દ્રવ્ય એક-એક છે, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ અનન્ત-અનન્ત દ્રવ્ય છે." ॥ ૮ ॥

કાલ સિવાયના બાકીના પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહેવાય છે. 'અસ્તિ' એ તિઙન્ત રૂપ જણાતું એક અવ્યય છે, અને પ્રદેશનું વાચક છે. જે પોતાના સ્થાનથી ચ્યુત નહિ થવા વાળા, અર્થાત્ દ્રવ્યની સાથે જ જોડાઈ રહેલા નિર્વિભાગ-જેનો ફરી ભાગ ન થઈ શકે તે ખંડ, પ્રદેશ કહેવાય છે. પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાળા છે, તે કારણે જ્યારે તે નિર્વિભાગ ખંડ પુદ્ગલના સ્કંધ અથવા દેશથી છુટા થઈ જાય છે; ત્યારે તે ખંડ પરમાણુ કહેવાય છે. જ્યારે તે પરમાણુ પુદ્ગલના સ્કંધ અથવા દેશમાં ફરીને મળી જાય છે ત્યારે તે પરમાણુના બદલે ફરી પ્રદેશ કહેવાય છે.

समूहः। अस्ति=प्रदेशानां कायः=समूहो यत्र यस्य वा स अस्तिकायः, प्रदेशसमूहवान्, धर्मश्चासावस्तिकायश्चेति धर्मास्तिकायः। एवं च धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, इति नामानि सन्ति तेषाम्। कालस्तु प्रदेशाभावादस्तिकायो न भवतीत्यतः कालः कालास्तिकाय-शब्देन न व्यवह्रियते।

धर्मास्तिकायलक्षणम्—

स्वभावतो गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहकारि कारणं धर्मास्तिकायः। जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतो गच्छन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते

वह परमाणु के बदले फिर प्रदेश कहलाने लगता है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने पुद्गलास्तिकाय के चार भेद बतलाये हैं (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु।

काय का अर्थ है समूह। जिसमें या जिसके प्रदेशों का समूह है वह अस्तिकाय कहलाता है। अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहवाला। धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझना चाहिए। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये अस्तिकायों के नाम हैं। कालद्रव्य प्रदेशों का समूहरूप न होने के कारण अस्तिकाय नहीं है अतः काल 'कालास्तिकाय' नहीं कहलाता है।

धर्मास्तिकायका लक्षण—

स्वाभाव से या प्रयोग से गतिक्रियामें परिणत हुए जीव और पुद्गलों की गति में जो सहकारी कारण हो उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं। जीवों और पुद्गलों का गमन करना स्वभाव ही है।

આ અભિપ્રાયે ભગવાને પુદ્ગલાસ્તિકાયના ચાર ભેદ બતાવ્યા છે. (૧) સ્કંધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ અને (૪) પરમાણુ.

કાયનો અર્થ છે-સમૂહ, જેમાં અથવા જેનાં પ્રદેશોના સમૂહ હોય તે અસ્તિકાય કહેવાય છે, અસ્તિકાય અર્થાત્ પ્રદેશોના સમૂહ વાળા, ધર્મરૂપ અસ્તિકાય ધર્મા-સ્તિકાય સમજવો જોઇએ. એજ પ્રમાણે અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલા-સ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય, એ અસ્તિકાયોનાં નામ છે.

કાલદ્રવ્ય-પ્રદેશોના સમૂહરૂપ નહિ હોવાથી અસ્તિકાય નથી તેથી કાલ એ 'કાલાસ્તિકાય' કહેવાય નહિ.

ધર્માસ્તિકાયનું લક્ષણ—

સ્વભાવથી અથવા પ્રયોગથી ગતિક્રિયામાં પરિણત થયેલા જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમાં જે સહકારી કારણ હોય, તેને ધર્માસ્તિકાય કહે છે. જીવો અને

गतिं प्रति, पुनस्तस्यामेव गति–क्रियायां धर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा सरित्समुद्राद्यवगाहनशीलानां मत्स्यानां स्वत एव जिगमिषा गतिश्च जायते, तत्र तेषां गमनं प्रति सहायरूपं निमित्तकारणं वारि । स्वयं तिष्ठतां तु मत्स्यानां न तत् प्रेरकं गमनाय ।

(२) यथा वा मृत्परिणामभूतस्य घटस्य दण्डो निमित्तकारणम् ।

(३) यथा वा स्वत एवावगाहमानस्य द्रव्यस्यावगाहनं प्रति गमनम् , न पुनरवगाहमानं द्रव्यं बलादवगाहयति तत् ।

इस गमनक्रिया में उपादान कारण वह स्वयं ही होते हैं, धर्मास्तिकाय सहायकमात्र होने से निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—नदी अथवा समुद्रमें अवगाहन करनेवाले मच्छो में गमन करने की इच्छा स्वयं ही उत्पन्न होती है और स्वयं ही वे गति करते हैं, जल उन की गति में सहायक रूप निमित्त कारण होता है । हाँ, मच्छ अगर ठहरे तो जल उन्हें गमन करने के लिये प्रेरित नहीं करता ।

(२) अथवा जैसे—मृत्तिका से बनने वाले घडे में डंडा निमित्त कारण होता है ।

(३) अथवा जैसे—स्वयं ही अवगाहन करने वाले द्रव्य की अवगाहना में आकाश निमित्त कारण होता है ।

પુદ્ગલોનો ગમન કરવું તે સ્વભાવ જ છે, એ ગમન–ક્રિયામાં ઉપાદાન કારણ તે પોતે જ હોય છે; ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોવાથી તે નિમિત્ત કારણ છે.

(૧) જેવી રીતે નદી અથવા સમુદ્રમાં અવગાહન કરવાવાળા મચ્છોમાં ગમન કરવાની પોતાની જ ઈચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે, અને પોતે જ તે ગતિ કરે છે, પરન્તુ જલ તેની ગતિમાં સહાયરૂપ નિમિત્ત કારણ થાય છે પરન્તુ મચ્છ જો સ્થિર રહેવાની ઈચ્છા કરે તો જલ તેને ગમન કરવા માટે પ્રેરણા કરતું નથી.

(૨) અથવા જેવી રીતે–માટીથી તૈયાર થતા ઘડામાં ડંડો અને ચાક નિમિત્ત કારણ હોય છે.

(૩) અથવા જેવી રીતે–પોતે જ અવગાહન કરનારા દ્રવ્યના અવગાહનમાં આકાશ નિમિત્ત કારણ હોય છે.

(४) यथा वा-जलवृष्टौ सत्यां स्वयमेव कृषिकर्मारम्भं कुर्वतां कृषीवलानां कृषिकर्मारम्भं प्रति वृष्टिः सहकारि कारणं भवति।

(५) अपरोऽपि शास्त्रीयो दृष्टान्तो दृष्टिपथमवतरति, यथा-'सिद्धस्वरूपोऽहम्, अनन्तसुखभाजनोऽहम्' इत्यादिभावनया व्यवहारनयेन शुद्धसिद्धस्वरूपध्यानकर्तॄणां, निश्चयनयेन निर्विकल्पध्यानपरिणामिनां स्वयं तदुपादानकारणस्वरूपाणां भव्यानां स्वयमेव जायमानां सिद्धगतिं प्रति प्रेरणारहितो निष्क्रियो मूर्तिरहितोऽपि सिद्धभगवान् सहायकः सन् सहकारि कारणं भवति, तद्वदमूर्तो निष्क्रियः प्रेरणारहितश्च धर्मास्तिकायो जीवानां पुद्गलानां च गतिरूपे परिणामे सहायकः सन्निमित्तकारणं भवति।

(४) अथवा जैसे---जल की वर्षा होने पर स्वयं ही कृषिकार्य आरम्भ करने वाले किसानों के कृषिकार्य के आरम्भमें वृष्टि सहकारी कारण होती है।

(५) एक शास्त्रीय दृष्टान्त और भी दृष्टिगोचर होता है---'मैं सिद्धस्वरूप हूँ, मैं अनन्त सुख का भाजन हूँ'। इस प्रकार की भावनापूर्वक व्यवहार नय से शुद्ध सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वालों को, और निश्चय नय से निर्विकल्प ध्यान में परिणत होने वालों को जो सिद्धगति की प्राप्ति होती है उस में उपादान कारण स्वयं ध्यान करने वाला भव्यात्मा है, और प्रेरणारहित, निष्क्रिय, तथा अमूर्तिक होते हुए भी सिद्ध भगवान् उसमें सहायक होने से निमित्त कारण हो जाते हैं। इसी प्रकार अमूर्तिक, निष्क्रिय और प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गलों के गतिरूप परिणाम में सहायक होता हुआ निमित्त कारण होता है।

(૪) અથવા જેવી રીતે પાણી વરસવાથી ખેડુત પોતે જ ખેતીના કામનો આરંભ કરે છે, ખેતીનો આરંભ કરવાવાળા ખેડુતોના ખેતી કાર્યના આરમ્ભમાં વૃષ્ટિ (વરસાદ) સહકારી કારણ હોય છે.

(૫) એક શાસ્ત્રીય દૃષ્ટાંત બીજું પણ દૃષ્ટિગોચર થાય છેઃ—

"હું સિદ્ધ સ્વરૂપ છું. હું અનન્ત સુખનું ભાજન-પાત્ર છું." આ પ્રકારની ભાવનાપૂર્વક, વ્યવહાર નયથી શુદ્ધ સિદ્ધ ભગવાન-પરમાત્માનું ધ્યાન કરવાવાળા અને નિશ્ચયનયથી નિર્વિકલ્પ ધ્યાનમાં પરિણત થવા વાળાને જે સિદ્ધ-ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં ઉપાદાન કારણ ધ્યાન કરવાવાળા પોતે ભવ્યાત્મા છે; અને પ્રેરણારહિત નિષ્ક્રિય તથા અમૂર્તિક હોવા છતાં પણ સિદ્ધ ભગવાન તેમાં સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ થઈ જાય છે.

એ પ્રમાણે અમૂર્તિક, નિષ્ક્રિય અને પ્રેરણારહિત ધર્માસ્તિકાય પણ જીવ અને પુદ્ગલોનાં ગતિરૂપ પરિણામમાં સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ છે.

ननु धर्मास्तिकायस्य दण्डादिवन्निमित्तकारणता नोपपद्यते, सव्यापारं हि कारणं भवति, निर्व्यापारस्य कारणत्वे युक्त्यभावादिति चेन्न,

धर्मास्तिकायस्य हि स्वाभाविकव्यापारसत्त्वात् कारणत्वं सूपपादम् । उक्तं च धर्मास्तिकायलक्षणं भगवता—

"गइलक्खणो उ धम्मो" इति,

'गतिलक्षणस्तु धर्मः' इति च्छाया। (उत्तराध्ययनसूत्रे २८ अ.) गतिकार्यानुमेयो धर्मास्तिकाय इति भावः।

शङ्का—धर्मास्तिकाय डंडा आदि के समान निमित्त कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यापार नहीं करता, कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करने वाला ही कारण होता है। कार्य की उत्पत्ति में व्यापार न करने पर भी अगर किसी को कारण मान लिया जाय तो चाहे जो वस्तु चाहे जिस कार्य में कारण हो जायगी। ऐसी दशा में नियत कार्य—कारण भाव का अभाव हो जायगा।

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है; क्योंकि यहाँ हेतु असिद्ध है। गतिरूप कार्य में धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं है, किन्तु धर्मास्तिकायका स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होने के कारण उसे कारण मानना युक्तिसङ्गत है। भगवान् ने धर्मास्तिकायका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

"**गइलक्खणो उ धम्मो**" धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है। (उत्तराध्ययनसूत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप कार्य से धर्मास्तिकायका अनुमान होता है।

શંકા—ધર્માસ્તિકાય દંડ આદિ પ્રમાણે નિમિત્ત કારણ થઈ શકતું નથી, કેમકે તે વ્યાપાર કરતું નથી, કાર્યની ઉત્પત્તિમાં વ્યાપાર કરનાર જ કારણ હોય છે. કાર્યની ઉત્પત્તિમાં વ્યાપાર નહિ કરવા છતાં ય જો કોઈને કારણ માનવામાં આવશે તો ગમે તે વસ્તુ ગમે તે કાર્યમાં કારણ થઈ જશે. એવી દશામાં નિયત કાર્ય કારણ ભાવનો અભાવ થઈ જશે.

સમાધાન—આ શંકા ઠીક નથી; કારણ કે અહિં હેતુ અસિદ્ધ છે. ગતિરૂપ કાર્યમાં ધર્માસ્તિકાય વ્યાપારરહિત નથી, ધર્માસ્તિકાયનો સ્વાભાવિક વ્યાપાર વિદ્યમાન હોવાથી તેને કારણ માનવું તે યુક્તિસંગત છે. ભગવાને ધર્માસ્તિકાયનું લક્ષણ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે—

"गइलक्खणो उ धम्मो" ધર્માસ્તિકાય ગતિલક્ષણવાળું છે (ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર અ૦ ૨૮) અર્થાત્ ગતિરૂપ કાર્યથી ધર્માસ્તિકાયનું અનુમાન થાય છે.

अस्य-(१) अरूपित्वम् , (२) अचेतनत्वम् , (३) अक्रियत्वम् , (४) गतिसहायकत्वं चेति गुणाः । (१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः । अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एको धर्मास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः- वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति । गुणतश्चलनगुणः ।

अधर्मास्तिकायस्वरूपम्—

स्वभावतः स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहकारि कारणत्वमधर्मास्तिकायस्य लक्षणम् ।

---

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व, ये धर्मास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुरुलघुत्व, ये उसके पर्याय हैं । धर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण, इस तरह पांच भेदों से जाना जाता है । जैसे—द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक है, क्षेत्रसे लोकप्रमाण है, कालसे आदि-अन्तरहित है, भावसे रूपादिरहित है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उस में नहीं है, और गुण से चलन-गुण वाला है ।

अधर्मास्तिकायका स्वरूप—

स्वभाव से स्थितिरूप परिणत हुए जीव और पुद्गलोंकी स्थिति में सहकारी होना अधर्मास्तिकायका लक्षण है ।

---

(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ (૪) ગતિસહાયકત્વ. એ સર્વ ધર્માસ્તિકાયના ગુણો છે, (૧) સ્કંધ (૨) દેશ (૩) પ્રદેશ અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ તેના પર્યાય છે. ધર્માસ્તિકાય-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ભાવ અને ગુણ, એ પાંચ ભેદોથી જાણી શકાય છે. જેવી રીતે-દ્રવ્યથી ધર્માસ્તિકાય એક છે, ક્ષેત્રથી લોકપ્રમાણ છે, કાલથી આદિ-અન્ત રહિત છે, ભાવથી રૂપાદિરહિત છે—રૂપ-રસ-ગંધ-સ્પર્શ તેમાં નથી, અને ગુણથી ચલન-ગુણવાળા છે.

અધર્માસ્તિકાયનું સ્વરૂપ—

સ્વભાવથી સ્થિતિરૂપ પરિણત થયેલા જીવો અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમાં સહકારી થવું તે અધર્માસ્તિકાયનું લક્ષણ છે.

जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतः स्वयं तिष्ठन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते स्थितिं प्रति, पुनस्तस्यामेव स्थितिक्रियायामधर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा–स्वयं तिष्ठतां पथिकानां स्थितौ छाया सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठतस्तु स्थातुं न पुनः सा प्रेरयति ।

(२) यथा वा स्वयं तिष्ठतो देवदत्तस्य स्थितिं प्रति पृथिवी सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठन्तं तु देवदत्तं न पृथिवी स्थापयति ।

(३) यथा-समितिगुप्तिधारिणो रत्नत्रयाराधिनः समरसकन्दाः समाहितमतयो महात्मानो निश्चयनयेन निजात्मस्वरूपं चिन्तयन्तः क्षपकश्रेणिं समारुह्य समुत्पन्न-

---

जीव और पुद्गल जब स्वभाव से ही स्थित होते हैं, अपनी स्थिति में उपादान कारण तो स्वयं वही हैं, पर अधर्मास्तिकाय उस में सहायक होता है, अतः वह निमित्त कारण है ।

(१) जैसे–स्वयं ठरने वाले पथिकों की स्थिति में छाया सहकारी कारण होती है । अगर कोई न ठहरे तो वह ठहरने की प्रेरणा नहीं करती ।

(२) अथवा जैसे–स्वयं ठहरने वाले देवदत्त की स्थिति में पृथिवी सहकारी कारण है । मगर देवदत्त को न ठहरना हो तो पृथ्वी जबर्दस्ती नहीं ठहराती ।

(३) अथवा जैसे–समिति गुप्तिके धारक, रत्नत्रय की आराधना करने वाले, समभाव के रस में निमग्न समाधियुक्त मति वाले महात्मा निश्चय नय से आत्मस्वरूपका चिन्तन करते

જીવ અને પુદ્ગલ જ્યારે સ્વભાવથી જ સ્થિત થાય છે તો પોતાની સ્થિતિમાં ઉપાદાન કારણુ તો પોતે જ છે, પરન્તુ અધર્માસ્તિકાય તેમાં સહાયક થાય છે, તેથી તે નિમિત્ત કારણુ છે.

(૧) જેવી રીતે–પોતે ઉભા રહેવા વાળા મુસાફરોની સ્થિતિમાં છાયા સહકારી કારણુ હોય છે. અગર કોઇ ઉભા ન રહે તો તે ઉભા રહેવાની પ્રેરણુા નથી કરતી.

(૨) અથવા–જેવી રીતે પોતે જ ઉભા ન રહેવા વાળા દેવદત્તની સ્થિતિમાં પૃથ્વી સહકારી કારણુ છે, પરન્તુ જો દેવદત્તને ઉભા ન રહેવું હોય તો પૃથ્વી દેવદત્તને બળજબરીથી ઉભો રાખી શકતી નથી.

(૩) અથવા–જેવી રીતે સમિતિ–ગુપ્તિના ધારક, રત્નત્રયની આરાધના કરવા-વાળા, સમભાવના રસમાં નિમગ્ન, સમાધિયુક્ત મતિવાળા મહાત્મા નિશ્ચયનયથી

केवलज्ञान-केवलदर्शनभृतः सन्तः सकलकर्मक्षयं कृत्वा, शरीरमौदारिकमिह परित्यज्य, सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं गतास्तिष्ठन्ति, तेषां निश्चयनयेन स्वतः स्थितिपरिणतानां तत्र साद्यपर्यवसितां स्थितिं प्रति तत्स्थानं सहकारि कारणं भवति। न तु तत् स्थानं तानवस्थातुं प्रेरयति।

(४) यथा व्यवहारनयेन सिद्धभक्त्या स्वयं समुत्पन्नसविकल्पध्यानावस्थितानां महात्मनां सविकल्पध्याने स्थितिं प्रति, निष्क्रियो मूर्त्तिरहितः प्रेरणारहितोऽपि सिद्धभगवान् सहायः सन् सहकारि कारणं भवति। न त्वसौ तान् तद्ध्याने स्थातुं प्रेरयति।

हुए क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो कर उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले हो कर समस्त कर्मों का क्षय करके औदारिक शरीर को यहीं त्याग कर सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो कर स्थिर हो जाते हैं। निश्चयनय से स्वयं स्थिति में परिणत हुए उन सिद्ध जीवों की सादि-अनन्त स्थिति में वह स्थान सहकारी कारण होता है, किन्तु वह स्थान उन्हें ठहरने के लिए प्रेरित नहीं करता।

(४) अथवा जैसे-व्यवहारनय से सिद्ध भगवान् की भक्तिसे स्वयं उत्पन्न हुए सविकल्प ध्यान में अवस्थित महात्मा पुरुषों की सविकल्प में जो स्थिति है, उस में अक्रिय अमूर्तिक और प्रेरणारहित भी सिद्ध भगवान् सहायक होने से निमित्त कारण होते हैं, किन्तु वे उन्हें ध्यान में स्थित होने की प्रेरणा नहीं करते।

આત્મસ્વરૂપનું ચિંતન કરતા થકા ક્ષપકશ્રેણી પર આરૂઢ થઈને ઉત્પન્ન કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનને ધારણ કરવા વાળા થઈને સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરીને ઔદારિક શરીરનો અહિં જ ત્યાગ કરીને સિદ્ધિગતિ નામના સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈ સ્થિર થઈ જાય છે. નિશ્ચયનયથી સ્વયં સ્થિતિમાં પરિણત થયેલા તે સિદ્ધ જીવોની સાદિ અનંત સ્થિતિમાં તે સ્થાન સહકારી કારણ હોય છે; પરંતુ તે સ્થાન તેને થોભવા માટે પ્રેરણા નથી કરતું.

(૪) અથવા-જેવી રીતે વ્યવહારનયથી સિદ્ધ ભગવાનની ભક્તિથી સ્વયં ઉત્પન્ન થયેલા સવિકલ્પ ધ્યાનમાં અવસ્થિત મહાત્મા પુરૂષોની સવિકલ્પ ધ્યાનમાં જે સ્થિતિ છે, તેમાં નિષ્ક્રિય, અમૂર્તિક અને પ્રેરણારહિત સિદ્ધ ભગવાન સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ હોય છે; પણ સિદ્ધ ભગવાન તેને ધ્યાનમાં સ્થિત થવાની પ્રેરણા કરતા નથી.

इदमेवाभिप्रेत्य भगवताऽभिहितम्—

"अहम्मो ठाणलक्खणो" इति (उत्तरा. अ. २८)

'अधर्मः स्थानलक्षणः' इति च्छाया। लक्ष्यते=दृश्यते परिचीयते अनेनेति लक्षणं=परिचायकं ज्ञापकम्। स्थानं=स्थितिरेव लक्षणं=ज्ञापकं यस्याऽसाविति स्थानलक्षणः। स्थितिकार्यानुमेयोऽधर्मास्तिकाय इत्याशयः।

अधर्मास्तिकायस्य-(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) स्थितिसहायकत्वमिति गुणाः।

(१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः।

इसी अभिप्राय से भगवान ने कहा—**"अहम्मो ठाणलक्खणो"** अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है। (उत्तरा० अ० २८) जिस के द्वारा कोई वस्तु लखी जाय (देखी जाय) या जो, वस्तु का परिचायक (परिचय कराने वाला) हो वह लक्षण कहलाता है। स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है, अर्थात् स्थितिरूप कार्य से जिस का अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं।

अधर्मास्तिकाय के गुण—(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व और स्थितिसहायकत्व हैं। (१) स्कन्ध, (२) देश (३) प्रदेश, और (४) अगुरुलघुत्व, अधर्मास्तिकाय के पर्याय हैं।

એ અભિપ્રાયથી ભગવાને કહ્યું છે કે—"अहम्मो ठाणलक्खणो" અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિ લક્ષણ વાળા છે. (ઉત્તરાધ્યયન. અ. ૨૮)

જેના દ્વારા કોઈ વસ્તુ લખી શકાય (દેખી શકાય) અથવા જે વસ્તુનો પરિચય કરાવનાર હોય તે લક્ષણ કહેવાય છે. સ્થાન અર્થાત્ સ્થિતિ જ જેનું લક્ષણ છે અર્થાત્ સ્થિતિરૂપ કાર્યથી જેનું અનુમાન થાય છે, તેને અધર્માસ્તિકાય કહે છે.

અધર્માકાયના ગુણ-(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ અને (૪) સ્થિતિસહાયકત્વ છે.

(૧) સ્કંધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ અધર્માસ્તિકાયના પર્યાય છે.

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा—अधर्मास्तिकायो द्रव्यत एकः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति, गुणतः स्थितिगुणः ।

ननु धर्माधर्मशब्दाभ्यां पुण्यपापरूपौ शुभाशुभफलदौ धर्माधर्मौ कथं नात्र गृह्येते ? इति चेत्, उच्यते—तयोर्गुणत्वेन द्रव्यप्रकरणे समावेशासंभवात् । किञ्च तौ धर्माधर्मौ पुण्यपापरूपौ पुद्गलत्वेनाभिमतौ पुद्गलद्रव्यान्तर्भूतौ, ततस्तयोर्न धर्माधर्मास्तिकायमध्ये समावेशः ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेदसे पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से आदि अन्त रहित है, भावसे अरूपी अर्थात् रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है, और गुण से स्थितिगुण वाला है ।

शङ्का—धर्म शब्द से शुभ फल देने वाले पुण्य का और अधर्म शब्द से अशुभ फल देने वाले पाप का ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पुण्य और पाप, द्रव्य नहीं, गुण हैं, इसी लिये इनका द्रव्यके प्रकरण में समावेश नहीं हो सकता । अथवा पुण्य-पाप रूप धर्म और अधर्म पुद्गल हैं, अतः उनका समावेश पुद्गल में ही हो जाता है । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में उन्हें गर्भित नहीं किया जा सकता ।

અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાંચ પ્રકારે જાણી શકાય છે. જેમકે—અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્યથી એક છે, ક્ષેત્રથી લોકપ્રમાણ છે, કાલથી આદિ-અન્ત રહિત છે, ભાવથી અરૂપી અર્થાત્ રૂપ, રસ ગંધ અને સ્પર્શથી રહિત છે, અને ગુણથી સ્થિતિગુણવાળા છે.

શંકા—ધર્મ શબ્દથી શુભ ફલ આપવા વાળા પુણ્ય અને અધર્મ શબ્દથી અશુભ ફલ આપવા વાળા પાપનું ગ્રહણ શા માટે કરવામાં આવતું નથી ?

સમાધાન—પુણ્ય અને પાપ, દ્રવ્ય નથી, ગુણ છે એટલા માટે દ્રવ્યનાં પ્રકરણમાં તેનો સમાવેશ થઈ શકતો નથી અથવા પુણ્ય-પાપરૂપ ધર્મ અને અધર્મ પુદ્ગલરૂપ છે, તેથી તેનો સમાવેશ પુદ્ગલમાં જ થઈ જાય છે. ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાયમાં તેને ગર્ભિત નથી કરી શકતા.

अथाकाशस्वरूपम्-

आ-समन्तात् काशते=अवगाहदानेन प्रतिभासते इत्याकाशम्, यद्वा-आकाशन्ते=दीप्यन्ते धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाः स्वस्वरूपेण यत्र तत्।

धर्माधर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारतयाऽवकाशं ददातीत्यवकाशदायित्वं लक्षणमाकाशास्तिकायस्य। अत्रावकाशदायित्वं व्यवहारनयेनौपचारिकम्। अस्तिकायशब्दः प्राग् व्याख्यातः। उक्तं चोत्तराध्ययनसूत्रे (२८ अध्ययने)—

" भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणम्।" इति।

आकाशका स्वरूप—

'आकाश' शब्द में 'आ' और 'काश' दो हिस्से हैं। 'आ' का अर्थ है—सभी ओर से—सर्वत्र, और 'काश' का अर्थ है—प्रकाशित होने वाला। तात्पर्य यह है कि अपने अवगाहदाननामक गुणसे सर्वत्र प्रभासित होता है, वह आकाश है। अथवा जहाँ धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव अपने—अपने स्वरूप से प्रकाशित होते हैं, उसे आकाश कहते हैं।

धर्म, अधर्म, आदि समस्त द्रव्यों का आधार होकर जो उन्हें आश्रय देता है, वही आकाश है। अवकाश देने वाला ही आकाश कहलाता है। यहाँ 'अवकाश देना' आकाश का जो लक्षण बतलाया गया है, वह व्यवहारनयसे उपचरित कथन है। 'अस्तिकाय' शब्द की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है। उत्तराध्ययन सूत्र (अ० २८) में कहा है:— "भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं" इति।

આકાશનું સ્વરૂપ—

'આકાશ' શબ્દમાં 'આ' અને 'કાશ' બે ભાગ છે. 'આ' નો અર્થ છે—ચારેય તરફથી—સર્વત્ર, અને 'કાશ'નો અર્થ છે પ્રકાશિત થવા વાળા, તાત્પર્ય એ છે કે—પોતાના અવગાહદાન (અવકાશ આપવો) નામના ગુણથી જે સર્વત્ર પ્રતિભાસિત હોય છે તે આકાશ છે, અથવા જ્યાં ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ પોતપોતાના સ્વરૂપથી પ્રકાશિત હોય છે—પ્રતીત થાય છે તેને આકાશ કહે છે.

ધર્મ, અધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર બની જે તેને આશ્રય આપે છે તે આકાશ છે. અવકાશ આપનાર જ આકાશ કહેવાય છે. અવકાશ આપવો તે આકાશનું લક્ષણ બતાવવામાં આવ્યું છે, તે વ્યવહારનયથી ઉપચારરૂપ કથન છે. 'અસ્તિકાય' શબ્દની વ્યાખ્યા પ્રથમ જ કહી દીધી છે, ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ.૨૮)માં કહ્યું છે કે— " भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं " ઈતિ.

'भाजनं सर्वद्रव्याणां, नभोऽवगाहलक्षणम्'। इति च्छाया।

सर्वद्रव्याणां भाजनम् = आधारः, इति हेतुगर्भविशेषणम्। यतः सर्व-द्रव्याणां भाजनम्, अतः अवगाहलक्षणं नभ इति भावः।

धर्माधर्मकालानामन्तः समावेशेन जीवपुद्गलानामौपचारिकसंयोगविभागाभ्यां चावगाहः। अवगाह्य तत्तद्देशरूपोपाधिभेदादवगाहस्य नानात्वेन संयोगविभागा उपपद्यन्ते।

अवगाहोऽवकाशः, स एव लक्षणं=ज्ञापकं यस्य तद् अवगाहलक्षणं नभः= आकाशं कथ्यते, इत्यर्थः। अवगाहदानकार्यानुमेयमाकाशमित्याशयः।

धर्माधर्मादिद्रव्याणामाधारान्यथाऽनुपपत्तेराकाशमस्तीति निःशङ्कं विश्व-

---

'आकाश' सब द्रव्यों का आधार है। सारांश यह है कि आकाश सब द्रव्यों का आधार होनेसे अवगाह-लक्षण वाला है।

'धर्मास्तिकाय' 'आधर्मास्तिकाय' और काल का आकाश में ही समावेश होने से जीव और पुद्गलों के औपचारिक संयोग और विभाग के द्वारा अवगाह होता है। अवगाह होने पर देश के भेद से अवगाह भी भिन्न हो जाता है और संयोग तथा विभाग उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य यह है कि—अवगाह या अवकाश ही जिस का लक्षण है, अर्थात् अवगाह से जिस का अनुमान होता है वह द्रव्य आकाश है।

आकाश न होता तो धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों की स्थिति कहां होती? अर्थात् उनका कोई आधार ही नहीं रहता, अत एव आकाश का अस्तित्व, किसी प्रकार की शङ्का किये

આકાશ સર્વદ્રવ્યોનો આધાર છે. સારાંશ એ છે કે આકાશ સર્વ દ્રવ્યોનો આધાર હોવાથી અવગાહન લક્ષણવાળું છે.

ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય અને કાલનો આકાશમાં સમાવેશ હોવાથી જીવ અને પુદ્ગલોનો ઔપચારિક સંયોગ અને વિભાગ દ્વારા અવગાહ થાય છે, અવગાહ થવાથી દેશના ભેદથી અવગાહ પણ ભિન્ન થઇ જાય છે, અને સંયોગ તથા વિભાગ ઉત્પન્ન થાય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-અવગાહ અથવા અવકાશ જ જેનું લક્ષણ છે, અર્થાત અવગાહથી જેનું અનુમાન થાય છે તે દ્રવ્ય આકાશ છે. અથવા આકાશ ન હોય તો ધર્મ, અધર્મ આદિ દ્રવ્યોની સ્થિતિ કયાં હોય? અર્થાત્ તેનો કોઈ આધાર જ

सनीयम् , इत्यपि भगवता बोधितम् । आकाशसिद्ध्यर्थं ' भायणं सव्वद्व्वाणं'– इति, ' ओगाहलक्खणं ' इति च विशेषणद्वयमुपात्तम् ।

आकाशं द्विविधम्–लोकालोकभेदात् , उक्तं च स्थानाङ्गसूत्रे—

" दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा–लोगागासे चेव अलोगागासे चेव " इति । द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव, इति च्छाया । धर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारभूतमसंख्यातप्रदेशात्मकमाकाशखण्डं लोकाकाशम् । तद्भिन्नमनन्तप्रदेशात्मकमलोकाकाशम् ।

ननु धर्माधर्मद्रव्यस्वीकारे प्रयोजनं न किमपि पश्यामः, जीव–पुद्गलानां गतिस्थितिकार्ययोः सहायरूपं कारणं त्वाकाशमेव स्यात् ? ।

विना विश्वास करने योग्य है, यह भी भगवान् ने उक्त कथन से ध्वनित कर दिया है । आकाश की सिद्धि के लिये ' **भायणं सव्वदव्वाणं** ' और '**ओगाहलक्खणं**' ये दो विशेषण लगाये गये हैं ।

आकाश दो प्रकार का है–लोकाकाश, और अलोकाकाश । स्थानाङ्गसूत्र में कहा है–
"दुविहे आगासे पन्नत्ते तं जहा–लोगागासे चेव अलोगागासे चेव"

धर्म आदि सब द्रव्यों का आधार और असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड, लोकाकाश कहलाता है । लोकाकाश से भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है ।

शङ्का–जब कि आकाश ही जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति में सहायक कारण हो सकता है तो फिर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को स्वीकार करने का कोई

न रहेत, એટલા માટે આકાશના અસ્તિત્વ, કોઈ જાતની પણ શંકા કર્યા વગર વિશ્વાસ કરવા યોગ્ય છે; એ પણ ભગવાને ઉક્ત કથનથી ધ્વનિત કર્યું છે. આકાશની સિદ્ધિ માટે 'भायणं सव्वदव्वाणं' અને 'ओगाहलक्खणं' આ બે વિશેષણ લગાવેલા છે.

આકાશ બે પ્રકારના છે. (૧) લોકાકશ અને (૨) અલોકાકાશ. સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યું છે –" दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा–लोगागासे चेव अलोगागासे चेव'

ધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર અને અસંખ્યાતપ્રદેશરૂપ આકાશખંડ તે લોકાકાશ કહેવાય છે. લોકાકાશથી ભિન્ન અનન્તપ્રદેશી અલોકાકાશ છે.

શંકા–જો કે આકાશ જ જીવ અને પુદ્ગલોની ગતિ અને સ્થિતિમાં સહાયક કારણ થઈ શકે છે તો પછી ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્યોનો સ્વીકાર

अत्रोच्यते-धर्मश्चाधर्मश्चेति द्रव्यद्वयमवश्यमङ्गीकरणीयम्, अन्यथा दोषबाहुल्यप्रसङ्गात्।

(१) आकाशस्य गतिहेतुत्वस्वीकारे जीवपुद्गलानामलोकाकाशगमनापत्तिः।

(२) अलोकाकाशस्यापि जीवपुद्गलपूर्णत्वे लोकत्वप्रसंगः, तथा चालोकाकाशस्य नामाऽपि वन्ध्यापुत्रवदेव स्यात्।

(३) भगवत्प्ररूपिताऽऽकाशद्वैविध्यव्यवस्थाऽपि न सिद्ध्येत्।

प्रयोजन दिखाई नहीं देता।

समाधान-धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य अवश्य स्वीकार करना चाहिये। उन्हें स्वीकार न करने से बहुतसे दोष आते हैं। वे इस प्रकार-

(१) आकाश को ही गति का कारण मान लिया जाय तो जीवों और पुद्गलों का अलोकाकाश में भी गमन मानना पडेगा, क्योंकि अलोकाकाश भी तो आखिर आकाश ही है।

(२) अलोकाकाश अगर जीवों और पुद्गलों से व्याप्त मान लिया जाय तो वह अलोकाकाश न रहकर लोकाकाश ही हो जायगा। ऐसी स्थिति में अलोकाकाश तो वन्ध्यापुत्र के समान हो जायगा, अर्थात् अलोकाकाश का अस्तित्व नहीं रहेगा।

(३) भगवान् ने दो प्रकार का आकाश बतलाया है, वह व्यवस्था भङ्ग हो जायगी।

કરવાનું કોઈ પણ પ્રયોજન જોવામાં આવતું નથી.

સમાધાન-ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યનો અવશ્ય સ્વીકાર કરવો જોઈએ, તેનો સ્વીકાર નહિ કરવાથી બહુ જ દોષ આવે છે, તે આ પ્રમાણે-

(૧) આકાશને જ ગતિનું કારણ માની લેવામાં આવે તો જીવો અને પુદ્ગલોનું અલોકાકાશમાં પણ ગમન માનવું પડશે; કેમકે અલોકાકાશ પણ છેવટે તો આકાશ જ છે.

(૨) અથવા અલોકાકાશ જીવો અને પુદ્ગલોથી વ્યાપ્ત માની લેશો તો તે અલોકાકાશ નહિ રહેતાં લોકાકાશજ થઈ જશે; એવી સ્થિતિમાં અલોકાકાશ તો વન્ધ્યા પુત્રના સમાન થઈ જશે, અર્થાત્ અલોકાકાશનું અસ્તિત્વ જ રહેશે નહિ.

(૩) ભગવાને બે પ્રકારના આકાશ બતાવ્યાં છે, તે વ્યવસ્થા ભંગ થઈ જશે.

(४) अपिच–सिद्धभगवान् ऊर्ध्वं गत्वा लोकाग्रेऽवस्थित इति मर्यादाऽपि खपुष्पायमाणैव स्यात् ।

(५) भवन्मते गतिकारणीभूतस्याकाशस्योर्ध्वदेशे विद्यमानत्वात्तस्य (सिद्धस्य) गतेरवरोधाभावो भवेत् ।

धर्माधर्मद्रव्ययोराकाशतः पृथक् स्वीकारे तु लोकाकाशत उर्ध्वमलोकाकाशस्य सत्त्वेन तत्र गतिहेतोर्धर्मस्याभावान्न गतिर्भवति । स्थितिहेतोरधर्मद्रव्यस्य लोकान्तर्वर्त्तित्वेन लोकमध्य एवोपरिभागे गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य साहाय्येन गत्वा तत्रैवाधर्मद्रव्यसाहाय्येन तिष्ठति । एवं च लोकाग्रे भगवानवस्थितो जले

---

(४) सिद्ध भगवान् उपर जाकर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाते हैं, यह आगम की मर्यादा भी आकाशपुष्प के समान हो जायगी ।

(५) आप के मत के अनुसार गतिका कारण आकाश है और वह उर्ध्व देश में लोकाकाश के अग्रभाग से भी आगे विद्यामान है, अतः सिद्धों की गति में रुकावट नहीं होगी।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को आकाश से भिन्न मान लेने से लोकाकाश से उपर अलोकाकाश में गति का कारण धर्मद्रव्य नहीं है, अतः लोकाकाश से आगे गति भी नहीं होती, तथा स्थिति का कारण अधर्मद्रव्य लोक के अन्तर्गत ही है, अतः धर्मद्रव्य की सहायतासे सिद्ध जीव, लोक के अन्त तक पहुँच कर अधर्म की सहायता से वहीं अर्थात् लोकाकाशके

---

(४) સિદ્ધ ભગવાન ઉપર જઈને લોકના અગ્રભાગમાં સ્થિત થાય છે, તે આગમની મર્યાદા પણ આકાશ–પુષ્પના સમાન થઈ જશે.

(૫) આપના મત પ્રમાણે ગતિનું કારણ આકાશ છે અને તે ઉર્ધ્વ–ઉપરના દેશમાં લોકાકાશના અગ્રભાગથી પણ આગળ વિદ્યમાન–હૈયાત છે, તેથી સિદ્ધોની ગતિમાં રૂકાવટ–રોકાણ નહિ થાય.

ધર્મ દ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યને આકાશથી ભિન્ન માની લેવાથી લોકાકાશથી ઉપર અલોકાકાશમાં ગતિનું કારણ ધર્મદ્રવ્ય નથી, તેથી લોકાકાશથી આગળ ગતિ પણ થતી નથી, તથા સ્થિતિનું કારણ અધર્મદ્રવ્ય લોકના અન્તર્ગતજ (અંદરજ) છે, તેથી ધર્મદ્રવ્યની સહાયતાથી સિદ્ધ લોકના અંત સુધી પહોંચીને અધર્મદ્રવ્યની

तुम्बीवदिति मर्यादा सुतरामुपपद्यते । उक्तं चौपपातिकसूत्रे-

"कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ।
कहिं बोंदिं चइत्ता णं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ १ ॥
अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इह बोंदिं चइत्ता णं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥२॥" इति ।

छाया—

"कुत्र प्रतिहताः सिद्धाः, कुत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
कुत्र बोन्दिं (शरीरं) त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिद्धयति ॥१॥
अलोके प्रतिहताः सिद्धाः, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।
इह बोंदिं (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धयति ॥ २ ॥ इति

अन्तर्गत ही ठहर जाता है। इस प्रकार जलके अग्रभाग पर ठहरे हुए तुंबे के समान सिद्ध भगवान् लोकाकाश के अग्रभाग पर स्थित है, यह मर्यादा स्वतः सिद्ध हो जाती है।

औपपातिकसूत्र में कहा है—

"सिद्ध भगवान् कहाँ रुकजाते हैं? कहाँ स्थित होते हैं?। कहाँ शरीर का त्याग करके कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं? ॥१॥

सिद्ध भगवान् अलोक में रुक जाते हैं, लोकके अग्रभाग में स्थित होते हैं। यहाँ शरीर का त्याग करके वहाँ जाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥२॥"

સહાયતાથી ત્યાં જ અર્થાત્ લોકાકાશના અંદરજ થોભી જાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે જલના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિત રહેલા તુંબડાની પેઠે સિદ્ધ ભગવાન લોકાકાશના અગ્રભાગ ઉપર સ્થિત છે. આ મર્યાદા સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જાય છે. ઔપપાતિક સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે—

" સિદ્ધ ભગવાન કયાં રોકાઈ જાય છે ? કયાં સ્થિત થાય છે ? કયાં શરીરનો ત્યાગ કરીને, કયાં જઈને સિદ્ધ થાય છે ? ॥ ૧ ॥

સિદ્ધ ભગવાન અલોકમાં રોકાઈ જાય છે, લોકના અગ્રભાગમાં સ્થિત થાય છે, અહિં શરીરનો ત્યાગ કરીને ત્યાં જઈને સિદ્ધ થઈ જાય છે. ॥ ૨ ॥ "

नन्वेवं धर्माधर्मद्रव्ये एव समाद्रियेताम्, किमाकाशद्रव्यावलम्बनेन, आकाशकार्यावगाहसाहाय्यं धर्माधर्मद्रव्याभ्यामेव संपद्येत ?, इति चेत्, उच्यते-सिद्धान्ते तयोर्जीवादिगतिस्थितिसाधकत्वेन सिद्धान्तितत्वादवकाशं दातुं तौ न प्रभवतः। अन्यसाध्यं कार्यमन्यो न साधयति, अन्यथाऽतिप्रसंगात्। लोकेऽपि चक्षुस्साध्यं दर्शनकार्यं न श्रोत्रं साधयति।

ननु केवलज्ञानस्य योऽनन्ततमो भागस्तत्प्रमाणमेव नभोद्रव्यम्, तस्य चानन्ततमभागपरिमितं लोकाकाशम्, एतादृशेऽल्पतमरूपे लोकाकाशे लोकाकाश-

---

शङ्का—यदि ऐसा हो तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ही स्वीकार करलेने चाहिये, फिर आकाश की क्या आवश्यकता है ? आकाश का कार्य अवगाह देना है सो वह कार्य धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य से ही सम्पन्न हो जायगा।

समाधान—आगम में धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को गति और स्थिति में ही सहायक बतलाया है, इस लिए वह अवकाश देने में समर्थ नहीं है, और का कार्य कोई और नहीं कर सकता। अगर ऐसा होने लगे तो सर्वत्र गडबड हो जायगा। लोक में चक्षुका देखना कार्य कान नहीं कर सकता।

शङ्का—केवल ज्ञान का जो अनन्तवाँ भाग है उसी के बराबर आकाशद्रव्य है, और आकाश-द्रव्य का भी अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है तो इतने छोटे से लोकाकाश में समस्त लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशवाले धर्मद्रव्य का, अधर्मद्रव्य का, अनन्तानन्त जीवों का

શંકા—જો એ પ્રમાણે છે તો ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યનો સ્વીકાર કરી લેવો જોઇએ, ફરીને આકાશની શું આવશ્યકતા છે? આકાશનું કાર્ય અવગાહ–અવકાશ આપવો તે છે, તે કાર્ય ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મ દ્રવ્યથી જ સંપન્ન થઈ જશે.

સમાધાન—આગમમાં ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યને ગતિ અને સ્થિતિમાં સહાયક બતાવ્યા છે, એટલા માટે તે અવકાશ આપવામાં સમર્થ નથી. બીજાનું કાર્ય કોઇ બીજો નહિ કરી શકે, જો એમ થવા લાગશે તો સર્વત્ર ગડબડ થઈ જશે. જગતમાં નેત્રથી જોવાનું કાર્ય કાન કરી શકતા નથી.

શંકા—કેવલજ્ઞાનનો જે અનંતમો ભાગ છે તેના બરાબર આકાશદ્રવ્ય છે, અને આકાશદ્રવ્યનો પણ અનંતમો ભાગ લોકાકાશ છે, તો એવડા નાના સરખા લોકાકાશમાં સમસ્ત લોકવ્યાપી અને અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા ધર્મદ્રવ્યનો, અધર્મ-

व्यापिनोः प्रत्येकमसंख्यातप्रदेशात्मकयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोरनन्तजीवानां तेभ्योऽ-प्यनन्तगुणपुद्गलानां च कथं समावेशः, एकस्य लोकाकाशस्य सर्वद्रव्यावकाशदाना-संभवात्?, इति चेदुच्यते—

लोकाकाशस्यावकाशशक्तिर्हि महीयसी विलक्षणा चिन्तयितुमशक्या च, अत एव भगवता—"भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं" इत्युक्तम्।

नभसोऽवकाशशक्तिं केवलालोकेनावलोक्य सर्वद्रव्याणामाधारत्वं भगवता प्रतिबोधितम्। महीयसी नभसोऽवकाशशक्तिः, सुकरोऽत्र सर्वद्रव्याणां समावेश इति तदाशयः।

यथा—बतासानामधेयं मधुरद्रव्यं दुग्धपरिपूरितेऽपि भाजने निहितं सत्

और उन से भी अनन्तगुने पुद्गलोंका समावेश किस प्रकार हो सकता है? एक लोकाकाश समस्त द्रव्यों को अवगाह दे सके, यह असम्भव है।

समाधान—लोकाकाश को अवकाश देने की शक्ति महान् है, विलक्षण है, और अचिन्त्य है, इसीलिये तो भगवान् ने कहा है-"**भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं**" अवगाहलक्षण वाला आकाश सब द्रव्यों का आधार है।

भगवान् ने अपने केवलज्ञान में आकाश की अवगाहदानशक्ति को देखकर उसे सब द्रव्यों का आधार निरूपण किया है। भगवान् के कथन का अभिप्राय यही है कि आकाश की अवगाहनाशक्ति बहुत बडी है, उस में सब द्रव्यों का समावेश सरलता से हो जाता है।

जैसे-दूध से परिपूर्ण पात्र में बतासे डाल दिये जायँ तो वे उसी में समाविष्ट हो

द्रव्यनो, अन्तानन्त જીવોનો અને તેનાથી પણ અનન્તગણા પુદ્ગલોનો સમાવેશ કેવી રીતે થઈ શકે? એક લોકાકાશ સમસ્ત દ્રવ્યોનો અવગાહ-અવકાશ આપી શકે, એ અસંભવ છે.

સમાધાન—લોકાકાશની અવકાશ આપવાની શક્તિ મહાન છે, વિલક્ષણ છે અને અચિન્ત્ય છે એટલા માટે ભગવાને કહ્યું છે—"भायणं सव्वदव्वाणं नहं ओगाहलक्खणं" અવગાહલક્ષણવાળા આકાશ સર્વ દ્રવ્યોનો આધાર છે. ભગવાને પોતાના કેવલ જ્ઞાનમાં આકાશની અવગાહદાન-અવકાશ આપનારી-શક્તિ જોઈને તેને 'સર્વ દ્રવ્યનો આધાર છે' એમ નિરૂપણ કર્યું છે. ભગવાનના વચનનો અભિપ્રાય એ છે કે-આકાશની અવગાહનશકિત બહુ જ મોટી છે, અને તેમાં સર્વ દ્રવ્યોનો સમાવેશ સરલતાથી થઈ જાય છે.

જેવી રીતે દૂધના પરિપૂર્ણ પાત્રમાં પતાસાં નાખવામાં આવે તો તે તેમાં

तस्मिन् समाविशति। यथा वा भित्तौ शङ्कोः समावेशस्तथैवानन्तद्रव्याणां लोकाकाशे समावेश इति बोध्यम्।

नन्वलोकाकाशस्य कथं सिद्धिः, नासौ हि द्रव्याणामाधारः, नाप्यवकाशदायित्वं तस्य?, इति चेत्, उच्यते-गतिस्थितिकारणयोधर्माधर्मयोरभावादेव तत्र विद्यमानापि द्रव्याधारताशक्तिरवकाशदानशक्तिश्च नाभिव्यक्ता भवति। तदस्वीकारे तु जीवपुद्गलानां कर्मनिगडविमुक्तसिद्धानां चोर्ध्वगतिविरामो न स्यात्, भगवत्प्रतिबोधितलोकालोकव्यवस्थाऽपि न तिष्ठेत्, एवं चागमयुक्तिप्रमाणाभ्यामलोकाकाशं सिद्धम्।

जाते हैं, अथवा जैसे दीवाल में कील का समावेश हो जाता है उसी प्रकार लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश हो जाता है।

शङ्का- अलोकाकाश की सिद्धि कैसे होती है? न तो वह द्रव्यों का आधार है, न अवकाशदानरूप लक्षण ही उस में घटित होता है?

समाधान—गति और स्थिति के कारण धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण ही अलोकाकाशकी द्रव्याधारता की शक्ति और अवकाशदानशक्ति प्रकट नहीं होती है। अगर अलोकाकाश न माना जाय तो जीवों और पुद्गलों की, तथा धर्मरूपी बेडी से मुक्त हुए सिद्ध जीवों की गति का अन्त ही न होगा, और भगवान् की कही हुई लोक अलोक की व्यवस्था भी कायम नहीं रहेगी। इस प्रकार आगम और युक्ति प्रमाणों से अलोकाकाश की सिद्धि होती है।

(દૂધમાં) સમાવિષ્ટ—ઓતપ્રોત થઈ જાય છે, અથવા જેવી રીતે દીવાલમાં કીલ—ખીલીનો સમાવેશ થઈ જાય છે, તે પ્રમાણે લોકાકાશમાં અનન્ત દ્રવ્યોનો સમાવેશ થઈ જાય છે.

શંકા—અલોકાકાશની સિદ્ધિ કેવી રીતે હોઈ શકે? તે દ્રવ્યોનો આધાર નથી અને અવકાશદાનરૂપ લક્ષણ તેનામાં ઘટી શકતું નથી.

સમાધાન—ગતિ અને સ્થિતિના કારણ ધર્મ અને અધર્મ દ્રવ્યનો અભાવ હોવાના કારણે જ અલોકાકાશની દ્રવ્યાધારતાની શકિત અને અવકાશદાન—શક્તિ પ્રગટ થતી નથી. અથવા અલોકાકાશ માનવામાં નહિ આવે તો જીવો અને પુદ્‌ગલોની, તથા કર્મરૂપી બેડીથી મુકત થયેલા સિદ્ધ જીવોની ગતિનો કયાંય અન્ત—છેડો જ નહિ આવે, અને ભગવાને કહેલી લોક—અલોકની વ્યવસ્થા પણ કાયમ નહિ રહે. એ પ્રમાણે આગમ અને યુકિત પ્રમાણોથી અલોકાકાશની સિદ્ધિ થાય છે,

अन्यसकलद्रव्यापेक्षया महत्परिमाणमाकाशस्य, अनन्तप्रदेशित्वात्। तेनाकाशं महास्कन्धरूपम्।

आकाशास्तिकायस्य (१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्, (४)-अवगाहदायित्वं चेति गुणाः। (१)-स्कन्धः, (२)-देशः, (३)-प्रदेशः, (४)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एक आकाशास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति। गुणतोऽवकाशदायी।

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यों की अपेक्षा बडा है, क्योंकि वह अनन्तप्रदेशी है, अतः आकाश महास्कन्धरूप है।

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व, (४) अवगाहदायित्व, ये आकाशास्तिकाय के गुण हैं। (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व, उसके पर्याय हैं।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुणके भेदसे आकाश द्रव्य पाँच प्रकार से जाना जाता है। जैसे द्रव्य से आकाशास्तिकाय एक है, क्षेत्र से लोकालोकप्रमाण है, काल से आदि-अन्त रहित है-भावसे अरूपी है, उस में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं पाये जाते। गुणसे अवकाश देने वाला है।

આકાશનું પરિમાણ બીજાં સર્વ દ્રવ્યોની અપેક્ષાએ મોટું છે, કેમકે તે અનન્તપ્રદેશી છે. એટલે કે આકાશ મહાસ્કંધરૂપ છે.

(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ (૪) અવગાહદાયિત્વ, એ આકાશાસ્તિકાયના ગુણ છે, અને (૧) સ્કંધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, તથા અગુરુ-લઘુત્વ, તેના પર્યાય છે.

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ભાવ અને ગુણના ભેદથી આકાશ દ્રવ્ય પાંચ પ્રકારથી જાણી શકાય છે. જેમકે—દ્રવ્યથી આકાશાસ્તિકાય એક છે, ક્ષેત્રથી લોકાલોકપ્રમાણ છે, કાલથી આદિ-અન્તરહિત છે, ભાવથી અરૂપી છે-તેમાં વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ નથી, ગુણથી અવકાશ આપવાવાળું છે.

कालनिरूपणम्—

तत्र कालशब्दस्य व्युत्पत्तिः—

कल्यते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति कालः। करणे घञ्। 'मासिकोऽयं बालः, वार्षिकोऽयं बालः, वासन्तिकमिदं पुष्पम्' इत्यादिरूपेण वस्तूनां परिच्छेदो=निर्णयः कालमाश्रित्य भवति।

अथवा स्वभावतः परिणमद्भिः पदार्थजातैः, कल्यते=गम्यते=प्राप्यते निमित्तत्वेनाऽसौ, इति कालः। सकलवस्तुपरिणतिहेतुः काल इत्यग्रे वक्ष्यते।

कालनिरूपण—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

जिस के द्वारा वस्तु कली जाय अर्थात् जानी जाय वह काल है। यहाँ करणमें '**घञ्**' प्रत्यय हुआ है। यह बालक मासिक (एक मासका) है, यह बालक वार्षिक (वर्ष भरका) है, यह फूल वासंतिक (वसन्तऋतुसम्बन्धी है, इस रूपमें वस्तुओं का ज्ञान काल के द्वारा ही होता है।

अथवा स्वभावसे परिणत होने वाले पदार्थ समूहों द्वारा निमित्त रूपमें जो प्राप्त किया जाय वह काल कहलाता है। 'काल, समस्त वस्तुओं के परिणमन का हेतु है यह बात आगे बतलाई जायगी।

કાલનિરૂપણ—

કાલ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ—

જેના દ્વારા વસ્તુ જાણી શકાય તે કાલ છે. અહિં કરણમાં '**ઘञ्**' પ્રત્યય થયો છે "આ બાલક માસિક–એક માસનો છે, આ બાલક વાર્ષિક–એક વર્ષનો છે, આ ફૂલ વાસંતિક–વસંતઋતુસંબંધી છે" એ રૂપમાં વસ્તુઓનું જ્ઞાન કાલ દ્વારા જ થાય છે.

અથવા સ્વભાવથી પરિણત થવાવાળા પદાર્થસમૂહો દ્વારા નિમિત્તરૂપમાં જે પ્રાપ્ત કરી શકાય તે કાલ કહેવાય છે. "કાલ સમસ્ત વસ્તુઓના પરિણમનનું કારણ છે" એ આગળ બતાવવામાં આવશે.

कालस्य सिद्धिः—

'पदार्थाः सन्ति, अथवा पदार्था वर्तन्ते' इति व्यवहारो वर्तनामूलः। "अनुदात्तेतश्च हलादे"-रिति पाणिनिसूत्रेण वृतधातोर्युच्प्रत्ययः। वर्तनशीला वर्तना। उत्पत्तिः, अप्रच्युतिः, विद्यमानताख्या वृत्तिः=क्रिया वर्तना। इयं वर्तना सर्वेषु भावेषु विद्यते। वर्तना=पदार्थानां परिणामविशेषः। पदार्थानां वर्तनारूपं कार्यं नोपपद्यते विना केनचिन्निमित्तकारणेन, तस्माद् वर्तनारूपकार्योत्पत्तौ यन्निमित्तं धर्मद्रव्यमिव गतौ, स एव काल इत्युच्यते।

काल की सिद्धि—

'पदार्थ है, या पदार्थ वर्त रहे हैं' इस प्रकार के व्यवहार का कारण वर्तना है। **'अनुदात्तेतश्च हलादेः'** पाणिनि के इस सूत्र से **'वृतु'** धातु से **'युच्'** प्रत्यय हुआ है। वर्तनशील हो उसे वर्तना कहते हैं। उत्पत्ति, अप्रच्युति, और विद्यमानतारूप वृत्ति अर्थात् क्रिया वर्तना कहलाती है। यह वर्तना सभी पदार्थों में विद्यमान है। वह पदार्थों का विशेष परिणाम है। पदार्थों का वर्तनारूप कार्य किसी निमित्त कारण विना नहीं हो सकता अतः वर्तनारूप कार्यकी उत्पत्ति में जो निमित्त कारण है, वही काल-द्रव्य है, जैसे गति का निमित्त कारण धर्म द्रव्य है।

કાલની સિદ્ધિ—

'પદાર્થ છે અથવા પદાર્થ વર્ત્ત રહેલ છે' એ પ્રકારના વ્યવહારનું કારણુ વર્ત્તના છે 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' પાણિનિના આ સૂત્રથી 'वृतु' ધાતુથી 'युच्' પ્રત્યય થયો છે. જે વર્તનશીલ હોય તેને વર્ત્તના કહે છે. ઉત્પત્તિ, અપ્રચ્યુતિ, અને વિદ્યમાનતારૂપ વૃત્તિ, અર્થાત્ ક્રિયા વર્તના કહેવાય છે. વર્તના સર્વ પદાર્થોમાં વિદ્યમાન છે. તે, પદાર્થોનું વિશેષ પરિણામ છે. પદાર્થોનું વર્તનારૂપ કાર્ય કોઈ નિમિત્ત કારણુ વિના થઈ શકતું નથી. તેથી વર્તનારૂપ કાર્યની ઉત્પત્તિમાં જે નિમિત્ત કારણુ છે તે કાલ દ્રવ્ય છે. જેવી રીતે ગતિનું નિમિત્ત કારણુ ધર્મ-દ્રવ્ય છે.

कालस्य लक्षणम्—

स्वभावतो विद्यमानानां पदार्थानां या विद्यमानताख्या वर्तना, तां प्रति सहकारिकारणत्वं कालस्य लक्षणम् ।

अनेनैवाशयेन भगवताऽप्युक्तम्-"वट्टणालक्खणो कालो" इति, वर्तनालक्षणः कालः, इति च्छाया । वर्तना, लक्षणं=कार्यत्वेन प्रत्यायकं, यस्य स वर्तनालक्षणः, वर्तनाकार्यानुमेयः काल इत्यर्थः । अत्र वर्तनेत्युपलक्षणं परिणामक्रिया-परत्वापरत्वादीनाम् ।

परिणामो हि वस्तूनां नोपपद्यते कारणं नियामकमन्तरेण, अन्यथा नियामकहेत्वभावे सर्वे भावा युगपदुत्पद्येरन् । किञ्च-कारणमन्तरेणापि कार्योत्पत्तिः

काल का लक्षण—

स्वभाव से विद्यमान पदार्थों की विद्यमानतारूप जो वर्तना है उस में सहकारी कारण होना काल का लक्षण है, इसी अभिप्राय से भगवान्ने भी कहा है-"वट्टणालक्खणो कालो" "काल वर्तनालक्षण वाला है ।" वर्तना है लक्षण अर्थात् ज्ञापक जिस का, अर्थात् वर्तनारूप कार्य से जिसका अनुमान होता है उसे काल कहते हैं । वहाँ वर्तना उपलक्षण है उससे परिणाम, क्रिया, परत्व, (पहलापन), और अपरत्व (पीछापन) का भी ग्रहण हो जाता है ।

नियामक कारणके अभाव में पदार्थों का परिणमन नहीं हो सकता, अगर ऐसा न माना जाय तो सभी पदार्थों की एक साथ ही उत्पत्ति होने लगेगी । तथा कारण के विना भी

કાલનું લક્ષણ-

સ્વભાવથી વિદ્યમાન પદાર્થોની વિદ્યમાનતારૂપ જે વર્ત્તના છે, તેમાં સહકારી કારણ થવું તે કાલનું લક્ષણ છે. આ અભિપ્રાયથી ભગવાને પણ કહ્યું છે—

"वट्टणालक्खणो कालो" કાલ વર્ત્તનાલક્ષણ વાળો છે વર્ત્તના છે લક્ષણ અર્થાત્ જ્ઞાપક જેનું, અર્થાત્ વર્ત્તનારૂપ કાર્યથી જેનું અનુમાન થાય છે. તેને કાલ કહે છે. વર્ત્તના ઉપલક્ષણ છે તેથી પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ (પહેલાપણું) અને અપરત્વ (પાછાપણું)નું ગ્રહણ થઈ જાય છે.

નિયામક કારણના અભાવમાં પદાર્થનું પરિણમન થતું નથી. જો એવું માનવામાં ન આવે તો સર્વ પદાર્થોની એક સાથે જ ઉત્પત્તિ થઈ જશે, તથા કારણ વિના પણ

प्रसज्येत, अपराधीनत्वात् परिणामानाम्, अतः परिणामाः प्रतिनियतकालभाविनः, तेषामनेकशक्तियुक्तमेकं कारणं कालाख्यमित्यवश्यमङ्गीकरणीयम् ।

तास्ताश्च शक्तयः स्वस्वकार्यकरणाय कालविशेष एव प्रवर्तन्ते, न सर्वदा, तादृशस्वभाववत्त्वात् । यथा-अङ्कुररूपेण परिणतस्य वनस्पतेर्मूल-काण्ड-त्वक्-पत्र-स्कन्ध-शाखा-विटप-पुष्प-फलरूपाः परिणामा न युगपद् भवन्ति । आसीदङ्कुरः, संप्रति स्कन्धवान्, ऐषमः पुष्पिष्यति' इति व्यवहारात् । यथा वा पुरुषस्य बाल-कुमार-युव-मध्यमाद्यवस्थारूपाः, नव-पुराण प्रनष्टरूपाश्च परिणामा न युगपद् भवन्ति,

---

कार्य की उत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा, क्योंकि परिणाम किसी कारण पर निर्भर तो होंगे नहीं, विना कारण ही होंगे, लेकिन ऐसा नहीं होता, परिणाम नियत समय पर ही होते हैं, अतः अनेक शक्तियों से युक्त एक काल नामक कारण अङ्गीकार करना चाहिए ।

वह अनेक शक्तियाँ अपना अपना कार्य करने के लिये किसी विशेष काल में ही उद्यत होती है, सर्वदा नहीं, क्योंकि उन का स्वभाव ही ऐसा है, जैसे कि-अङ्कुररूप से परिणत वनस्पति का मूल, काण्ड, त्वचा, पत्र, स्कन्ध, शाखा, विटप, पुष्प और फल रूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं। पहले अंकुर था, अब स्कन्धवाला हो गया, कुछ दिनों के बाद वह फूलेगा, इस प्रकार का लोकव्यवहार प्रसिद्ध ही है । अथवा-जैसे पुरुष के बाल, कुमार, युवा, मध्यम आदि अवस्था, तथा

કાર્યની ઉત્પત્તિનો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થશે. કેમકે પરિણામ કોઇ પર નિર્ભર રહેશે નહિ, વિના કારણે જ થશે, પરન્તુ એવી રીતે હોય નહિ. પરિણામ નિયત સમય પર જ હોય છે, એટલા માટે અનેક શક્તિઓથી યુક્ત એક કાલ નામનું કારણ અંગીકાર કરવું જોઇએ.

તે અનેક શક્તિઓ પોત-પોતાનું કાર્ય કરવા માટે કોઈ વિશેષ કાલમાં જ ઉદ્યત-પ્રકાશિત થાય છે. સર્વદા થતી નથી. કેમકે તેનો સ્વભાવ જ એવો છે, જેમકે—અંકુરરૂપથી પરિણત વનસ્પતિનું મૂળ, કાંડ-કાતળી, છાલ, પત્ર, સ્કંધ, શાખા, વિટપ-ડાળી, પુષ્પ, ફળ-રૂપ પરિણમન એક સાથે થતાં નથી. પ્રથમ અંકુર હતું, પછી સ્કંધવાળું થયું, અને કેટલાક દિવસો પછી તે ફૂલશે, એ પ્રમાણે લોકવ્યવહાર પણ પ્રસિદ્ધ જ છે. અથવા જેવી રીતે પુરુષને બાલ્ય, કુમાર, યુવા, મધ્યમ આદિ અવસ્થા, તથા નવાપણું અને જુનાપણું અને પ્રનષ્ટ-નાશરૂપ પરિણમન એક સાથે થતું નથી, એટલા માટે સમસ્ત પરિણામોનું નિયામક નિમિત્ત

तस्मात्सर्वेषां परिणामानां नियामकं निमित्तकारणं काल इति सिद्धम्। यथा कर्त्तरी वस्त्रकुन्तने निमित्तकारणं तथा द्रव्याणां पर्याये निमित्तकारणं कालः।

क्रिया=द्रव्यपरिणामः। तस्या अपि नियामकं निमित्तकारणं कालः। यथा–'आकाशदेशे–अङ्गुलिरस्ति, आसीत्, भविष्यति च' इत्ययं व्यवहारः कालमवलम्ब्य संपद्यते, कालस्यासत्त्वे त्वतीत एव वर्तमानोऽनागतश्च स्यात्, क्रियानियामकाभावात्, एवमतीतादिविभागाभावे व्यवहारोच्छेदापत्तिः, तस्मात् "अस्ति कालः यमाश्रित्यातीतादिव्यवहाराः सुस्पष्टं प्रसिध्यन्ति" इति, मन्तव्यम्।

नयापन, पुरानापन, और प्रनष्टरूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं, अत एव समस्त परिणामों का नियामक निमित्त कारण काल ही सिद्ध होता है। जैसे कैंची वस्त्र काटने में निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार द्रव्यों के परिणमन में काल निमित्त कारण होता है।

क्रिया द्रव्य का परिणामविशेष है। उसका निमित्त कारण भी काल ही है। जैसे 'आकाश में अंगुली है, थी और होगी' इस प्रकार का व्यवहार काल के आश्रित है। काल की सत्ता न मानी जाय तो अतीत ही वर्तमान और अनागत (भविष्य) हो जायगा, क्योंकि क्रिया का कोई नियामक नहीं है। इस प्रकार अतीत आदि कालों का विभाग न रहने से व्यवहार का लोप हो जायगा, अतः "काल अवश्य है, जिस के सहारे अतीत आदि के व्यवहार स्पष्ट रूप से सिद्ध होते हैं" ऐसा मानना ही समुचित है।

કારણુ કાલ જ સિદ્ધ થાય છે જેમકે કાતર, વસ્ત્રને કાપવામાં નિમિત્ત કારણુ થાય છે, તે પ્રમાણે દ્રવ્યોના પરિણુમનમાં કાલ નિમિત્ત કારણુ થાય છે.

ક્રિયા એ દ્રવ્યનું પરિણામ વિશેષ છે. તેનું નિમિત્ત કારણુ પણ કાલ જ છે. જેમ 'આકાશમાં આંગળી છે, હતી અને હશે' આ પ્રકારનો વ્યવહાર કાલને આશ્રિત છે. કાલની સત્તા ન માનવામાં આવે તો અતીત–ભૂતકાળ જ વર્તમાન અને ભવિષ્ય કાળ થઈ જશે, કેમકે ક્રિયાનો નિયામક કોઈ નથી, આ પ્રમાણે અતીત ભૂતકાળ આદિ કાળોનો વિભાગ નહિ રહેવાથી વ્યવહારનો લોપ થઈ જશે. એટલા માટે "કાલ અવશ્ય છે, જેની સહાયતાથી ભૂતકાળ આદિનો વ્યવહાર સ્પષ્ટરૂપથી સિદ્ધ થાય છે" એમ માનવું તે જ યોગ્ય છે.

प्रतिदिवसमुभयकालिकसकलवस्त्रपात्रादिप्रतिलेखनं, प्रत्यहोरात्रमुभयकालिकमावश्यकं, चतुष्कालिकं स्वाध्यायकरणं मुनीनां कर्तव्यतया भगवतोपदिष्टं, तच्च कालस्यासत्त्वे तद्विभागज्ञानाभावेन यथाकालमनुष्ठातुमशक्यं मुनिभिरिति शास्त्रानर्थक्यमापद्येत ।

भिक्षार्थमकालवर्जनपूर्वककालानुरोधेन निष्क्रमप्रतिक्रमकर्तव्यता भगवत्प्ररूपिता गृहीतप्रव्रज्यानां भिक्षूणां नष्टप्राया स्यात् ।

प्रतिदिन दोनों वक्त समस्त वस्त्र पात्र आदि का प्रतिलेखन करना, प्रत्येक दिन और रात्रि के अन्त में आवश्यक करना, चौकालीन स्वाध्याय करना भगवान्ने मुनियों का कर्तव्य बतलाया है। अगर कालद्रव्य की सत्ता न मानी जाय तो दिन रात आदि के भेद का पता ही नहीं चलेगा और समय पर उक्त सब कार्य नहीं किये जा सकेंगे। ऐसी अवस्था में शास्त्रों का यह उपदेश निरर्थक हो जायगा ।

"अकाल का त्याग कर के समुचित समय पर मुनियों को भिक्षा के लिए जाना और आना चाहिए" भगवान् ने मुनियों का यह कर्तव्य बतलाया है, कालद्रव्य न मानने पर यह सब कर्तव्य, और उनका उपदेश भी नष्टप्राय हो जायगा ।

પ્રતિદિન બન્ને વખત સમસ્ત-તમામ વસ્ત્ર, પાત્ર આદિનું પ્રતિલેખન કરવું, પ્રત્યેક દિવસ અને રાત્રિના અન્તમાં આવશ્યક કરવું, ચૌકાલીન-ચારેય કાલ સ્વાધ્યાય કરવો. તે ભગવાને મુનિઓનું કર્તવ્ય બતાવ્યું છે. અગર કાલદ્રવ્યની સત્તા નહિ માનો તો દિવસ રાત વગેરે ભેદનો પત્તો મળશે નહિ, અને સમય પર આગળ કહેલાં સર્વ કાર્યો કરી શકાશે નહિ, એવી અવસ્થામાં શાસ્ત્રોનો એ ઉપદેશ નિરર્થક થઈ જશે.

"અકાલનો ત્યાગ કરીને યોગ્ય સમય પર મુનિઓએ ભિક્ષાને માટે જવું-આવવું જોઈએ" ભગવાને મુનિઓનું એ કર્તવ્ય કહ્યું છે. કાલદ્રવ્યને નહિ માનવામાં આવે તો આ સર્વ કર્તવ્ય અને તેમનો ઉપદેશ પણ નષ્ટપ્રાય થઈ જશે.

किञ्च—ग्रीष्मादिषु संयतानामतापनादयो धर्माः भगवदुक्ताः कालसत्त्व एवोपपद्यन्ते । अन्यथा ग्रीष्मादिऋतुज्ञानाभावाद् भगवदुपदिष्टक्रियाहानिः प्रसज्येत ।

एवं च वर्तना, परिणामः, क्रियाश्च द्रव्यस्वभावाः कालमाश्रित्य भवन्तीति निरूपितम् ।

परापरव्यतिकरज्ञानमपि कालेनैव संपद्यते । विप्रकृष्टः कनिष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेण परोऽपि कालेनापरः, संनिकृष्टो ज्येष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेणापरोऽपि

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं में साधुओं के लिये भगवान्ने आतापना आदि धर्मोंका उपदेश दिया है, काल के होने पर ही यह उपदेश बन सकता है। काल के अभाव में ग्रीष्म ऋतु का ही ज्ञान नहीं होगा और भगवान् द्वारा उपदिष्ट क्रिया की हानि हो जायगी।

यहां तक यह बतलाया जा चुका कि वर्तना, परिणाम और क्रिया, जो कि द्रव्य के स्वभाव हैं, काल के सहारे ही होते हैं।

परत्व और अपरत्व का मिला–जुला सा ज्ञान भी काल द्वारा ही होता है। दूरवर्ती छोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि दूर होने के कारण क्षेत्र से पर होने पर भी (दीक्षा में छोटा होने के कारण) काल से अपर कहलाता है। समीपवर्ती है, मगर ज्येष्ठदीक्षापर्यायवाला मुनि क्षेत्र से अपर होने पर भी काल से पर कहलाता है। यहाँ 'पर' भी 'अपर' हो गया है और 'अपर' भी 'पर' बना गया है।

તે સિવાય ગ્રીષ્મ આદિ ઋતુઓમાં સાધુઓ માટે ભગવાને આતાપના આદિ ધર્મોનો ઉપદેશ આપ્યો છે, કાલ દ્રવ્યને માનવામાં આવે તો જ, અથવા કાલ દ્રવ્ય હોય તો જ એ ઉપદેશ ઘટી શકે છે. કાલના અભાવમાં ગ્રીષ્મ ઋતુનું જ્ઞાન થશે નહિ, અને ભગવાને કહેલી ક્રિયાની હાનિ થઇ જશે.

અહિં સુધી બતાવી ચૂકયા કે વર્ત્તના, પરિણામ અને ક્રિયા, જો કે દ્રવ્યનો સ્વભાવ છે, કાલની સહાયતાથી જ થાય છે.

પરત્વ અને અપરત્વનું મિલા–જુલા જેવું જ્ઞાન પણ કાલદ્વારા જ થાય છે. દૂરવર્તી, નાની દીક્ષા–પર્યાયવાળા મુનિ દૂર હોવાના કારણે ક્ષેત્રથી પર હોવા છતાંય પણ (દીક્ષામાં નાના હોવાના કારણે) કાલથી અપર કહેવાય છે, સમીપવર્તી છે પણ જ્યેષ્ઠ–મોટીદીક્ષાપર્યાયવાળા મુનિ ક્ષેત્રથી અપર હોવા છતાંય કાળથી પર કહેવાય છે. અહિં 'પર' પણ 'અપર' થઈ ગયો છે. અને 'અપર' પણ 'પર' બની ગયો છે.

कालेन पर इत्युच्यते। अत्र परस्यापरत्वम्; अपरस्य परत्वमिति परापरव्यतिकरः× कारणं विना न संभवति, यदत्र कारणं स एव कालः।

यौगपद्यायौगपद्यप्रत्ययेनापि कालद्रव्यस्यास्तित्वं सिध्यति। 'आभ्यां युगपदधीतो दृष्टिवादः' 'एभिस्तु मुनिभिरयुगपत् पठिता द्वादशाङ्गी' इति वाक्यतोऽध्ययनगतयौगपद्यायौगपद्यप्रतीतौ कालमन्तरेणान्यन्निमित्तं नोपलभ्यते, यच्च निमित्तं स कालः।

× 'परस्परविषयगमनं व्यतिकरः'।

पर और अपरका यह व्यतिकर+ कारण के विना संभव नहीं है, अत एव इस व्यतिकर में जो कारण है, बस वही काल है।

यौगपद्य (एक साथ) और अयौगपद्य (आगे-पीछे) का जो ज्ञान होता है उस से भी कालद्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। "इन दोनों मुनियोंने एक साथ दृष्टिवाद का अध्ययन किया" और "इन मुनियोंने बारह अङ्ग एक साथ नहीं पढे-आगे पीछे पढे हैं,"-इस वाक्य से यौगपद्य और अयौगपद्य का-एक साथ का और आगे पीछे का-जो ज्ञान होता है उसमें काल के अस्तित्व के सिवाय और कोई कारण नहीं पाया जाता। जो कारण है वही काल है।

+ 'परस्परविषयगमनं व्यतिकरः', अर्थात् एक का विषय दूसरे में चला जाना व्यतिकर कहलाता है, जैसे-पर का अपर हो जाना और अपर का पर हो जाना।

પર અને અપરનાં એ વ્યતિકર* કારણ વિના સંભવ નથી, તેથી એ વ્યતિકરમાં જે કારણ છે, બસ તેજ કાળ છે.

યૌગપદ્ય-એક સાથે અને અયૌગપદ્ય-આગળ-પાછળનું જે જ્ઞાન થાય છે, તેમાં પણ કાલદ્રવ્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે. "એ બન્ને મુનિઓએ એક સાથે દૃષ્ટિવાદનું અધ્યયન કર્યું" અને "એ મુનિઓએ બાર અંગોનું એક સાથે અધ્યયન કર્યું નથી-આગળ-પાછળ અધ્યયન કર્યું છે" આ વાકયથી યૌગપદ્ય અને અયૌગપદ્યનું-એક સાથેનું અને આગળ-પાછળનું જે જ્ઞાન થાય છે. તેમાં કાલ વિના બીજું કોઈ કારણ દેખાતું નથી. જે કારણ છે તે જ કાળ છે.

+परस्परविषयगगनं व्यतिकरः" અર્થાત્-એકનો વિષય બીજામાં ચાલ્યો જાય તે વ્યતિકર કહેવાય છે. જેવી રીતે-પરનું અપર થઈ જવું અને અપરનું પર થઇ જવું.

चिरक्षिप्रप्रत्ययोऽपि कालमासाद्यैव जागर्ति। यथा-'अनेन महात्मना चिरं तपश्चरितम्, गजसुकुमालेन क्षिप्रमात्मकल्याणं कृतम्' इत्यादिवाक्यैस्तपश्चरणकल्याणसाधनादीनां विलम्बाविलम्बप्रतीतिः कालाभावे सति नोपपद्येत।

'ह्यः श्वोऽद्य परश्वः'-इत्यादयः कालाभिधायिनः शब्दाः कालाख्यमर्थं गमयन्ति। सर्वज्ञेन भगवतोच्चारितत्वादिमे शब्दा यथार्थवस्तुबोधकाः रूपशब्दवद् असमस्तपदत्वात्, शुद्धैकपदत्वाच्च प्रसिद्धं सद्भूतमर्थमावेदयन्ति कालशब्दादयः।

वर्तनाहेतुत्वा-ऽस्तित्व-ज्ञेयत्वादिगुणाश्रयतया, अतीतानागतवर्तमानादिपर्या-

---

जल्दी और देर का ज्ञान भी काल के कारण ही होता है, जैसे-" इस महात्मा ने चिरकाल तक तप किया, गजसुकुमाल मुनिने शीघ्र ही आत्मकल्याण कर लिया।" इत्यादि वाक्यों से तपश्चरण और कल्याण-साधन आदि में विलम्ब और अविलम्ब का ज्ञान काल के अभाव में नहीं हो सकता।

'कल, आज, परसों' इत्यादि कालवाचक शब्द भी कालनामक द्रव्य को प्रकट करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा उच्चारण किये हुए ये काल आदि शब्द वास्तविक वस्तु के बोधक हैं, क्योंकि यह समासरहित पद है और शुद्ध एक पद है। जो पद समासरहित और शुद्ध एक पद होते हैं वे वास्तविक पदार्थ के ही बोधक होते हैं, जैसे रूप आदि।

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व, आदि गुणों का आधार होने से, तथा अतीत, अनागत (भविष्यत्) और वर्तमान आदि पर्यायों का आश्रय होने से काल का

જલ્દી-તુરત અને ઢીલનું જ્ઞાન પણ કાલના કારણથી જ થાય છે. જેમ-"આ મહાત્માએ લાંબા સમય સુધી તપ કર્યું", ગજસુકુમાલ મુનિએ તુરતમાં આત્મકલ્યાણ કરી લીધું." ઇત્યાદિ વાકયોથી તપશ્ચરણ અને કલ્યાણસાધન વગેરેમાં વિલમ્બ અને અવિલમ્બનું જ્ઞાન કાલના અભાવમાં થઈ શકશે નહિ.

'ગઈ કાલ, આવતી કાલ, આજ, પરમ દિવસે,' ઇત્યાદિ કાલવાચક શબ્દ પણ કાલ નામના દ્રવ્યને પ્રગટ કરે છે, સર્વજ્ઞ ભગવાન દ્વારા કહેવામાં આવેલા એ કાલ આદિ શબ્દ વાસ્તવિક વસ્તુના બોધક છે, કેમકે એ સમાસરહિત પદ છે અને શુદ્ધ એક પદ છે. જે પદ સમાસરહિત અને શુદ્ધ એક પદ હોય છે, તે વાસ્તવિક પદાર્થના જ બોધક હોય છે. જેમ રૂપ આદિ.

વર્તનાહેતુત્વ, અસ્તિત્વ, જ્ઞેયત્વ આદિ ગુણોનો આધાર હોવાથી, તથા ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાનકાલ આદિ પર્યાયોનો આશ્રય હોવાથી કાલનું દ્રવ્યપણું

याश्रयतया च तस्य द्रव्यत्वं सिद्धयति, तस्मात् 'षष्ठं द्रव्यं कालः' इति युक्त्योपपत्त्या च सिद्धम्।

आगमोऽप्यत्र प्रमाणमिति चक्षुरुद्घाट्य पश्य—

"कइ णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?, गोयमा छ दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमए," इति।

कति खलु भदन्त! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! षड् द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, अद्धासमयः। इति च्छाया।

'कइविहा णं भंते! सव्वदव्वा पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा सव्वदव्वा पण्णत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए, जाव अद्धासमए' इति। (भगवती श० २५, उ० ४)

द्रव्यपन सिद्ध होता है, अतएव युक्ति तथा उपपत्ति से कालनामक छठा द्रव्य सिद्ध हुआ।

आंख खोल कर देखो, इस विषय में आगम-प्रमाण भी विद्यमान है-

"कइ णं भंते! दव्वा पण्णत्ता! गोयमा! छ दव्वा पण्णत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमए।"

સિદ્ધ થાય છે. એટલા કારણુથી યુક્તિ તથા ઉપપત્તિ (પુરાવા-પ્રમાણુ)થી કાલ નામનું છઠ્ઠું દ્રવ્ય સિદ્ધ થાય છે.

આંખ ઉઘાડીને જુઓ, આ વિષયમાં આગમ-પ્રમાણુ પણુ વિદ્યમાન છે-

"कइ णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?, गोयमा! छ दव्वा पण्णत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्धासमए"।

અર્થાત્-'ભગવન્' દ્રવ્ય કેટલાં છે? ગૌતમ! દ્રવ્ય છ છે-ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્ગલાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય અને અદ્ધાસમય અર્થાત્ કાલ.

તથા—"कइविहा णं भंते! सव्वदव्वा पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा सव्वदव्वा पन्तणा, तंजहा-धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, जाव अद्धासमए।"

कतिविधानि खलु भदन्त! सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! षडविधानि सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा–धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, यावत्–अद्धासमयः, इति च्छाया।

"धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो" ॥८॥ (उत्त० अ० २८)
धर्मोऽधर्मः आकाशः, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गला जन्तवः। इति च्छाया।

कालस्य स्वरूपम्—

अर्धतृतीयद्वीपव्यापी, निर्विभागोऽनाद्यपर्यवसितः,
एकोवर्तमानः समयः कालपदार्थः। एकत्वादेवास्तिकायो नायम्।

अर्थात्–'भगवन्! सब द्रव्य कितने हैं?' 'गौतम! सब द्रव्य छह हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धा–समय' (भगवतीसूत्र श. २५ उ. ४)

उत्तराध्ययन सूत्र (अ. २८) में भी कहा है:– 'धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक एक कहे गये हैं। काल, पुद्गल और जीव अनन्त–अनन्त है" इति।

काल का स्वरूप—

समयक्षेत्रव्यापी, निर्विभाग, आद्यन्तरहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समय को 'काल' कहते हैं। यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है।

અર્થાત્–'ભગવન્! સર્વ દ્રવ્ય કેટલાં છે? ગૌતમ! સર્વ દ્રવ્ય છ છે–ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય યાવત્ અદ્ધાસમય' (ભગવતી. શ. ૨૫. ઉ. ૪). ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર (અ. ૨૮) માં પણ કહ્યું છે–ધર્મ, અધર્મ, અને આકાશ દ્રવ્ય એક એક કહ્યું છે, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ અનંત–અનંત છે.

કાલનું સ્વરૂપ—

સમયક્ષેત્ર (અઢીદ્વીપ) વ્યાપી, નિર્વિભાગ (જેનો ભાગ ન પડે તેવું), આદ્યન્ત–રહિત, એકપ્રદેશરૂપ વર્તમાન સમયને કાલ કહે છે, આ એક હોવાના કારણથી 'અસ્તિકાય' નથી.

सूर्यचन्द्रादिज्योतिष्काणां गतिमाश्रित्य कालविभागो भवति, गतिश्च मनुष्यलोकाभ्यन्तर एव तेषाम्। दिवसरात्रिमुहूर्तपक्षमासऋत्वयनवर्षयुगादीनां विभागः सूर्यादिगत्यैव लोके भवति। एवमतीतवर्तमानादयो विभागाः। यस्तु संख्यातुमशक्य उपमानमात्रावगम्यः कालः सोऽसंख्येयः, यथा-पल्योपमः, सागरोपम इत्यादि। असंख्येयादिकालज्ञानमपि भगवता मनुष्यलोकप्रसिद्धोपमानप्रदर्शनेन प्ररूपितम्।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति का आश्रयण कर काल का विभाग होता है। सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कों की गति मनुष्यलोक के अन्दर में ही होती है। दिन, रात, मुहूर्त, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदि का विभाग सूर्य आदि की गति से ही लोक में होता है। इसी प्रकार अतीत, वर्तमान आदिका विभाग भी समझना चाहिये। जिसकी संख्या नहीं हो सकती, जो उपमान मात्र से गम्य है, वह काल असंख्येय है, जैसे—पल्योपम, सागरोपम, इत्यादि। असंख्येय आदि काल का ज्ञान भी मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमान का प्रदर्शन करके भगवान ने प्ररूपित किया है, समय आवलिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादिज्योतिष्कों की गति से नहीं जाना जाता है, क्यों कि वह अति सूक्ष्म है। इस लिये कालका व्यवहार समयक्षेत्र के भीतर ही होता है। समयक्षेत्र के बाहर जीवों के आयुष्य आदि की गणना मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्ध प्रमाण से ही होती है।

સૂર્ય ચન્દ્ર આદિ જ્યોતિષ્કોની ગતિના આશ્રયથી કાલનો વિભાગ થાય છે, સૂર્ય ચન્દ્ર આદિ જ્યોતિષ્કોની ગતિ મનુષ્ય લોકમાં જ હોય છે. દિન, રાત, મુહૂર્ત, પક્ષ, માસ, ઋતુ, અયન, વર્ષ, યુગ આદિના વિભાગ સૂર્ય આદિની ગતિથી જ લોકમાં થાય છે. આ પ્રકારે અતીત (ભૂતકાળ) વર્તમાન આદિના વિભાગ પણ સમજવા જોઈએ. જેની ગણતરી ન થઈ શકે, જે ઉપમાન માત્રથી ગમ્ય (સમજી શકાય તેવું) છે, તે કાલ અસંખ્યેય છે, જેમકે—પલ્યોપમ, સાગરોપમ, ઈત્યાદિ. અસંખ્યેય આદિ કાળનું જ્ઞાન પણ ભગવાને મનુષ્યલોકપ્રસિદ્ધ ઉપમાનનું પ્રદર્શન કરી પ્રરૂપિત કર્યું છે. સમય, આવલિકા આદિ સૂક્ષ્મ કાલ તો સૂર્યાદિ જ્યોતિષ્કોની ગતિથી પણ જાણી શકાતું નથી, કેમકે તે અતિ સૂક્ષ્મ છે. આથી કાલનો વ્યવહાર સમયક્ષેત્ર-અઢી દ્વીપની અંદર જ થાય છે, સમયક્ષેત્રથી બહાર જીવોની આયુષ્ય આદિની ગણના થાય છે તે મનુષ્યક્ષેત્રપ્રસિદ્ધ પ્રમાણથી જ થાય છે, એમ સમજી લેવું.

समयावलिकादिसूक्ष्मकालस्तु सूर्यादिज्योतिष्काणां गत्या नावगम्यः, अतिसूक्ष्मत्वात्। तस्मात् कालव्यवहारोऽर्धतृतीयद्वीप एव। अर्द्धतृतीयद्वीपाद्बहिर्जीवानामायुष्कादिगणना तु मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्धप्रमाणेनैव भवतीति ज्ञेयम्।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता-"अणंताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जंतवो" इत्युपदिष्टम्। वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात्।

निश्चयनयेन तु "लोकव्यापी कालः' इत्यवसीयते, अत एव भगवता- "धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो। एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं"। इत्यभिहितम्। धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः। एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनवरदर्शिभिः। इति च्छाया।

काल यद्यपि एक ही है, तो भी वह भूत-भविष्यत्पर्याय भेद से अनन्त है, इसीलिये भगवानने कहा है—'अणंताणि य द्रव्वाणि कालो पुग्गल जंतवो' इति।— काल, पुद्गल और जीव, ये सभी अनन्त हैं। वर्तमान समय पर्यायसहित होते हुए भी अनन्त नहीं है, क्योंकि वह एक ही है।

निश्चयनय से तो काल लोकव्यापी माना जाता है, अतएव भगवानने कहा है—

"धम्मो अधम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं" ॥ १ ॥

જો કે કાલ એક જ છે તો પણ ભૂત ભવિષ્યના ભેદથી અનન્ત છે, તેથી ભગવાને કહ્યું છે–'अणंताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जंतवो' इति, કાલ પુદ્ગલ અને જીવ એ દ્રવ્યો અનન્ત છે. વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોવા છતાં પણ અનન્ત નથી કેમકે તે એક જ છે.

નિશ્ચયનયથી તો કાલ લોકવ્યાપી માનવામાં આવે છે આથી ભગવાને કહ્યું છે કે–
"धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं" ॥

વરદર્શી–લોકાલોકને જોવાવાળા જિન ભગવાને 'ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, કાલ, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય, એજ લોક છે' એમ કહ્યું છે.

एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकः-अनन्तरोक्तद्रव्यषट्कसमुदायरूप इति भाव।

कालस्य—(१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्, (४)-वर्त्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः। (१)-अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)-वर्त्तमानत्वं, (३)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते। यथा-द्रव्यत एकः कालः क्षेत्रतः-अर्द्धतृतीयद्वीपप्रमाणः, कालतः-आद्यन्तरहितः, भावतः-अरूपी-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति, गुणतः-वर्तनालक्षणः, इति।

वरदर्शी-लोकालोक को देखनेवाले जिन भगवानने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय; इन सबको अर्थात् इनके समुदाय को लोक कहा है।

उपरिनिर्दिष्ट छ द्रव्यों के समुदाय को भगवानने सामान्यतया लोक कहा है।

काल के-अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व, वर्त्तनाहेतुत्व, ये चार गुण हैं। अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, अगुरुलघुत्व, ये चार पर्याय हैं।

यह काल-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जाना जाता है। जैसे—द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रप्रमाणवाला, काल से आद्यन्तरहित, भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, और गुण से वर्तनालक्षणवाला है।

ઉપર દર્શાવેલા છ દ્રવ્યોના સમુદાયને ભગવાને સામાન્ય રીતે લોક કહેલ છે.

કાળના-અરૂપિત્વ, અચેતનત્વ, અક્રિયત્વ અને વર્તનાહેતુત્વ, એ ચાર ગુણ છે. અને અતીતત્વ, અનાગતતત્વ, વર્તમાનત્વ, તથા અગુરુલઘુત્વ એ ચાર પર્યાય છે.

આ કાળ-દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાંચ પ્રકારે જણાય છે, જેમકે-દ્રવ્યથી કાળ એક, ક્ષેત્રથી અઢીદ્વીપ પ્રમાણ, કાલથી આદ્યન્તરહિત, ભાવથી અરૂપી-વર્ણ-ગન્ધ-રસ-સ્પર્શ-રહિત છે, અને ગુણથી વર્તનાલક્ષણવાળો છે.

अथ पुद्गलास्तिकायः ।

तत्र-पुद्गलशब्दार्थः ।

पूर्यते=संहन्यते-परस्परं संयुज्य संघीभूय नूतनघनघटावदेकीभवति, गलति च=विच्छिन्नमुक्तावलीमणिवद् विकीर्णो भवति-इति पुद्गलः। पूरण-गलन-धर्म इत्यर्थः। पुद्गलश्चासावस्तिकायश्चेति पुद्गलास्तिकायः।

पुद्गलास्तिकायस्य घटादिकार्यान्यथानुपपत्तेः प्रत्यक्षदर्शनाच्च सत्ता सिद्धैव।

पुद्गलास्तिकाय—

'पुद्गल' शब्द का अर्थ—

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घटघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते हैं, और जो गल जाते हैं अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भांति बिखर जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि—जिसमें पूरण और गलन धर्म हो वह पुद्गल है, पुद्गलरूप अस्तिकाय 'पुद्गलास्तिकाय' कहलाता है।

अगर 'पुद्गलास्तिकाय' न होता तो घट आदि कार्य नही बन सकते थे। इस कारण, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण भी पुद्गलास्तिकाय की सत्ता भलीभांति सिद्ध है।

પુદ્ગલાસ્તિકાય—

પુદ્ગલ શબ્દનો અર્થ—

પરસ્પર મળીને એકત્ર થઈને નવીન ઘન-ઘટાદિના રૂપમાં જે એક-મેક થઇ જાય છે, અને જે ગળી જાય છે અર્થાત્ તુટી ગએલી મોતીઓની માળા પ્રમાણે વિંખાઈ જાય છે, તે પુદ્ગલ કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે-જેમાં પૂરણ અને ગાલન ધર્મ હોય તે પુદ્ગલ છે, પુદ્ગલરૂપ અસ્તિકાય તે પુદ્ગલાસ્તિકાય કહેવાય છે.

અગર પુદ્ગલાસ્તિકાય ન હોત તો ઘટ આદિ કાર્ય બની શકત નહિ. આ કારણથી, તથા પ્રત્યક્ષ દેખી શકાય છે તે કારણથી પણ પુદ્ગલાસ્તિકાયની સત્તા રૂડી રીતે સિદ્ધ છે.

पुद्गललक्षणम्—

रूपवत्त्वं पुद्गलानां लक्षणम्, अत्र रूपं मूर्तत्ववर्णादिकम्। यद्यपि परमाणुप्रभृतयः सूक्ष्माः पुद्गलास्तेषां गुणाश्चातीन्द्रियतया नेन्द्रियैर्गृह्यन्ते तथापि बादरस्कंधरूपे परिणामविशेषे तेषामेवेन्द्रियग्राह्यतया रूपवत्त्वं प्रतीयते।

अतीन्द्रिये परमाणुप्रभृतिपुद्गलेऽतीन्द्रिये धर्मास्तिकायादौ चैतावान् विशेषः- धर्मास्तिकायादीनामिन्द्रियविषयत्वाभावादतीन्द्रियत्वमरूपित्वं च, परमाणुप्रभृतिपुद्गलानां त्वतीन्द्रियत्वेऽपि रूपित्वमिति।

पुद्गल का लक्षण—

पुद्गलोंका लक्षण 'रूपवत्त्व' है। जिस में रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिक हो, वह पुद्गल है। यद्यपि परमाणु आदि पुद्गल बहुत सूक्ष्म हैं, और अतीन्द्रिय होने के कारण उनके गुण इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते, तथापि जब उन पुद्गलों का बादर स्कन्ध के रूपमें परिणमन होता है तब वे इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य हो जाते हैं और उनका रूपवत्त्व प्रतीत होने लगता है।

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलों में और धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय द्रव्यों में इतना अन्तर है कि-धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य कभी इन्द्रियों के विषय नहीं होते, अतः वे अतीन्द्रिय और अरूपी हैं, किन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होने पर भी रूपी हैं।

પુદ્ગલનું લક્ષણ—

પુદ્ગલોનું લક્ષણ રૂપવત્ત્વ છે; જેમાં રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શ જોવામાં આવે અર્થાત્ જે મૂર્તિમાન હોય તે પુદ્ગલ છે. જો કે પરમાણુ આદિ પુદ્ગલ બહુ જ સૂક્ષ્મ છે અને અતીન્દ્રિય હોવાના કારણે તેના ગુણ ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ કરી શકાતા નથી; તો પણ જ્યારે તે પુદ્ગલોનું બાદર સ્કંધના રૂપમાં પરિણમન થાય છે, ત્યારે તે ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ થઈ જાય છે, અને તેનું રૂપવત્ત્વ પ્રતીત થવા લાગે છે.

પરમાણુ આદિ અતીન્દ્રિય પુદ્ગલોમાં અને ધર્માસ્તિકાય વગેરે અતીન્દ્રિય દ્રવ્યોમાં એટલું અંતર-ફેરફાર છે કે-ધર્માસ્તિકાય આદિ અરૂપી દ્રવ્ય કયારેય પણ ઇન્દ્રિયોનો વિષય થતા નથી, તેથી તે અતીન્દ્રિય અને અરૂપી છે, પરન્તુ પરમાણુ આદિ પુદ્ગલ અતીન્દ્રિય હોવા છતાંય રૂપી છે.

पुद्गलानां प्रदेशसंख्या—

परमाणुमारभ्याचित्तमहास्कन्धपर्यन्ताः पुद्गला विविधपरिणामा भवन्ति। तेषां प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च यथासंभवं भवन्ति। तत्र-संख्यातपरमाणुसंयोगसंजातः स्कन्धः संख्यातप्रदेशी, असंख्यातपरमाणु-घटितः स्कन्धोऽसंख्यातप्रदेशी, अनन्तपरमाणुसंहतिसमुद्भूतश्च स्कन्धोऽनन्त-प्रदेशी भवति। परमाणोस्तु निरंशत्वान्नास्ति प्रदेश इति।

पुद्गलानां क्षेत्रस्थितिः-

परमाणौ विभागाभावादेकस्मिन्नेव प्रदेशे लोकाकाशस्य परमाणुरव-

पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुसे लेकर अचित्त महास्कन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणमन वाले होते हैं। उनके प्रदेश यथासम्भव संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त होते हैं। संख्यात परमाणुओं के संयोग से बना हुआ स्कन्ध संख्यातप्रदेशी कहलाता है। असंख्यात परमाणुओं-से बना हुआ स्कन्ध असंख्यातप्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है। परमाणु निरंश होता है—उसके अनेक भाग नहीं हो सकते, अत एव वह अप्रदेशी है।

पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

પુદ્ગલોની પ્રદેશસંખ્યા—

પરમાણુથી લઈને અચિત્ત મહાસ્કંધ સુધી સર્વ પુદ્ગલ વિવિધ પરિણમનવાળા હોય છે. તેના પ્રદેશ યથાસંભવ સંખ્યાત, અસંખ્યાત અથવા અનન્ત હોય છે. સંખ્યાત પરમાણુઓના સંયોગથી બનેલા સ્કંધ સંખ્યાતપ્રદેશી કહેવાય છે, અસંખ્યાત પરમાણુઓથી બનેલા સ્કંધ અસંખ્યાતપ્રદેશી અને અનન્ત પરમાણુઓથી નિષ્પન્ન સ્કંધ અનન્ત-પ્રદેશી કહેવાય છે. પરમાણુ નિરંશ હોય છે, તેના અનેક ભાગ થઈ શકતા નથી તેથી તે અપ્રદેશી છે.

પુદ્ગલોની ક્ષેત્રસ્થિતિ—

પરમાણુમાં વિભાગ નહિ હોવાના કારણે લોકાકાશના એક જ પ્રદેશમાં તેની

गाहते। द्व्यणुकस्कन्धश्च तस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोश्च प्रदेशयोरवगाहते। तथा त्र्यणुकस्कन्धो लोकाकाशस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोः प्रदेशयोस्त्रिषु प्रदेशेषु चावगाहते। एवं चतुरणुकादीनां संख्यातप्रदेशाऽसंख्यातप्रदेशानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामवगाहनं लोकाकाशस्यैकप्रदेशमारभ्य संख्याताऽसंख्यातप्रदेशपर्यन्तेषु भवति।

नन्वेकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽल्पीयसि कथमनन्तप्रदेशिनः स्कन्धाः स्थानं लभन्ते, न हि कलशे सिन्धोः समावेशं पश्यामः ?

अवगाहना होती है। द्व्यणुक अर्थात् दो परमाणु वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में या दो प्रदेशों में अवगाहन करता है। इसी प्रकार तीन परमाणुओं वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में, दो प्रदेशों में अथवा तीन प्रदेशों में अवगाहन करता है। इसी भांति चतुरणुक (चार अणुओं वाले) आदि स्कन्धों की अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी तक के स्कन्धों की अवगाहना लोकाकाश के एक प्रदेश से लेकर संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशों में होती है।

शंका—आकाश के एक छोटे से प्रदेश में अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का समावेश किस प्रकार हो सकता है, गागर में सागर का समावेश होना तो कहीं दिखाई नहीं देता।

અવગાહના હોય છે દ્વ્યણુક અર્થાત્ બે પરમાણુવાળા સ્કંધ લોકાકાશના એક પ્રદેશમાં અથવા બે પ્રદેશોમાં અવગાહન કરે છે. એ પ્રમાણે ત્રણ અણુઓવાળા સ્કંધ લોકાકાશના એક પ્રદેશમાં, બે પ્રદેશોમાં અથવા ત્રણ પ્રદેશોમાં અવગાહન કરે છે. એ પ્રમાણે જ ચાર અણુઓવાળા આદિ સ્કંધોની અવગાહના, તથા સંખ્યાતપ્રદેશી, અસંખ્યાતપ્રદેશી અને અનન્તપ્રદેશી સુધીના સ્કંધોની અવગાહના લોકાકાશના એક પ્રદેશથી લઇને સંખ્યાત તથા અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં હોય છે.

શંકા—આકાશના એક નાના પ્રદેશમાં અનન્ત પ્રદેશી સ્કંધનો સમાવેશ કેવી રીતે થઈ શકે, ગાગરમાં સાગરનો સમાવેશ થયેલો કોઈ ઠેકાણે દેખાતો નથી ?

अत्र ब्रूमः—पुद्गलस्य परिणमनशक्तिरेव तादृशी यतः परमसूक्ष्मस्तादृशः परिणामो जायते, येनानन्तप्रदेशिनः स्कन्धाः प्रदेशमेकं नभसः प्रविशन्ति। अथवा गगनस्य तादृशी विचित्राऽवगाहदानशक्तिर्यतोऽनन्तप्रदेशिनां स्कंधानां तस्यैकस्मिन् प्रदेशे समावेशः सिध्यति। यथा अतिघनीभूतलोहगोलकावगाहनान्निरवकाशे किलाकाशदेशे भस्त्रानिलसमुद्भूताः पावकावयवाः समाविशन्ति। यदि रन्ध्ररहिताऽयोगोलकं शीतलीकर्तुं वारि निक्षिप्यते, तदा तदयोगोलकपरिपूरितनिरन्तराकाशदेशे तस्मिन्नेव वारिकणा अव्याहतं प्रविशन्ति।

समाधान—पुद्गल में परिणमनशक्ति ही ऐसी है, जिससे उसका अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन होता है। इसी कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी आकाश के एक प्रदेश में समा जाते हैं। अथवा आकाश में ऐसी कुछ विचित्र अवकाशदान करने की शक्ति है कि उसके कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का भी आकाश के एक ही प्रदेश में समावेश हो जाता है। जैसे—अत्यन्त सघन लोहे के गोले के अवगाहन से निरवकाश आकाश-प्रदेश में धौंकनी की वायु से वृद्धि पाये हुए अग्नि के अवयव प्रवेश कर जाते हैं। तात्पर्य यह है कि—लोहे का गोला बहुत ठोस होता है, वह आकाश के जिन प्रदेशों में मौजूद है, वहां जगह दिखाई नहीं देती, फिर भी धौंकनी की वायु की प्रेरणासे उन्हीं आकाश प्रदेशों में अग्नि का प्रवेश हो जाता है, तत्पश्चात् छिद्ररहित उस लोहे के गोले को ठंडा करने के लिये उस पर पानी डाला जाय तो जिन आकाश प्रदेशों में लोहे का गोला और पावक—अग्नि है, उन्हीं में जल के कण भी बेरोकटोक प्रवेश कर जाते हैं।

સમાધાન—પુદ્ગલોમાં પરિણમનશક્તિ જ એવી છે જેથી તેનું અત્યન્ત સૂક્ષ્મ પરિણમન હોય છે. એ કારણે અનન્તપ્રદેશી સ્કંધ પણ આકાશના એક પ્રદેશમાં સમાઈ જાય છે. અથવા આકાશમાં એવી કોઈ વિચિત્ર અવકાશદાન કરવાની શક્તિ છે કે—તે કારણથી અનન્તપ્રદેશી સ્કંધોનો પણ આકાશના એક જ પ્રદેશમાં સમાવેશ થઈ જાય છે. જેમકે—અત્યન્ત સઘન લોઢાના ગોળાના અવગાહનથી નિરવકાશ આકાશ પ્રદેશમાં ધમણના વાયુથી વૃદ્ધિ પામેલા અગ્નિના અવયવો પ્રવેશ કરી જાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે–લોઢાનો ગોળો બહુ જ ઠોસ (પોલાણ વિનાનો) હોય છે, તે આકાશના જે પ્રદેશોમાં મોજુદ છે, ત્યાં જગ્યા દેખાતી નથી. તો પણ ધમણના વાયુની પ્રેરણાથી તે આકાશ પ્રદેશોમાં અગ્નિનો પ્રવેશ કરી જાય છે. તે પછી છિદ્રરહિત તે લોઢાના ગોળાને ઠંડો કરવા માટે તેના ઉપર પાણી નાખવામાં આવે તો જે આકાશ–પ્રદેશોમાં લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ છે, તેમાં પાણીનાં ટીપાં પણ રોક-ટોક (અટકાવ્યા) વિના પ્રવેશ કરી જાય છે.

यथा वा एकप्रदीपप्रभायामनेकप्रदीपप्रभासमावेशः। यथा वा एककर्षपरिमितपारदे शतकर्षपरिमितसुवर्णसमावेशो भवति।

अनन्तप्रदेशिरूपोऽचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्घातवत् सकललोकव्यापी भवति। स च विस्रसागत्या प्रथमसमयेऽसंख्यातयोजनविस्तरेण दण्डाकारेण परिणमति। द्वितीयसमये कपाटरूपेण, तृतीयसमये मन्थानरूपेण, चतुर्थसमये प्रतरमापूर्य सकललोकं व्याप्नोति, पञ्चमसमये प्रतरं संहरति, षष्ठसमये मन्थानं भनक्ति, सप्तमसमये कपाटं च, अष्टमसमये दण्डाकारं संहृत्य खंडशः प्रविकीर्णो भवति।

अथवा-एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है।

अथवा एक कर्ष-मासा (मापविशेष) परिमित पारे में सौ कर्ष परिमित सोने का समावेश हो जाता है।

अनन्तप्रदेशी अचित महास्कन्ध केवलिसमुद्घात के समान समस्तलोकव्यापी होता है। वह स्वाभाविक गति से, प्रथम समय में असंख्यातयोजनविस्तृत दण्ड के आकार में परिणत होता है। दूसरे समय में वह कपाट के रूप में परिणत होता है, और तीसरे समय में मंथान के रूप में हो जाता है, चौथे समय में प्रतर पूर्ण करके सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाता है। फिर पांचवें समय में प्रतर को सिकोडता है, छठे समय में मंथान को, सातवें समय में कपाट को, और आठवें समय में दण्डाकार को यह सिकोडता है। उसके अनन्तर वह खण्ड खण्ड होकर बिखर जाता है।

અથવા—એક દીપકના પ્રકાશમાં અનેક દીપકોના પ્રકાશ સમાઈ જાય છે. અથવા એક કર્ષ (માપવિશેષ) પરિમિત પારામાં એકસો કર્ષ પરિમિત સોનાનો સમાવેશ થઈ જાય છે.

અનન્તપ્રદેશી અચિત્ત મહાસ્કંધ, કેવલિસમુદ્ઘાતની સમાન સમસ્તલોક વ્યાપી હોય છે, તે સ્વાભાવિક ગતિથી, પ્રથમ સમયમાં અસંખ્યાતયોજનવિસ્તૃત દંડના આકારમાં પરિણત થાય છે. બીજા સમયમાં તે કપાટના રૂપમાં પરિણત થાય છે, અને ત્રીજા સમયમાં મંથાન (દહીં વલોવવાનો રવૈયો)ના રૂપમાં થાય છે, ચોથા સમયમાં પ્રતર પૂર્ણ કરીને લોકમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. ફરી પાંચમા સમયમાં પ્રતરને સંકોચે છે, છઠ્ઠા સમયમાં મંથાનને, સાતમા સમયમાં કપાટને અને આઠમા સમયમાં દંડાકારને એ સિકોડે છે, ત્યાર પછી તે ખંડ-ખંડ થઈને વિખેરાઈ જાય છે.

पुद्गलानामुपकारः—

शरीरवाङ्मनःप्राणादयः पुद्गलपरिणामा गमनाऽऽदान–वचन–चिन्तन–प्राणनादिभावेन जीवानुपकुर्वन्ति, अतः शरीराद्याकारेण पुद्गला जीवानामुपकारं कुर्वन्ति। तत्र शरीरं पञ्चविधम्, औदारिकं, वैक्रियम्, आहारकं, तैजसं, कार्मणं चेति।

अथ जीवानां ये सुखदुःखजीवितमरणरूपाः परिणामा भवन्ति तत्र सुखादिरूपेण जीवपरिणामे निमित्तं पुद्गला इति सिद्धं जीवोपकारित्वं पुद्गलानाम्।

पुद्गलों का उपकार—

शरीर, वचन, मन और प्राण आदि पुद्गलों के परिणामविशेष–गमन, आदान, वचन, चिन्तन और प्राणन (सांस लेना) आदिरूप से जीवों का उपकार करते हैं अतः शरीर आदि के रूप में पुद्गल ही जीवों का उपकार करते हैं। इनमें शरीर पांच प्रकार का है— (१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्मण।

प्राणियों में सुख दुःख जीवन और मरण रूप जो परिणाम होते हैं, उन सब परिणामों में पुद्गल कारण है, अतः यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल जीवों का उपकार करते हैं।

પુદ્ગલોનો ઉપકાર—

શરીર, વચન, મન અને પ્રાણ આદિ પુદ્ગલોના પરિણામવિશેષ–ગમન, આદાન, વચન, ચિંતન અને પ્રાણન (શ્વાસ લેવો) આદિ રૂપથી જીવોનો ઉપકાર કરે છે, એટલે શરીર આદિના રૂપમાં પુદ્ગલ જ જીવોનો ઉપકાર કરે છે, તેમાં શરીર પાંચ પ્રકારના છે–(૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ.

પ્રાણીઓમાં સુખ, દુઃખ, જીવન અને મરણરૂપ જે પરિણમન થાય છે, તે સર્વ પરિણામોમાં પુદ્ગલ કારણરૂપ છે. તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પુદ્ગલ જીવોનો ઉપકાર કરે છે.

पुद्गलानां विशेषगुणाः—

वर्णगन्धरसस्पर्शाः पुद्गलानां विशेषगुणाः सहभाविनः परिणामाः। शब्द – बन्ध – सौक्ष्म्य – स्थौल्य – संस्थान – भेद–तम–श्छाया–ऽऽतपो-द्योतादिभिः पर्यायैः पुद्गला लक्ष्यन्ते-ज्ञायन्ते, इत्याशयेन भगवता पुद्गलानां लक्षणतया शब्दादयः प्रोक्ताः। तथाहि—

"सद्दंधयार उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवुत्ति वा
वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१॥" (उत्त० अ० २८)

पुद्गलों के विशेष गुण—

वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेष (असाधारण) गुण हैं–सहभावी परिणाम हैं। शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार), भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल लखा जाता है—जाना जाता है। इस आशय से भगवान् ने शब्द आदि को पुद्गलों का लक्षण कहा है, वह इस प्रकार— **"सद्दंधयार उज्जोओ, पभा–छाया–ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं"** शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्श, ये सब पुद्गलों के लक्षण हैं। गाथा में 'छायाऽऽतवुत्ति' यहाँ 'इति' शब्द आदि के अर्थ में है। इस आदि शब्द से वर्ण आदि का ग्रहण हो सकता था फिर भी उन्हें अलग कहने का कारण यह है कि–वे नित्य सहभावी गुण हैं।

પુદ્ગલના વિશેષ ગુણ—

વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ પુદ્ગલોના વિશેષ (અસાધારણ) ગુણ છે—સહભાવી પરિણામ છે શબ્દ, બંધ, સૂક્ષ્મતા, સ્થૂલતા, સંસ્થાન (આકાર) ભેદ, તમ, છાયા, આતપ, ઉદ્યોત આદિ પર્યાયોથી લખી શકાય છે–જાણી શકાય છે. તે આશયથી ભગવાને શબ્દ આદિ પુદ્ગલોનું લક્ષણ કહ્યું છે, તે આ પ્રમાણે છે— "**सद्दंधयार उज्जोओ, पभा–छाया–ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा; पुग्गलाणं तु लक्खणं**" શબ્દ, અંધકાર, ઉદ્યોત પ્રભા, છાયા, આતપ, વર્ણ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શ, એ પુદ્ગલોનું લક્ષણ છે. ગાથામાં–'छायाऽऽतवुत्ति' અહિં 'इति' શબ્દ આદિના અર્થમાં છે, એ પ્રમાણે 'आदि' શબ્દથી વર્ણ વગેરેનું ગ્રહણ થઈ શકે છે તો પણ તેને અલગ કહેવાનું કારણ એ છે કે તે નિત્ય સહભાવી ગુણ છે.

शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा। वर्णरसगन्धस्पर्शाः पुद्गलानां तु लक्षणम्। इति च्छाया।

"छायाऽऽतवुत्ति" इत्यत्र 'इति' शब्द आद्यर्थकः। तेनैव वर्णादीनां ग्रहणेऽपि पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम्।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण–नील–लोहित–पीत–शुक्ल–भेदात्। गन्धो द्विविधः–सुरभिरसुरभिश्च। रसः पञ्चविधः–तिक्त–कटु-कषाया-ऽम्ल–मधुर–भेदात्। स्पर्शोऽष्टधा–कठिन–मृदु–गुरु–लघु–शीतो–ष्ण स्निग्ध–रूक्ष–भेदात्। संस्थानं पञ्चविधम्–वृत्त–त्र्यस्र–चतुरस्र–ऽऽयत–परिमण्डल–भेदात्।

पुद्गलविभागः–

पुद्गलः संक्षेपतो द्विविधः–परमाणु–स्कंधभेदात्।

वर्ण पांच प्रकार का है–काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद। सुगन्ध दुर्गन्ध के भेद से गन्ध दो प्रकार का है। रस के पांच भेद हैं—तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा, और मीठा। स्पर्श के आठ भेद हैं—कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना, और रूखा। संस्थान पांच प्रकार का है—वृत्त (गोल), त्र्यस्र (तिकोना), चतुरस्र (चौकोर), आयत (लम्बा) और परिमण्डल–(गोल–मटोल).

पुद्गल के भेद—

संक्षेप से पुद्गल के दो भेद हैं–परमाणु और स्कन्ध।

वर्ण पांच प्रकारना छे–કાળો, લીલો, લાલ, પીળો અને ધોળો. સુગંધ અને દુર્ગંધના ભેદથી ગંધ બે પ્રકારના છે. રસના પાંચ ભેદ છે–તીખો, કડવો, કષાયેલો, ખાટો અને મીઠો, સ્પર્શના આઠ ભેદ છે–કઠણ, કોમલ, ભારી, હલકો, શીત, ઉષ્ણ, ચિકણો અને રૂક્ષ. સંસ્થાન પાંચ પ્રકારનાં છે–વૃત્ત-ગોળ, ત્રિકોણ, ચતુષ્કોણ, લાંબું અને ગોળમટોળ.

પુદ્ગલોના ભેદ

સંક્ષેપથી પુદ્ગલના બે ભેદ છે-(૧) પરમાણુ અને (૨) સ્કંધ.

परमाणुस्वरूपम्—

तत्र परमाणुश्च सकलविभागान्तवर्ती निरंशः परस्परासंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादिन्द्रियव्यापारातीतः, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, द्व्यणुकस्कन्धाद्यचित्तमहास्कन्धपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्धकार्याणां कारणरूपो नित्यश्चेति ।

उक्तश्च भगवता भगवतीसूत्रे-(श. २० उ० ५)—

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है। वह निरंश है। परस्पर असंयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शोंसे युक्त है। द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अन्तिम महास्कन्ध पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्कंधरूप कार्य का कारण है और नित्य है। भगवानने भगवतीसूत्र (श. २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-भगवन् ! परमाणु पुद्गल कितने वर्णवाला, कितने गंध वाला, कितने रसवाला, और कितने स्पर्शवाला कहा गया है ?।

उत्तर-गौतम ! एक वर्णवाला, एक गंध वाला, एक रसवाला और दो स्पर्शवाला कहा गया है।

एक वर्णवाला होता है तो कदाचित् काला, कदाचित् नीला, कदाचित् लाल,

---

પરમાણુનું સ્વરૂપ—

પરમાણુ, એ પુદ્ગલનો અંતિમ વિભાગ છે. તે નિરંશ (અંશરહિત) છે. પરસ્પર અસંયુક્ત છે. સૂક્ષ્મ હોવાના કારણે ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ તેમાં થઈ શકતી નથી. એક વર્ણ, એક ગંધ, એક રસ અને બે સ્પર્શથી યુક્ત છે. દ્વ્યણુક સ્કંધથી લઈને અચિત્ત મહાસ્કંધ પર્યન્ત સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મસ્કંધરૂપ કાર્યનું કારણ છે, અને નિત્ય છે. ભગવાને ભગવતી સૂત્ર (શ. ૨૦ ઉ. ૫.)માં કહ્યું છેઃ—

પ્રશ્ન-"ભગવન્ ! પરમાણુ પુદ્ગલ કેટલા વર્ણવાળું, કેટલા ગંધવાળું, કેટલા રસવાળું, અને કેટલા સ્પર્શવાળું કહ્યું છે ?

ઉત્તર-ગૌતમ ! એક વર્ણવાળું, એક ગંધવાળું, એક રસવાળું, અને બે સ્પર્શવાળું કહ્યું છે."

"એક વર્ણવાળું હોય છે તો કદાચિત્ કાળું, કદાચિત્ લીલું, કદાચિત્ લાલ, કદાચિત્ પીળું અને કદાચિત્ શ્વેત હોય છે. એક ગંધવાળું હોય છે તો કદાચિત્

"परमाणुपोग्गले णं भंते! कतिवन्ने, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे पन्नत्ते?, गोयमा! एगवन्ने, एगगंधे, एगरसे, दुप्फासे पन्नत्ते, तंजहा-जइ एगवन्ने-सिय कालए, सिय नीलए, सिय लोहिए, सिय हालिद्दे, सिय सुक्किल्ले। जइ एगगंधे-सिय सुब्भिगंधे, सिय दुब्भिगंधे। जइ एगरसे-सिय तित्ते सिय कडुए सिय कसाए, सिय अंबिले, सिय महुरे। जइ दुप्फासे-सिय सीए य निद्धे य १, सिय सीए य लुक्खे य २, सिय उसिणे य निद्धे य ३, सिय उसिणे य लुक्खे य ४" इति।

परमाणुपुद्गलः भदन्त! कतिवर्णः, कतिगन्धः, कतिरसः, कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः? गौतम! एकवर्णः, एकगन्धः, एकरसः, द्विस्पर्शः प्रज्ञप्तः। तद्यथा-यदि एकवर्णः -स्यात् कालकः, स्यात् नीलकः, स्यात् लोहितः, स्यात् हारिद्रः, स्यात् शुक्लः। यदि एकगन्धः-स्यात् सुरभिगन्धः, स्यात् दुरभिगन्धः, यदि एकरसः स्यात्तिक्तः स्यात् कटुकः, स्यात् कषायः, स्यात् अम्लः, स्यात् मधुरः। यदि द्विस्पर्शः-स्यात् शीतश्च स्निग्धश्च १, स्यात् शीतश्च रूक्षश्च २, स्यात् उष्णश्च स्निग्धश्च ३, स्यात् उष्णश्च रूक्षश्च ४,। इति च्छाया,

---

कदाचित् पीला, और कदाचित् शुक्ल होता है। एक गन्धवाला होता है तो कदाचित् सुरभिगंधवाला, कदाचित् दुरभिगंधवाला होता है। यदि एक रसवाला होता है तो कदाचित् तिक्त, कदाचित् कटुक, कदाचित् कषायला, कदाचित् खट्टा, और कदाचित् मीठा होता है। यदि दो स्पर्शवाला होता है तो कदाचित् शीत और स्निग्ध (चिकना) १, कदाचित् शीत और रूक्ष २, कदाचित् उष्ण और स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण और रूक्ष होता है ४।

સુરભિગંધ (સારી ગંધ) વાળું અને કદાચિત્ દુરભિગંધવાળું હોય છે. જો એક રસવાળું હોય છે તો કદાચિત્ તીખું, કદાચિત્ કડવું, કદાચિત્ કષાયલું, કદાચિત્ ખાટું અને કદાચિત્ મધુર-મીઠું-હોય છે. જો બે સ્પર્શવાળું હોય છે તો કદાચિત શીત અને સ્નિગ્ધ-(ચિકણા) ૧, કદાચિત્ શીત અને રૂક્ષ ૨, કદાચિત્ ઉષ્ણ અને સ્નિગ્ધ ૩, તથા કદાચિત્ ઉષ્ણ અને રૂક્ષ હોય છે. ૪"

असौ शस्त्रादिना लतादिवदच्छेद्यः, सूच्यादिना चर्मवद्भेद्यः, अग्निना काष्ठवददाह्यः, हस्तादिना वस्त्रपात्रवदग्राह्यश्च। उक्तश्च भगवता भगवतीसूत्रे (श०-२० उ० ५)—

"दव्वपरमाणू णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-अच्छेज्जे, अभेज्जे, अडज्झे, अगेज्झे।" इति। द्रव्यपरमाणुः खलु भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम! चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अच्छेद्यः, अभेद्यः, अदाह्यः, अग्राह्यः। इति च्छाया।

यद्यपि परमाणुः पुद्गलत्वान्मूर्त्तस्तथाऽप्यसौ खण्डशः कर्त्तुमशक्यः, आकाशप्रदेशवत्परमाणोः पुद्गलपरमजघन्यांशरूपत्वात्, सर्वपरिमाणेभ्योऽपकृष्टं परिमाणं परमाणोरेव तस्मात्सोऽखण्ड एव।

परमाणु, शस्त्र के द्वारा लता आदि की भाँति छेदा नहीं जा सकता, चमडे की तरह सुई आदि से भेदा नहीं जा सकता, काष्ठ के समान अग्नि आदि से जल नहीं सकता और वस्त्र पात्र आदि पदार्थों की तरह हाथ आदिसे पकडा नहीं जा सकता। भगवानूने भगवतीसूत्र (श. २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-भगवन्! द्रव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर-गौतम! चार प्रकारका कहा गया हैं-अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य।

परमाणु, पुद्गल होने के कारण मूर्तिक है, फिर भी उस के खण्ड नहीं किये जा सकते। जैसे आकाश का एक प्रदेश जघन्य अंशरूप है और उसका परिमाण सभी

પરમાણુ, શસ્ત્ર દ્વારા લતા આદિના પ્રમાણે છેદી શકાતું નથી, ચામડાની જેમ સોય વગેરેથી વીંધી શકાતું નથી, કાષ્ઠની જેમ અગ્નિ આદિથી બાળી શકાતું નથી, અને વસ્ત્ર પાત્ર આદિ પદાર્થોની જેમ હાથ વગેરેથી પકડી શકાતું નથી.

ભગવાને ભગવતીસૂત્ર-(શ. ૨૦-ઉ. ૫) માં કહ્યું છેઃ—

પ્રશ્ન-"ભગવન્! દ્રવ્ય પરમાણુ કેટલા પ્રકારનું કહ્યું છે?

ઉત્તર-ગૌતમ! ચાર પ્રકારનું કહ્યું છે-"અછેદ્ય, અભેદ્ય, અદાહ્ય અને અગ્રાહ્ય." (છેદી શકાય નહિ, ભેદી શકાય નહિ, બળી શકે નહિ, અને ગ્રહણ થઈ શકે નહિ).

પરમાણુ, પુદ્ગલ હોવાના કારણે મૂર્તિક છે તો પણ તેના ખંડ-ભાગ થઈ શકતા નથી જેમકેઃ-આકાશનો એક પ્રદેશ જઘન્ય અંશરૂપ છે, અને તેનું પરિમાણ

स च प्रत्यक्षदृश्यैरनेकविधैर्बादरपरिणामरूपैः स्कन्धैरनुमीयते। उक्तञ्च–
"कारणमेव तदंतं, सुहुमो णिच्चो य होइ परमाणू।
एगरसगंधवण्णो, दुप्फासो कज्जलिंगो य ॥१॥ इति
छाया—कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एकरसगंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥" इति।

स्कन्धस्वरूपं तद्भेदाश्च—

परस्परसंमिलितबद्धपरमाणुसमुदायः स्कन्धः। स्कन्धान्तवर्ती निरंशोऽवयवः प्रदेश इत्युच्यते।

परिमाणोंसे हीनतम है, इसी प्रकार परमाणु भी जघन्य अंशरूप है–उसके अंश नहीं हो सकते, वह अखण्ड है।

प्रत्यक्ष से दिखाई देनेवाले अनेक प्रकार के बादररूप परिणत स्कन्धों से परमाणु का अनुमान होता है। कहा भी है—

"परमाणु कारणरूप है, अन्तिम अंशरूप है, सूक्ष्म है और नित्य है। एक रसवाला, एक गंधवाला, एक वर्णवाला और दो स्पर्शवाला होता है। स्कंधरूप कार्य देखने से उसका अनुमान होता है।"

स्कन्ध का स्वरूप और भेद—

परस्पर मिले हुए–आपसमें बद्ध–परमाणु का समूह स्कंध कहलाता है। स्कंधमें रहा हुआ निरंश अवयव प्रदेश कहलाता है।

સર્વ પરિમાણોથી હીનતમ છે, એ પ્રમાણે પરમાણુ પણ જઘન્ય અંશરૂપ છે, તેનાં અંશ–વિભાગ થઈ શકતા નથી, તે અખંડ છે.

પ્રત્યક્ષથી જોવામાં આવતા અનેક પ્રકારના બાદરરૂપ પરિણત સ્કંધોથી પરમાણુનું અનુમાન થાય છે. કહ્યું પણ છે—

"પરમાણુ કારણરૂપ છે, અન્તિમ અંશરૂપ છે, સૂક્ષ્મ છે અને નિત્ય છે, એક રસવાળું છે, એક ગંધવાળું, એક વર્ણવાળું અને બે સ્પર્શવાળું હોય છે. સ્કંધરૂપ કાર્યના દેખાવથી તેનું અનુમાન થાય છે.

સ્કંધનું સ્વરૂપ અને ભેદ—

પરસ્પર મળેલા–અંદર અંદર બદ્ધ–પરમાણુઓનો સમૂહ તે સ્કંધ કહેવાય છે. સ્કંધમાં રહેલો નિરંશ અવયવ તે પ્રદેશ કહેવાય છે.

यद्यपि धर्माधर्माकाशजीवा अपि पुद्गलवत्स्कन्धरूपास्तथापि स्कन्धरूपपुद्गलादयं विशेषः–तेषाम्–धर्मादीनां चतुर्णां प्रदेशाः स्वस्वस्कन्धान्न खण्डशः पृथग् भवितुमर्हन्ति, तेषाममूर्त्तत्वात्। पुद्गलप्रदेशास्तु खण्डशः पृथग् भवन्ति, तेषां मूर्त्तत्वात्, आश्लेषविश्लेषाभ्यां मूर्त्तवस्तुनि संमिलन-पृथग्भाव-शक्तेः सर्वानुभवगोचरत्वात्, अतः स्कन्धपुद्गलानां स्थूलः सूक्ष्मो वा भागोऽवयव-उच्यते। अवयौति=पृथग्भवतीत्यवयवशब्दव्युत्पत्त्या विभाज्य एवांशोऽवयवशब्दार्थस्तस्मात्पुद्गलप्रदेश एवावयव इत्युच्यते।

यद्यपि धर्म-द्रव्य अधर्म-द्रव्य आकाश और जीव भी पुद्गलके समान स्कन्धरूप हैं, फिर भी स्कन्धरूप पुद्गल से उनमें यह भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्योंके प्रदेश अपने २ स्कन्धसे कभी अलग नहीं हो सकते, क्योंकि धर्म आदि चार द्रव्य अमूर्त हैं। पुद्गल द्रव्य के प्रदेश खण्ड२ होकर अलग हो जाते हैं, क्योंकि पुद्गल मूर्त हैं। आश्लेष और विश्लेष के द्वारा मूर्त वस्तु में मिलने और बिछुडने की शक्ति है, यह बात सभी के अनुभव से सिद्ध है, अतः स्कन्ध-पुद्गलों का स्थूल या सूक्ष्म भाग अवयव कहलाता है, **'अवयौति' इति-अवयवः** अर्थात् जो पृथक् हो सके उसे अवयव कहते हैं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार विभक्त हो सकने योग्य अंश को ही अवयव कहा जा सकता है, अतः पुद्गल का प्रदेश ही अवयव कहलाता है।

જો કે ધર્મ-દ્રવ્ય, અધર્મ-દ્રવ્ય, આકાશ અને જીવ પણ પુદ્ગલના સમાન સ્કંધરૂપ છે, તો પણ સ્કંધરૂપ પુદ્ગલથી તેમાં એ ભિન્નતા છે-ધર્મ આદિ ચાર દ્રવ્યોના પ્રદેશ પોત-પોતાના સ્કંધથી ક્યારેય પણ અલગ થઈ શકતા નથી. કેમકે ધર્મ આદિ ચાર દ્રવ્યો અમૂર્ત છે. પુદ્ગલ દ્રવ્યના પ્રદેશ ખંડ ખંડ થઈને અલગ થઈ જાય છે, કેમકે પુદ્ગલ મૂર્ત છે. આશ્લેષ (મળવું) અને વિશ્લેષ (જુદા થવું) દ્વારા મૂર્ત વસ્તુમાં મળવું અને છૂટા થવું તે શક્તિ છે, આ વાત સર્વને અનુભવથી સિદ્ધ છે. એટલા કારણથી સ્કંધ પુદ્ગલોનું સ્થૂલ અથવા સૂક્ષ્મ અવયવ કહેવાય છે 'अवयौति' इति-अवयवः અર્થાત્ પૃથક્ થઈ શકે તેને અવયવ કહે છે, એ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે વિભક્ત થવા યોગ્ય અંશને જ અવયવ કહે છે. આ કારણથી પુદ્ગલ દ્રવ્યનો પ્રદેશ જ અવયવ કહેવાય છે.

संघाताद्, भेदात्, संघातभेदाभ्यां च द्विप्रदेशिप्रभृतयः स्कन्धाः समुत्पद्यन्ते। उक्तश्च भगवता स्थानाङ्गसूत्रे—

"दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तंजहा-सयं वा पोग्गला साहन्नंति, परेण वा पोग्गला साहन्नंति। सयं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति" इति।

छाया—"द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते। तद्यथा-स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते। स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते। इति।

'स्वयंवे'-ति स्वभावतो वा अभ्रादिष्विव संहन्यन्ते=सम्बध्यन्ते। (कमणः कर्तृत्वविवक्षायां प्रयोगोऽयम्) परेण वा=अन्येन वा पुरुषादिना संहन्यन्ते= संहताः क्रियन्ते। (कर्मणि वाच्ये प्रयोगोऽयम्)। एवं भिद्यन्ते=विकीर्यन्ते।

द्वयोः परमाण्वोः संघाताद् द्विप्रदेशी स्कन्धः समुद्भवति। द्विप्रदेशिनः

संघात (मिलने) से, भेद (बिछुडने) से तथा संघातभेदसे द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।

भगवानने स्थानाङ्गसूत्रमें कहा है—

"दो स्थानों से पुद्‌गल आपस में मिलते हैं, वह इस प्रकार—या तो पुद्‌गल स्वयं बादल आदि की तरह मिल जाते हैं, या दूसरे पुरुष आदि के द्वारा मिलाये जाते हैं, इसी प्रकार पुद्‌गल स्वयं अलग हो जाते हैं, या दूसरे के द्वारा अलग किये जाते हैं।

दो परमाणुओं के संघात से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, द्विप्रदेशी स्कन्ध

સંઘાત (મેલાપ)થી ભેદ (જુદા પડવા)થી તથા સંઘાત-ભેદથી દ્વિપ્રદેશી વિગેરે સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે. ભગવાને સ્થાનાङ्गसूत्रમાં કહ્યું છે—

"બે સ્થાનોથી પુદ્‌ગલ પરસ્પર મળે છે. તે આ પ્રમાણે—પુદ્‌ગલ પોતે જ વાદળ આદિ પ્રમાણે મળી જાય છે, અથવા બીજા પુરુષ આદિના દ્વારા મેળવાય છે. એ પ્રમાણે પુદ્‌ગલ પોતે જ અગલ થઈ જાય છે, અથવા તો બીજાના દ્વારા અલગ કરી શકાય છે.

બે પરમાણુઓના સંઘાતથી (મળવાથી) દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે. દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ

स्कन्धस्य परमाणोश्च संयागे सति त्रिप्रदेशी स्कन्धो भवति। संख्यात-परमाणूनां संघातात् संख्यातप्रदेशी स्कन्धः, असंख्यातपरमाणूनां संयोगाद् असंख्यातप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तपरमाणूनां संघाताज्जातोऽनन्तप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तप्रदेशिनां स्कन्धानां योगे त्वनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्धो जायते। संख्यात-प्रदेश्यादिषु स्कंधेषु संयोगपरिणामः पूर्वोक्तरीत्या भावनीयः।

द्व्यणुकादिक्रमेणानन्तानन्तप्रदेशिपर्यन्ता ये स्कन्धाः संयोगपरिणाम-जास्तेभ्यः परमाणुः पृथग् भवति चेत्तदैकपरमाणुन्यूनः स्कन्धो जायते। एवं द्वित्रिचतुःपञ्चादिपरमाणुपृथग्भावक्रमेण न्यूनान्न्यूनो द्विप्रदेशी स्कन्धः समुत्पद्यते।

और एक परमाणु का संयोग होने पर त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है, संख्यात परमाणुओं के संधात से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है और असंख्यात परमाणुओं के संयोग से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है। अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध बनता है, अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का संयोग होने पर अनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है। संख्यातप्रदेशी आदि स्कन्धों में संयोगरूप परिणमन पूर्वोक्तप्रकार से समझ लेना चाहिए।

द्व्यणुक आदि के क्रम से अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जो स्कन्ध संयोगपरिणाम से बने हैं, उन में से अगर एक परमाणु अलग हो जाता है तो वह एक परमाणुहीन स्कंध रह जाता है। इसी प्रकार दो तीन चार पांच आदि परमाणुओं के अलग होने पर अन्त में द्विप्रदेशी स्कंध ही बचता है।

અને એક પરમાણુનો સંયોગ થવાથી ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે, સંખ્યાત પરમાણુઓના સંઘાતથી (મળવાથી) સંખ્યાતપ્રદેશી સ્કંધ બને છે. અને અસંખ્યાત પરમાણુઓના સંયોગથી અસંખ્યાતપ્રદેશી સ્કંધ બને છે. અનન્ત પરમાણુઓના સંયોગથી અનન્ત પ્રદેશી સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે. અનન્તપ્રદેશી સ્કંધોનો સંયોગ થાય તો અનન્તાનન્ત-પ્રદેશી સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે. સંખ્યાતપ્રદેશી આદિ સ્કંધોમાં સંયોગરૂપ પરિણમન પૂર્વના પ્રકારથી સમજી લેવું જોઈએ.

દ્વ્યણુક આદિના ક્રમથી અનન્તાનન્તપ્રદેશી પર્યન્ત જે સ્કંધ છે, તે સંયોગ પરિણમનથી બન્યા છે. તેમાંથી જો એક પરમાણુ અલગ થઈ જાય તો તે એક પરમાણુહીન સ્કંધ રહી જાય છે. એ પ્રમાણે બે, ત્રણ, ચાર, પાંચ આદિ પરમાણુઓ અલગ થઈ જાય તો અન્તમાં દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ જ બચે છે.

स्कन्धाद् बहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना संयोगे द्व्यणुकस्कन्ध उत्पद्यते। एवं संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति।

परमाणूनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणूनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं संयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्परं बन्धो भवति। ऐक्यपरिमाणो बन्धः। तत्रायं विशेषः—

स्कंध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्व्यणुक उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार संयोग और विभाग के द्वारा भाँति-भाँति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं।

परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलबत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में संयोग होने पर उन में विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है। एकतारूप परिणमन को बन्ध कहते हैं। बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

સ્કંધથી અલગ થયેલા પરમાણુ જ્યારે બીજા પરમાણુની સાથે મળે છે, તો બંનેના મળવાથી નવીન દ્વયણુક ઉત્પન્ન થાય છે. એ પ્રમાણે સંયોગ અને વિભાગ દ્વારા તરેહ-તરેહના સ્કંધ ઉત્પન્ન થયા કરે છે.

પરમાણુઓના બંધનું કારણ—

બે અથવા અધિક પરમાણુ એક બીજામાં પ્રવેશ કરી શકતા નથી, કેમકે પરમાણુઓમાં છિદ્ર નથી. અલબત સ્વાભાવિક ગતિથી બે અથવા બેથી અધિક પર-માણુઓનો પરસ્પર સંયોગ થવાથી તેમાં વિદ્યમાન સ્નિગ્ધતા અને રૂક્ષતાના ગુણના કારણે તેનો આપસમાં બંધ થઈ જાય છે. એકતારૂપ પરિણમનને બંધ કહે છે. બંધના સંબંધમાં એટલું વિશેષ સમજવું જોઇએ કે:—

जघन्यगुणस्निग्धयोर्द्वयोः, जघन्यगुणस्निग्धानां वा बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति। तथा जघन्यगुणरूक्षयोः, जघन्यगुणरूक्षाणां वा परस्परं बन्धो न भवति। जघन्योऽपकृष्टतमः, गुणशब्दोऽत्र संख्यार्थकः। यथा एक-गुणं, द्विगुणमित्यादिपदम्-एकसंख्यकद्विसंख्यकाद्यर्थबोधकम्। स्नेहादिगुणानां प्रकर्षापकर्षौ लोकप्रसिद्धौ। यथा-पानीयादजादुग्धं स्निग्धम्, अजादुग्धाद् गव्यं दुग्धम्, ततश्च महिषीदुग्धमित्युत्तरोत्तरं स्नेहप्रकर्षः।

एषामेव पूर्वं पूर्वं स्नेहापकर्षः। तथा चैकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन, द्वयोर्बहूनां परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवति। एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षेण च

जघन्यगुण स्निग्ध दो परमाणुओं का, अथवा बहुत परमाणुओं का परस्परमें बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार जघन्यगुण रूक्ष दो या बहुत परमाणुओं का भी परस्पर में बन्ध नहीं होता। जघन्य का अर्थ यहाँ हीनतम समझना चाहिए। गुणशब्द यहां संख्या (डिगरी) का वाचक है, जैसे-एकगुना, दोगुना आदि पद एकसंख्यक द्विसंख्यक आदि अर्थ के वाचक हैं। स्निग्धता (चिकनाई) आदि गुणों की अधिकता और न्यूनता लोक में प्रसिद्ध है। जैसे पानी की अपेक्षा बकरी का दूध चिकना होता है। बकरी के दूधसे गौ का दूध अधिक चिकना होता है, और गौ के दूध की अपेक्षा भैंस का दूध अधिक चिकना होता है। इस प्रकार पानी आदिमें उत्तरोत्तर चिकनेपन की अधिकता है। इन्ही पानी आदि में पहले२ वालों में चिकनेपनकी न्यूनता है। इस प्रकार एक गुण स्निग्ध का, एक गुण स्निग्ध के साथ, दो या अधिक परमाणुओं का

જઘન્ય ગુણ સ્નિગ્ધ બે પરમાણુઓનો અથવા બહુ પરમાણુઓનો પરસ્પર બંધ થતો નથી, જઘન્યનો અર્થ અહિં હીનતમ સમજવો જોઇએ. ગુણ શબ્દ અહિં સંખ્યા (ડિગ્રી) નો વાચક છે. જેવી રીતે એક ગણુ બે ગણુ આદિ પદ એક સંખ્યક, દ્વિસંખ્યક આદિ અર્થનું વાચક છે. સ્નિગ્ધતા (ચિકણાપણું) આદિ ગુણોની અધિકતા અને ન્યૂનતા લોકમાં પ્રસિદ્ધ છે. જેમ પાણીની અપેક્ષાએ બકરીનું દૂધ ચિકણું હોય છે. બકરીના દૂધથી ગાયનું દૂધ અને ગાયના દૂધની અપેક્ષાએ ભેંસનું દૂધ વધારે સ્નિગ્ધ (ચિકણું) હોય છે. એ પ્રમાણે પાણી આદિમાં ઉત્તરોત્તર ચિકણા-પણાની અધિકતા છે.

એ પાણી આદિમાં પહેલા-પહેલાનામાં ચિકણાપણાની ન્યૂનતા છે. એ પ્રમાણે એક ગુણ સ્નિગ્ધનો, એક ગુણ સ્નિગ્ધની સાથે, તથા બે અથવા અધિક પરમાણુઓનો

द्वयोर्बहूनां वा परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवतीति फलितम् ।

ननु परमाणूनां सत्यपि संयोगे बन्धकारणीभूतस्निग्धत्वरूक्षत्वयोश्च सद्भावे कथं न जायते परस्परमेकत्वपरिणतिलक्षणो बन्धः ? इति ।

परमाणोस्तादृशपरिणमनशक्तेरभावात् । परिणामशक्तयश्च द्रव्याणां विचित्ररूपाः क्षेत्रकालाद्यनुरोधेन प्रयोगविस्रसापेक्षाः प्रभवन्ति। जघन्यगुणत्वेन दौर्बल्यादेव स्नेहो रूक्षो वा कश्चिद् पुद्गलं परिणामयितुं न समर्थः । यथा-तुल्यदुर्बलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिदभिहन्तुं न प्रभवति, तस्माज्जघन्यगुणानां परस्परं बन्धो न भवतीति सिद्धम् ।

परस्पर बन्ध नहीं होता, और एक गुण रूक्षका एक गुण रूक्ष के साथ दो या अधिक परमाणुओं का परस्पर बन्ध नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

शंका—परमाणुओं का संयोग मौजूद होने पर भी, और बन्ध के कारणभूत स्निग्धत्व तथा रूक्षत्व के विद्यमान होने पर भी बन्ध—एकतारूप परिणमन क्यों नहीं होता ?

समाधान—परमाणु में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति का अभाव है। द्रव्यों की परिणमन शक्तियाँ क्षेत्र और काल के अनुरोध से प्रयत्न तथा स्वभाव की अपेक्षा रखती हुई नाना प्रकार की होती हैं । जघन्य गुणवाला होने के कारण निर्बल होने से स्निग्ध या रूक्ष परमाणु किसी पुद्गल को परिणत करने में समर्थ नहीं होता; जैसे समान दुर्बलतावाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता । अत एव यह सिद्ध हुआ कि जघन्य गुणवालों का परस्पर में बन्ध नहीं होता ।

પરસ્પર બંધ થતો નથી, અને એકગુણ રૂક્ષનો એકગુણ રૂક્ષની સાથે બે અથવા અધિક પરમાણુઓનો પરસ્પર બંધ થતો નથી.

શંકા-પરમાણુઓનો સંયોગ મોજૂદ હોવા છતાંય પણ, અને બંધના કારણભૂત સ્નિગ્ધત્વ (ચિકણાપણું) તથા રૂક્ષત્વ (લૂખાપણું) વિદ્યમાન હોવા છતાંય બંધ-એકતારૂપ પરિણમન કેમ થતું નથી ?

સમાધાન-પરમાણુમાં એ પ્રકારની પરિણમનની શક્તિનો અભાવ છે, દ્રવ્યની પરિણમન શક્તિઓ ક્ષેત્ર અને કાલના અનુરોધથી, પ્રયત્ન તથા સ્વભાવની અપેક્ષા રાખતી થકી નાના પ્રકારની થાય છે. જઘન્ય ગુણવાળા હોવાના કારણે, નિર્બલ હોવાથી સ્નેહ અથવા રૂક્ષ પરમાણુ કોઈ પુદ્ગલને પરિણત કરવામાં સમર્થ થતું નથી. જેવી રીતે સમાન દુર્બળતાવાળા બે મલ્લોમાંથી કોઈ કોઇને પરાજિત કરી શકતા નથી. એટલા કારણથી સિદ્ધ થયું કે-જઘન્ય ગુણવાળાઓનો પરસ્પર બંધ થતો નથી.

एवं द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सर्वेण समगुणेन पुद्गलेन परस्परं बन्धो न भवति। तथा द्विगुणादिरूक्षस्य द्विगुणादिरूक्षेण सर्वेण समगुणेन यावदनन्तगुणरूक्षेण पुद्गलेन सह परस्परं बन्धो न भवति। यथा तुल्यबलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिदभिहन्तुं न प्रभवति।

इत्थं च तुल्यसंख्यके स्निग्धत्वे सति स्निग्धस्य स्निग्धेन सह बन्धो न भवति, तुल्यसंख्यके रूक्षत्वे सति रूक्षस्य रूक्षेण सह बन्धो न भवतीति सारांशः।

अथ जघन्यसिग्धस्य कीदृशेन स्निग्धेन सह परस्परं बन्धो भवति?

इसी प्रकार द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलका द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्धतावाले समगुण पुद्गल के साथ आपस में बन्ध नहीं होता। तथा द्विगुण आदि रूक्ष समगुणवाले किसी भी पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है। जैसे—समान बलवाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता।

इस प्रकार समान स्निग्धता होने पर स्निग्ध पुद्गलका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है, और समान रूक्षता होने पर रूक्षका रूक्षके साथ भी बन्ध नहीं होता है।

शंका—जघन्य स्निग्ध का किस प्रकार के स्निग्ध पुद्गल के साथ परस्पर बन्ध होता है?।

એ પ્રમાણે દ્વિગુણથી લઈને સંખ્યાત, અસંખ્યાત અને અનંતગુણ સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો દ્વિગુણથી લઈને સંખ્યાત, અસંખ્યાત, અને અનંતગુણ સ્નિગ્ધતાવાળા સમગુણ પુદ્ગલની સાથે આપસમાં બંધ થતો નથી. તથા દ્વિગુણ આદિ રૂક્ષ પુદ્ગલનો દ્વિગુણ આદિ રૂક્ષ સમગુણવાળા કોઈ પણ પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો નથી. જેમ સમાન બળવાળા બે મલ્લોમાંથી કોઈ કોઈને પરાજિત કરી શકતા નથી.

એ પ્રમાણે સમાન સ્નિગ્ધતા હોવા છતાંય, સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો નથી, અને સમાન રૂક્ષ હોવા છતાંય રૂક્ષનો રૂક્ષની સાથે પણ બંધ થતો નથી.

શંકા–જઘન્ય સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો કયા પ્રકારના સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે પરસ્પર બંધ થાય છે?

अत्रोच्यते–जघन्यस्निग्धस्य द्व्यधिकत्र्यधिकादिना स्निग्धेन बन्धो भवति, यथा एकगुणस्निग्धस्य परमाणुपुद्गलस्य त्रिगुणस्निग्धेन परमाणुपुद्गलेन सह संयोगे सति बन्धो भवति। एवं एकगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणपञ्चगुणयावत्संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सह बन्धः।

एकगुणस्निग्धस्यैकाधिकगुणस्निग्धेन (द्विगुणस्निग्धेन) तु न बन्धः, द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन च स्निग्धपुद्गलस्य बन्धविधानात्। एकाधिकगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य प्रतिविशिष्टपरिणमनशक्तेरभावात्। एकगुणस्निग्धस्यैकाधिको द्विगुणस्निग्धः।

समाधान—जघन्य स्निग्ध पुद्गल का दो गुण (डिगरी) या तीन गुण अधिक स्निग्धतावाले पुद्गल के साथ बन्ध होता है। जैसे एक गुण स्निग्धतावाले परमाणु का तीन गुण स्निग्धता वाले परमाणु के साथ संयोग होने पर बन्ध हो जाता है। इसी प्रकार एक गुण (एक अंश) स्निग्धका चार, पांच, यहाँ तक कि संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है।

एक गुण स्निग्धका एक अधिक गुण स्निग्ध अर्थात् द्विगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि दो गुण अधिक स्निग्धका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध बतलाया गया है। एक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गल में विशेष प्रकार के परिणमन की शक्ति नहीं है। एक गुण स्निग्धतावाले की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध जहाँ कहा जाय वहाँ दो गुण स्निग्धतावाला पुद्गल समझ लेना चाहिये।

સમાધાન—જઘન્ય સ્નિગ્ધ પુદ્ગલના બે ગુણ (ડિગ્રી) અથવા ત્રણ ગુણ અધિક સ્નિગ્ધતાવાળા પુદ્ગલની સાથે બંધ થાય છે જેમકે:–એક ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળા પરમાણુનો ત્રણ ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળા પરમાણુની સાથે સંયોગ થઈ જાય તો બંધ થઈ જાય છે. તેવી રીતે એક ગુણ (ડિગ્રી) (અંશ) સ્નિગ્ધતાના ચાર, પાંચ, ત્યાં સુધી કે સંખ્યાત અસંખ્યાત એ પ્રમાણે અનંત ગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થાય છે.

એક ગુણ સ્નિગ્ધતાનો એક અધિક ગુણ સ્નિગ્ધ અર્થાત્ દ્વિગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થતો નથી, કેમકે બે ગુણ અધિક સ્નિગ્ધના સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે બંધ બતાવ્યો છે, એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ પુદ્ગલમાં વિશેષ પ્રકારનાં પરિણમનની શક્તિ નથી. એક ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળાની અપેક્ષા એક ગુણ (ડિગ્રી) અધિક સ્નિગ્ધ જ્યાં કહેવાય ત્યાં બે ગુણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાળા પુદ્ગલ સમજી લેવા જોઈએ.

एवमुक्तयुक्त्या द्विगुणादिस्निग्धस्य स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति। द्विगुणस्निग्धस्यैकाधिकस्त्रिगुणस्निग्धः त्रिगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणस्निग्ध एकाधिकः, इति हेतोर्द्विगुणस्निग्धस्य त्रिगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति। इत्थं च स्निग्धपुद्गलस्यैकाधिकगुणस्निग्धपुद्गलेन सह बन्धो न भवतीति सारः।

द्विगुणादिस्निग्धस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन बन्धो भवति। यथा द्विगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकश्चतुर्गुणस्निग्धः। त्र्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, चतुरधिकः

पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार द्विगुण आदि स्निग्ध का अपनी अपनी अपेक्षा से एक गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता। द्विगुण स्निग्ध से एक अधिक का अर्थ है—त्रिगुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध से एक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध सनझना चाहिये। इस रीति से अनन्त गुण स्निग्ध भी अपने से एक गुण हीन स्निग्ध की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध है। अतः द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता। सारांश यह है कि—स्निग्ध पुद्गल का एक गुण अधिक पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता।

द्विगुण स्निग्ध आदि का दो गुण अधिक अर्थात् चार गुण स्निग्ध के साथ बन्ध हो जाता है, जैसे दो गुण स्निग्ध से दो गुण अधिक स्निग्ध का

પૂર્વોકત યુકિત પ્રમાણે દ્વિગુણ આદિ સ્નિગ્ધનો પોત-પોતાની અપેક્ષાથી એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ સાથે બંધ થતો નથી. દ્વિગુણ સ્નિગ્ધથી એક અધિકનો અર્થ છે-ત્રિગુણ સ્નિગ્ધ, અને ત્રિગુણ સ્નિગ્ધથી એક અધિક ચતુર્ગુણ સ્નિગ્ધ સમજવો જોઈએ. એ પ્રમાણે અનન્ત ગુણ સ્નિગ્ધ પણ, પોતાનાથી એક ગુણ હીન સ્નિગ્ધની અપેક્ષાથી એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ છે. તેથી દ્વિગુણ સ્નિગ્ધનો ત્રિગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થતો નથી. સારાંશ એ છે કે:-સ્નિગ્ધ પુદ્ગલનો એક ગુણ અધિક સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો નથી.

દ્વિગુણ સ્નિગ્ધ આદિનો બે ગુણ અધિક અર્થાત્ ચાર ગુણ સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થઈ જાય છે. જેમ-બે ગુણ સ્નિગ્ધથી બે ગુણ અધિક સ્નિગ્ધનો અર્થ ચાર

षड्गुणस्निग्धः, इत्यादि। त्रिगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, त्र्यधिकः षड्गुणस्निग्धः, चतुरधिकः सप्तगुणस्निग्धः, इत्यादि। चतुर्गुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः षड्गुणस्निग्धः, त्र्यधिकः सप्तगुणस्निग्धः चतुरधिकः- अष्टगुणस्निग्धः। एवं पञ्चगुणस्निग्धादिसंख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धपर्यन्तस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन सह बन्धो भावनीयः।

एवं जघन्यगुणरूक्षस्य, अजघन्यगुणरूक्षस्य च बन्धव्यवस्था बोध्या।

विसदृशपुद्गलबन्धः—

अथ विसदृशपुद्गलयोर्बन्धे कीदृशी व्यवस्था ?

उच्यते—जघन्यगुणस्निग्धस्य, जघन्यगुणरूक्षेण सह बन्धो न भवति।

अर्थ चार गुण स्निग्ध, तीन गुण अधिक का अर्थ पांच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिक का अर्थ छह गुण स्निग्ध, इत्यादि समझना चाहिए। चतुर्गुण स्निग्ध से द्व्यधिक— षड्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक—सप्तगुण स्निग्ध, चतुर्रधिक—अष्टगुण स्निग्ध समझना चाहिए। इस प्रकार पञ्चगुण स्निग्ध आदि से संख्यात, असंख्यात अनन्त गुण स्निग्ध का दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध होता है। इस प्रकार जघन्य गुण रूक्ष का अजघन्य गुण रूक्ष के साथ बन्ध की व्यवस्था जाननी चाहिए।

विसदृश पुद्गलों का बन्ध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्पर विरोधी पुद्गलों के बन्ध की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्ध का जघन्य गुण वाले रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध

ગુણુ સ્નિગ્ધ, ત્રણુ ગુણુ અધિકનો અર્થ પાંચ ગુણુ સ્નિગ્ધ, ચાર ગુણુ અધિકનો અર્થ છ ગુણુ સ્નિગ્ધ, એ પ્રમાણે સમજવું જોઇએ. ચતુર્ગુણુ સ્નિગ્ધથી દ્વ્યધિક ષડ્ગુણુ સ્નિગ્ધ, ત્ર્યધિક સપ્તગુણુ સ્નિગ્ધ ચતુરધિક અષ્ટગુણુ સ્નિગ્ધ સમજવું જોઈએ, એ પ્રમાણે પાંચ ગુણુ સ્નિગ્ધ આદિથી સંખ્યાત, અસંખ્યાત અનન્તગુણુ સ્નિગ્ધના બે ગુણુ અધિક સ્નિગ્ધની સાથે બંધ થાય છે એ પ્રમાણે જઘન્ય ગુણુ રૂક્ષની અજઘન્ય ગુણુ રૂક્ષની સાથે બંધની વ્યવસ્થા જાણવી જોઈએ

વિસદૃશ પુદ્ગલોના બંધ—

પ્રશ્ન—વિસદૃશ અર્થાત્ પરસ્પરવિરોધી પુદ્ગલોના બંધની શું વ્યવસ્થા છે ?

ઉત્તર—જઘન્ય ગુણુ સ્નિગ્ધનો જઘન્ય ગુણુવાળા પુદ્ગલની સાથે બંધ થતો

जघन्यगुण (एकगुण) स्निग्धस्य अजघन्यगुण (द्विगुणाद्यनन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धस्य वा स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणरूक्षेण, पुनः स्वस्वापेक्षया द्व्यधिक-त्र्यधिक-चतुरधिकादि-गुणरूक्षेणापि बन्धो भवति। उक्तश्च भगवता प्रज्ञापनासूत्रे-(१३)-त्रयोदशे परिणामपदे-"बंधणपरिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-णिद्धबंधणपरिणामे य लुक्खबंधणपरिणामे य।"

समणिद्धयाए बन्धो, न होइ समलुक्खयाएवि ण होइ।
वेमायणिद्धलुक्ख-त्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥१॥

छाया—बन्धनपरिणामो भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-स्निग्धबन्धनपरिणामश्च, रूक्षबन्धनपरिणामश्च।

समस्निग्धतायां बन्धो न भवति, समरूक्षतायामपि न भवति।
विमात्रस्निग्धरूक्षत्वेन, बन्धस्तु स्कन्धानाम् ॥ १ ॥

नहीं होता। जघन्य गुण (एकगुण) स्निग्ध का अथवा अजघन्य गुण (दो से लगाकर अनन्त गुण तक) स्निग्ध का, अपने से एक गुण अधिक रूक्ष के साथ बन्ध होता है। और अपने अपने से दो अधिक, तीन अधिक, चार अधिक आदि रूक्ष पुद्गल के साथ भी बन्ध होता है। भगवान् ने प्रज्ञापना सूत्र के १३ वें परिणाम पदमें कहा हैं—

प्रश्न—"भगवान्! बन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! दो प्रकार का कहा गया है—(१) स्निग्धबन्धनपरिणाम और (२) रूक्षबंधनपरिणाम।

समान स्निग्धता या समान रूक्षता होने पर बन्ध नहीं होता है, किन्तु विमात्र—अर्थात् अधिक का हीनके साथ, और हीनका अधिक के साथ, चाहे वे स्निग्ध हो या रूक्ष हो बन्ध हो जाता है ॥ १ ॥

નથી. જઘન્ય ગુણ (એક ગુણ) સ્નિગ્ધનો અથવા અજઘન્ય, (બેથી લઈને અનન્ત ગુણ સુધી) સ્નિગ્ધનો પોતાનાથી એક ગુણ અધિક રૂક્ષની સાથે બંધ થાય છે. અને પોતપોતાથી બે અધિક, ત્રણ અધિક, ચાર અધિક આદિ રૂક્ષ પુદ્ગલની સાથે પણ બંધ થાય છે, ભગવાને પ્રજ્ઞાપના સૂત્રના ૧૩મા પરિણામ પદમાં કહેલું છે—

પ્રશ્ન—"ભગવન્! બન્ધન-પરિણામ કેટલા પ્રકારનાં કહ્યાં છે?

ઉત્તર—ગૌતમ! બે પ્રકારનાં કહેલાં છે-(૧) સ્નિગ્ધબંધનપરિણામ અને (૧) રૂક્ષબંધનપરિણામ."

સમાન સ્નિગ્ધતા અથવા સમાન રૂક્ષતા હોય તો બંધ થતો નથી. પરંતુ વિમાત્ર અર્થાત્ અધિકનો હીનની સાથે અને હીનનો અધિકની સાથે, ભલે તે સ્નિગ્ધ હોય કે રૂક્ષ હોય, બંધ થઈ જાય છે ॥ ૧ ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएण,
लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,
जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥
(प्रज्ञा० पद-१३)

छाया—स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विकाधिकेन,
रूक्षस्य रूक्षेण द्विकाधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति बन्धो,
जघन्यवर्जो विषमः समो वा ॥२॥" इति,
विसदृशस्य बन्धमाह-"णिद्धस्स लुक्खेण" इत्यादि ।

स्निग्धस्य रूक्षेण सह बंध उपैति=उपगतो भवति, जायत इत्यर्थः । यदि परमाणुर्जघन्यवर्जो विषमो समो वा भवेत् । ॥२॥
परमाणूनां बन्धव्यवस्थाकोष्ठकमग्रेऽवलोकनीयम् ।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का बन्ध होता है । और दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्षका बन्ध होता है। अब विसदृश बन्धको कहते हैं—"**णिद्धस्स लुक्खेण**" इत्यादि। जघन्य गुणवाले परमाणु को छोडकर फिर चाहे वह विषम हो या सम हो स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है ।

परमाणुओं की बन्धव्यवस्था का कोष्ठक पृष्ट १२१ देख लेवें ।

બે ગુણુ અધિક સ્નિગ્ધ સાથે સ્નિગ્ધનો બંધ થાય છે. અને બે ગુણુ અધિક રૂક્ષની સાથે રૂક્ષનો બન્ધ થાય છે. હવે વિસદૃશ બન્ધ કહે છે-"णिद्धस्स लुक्खेण" ઈત્યાદિ. જઘન્ય ગુણુવાળા પરમાણુને છોડીને બીજા ગમે તે વિષમ હોય અથવા સમ હોય તે સ્નિગ્ધનો રૂક્ષની સાથે બંધ થાય છે.

પરમાણુઓની બંધવ્યવસ્થાનું કોષ્ઠક પેજ ૧૨૧માં જોઈ લેવું.

॥ परमाणुबन्धव्यवस्थाकोष्ठकम् ॥

जघन्यगुण–(एकगुण)–स्निग्ध–रूक्षयोर्बन्धव्यवस्था ।

स्निग्धरूक्षसंख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूक्षस्य + रूक्षेण सह	स्निग्धस्य + रूक्षेण सह
जघन्यस्य (एकगुणस्य) जघन्येन (एकगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धाभावः
जघन्यस्य (एकगुणेन) + एकाधिकेन (द्विगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धो भवति	बन्धो भवति
जघन्यस्य (एकगुणस्य) + द्व्यधिकादिगुणेन–(त्रिगुण–चतुर्गुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

अजघन्यगुण–(द्विगुणादि)–स्निग्धरूक्षयोर्बन्धव्यवस्था

स्निग्धरूक्ष – संख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूक्षस्य + रूक्षेण सह	स्निग्धस्य + रूक्षेण सह
द्विगुणस्य + द्विगुणेन सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + एकाधिकेन (त्रिगुणेन) सह	बन्धाभावः	बन्धाभावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + द्व्यधिकादिगुणेन (चतुर्गुणपञ्चगुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

एवम् अजघन्यगुण-(त्रिगुणचतुर्गुणतः समारभ्यानन्तगुणपर्यन्त)–स्निग्धरूक्षयोः समगुणेन, एकाधिकगुणेन, द्व्यधिकादिगुणेन च सह बन्धव्यवस्था भावनीया ॥

अथ जीवास्तिकायः—

जीवशब्दार्थः—

जीवति प्राणान् धारयतीति जीवः। न च सिद्धानां प्राणसम्बन्धाभावादजीवत्वापत्तिरिति वाच्यम्, 'प्राणान् धारयती'-त्यत्र प्राणसामान्यविवक्षया पञ्चेन्द्रियप्रभृतिदशविधद्रव्यप्राणानामसत्त्वेऽपि सिद्धानां भावप्राणसद्भावेन जीवत्वसिद्धेरव्याहतत्वात्। प्रतिविशिष्टप्राणसम्बन्धे सति जीवनाज्जीवशब्दः प्रवर्तते।

प्राणा द्विविधाः—द्रव्यप्राणाः, भावप्राणाश्च। तत्र द्रव्यप्राणा दशविधाः

जीवास्तिकाय—

जीवशब्दका अर्थ—

जो जीता है अर्थात् प्राणों को धारण करता है, वह जीव कहलाता है। 'सिद्धों में प्राणों का अभाव होने से वे अजीव हो जायेंगे' यह कहना ठीक नही है। 'जो प्राणों को धारण करता है' इस कथन में प्राण—सामान्य की विवक्षा की गई हैं। सिद्धों में यद्यपि पांच—इन्द्रिय आदि दस प्रकार के द्रव्यप्राण नहीं हैं, तथापि भाव—प्राण पाये जाते हैं, और इन भाव—प्राणों के कारण सिद्ध भगवान् का जीवपन सिद्ध हो जाता है। विशिष्ट प्रकार के प्राणों का सम्बन्ध होने पर जीने वाले को जीव कहते हैं।

प्राण दो प्रकार के हैं-(१) द्रव्यप्राण और (२)—भावप्राण। द्रव्यप्राणों के

જીવાસ્તિકાય—

જીવ શબ્દનો અર્થ—

જે જીવે છે અર્થાત્ પ્રાણોને ધારણ કરે છે, તે જીવ કહેવાય છે. 'સિદ્ધોમાં પ્રાણોનો અભાવ હોવાથી તે અજીવ થઇ જશે,' એમ કહેવું તે ઠીક નથી. 'જે પ્રાણોને ધારણ કરે છે' એમ કહેવામાં પ્રાણ—સામાન્યની વિવક્ષા કહી છે. સિદ્ધોમાં જો કે પાંચ ઇન્દ્રિયો આદિ દસ પ્રકારના દ્રવ્ય—પ્રાણ નથી, તો પણ ભાવ—પ્રાણ હોય છે, અને તે ભાવ—પ્રાણોના કારણે સિદ્ધ ભગવાનનું જીવપણું સિદ્ધ થાય છે. વિશિષ્ટ પ્રકારના પ્રાણોનો સંબંધ હોવાના કારણે જીવવા વાળાને જીવ કહે છે.

પ્રાણ બે પ્રકારના છે—(૧) દ્રવ્ય—પ્રાણ અને (૨) ભાવ—પ્રાણ, દ્રવ્ય પ્રાણોના

इन्द्रियपंचकम्५, मनोवाक्कायबलत्रयम्३, श्वासोच्छ्वासरूपः१, आयुश्चेति१ । एते दश प्राणाः संसारिणां यथासंभवं भवन्ति । नारकतिर्यगादयः संसारिणो द्रव्यप्राणैरपि प्राणिनः । व्यपगतसमस्तकर्मसम्बन्धाः सिद्धास्तु केवलभावप्राणैरेव प्राणिनः सन्ति । भावप्राणाश्चतुर्विधाः–अनन्तज्ञानम् १, अनन्तवीर्यम् २, अनन्तसुखम् ३, अनाद्यनन्तस्थितिश्च४ । तत्रानन्तज्ञानात् क्षायोपशमिकपञ्चेन्द्रियाणि, अनन्तवीर्यरूपभावप्राणस्यानन्तांशेन मनोवाक्कायबलत्रयम् , अनन्तसुखाच्च–श्वासोच्छ्वासरूपः प्राणः समुद्भवति, तथा अनाद्यनन्तस्थितिरूप–भावप्राणतः सादि–सान्तरूप आयुःप्राणो जायते । एवं द्रव्यप्राणानां कारणं भावप्राणा इत्यत्रधेयम् ।

दशभेद हैं–पांच इन्द्रियाँ५, तीन बल–मनोबल, वचनबल और कायबल३, श्वासोच्छवास १ तथा आयु १, ये दश द्रव्यप्राण यथासम्भव संसारी जीवों के होते हैं । नारकी, तिर्यंच आदि संसारी जीवों में भी द्रव्यप्राण पाये जाते हैं, किन्तु सब प्रकार के कर्म–संबंध से रहित सिद्धों में सिर्फ भावप्राण ही होते हैं । सिद्ध जीव भावप्राणों के कारण ही प्राणी कहलाते हैं ।

भाव प्राणके चार भेद हैं–अनन्तज्ञान१, अनन्तवीर्य२, अनन्तसुख३, और अनादिअनन्तस्थिति४ । क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली पांच इन्द्रियाँ अनन्त ज्ञान का विकार (वैभाविक परिणमन) है, मन, वचन और काय–बल, अनन्तवीर्यरूप भावप्राणका विकार है, श्वासोच्छ्वास अनंतसुखरूप भावप्राणका विकार है, और सादिसान्त आयुरूप द्रव्यप्राण अनादि–अनंतस्थितिरूप भावप्राणका विकार है । इस प्रकार भावप्राण द्रव्यप्राणों के कारण हैं ।

દસ ભેદ છે—પાંચ ઇન્દ્રિયો૫, ત્રણ બળ અર્થાત્ મનોબલ, વચનબલ અને કાયબળ૩, શ્વાસોચ્છાસ૧, તથા આયુ૧, આ દસ દ્રવ્યપ્રાણ સાધારણ રીતે સંસારી જીવોને હોય છે. નારકી તિર્યંચ આદિ સંસારી જીવોમાં પણ દ્રવ્યપ્રાણ દેખાય છે, પરન્તુ સર્વ પ્રકારના કર્મ–સંબંધથી રહિત સિદ્ધોમાં માત્ર ભાવપ્રાણ જ હોય છે, સિદ્ધ જીવ ભાવપ્રાણોના કારણથી જ પ્રાણી કહેવાય છે.

ભાવપ્રાણના ચાર ભેદ છે–અનન્તજ્ઞાન, અનન્તવીર્ય, અનન્ત સુખ અને અનાદિ-અનન્ત સ્થિતિ, ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થવા વાળી પાંચ ઇન્દ્રિયો અનન્ત જ્ઞાનનો વિકાર (વૈભાવિક પરિણમન) છે, મન, વચન અને કાયબલ, અનંત વીર્યરૂપ ભાવ પ્રાણનો વિકાર છે, શ્વાસોચ્છ્વાસ તે અનંતસુખરૂપ ભાવપ્રાણનો વિકાર છે; અને સાદિ–સાન્ત આયુરૂપ દ્રવ્યપ્રાણ, અનાદિ અનંત સ્થિતિરૂપ ભાવપ્રાણનો વિકાર છે. એ પ્રમાણે ભાવપ્રાણ, દ્રવ્યપ્રાણોના કારણ છે.

अथ जीवस्य स्वरूपम्—

औपशमिकादिभाववान्, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, लोकाकाशव्यापी प्रदीपवत् संकोचविकासशीलः, व्यक्तिरूपेणानन्तोऽखण्डः, क्रियाशीलः, प्रदेश-समुदायरूपो, नित्यो, रूपरहितोऽवस्थितोऽमूर्तः सन्नपि संसारावस्थायां मूर्त इव प्रतीयमानः, ऊर्ध्वगतिशील आत्मा जीवः ।

अथ भावस्तद्भेदाश्च—

'अथौपशमिकादिभाववान् जीवः' इत्युक्तम्, तत्र कस्तावद्भावः ? श्रूयताम्—आत्मपर्यायाणामवस्थैव भावाः । आत्मपर्यायाश्चावस्थाभेदेन विविधरूपा

जीव का स्वरूप—

औपशमिक आदि भावोंवाला, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाव वाला, व्यक्तिरूप से अनंतसंख्यक, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होने पर भी संसारी अवस्था में मूर्त जैसा प्रतीत होने वाला, ऊर्ध्वगमनस्वभाववाला आत्मा जीव कहलाता है ।

भाव और भाव के भेद—

प्रश्न—जीव का स्वरूप बतलाते हुए उसे औपशमिक आदि भावो वाला कहा है सो भाव क्या वस्तु है ?

उत्तर—सुनिये, आत्मा के पर्यायों की अवस्था ही भाव कहलाती है । आत्मा के पर्याय, अवस्थाओं के भेद से नाना प्रकार के होते हैं, अतः आत्मपर्यायवर्ती भाव

જીવનું સ્વરૂપ

ઔપશમિક આદિ ભાવો વાળા, અસંખ્યાતપ્રદેશી, પરિણામી. પ્રદીપપ્રભાના સમાન સંકોચ-વિકાસ સ્વભાવવાળા, વ્યક્તિરૂપથી અનંતસંખ્યક, ક્રિયાશીલ, પ્રદેશ સમુદાયરૂપ, નિત્ય, અરૂપી, અવસ્થિત, અમૂર્ત હોવા છતાંય સંસારી અવસ્થામાં મૂર્ત જેવા દેખાવાવાળા, ઉર્ધ્વગમન સ્વભાવવાળા આત્મા જીવ કહેવાય છે.

ભાવ અને ભાવના ભેદ—

પ્રશ્ન—જીવનું સ્વરૂપ બતાવતા થકા તેને ઔપશમિક આદિ ભાવોવાળા કહેલ છે; તે ભાવ શું વસ્તુ છે ?

ઉત્તર—સાંભળો, આત્માના પર્યાયોની અવસ્થા જ ભાવ કહેવાય છે. આત્માની પર્યાય, અવસ્થાઓના ભેદથી નાના પ્રકારના હોય છે, તેથી આત્મપર્યાયવર્ત્તી ભાવ પાંચ

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्त्ती भावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकश्चेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणो भस्मावच्छन्नवह्निवदनुद्रेकावस्था, प्रदेशतोऽप्युदयाभावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रदेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति निरोधः । इत्थम्भूतश्चोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्वृत्त औपशमिकः– क्रोधादिकषायोदयाभावरूपोपशमस्य फलरूपो जीवस्य परमशान्तावस्थालक्षण–परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा–कतकचूर्णप्रक्षेपेण पङ्कादि–

पांच प्रकारका है–(१)–औपशमिक, (२)–क्षायिक, (३)–क्षायोपशमिक, (४)–औदयिक और (५)–पारिणामिक ।

(१) औपशमिक भाव—

राख से ढँकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था, एवं प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा प्रदेशरूप से–दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रुकना उपशम है । इस प्रकार का उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं । अर्थात् क्रोध आदि कषायों के उदयाभावरूप उपशम का फलरूप जीव, उसका परमशान्त अवस्थारूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है । जैसे कि–कतकचूर्ण (निर्मलीफल का चूरा) तथा फिटकडी आदि का चूरा डालने से जलका

પ્રકારના છે (૧) ઔપશમિક (૨) ક્ષાયિક (૩) ક્ષાયોપશમિક (૪) ઔદયિક અને (૫) પારિણામિક.

(૧) ઔપશમિક ભાવ—

રાખથી ઢાંકેલા અગ્નિ સમાન મોહનીય કર્મની અનુદ્રેક અવસ્થા, એવં પ્રદેશની અપેક્ષા પણ ઉદય ન હોય તે ઉપશમ કહેવાય છે. અર્થાત્ ઉદ્રેકરૂપથી તથા પ્રદેશરૂપથી–બંને પ્રકારના ઉદયનું યથાશક્તિ રોકાવું તે ઉપશમ છે. આ પ્રકારને ઉપશમ સર્વોપશમ કહેવાય છે. જે ઉપશમથી હોય તેને ઔપશમિક કહે છે. અર્થાત્ ક્રોધ આદિ કષાયોના ઉદયાભાવરૂપ ઉપશમના ફલરૂપ જીવ, તેના પરમ શાન્ત અવસ્થારૂપ પરિણામ ઔપશમિક કહેવાય છે.

એ આત્માની એક પ્રકારની શુદ્ધિ છે; જેમકે કતકચૂર્ણ (નિર્મલીફલનું ચૂર્ણ) તથા

मलनिचयस्याधोदेशे निपाते सति जलस्य स्वच्छता। मोहनीयकर्मण उपशमाद् यद् दर्शनं श्रद्धानरूपं, चरणं वा विरतिरूपं जायते तदप्यौपशमिकशब्देनोच्यते।

(२) क्षायिकभावः—

(२) सकलकर्मणामत्यन्तोच्छेदः क्षयः, क्षयेण निर्वृत्तः क्षायिकः–अप्रतिपाति–ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणो जीवस्य परिणतिविशेषः। स चात्मनः परमविशुद्धिः। यथा–सर्वथा निःशेषपङ्कादिमलव्यपगमे जलस्य परमस्वच्छता।

कीचड आदि मैल नीचे बैठ जाता है, और जल स्वच्छ हो जाता है। मोहनीय कर्म के उपशम से श्रद्धानरूप जो दर्शन उत्पन्न होता है, या विरतिरूप जो चारित्र उत्पन्न होता है, वह औपशमिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र कहलाता है।

(२) क्षायिक भाव—

कर्म का अत्यन्त उच्छेद हो जाना क्षय कहलाता है। क्षय से होने वाला भाव क्षायिक भाव है। अर्थात् एक वार उत्पन्न हो कर फिर नष्ट न होने वाले ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप जीव के परिणाम को क्षायिक भाव कहते हैं। क्षायिक अवस्था जीव की परम विशुद्धि है, जैसे–पूर्ण रूप से समस्त कीचड आदि मैल के हट जाने पर जल की परम स्वच्छता होती है।

ફટકડી આદિનું ચૂર્ણ નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે બેસી જાય છે, અને જલ સ્વચ્છ થાય છે. મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન અને ઔપશમિક ચારિત્ર કહેવાય છે.

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મનો અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે. ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ ક્ષાયિક ભાવ છે. અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે. ક્ષાયિક અવસ્થા જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે. જેમ–પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ–કાદવ આદિ મેલના દૂર થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે.

(३) क्षायोपशमिक-भावः—

(३) मिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मणामुदीर्णस्यांशस्य नाशः-क्षयः, अनुदीर्ण-स्यांशस्य विपाकोन्मुखत्वाभावः-उपशमः, यत्र एतद्द्वयं स क्षयोपशमः, स एव क्षायोपशमिकः। अस्य भावस्य 'मिश्रः' इति नामान्तरम्। ईषद्विध्यातावच्छन्न-वह्निवद्। यद् उदयावलिकाप्रविष्टं कर्म, तत् क्षीणम्, ततोऽवशिष्टं कर्म, उद्रेक-क्षयोभयरहितावस्थम्, इमामुभयीमवस्थामवलम्ब्य क्षायोपशमिको भावः प्रजायते।

(४) औदयिकभावः—

(४) कर्मविपाकाविर्भाव उदयः। तेन निर्वृत्तो भाव औदयिकः। स

---

(३) क्षायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्वमोहनीय आदि कर्मों के उदीर्ण (उदय में आये हुए) अंश का नाश होना क्षय है। और अनुदीर्ण अंश का फल देने में उन्मुख न होना उपशम है। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। इस भाव का दूसरा नाम 'मिश्रभाव' भी है। थोडी२ बुझी हुई और ढंकी हुई अग्नि के समान जो कर्म उदयावलिका में आचुके हैं उनका क्षय होना, तथा शेष कर्मों का उद्रेक और क्षय-दोनों अवस्थाओं से रहित होना, इन दोनों के आधार पर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है।

(४) औदयिक भाव—

कर्म का विपाक (फल) देना उदय कहलाता है। उदय से होनेवाला

---

(૩) ક્ષાયોપશમિક ભાવ—

મિથ્યાત્વ મોહનીય આદિ કર્મોના ઉદીર્ણ (ઉદયમાં આવેલા) અંશનો નાશ થવો તે ક્ષય છે, અને અનુદીર્ણ અંશનું ફલ દેવામાં ઉન્મુખ-તે તરફ નહિ થવું તે ઉપશમ છે, એ બન્ને અવસ્થાઓને ક્ષાયોપશમિક ભાવ કહે છે. આ ભાવનું બીજું નામ 'મિશ્રભાવ' પણ છે. થોડી થોડી ઠંડી થયેલી અને ઢાંકેલી અગ્નિ પ્રમાણે જે કર્મ ઉદયાવલિમાં આવી ચૂકયાં છે તેનો ક્ષય થવો, તથા શેષ કર્મોનો ઉદ્રેક અને ક્ષય, બંને અવસ્થાઓથી રહિત થવું, આ બન્નેનાં આધાર ઉપર ક્ષયોપશમિક ભાવ ઉત્પન્ન થાય છે.

(૪) ઔદયિક ભાવ—

કર્મનો વિપાક (ફલ) મળવું તે ઉદય કહેવાય છે. ઉદયથી ઉત્પન્ન થવાવાળો ભાવ તે ઔદયિક છે. ઔદયિક ભાવ આત્માની મલિનતા રૂપ છે. જેમકે કીચડ-

चात्मनो मालिन्यम् , यथा पङ्कसंगाज्जलस्य मालिन्यं । तथा–नरकगत्यादिनाम-कर्मणो विपाकाविर्भावान्नरकगत्याद्याख्य औदयिको भावः । कषायमोहनीयकर्मणो विपाकाविर्भावाच्च ' क्रोधी,–मानी '–इत्यादिरौदयिको भावः । एवं सर्वत्रौदयिको भावः समालोचनीयः ।

(५) परिणामिक–भावः—

(५) परिणमनं–सर्वथा–अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य रूपान्तरेण भवनं–परिणामः, स एव पारिमाणिकः । अत्र स्वार्थे ठक् प्रत्ययः, न तु निर्वृत्त्यर्थे, जीवस्यादिमत्त्वापत्तेः । यदि ' परिणामेन निर्वृत्तः ' इत्यर्थे पारिणामिको जीव इति मन्यते, तदा प्रागवस्था–

भाव औदयिक है । भाव आत्मा का मालिन्यरूप है, जैसे कि कीचड के संसर्ग से जल में मलिनता आ जाती है । नरकगतिनामकर्म आदि के उदय से नरक गति आदि औदयिक भाव कहलाते हैं । कषायमोहनीय कर्म के उदय से कोध, मान आदि औदयिक भाव होते हैं । इसी प्रकार सभी जगह औदयिक भाव का विचार कर लेना चाहिये ।

(५) पारिणामिक भाव—

पूर्व अवस्था का सर्वथा त्याग न कर के रूपांतर में होना परिणाम है, और वही पारिणामिक कहलाता है । यहां स्वार्थमें ठक् प्रत्यय हुआ है, न कि निर्वृत्ति अर्थ में, निर्वृत्ति अर्थ में प्रत्यय होनेसे जीवका आदिमान् होनेका प्रसङ्ग आजाता है । यदि–" **परिणामेन निर्वृत्तिः पारिणामिकः–जीवः** " अर्थात् परिणामसे होनेवाला पारिणामिक–जीव कहलाता है, ऐसी व्युत्पत्ति मानली जाय तो 'किसी पूर्व कालमें जीव नहीं था वह अब हुआ है' इस

કાદવના સંસર્ગથી જલમાં મલિનતા આવી જાય છે. નરકગતિ નામ–કર્મ આદિના ઉદયથી નરકગતિ આદિ ઔદયિક ભાવ કહેવાય છે. કષાય–મોહનીય કર્મના ઉદયથી ક્રોધ, માન આદિ તે ઔદયિક ભાવ છે. આ પ્રમાણે તમામ સ્થળે ઔદયિક ભાવનો વિચાર કરી લેવો.

(૫) પારિણામિક ભાવ—

પૂર્ણ અવસ્થાનો સર્વથા ત્યાગ નહિ કરતાં રૂપાંતર થવું તે પરિણામ છે, અને પરિણામ તેજ પારિણામિક કહેવાય છે. અહીં સ્વાર્થમાં ઠક્ પ્રત્યય થયો છે પરન્તુ નિર્વૃત્તિ અર્થમાં નથી થયો. નિર્વૃત્તિ અર્થમાં પ્રત્યય થવાથી જીવનો આદિમાન્ (આદિવાળો) થવાનો પ્રસંગ આવી જાય છે. જો–" परिणामेन निर्वृत्तः परिणामिकः–जीवः " અર્થાત્ 'પરિણામથી થવાવાળો પારિણામિક જીવ કહેવાય છે' આવી વ્યુત્પત્તિ

यामनिर्वृत्तो जीवो निर्वृत्तः स्यात्। एवं चादिमत्त्वप्रसंगः। कथमसन् आकाश-कुसुमकल्प आत्माऽऽयत्यां संभवे ?-दिति युक्तिविरोधश्च।

न हि परिणामेन विना कश्चिद्भावो भवतीति भावानां मध्ये परिणामस्यैव प्राधान्यम्। आत्मनः स्वाभाविकं स्वरूपपरिणमनमेव पारिणामिको भाव उच्यते। यश्चात्मनः सत्तया स्वयमेव परिणामो भवति, स एव पारिणामिको भावः। उक्तश्च-

"यः कर्त्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च।
संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः॥ १॥"

अष्टविधकर्मणां कर्ता, कर्मफलभोक्ता, चतुर्गतिभ्रमणकर्ता, कर्मक्षयकरणेन मोक्षगन्ता यः, स एवात्मा, अन्यरूपो नेत्यर्थः।

प्रकार जीवको सादि (आदिवाला) मानना पडेगा, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि-जो आत्मा भूतकालमें नहीं था तो आकाशपुष्पके समान भविष्यत् कालमें उसका होना कैसे संभव हो सकता है ?। इस प्रकार युक्तिसे भी विरोध आता है।

विना परिणाम के कोई भाव नहीं हो सकता अतः भावोंमें परिणामकी प्रधानता है। आत्मा का स्वाभाविक परिणमन ही 'पारिणामिक' भाव कहलाता है, अर्थात् आत्मा का जो अनादिपरिणमनसत्ता का कारण है उसे पारिणामिक भाव समझना चाहिए। कहा भी है :-

"जो कर्म के भेदों का कर्ता है, जो कर्मफल का भोक्ता है। संसारभ्रमण करने वाला है, निर्वृति (मोक्ष) प्राप्त करने वाला है वही आत्मा है, आत्मा का अन्य लक्षण नहीं है ॥१॥

માનવામાં આવે તો 'પૂર્વકાળમાં જીવ નહિ હતો તે હવે થયો છે.' આ પ્રકારે જીવને સાદિ (આદિવાળો) માનવો પડશે, પરંતુ એમ થઈ શકે નહિ, કારણ કે-જે જીવ ભૂતકાળમાં નહીં હતો ત્યારે તેનું આકાશપુષ્પની સમાન ભવિષ્યત્ કાળમાં થવું કેમ સંભવે ? એમ યુક્તિથી પણ વિરોધ આવે છે.

વગર પરિણામે કોઈ પણ ભાવ નથી થઈ શકતો, એટલા માટે ભાવોમાં પરિણામની પ્રધાનતા છે. આત્માનું સ્વાભાવિક પરિણમન જ પારિણામિક ભાવ કહેવાય છે. અર્થાત્ આત્માની અનાદિપરિણમનસત્તાનું જે કારણ છે, તેને પારિણામિક ભાન સમજવું જોઈએ કહ્યું પણ છે—

"જે કર્મના ભેદોનો કર્તા છે, જે કર્મના ફળનો ભોકતા છે; સંસારભ્રમણ કરવાવાળો છે, નિર્વૃતિ (મોક્ષ) પ્રાપ્ત કરવા વાળો છે તે આત્મા છે. આત્માનું બીજું લક્ષણ નથી." ॥૧॥

जीवस्य स्थितिक्षेत्रम्—

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य, समस्तलोकाकाशे जीवोऽवगाहते। जीवप्रदेशानां प्रदीपवत् संकोचविस्तारस्वभावत्वात्। आत्मनः परिमाणं न गगनवन्महत्, नापि परमाणुवदणु, किन्तु मध्यमम्।

यद्यपि प्रदेशसंख्यापेक्षया समानमेव सर्वेषामात्मनां स्वस्वपरिमाणम्, तथापि दैर्घ्य-विस्तारादि सर्वेषां विसदृशमेव। अतः प्रत्येकजीवस्याऽऽधारक्षेत्रं जघन्यतो लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य समग्रभागपर्यन्तं भवितुम-

---

जीव का स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश में जीव का अवगाहन हो सकता है। कारण यह है कि-जीव के प्रदेश दीपक की प्रभा के समान संकोच-विस्तार स्वभाव वाले हैं, अर्थात् कभी सिकुड जाते हैं और कभी फैल जाते हैं। आत्मा का परिमाण न तो आकाश के समान महान् (सर्वव्यापी) है और न परमाणु के बराबर ही है किन्तु आत्मा मध्यम परिमाण वाला है।

प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा समस्त आत्माओं का परिमाण बराबर है, अर्थात् सब आत्मा लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेश वाले हैं किन्तु प्राप्त शरीर के अनुसार उनके विस्तार में (परिमाण में) अन्तर पडजाता है, अतः प्रत्येक

જીવનું સ્થિતિક્ષેત્ર—

લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગથી લઇને સંપૂર્ણ લોકાકાશમાં જીવનું અવગાહન થઇ શકે છે. કારણ એ છે કે—જીવના પ્રદેશ દીપકની પ્રભાની સમાન સંકોચ-વિસ્તાર સ્વભાવવાળા છે, અર્થાત્ કોઈ વખત સંકુચાઈ જાય છે અને કોઈ વખત ફેલાઈ જાય છે. આત્માનું પરિમાણુ આકાશપ્રમાણે મહાન નથી. અને પરમાણુના બરાબર પણ નથી પરન્તુ આત્મા મધ્યમ પરિમાણુ વાળો છે.

પ્રદેશોની સંખ્યાની અપેક્ષાએ સમસ્ત આત્માનું પરિમાણુ બરાબર છે. અર્થાત્ સર્વ આત્મા લોકાકાશના બરાબર અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા છે, પરંતુ પ્રાપ્ત શરીરના અનુસાર તેના વિસ્તારમાં (પરિમાણુમાં) અંતર પડી જાય છે. તેટલા કારણથી પ્રત્યેક જીવનો આધાર-ક્ષેત્ર લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગથી લઇને સંપૂર્ણ લોક સુધી થઈ શકે છે.

हेति। यदा जीवः केवलिसमुद्घातावस्थां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकाकाशमेक-जीवस्याधारक्षेत्रं भवति। सकलजीवराश्यपेक्षया तु जीवानामाधारक्षेत्रं संपूर्णमेव लोकाकाशम्।

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागे जीवस्य स्थतिरित्यत्राऽऽगमवचनं यथा—

"सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे"

स्वस्थानेन लोकस्यासंख्येयभागे। (प्रज्ञा० २ पदे जीवस्थानाधिकारे)

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम्? उच्यते—जीवस्यानादिकालतो-ऽनन्तानन्ताणुप्रचयरूपेण कार्मण-शरीरेण सम्बन्धादेकस्यैव जीवस्य परिमाणं

जीव का आधारक्षेत्र लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकतक हो सकता है। जब जीव केवलिसमुद्घात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है। समस्त जीवराशि की अपेक्षासे सम्पूर्ण लोकाकाश जीवों का आधारक्षेत्र है।

जीव का अवगाह लोकाकाश के असंख्यातवें भाग में होता है; इस विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

"सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे" (प्रज्ञापना २ पद जीवस्थानाधिकार) स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में (जीव की स्थिति है)।

शङ्का—जीवों के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है?

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप कार्मण शरीर के साथ

જ્યારે જીવ કેવલિસમુદ્ઘાત કરે છે, તે સમય તે એક જીવ સંપૂર્ણ લોકાકાશમાં વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. સમસ્ત જીવરાશિની અપેક્ષાથી સંપૂર્ણ લોકાકાશ જીવોનું આધારક્ષેત્ર છે.

જીવનો અવગાહ લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગમાં હોય છે. આ વિષયમાં આગમનું પ્રમાણ આ પ્રમાણે છે—

"સટ્ઠાણેણં લોયસ્સ અસંખેજ્જઇભાગે" સ્વસ્થાનની અપેક્ષા લોકના અસંખ્યાતમા ભાગમાં (જીવની સ્થિતિ છે) પ્રજ્ઞાપના, ૨ પદ જીવસ્થાનાધિકાર)

શંકા—જીવોના પરિણામની ન્યૂનાધિકતાનું શું કારણ છે?

સમાધાન—અનંતાનંત પરમાણુઓના પ્રચય (સમૂહ) રૂપ કાર્મણ શરીર

बहूनां वा जीवानां परिमाणं विविधं जायते। कार्मण-शरीरं हि सर्वदाऽनेक-रूपेणावतिष्ठते। तत्सम्बन्धादौदारिकाद्यपि शरीरं तदनुसारि न्यूनाधिक-परिमाणभाग् भवति।

जीवस्य मूर्तवद् ह्रासवृद्धिः—

वस्तुतो रूपरहितोऽपि जीवः शरीरसम्बन्धान्न्यूनाधिकपरिमाणं दधन्मूर्त इवापचयोपचयौ प्राप्नोति। स हि स्वभावतः प्रदीपवन्निमित्तमासाद्य संकोचविकाशशीलः स्वाश्रयमात्रेऽवभासते। यथा-कलशे प्रासादप्रदेशे निरा-

---

अनादि काल से जीव का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के कारण एक ही जीव का अनेक कालों में, और अनेक जीवों का एक ही काल में भिन्न२ प्रकार का परिमाण होता है। कार्मण शरीर सदा विभिन्न रूपों में परिणमन करता रहता है। उसके संयोग से औदारिक आदि शरीर भी कार्मण शरीर के अनुसार न्यूनाधिकपरिमाणवाले होते हैं।

जीव की ह्रास-वृद्धि—

जीव वास्तव में अरूपी है, फिर भी शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण वह छोटे-मोटे परिमाण को धारण करता है, अतः उस में मूर्त पदार्थ की भाँति अपचय (ह्रास) और उपचय (वृद्धि) होता है। स्वभाव से संकोच विकासवाला जीव निमित्त पाकर दीपक की तरह अपने आश्रय (शरीर) में प्रतिभासित होता है। जैसे घट में,

---

સાથે અનાદિ કાલથી જીવનો સંબંધ છે; એ સંબંધના કારણે એકજ જીવના અનેક કાલોમાં, અને અનેક જીવોના એકજ કાલમાં ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારનું પરિમાણ થાય છે. કાર્મણ શરીર સદાય વિભિન્ન રૂપોમાં પરિણમન કરી રહે છે, તેના સંયોગથી ઔદારિક આદિ શરીર પણ કાર્મણ શરીર પ્રમાણે ન્યૂનાધિક પરિમાણવાળા હોય છે.

જીવની હ્રાસ વૃદ્ધિ—

જીવ વાસ્તવમાં અરૂપી છે, તો પણ શરીરની સાથે સંબંધ હોવાના કારણે તે નાના-મોટા પરિમાણને ધારણ કરે છે, તે કારણથી તેમાં મૂર્ત્ત પદાર્થની જેમ અપચય (હ્રાસ) અને ઉપચય (વૃદ્ધિ) થાય છે. સ્વભાવથી સંકોચ-વિકાસવાળો જીવ નિમિત્ત પ્રાપ્ત કરી દીપકની પ્રમાણે પોતાના આશ્રય (શરીર)માં પ્રતિભાસિત થાય છે-(દેખાય છે).

वृताकाशे चावस्थितः प्रकाशपुञ्जरूपः प्रदीपः स्वाश्रयमात्रावभासी क्वचित् संकुचितः क्वचित् विततश्च भवति। अतः शरीरपरिमाणानुसारं परिमाणं दधान आत्मा मूर्त इव विज्ञायते। उक्तश्च राजप्रश्नीयसूत्रे—

"पएसी! जहाणामए-कूडागारसाला सिया जाव गंभीरा, अह णं केई पुरिसे जोइं व दीवं व" इत्यारभ्य "एवामेव पएसी! जीवेवि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोंदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ-खुड्डियं वा महालियं वा" इति पर्यन्तम्। सू० ८४॥ इति॥

प्रदेशिन् तद् यथानामकम्-कूटागारशाला स्यात् यावद् गम्भीरा, अथ खलु कोऽपि पुरुषः ज्योतिर्वा दीपं वा (इत्यारभ्य) एवमेव प्रदेशिन्! जीवोऽपि यां यादृशिकां पूर्वकर्मनिबद्धां बोंदिं निर्वर्त्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सचित्तां करोति क्षुद्रिकां वा महालयां वा।" इति च्छाया।

महल में और खुले आकाश में रक्खा हुआ प्रकाश का पुञ्जरूप दीपक अपनी जगह पर मालूम होता हुआ कहीं संकुचित होता है और कहीं विस्तृत होता है। इसी प्रकार शरीर के परिमाण के अनुसार परिमाणवाला आत्मा मूर्त जैसा मालूम होता है। राजप्रश्नीय सूत्र में कहा है :—

"हे प्रदेशी राजा! जैसे कोई कूटागार शाला हो और वह (यावत्) गंभीर हो और कोई पुरुष जोत या दीपक उस में रक्खे तो वह उसे पूर्णरूप से प्रकाशित करता है, इसी प्रकार हे प्रदेशी! आत्मा अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के अनुसार जैसा शरीर पाता है; उसे असख्यात आत्मप्रदेशों से सजीव बना देता है, चाहे वह शरीर बडा हो चाहे क्षुल्ल (छोटा) हो"।

જેવી રીતે ઘરમાં, મહેલમાં અને ખુલ્લા આકાશમાં રાખેલો પ્રકાશ-પુંજરૂપ દીપક, પોતાની જગ્યાએ દેખાતો થકો કોઈ જગ્યાએ સંકુચિત હોય છે અને કોઇ જગ્યાએ વિસ્તૃત હોય છે. એ પ્રમાણે શરીરના પરિમાણુ અનુસાર પરિમાણુ વાળો આત્મા મૂર્ત્ત જેવો દેખાય છે. राजप्रश्नीय સૂત્રમાં કહ્યું છે —

"હે પરદેશી રાજા! જેમ કોઈ કૂટાગાર શાળા હોય તે (યાવત્) ગંભીર હોય અને કોઇ પુરુષ જ્યોત અથવા દીપક તેમાં રાખે તો તે એને પૂર્ણરૂપથી પ્રકાશિત કરે છે, એ પ્રમાણે હે પરદેશી! આત્મા પોતાના પૂર્વોપાર્જિત કર્મો પ્રમાણે જેવું શરીર પ્રાપ્ત કરે છે, તેને અસંખ્યાત આત્મપ્રદેશોથી સજીવ બનાવી દે છે, તે શરીર ગમે તો મોટું હોય અથવા નાનું હોય."

जीवस्य-ऊर्ध्वगतिः—

सकलकर्मणां क्षये सति सपदि जीवो मुक्तः सन्नूर्ध्वं गच्छति, न च 'जीवस्यामूर्तत्वाद् गतेरसंभवः' इति वाच्यम्, स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यवद् जीवस्य गतिशीलत्वात्।

इयान् विशेषः पुद्गलेभ्यः—पुद्गलाः स्वभावादधोगतिशीलाः, जीवास्तु स्वभावादूर्ध्वगतिशीलाः। प्रतिबंधकद्रव्यसङ्गाद् ऊर्ध्वगमनस्वभावा जीवा अधस्तिर्यग् वा गच्छन्ति, गन्तुमक्षमा वा भवन्ति। तच्च तद्गतिप्रतिबन्धकं कर्मैव। यदा सकल—

जीव की ऊर्ध्वगति—

सकल कर्मों का क्षय होने पर तत्काल मुक्त हुआ जीव ऊपर की ओर गमन करता है। 'जीव अमूर्त है और इस कारण वह गति नहीं कर सकता' ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्यों कि पुद्गल-द्रव्य के समान जीव स्वभाव से ही गतिशील है।

गति के विषय में जीव और पुद्गल में इतना भेद है—पुद्गल अधोगतिशील हैं और जीव ऊर्ध्वगतिशील हैं, अर्थात् पुद्गलों का स्वभाव नीचे जाने का है और जीव का स्वभाव उपर की ओर जाने का है मगर रुकावट डालने वाले द्रव्यों के निमित्त से ऊर्ध्वगतिशील जीव भी नीचे की ओर अथवा तिरछा गमन करता है। या कभी गमन करने में असमर्थ हो जाता है। जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिबन्धक (रुकावट डालने वाला) कर्म ही है। जब समस्त कर्मों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है और

જીવની ઉર્ધ્વ ગતિ—

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી તત્કાલ મુક્ત થયેલો જીવ ઉપર તરફ ગમન કરે છે. 'જીવ અમૂર્ત્ત છે, અને એ કારણથી તે ગતિ કરી શકતો નથી'—એમ કહેવું તે ઠીક નથી; કેમકે પુદ્ગલની પ્રમાણે જીવ સ્વભાવથી જ ગતિશીલ છે.

ગતિના વિષયમાં જીવ અને પુદ્ગલમાં એટલો ભેદ છે:-પુદ્ગલ અધોગતિશીલ છે, અને જીવ ઉર્ધ્વગતિશીલ છે. અર્થાત્ પુદ્ગલોનો સ્વભાવ નીચે જવાનો છે, અને જીવનો સ્વભાવ ઉપર તરફ જવાનો છે. પરંતુ તેમાં અંતરાય નાંખવાવાળા દ્રવ્યોના નિમિત્તથી ઉર્ધ્વગતિશીલ જીવ પણ નીચે તરફ અથવા તિર્છા ગમન કરે છે. અથવા કોઈ વખત ગમન કરવામાં અસમર્થ થઈ જાય છે. જીવની સ્વાભાવિક ગતિનો પ્રતિબંધ (અટકાયત) કરનાર કર્મ જ છે. જ્યારે સકલ કર્મોનો અત્યન્ત ક્ષય થઈ

कर्मणामत्यन्तोच्छेदे सति कर्मसङ्गाभावात् कर्मबन्धनोच्छेदाच्च नास्त्येवोर्ध्वगति-प्रतिबन्धकं तदा स्वस्वभावानुसारेणोर्ध्वगमनावसरः सिद्धानामुपतिष्ठते।

जीवस्य लक्षणम्—

उपयोगवत्त्वं जीवस्य लक्षणम्। उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते जीवोऽनेनेत्युपयोगः करणे घञ्। बोधरूपो व्यापार उपयोगः। ज्ञानं, संवेदनं, प्रत्ययः, इति नामान्तराणि।

सामान्यविशेषरूपबोधद्वयदर्शनान्निश्चयो भवति-विद्यते खलु जीवः, यस्येमौ सामान्यविशेषावबोधौ, न च तादृशः कश्चिदस्ति जीवो, यस्य साका-

---

कर्मों का संसर्ग नहीं रहता, कर्मबन्धन का उच्छेद होने से ऊर्ध्वगति का कोई प्रतिबन्धक नहीं रहता, तब सिद्ध जीवों को ऊर्ध्व गमन का अवसर प्राप्त होता है।

जीव का लक्षण—

जीव का लक्षण उपयोग है। जो जीव को वस्तु के बोध में व्यापृत करता है उपयुक्त बनाता है उसे उपयोग कहते हैं। तात्पर्य यह है कि—बोधरूप व्यापार उपयोग कहलाता है। ज्ञान संवेदन, प्रत्यय, ये उपयोग के पर्यायवाची शब्द हैं।

सामान्य बोध (दर्शन) और विशेष बोध (ज्ञान) अनुभवसिद्ध है। इन दोनों बोधों से यह निश्चय होता है कि जीव अवश्य है; जिस में यह सामान्य और विशेष बोध पाया जाता है। ऐसा कोई जीव नहीं है जिस में सामान्य-बोध (निराकार

જાય છે, અને કર્મોનો સંસર્ગ રહેતો નથી, ત્યારે કર્મબંધનનો ક્ષય થવાથી ઉર્ધ્વગતિ થવામાં કોઇ પ્રતિબંધક (અંતરાય કરનાર) રહેતું નથી; ત્યારે સિદ્ધ જીવોને ઉર્ધ્વ-ગમન કરવાનો અવસર પ્રાપ્ત થાય છે.

જીવનું લક્ષણ—

જીવનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, તે જીવને વસ્તુના બોધમાં વ્યાપૃત—વ્યાપારયુક્ત કરે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—બોધરૂપ વ્યાપાર ઉપયોગ કહેવાય છે. જ્ઞાન, સંવેદન, પ્રત્યય, આ સર્વ ઉપયોગના પર્યાયવાચી શબ્દો છે,

સામાન્ય બોધ (દર્શન) અને વિશેષ બોધ (જ્ઞાન) અનુભવ સિદ્ધ છે. એ બંને બોધોથી એમ નિશ્ચય થાય છે કે:—જીવ અવશ્ય છે, જેમાં આ સામાન્ય તથા વિશેષ બોધ જોવામાં આવે છે એવો કોઈ જીવ નથી કે જેમાં સામાન્ય બોધ

रानाकारोपयोगौ न स्तः। अत एवोक्तं भगवता-"जीवो उवओगलक्खणो" इति।

लक्ष्यते-ज्ञायतेऽनेनेति लक्षणम्। उपयोगो लक्षणं यस्य स उपयोगलक्षणः। ज्ञानावगम्यो जीव इत्यर्थः।

पृथिवीकायादिसर्वसंसारिजीवानां बोधस्यानन्ततमो भागः सर्वदा प्रकाशमानोऽनावृतस्तिष्ठत्येव। नहि सकललोकान्तवर्तिनः पुद्गलाः कर्मरूपतया परिणता अपि कस्यापि जीवस्य सर्वतोभावेन ज्ञानमावरीतुं प्रभवन्ति। यथा-अतिनिविडघनघटाऽऽच्छादितस्यापि सूर्यस्य प्रकाशलेशः प्रकाशत एव, नच सर्वथा

उपयोग) और विशेष बोध (साकार उपयोग) विद्यमान न हो, इसी कारण भगवान्ने कहा है-"जीवो उवओगलक्खणो" जीव उपयोग लक्षण वाला है।

जिस के द्वारा वस्तु लखी जाय-जानी जाय वह लक्षण कहलाता है। उपयोग जिस का लक्षण हो उसे उपयोगलक्षण कहते हैं। तात्पर्य यह है कि-ज्ञान लक्षण के द्वारा जीव मालूम होता है।

पृथिवीकाय आदि समस्त संसारी जीवों के ज्ञान का अनन्तवां भाग सदैव प्रकाशमान और आवरणरहित बना रहता है। सम्पूर्ण लोकाकाश के पुद्गल कदाचित् कर्मरूप में परिणत हो जाएँ तो भी वह किसी एक जीव के ज्ञान को पूर्णरूप से आवृत नहीं कर सकते। सूर्य चाहे कितनी ही सघन घनगटा से आच्छादित क्यों न हो जाए, उसका थोडा बहुत प्रकाश बना ही रहता है, प्रकाश कभी पूरी तरह

(નિરાકાર ઉપયોગ) અને વિશેષ બોધ (સાકાર ઉપયોગ) વિદ્યમાન ન હોય, એ કારણથી ભગવાને કહ્યું છે કેઃ—"जीवो उवओगलक्खणो" જીવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે.

જેના દ્વારા વસ્તુ લખી શકાય-જાણી શકાય-તે લક્ષણ કહેવાય છે. ઉપયોગ જેનું લક્ષણ હોય, તેને "ઉપયોગલક્ષણ" કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે-જ્ઞાનલક્ષણ દ્વારા જીવ માલૂમ પડે છે.

પૃથિવીકાય આદિ તમામ સંસારી જીવોના જ્ઞાનને અનંતમો ભાગ હમેશાં પ્રકાશમાન અને આવરણરહિત બની રહે છે. સંપૂર્ણ લોકાકાશના પુદ્ગલો કદાચ કર્મરૂપમાં પરિણત થઈ જાય તો પણ તે કોઈ એક જીવના જ્ઞાનને પૂર્ણરૂપથી આવૃત કરી (ઢાંકી) શકે નહિ. સૂર્ય ગમે તેટલી ઘનઘટા-(મેઘાડંબર)માં આચ્છાદિત થઈ જાય તો પણ સૂર્યનો થોડો-ઝાઝો પ્રકાશ તો બની જ રહે છે,

तिरोहितो भवति। तथा पृथिवीकायादिजीवानामुपयोगांशः स्फुरत्येव सर्वदा। यदि लोकव्यापिनः पुद्गलाः संघीभूयापि कर्मवर्गणारूपेण सर्वतोभावेन ज्ञानं तिरोदध्युस्तर्हि निर्जीवतापत्तिरात्मनो दुर्वारा स्यात्। तस्मात् पृथिव्यादिजीवेषु बोधांशः स्वभावतोऽनावृतस्तिष्ठत्येवेति सिद्धम्। उक्तं चागमे—

"सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ। जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा"

"सुट्ठुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंद-सूराणं" इति।

छाया—सर्वजीवानामपि च खलु अक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः। यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत तर्हि खलु जीवः अजीवत्वं प्राप्नुयात्। "सुष्ठ्वपि मेघसमुदये, भवति प्रभा चन्द्रसूरयोः" इति।

तिरोहित नहीं हो सकता, इसी प्रकार पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपयोग का अंश सदा स्फुरायमान रहता ही है। अगर लोकव्यापी पुद्गल इकट्ठे हो कर्मवर्गणा-रूप परिणत हो कर ज्ञान को पूरी तरह आच्छादित कर डाले तो जीव अजीव बन जाय, मगर ऐसा होना असम्भव है, अत एव यह सिद्ध है कि—पृथिवीकाय आदि एक इन्द्रिय वाले जीवों में भी ज्ञान का किंचित् अंश स्वभाव से अनावृत (आवरण रहित) रहता है। आगम में भी कहा है—**"सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा" "सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं"**

પ્રકાશ ક્યારેય પૂર્ણપણે તિરોહિત–આચ્છાદિત થતો નથી. એ પ્રમાણે પૃથિવીકાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોના "ઉપયોગ" અંશ પણ સદા સ્ફુરાયમાન રહે છે. અગર લોકવ્યાપી પુદ્ગલ એકઠા થઈને કર્મવર્ગણારૂપ પરિણત થઈને જ્ઞાનને પૂરી તરેહથી આચ્છાદિત કરી નાંખે (ઢાંકી દે) તો જીવ અજીવ બની જાય, પણ એમ બનવું અસંભવિત છે. એટલા કારણથી એ સિદ્ધ છે કે–પૃથિવીકાય આદિ એક ઇન્દ્રિયવાળા જીવોમાં પણ જ્ઞાનનો કિંચિત્ અંશ સ્વભાવથી અનાવૃત–આવરણરહિત રહે છે. આગમમાં પણ કહ્યું છે—"सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो निच्चुग्घाडिओ। जइ पुण सोवि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा" "सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदसूराणं"

तस्माद् यश्च यावानुपयोगांशः सर्वसंसारिजीवेषु यथासंभवं स्वभावतोऽनावृतो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगांशः प्रमथसमये खल्वपर्याप्तानां सूक्ष्मनिगोदानामेव भवति। ततः परं स एवोपयोगांशः अवशिष्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् भिद्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकरणशरीरेन्द्रियवाङ्मनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षायोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीनां भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलघातिकर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिकां परां विशुद्धिं

"सर्व जीवों के अक्षर का अनन्तवां भाग ज्ञान सदैव उघाडा (निरावरण) बना रहता है, अगर वह भी ढक जाय तो जीव अजीव हो जाय।"

"मेघों का खूब समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य को प्रभा तो बनी ही रहती है।"

उपयोग का जो सर्व जघन्य अंश समस्त संसारी जीवोंमें सर्वदा अनावृत बना रहता है, वह जघन्य अंश उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवों में भी होता है। तत्पश्चात् वही उपयोग का अंश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढता जाता है। यहां तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विचित्रता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढकर समस्त घाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

"સર્વ જીવોને અક્ષરનો અનંતમો ભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડું (નિરાવરણ) રહે છે. અગર તે પણ જો ઢંકાઈ જાય તો જીવ અજીવ થઈ જાય"

"મેઘનો ખુબ સમુદાય હોય તો પણ ચંદ્ર અને સૂર્યની પ્રભા બની રહે છે."

ઉપયોગનો જે સર્વ જઘન્ય અંશ તમામ સંસારી જીવોમાં સર્વદા અનાવૃત (ઉઘાડો) બની રહે છે. તે સર્વ જઘન્ય અંશ ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયમાં વર્તમાન, અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદના જીવોમાં પણ હોય છે. તે પછી તે ઉપયોગનો અંશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના ભેદથી ભિન્ન થઈને, સંભિન્નસોતસ્ત્વ આદિ લબ્ધિઓના સમૂહથી, લબ્ધિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય, વચન અને મનનો આશ્રય લઈને વધતો જાય છે, અહીં સુધી કે વિવિધ પ્રકારના ક્ષયોપશમની વિચિત્રતાવાળા જીવોને અવગ્રહ આદિ ભેદથી અને તેનાથી પણ અધિક વધીને સમસ્ત ઘાતી કર્મોનો

प्राप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति।

जीवा द्विविधाः-सिद्धा असिद्धाश्च। तत्र निर्धूताशेषकर्माणः सिद्धाः, असिद्धाः संसारिणः। द्रव्यभावबन्धः संसारः। कर्माष्टकसम्बन्धो द्रव्यबन्धः, रागद्वेषादिपरिणामसंबन्धो भावबन्धः। द्विविधबन्धरूपः संसारोऽस्ति येषां ते संसारिणः। संसारिणो द्विविधाः त्रसस्थावरभेदात्। तत्र पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः। तेजोवायूदारास्त्रसाः। तेजोवायू गत्यैव त्रसौ, न तु लब्ध्या। तत्रोदाराश्चतुर्विधाः-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदात्। तत्र पञ्चेन्द्रियाः पुनर्द्विविधाः समनस्का अमनस्काश्च।

को जानने योग्य विशुद्धता प्राप्त करके केवल ज्ञान संज्ञा को पाता है।

जीव दो प्रकार के हैं:—सिद्ध जीव और असिद्ध जीव। सकल कर्मों से रहित जीव सिद्ध कहलाते हैं, और संसारी जीव असिद्ध कहलाते हैं। द्रव्यबन्ध और भावबन्ध को संसार कहते हैं। आठ कर्मोका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग द्वेष आदि परिणामों का सम्बन्ध होना भावबन्ध है। यह दो प्रकार का बन्धरूप संसार जिन के हो वे संसारी जीव कहलाते हैं। संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेदसे दो प्रकार के हैं। पृथ्वी जल और वनस्पति, ये स्थावर हैं, तेज वायु और उदार जीव त्रस हैं। इन में तेज और वायु गतित्रस हैं, लब्धि से स्थावर हैं।

उदार के चार भेद हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। पञ्चेन्द्रिय जीवों के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद हैं।

ક્ષય થવાથી સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોને જાણવા યોગ્ય વિશુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન સંજ્ઞા પામે છે.

જીવ બે પ્રકારના છેઃ—સિદ્ધ જીવ અને અસિદ્ધ જીવ, સકલ કર્મોથી રહિત જીવ સિદ્ધ કહેવાય છે, અને સંસારી જીવ અસિદ્ધ કહેવાય છે. દ્રવ્યબંધ અને ભાવબંધને સંસાર કહે છે. આઠ કર્મોનો સંબંધ તે દ્રવ્યબંધ છે, અને રાગ-દ્વેષ આદિ પરિણામોનો સંબંધ થાય તે ભાવબંધ છે. એ બે પ્રકારના બંધરૂપ સંસાર જેને હોય છે તે સંસારી જીવ કહેવાય છે. સંસારી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરના ભેદથી બે પ્રકારના છે. પૃથ્વી, પાણી, અને વનસ્પતિ આ ત્રણ સ્થાવર છે, તેજ, વાયુ, ઉદાર જીવ ત્રસ છે. તેમાં તેજ અને વાયુ ગતિત્રસ છે, લબ્ધિથી સ્થાવર છે. ઉદારના ચાર ભેદ છે. દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. પંચેન્દ્રિય જીવોના સંજ્ઞી અસંજ્ઞી, એ બે ભેદ છે.

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्त सुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्याबाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकायः सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं- -(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय हैं।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त हैं, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण हैं (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित हैं (५) गुण से-चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय।

જીવાસ્તિકાયના ગુણ આ છે-(૧) અનંતજ્ઞાન, (૨) અનંત દર્શન (૩) અનંત સુખ અને (૪) અનંત વીર્ય.

(૧) અવ્યાબાધવત્ત્વ (૨) અનવગાહનાવત્ત્વ (૩) અમૂર્તિકત્વ અને (૪) અગુરૂલઘુત્વ, એ જીવની પર્યાય છે.

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ, ભાવ અને ગુણના ભેદથી પાંચ પ્રકારે જીવાસ્તિકાયનું જ્ઞાન થાય છે. (૧) દ્રવ્યથી-જીવ અનંત છે. (૨) ક્ષેત્રથી-લોકપ્રમાણ. (૩) કાલથી-આદિ અન્ત રહિત છે. (૪) ભાવથી-અરૂપી છે-રૂપ-રસ-ગંધ અને સ્પર્શથી રહિત છે (૫) ગુણથી-ચેતનાલક્ષણ છે.

ઈતિ જીવાસ્તિકાય-

अथ षड्द्रव्यविचारः—

षट्सु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षेत्रम्, इतरे धर्मादयः पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैककेशस्य खण्डशः करणे पर्यन्ततो यस्य खण्डस्य पुनः खण्डो न भवितुमर्हति, तादृशखण्डपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं व्याप्नोति, तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रभागपरिमिते निगोदखण्डेऽप्यसंख्याताः श्रेणयः सन्ति। तत्र प्रत्येकश्रेण्यामसंख्याताः प्रतराः, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याताः गोलकाः, गोलके

षड्द्रव्यविचार—

छह द्रव्यों में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है, और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगलियाके एक केश के ऐसे टुकडे किये जाएँ कि फिर उनका दूसरा टुकडा न हो सके। इन में से एक टुकडा जितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान हैं।

सुई की नोंक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात श्रेणियां विद्यमान हैं। एक २ श्रेणी में असंख्यात–असंख्यात प्रतर हैं, एक २ प्रतर में असंख्यात२ गोलक हैं,

ષડ્દ્રવ્ય વિચાર—

છ દ્રવ્યોમાં આકાશ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર છે, અને બાકીના ધર્મ આદિ પાંચદ્રવ્યો ક્ષેત્રવર્તી હોવાથી ક્ષેત્ર છે; દેવકુરૂ અને ઉત્તરકુરૂ ક્ષેત્રોના જુગલિઆના એક કેશ–વાળના એવા ટુકડા કરવામાં આવે કે ફરીને તેનો બીજો ટુકડો થઇ શકે નહિ, તેમાંથી એક ટુકડા જેટલા આકાશક્ષેત્રને વ્યાપ્ત કરે છે તેટલા ભાગમાં આકાશના અસંખ્યાત પ્રદેશ કહેવાય છે. તેમાં ધર્માસ્તિકાયના અસંખ્યાત પ્રદેશ છે, અધર્માસ્તિકાયના અસંખ્યાત પ્રદેશ છે, અને નિગોદના અસંખ્યાત ગોલક વિદ્યમાન છે.

સોયની અણી બરોબર નિગોદના ખંડમાં પણ અસંખ્યાત શ્રેણીઓ વિદ્યમાન છે. એક એક શ્રેણીમાં અસંખ્યાત–અસંખ્યાત–પ્રતર છે. એક એક પ્રતરમાં

च प्रत्येकमसंख्यातानि निगोदशरीराणि सन्ति। तत्र च प्रत्येकशरीरेऽनन्ता निगोदजीवाः सन्ति।

अथ कियन्तोऽनन्ता जीवास्तत्र सन्ती ?–त्युच्यते–अतीतकालोऽनन्तः, तथा भविष्यत्कालोऽप्यनन्तः, वर्तमानकालश्चैकसमयमात्रः, कालत्रयस्यापि यावन्तः समयाः सन्ति, ते पुनरनन्तेन गुणिता यावन्तो भवेयुस्ततोऽप्यनन्त-गुणाधिका एकस्मिन् निगोदे निगोदिका जीवाः सन्ति।

तत्रैकजीवस्यासंख्याताः प्रदेशाः सन्ति। एकैकप्रदेशेऽनन्ताः कर्मवर्गणाः संलग्नाः। तत्रैकस्यां वर्गणायामनन्ताः परमाणुपुद्गलाः सन्ति।

एक २ गोलक में असंख्यात २ निगोदशरीर हैं, और एक २ निगोदशरीर में अनन्त २ निगोदजीव हैं।

शङ्का–अनन्त के अनन्त भेद होते हैं, ऐसी स्थिति में एक निगोदशरीर में कितने अनन्त जीव होते हैं ?

समाधान–अतीत काल के अनन्त समय हैं, भविष्य कालके भी अनन्त समय हैं, और वर्तमान काल एक समय मात्र है। इन तीनों कालों के जितने समय हैं उनका अनन्त से गुणाकार कर देने पर जितने समय हों उन से भी अनन्त गुणा अधिक निगोदजीव एक निगोदशरीर में होते हैं।

एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं। एक२ प्रदेश में अनन्त २ कर्म-वर्गणाएँ लगी हुई हैं, और एक २ वर्गणा में अनन्त२ पुद्गलपरमाणु हैं

અસંખ્યાત ગોલક છે. એક એક ગોલકમાં અસંખ્યાત નિગોદ શરીર છે, અને એક એક નિગોદ શરીરમાં અનંત અનંત નિગોદ જીવ છે.

શંકા—અનંતના અનંત ભેદ હોય છે, એવી સ્થિતિમાં એક નિગોદ શરીરમાં કેટલા અનંત જીવ હોય છે?

સમાધાન—અતીતકાલ (ભૂતકાલ)ના અનન્ત સમય છે, ભવિષ્યકાલના પણ અનંત સમય છે, અને વર્ત્તમાન કાલ એકસમયમાત્ર છે, એ ત્રણે કાલોમાં જે સમય છે, તેનો અનંતથી ગુણાકાર કરવાથી જે ગુણાકાર (રાશિ) થાય તેટલા સમયથી પણ અનંત ગુણા અધિક નિગોદ જીવ એક નિગોદ-શરીરમાં હોય છે.

એક જીવના અસંખ્યાત પ્રદેશ થાય છે. એક-એક પ્રદેશમાં અનંત-અનંત કર્મવર્ગણાઓ લાગી છે, અને એક-એક વર્ગણામાં અનંત અનંત પુદ્ગલપરમાણુ છે.

परमाणूनां द्वौ भेदौ स्तः-बद्धा अबद्धाश्च। तत्र बद्धाः स्कन्धरूपाः। अबद्धाः परस्परासंयुक्ताः। स्कन्धानां पुनर्द्वौ भेदौ-जीवसहिताः, जीवरहिताश्च। तत्र घट-पटादिरूपा अजीवस्कन्धाः।

अथ जीवस्कन्ध-विचारः प्रस्तूयते—

द्वयोः परमाण्वोः संयोगे द्विप्रदेशी स्कन्धः। त्रयाणां परमाणूनां संयोगे त्रिप्रदेशी स्कन्धः। एवमसंख्यातानां परमाणूनां संयोगादसंख्यातप्रदेशी स्कन्धो जायते। एतावत्पर्यन्ताः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या न भवन्ति।

परमाणु दो प्रकार के हैं- बद्ध और अबद्ध। स्कन्धरूप परमाणु बद्ध कहलाते हैं, और आपस में असंयुक्त परमाणु अबद्ध कहलाते हैं।

स्कन्ध के भी दो भेद हैं-जीवसहित और जीवरहित, इन में घट पट आदि स्कन्ध अजीवस्कन्ध कहलाते हैं।

अब जीवस्कन्ध का विचार करते हैं—

दो परमाणुओं का संयोग होने पर द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, और तीन परमाणुओं के संयोगसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध। इसी प्रकार असंख्यात परमाणुओं के संयोग से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है। यहाँ तक के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते।

પરમાણુ બે પ્રકારના છે—(૧) બદ્ધ અને (૨) અબદ્ધ. સ્કંધરૂપ પરમાણુ બદ્ધ કહેવાય છે, અને આપસમાં અસંયુક્ત પરમાણુ અબદ્ધ કહેવાય છે.

સ્કંધના પણ બે ભેદ છે—જીવસહિત અને જીવરહિત. તેમાં ઘટ પટ આદિ સ્કંધ અજીવસ્કંધ કહેવાય છે.

હવે જીવસ્કંધનો વિચાર કરવામાં આવે છે-

બે પરમાણુઓનો સંયોગ થવાથી દ્વિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે, અને ત્રણ પરમાણુઓના સંયોગથી ત્રિપ્રદેશી સ્કંધ બને છે, એ પ્રમાણે અસંખ્યાત પરમાણુઓના સંયોગથી અસંખ્યાતપ્રદેશી સ્કંધ ઉત્પન્ન થાય છે. અહિં સુધીના સ્કંધ, જીવો દ્વારા ગ્રહણ કરી શકાતાં નથી.

अथ कीदृशाः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ती ?–त्युच्यते–अभव्य-राशिश्चतुःसप्ततितमः, तद्गतजीवापेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः परमाणवो यदि संधीभवन्ति तदौदारिकशरीरग्राह्यवर्गणा भवति। औदारिकवर्गणापेक्षया-ऽनन्तगुणाधिका वैक्रियशरीरग्राह्यवर्गणा। ततोऽनन्तगुणाधिकाऽऽहारकवर्गणा। आहारकवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका तैजसशरीरग्राह्यवर्गणा। ततोऽनन्तगुणाधिका एकभाषाग्राह्यवर्गणा। एकभाषाग्राह्यवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका एकश्वासोच्छ्वास-वर्गणा। ततोऽनन्तगुणाधिका एकमनसो वर्गणा। तदपेक्षयाऽनन्तगुणाधिका कार्मण-वर्गणा भवति। ततोऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गलपरमाणुस्कन्धा ज्ञेयाः। कार्मण

किस प्रकार के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्राह्य होते हैं ? यह बतलाते हैं :–अभव्य राशि चौहतरवीं है। इस अभव्य राशि के जीवों की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक परमाणु यदि इकट्ठे हों तो औदारिकशरीरग्राह्य वर्गणा होती है। औदारिकवर्गणाकी अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और इस से भी अनन्त गुणी अधिक आहारकवर्गणा होती है। आहारकवर्गणा से अनन्तगुणी अधिक तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और उस से भी अनन्तगुणी अधिक एकभाषाग्राह्य वर्गणा होती है। एकभाषावर्गण से भी अनन्तगुणी अधिक एक श्वासोच्छ्वासवर्गणा होती है, और उस से अनन्तगुणी अधिक एकमनोवर्गणा होती है, मनोवर्गणा से भी अनन्तगुणी अधिक कार्मणवर्गणा होती है। उस से भी अनन्त गुणा अधिक पुद्गल परमाणु के स्कन्ध समझने चाहिए। इस प्रकार कार्मणवर्गणा के अनन्त पुद्गल

કયા પ્રકારના સ્કંધ જીવોદ્વારા ગ્રહણ કરી શકાય છે ? તે બતાવે છે–અભવ્ય-રાશિ ચુમોતેર (૭૪) વીં છે. એ અભવ્ય રાશિના જીવોની અપેક્ષા અનંત ગુણ અધિક પરમાણુ જો એકઠા થાય તો ઔદારિક શરીર ગ્રહણ કરી શકે તેવી વર્ગણા હોય છે, ઔદારિક વર્ગણાની અપેક્ષા અનંત ગુણ અધિક વૈક્રિયશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી પણ અનંત ગુણી અધિક એક આહારકવર્ગણા હોય છે. આહારકવર્ગણાથી અનન્ત ગુણી અધિક તેજસશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય, તેનાથી પણ અનન્ત ગુણી અધિક એક ભાષાગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી અનંતગુણી અધિક એક શ્વાસોચ્છાસવર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી અનન્તગુણી અધિક એક મનોવર્ગણા હોય છે. મનોવર્ગણાથી પણ અનન્તગુણી અધિક કાર્મણવર્ગણા હોય છે. તેનાથી પણ અનન્ત ગુણી અધિક પુદ્ગલપરમાણુના સ્કંધ સમજવાં જોઇએ. એ પ્રમાણે કાર્મણવર્ગણાના

वर्गणागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा जीवाना ग्राह्या भवन्ति ।

रागद्वेषरूपाशुद्धप्रवृत्त्याऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशमनन्तानन्तकर्मवर्गणा अयोगोलकवह्निवल्लोलीभूताः सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा जीवस्य तिरोहिता भवन्ति । एवं च जीवोपेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गला ज्ञातव्याः । ते च पुद्गला रूपिणोऽचेतनाः सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

षड्द्रव्येषु सक्रिय-निष्क्रियविचारः—

षड्द्रव्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो धर्माधर्माकाशकालाख्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । जीवपुद्गलौ सक्रियौ

परमाणुओं से बने हुए स्कन्ध जीवों द्वारा ग्रहण करने योग्य होते हैं ।

राग और द्वेषरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त कर्मवर्गणाएँ इस प्रकार एकमेक हो रही हैं, जैसे लोहे का गोला और अग्नि एकमेक हो जाते हैं, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण ढँक जाते हैं । इस प्रकार जीवों की अपेक्षा पुद्गल अनन्त गुणा अधिक जानने चाहिए । ये पुद्गल—रूपी, अचेतन, सक्रिय, और पूरणगलनस्वभाववाले हैं ।

छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छहों द्रव्य सक्रिय हैं, किन्तु व्यवहारनयसे धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाश और काल नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं, जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय

અનન્ત પુદ્ગલ પરમાણુઓથી બનેલા સ્કંધ જીવો દ્વારા ગ્રહણ કરવા યોગ્ય હોય છે.

રાગ અને દ્વેષ રૂપ અશુદ્ધ પ્રવૃત્તિના કારણે આત્માના એક-એક પ્રદેશમાં અનંતાનંત કર્મવર્ગણાઓ એ પ્રમાણે એકમેક થઈ રહી છે કે-જેમ લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ એકમેક થઈ જાય છે, એ કારણથી જીવના અનંત જ્ઞાન આદિ ગુણ ઢંકાઈ જાય છે. એ પ્રમાણે જીવોની અપેક્ષા પુદ્ગલ અનંતગુણા અધિક જાણવા જોઈએ. તે પુદ્ગલ, રૂપી, અચેતન સક્રિય અને પૂરણગલનસ્વભાવવાળા છે.

છ દ્રવ્યોમાં સક્રિય નિષ્ક્રિયનો વિચાર—

નિશ્ચયનય પ્રમાણે છ દ્રવ્યો સક્રિય છે, પરંતુ વ્યવહારનયથી ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આકાશ અને કાલ નામના ચાર દ્રવ્યો ક્રિયારહિત છે, જીવ અને

स्तः। निश्चयनयाद् धर्मास्तिकायो गतिपरितानां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहायदानरूपां क्रियाम्, अधर्मास्तिकायः स्थितिपरिणतजीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहायदानरूपां क्रियां करोति। तथैवाकाशोऽवकाशदानरूपां क्रियां, कालश्च वर्तनारूपक्रियां जीवाजीवेषु विधत्ते। तथैव निश्चयेन जीवः स्वस्वरूपरमणरूपां क्रियां करोति। यदि निश्चयनयेन शुभाशुभरूपविभावदशारमणात्मिकां क्रियां कुर्यात्तदाऽऽत्मा कदाप्यविचलपदं नाप्नुयात्, अतः स्वस्वरूपपरिणतिरूपामेव क्रियां करोति। निश्चयनयेन पुद्गलोऽप्यनादिकालतः स्वपूरणगलनरूपां क्रियां समाचरति। तस्माद् निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणीति ज्ञातव्यम्।

है। निश्चयनय से धर्मास्तिकाय, गतिपरिणत जीवों और पुद्गलों की गति में सहायकता देने की क्रिया करता है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिपरिणत जीवों एवं पुद्गलोंकी स्थिति में सहायता देनेकी क्रिया करता है। इसी प्रकार आकाश–अवगाहदानरूप किया करता है, और काल वर्तना आदि में सहायता पहुँचाता है। जीव निश्चयनय से निजस्वरूप–रमणरूप क्रिया करता है। अगर निश्चय नय से जीव शुभ और अशुभ रूप विभावदशा में रमण करने की क्रिया करे तो उसे अविचल पद की कदापि प्राप्ति नहीं हो सकती, अत एव जीव अपने स्वभाव में परिणतिरूप क्रिया ही करता है। निश्चय नय की अपेक्षा पुद्गल भी अनादि काल से पूरण गलन रूप क्रिया कर रहा है। इस प्रकार निश्चय नय से सभी द्रव्य सक्रिय हैं।

પુદ્ગલ દ્રવ્ય સક્રિય છે. નિશ્ચયનયથી ધર્માસ્તિકાય, ગતિમાં પરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમાં સહાયતા કરવાની ક્રિયા કરે છે, અને અધર્માસ્તિકાય, સ્થિતિમાં પરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમાં સહાયતા દેવાની ક્રિયા કરે છે. એ પ્રમાણે આકાશ, અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરે છે, અને કાલ વર્ત્તના આદિમાં સહાયતા પહોંચાડે છે, જીવ નિશ્ચયનયથી નિજસ્વરૂપ–રમણરૂપ ક્રિયા કરે છે. અગર નિશ્ચયનયથી જીવ શુભ અને અશુભરૂપ વિભાવદશામાં રમણ કરવાની ક્રિયા કરે તો તેને અવિચલ પદની પ્રાપ્તિ કદાપિ પણ થઈ શકે નહિ, એટલા કારણથી જીવ પોતાના સ્વભાવમાં પરિણતિરૂપ ક્રિયા જ કરે છે, નિશ્ચયનયની અપેક્ષા એ પુદ્ગલ પણ અનાદિ કાલથી પૂરણ–ગલનરૂપ ક્રિયા કરે છે, એ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી સર્વ દ્રવ્યો સક્રિય છે.

अधुना व्यवहारनयमाश्रित्योच्यते—

व्यवहारतो धर्माधर्माकाशकाला निष्क्रियाः, जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः। व्यवहारनयतो जीवो रागद्वेषरूपाशुद्धपरिणत्या प्रतिसमयमनन्तपुद्गलपरमाणुस्कन्धाऽऽदानक्रियां करोति। परमाणुपुद्गला अपि कर्मवर्गणारूपेण जीवस्य सर्वस्मिन् प्रदेशे संलग्ना भवन्ति, अतस्ते संश्लेषक्रियां पूरणगलनादिक्रियां च कुर्वन्ति, तस्माद् व्यवहारनयतो जीव-पुद्गलावेव सक्रियौ।

षड्द्रव्यविषये कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपणम्—

निश्चयनयेन षड् द्रव्याणि स्वस्वरूपकर्तृणि, तस्मात्तेषां कर्तृत्वमुपपद्यते।

अब व्यवहार नय की अपेक्षा से कथन किया जाता है—व्यवहारनय से धर्म अधर्म आकाश और काल क्रियारहित हैं, तथा जीव और पुद्गल सक्रिय हैं। व्यवहार नय से जीव राग-द्वेषरूप अशुभ परिणति के द्वारा प्रति समय अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्कन्धों को ग्रहण करने की क्रिया करता है। परमाणु पुद्गल भी कर्मवर्गणारूप में परिणत हो कर जीव के समस्त प्रदेशों में बद्ध होते हैं, अतः वह बन्धनरूप क्रिया करते हैं, और पूरण गलन आदि क्रिया भी करते हैं, इस प्रकार व्यवहार नय से जीव और पुद्गल ही सक्रिय हैं।

छह द्रव्यों का कर्तापन और अकर्तापन—

निश्चय नय से छहों द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं, अतः सभी द्रव्यों में

હવે વ્યવહારનયની અપેક્ષાએ કહેવાય છે-વ્યવહારનયથી ધર્મ અધર્મ આકાશ અને કાલ ક્રિયારહિત છે, તથા જીવ અને પુદ્દગલ સક્રિય છે. વ્યવહારનયથી જીવ રાગ-દ્વેષરૂપ અશુભપરિણતિદ્વારા પ્રતિસમય અનન્ત પુદ્દગલ પરમાણુઓના સ્કંધોને ગ્રહણ કરવાની ક્રિયા કરે છે. પરમાણુ પુદ્દગલ પણ કર્મવર્ગણારૂપમાં પરિણત થઇને જીવના સમસ્ત પ્રદેશોમાં બદ્ધ થઇ જાય છે (સર્વ પ્રદેશોને ચોંટી જાય છે) તેટલા કારણથી તે બંધનરૂપ ક્રિયા કરે છે, અને પૂરણ-ગલન આદિ ક્રિયા પણ કરે છે. એ પ્રમાણે વ્યવહારનયથી જીવ અને પુદ્દગલ જ સક્રિય છે.

દ્રવ્યોનું કર્ત્તાપણું અને અકર્તાપણું—

નિશ્ચયનયથી છ દ્રવ્યો, પોતપોતાના સ્વરૂપમાં કર્તા છે. તેથી સર્વ દ્રવ્યોમાં

व्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं, धर्मादिद्रव्यपञ्चकस्याकर्तृत्वमिति ।

व्यवहारनयः—

व्यवहारनयः षड्विधः-शुद्धाशुद्धशुभाशुभोपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र-

(१) शुद्धव्यवहारनयः ।

यदि जीवः कर्ममलरूपाशुद्धतां व्यपनीयाऽनन्तज्ञानादिगुण पशुद्धता मुपार्जयति तर्हि प्रथमशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं भवति । तथाहि-शुद्धव्यवहारनयेन जीवो यदा शुद्धस्वरूपार्जनाय प्रयतते, तदा प्रथमगुणस्थाने

कर्तापन सिद्ध होता है । व्यवहारनयसे जीव कर्ता है और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य अकर्ता हैं ।

व्यवहारनय—

व्यवहार नय छह प्रकार का है—(१) शुद्ध व्यवहारनय, (२) अशुद्ध व्यवहारनय, (३) शुभ व्यवहारनय, (४) अशुभ व्यवहारनय, (५) उपचरित व्यवहारनय और (६) अनुपचरित व्यवहारनय ।

(१) शुद्ध व्यवहारनय—

अगर जीव कर्ममलरूप अशुद्धता को हटाकर अनन्तज्ञानादिगुणरूप शुद्धता का उपार्जन करता है तो शुद्ध व्यवहारनय से जीव में कर्तृत्व होता है । वह इस प्रकार शुद्ध व्यवहार नय से जीव जब अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए

કર્તાપણું સિદ્ધ થાય છે. વ્યવહારનયથી જીવ કર્તા છે અને બાકીના ધર્માદિ પાંચ દ્રવ્યો અકર્તા છે.

વ્યવહારનય—

વ્યવહારનય છ પ્રકાર છે. (૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય (૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય, શુભ વ્યવહારનય, (૪) અશુભવ્યવહારનય, (૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય, (૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય.

(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય—

જીવ કર્મમલરૂપ અશુદ્ધતાને હઠાવીને અનંતજ્ઞાનાદિગુણરૂપ શુદ્ધતાને ઉપાર્જન કરે છે તો શુદ્ધ વ્યવહારનય પ્રમાણે જીવમાં કર્તૃત્વ-કર્ત્તાપણું હોય છે. તે આ પ્રમાણે-શુદ્ધ વ્યવહારનયથી જીવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન

ऽनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं क्षपयित्वा चतुर्थं गुणस्थानं समासाद्य सम्यक्त्वगुणं लभते। अप्रत्याख्येयकषायचतुष्टयक्षयेण देशविरतिरूपं पञ्चमं गुणस्थानं प्राप्नोति। प्रत्याख्येयकषायचतुष्टयक्षयेण जीवस्य षष्ठसप्तमगुणस्थानयोः सर्वविरतिरूपयोरुपलब्धिर्भवति। यद्यष्टमगुणस्थानं लभ्यते तदा तत्र श्रेणिद्वयं समारुह्यते, उपशमश्रेणिः क्षपकश्रेणिश्च। तत्रोपशमश्रेण्याऽष्टमगुणस्थानादेकादशगुणस्थानं यावदध्यारोहति। क्षपकश्रेण्या त्वष्टमादारभ्य दशमं यावत् समारुह्यैकादशं विहाय द्वादशं गुणस्थानं समारोहति। जीवस्तत्र रागद्वेषरूपमोहनीय

प्रयत्न करता है तब प्रथम गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार कषायोंका क्षय करके चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है और सम्यक्त्व गुण पा लेता है। चार अप्रत्याख्यानावरण कषायों का क्षय करके देशविरतिरूप पांचवाँ गुणस्थान प्राप्त करता है, और प्रत्याख्यानावरण कषाय-चतुष्टय के क्षय से जीव को सर्वविरतिरूप छठे और सातवें गुणस्थान की प्राप्ति होती है। जीव को यदि आठवां गुणस्थान प्राप्त होता है तो वहाँ से दो श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं और जीव उन में से किसी एक श्रेणी पर आरूढ होता है। दो श्रेणियाँ हैं-उपशमश्रेणी, और क्षपकश्रेणी। उपशमश्रेणीवाला जीव ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ सकता है। क्षपकश्रेणीवाला जीव आठवें से दशवें गुणस्थान तक पहुँचकर ग्यारहवें को छोड कर सीधा बारहवें गुणस्थान पर आरूढ हो जाता है। जीव दशवें गुणस्थान के अन्त में रागद्वेषरूप मोहनीय कर्म का समूल नाश करके,

---

કરે છે, ત્યારે પ્રથમ ગુણસ્થાનમાં અનન્તાનુબંધી ચાર કષાયોનો ક્ષય કરીને ચતુર્થ (ચોથું) ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને સમ્યકત્વ ગુણ પામી જાય છે. ચાર અપ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાયોનો ક્ષય કરીને દેશવિરતિરૂપ પાંચમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને પ્રત્યાખ્યાનાવરણ કષાય-ચતુષ્ટયના ક્ષયથી જીવને સર્વવિરતિરૂપ છઠ્ઠા અને સાતમા ગુણસ્થાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. જીવને જો આઠમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે તો ત્યાંથી બે શ્રેણીઓનો આરંભ થાય છે, અને જીવ એ બેમાંથી કોઇ એક શ્રેણી પર આરૂઢ થાય છે. બે શ્રેણી આ પ્રમાણે છે-(૧) ઉપશમશ્રેણી (૨) ક્ષપકશ્રેણી. ઉપશમશ્રેણીવાળો જીવ અગિઆરમાં ગુણસ્થાન સુધી ચઢી શકે છે, ક્ષપકશ્રેણીવાળો જીવ આઠમાથી દસમા ગુણસ્થાન સુધી પહોંચીને અગિઆરમા ગુણસ્થાકને છોડીને સીધો બારમાં ગુણસ્થાન પર આરૂઢ થઈ જાય છે. જીવ દસમા ગુણસ્થાનના અંતમાં

कर्म समूलमुन्मूल्य घातिकर्माणि क्षपयित्वा त्रयोदशं गुणस्थानमारोहति। त्रयोदशे गुणस्थाने निर्मलकेवलज्ञानं प्राप्नोति। तदनन्तरं पञ्चलघ्वक्षरोच्चारणकालस्थितिकं चतुर्दशगुणस्थानं संप्राप्य निःशेषकर्मनिचयं क्षपयित्वाऽसौ शिवपदं संप्राप्नोति।

। इति जीवस्य शुद्धस्वरूपनिरूपकः शुद्धव्यवहारनयः।

(२) अशुद्धव्यवहारनयः—

अशुद्धव्यवहारनयेन रागद्वेषमिथ्यात्वादयोऽनादिकालतः शत्रुरूपेण जीवे संलग्नाः सन्ति, तस्माज्जीवस्याशुद्धत्वं ज्ञेयम्। अशुद्धत्वेन च प्रतिसमय-

---

और बारहवें गुणस्थान में शेष तीन घाति कर्मों का क्षय करके तेरहवें गुणस्थान में पहुंचता है। इस गुणस्थान में (बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में) जीव को निर्मल केवलज्ञान प्राप्त होता है। तेरहवें गुणस्थान के बाद पांच ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में ठहरकर समस्त कर्मों का क्षयकर के मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

जीवके शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाला यह शुद्ध व्यवहारनय है।

(२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनय से राग–द्वेष और मिथ्यात्व आदि अनादि काल से शत्रुकी तरह जीव के साथ लगे हुए हैं, इसी कारण जीव में अशुद्धता है। इस अशुद्धता के

રાગ–દ્વેષરૂપ મોહનીય કર્મનો સમૂળગો નાશ કરીને અને બારમા ગુણસ્થાનમાં શેષ ત્રણ ઘાતીકર્મોનો ક્ષય કરીને તેરમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચે છે. એ ગુણસ્થાનમાં (બારમા ગુણસ્થાનના અંતિમ સમયમાં) જીવને નિર્મલ કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે. તેરમા ગુણસ્થાન પછી પાંચ હ્રસ્વ સ્વર–(અ–ઈ–ઉ–ઋ–ૡ) ઉચ્ચારણ કરતાં જેટલો સમય લાગે છે, તેટલો સમય ચૌદમા ગુણસ્થાનમાં થોભીને સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી લે છે.

જીવના શુદ્ધ સ્વરૂપને ગ્રહણ કરવા વાળો આ શુદ્ધ વ્યવહાર નય છે.

(૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય—

અશુદ્ધ વ્યવહારનયથી રાગ–દ્વેષ અને મિથ્યાત્વ આદિ અનાદિ–કાલથી શત્રુની માફક જીવની સાથે લાગ્યાં છે, એ કારણથી જીવમાં અશુદ્ધતા છે. એ અશુદ્ધતાના

मनन्तानन्तकर्मवर्गणाः सत्तारूपेणावगुण्ठिता भवन्ति। एवं चाशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति।

(३) शुभव्यवहारनयः—

शुभव्यवहारनयेनात्मा शुभपरिणामतो दानशीलतपोभावविनयभक्तिवैयावृत्त्यं, श्रमणनिर्ग्रन्थानां प्रासुकमेषणीयमशनपानखाद्यस्वाद्यवस्त्रकम्बलप्रतिग्रहपादप्रोञ्छन-प्रातिहार्यपीठफलकशय्यासंस्तारकौषधभैषज्यप्रतिलाभरूपं सुपात्रदानं, म्रियमाण-जीवरक्षणरूपमभयदानं, हीनदीननिःसत्त्वजीवानां साहाय्यं, साधर्मिकवात्सल्यं, परहित-चिन्तारूपां मैत्रीं, परदुःखनिवारणेच्छारूपां करुणां, निःस्वार्थपरोपकारादिकां च

कारण प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्मवर्गणाएँ सत्तारूप से बद्ध होती रहती है। इस प्रकार अशुद्ध व्यवहारनय से जीव को कर्ता समझना चाहिए।

(३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनय से आत्मा शुभपरिणामद्वारा दान, शील, तप, भाव, विनय, भक्ति, वैयावृत्य रूप शुभक्रिया करता है, श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय—अशन पान खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, कम्बल, पात्र, पादप्रोंच्छन, पडिहारी पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध, भेषज का सुपात्रदान देता है। मरते हुए जीव की रक्षारूप अभयदान देता है, हीन दीन और निर्बल जीवों की सहायता करता है। साधर्मों के प्रति वात्सल्य प्रकट करता है, परहितचिन्तनरूप मैत्री भावना, दूसरों का दुःखनिवारणरूप करुणा

કારણે પ્રતિસમય અનન્તાનન્ત કર્મ વર્ગણાઓ સત્તારૂપથી બદ્ધ થતી રહી છે. આ પ્રમાણે અશુદ્ધ વ્યવહારનયથી જીવને કર્તા સમજવો જોઈએ.

(૩) શુભ વ્યવહારનય—

શુભ વ્યવહારનયથી આત્મા દાન, શીલ, તપ, ભાવ, વિનય, ભક્તિ વૈયાવૃત્ય રૂપ શુભ ક્રિયા કરે છે. શ્રમણનિર્ગ્રન્થોને પ્રાસુક એષણીય—અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય, વસ્ત્ર, કમ્બલ, પાત્ર, પાદપ્રોછન, પડિહારી—પીઠ, ફલક, શય્યા, સસ્તારક, ઔષધ, ભેષજનું સુપાત્ર દાન આપે છે, મરતા જીવની રક્ષારૂપ અભયદાન આપે છે, હીન દીન અને નિર્બલ જીવોની સહાયતા કરે છે; સાધર્મીના ઉપર વાત્સલ્ય પ્રગટ કરે છે, પરહિતચિન્તનરૂપ મૈત્રીભાવના, બીજાના દુઃખનિવારણરૂપ કરૂણા તથા નિઃસ્વાર્થ

शुभक्रियां करोति, तेन शुभव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं जायते ।

(४) अशुभव्यवहारनयः—

अशुभव्यवहारनयेन जीवो हास्य–भय–शोक–रत्य–रति–निद्रा–प्राणातिपात-मृषावादा–ऽदत्तादान–मैथुन–परिग्रह–क्रोध–मान–माया–लोभ–राग–द्वेषादिषु प्रवर्तते । विषयसुखारम्भादिरूपामशुभक्रियां च करोति तेनाऽशुभव्यवहारनयतो जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(५) उपचरितव्यवहारनयः—

उपचरितव्यवहारनयेन जीवो निजमजरामरत्वमनन्तज्ञानदर्शनमव्याबाध-

तथा निःस्वार्थ परोपकार आदिरूप शुभक्रिया करता है, अतः शुभ व्यवहारनय से जीव का कर्तापन सिद्ध होता है ।

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनय से जीव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, आदि अशुभ कार्यों एवं भावों में प्रवृत्त होता है, तथा विषयसुख एवं आरम्भ आदि रूप अशुभ क्रिया करता है, अतः अशुभव्यवहारनय से जीव कर्ता सिद्ध होता है ।

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहार नय से जीव अपने अजरता अमरता तथा अनन्त ज्ञान

પરોપકાર આદિરૂપ શુભ ક્રિયા કરે છે, તે કારણથી શુભ વ્યવહારનયથી જીવનું કર્તાપણું સિદ્ધ થાય છે.

(૪) અશુભ વ્યવહારનય—

અશુભ વ્યવહારનયથી જીવ હાસ્ય, ભય, શોક, રતિ, અરતિ, નિદ્રા, પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, પરિગ્રહ, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, રાગ દ્વેષ આદિ અશુભ કાર્યો એવં ભાવોમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, વિષયસુખ એવં આરંભ આદિરૂપ અશુભ ક્રિયા કરે છે, તેથી અશુભ વ્યવહારનયથી જીવ કર્તા સિદ્ધ થાય છે.

(૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય—

ઉપચરિત વ્યવહારનયથી જીવ પોતાના અજર અમર તથા અનંતજ્ઞાન, દર્શન

सुखादिरूपं शुद्धस्वरूपं विस्मृत्य पौद्गलिकविभावपरिणामेऽनन्तदुःखजनकेऽनन्तानन्दमनुभवति, मोहवशेन बाह्यवस्तुषु ममत्वभावं कुरुते। यथा-"इदं मम गृहम्, इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवाराः, इदं मम सर्वं धनजनादिकम्"। इत्थं विषरूपं विषयं पीयूषं मन्यमानो विषयकतानो क्षणमात्रसुखजनकान् बहुकालदुःखदान् कामभोगान् भुञ्जानो विषयमृगतृष्णां पुनः पुनर्धावमानो दीर्घाध्वसंसारे क्षणमपि विश्रान्तिं न लभते। ममेति कुर्वन्नयं जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तदर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तदर्थं प्राणनाशमपि कर्तुं समुद्यतो भवति। अनात्मीयमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

दर्शक तथा अव्याबाधसुखरूप शुद्ध स्वरूप को भूल कर पौद्गलिक विभाव परिणाम में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त आनन्द मानता है। मोह के वशीभूत हो कर बाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है, जैसे- "यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे कुटुम्बी हैं, ये सब धन-जन आदि मेरे हैं"। इस प्रकार के विषरूप विषयों को अमृत मानता हुआ, विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर सुख देने वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-भोगों को भोगता हुआ, विषयों की मृगतृष्णा की तरफ वारंवार दौडता हुआ, इस दीर्घमार्गवाले संसार में क्षण भर भी विश्राम नहीं पाता है। मेरे मेरे करता हुआ यह जीव, पुत्र और पत्नी वगैरह के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ व्यर्थ ही उन के लिये शोक करता है, यहाँ तक की उन के लिए प्राणों का नाश तक करने को उद्यत हो जाता है। यह

તથા અવ્યાબાધ સુખરૂપ શુદ્ધ સ્વરૂપને ભૂલી જઇને પૌદ્ગલિક વિભાવ પરિણામમાં કે જે અનંત દુઃખોનો જનક (ઉત્પન્ન કરનાર) છે. તેમાં અનંત આનંદ માને છે, મોહને વશ થઇને બહારની વસ્તુઓમાં મમત્વ ધારણ કરે છે, જેમકે-"આ ઘર મારૂં છે; આ મારા પુત્ર છે, આ મારી સ્ત્રી છે, આ મારૂં કુટુંબ છે, આ સર્વ ધન-જન વગેરે મારૂં છે" એ પ્રમાણે વિષરૂપ-વિષયોને અમૃતરૂપ માનીને, વિષયોમાં તન્મય થઈને ક્ષણમાત્ર સુખ આપવાવાળા અને લાંબા કાલ સુધી દુઃખ આપવાવાળા ભોગોને ભોગવતો થકો, વિષયોની મૃગતૃષ્ણા તરફ વારંવાર દોડતો થકો આ લાંબા માર્ગવાળા સંસારમાં ક્ષણ માત્ર પણ વિશ્રામ પામતો નથી. મારા-મારા કરતો આ જીવ, પુત્ર અને પત્ની વગેરેના સુખમાં સુખ અને દુઃખમાં-દુઃખ માનતો થકો તેના માટે નકામો શોક કરે છે—ત્યાં સુધી કે તેના માટે પ્રાણોનો નાશ કરવા તૈયાર થઈ જાય છે. આ જીવ પરને પોતાનું સમજીને નાના પ્રકારનાં

स्वात्मानं मलिनीकरोति। एवमुक्तरीत्या कर्मवशेन ममत्वपाशबद्धस्य जीवस्योपचरितव्यवहारनयेन कर्तृत्वमिति।

(६) अनुपचरितव्यवहारनयः–

अनुपचरितव्यवहारनयेन स्वात्मनः प्रत्यक्षरूपेणाऽत्यन्तभिन्नं शरीरमज्ञानवशात् पारिणामिकभावेनात्मप्रदेशैरैक्यभावमापद्यमानमिव स्वात्मनः स्वरूपं मन्यमानस्तत्पुष्टिरक्षणादिहेतोरेकेन्द्रियादिसकलप्राण्युपमर्दनजनकमहारम्भमृषावादा – दत्तादान–मैथुन–परिग्रहादिकानि नानाविधपापकर्माणि जीवः समाचरति। आत्मनः स्वरूपे शरीरे च नितान्तं भिन्नता वर्तते। तथाहि–आत्मा

जीव पर को स्वकीय समझ कर नाना प्रकार के पाप कार्य कर के अपने को मलीन बनाता है। इस प्रकार कर्मवश हो कर ममता के पाशमें जकडा हुआ यह जीव उपचरित व्यवहारनय से कर्ता सिद्ध होता है।

(६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनय से जीव अपनी आत्मा से प्रत्यक्षतः भिन्न शरीर को अज्ञान के वश हो कर पारिणामिक भाव से आत्मप्रदेशोंकी एकता समझ कर, और आत्मा का ऐसा ही स्वरूप मान कर शरीर की पुष्टता और रक्षा आदि के लिए एकेन्द्रिय आदि समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह आदि नाना प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करता है। वस्तुतः आत्मा के स्वरूप में और शरीर में अत्यन्त भिन्नता है, वह इस प्रकार–आत्मा चैतन्य

પાપકાર્ય કરીને પોતાને મલીન બનાવે છે. આ પ્રમાણે કર્મને વશ થઈ મમતાના પાશમાં જકડાએલો આ જીવ ઉપચરિત વ્યવહારનયથી કર્તા સિદ્ધ થાય છે.

(૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય—

અનુપચરિત વ્યવહારનયથી જીવ પોતાના આત્માથી પ્રત્યક્ષ ભિન્ન શરીરને અજ્ઞાનવશ થઈ પારિણામિક ભાવથી આત્મપ્રદેશોની એકતા સમજીને, અને આત્માનું એવું જ સ્વરૂપ માનીને શરીરની પુષ્ટતા અને રક્ષા આદિ માટે એકેન્દ્રિય આદિ તમામ પ્રાણીઓની હિંસા થવાવાળા, મહારંભ, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, અને પરિગ્રહ આદિ નાના–અનેક પ્રકારનાં પાપ કર્મોનું આચરણ કરે છે. વસ્તુતઃ આત્માના સ્વરૂપમાં અને શરીરમાં અત્યન્ત ભિન્નતા છે, તે આ પ્રમાણે કેઃ—આત્મા ચૈતન્ય

चैतन्यरूपः, शरीरमिदं जडरूपम् । आत्मा-अरूपी, शरीरमिदं रूपि। आत्मा ज्ञान-दर्शनसुखवीर्यादिरूपः, शरीरं तु निःसत्त्वं विविधव्याधियुक्तम् । आत्मा-नित्यः शाश्वतो ध्रुवरूपश्च, शरीरमिदमनित्यमशाश्वतमध्रुवम्। आत्मा-नितान्तनिर्मलः, शरीरं तु गर्भाशयस्थानतः शुक्रशोणिताख्यकारणतः, नवद्वारतो मलनिःसरणेन च नितान्ताशुचि, मलमाण्डं च ।

यदर्थमेतादृशानि कर्माणि कुर्वन्ति, तदनन्तवारं लब्धं त्यक्तं च वपुः । ईदृशे नश्वरे शरीरेऽनुरज्य पुनः पुनस्तान्येव पापकर्माणि समाचरन् स्वीयमात्मानं कर्मभाराक्रान्तं करोति । तेन पुनः पुनरनादिदुरन्तसंसारमहागर्ते पतितः स्वा-

---

स्वरूप है, शरीर जड है। आत्मा अरूपी है, शरीर रूपी है। आत्मा ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यादिरूप है, शरीर निःसत्त्व और विविध व्याधियों से युक्त है। आत्मा नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, शरीर अनित्य, अशाश्वत, और अध्रुव है। आत्मा नितान्त निर्मल है, शरीर गर्भाशय में स्थित होने से शुक्र और शोणित से बना हुआ होने के कारण, तथा नौ द्वारों से मल निकलने के कारण अत्यन्त अशुचि है, और मल का पात्र है। जिस शरीर के लिए ऐसे २ उपर्युक्त कर्म किये जाते हैं वह शरीर अनन्त वार पाया है और अनन्त वार छोडा है, लेकिन संसारी जीव इस नश्वर शरीर में अनुराग करके पुनः पुनः वही पापकर्म करता हुआ अपने को कर्म के भार से भारी बनाता है। इस कारण अनादि और दुरन्त संसाररूपी महागर्त में पुनः पुनः पडकर अपना उद्धार करने

સ્વરૂપ છે, શરીર જડ છે. આત્મા અરૂપી છે, શરીર રૂપી છે. આત્મા જ્ઞાન, દર્શન, સુખ, અને વીર્યરૂપ છે, શરીર નિઃસત્વ અને વિવિધ વ્યાધિ[illegible]થી યુક્ત છે. આત્મા નિત્ય છે, શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે, શરીર અનિત્ય અશાશ્વત અને [illegible]ુવ છે. આત્મા અત્યન્ત નિર્મલ છે, શરીર ગર્ભાશયમાં સ્થિત હોવાથી શુક્ર અને શોણિતથી (વીર્ય અને લોહીથી) બનેલું હોવાના કારણે, તથા નવ દ્વારોથી મલ નીકળવાના કારણે અત્યંત અશુચિ-અપવિત્ર છે અને મલનું પાત્ર છે. જે શરીરના માટે એવાં એવાં ઉપર કહેલાં તેવાં કર્મ કરવામાં આવે છે, તે શરીર અનંતવાર પ્રાપ્ત થયું છે અને અનંતવાર છોડી દીધું છે, પરંતુ સંસારી જીવ આ નાશવંત શરીરમાં અનુરાગ-પ્રીતિ કરીને ફરી-ફરીને તે પાપકર્મ કરીને પોતાને કર્મના ભારથી ભારે બનાવે છે. એ કારણથી અનાદિ અને દુરંત-મુશ્કેલીથી પાર પડે તેવો-સંસારરૂપી મહગર્ત-મોટો ખાડો તેમાં વારંવાર પડીને પોતાનો ઉદ્ધાર કરવામાં અસમર્થ બની જાય છે, પરંતુ

त्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति। अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुरन्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्येव कर्माणि कुर्वन्ति संसारिणः। एवमात्मनोऽत्यन्तभिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पुष्टिरक्षणाद्यर्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरित-व्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति। उक्तरीत्या षड्विधव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विज्ञेयम्।

जीवस्वरूपे सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु—सर्वेषां जीवानां स्वरूपं लक्षणं च सदृशमेव, तर्हि संसारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम्? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने किये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा संसाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर-फिर वैसे ही कर्म करने लगते हैं। इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानेवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है। इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से छह तरह के व्हारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए।

जीवके स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवोंका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो संसारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों हैं।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोंके समान ही हैं। उन में से जो जीव

સંસારી જીવ પોતાનાં કરેલાં કર્મોના ભારને સમજતો નથી, તથા સંસારરૂપી મહાગર્તમાં પડયો છે તે તેને જાણતો નથી. તેથી ફરી-ફરી તેવાં કર્મો કરવા લાગે છે. એ પ્રમાણે આત્માથી ભિન્ન શરીરને જ પોતાનું સ્વરૂપ સમજીને તેનાં પોષણ તથા રક્ષણ માટે કરવામાં આવતી ક્રિયાથી જીવ અનુપચરિત વ્યવહાર નયની અપેક્ષાએ કર્ત્તા સિદ્ધ થાય છે. એ પ્રમાણે પૂર્વે કહેલા પ્રકારથી છ પ્રકારના વ્યવહારનયથી જીવને કર્ત્તા સમજવો જોઈએ.

જીવના સ્વરૂપમાં સદશ-વિસદશ વિચાર—

પ્રશ્ન—અગર સર્વ જીવોનું સ્વરૂપ અને લક્ષણ સમાનજ છે તો પછી સંસારી જીવ દુઃખી અને સિદ્ધ જીવ સુખી કેમ છે?

ઉત્તર—નિશ્ચયનયથી સર્વ જીવો સિદ્ધોની સમાન છે. તેમાંથી જે જીવ તમામ

सिद्धसदृशा एव, तत्र ये सकलं कर्म क्षपयन्ति ते सर्वे जीवाः सिद्धा भवंति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्ता विद्यते। यदि सर्वे सिद्धसदृशास्तर्हि कथमभव्यजीवैः सिद्धगतिभाग्भिर्न भूयते ? इति श्रूयताम्—

अभव्यजीवानामनाद्यनन्तचिक्कणकर्मसंबन्धात्, परावर्तस्वभावाभावाच्च कर्मक्षपणशक्तिर्नास्ति, भव्यानां तु तादृशचिक्कणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावाच्च देवगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वे ज्ञानादिरत्नत्रयसमाराधनेन, गुणश्रेणिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं शक्यम्।

समस्त कर्मोंका क्षय कर डालते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं। उनका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है। संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं। इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता पृथक्-पृथक् है, तथापि उन में स्वरूप की समानता है।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान हैं तो अभव्य जीव सिद्धिगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—सुनिये, अभव्य जीवों में अनादि अनन्त चिकने कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है। भव्य जीवों के वैसे चिकने कर्मों के न होने से, और परावर्त स्वभाव से, देव गुरु और धर्मरूप सामग्रीके मिलने पर ज्ञानादिरत्नत्रय की आराधना करने से, तथा गुणश्रेणी पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना शक्य है।

કર્મોનો ક્ષય કરી નાંખે છે, તે સર્વે સિદ્ધ કહેવાય છે. તેનું અસલી સ્વરૂપ પ્રગટ થઈ જાય છે. સંસારી જીવ કર્મને આધીન હોવાના કારણે દુઃખી હોય છે. એ પ્રમાણે જો કે પ્રત્યેક જીવની સત્તા પૃથક્-પૃથક્-જૂદી જૂદી છે, તો પણ તેનામાં સ્વરૂપની સમાનતા છે.

પ્રશ્ન—જો સર્વ જીવ સિદ્ધોની સમાન છે તો અભવ્ય જીવ સિદ્ધગતિને કેમ પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી ?

ઉત્તર—સાંભળો, અભવ્ય જીવોમાં અનાદિ-અનંત ચિકણા કર્મોનો સંબંધ હોવાથી અને અપરિવર્તનશીલ સ્વભાવના કારણે કર્મોનો ક્ષય કરવાની શક્તિ નથી; ભવ્ય જીવોને તેવાં ચીકણાં કર્મ ન હોવાથી અને પરાવર્ત-સ્વભાવથી દેવ, ગુરુ અને ધર્મરૂપ સામગ્રીના મળવા પર, જ્ઞાનાદિ રત્નત્રયની આરાધના કરવાથી, તથા ગુણશ્રેણી પર આરોહણ કરવાથી તેઓને સિદ્ધપદ પ્રાપ્ત કરવું શક્ય છે.

मनुष्यभवं प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानीमेवाऽव्यवहारराशिसूक्ष्मनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकाशदशां प्राप्नुवन्ति। यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश सूक्ष्मनिगोदान्निष्क्रान्ता भवन्ति। कदाचित्ततोऽप्यल्पसंख्यकाः सूक्ष्मनिगोदा बहिरायान्ति तदा तैः सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहाराशौ जीवानां ह्रासवृद्धी न भवतः। ईदृशा निगोदगोलका असंख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे।

। इत्यवतरणा संपूर्णा।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम्। तत्र चरणकरणानुयोगस्य प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम्।

मनुष्य भव पाकर कर्मों का क्षय करके जीव मोक्ष जाते हैं, उसी समय अव्यवहारराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जराद्वारा दूसरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त करते हैं। अगर दश जीव मोक्ष में जाते हैं तो दश जीव सूक्ष्मनिगोद से बाहर निकल आते हैं। कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते हैं तो उनके साथ एक–दो अभव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती बढती नहीं होती। ऐसे निगोदगोलक लोकमें असंख्यात होते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा है।

इति अवतरणा संपूर्ण—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है। यह कहा जा चुका है कि–चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण सर्वप्रथम किया गया है।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોનો ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મ નિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા બીજા જીવો નીકળીને વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે. અગર દસ જીવ મોક્ષમાં જાય છે તો દસ જીવ સૂક્ષ્મ નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે. કદાચિત્ અલ્પસંખ્યક સૂક્ષ્મ નિગોદ–જીવ બહાર નીકળે છે તો, તેની સાથે એક–બે અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે. પણ વ્યવહાર રાશિમાં જીવોનું ઘટવું–વધવું થતું નથી. એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમાં અસંખ્યાત હોય છે. આ પ્રમાણે ગ્રંથાન્તરમાં કહ્યું છે.

ઇતિ અવતરણા સંપૂર્ણ—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપ બતાવવામાં આવ્યું છે. એ કહી આપ્યું છે કે ચરણ–કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનું ગ્રહણ સૌથી પ્રથમ કરવામાં આવ્યું છે.

तत्राचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम् , चरणकरणयोर्मोक्षोपायतयाऽस्याङ्गस्य मोक्षकारणावबोधकतयैतद्बोधितार्थावस्थितस्येतराङ्गाध्ययनयोग्यतालाभाच्च प्राधान्यात् ।

किञ्च–एतत्सूत्राध्ययनेन क्षान्त्यादिश्चरणकरणरूपो वा श्रमणानां धर्मः सुविदितो भवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणामाचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।

आचारशब्देन चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिर्गृह्यते । तत्प्रतिपादकमङ्गमाचाराङ्गम् , अस्येदमादिसूत्रम्–

'सुयं मे' इत्यादि ।

बारह अंगों में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्यों कि चरण और करण मोक्ष के उपाय हैं, अतः यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित अर्थका अनुष्ठान करने वाला दूसरे अङ्गोंके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रधान है ।

दूसरी बात यह है कि–इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा आदि, अथवा चरण–करणरूप श्रमणधर्मका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है । आचार्य आदि पदों की प्राप्ति के कारणभूत स्वसमय का परिज्ञान आदि समस्त धर्मों में आचारधारित्व (संयम पालन) ही प्रधान है, अत एव आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है ।

यहाँ **'आचार'** शब्द से ज्ञानचार आदि पांच प्रकार का आचार समझना चाहिए । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग **'आचाराङ्ग'** कहलाता है । इस **आचाराङ्ग** सूत्र का पहला सूत्र यह है–

'सुयं मे' इत्यादि ।

બાર અંગોમાં આચારાંગ પહેલું અંગ છે, કેમકે ચરણ અને કરણ મોક્ષનો ઉપાય છે, તેથી આ અંગ પણ મોક્ષનું કારણ છે.

આચારાંગ સૂત્રમાં નિરૂપિત અર્થનું અનુષ્ઠાન કરનારા બીજા અંગોનાં અધ્યયનની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરે છે, તે કારણથી આ અંગ પ્રધાન છે.

બીજી વાત એ છે કેઃ-આ અંગના અધ્યયનથી ક્ષમા આદિ, અથવા ચરણ-કરણરૂપ શ્રમણ-ધર્મનું સમ્યક્ પ્રકારે જ્ઞાન થાય છે. આચાર્ય આદિ પદોની પ્રાપ્તિના કારણભૂત સ્વસમયનું પરિજ્ઞાન આદિ સમસ્ત ધર્મોમાં આચારધારિત્વ (સંયમપાલન)જ પ્રધાન છે. એ માટે આચારનું પ્રતિપાદન કરનાર આગમજ પહેલું અંગ હોવું જોઇએ, એ સિદ્ધ છે.

અહિં 'आचार' શબ્દથી જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારનો આચાર સમજવો જોઈએ. તેનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું અંગ 'आचाराङ्ग' કહેવાય છે. આ 'आचाराङ्ग' સૂત્રનું પહેલું સૂત્ર આ છે—

'सुयं मे' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं, (सू. १)

(छाया)

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम् (सू. १)

टीका—

'सुयं मे' इत्यादि । आयुष्मन् ! हे चिरजीविन् ! जम्बूः ! 'आयुष्म'-न्निति पदं शिष्यस्य जम्बूस्वामिनः कोमलवचनामन्त्रणं विनीतताख्यापनार्थम् । किञ्च–तस्याशेषश्रुतज्ञानोपदेश–श्रवण–ग्रहण – धारण – रत्नत्रयाराधन – मोक्षसाधन-योग्यताप्राप्त्यर्थमेतद्वचनम् । विनाऽऽयुषा श्रुतश्रवणादिमोक्षपर्यन्तसिद्धिर्न कस्यचित्सं-भवतीति भावः । एतद्वचनप्रभावादेव जम्बूस्वामी मोक्षपदं तस्मिन्नेव जन्मनि प्राप ।

मूलार्थ–**'सुयं मे'** इत्यादि, हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है। उन भगवान्ने ऐसा कहा है (सू० १)

टीकार्थ–हे आयुष्मन् ! अर्थात् हे चिरंजीवी जम्बू !, 'आयुष्मन्' पद अपने शिष्य जम्बू स्वामीका कोमल वचनरूप सम्बोधन है, और विनीतता प्रकट करने के लिए है। अथवा–उनके समस्त श्रतज्ञान, उपदेश का श्रवण, ग्रहण धारण, रत्नत्रयका आराधन, तथा मोक्षसाधन की योग्यता की प्राप्ति के लिए इस पद का प्रयोग किया गया है। आयुके अभाव में श्रुतश्रवण से लेकर मोक्ष तक किसीकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। इसी वचन के प्रभाव से जम्बू स्वामीने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया था।

'सुयं मे' ईत्याहि .

મૂલાર્થ—હે આયુષ્મન્! મેં સાંભળ્યું છે,–તે ભગવાને આવું કહ્યું છે (સૂ–૧)

ટીકાર્થ—હે આયુષ્મન્ અર્થાત્ હે ચિરંજીવી જમ્બૂ!, 'આયુષ્મન્' પદ પોતાના શિષ્ય જમ્બૂ સ્વામીનું કોમલ–વચનરૂપ સંબોધન છે, અને વિનીતપણું પ્રગટ કરવા માટે છે. અથવા તેમના સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાન, ઉપદેશનું શ્રવણ, ગ્રહણ, ધારણ, રત્નત્રયનું આરાધન તથા મોક્ષસાધનની યોગ્યતાની પ્રાપ્તિ માટે આ પદનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે, આયુના અભાવમાં શ્રુતના શ્રવણથી લઇને મોક્ષ સુધી કોઈ પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી. આ વચનના પ્રભાવથી જમ્બૂ સ્વામીએ એ ભવમાં મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો હતો.

श्रुतं=श्रवणविषयीकृतं, मया=साक्षाद् भगवन्मुखात्, न तु परम्परया, यतो गणधराणामनन्तरागमो भवति। 'मया श्रुत'-मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः सुतरां लभ्यते। गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुचरणसरोजस्पर्शपूर्वकाभिवादनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतवचनश्रवणं च नोपपद्यते।

भगवया -भगः=(१) - ज्ञानं=सर्वार्थविषयकम्, (२) - माहात्म्यम्=अनुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनसमुद्भूता कीर्तिः, यद्वा-जगद्रक्षणप्रज्ञासमुत्था कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वथा काम-

---

मैंने भगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं, क्यों कि गणधरों का आगम अनन्तरागम होता है। 'मैंने सुना' इस वाक्य का 'मैंने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना' यह अर्थ स्वतः सिद्ध है। गुरुकुल में निवास किये विना गुरु के चरण-कमलोंका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाले वचनों का श्रवण नहीं हो सकता।

'**भगवान्**' शब्द में जो '**भग**' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं। वे इस प्रकार है—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला **ज्ञान** (२) **महात्म्य** अर्थात् अनुपम और महान् महिमा, (३) **यश** अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों और उपसर्गों को सहन करने से फैली हुई कीर्ति, अथवा जगत् की रक्षा (उद्धार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति, (४) **वैराग्य** अर्थात् कामभोग की

में भगवानना मुखथी साक्षात् सांभळ्युं छे—परम्पराथी नहि, केमके गणधरोनां आगम अनन्तरागम-होय छे. 'में सांभळ्युं' में गुरुकुलमां निवास करता थका सांभळ्युं' आ अर्थ स्वतः सिद्ध छे. गुरुकुलमां निवास कर्या विना गुरुना चरणकमलोनो स्पर्श करीने अभिवादन नमस्कार तथा तेना मुखारविंदथी निकलवावाळां वचनो श्रवण थई शकतां नथी.

'**भगवान**' शब्दमां जे '**भग**' शब्द छे, तेना अनेक अर्थ थाय छे ते आ प्रमाणे—

(१) सम्पूर्ण पदार्थोने जाणवावाळुं **ज्ञान**, (२) **माहात्म्य** अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाथी युक्त होवुं, (३) **यश**-अर्थात् नाना प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परीषहो अने उपसर्गोने सहन करवाथी फेलाती कीर्ति, अथवा जगतनी रक्षा (उद्धार) करवानी भावनाथी उत्पन्न थयेली कीर्ति, (४) **वैराग्य**-

भोगाभिलाषराहित्यम्, यद्वा-क्रोधादिकषायनिग्रहलक्षणम्, (५)-मुक्तिः=सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः, (६)-रूपम्=सकलहृदयहारिसौन्दर्यम्, (७)-वीर्यम्=अन्तरायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम्, (८)-श्रीः=घातिककर्मपटलविघटनजनितज्ञानदर्शन सुखवीर्यरूपानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः। (९)-धर्मः-अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधन-श्रुतचारित्रलक्षणः (१०)-ऐश्वर्यम्=लोकत्रयाधिपत्यम्, चास्यास्तीति भगवान्, तेन भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन तीर्थङ्करेण, वक्ष्यमाणार्थस्य तीर्थङ्करभाषितत्वात्त-च्छब्देनात्र तीर्थङ्करपरामर्शः। उक्तञ्च—

तनिक भी अभिलाषा न होना, अथवा क्रोध आदि कषायोंका निग्रह करना, (५) **मुक्ति** समस्त कर्मोंका क्षय रूप मोक्ष, (३) **रूप**—सब का हृदय हरलेनेवाला अनुपम सौन्दर्य (७) **वीर्य**—अन्तराय कर्मके क्षय से उत्पन्न अनन्तशक्ति, (८) **श्री**—घाति कर्मों के क्षय से उत्पन्न अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी (९) **धर्म**—मोक्षरूपी द्वार के किवाड उघाडने का साधन श्रुतचारित्ररूप धर्म, (१०) **ऐश्वर्य**—तीन लोक का आधिपत्य। ये दश गुण जिस में विद्यमान हों उसे **'भगवान्'** कहते हैं। ऐसे भगवान्ने कहा है। आगे कहा जाने वाला तत्त्व तीर्थंकरभाषित है, अत एव **'तत्'** शब्द से यहाँ भगवान् तीर्थंकर समझना चाहिए। कहाभी है—

અર્થાત્ કામભોગની જરા પણ અભિલાષા નથવી, અ થવી ક્રોધ કષાયોનો નિગ્રહ કરવો, (૫) **મુક્તિ**—સમસ્ત કર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ (૬) **રૂપ**—સર્વના હૃદયને હરી લેવાવાળું અનુપમ સૌન્દર્ય, (૭) **વીર્ય**—અન્તરાય કર્મના ક્ષયથી ઉત્પન્ન અનન્ત શક્તિ (૮) **શ્રી**—ઘાતિ કર્મોના ક્ષયથી ઉત્પન્ન અનંત જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્યરૂપ અનંતચતુષ્ટયલક્ષ્મી (૯) **ધર્મ**—મોક્ષરૂપી દ્વારનાં કમાડ ઉઘાડવાનું સાધન શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મ (૧૦) **ઐશ્વર્ય**—ત્રણ લોકનું અધિપતિપણું આ દસ ગુણ જેમાં હોય તેને ભગવાન કહે છે એવા ભગવાને કહ્યું છે.

આગળ કહેવાશે તે તત્ત્વ તીર્થંકરભાષિત છે, એટલા માટે 'तत्' શબ્દથી તીર્થંકર ભગવાનનો અર્થ અહિં સમજવો જોઇએ. કહ્યું પણ છે—

"अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणा" इत्यादि ।
अर्थं भाषतेऽर्हन् सूत्रं ग्रथ्नन्ति गणधरा निपुणाः, इति च्छाया ।

भगवत्तीर्थङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय मेधाविनो गणधरा मूलरूपमागमं निबध्नन्तीत्यर्थः ।

एवं=वक्ष्यमाणरीत्या आख्यातं=कथितं द्वादशविधपरिषत्सु ।

भगवत्तीर्थङ्करकथितार्थजातमेव चानुसृत्य वक्ष्यमाणं वाक्यमनुवदिष्यामीति वाक्यार्थः । आगमोक्तार्थस्य काल्पनिकत्वाभावाद् द्रव्यार्थिकनयेनार्थरूपोऽयमागमोऽनादिरिति भावः ।

एषा परंपरा=परिपाटी वरीवर्ति सर्वेषां गणधराणां, यद् विनीतैः स्वस्वान्तेवासिभिर्मोक्षमार्गं सविनयं पृष्टा गणधराः "सुयं मे" इतिवाक्यं प्रथमं वदन्ति । उक्तञ्च—

"अर्हन्त भगवन्त अर्थका निरूपण करते हैं। और गणधर उसे भली-भाँति सूत्र रूप में गूंथते हैं। अर्थात् भगवान् तीर्थंकर के द्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगम के आधार पर कुशल गणधर मूलरूप आगमकी रचना करते हैं।"

उन भगवानने बारह प्रकारकी परिषद् में इस प्रकार कहा है जो आगे इस सूत्र में निरूपण किया जायगा। आगमोक्त अर्थ काल्पनिक नहीं होता, अतः द्रव्यार्थिकनय से अर्थरूप यह आगम अनादि है।

सभी गणधरों की यह परम्परा-परिपाटी है कि-अपने २ विनीत शिष्यों द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछे जाने पर गणधर महाराज पहले-पहल 'सुयं मे' यह वाक्य बोलते हैं। कहा भी है—

"અર્હન્ત ભગવંત અર્થનું નિરૂપણ કરે છે, અને ગણધર તેને રુડી રીતે સૂત્ર રૂપમાં ગુંથે છે, અર્થાત્ ભગવાન તીર્થંકર દ્વારા ઉપદિષ્ટ-ઉપદેશેલાં અર્થરૂપ આગમના આધાર પર કુશળ ગણધર મૂલરૂપ આગમની રચના કરે છે."

તે ભગવાને બાર પ્રકારની પરિષદ્-સભામાં આ પ્રમાણે કહ્યું છે જે, આગળ આ સૂત્રમાં નિરૂપણ કરવામાં આવશે. આગમોકત-આગમમાં કહેલો અર્થ કાલ્પનિક નથી, તેથી દ્રવ્યાર્થિક નયથી અર્થરૂપ આ આગમ અનાદિ છે.

સર્વ ગણધરોની એ પરંપરા-પરિપાટી છે કેઃ-પોત-પોતાના વિનીત શિષ્યો દ્વારા વિનયપૂર્વક મોક્ષમાર્ગ પૂછવાથી ગણધર મહારાજ પ્રથમ 'सुयं मे' આ વાક્ય બોલે છે. કહ્યું પણ છેઃ—

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

" निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितै,–
विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।
गणधररखिलैः प्रथमं वचः,
खलु 'सुयं म' इति प्रतिभाषितम् " ॥१॥ इति ।
भगवता यदाख्यातं तदाह—'इहमेगेसिं' इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ सू. २ ॥

"विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने२ शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम **सुयं मे'** यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्‌ने जो कहा वह कहते हैं—**'इहमेगेसिं'** इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को संज्ञा नहीं होती कि–मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हू, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अघोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

" વિનયથી યુક્ત નિપુણ શિષ્યોએ સેવિત તથા નિર્મલ ભાવોવાળા સર્વ ગણધરો દ્વારા પોતપોતાના શિષ્યો પ્રતિ સર્વ પ્રથમ 'सुयं मे' એ વાક્ય કહેવામાં આવ્યું છે " ॥ ૧ ॥

મૂલાર્થ–'इहमेगेसिं' ઈત્યાદિ. કોઈ–કોઇ (જીવો)ને સંજ્ઞા નથી હોતી કે હું પૂર્વ દિશામાંથી આવ્યો છું, અથવા હું દક્ષિણ દિશામાંથી આવ્યો છું, અથવા હું પશ્ચિમ દિશામાંથી આવ્યો છું, અથવા હું ઉત્તર દિશામાંથી આવ્યો છું, અથવા હું ઉર્ધ્વ દિશામાથી આવ્યો છું, અથવા હું અધો દિશામાંથી આવ્યો છું, અથવા હું અન્ય–બીજી કોઈ દિશામાંથી અથવા અનુદશા (વિદિશા)માંથી આવ્યો છું. ॥૨॥

छाया—

इह एकेषां नो संज्ञा भवति, तद्यथा—पूर्वस्या वा दिशाया आगतो-ऽहमस्मि, दक्षिणस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, पश्चिमाया वा दिशाया आगतोऽहमस्मि। उत्तरस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि। ऊर्ध्वाया वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, अधोदिशाया वा आगतोऽहमस्मि, अन्यतरस्या वा दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि।

'इहमेगेसिं' इति इह—चतुर्गतिसंसरणरूपे संसारे एकेषां ज्ञानावरणीयकर्मो-दयवतां संज्ञिनां जीवानां संज्ञा—स्मृतिरूपो मतिविशेषः नो भवति—न जायते।

अन्यं प्रतिषेधवाचकं शब्दं विहाय 'नो' शब्दोपादानं विशिष्टसंज्ञा-प्रतिषेधबोधनार्थम्। 'नो' शब्दः सर्वनिषेधवाची, देशनिषेधवाची च। उक्तञ्च—

"प्रतिषेधयति समस्तं, प्रसक्तमर्थं जगति नो-शब्दः।
स पुनस्तदवयवो वा, तस्मादर्थान्तरं वा स्यात्॥ १॥"

'नो' शब्दः—प्रसंगादागतमर्थं संपूर्णं प्रतिषेधयति, स चार्थः प्रसक्तावयवो वा स्यात् तस्मादन्यो वाऽर्थः स्यात् तमपि प्रतिषेधयतीत्यर्थः।

टीकार्थ—चार गति में भ्रमण करनेरूप संसार में ज्ञानावरण कर्म के उदय वाले कितनेक संज्ञी जीवों को संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं होती।

निषेधवाचक दूसरे शब्द को छोड कर यहाँ 'नो' शब्द का प्रयोग किया गया है सो विशिष्ट संज्ञा का अभाव सूचित करने के लिए समझना चाहिए। 'नो' शब्द सर्वनिषेधवाचक भी है और देशनिषेधवाचक भी है। कहा भी है—

"नो' शब्द प्रसङ्ग में आये हुए सम्पूर्ण अर्थ का निषेध करता है। यह अर्थ चाहे उन का एक अवयव हो या उस से भिन्न अर्थान्तर हो—उस का भी निषेध करता है" ॥१॥

ટીકાર્થ—ચાર ગતિમાં ભ્રમણ કરવા રૂપ સંસારમાં જ્ઞાનાવરણ કર્મના ઉદય-વાળા કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને સંજ્ઞા અર્થાત્ સ્મૃતિ નથી રહેતી. નિષેધક-વાચક અન્ય શબ્દો ત્યજીને અહિં 'નો' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે, તે વિશિષ્ટ સંજ્ઞાનો અભાવ સૂચવવા માટે સમજવો જોઈએ 'નો' શબ્દ સર્વનિષેધવાચક પણ છે અને દેશનિષેધવાચક પણ છે. કહ્યું પણ છે—

"'નો' શબ્દ પ્રસંગમાં આવેલા સંપૂર્ણ અર્થનો નિષેધ કરે છે, તે અર્થ ગમે તે તેનું એક અવયવ હોય અથવા તેનાથી ભિન્ન અર્થાન્તર હોય તેનો પણ નિષેધ કરી દે છે" ॥ ૧ ॥

यया संज्ञयाऽऽत्मनो गत्यागत्यादिकं जीवो जानाति तस्या एव प्रतिषेधो विवक्षितः ।

अथ संज्ञाभेदाः—

संज्ञा च जीवानां बहुविधा । तत्र-दशविधा भगवतीसूत्रे (शतक-७, उद्देश ८) प्रोक्ता—

" कइ णं भंते ! सन्नाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! दस सन्नाओ पन्नत्ताओ, तंजहा-(१) आहारसन्ना, (२) भयसन्ना, (३) मेहुणसन्ना, (४) परिग्गहसन्ना, (५) कोहसन्ना, (६) माणसन्ना, (७) मायासन्ना, (८) लोभसन्ना, (९) लोगसन्ना, (१०) ओहसन्ना " इति ।

जिस संज्ञा के द्वारा आत्मा की गति और आगति जीव जानता है, यहाँ उसीका निषेध समझना चाहिए ।

संज्ञा के भेद—

जीवों की संज्ञा अनेक प्रकार की होती है । भगवतीसूत्र (श० ६, उ० ८, में दश प्रकार की संज्ञा कही गई है, वह इस प्रकार है;—

प्रश्न—भगवान् ! संज्ञाएँ कितनी कही गई हैं ।

उत्तर—गौतम ! दश संज्ञाएँ कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) आहार-संज्ञा, (२) भय-संज्ञा, (३) मैथुन-संज्ञा, (४) परिग्रह-संज्ञा, (५) क्रोध-संज्ञा (६) मान-संज्ञा, (७) माया-संज्ञा, (८) लोभ-संज्ञा, (९) लोक-संज्ञा और (१०) ओघ-संज्ञा ।

જે સંજ્ઞા દ્વારા આત્માની ગતિ અને આગતિ જીવ જાણે છે. અહિં એનો નિષેધ સમજવો જોઈએ.

સંજ્ઞાના ભેદ—

જીવોની સંજ્ઞા અનેક પ્રકારની હોય છે. ભગવતી સૂત્ર (શ. ૬. ઉ. ૮)માં દસ પ્રકારની સંજ્ઞાઓ કહેવામાં આવી છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ—

પ્રશ્ન—ભગવાન ! સંજ્ઞાઓ કેટલી કહી છે ?

ઉત્તર-ગૌતમ ! દસ સંજ્ઞાઓ કહી છે તે આ પ્રમાણે છેઃ—

(૧) આહાર-સંજ્ઞા (૨) ભય-સંજ્ઞા (૩) મૈથુન-સંજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સંજ્ઞા. (૫) ક્રોધ-સંજ્ઞા (૬) માન-સંજ્ઞા (૭) માયા-સંજ્ઞા (૮) લોભ-સંજ્ઞા (૯) લોક-સંજ્ઞા અને (૧૦) ઓઘ-સંજ્ઞા.

अथवा—संज्ञानं संज्ञा-चेतना, सा चाशातवेदनीयमोहनीयकर्मोदयजन्य-विकारयुक्ता आहारादिसंज्ञादित्वेन व्यपदिश्यते। सा द्विधा-अनुभवनसंज्ञा, ज्ञानसंज्ञा च। तत्रानुभवनसंज्ञा षोडशविधा। तत्र भगवतीसूत्रोक्तदशविधसंज्ञा उपादायाधिकाः षट् संज्ञाः समिलिताः षोडश भवन्ति। तत्र (१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, (६) धर्मसंज्ञा चेति षड् अधिका विज्ञेयाः।

(१) आहारसंज्ञा—

(१) क्षुद्वेदनीयोदयात् कवलाद्याहारार्थं तथाविधपुद्गलोपादानक्रिया सम्यग् ज्ञायतेऽनयेत्याहारसंज्ञा। यद्वा—क्षुद्वेदनीयोदयसमुद्भवः आहाराभि-

---

अथवा—संज्ञानं—संज्ञा—चेतना, अर्थात् संज्ञा चेतना को कहते हैं। यह जब अशातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से जनित विकारों से युक्त होती है तब वह आहार आदि संज्ञा कहलाने लगती है। वह दो प्रकार की है-(१) अनुभवनसंज्ञा और (२) ज्ञानसंज्ञा। इन में से अनुभवनसंज्ञा सोलह प्रकार की है। भगवतीसूत्रोक्त दश संज्ञाओ में छह संज्ञाएँ मिला देने से सोलह हो जाती हैं। छह संज्ञाएँ ये हैं—(१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, और (६) धर्मसंज्ञा।

(१) आहारसंज्ञा

क्षुधावेदनीय के उदय से कवलाहार आदि के लिए योग्य पुद्गलों को ग्रहण करने की क्रिया जिस द्वारा सम्यक् प्रकार से जानी जाय वह आहारसंज्ञा कहलाती है।

અથવા-સંજ્ઞાન એટલે સંજ્ઞા, તે ચેતના, અર્થાત્ ચેતનાને સંજ્ઞા કહે છે તે જ્યારે અસાતાવેદનીય અને મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન વિકારો યુક્ત હોય છે, ત્યારે તે આહાર આદિ સંજ્ઞા કહેવાય છે. તે બે પ્રકારની છે-(૧) અનુભવનસંજ્ઞા અને (૨) જ્ઞાનસંજ્ઞા. તેમાં અનુભવનસંજ્ઞા સોળ પ્રકારની છે, ભગવતીસૂત્રોક્ત દસ સંજ્ઞાઓમાં છ મેળવી દેવાથી સોળ થાય છે, છ સંજ્ઞાઓ આ છે:-(૧) સુખસંજ્ઞા, (૨) દુઃખસંજ્ઞા, (૩) મોહસંજ્ઞા, (૪) વિચિકિત્સાસંજ્ઞા, (૫) શોકસંજ્ઞા અને (૬) ધર્મસંજ્ઞા.

(૧) આહારસંજ્ઞા—

ક્ષુધા (ભૂખ) વેદનીયના ઉદયથી કવલાહાર આદિ માટે યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરવાની ક્રિયા જેના વડે સમ્યક્ પ્રકારથી જાણી શકાય, તે આહારસંજ્ઞા કહેવાય છે.

लाषरूप आत्मनः परिणामविशेषः। अभिलाषश्चात्र-'मदर्थमीदृशं वस्तु पुष्टिकरं, यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती'-त्येवं विचारानुबद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणीभूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः। रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तुश्रवण-दर्शन-संचिन्तनैश्चाहारसंज्ञा जायते। आहारादयः संज्ञाः एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति। जलाद्याहारोपजीवनाद् वनस्पत्यादीनामाहारसंज्ञा विज्ञायते।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप आत्मा की परिणति आहारसंज्ञा कहलाती है। यहां अभिलाषा शब्द से 'इस प्रकार की वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा' ऐसे विचार से युक्त अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाला आत्मा का परिणाम ग्रहण करना चाहिए। खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण दर्शन और चिन्तन से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है। आहार आदि संज्ञाएं एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों को होती हैं, जब तक संसार का अन्त नहीं होता तब तक बनी रहती हैं। जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण बनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसंज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है।

અથવા ક્ષુધાવેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થવા વાળી આહારની અભિલાષા-રૂચિ-ઈચ્છા રૂપ આત્માની પરિણતિ તે આહારસંજ્ઞા કહેવાય છે, અહિં અભિલાષા શબ્દથી 'આ પ્રકારની વસ્તુ મારા માટે પુષ્ટિ કરનારી છે, આ વસ્તુ મળે તો મારૂં હિત થશે' એવા વિચારથી યુક્ત પોતાની પુષ્ટિ અને સંતોષના કારણભૂત પદાર્થની પ્રાપ્તિ માટે વિચાર કરનાર આત્માનું પરિણામ, ગ્રહણ કરવું જોઈએ, ખાલી પેટ હોવાના કારણે ભોજ્ય (ભોજન કરવા યોગ્ય) વસ્તુના શ્રવણ, દર્શન અને ચિન્તનથી આહારસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ એકેન્દ્રિયથી આરંભીને પંચેન્દ્રિય સુધીના સર્વ જીવોને હોય છે; અને જ્યાં સુધી સંસારનો અંત થતો નથી ત્યાં સુધી તે સંજ્ઞાઓ રહે છે. જલ વગેરેના આહાર પર જીવિત રહેવાના કારણે વનસ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં પણ આહારસંજ્ઞાનું અસ્તિત્વ દેખાય છે.

(२) भयसंज्ञा-

(२) सनिमित्तमनिमित्तं वा भयमोहनीयोदयाद् भयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोकषायरूपा नयनवदनविकृतरोमाञ्चाविर्भावादिक्रियालक्षणा स्वात्मनः परिणतिर्भयसंज्ञा। हीनबलत्वेन, भयवार्ताश्रवणभीषणदर्शनादिजनितबुद्ध्या, इहलोकादिभयजनकार्थपर्यालोचनेन वा भयसंज्ञा जायते। हस्तस्पर्शादिभीत्या स्वावयवसंकोचनादिना लज्जालुवल्ल्यादीनां भयसंज्ञा विज्ञायते।

(३) मैथुनसंज्ञा-

(३) पुरुषवेदोदयान्मैथुनार्थं वनितालोकनप्रसन्नवदनसंस्तम्भितगात्र-

---

(२) भयसंज्ञा—

किसी कारण से या विना ही कारण भयमोहनीय कर्म के उदय से भयभीत पुरुषकी मोहके अन्तर्गत नोकषायरूप, नेत्रों में और मुख में विकार होना, रोमाञ्च होना आदि क्रियाए जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मा की परिणति भयसंज्ञा कहलाती है, दुर्बलता से, भय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, भयङ्कर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक आदि में भयजनक वस्तुका विचार करने से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है। लजवन्ती आदि वनस्पतियाँ हाथ के स्पर्श के भय से अपने अवयवों को सिकोड़ लेती हैं, अतः उन में भयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है।

(३) मैथुनसंज्ञा-

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के लिए स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

---

(२) ભય સંજ્ઞા—

કોઈ કારણથી અથવા વિના કારણે ભય થવો, મોહનીય કર્મના ઉદયથી ભયભીત પુરુષની મોહને અંતર્ગત નોકષાયરૂપ, નેત્રોમાં અને ચહેરામાં વિકાર થવો, રોમાંચ થવું (રૂંવાડાં ઉભાં થવાં) વગેરે ક્રિયાઓ જેનું લક્ષણ છે, એવી આત્માની પરિણતિ તે ભયસંજ્ઞા કહેવાય છે. દુર્બલતાથી, ભય ઉત્પન્ન કરાવનારી વાત સાંભળવાથી, ભયંકર વસ્તુ દેખવાથી, તથા આ લોક વગેરેમાં ભયજનક વસ્તુનો વિચાર કરવાથી ભયસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. લજ્જાવંતી (લજામણી) આદિ વનસ્પતિઓ હાથનો સ્પર્શ થવાથી ભય લાગ્યો હોય તેમ પોતાના અવયવોને સંકોચે છે તેથી તેમાં ભયસંજ્ઞાની વિદ્યમાનતા દેખાય છે.

(૩) મૈથુન સંજ્ઞા—

પુરુષવેદ—મોહનીકર્મના ઉદયથી મૈથુન માટે સ્ત્રી તરફ જોવું. હસતું મુખ

शैथिल्योरुकम्पनादिक्रियारूपा आत्मनः परिणतिर्मैथुनसंज्ञा। रुधिरमांसोपचयेन, स्त्रीकथाश्रवणादिजनितमत्या, मैथुनचिन्तनेन च मैथुनसंज्ञा जायते। कुरुबकादिवनस्पतीनां कमनीयकामिनीभुजलतावगूहन-चरणाघात-कटाक्षविक्षेपादिभ्यः प्रसूनपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसंज्ञा विज्ञायते।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

(४) लोभमोहनीयोदयाद् धर्मसाधनव्यतिरिक्त-सचित्ताऽचित्तमिश्र-वस्तूपादानादिमूर्छारूपा आत्मनः परिणतिः परिग्रहसंज्ञा। सचित्तादिवस्तु-

---

होना, शरीर का स्तम्भित हो जाना, तथा उस में शिथिलता पैदा होना उरु (घुटनोंके नीचेका भाग) आदि का कांपना आदि क्रियारूप आत्मा की परिणति को मैथुनसंज्ञा कहते हैं। रक्त और मांस की अधिकता से, स्त्रीकथा आदि के श्रवण से उत्पन्न हुई बुद्धि से, और मथुैन का विचार करने से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है। कुरुबक आदि वनस्पतियों में सुन्दरी कामिनी की भुजाओं के आलिङ्गन से, चरणाघात से, तथा कटाक्षपात आदि से फूल, पत्ता आदि उत्पन्न होते हैं, अतः वनस्पति में मैथुनसंज्ञा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से धर्म के उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे सचित्त अचित्त और मिश्र पदार्थों के ग्रहण आदि मूर्च्छारूप आत्मा की परिणति परिग्रहसंज्ञा कहलाती है।

થવું, શરીરનું સ્તંભિત થઈ જવું, તથા તેમાં શિથિલતા ઉત્પન્ન થવી, જાંગ વગેરેનું કંપવું આદિ ક્રિયારૂપ આત્માની પરિણતિને મૈથુનસંજ્ઞા કહે છે. રક્ત (લોહી) અને માંસની અધિકતાથી, સ્ત્રીકથા વગેરે સાંભળવાથી ઉત્પન્ન થયેલી બુદ્ધિથી, અને મૈથુનનો વિચાર કરવાથી મૈથુનસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. કુરબક (એક જાતનું વૃક્ષ) આદિ વનસ્પતિમાં સુંદરી કામિનીના હાથના આલિંગન થતાં, ચરણાઘાતથી તથા કટાક્ષપાત આદિથી ફુલ, પત્તાં આદિ ઉત્પન્ન થાય છે, આ કારણથી વનસ્પતિમાં મૈથુનસંજ્ઞાનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે.

(૪) પરિગ્રહ સંજ્ઞા—

લોભમોહનીયના ઉદયથી ધર્મના ઉપકરણો સિવાય બીજા સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર પદાર્થોનું ગ્રહણ કરવું વગેરે મૂર્છારૂપ આત્માની પરિણતિ તે પરિગ્રહસંજ્ઞા

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते। बिल्वादिवनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते।

(५) क्रोधसंज्ञा–

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् जीवस्य जात्यादिमदजनिता कर्तव्याकर्तव्य-विवेकापहारिका स्वपराप्रीतिरूपप्रज्वलनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा।

(६) मानसंज्ञा–

(६) मानमोहनीयोदयाद् अंहकाररूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा। देवगुरुधर्मादीनां महतामनादरणादिना मानसंज्ञा विज्ञायते।

सचित्त आदि वस्तुओं का परिग्रह देखने से, परिग्रह का विचार करने से, और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है। बिल्व (बेल) आदि वनस्पतियाँ अपने पत्तों से फूल फल वगेरह को ढँक लेती हैं, इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है।

(५) क्रोधसंज्ञा–

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में जातिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपर की अप्रीतिरूप, तथा जलनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है।

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय के उदय से अहङ्काररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है। देव गुरु धर्म आदि बडोंका अनादर आदि करने से मानसंज्ञा मालूम होती है।

કહેવાય છે. સચિત્ત આદિ વસ્તુઓનો પરિગ્રહ દેખાવાથી, પરિગ્રહનો વિચાર કરવાથી અને પરિગ્રહનો સંગ્રહ કરવાથી પરિગ્રહસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. બિલ્વ (બીલી) આદિ વનસ્પતિઓ પોતાનાં પાંદડાથી ફુલ-ફલ વગેરેને ઢાંકી દે છે, તેથી વનસ્પતિમાં પરિગ્રહસંજ્ઞા દેખાય છે.

(૫) ક્રોધસંજ્ઞા—

ક્રોધમોહનીય કર્મના ઉદયથી, જીવને જાતિમદ વગેરેથી ઉત્પન્ન, તથા કર્તવ્ય અકર્તવ્યનો વિવેક નાશ કરવાવાળી સ્વ-પરની અપ્રીતિરૂપ તથા જ્વલનરૂપ આત્માની વિભાવપરિણુતિ તે ક્રોધસંજ્ઞા કહેવાય છે.

(૬) માનસંજ્ઞા—

માનમોહનીય કર્મના ઉદયથી અહંકારરૂપ આત્માની વિભાવપરિણુતિ માનસંજ્ઞા કહેવાય છે. દેવ, ગુરૂ, ધર્મ આદિ મોટાઓનો અનાદર વગેરે કરવાથી માનસંજ્ઞા માલુમ પડે છે.

(७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा। परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाक्कायव्यापारेण सा विज्ञायते।

(८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सचित्तादिवस्तुगृद्धिरूपा जीवस्य विभावपरिणतिर्लोभसंज्ञा। आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते।

(९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क-

---

(७) मायासंज्ञा—

मायामीहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासञ्ज्ञा कहलाती है। दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है।

(८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सचित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है। आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है।

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

---

(७) માયાસંજ્ઞા—

માયામોહનીય કર્મના ઉદયથી જીવની કપટરૂપ વિભાવપરિણુતિ માયા-સંજ્ઞા કહેવાય છે. બીજાને ઠગવાની ઇચ્છાથી, મોહજનક મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારથી તેની પ્રતીતિ થાય છે.

(૮) લોભસંજ્ઞા—

લોભમોહનીય કર્મના ઉદયથી સચિત્ત આદિ વસ્તુઓમાં આસક્તિરૂપ જીવની વિભાવપરિણુતિ તે લોભસંજ્ઞા કહેવાય છે. આરંભ-પરિગ્રહ આદિની પ્રવૃત્તિથી લોભ સંજ્ઞાનો પતો લાગે છે.

(૯) લોકસંજ્ઞા—

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી અને મોહનીયકર્મના ઉદયથી કુબુદ્ધિજનિત

रूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्लोकसंज्ञा। यथा-"अपुत्रस्य गतिर्नास्ती"-त्यादि।

(१०) ओघसंज्ञा-

(१०) ज्ञानावरणीयाल्पक्षयोपशमसमुद्भूता, अव्यक्तोपयोगरूपा जीवस्य परिणतिः ओघसंज्ञा। सा लतादीनां प्रतानारोहणादिना ज्ञायते।

(११) सुखसंज्ञा—

(११) संसारिणां सातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणामनुकूलतया ज्ञायमाना आत्मनः परिणतिः सुखसंज्ञा।

तर्करूप आत्मा की विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहलाती है; यथा-"निपूते को सद्गति नहीं मिलती" आदि।

(१०) ओघसंज्ञा-

ज्ञानावरणीय कर्म के अल्प क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली तथा अव्यक्त (अप्रकट) उपयोगरूप जीव का विभावपरिणमन ओघसंज्ञा कहलाती है। लता वगैरह का मंडप पर चढने आदि से उसका ज्ञान होता है

(११) सुखसंज्ञा-

संसारी जीवोंको सातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होने वाली आत्मा की एक विशिष्ट परिणतिको सुखसंज्ञा कहते हैं।

तर्करूप आत्मानी विभावपरिणुति लोकसंज्ञा कहेवाय छे. जेम-"अपुत्रियाने सद्गति मळती नथी."

(१०) ओघसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना अल्प क्षयोपशमथी उत्पन्न थनारी अने अप्रगट उपयोग रूप जीवनुं विभावपरिणुमन ते ओघसंज्ञा कहेवाय छे, वेला वगेरेनुं मंडप उपर चढवुं वगेरेथी तेनुं ज्ञान थाय छे.

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी जीवोने सातावेदनीयना उदयथी सर्व इन्द्रियोमां अनुकूलतानुं भान करावनारी आत्मानी एक विशिष्ट परिणुतिने सुखसंज्ञा कहे छे.

(१२) दुःखसंज्ञा—

(१२) संसारिणामसातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणां प्रतिकूलतया ज्ञायमाना विविधतापानुभवरूपा जीवस्य परिणतिर्दुःखसंज्ञा।

(१३) मोहसंज्ञा—

(१३) मोहनीयकर्मोदयाद् मिथ्यादर्शनरूपा ज्ञानादिगुणरोधकसकलपापस्थानहेतुरात्मनो विभावपरिणतिर्मोहसंज्ञा। कुदेवकुगुरुकुधर्मादौ प्रवृत्त्या मोहसंज्ञा विज्ञायते।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

(१४) मोहनीयोदयाद् ज्ञानावरणीयोदयाच्च संशयरूपा जीवस्य परिणति-

---

(१२) दुःखसंज्ञा—

संसारी जीवों को असातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रतीत होने वाली, विविध प्रकार के संतापों का अनुभवरूप जीव की परिणति दुःखसंज्ञा कहलाती है।

(१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणों का निषेध करने वाली, समस्त पापस्थानकों का कारणरूप आत्मा की विभावपरिणति मोहसंज्ञा है। कुदेव कुगुरु और कुधर्म आदि में प्रवृत्ति होने से मोहसंज्ञा का ज्ञान होता है।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से संशयरूप आत्मा का परिणमन विचिकित्सा-

---

(૧૨) દુઃખસંજ્ઞા—

સંસારી જીવોને અસાતાવેદનીયના ઉદયથી સર્વ ઇન્દ્રિયોમાં પ્રતિકૂળતાનું ભાન કરાવવા વાળી, વિવિધ પ્રકારના સંતાપોના અનુભવરૂપ જીવની પરિણતિ તે દુઃખસંજ્ઞા કહેવાય છે.

(૧૩) મોહસંજ્ઞા—

મોહનીય કર્મના ઉદયથી મિથ્યાદર્શનરૂપ, તથા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો નિરોધ કરવાવાળી, સમસ્ત પાપસ્થાનના કારણરૂપ આત્માની વિભાવપરિણતિ તે મોહસંજ્ઞા છે. કુદેવ, કુગુરુ અને કુધર્મ આદિમાં પ્રવૃત્તિ હોવાના કારણે મોહસંજ્ઞાનું જ્ઞાન થાય છે.

(૧૪) વિચિકિત્સાસંજ્ઞા—

મોહનીય અને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ઉદયથી સંશયરૂપ આત્માનું પરિણમન તે

विचिकित्सासंज्ञा। यथा दानादिधर्मस्य फलं प्रति संशयः। सा द्विधा-देशतः, सर्वतश्च। 'द्वाविंशतिपरिषहसहनब्रह्मचर्यकेशोल्लुञ्चनादिक्लेशसहनस्य फलं भविष्यति न वे'-तिरूपा देशतः। 'परलोकादि सत्यं न वे'-तिरूपा, सर्वज्ञप्ररूपितजीवादितत्त्वं यथार्थं न वे'-त्यादिरूपा वा सर्वतः।

(१५) शोकसंज्ञा—

(१५) मोहनीयकर्मोदयादिष्टवियोगजनिता विप्रलाप-वैमनस्यरूपा आत्मनः परिणतिः शोकसंज्ञा। सा चाक्रन्दनादिना ज्ञायते।

(१६) धर्मसंज्ञा—

(१६) मोहनीयक्षयोपशमेन सर्वविरति-देशविरतिलक्षणा कर्मक्षयजनक-

संज्ञा कहलाती है। जैसे—दान धर्म आदि के फल में संदेह होना। यह संज्ञा दो प्रकार की है—देश से और सर्व से। 'बाईस परीषहों के सहने का, ब्रह्मचर्य पालने का, केशलोच आदि क्लेश सहने का फल मिलेगा या नहीं?' इस प्रकार का संशय होना देशतः विचिकित्सासंज्ञा है। 'वास्तव में परलोक है या नहीं, सर्वज्ञ के द्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्व यथार्थ हैं या नहीं?' इस प्रकार का संशय सर्वतः विचिकित्सासंज्ञा है।

(१५) शोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से इष्टवियोग से उत्पन्न होनेवाली विलाप और विमनस्कतारूप आत्मा की परिणति शोकसंज्ञा कहलाती है।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से कर्मक्षयजनक सर्वविरति, तथा देशविरति

વિચિકિત્સા સંજ્ઞા કહેવાય છે. જેમકેઃ-દાન ધર્મ આદિના ફલમાં સંદેહ થવો. આ સંજ્ઞા બે પ્રકારની હોય છે-(૧) દેશથી, (૨) સર્વથી, 'બાવીશ પરિષહોનું સહન કરવું તે, બ્રહ્મચર્ય પાલન કરવું તે, કેશનું લોચન કરવું વગેરે કલેશ સહન કરવાનું ફલ મળશે કે નહિ?' આ પ્રકારનો સંશય તે દેશથકી વિચિકિત્સાસંજ્ઞા છે. 'વાસ્તવમાં પરલોક છે કે નહિ, સર્વજ્ઞદ્વારા પ્રરૂપિત જીવ આદિ તત્વો યથાર્થ છે કે નહિ' આ પ્રકારનો સંશય તે સર્વથકી વિચિકિત્સાસંજ્ઞા છે.

(૧૫) શોકસંજ્ઞા—

મોહનીય કર્મના ઉદયને લીધે, ઈષ્ટવિયોગથી ઉત્પન્ન થવા વાલી, વિલાપ અને વિમનસ્કતા (વ્યાકુલ ચિત્ત) રૂપ આત્માની પરિણુતિ શોકસંજ્ઞા કહેવાય છે.

(૧૬) ધર્મસંજ્ઞા—

મોહનીયકર્મના ક્ષયોપશમથી કર્મક્ષયજનક સર્વવિરતિ તથા દેશવિરતિરૂપ

सर्वविरतिदेशविरतिरूपाऽऽत्मनः स्वभावपरिणतिः धर्मसंज्ञा। सा जीवरक्षणादि-व्यापारेण ज्ञायते।

ज्ञानसंज्ञाभेदाः—

ज्ञानसंज्ञा तु मतिश्रुतादिभेदात् पञ्चधा—(१) मतिज्ञानं, (२) श्रुतज्ञानं, (३) अवधिज्ञानं, (४) मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, चेति।

(१) मतिज्ञानम्—

मननं मतिरवबोधः। मतिश्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम्। अत्र ज्ञानशब्दः सामान्यज्ञानवाचकः। इन्द्रिय–नोइन्द्रिजयन्यं ज्ञानं मतिर्ज्ञानविशेषः, अतः सामान्य-विशेषयोर्ज्ञानयोः सामानाधिकरण्यम्।

रूप आत्मा की स्वभावपरिणति को धर्मसंज्ञा कहते हैं। जीवरक्षा आदि व्यापारों से उसका ज्ञान होता है।

ज्ञानसंज्ञा के भेद

मति, श्रुत आदिके भेद से ज्ञानसंज्ञा पांच प्रकार की है। वह इस प्रकार—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, और (५) केवलज्ञान।

(१) मतिज्ञान

मनन करना मति है, अर्थात् बोध। मतिरूप ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है। यहाँ ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञान का वाचक है। 'इन्द्रिय और मनसे होनेवाला ज्ञान मति है'। ऐसा अर्थ करने से सामान्य और विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हो जाती है।

આત્માની સ્વભાવપરિણુતિને ધર્મસંજ્ઞા કહે છે. જીવરક્ષા આદિ વ્યાપારોથી તેનું જ્ઞાન થાય છે.

જ્ઞાનસંજ્ઞાના ભેદ—

મતિ, શ્રુત આદિ ભેદ વડે–કરી જ્ઞાનસંજ્ઞા પાંચ પ્રકારની કહી છે તે આ પ્રમાણે છે–(૧) મતિજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન, અને (૫) કેવલજ્ઞાન.

(૧) મતિજ્ઞાન—

મનન કરવું તે મતિ છે. અર્થાત્ બોધ છે, મતિરૂપ જ્ઞાન તે મતિજ્ઞાન કહેવાય છે. અહિં જ્ઞાન શબ્દ સામાન્ય જ્ઞાનનો વાચક છે. 'ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન જ્ઞાન તે મતિ છે' એવો અર્થ કરવાથી સામાન્ય અને વિશેષ જ્ઞાનોમાં સમાના-ધિકરણુતા (સમાનપણું) થઈ જાય છે.

(२) श्रुतज्ञानम्-

श्रुतं=श्रुतिः श्रवणं ज्ञानविशेषः। तच्च कीदृशम्? उच्यते-शब्दस्य श्रवणेन, भाषणादिना वा यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेव श्रुतम्।

अत्र श्रुतशब्देन ज्ञानं गृह्यते, ज्ञानप्रभेदप्रकरणान्तःपातित्वात्। न तु श्रूयते इति व्युत्पत्त्या शब्दार्थकः श्रुतशब्दः। लब्धिरूपे मतिज्ञाने सति पश्चात्-श्रुतज्ञान-मुत्पद्यते, न तु मतिज्ञानाभावे, अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य।

ननु मतिज्ञानमेव श्रुतज्ञानं संपद्यते, यथा-मृत्तिकैव घटः, तन्तुरेव पटः,

---

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति या श्रवण (सुनना), यह एक प्रकार का ज्ञान कहलाता है। शब्द के श्रवण से या भाषण आदि से वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध के अनुसार जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

यहाँ 'श्रुत' शब्द से ज्ञान का ग्रहण किया जाता है, क्यों कि वह ज्ञान के प्रभेदों के अन्तर्गत है, किन्तु 'श्रूयते' इस व्युत्पत्ति से शब्दार्थक श्रुत-शब्द नहीं है। लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर बादमें श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, मतिज्ञान के अभाव में नहीं होता, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है।

शङ्का—मतिज्ञान ही श्रुतज्ञानरूप में परिणत हो जाता है, जैसे मिट्टी घटरूप में पलट जाती है, और तन्तु पट (वस्त्र) रूप में बदल जाते हैं, ऐसी स्थिति में भगवान्ने श्रुतज्ञान का पृथक् ग्रहण किस प्रयोजन से किया है?

---

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति अथवा श्रवण-सांभळवारूप એક પ્રકારનું જ્ઞાન તે શ્રુત-જ્ઞાન કહેવાય છે. શ્રુત-જ્ઞાન કેવું હોય છે? શબ્દના સાંભળવાથી અથવા ભાષણ આદિથી, વાચ્ય-વાચક ભાવ સંબંધ પ્રમાણે જે પદાર્થનું જ્ઞાન થાય છે, તેને શ્રુતજ્ઞાન કહે છે.

અહિં શ્રુત-શબ્દથી જ્ઞાન ગ્રહણ કરી શકાય છે. કેમકે તે જ્ઞાનના પ્રભેદોની અંદર છે, પરંતુ 'શ્રૂયતે' આ વ્યુત્પત્તિથી શબ્દાર્થક શ્રુત-શબ્દ નથી. લબ્ધિરૂપ મતિજ્ઞાન થયા પછી શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, મતિજ્ઞાનના અભાવમાં થતું નથી તે કારણથી મતિજ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાનનું કારણ છે.

શંકા—મતિજ્ઞાન જ શ્રુતજ્ઞાનરૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે, જેમકે માટી ઘટ રૂપમાં ફરી જાય છે. અને તન્તુ વસ્ત્રરૂપમાં બદલાઇ જાય છે. એવી સ્થિતિમાં ભગવાને શ્રુતજ્ઞાનનું જુદુ ગ્રહણ શું પ્રયોજનથી કર્યું?

तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते—दृष्टान्तद्वयमिदं विषमम् , यथा घटप्रादुर्भावे पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोत्पत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च, तथा श्रुतज्ञाने समुपन्ने मतिज्ञानं न प्रणश्यति, उक्तश्च भगवता—

'जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुयं तत्थ मई' (नन्दी.)

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः ।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता, तस्मादपेक्षाकारणमेव मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम् , तथा च–मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्यमाप्त-वचनानुसारि ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति निष्कर्षः । इति ।

'श्रूयते यत् तच्छ्रुत'-मितिव्युत्पत्त्या श्रुतशब्देनाप्तवचनमपि गृह्यते

समाधान–ये दोनों दृष्टान्त विषम हैं, जैसे–घट प्रकट होने पर पिण्डाकार मिट्टी मिट जाती है; और जैसे पटकी उत्पत्ति होने पर तन्तुओं का पुञ्ज नष्ट हो जाता है, उस प्रकार श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर मतिज्ञान नष्ट नहीं होता। भगवानने कहा है—

"जहाँ मतिज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ मतिज्ञान है।" श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अस्तित्व भगवानने बतलाया है, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का अपेक्षाकारण ही है, ऐसा मानना चाहिए। तात्पर्य यह निकलता है कि–मतिज्ञानपूर्वक इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होने वाला, तथा आप्तवाक्यका अनुसरण करने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है।

'जो सुनाजाय वह श्रुत है' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'श्रुत' शब्द से आप्त

સમાધાન–એ બંને દૃષ્ટાંત વિષમ છે, જેમકે ઘટ પ્રગટ થતાં પિંડાકાર માટી મટી જાય છે, જેમ વસ્ત્રની ઉત્પત્તિ થતાં તંતુઓનો જથ્થો નાશ પામે છે, તે પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં મતિજ્ઞાન નાશ પામતું નથી. ભગવાને કહ્યું છે કેઃ—

"જ્યાં મતિજ્ઞાન છે ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે, જ્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે ત્યાં મતિજ્ઞાન છે" શ્રુતજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં મતિજ્ઞાનનું અસ્તિત્વ ભગવાને બતાવ્યું છે. એ કારણથી મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનનું અપેક્ષાકારણ જ છે. એમ માનવું જોઈએ, તો તાત્પર્ય એ નીકળ્યું કે મતિજ્ઞાનપૂર્વક, ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન થવાવાળું, તથા આપ્તવાક્યનું અનુસરણ કરવાવાળું જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન છે.

'જે સાંભળવામાં આવી શકે તે શ્રુત છે' આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે 'શ્રુત' શબ્દથી

तस्मिन् पक्षे-श्रुतस्यआप्तवचनस्य ज्ञानं, श्रुतज्ञानमिति षष्ठीतत्पुरुषः। आप्तो=रागादि-रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्-आप्तवचनम्। तदर्थाध्यवसायरूपं ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति। अध्यवसायो निर्णयः। श्रुतज्ञानं प्रति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि श्रुतव्यपदेशो भवति। ज्ञानभेदव्यवस्थायां तु श्रुतशब्दः श्रवणार्थवाचीत्यवधेयम्।

(३) अवधिज्ञानम्-

अवशब्दोऽधःशब्दार्थः, अव=अधः विस्तृतं वस्तु धीयते-ज्ञायतेऽने-नेत्यवधिः। अवधिश्चासौ तज्ज्ञानं चेति विग्रहः। विस्तृतविषयकं ज्ञानमवधि-

---

वचन का भी ग्रहण होता है। उस पक्ष में श्रुत का अर्थात् आप्तवचन का ज्ञान श्रुतज्ञान है, ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास होगा। आप्त अर्थात् रागादिसे रहित सर्वज्ञ, उनका वचन आप्तवचन कहलाता है। अध्यवसाय अर्थात् निश्चय। ऐसा अध्यवसायरूप अर्थात् पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान श्रुतज्ञान होता है। शब्द, श्रुतज्ञान में निमित्त कारण है, इस लिये शब्द भी त कहलाता है. किन्तु ज्ञान-भेदकी व्यवस्था में श्रुत-शब्द श्रवण अर्थ का वाचक है।

(३) अवधिज्ञान—

'अव का अर्थ है 'अधः' अर्थात् नीचे। तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान अधोदिशा की वस्तु को विस्तार से जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिरूप ज्ञान अवधिज्ञान है, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान। जैसे-अनुत्तरोपपातिक देव अवधिज्ञान

આપ્તવચનનું ગ્રહણ થઇ શકે છે. તે પક્ષમાં શ્રુતનું અર્થાત્ આપ્તવચનનું જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન છે. એ પ્રમાણે ષષ્ઠીતત્પુરૂષ સમાસ થશે. આપ્ત અર્થાત્ રાગાદિથી રહિત, સર્વજ્ઞ, તેનું વચન તે આપ્તવચન કહેવાય છે અધ્યવસાય અર્થાત્ નિશ્ચય, એવા અધ્યવસાયરૂપ અર્થાત્ પદાર્થનું નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન કહેવાય છે. શબ્દ, શ્રુતજ્ઞાનમાં કારણ છે, એટલા માટે શબ્દ પણ શ્રુત કહેવાય છે, પરંતુ જ્ઞાન-ભેદની વ્યવસ્થામાં શ્રુત-શબ્દ સાંભળવું એ અર્થનો વાચક છે.

(૩) અવધિજ્ઞાન—

'અવ'નો અર્થ છે 'અધઃ' અર્થાત્ નીચે, તાત્પર્ય એ છે કે-જે જ્ઞાન અધો દિશાની વસ્તુઓને વિસ્તારથી જાણે છે, તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે. અવધિરૂપ જ્ઞાન અવધિજ્ઞાન છે, અર્થાત્ વિસ્તૃતવિષયક જ્ઞાન. જેમકેઃ-અનુત્તરોપપાતિક દેવ અવધિ-

ज्ञानम् । यथा—अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानबलेन भगवन्तमापृच्छ्य जीवादि-तत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति ।

यद्वा—' अवधिना ज्ञानम् ' इति तृतीयासमासः । अवधिर्मर्यादा-'रूपिद्रव्याण्येव विषयीकरोति नेतराणी'-तिव्यवस्थारूपा, तथा चायमर्थः—अरूपिद्रव्यपरिहारेण रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति ।

यद्वा—अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम् । तच्च चतुर्गतिवर्तिनां जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं रूपिद्रव्यसाक्षात्कार-जनकं भवति । एतस्य ज्ञानस्य देव—मनुष्य—तिर्यङ्—नारका अधिकारिणः ।

के बल से भगवान् से प्रश्न पूछ कर जीवादितत्त्वों का स्वरूप निश्चित कर लेते हैं ।

अथवा—अवधि के साथ जो ज्ञान हो वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिका अर्थ है मर्यादा । अवधिज्ञान, रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी को नहीं, वह व्यवस्था ही यहाँ मर्यादा समझनी चाहिए । तात्पर्य यह हुआ कि—अरूपी द्रव्यों को छोडकर केवल रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है ।

अथवा—जिस ज्ञान के द्वारा नीचे नीचे अधिक जाना जाय वह अवधिज्ञान है । यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है । यह, सिर्फ रूपी पदार्थों को साक्षात् जानता है, और विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है । देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नारकी, सभी इस ज्ञान के अधिकारी हैं, अर्थात् यह चारों को हो सकता है ।

જ્ઞાનના બળથી ભગવાનને પ્રશ્ન પૂછીને જીવાદિ તત્ત્વોનો નિશ્ચય કરી લે છે. અથવા—અવધિની સાથે જે જ્ઞાન થાય છે તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે. અવધિનો અર્થ છે મર્યાદા. અવધિજ્ઞાન, રૂપી દ્રવ્યોને જ જાણે છે, અરૂપી દ્રવ્યોને જાણતું નથી, આ વ્યવસ્થા જ અહિં મર્યાદા સમજવી જોઈએ. તાત્પર્ય એ થયું કે અરૂપી-દ્રવ્યોને છોડીને કેવળ રૂપી દ્રવ્યોને જાણવાવાળું જ્ઞાન તે અવધિજ્ઞાન કહેવાય છે. અથવા જે જ્ઞાન દ્વારા નીચે-નીચે વિશેષ જાણવામાં આવે, તે અવધિજ્ઞાન છે. તે જ્ઞાન ચાર ગતિઓના જીવોને થઇ શકે છે, માત્ર રૂપી પદાર્થોને સાક્ષાત્ જાણે છે, અને વિશિષ્ટ ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે, દેવ, મનુષ્ય, તિર્યંચ અને નારકી, આ સર્વ તે જ્ઞાનના અધિકારી છે, અર્થાત્ એ ચારેયને અવધિજ્ઞાન થઈ શકે છે.

(४) मनःपर्ययज्ञानम्-

पर्ययनं-सर्वतः परिच्छेदनम्-अवबोधनं पर्ययः। मनसः पर्ययो मनः-पर्ययः, मनोविषयकः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम्। यद्वा मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम्।

मनो द्विविधं द्रव्यभावभेदात्। तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः। संज्ञिना मनोवर्गणा गृहीताः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते।

तत्रेह भावमनः परिगृह्यते। भावमनसः पर्ययाश्च परेषां सार्धतृतीयद्वीपा-भ्यन्तरवर्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाध्यवसायरूपाः। यथा-अन्यः

(४) मनःपर्ययज्ञान—

पर्यय अर्थात् जानना, मन को सर्वथा जानना मनःपर्ययज्ञान है, अर्थात् मनोविषयक, सम्पूर्ण ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। अथवा—मनःपर्यय (मनके पर्यवों) का ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है।

मन दो प्रकार का है—द्रव्य-मन और भाव-मन। मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन कहते हैं। संज्ञी जीव द्वारा ग्रहण की हुई मनोवर्गणाएँ जब चिन्तन की जाती हैं वे भावमन कहलाती हैं।

मनःपर्यय ज्ञान के प्रकरण में भावमन ही लिया जाता है। अढाई द्वीप के अन्तर्गत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले, विषयाध्यवसायरूप पर्ययों को मनःपर्यय ज्ञान जानता है। जैसे—कोई दूसरा जीव ऐसा विचार करे—आत्मा कैसा

(४) મનઃપર્યય જ્ઞાન—

પર્યય અર્થાત્ જાણવું, મનને જાણવું તે મનઃપર્યય જ્ઞાન છે. અર્થાત્-મન વિષયકનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મનઃપર્યય કહેવાય છે. અથવા મનઃપર્યયનું જ્ઞાન તે મનઃ-પર્યયજ્ઞાન કહેવાય છે.

મન બે પ્રકારનાં છે-(૧) દ્રવ્યમન અને (૨) ભાવમન. મનોવર્ગણાઓને દ્રવ્ય-મન કહે છે, અને સંજ્ઞી જીવ દ્વારા ગ્રહણ કરાએલી મનોવર્ગણાઓનું જ્યારે ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને ભાવમન કહે છે.

મનઃપર્યય જ્ઞાનના પ્રકરણમાં ભાવમન જ લેવામાં આવે છે. અઢી દ્વીપના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવો દ્વારા ચિન્તન કરવામાં આવતા વિષયાધ્યવસાયરૂપ પર્યયોને મનઃપર્યય જ્ઞાન જાણે છે. જેમ કેઃ-કોઈ બીજો જીવ એવો વિચાર કરે-આત્મા કેવો

कश्चिदेवं चिन्तयेत्–' आत्मा कीदृशः ? अरूपी, चेतनास्वभावः, कर्मणां कर्ता, तत्फलभोक्ता चेत्यादयो ये ज्ञानविशेषरूपास्तस्यात्मनः परिणामास्तेषां यद् ज्ञानं तन्मनःपर्ययज्ञानम् ।

मनःपर्ययज्ञानी च मनःपर्ययानेव प्रत्यक्षीकरोति न तु बाह्यं वस्तु । न च–'मनःपर्ययज्ञानिना बाह्यं वस्तु न ज्ञायते' इति वाच्यम्, अनुमानतस्तस्य बाह्यवस्तु–ज्ञानसद्भावात् । यथा–विशिष्टक्षायोपशमिकप्रतिभाशाली प्रेक्षावान् प्रशान्तः कस्यचिदाकारेङ्गितादिकं विलोक्य तदीयमनोगतं भावं सामर्थ्यं चानुमानतो विजानाति ।

है ? अरूपी, चेतनास्वरूप, कर्मों का कर्ता, कर्मफलभोक्ता, इत्यादि आत्मा के जो ज्ञान-विशेषरूप परिणाम हैं; उन्हें जानना मनःपर्ययज्ञान है । मनःपर्ययज्ञानी जीव, मन के पर्यायों को ही प्रत्यक्ष करता है, बाह्य वस्तु को नहीं । परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि–मनःपर्ययज्ञानी बाह्य वस्तुओं को जानता ही नहीं है। मनःपर्ययज्ञानी को अनुमान से बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है। जैसे–विशिष्टक्षयोपशम–जन्य प्रतिभा वाला बुद्धिमान् पुरुष किसी के इशारे या चेष्टा को देखकर उसके मनका भाव और उसका सामर्थ्य अनुमान से जान लेता है, इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी दूसरे के भावरूप मन को पूर्णतया प्रत्यक्ष करके अनुमान से बाह्य वस्तु को जान लेता है कि–'इसने अमुक वस्तु का विचार किया है' । बाह्य पदार्थों का विचार करते समय उसी पदार्थ के आकार का मन हो जाता है ।

છે ? અરૂપી, ચેતના–સ્વરૂપ, કર્મોનો કર્તા, કર્મફલભોકતા, ઇત્યાદિ આત્માના જ્ઞાન વિશેષરૂપ જે પરિણામ છે, તેને જાણવા તે મનઃપર્યય જ્ઞાન છે.

મનઃપર્યય જ્ઞાની જીવ મનના પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષ કરે છે બહારની વસ્તુઓને નહિ. પરંતુ એમ કહેવું ઠીક નથી કે–મનઃપર્યયજ્ઞાની બહારની વસ્તુઓને જાણતા જ નથી, મનઃપર્યયજ્ઞાનીઓને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓનું જ્ઞાન હોય છે. જેમકેઃ—વિશિષ્ટક્ષયોપશમજન્ય પ્રતિભાવાળા બુદ્ધિમાન પુરૂષ કોઈના ઇશારાથી અથવા ચેષ્ટાને જોઈને તેના મનનો ભાવ અને તેનું સામર્થ્ય અનુમાનથી જાણી લે છે, એ પ્રમાણે મનઃપર્યયજ્ઞાની બીજાના ભાવરૂપ મનને પૂર્ણ રૂપમાં પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓને જાણી લે છે કેઃ—"તેણે અમુક વસ્તુનો વિચાર કર્યો છે" બહારના પદાર્થોનો વિચાર કરવાના સમયે તેજ પદાર્થના આકારરૂપ મન થઈ જાય છે.

तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावरूपं मनः सर्वतोभावेन प्रत्यक्षीकृत्यानुमानेन बाह्यं विषयमवबुध्यते–'इदं वस्त्वनेन चिन्त्यते' इति। बाह्यपदार्थचिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकारं मनो भवति।

इदं मनःपर्ययज्ञानं रूपिविषयत्व–क्षायोपशमिकत्व–प्रत्यक्षत्वादिसाम्येऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादिभेदात्। तथाहि–अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि भवति, तद् द्रव्यतोऽशेषरूपिद्रव्यविषयं, क्षेत्रतो लोकविषयम्, कालतोऽतीतानागतासंख्यातोत्सर्पिण्यवसर्पिणीविषयम्, भावतः सकलरूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसंख्यातपर्यायविषयम्।

मनःपर्ययज्ञानं तु प्रमादरहितस्याऽऽमर्षाद्यन्यतमलब्धिधारिणः संयतस्य भवति। द्रव्यतः–संज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यविषयं, क्षेत्रतः–समयक्षेत्रमात्रविषयम्

मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह रूपी पदार्थों को विषय करता है; क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान से भिन्न है, क्यों कि स्वामी आदिके भेद से दोनों में भेद है, वह इस प्रकार—अवधिज्ञान अविरतसम्यग्दृष्टि को भी होता है, वह द्रव्यतः समस्त रूपी द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र से समस्त लोक को जानता है, काल से असंख्यात भूत और भावी उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी को विषय करता है, भाव से समस्त रूपी द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य की असंख्यात पर्यायों को जानता है।

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त संयत को तथा आमर्ष आदि किसी लब्धि के धारक को ही होता है। वह द्रव्य से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मनोद्रव्य को, क्षेत्र से समयक्षेत्रमात्र को

મનઃપર્યયજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન પ્રમાણે રૂપી પદાર્થોને વિષય કરે છે–જાણે છે મનઃપર્યયજ્ઞાન ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે, પરંતુ અવધિજ્ઞાનથી તે ભિન્ન છે, કેમકે સ્વામી આદિના ભેદથી તે બંનેમાં ભેદ છે. તે આ પ્રમાણે–અવધિજ્ઞાન અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિને પણ થાય છે. તે દ્રવ્યથકી સર્વ રૂપી જીવોને જાણે છે, ક્ષેત્રથકી સમસ્ત લોકને જાણે છે, કાલથકી અસંખ્યાત ભૂત અને ભાવી ઉત્સર્પિણી અવસર્પિણીને જાણી શકે છે, ભાવથી સમસ્ત રૂપી દ્રવ્યોમાંથી પ્રત્યેક દ્રવ્યની અસંખ્યાત પર્યાયોને જાણે છે.

મનઃપર્યયજ્ઞાન અપ્રમત્ત સંયતને (મુનિને) તથા આમર્ષ આદિ કોઈ લબ્ધિના ધારકને જ થાય છે. તે દ્રવ્યથી સંજ્ઞી પંચેદ્રિન્યનાં મનોદ્રવ્યને, ક્ષેત્રથકી સમયક્ષેત્ર-

कालतोऽतीतानागतपल्योपमासंख्यातभागविषयम् , भावतो मनोद्रव्यगतानन्तपर्यायविषयकम् ।

(५) केवलज्ञानम् —

केवलम्—एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मात्यन्तक्षयसमुद्भूतम्—अतीतानागतवर्तमानयथावस्थितसकलद्रव्यगुणपर्ययविषयकमप्रतिपाति ज्ञानं केवलज्ञानम् । अत्र ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः ।

ज्ञानप्रसङ्गेन मत्यादिभेदपञ्चकं प्रदर्शितं, प्रकृते तु मतिज्ञानस्यैवाधिकारः ।

(अढाई द्वीप को), काल से पल्योपम के असंख्यातवें भाग—भूत—भविष्यत् कालको और भाव से मनोद्रव्य की अनन्त पर्यायों को विषय करता है ।

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एक ही है । उस के साथ दूसरा ज्ञान नहीं होता । वह असहाय है अर्थात् इन्द्रिय मन आदि किसी की सहायता की उसे अपेक्षा नहीं है । वह ज्ञानावरण कर्म के आत्यन्तिक क्षय से उत्पन्न होता है । अतीत, अनागत, वर्तमान काल के समस्त द्रव्यों गुणों और पर्यायों को यथार्थरूप में जानता है, अप्रतिपाती है, अर्थात् एकवार उत्पन्न हो कर कभी नष्ट नहीं होता । ऐसा ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है । ग्रन्थविस्तार के भय से अधिक विस्तार नहीं करते ।

ज्ञान का प्रकरण होने से मतिज्ञान आदि पांच भेद बतलाये जा चुके हैं ।

માત્રને (અઢી દ્વીપને) કાલથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગે ભૂત–ભવિષ્ય કાલને અને ભાવથી મનોદ્રવ્યની અનંત પર્યાયોને જાણે છે.

(૫) કેવલજ્ઞાન—

કેવલજ્ઞાન, કેવલ અર્થાત્ એકજ છે. તેની સાથે બીજું જ્ઞાન થતું નથી, તે અસહાય છે, અર્થાત્ ઇન્દ્રિય, મન આદિ કોઈની પણ સહાયતાની તેને અપેક્ષા નથી. અને તે કેવલજ્ઞાન જ્ઞાનાવરણીય કર્મના આત્યંતિક ક્ષયથી ઉત્પન્ન થાય છે. કેવલજ્ઞાન ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાન કાલના સમસ્ત દ્રવ્યો, ગુણો અને પર્યાયોને યથાર્થરૂપથી જાણે છે. તે અપ્રતિપાતી છે, અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન થઇને ફરી કોઈ પણ વખત નાશ પામતું નથી, એવું જે જ્ઞાન તે કેવલજ્ઞાન કહેવાય છે. ગ્રંથવિસ્તારના ભયથી અધિક વિસ્તાર અહિં કરતા નથી.

જ્ઞાનનું પ્રકરણ હોવાથી મતિજ્ઞાન આદિ પાંચ ભેદો બતાવ્યા છે. અહિં

मतिज्ञानं चानेकविधम् , ईहादिभेदात् । उक्तश्च भगवता—
" ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं " ॥ (नन्दी मतिज्ञानगाथा २७)

छाया—ईहा, अपोहः विमर्शः मार्गणा च गवेषणा ।
संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आभिनिबोधिकम् ॥

' आभिणिबोहियं ' इत्यनेन त्रिकालविषयकं मतिज्ञानमुच्यते तथा-चोक्तं भगवता—"पंचविहं णाणं पण्णत्तं । तंजहा-(१) आभिणिबोहियणाणं, (२) सुयणाणं, (३) ओहिणाणं (४) मणपज्जवणाणं (५) केवलणाणं । इति (नन्दी, १)

(१) ईहा—

ईहाऽपोहादयो मतिज्ञानप्रभेदाः । तत्र—ईहनम्—ईहा । नामजात्यादि-

यहाँ मतिज्ञान का ही प्रसङ्ग है । मतिज्ञान, ईहा आदि के भेद से अनेक प्रकार का है । भगवान्ने कहा है :—

" ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, संज्ञा, स्मृति, मति और प्रज्ञा, यह सब आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) है " (नन्दीसूत्र मतिज्ञान गाथा २७)

आभिनिबोधिक ज्ञान का अर्थ है—त्रिकालविषयक मतिज्ञान । भगवान्ने कहा है:— "ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान" (नन्दी—सू० १)

(१) ईहा—

इहा अपोह आदि मतिज्ञान के भेद हैं । नाम और जाति आदि की विशेष

મતિજ્ઞાનનો જ પ્રસંગ છે, મતિજ્ઞાન ઈહા આદિ ભેદોથી અનેક પ્રકારનું છે. ભગવાને કહ્યું છે કેઃ—ઈહા, અપોહ, વિમર્શ, માર્ગણા, ગવેષણા, સંજ્ઞા, સ્મૃતિ, મતિ, અને પ્રજ્ઞા, એ સર્વ આભિનિબોધક જ્ઞાન—મતિજ્ઞાન છે (નંદીસૂત્ર મતિજ્ઞાનગાથા ૨૭) આભિનિબોધિક જ્ઞાનનો અર્થ છે—ત્રિકાલવિષયક મતિજ્ઞાન, ભગવાને કહ્યું છે કેઃ— " જ્ઞાન પાંચ પ્રકારનું છે, તે આ પ્રમાણે (૧) આભિનિબોધિકજ્ઞાન (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાન (નન્દી સૂ૦૧)

(૧) ઈહા—

ઈહા તથા અપોહ વગેરે મતિજ્ઞાનના ભેદ છે. નામ અને જાતિ આદિની વિશેષ

विशेषकल्पनारहितसामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनिश्चयार्थं विचारणा-ईहा। यथा-स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति, तदनु कीदृशोऽयं स्पर्शः ?, कस्यायं स्पर्शः ?, किमयं कमलनालस्पर्शः उताहो भुजङ्गमस्पर्शः? इति गाढान्धकारे चक्षुष्मतोऽपि विचारणा प्रवर्तते।

(२) अपोहः—

अपोहनम्-अपोहः निश्चयः। कोऽयमपोहः ? उच्यते-मतिज्ञानस्यावग्रहादि-भेदचतुष्टये तृतीयभेदो योऽपायः स एत्रापोहशब्देनोच्यते। अवग्रहादिभेद-चतुष्टयं च नन्दीसूत्रे भगवतैव प्रदर्शितमस्ति।

कल्पना से रहित सामान्यज्ञान के पश्चात् होने वाली विचारणा ईहा कहलाती है। जैसे-स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा स्पर्शका सामान्य ज्ञान होने के पश्चात् गाढ अन्धकार होने पर चक्षुवाले को भी यह विचारणा होती है कि यह स्पर्श कैसा है? किसका यह स्पर्श है? यह कमल के नाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है?, इस प्रकार की विचारणा को ईहा कहते हैं।१।

(२) अपोह-

अपोह का अर्थ है-निश्चय। अपोह क्या है? कहते हैं-मतिज्ञान के अवग्रह आदि चार भेदों में तीसरा भेद जो अपाय है उसी को यहाँ 'अपोह' शब्द द्वारा कहा है। अवग्रह आदि चार भेद नन्दीसूत्र में भगवान्ने कहे हैं।

કલ્પનાથી રહિત, સામાન્ય જ્ઞાનની પછી થવા વાળી વિચારણાને ઇહા કહે છે, જેમકેઃ-સ્પર્શનેંદ્રિયના દ્વારા સ્પર્શનું સામાન્ય જ્ઞાન થયા પછી ગાઢ અંધકાર થાય ત્યારે નેત્રવાળાને પણ એ વિચાર થાય છે કે-આ સ્પર્શ કેવો છે? આ કોણે સ્પર્શ કર્યો છે. શેનો સ્પર્શ છે?, આ કમલના નાળનો સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે?, આ પ્રકારની વિચારણા તેને ઇહા કહે છે.

(૨) અપોહ—

અપોહનો અર્થ છે નિશ્ચય, અપોહ એ શું છે? કહે છે કે-મતિજ્ઞાનના અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદો પૈકીનો ત્રીજો ભેદ જે અપાય છે, તેને અહિં 'અપોહ' શબ્દથી કહેલ છે. અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદ નંદીસૂત્રમાં ભગવાને કહેલા છે.

सामान्यज्ञानोत्तरं काले विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा-'किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोस्विद् भुजङ्गमस्पर्शः ?' इति विचारणायां 'मृणालस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणत्त्वा-दित्यस्यैवाय'-मिति निश्चयोऽन्यं भुजङ्गमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽपोहोऽ-पनोदश्चेति निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा-मातुमिच्छा, मातुं-जीवादिस्वरूपं ज्ञातुमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणं मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपोह कहलाता है। यथा-'यह कमलनालका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?' इस प्रकार की विचारणा होने पर "यह कमलनाल का ही स्पर्श है, क्यों कि इस में अत्यन्त शीतलता है" इस प्रकार का निश्चय होना, और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है, अत एव यह निश्चय अपोह, अपाय और अपनोद भी कहलाता है।

(३) विमर्द-

जीव आदि के स्वरूप को जानने की इच्छा विमर्श है।

(४) मार्गणा-

जीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है।

સામાન્ય જ્ઞાન થયા પછી વિશેષનો નિશ્ચય કરવા માટે વિચારણા થતાં પછી તેના ગુણ-દોષની વિચારણાથી ઉત્પન્ન નિશ્ચય તેને અપોહ કહે છે, જેમ-' આ કમલના નાળનો સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે ?' આ પ્રકારની વિચારણા થયા પછી નક્કી કરવામાં આવે કે "આ સ્પર્શ કમલના નાળનો જ છે, કેમકે તેમાં અત્યન્ત શીતલતા છે" એ પ્રકારનો નિશ્ચય થાય છે અને એ નિશ્ચય બીજાનો અર્થાત્ સર્પના સ્પર્શનો નિરાકરણ કરી દે છે. તેથી કરી આ નિશ્ચય તે અપોહ, અપાય અને અપનોદ પણ કહેવાય છે.

(૩) વિમર્શ—

જીવ આદિના સ્વરૂપને જાણવાની ઈચ્છા તે વિમર્શ છે.

(૪) માર્ગણા—

જીવ આદિ પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનું અન્વેષણ કરવું તે માર્ગણા છે.

(५) गवेषणा–

मार्गणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वतः परिभावनं–निर्णयाभि–मुखविचारपरायणता गवेषणा।

(६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतस्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन "स एवाय"–मिति जायमानं ज्ञानं संज्ञा। यथा–"स एवायमाहारकलब्धिमान् महात्मा, यो मया कानने दृष्टः"।

(७) स्मृतिः–

अनुभूतार्थविषयकं ज्ञानं स्मृतिः। इदं ज्ञानमतीतविषयकं भवति। अत्रोदाहरणं यथा—

---

(५) गवेषणा—

मार्गणा के पश्चात् उपलब्ध न होने वाला जीवादि पदार्थों का पूरी तरह विचार करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेषणा है।

(६) संज्ञा–

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुनः दर्शन होने पर 'यह वही है' इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान संज्ञा कहलाता है। जैसे–"यह वही आहारकलब्धि वाले महात्मा हैं जिन्हें मैंने वनमें देखा था"।

(७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ को विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता है। स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है। यहां एक उदाहरण है, जैसे—

---

(૫) ગવેષણા—

માર્ગણાની પછી ઉપલબ્ધ નહિ થવા વાળા જીવાદિ પદાર્થોનો પૂરી રીતે વિચાર કરવો અર્થાત્ નિર્ણયને અભિમુખ–વિચાર પરાયણતાને ગવેષણા કહે છે.

(૬) સંજ્ઞા—

ઈન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોનું ફરી દર્શન થતાં "આ તેજ છે." એ પ્રકારે ઉત્પન્ન થવા વાળું જ્ઞાન તે સંજ્ઞા કહેવાય છે. જેમ–"આ તેજ આહારક–લબ્ધિવાળા મહાત્મા છે જેને મેં વનમાં જોયા હતા."

(૭) સ્મૃતિ—

પ્રથમ અનુભવ કરેલા પદાર્થનો વિષય કરનારૂં જ્ઞાન સ્મૃતિ કહેવાય છે. સ્મૃતિ–જ્ઞાન અતીત વિષયનું જ, (વીતી ગયેલા પ્રસંગનું જ) હોય છે અહીં એક ઉદહરણ છે, જેમકેઃ–

चेल्लणा देवी हेमन्ते भगवत्समवसरणतः प्रत्यागच्छन्ती मार्गे महारण्ये स्वप्रतिज्ञाऽविनं जिनकल्पिनं कमपि मुनिं ध्यानावस्थमालोक्य भक्त्या तद्दर्शनव-न्दनादिकं विधाय स्वप्रासादमागता रात्रौ सुप्ता । निद्रावस्थायां तस्याः पाणिराव-रणवस्त्राद् बहिर्भूतः शीतेन शिथिलीबभूव । अथाऽसौ जागरिता जडीभूतं स्वहस्तं विलोक्य शीतादिपरिषहपरिगतं महारण्यस्थं मुनिं स्मृतवती "कथमहो असौ मुनिरिदानीं बहिर्महावने शीतपरिभूतो भविष्यति"। इति कर्मणां महानिर्जरां महापर्यवसानं चकार ।

चेलना देवी हेमन्त ऋतु में भगवान् के समवसरणसे लौटती हुई, मार्ग में महा—अरण्य में, अपनी प्रतिज्ञा पालने वाले किन्ही जिनकल्पी मुनि को ध्यान में स्थित देखकर, भक्तिपूर्वक उन का दर्शन वन्दन आदि कर के अपने महल में आई और रात्रि में सो गई । निद्रावस्था में उस का हाथ ओढने के वस्त्र से बाहर निकल गया और ठंड के कारण ठर गया । रानी की नींद खुल गई । उसने अपने हाथ को जडीभूत देख कर शीत परिषहों से आक्रान्त, महा—अरण्यवासी मुनिका स्मरण किया । कहने लगी—अहो ! महावन में, नगर के बाहर वह मुनि इस समय शीत से कैसा कष्ट पा रहे होंगे ?, ऐसा सोच कर उसने कर्म की महानिर्जरा की ।

ચેલના દેવી હેમન્ત ઋતુમાં ભગવાનના સમવસરણમાંથી પાછી ફરે ત્યારે માર્ગમાં મહાવનમાં, પોતાની પ્રતિજ્ઞા પાલનારા, કોઈ એક જિનકલ્પી મુનિને ધ્યાનમાં સ્થિત જોઈને, ભક્તિપૂર્વક તેનાં દર્શન, વંદન વગેરે કરીને પોતાના મહેલમાં આવી અને રાત્રીએ સુઈ ગઈ. નિદ્રાવસ્થામાં તેનો એક હાથ ઓઢવાના વસ્ત્રમાંથી બહાર રહી ગયો, અને ઠંડી હોવાના કારણે તે હાથ ઠરી ગયો, રાણીની નિદ્રા ઉડી ગઇ, ત્યારે તેણે પોતાના હાથને ઠરી જવાથી જડ જેવો જોઇને શીત આદિ પરીષહોથી આક્રાન્ત, મહા-વનવાસી મુનિ સાંભરી આવ્યા; અને કહેવા લાગી કે-અહો ! મહાવનમાં નગર બહાર તે મુનિ આ સમયમાં શીતથી કેવું કષ્ટ પામતા હશે ?, એવો વિચાર કરીને કર્મની મહાનિર્જરા કરી.

(८) मतिः—

वर्तमानविषयकं ज्ञानं मतिः । यथा–'मुनिः संयमार्थं भिक्षामटति' ।

(९) प्रज्ञा–

विशिष्टक्षयोपशमजन्यं प्रभूतपदार्थवर्ति यथावस्थितस्वरूपनिर्णयात्मकं ज्ञानं प्रज्ञा ।

आभिनिबोधिकस्वरूपस्य मतिज्ञानस्य प्रभेदा उक्ताः ।

"इहैकेषां नो संज्ञा भवती"–त्यत्र संज्ञाशब्देन मतिज्ञानान्तर्गतं स्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं भगवता नोशब्दनिर्देशेन प्रतिषेधितम्, न तु सर्वविधसंज्ञारूपं सामान्यं ज्ञानम् ।

---

(८) मति—

वर्तमानविषयक ज्ञान मति कहलाता है। जैसे–'मुनि संयम पालने के अर्थ भिक्षाके लिए भ्रमण करता है।'

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और प्रभूत पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निर्णयात्मक ज्ञान प्रज्ञा है।

आभिनिबोधिकरूप मतिज्ञान के प्रभेद कहे गये।

'कितनेक जीवोंको संज्ञा नहीं होती' यहाँ संज्ञा शब्द से मतिज्ञान के अन्तर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञान का भगवान्‌ने 'नो' शब्द का निर्देश करके निषेध किया है, किन्तु सब प्रकार की संज्ञारूप सामान्य ज्ञानका निषेध नहीं किया है।

---

(८) मति—

वर्त्तमान विषयनुं ज्ञान ते मति कहेवाय छे, जेम 'मुनि संयम पालन माटे भिक्षा लेवा भ्रमण करे छे.'

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशमथी उत्पन्न थनारुं प्रभूत पदार्थोना यथार्थ स्वरूपनुं निर्णयात्मक ज्ञान ते प्रज्ञा छे.

आभिनिबोधिकरूप मतिज्ञानना प्रभेद कहेवाया.

'केटलाक जीवोने संज्ञा नथी थती' अहिं संज्ञा शब्दथी मतिज्ञानना अंतगर्त स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञानने भगवाने 'नो' शब्दनो निर्देश करीने निषेध कर्यो छे परंतु सर्व प्रकारनी संज्ञारूप सामान्य ज्ञाननो निषेध कर्यो नथी.

सा संज्ञा किंस्वरूपा, या न भवत्येकेषाम्? इत्याकाङ्क्षायामाह-" तंजहा " इति। सा यथा—

" पुरत्थिमाओ वा दिसासो " इत्यारभ्य-"अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि " इत्यन्तेनेदमुक्तं भवति-वर्तमानजन्मनः प्राक् कस्यां दिशि ममावस्थानमासीदिति स्वगत्यागत्यवधिविशिष्टपूर्वादिषड्दिशाज्ञानं नास्ति संज्ञिनामपि कियतांचित्। यथा-मदिरामदघूर्णितनयनो मूर्छितः पथि पतितः स्वजनादिना समुत्थाप्य गृहमानीयते। अथ मूर्छापगमेऽप्यसौ न जानाति-काहं पतितः?, कथमुत्थापितः?, केन कया रीत्याऽत्र समानीतोऽस्मी?-ति। तद्वद् विशिष्टसंज्ञाया

वह संज्ञा किस प्रकारकी है जो किन्हीं २ जीवों को नहीं होती?। इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर कहा गया है-**तंजहा**-अर्थात् वह इस प्रकार-

'**पुरत्थिमाओवा वा दिशाओ**' से लेकर '**अहोदिशाओवा आगओ अहमंसि**' तक का आशय यह है कि-इस वर्तमान जन्म से पहले मैं कहाँ रहता था?, इस प्रकारका अपनी गति-आगति से युक्त छह दिशाओं का ज्ञान कितनेक संज्ञी जीवोंको भी नहीं होता। जैसे-मदिरा के मद से छका हुआ, मूर्छित और रास्ते में पडा हुआ पुरुष स्वजन आदि के द्वारा उठाकर घर लाया जाता है, किन्तु मूर्च्छा हट जाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता कि-मैं कहाँ गिरा था?, किस प्रकार उठाया गया?, कौन किस प्रकार मुझे यहाँ लाया?, इसी प्रकार विशिष्ट संज्ञा के अभाव के कारण जीव

તે સંજ્ઞા કેવા પ્રકારની છે, જે કોઈ-કોઈ જીવોને નથી હોતી?, આ પ્રમાણે જીજ્ઞાસા થવાથી કહ્યું છે કે-'तंजहा' અર્થાત્ તે આ પ્રકારે—

" पुरत्थिमाओवा दिसाओ " થી લઈને " अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि," સુધીનો આશય એ છે કે:-આ વર્ત્તમાન જન્મથી પહેલાં હું ક્યાં રહેતો હતો, આ પ્રકારનું પોતાની ગતિ-આગતિથી યુક્ત છ દિશાઓનું જ્ઞાન કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને પણ નથી થતું. જેમ મદિરાના કેફથી છકેલા મૂર્છિત-બેભાન રસ્તામાં પડેલા પુરૂષને સ્વજનદ્વારા ઉઠાવીને પોતાના ઘેર લાવવામાં આવે છે; પરંતુ મૂર્છા ઉતરી ગયા પછી પણ તેને જ્ઞાન થતું નથી કે-હું ક્યાં પડી ગયો હતો? કેવી રીતે મને ઉઠાવ્યો? કોણ કેવી રીતે મને અહિં લાવ્યા?, આ પ્રકારની વિશિષ્ટ સંજ્ઞાના

अभावाज्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

"अण्णयरीओ वा दिसाओ" इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागमनावधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन संज्ञिनः, सर्वदिग्ज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासंभवादिति भावः ।

"अणुदिसाओ वा" इति । ईशानादयः कोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागत्यवधिभूताया अनुदिशो ज्ञानं न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते–संक्षेपतो द्रव्य–भाव–भेदेन दिशा द्विविधा।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

'**अण्णयरीओ वा दिसाओ**' अर्थात् जितनी दिशाएं हैं, उनमें किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक संज्ञी नहीं जानते हैं । क्यों कि सभी दिशाओं के ज्ञानके अभाव में किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । '**अणुदिशाओ वा**' ईशान वगैरह कोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न–दिशाएँ कितनी हैं ?

उत्तर–संक्षेप से दिशा के दो भेद हैं–द्रव्य–दिशा, और भाव–दिशा । पूर्व,

---

અભાવથી જીવ પોતાના પૂર્વભવને જાણુતો નથી.

'अण्णयरीओ वा दिसाओ' અર્થાત્ જેટલી દિશાઓ છે, તેમાંથી કોઈ પણુ એક દિશાથી હું આવ્યો છું. આ પ્રમાણે પોતાના આગમનની દિશાને સામાન્ય રૂપથી પણુ કેટલાંક સંજ્ઞી જાણુતા નથી. કેમકે સર્વ દિશાઓના જ્ઞાનના અભાવથી કોઇ એક દિશાનું જ્ઞાન થવું તે અસંભવ છે. 'अणुदिसाओ वा' ઈશાન વગેરે કોણુ રૂપ વિદિશાઓને અનુદિશા કહે છે. તેમાંથી સામાન્યરૂપે કોઈ પણુ એક દિશાથી હું આવ્યો છું; અથવા વિશેષરૂપથી ઈશાન આગ્નેય આદિ વિદિશાઓથી હું આવ્યે છું. એવું જ્ઞાન થતું નથી.

પ્રશ્ન—દિશાઓ કેટલી છે ?

ઉત્તર—સંક્ષેપથી દિશાના બે ભેદ છે:—દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા. પૂર્વ, પશ્ચિમ,

पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा चेति चतस्रोः दिशः, ऐशानी आग्नेयी, नैर्ऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराला अष्टावन्तरदिशः, मिलित्वा षोडश। अथोर्ध्वम्, अधश्चेति द्वे इति, तयोर्योगेऽष्टादश। द्रव्यदिगेव प्रज्ञापकदिक्शब्देनाप्युच्यते।

तथा-संमूर्छिममनुष्याः, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपमनुष्याः, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यञ्चः,

ष्पृथिव्यप्तेजोवायुकायभेदाच्चतुर्विधाः स्थावराः। अग्रबीज-मूलबीज-पर्वबीज-स्कन्धबीज-भेदाच्चतुर्विधा वनस्पतयः। इति मिलित्वा षोडश। नरकगति-

---

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं। ईशान, अग्नेय नैर्ऋत्य, वायव्य, ये चार विदिशाएँ हैं। इन आठों के बीच में आठ अवान्तर दिशाएँ हैं। ये सब मिलकर सोलह होती हैं। इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अठारह द्रव्य-दिशाएँ होती हैं। द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं।

तथा—संमूर्च्छिम मनुष्य, गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य, गर्भज-अकर्मजभूमिज मनुष्य, छप्पन अन्तरद्वीपों के मनुष्य, ये चार प्रकार के मनुष्य। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यञ्च। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्थावर, और अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, तथा

દક્ષિણ અને ઉત્તર. આ ચાર દિશાઓ છે. અગ્નિ, ઈશાન, નૈૠત્ય, અને વાયવ્ય, આ ચાર વિદિશાઓ છે, આ આઠની વચ્ચમાં આઠ અવાન્તર દિશાઓ છે. આ સર્વ મળીને સોળ દિશાઓ થાય છે. તેમ ઉર્ધ્વદિશા અને અધોદિશા શામિલ કરવાથી અઢાર દ્રવ્ય દિશાઓ થાય છે, દ્રવ્યદિશાને પ્રજ્ઞાપકદિશા પણ કહે છે. તથા-સંમૂર્છિમ મનુષ્ય, ગર્ભજ કર્મભૂમિજ મનુષ્ય, ગર્ભજ-અકર્મભૂમિજ મનુષ્ય, છપન અન્તરદ્વીપોના મનુષ્ય, આ ચાર પ્રકારના મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિયના ભેદથી ચાર પ્રકારના તિર્યંચ, પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય અને વાયુકાયના ભેદથી ચાર પ્રકારના. સ્થાવર, અને અગ્રબીજ, મૂલબીજ, પર્વબીજ

देवगतिश्चेति द्वे । सर्वयोगेऽष्टादश भावदिशः सन्ति ।

अथ दिशां विदिशां च प्रवृत्तिः कुतः स्थानाद्भवति ? उच्यते—

तिर्यग्लोकस्य मध्यभागे रत्नप्रभा भूमिः, तदुपरि मध्यभागे मेरु-पर्वताभ्यन्तरे द्वौ लघुतरौ प्रतरौ स्तः । तदुपरि गोस्तनाकाराश्चत्वारश्चत्वारः प्रदेशाः सन्ति । ईदृशाष्टप्रदेशी चतुष्कोणो रुचकनामा भागोऽस्ति । तत एव दिशां विदिशां च प्रवृत्तिर्भवति । उक्तश्च—

" तिर्यग्लोकस्य मध्ये यो, रुचकोऽष्टप्रदेशकः ।
दिशामनुदिशां चैव, प्रवृत्तिर्जायते ततः " ॥१॥

स्कन्धबीज के भेद से चार प्रकार की वनस्पति, ये सब मिलकर सोलह होते हैं । तथा नरकगति और देवगति मिलकर अठारह प्रकार की भाव-दिशाएँ हैं ।

प्रश्न—दिशाओं और विदिशाओंकी प्रवृत्ति किस स्थान से होती है ?

उत्तर—तिर्यगलोक के मध्यभाग में रत्नप्रभा भूमि है । उसके उपर मध्यभाग में मेरु पर्वत के अन्दर दो छोटे प्रतर हैं । उनके उपर गाय के स्तन के आकारवाले चार चार प्रदेश हैं । ऐसा अष्टप्रदेशी चौकोना रुचक नामक भाग है । वहां से दिशाओं और विदिशाओं की प्रवृत्ति होती है । कहा भी है—

" तिर्छे लोक के मध्य में आठ प्रदेशवाला रुचक भाग है । उसी से सब दिशाओं और अनुदिशाओं की प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥ "

તથા સ્કંધબીજના ભેદથી ચાર પ્રકારની વનસ્પતિ, આ સર્વ મળીને સોળ થાય છે, તથા નરકગતિ અને દેવગતિ મળીને અઢાર પ્રકારની ભાવ-દિશાઓ છે.

પ્રશ્ન—દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ કયા સ્થાનથી હોય છે ?

ઉત્તર-તિર્યગ્લોકના મધ્ય ભાગમાં રત્નપ્રભા ભૂમિ છે, તેના ઉપર મધ્ય ભાગમાં મેરૂ પર્વતની અંદર નાના બે પ્રતર છે, તેના ઉપર ગાયના સ્તનના આકાર વાળા ચાર-ચાર પ્રદેશ છે. એવો આઠપ્રદેશી ચાર ખુણાવાળો રૂચક નામનો ભાગ છે, તેનાથી દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે. કહ્યું પણ છે:-

"તિર્છા લોકના મધ્યમાં આઠ પ્રદેશવાળો રૂચક ભાગ છે, ત્યાંથી સર્વ દિશાઓ અને અનુદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે." ॥ ૧ ॥

द्रव्यदिग्विषयकं ज्ञानं न भवत्येकेषामिति विवक्षया-"इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ" इत्युक्तं भगवता। भावदिशाविषयकं च ज्ञानं न भवत्येकेषामिति वक्ष्यतेऽनन्तरसूत्र एव-"एवमेगेसिं णो णायं भवइ" इत्यादिना। ॥ सू. २ ॥

भावदिशाविषयकं च ज्ञानं भवति संज्ञिनां कियतांचिदित्याह-'एवमेगेसिं' इत्यादि।

मूलम्।

एवमेगेसिं णो णायं भवइ-अत्थि मे आया ओववाइए, नत्थि मे आया ओववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि॥ सू. ३ ॥

(छाया)

एवमेकेषां नो ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, नास्ति मे आत्मा औपपातिकः, कोऽहमासम्, को वा इतश्च्युत इह प्रेत्य भविष्यामि ?॥ सू० ३ ॥

कितनेक जीवों को द्रव्यदिशासम्बन्धी ज्ञान नहीं होता, इस अपेक्षा से भगवानने कहा है कि-'**इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ**'। भावदिशाविषयक ज्ञान कितनेको नहीं होता है, यह बात '**एवमेगेसिं णो णायं भवइ**' इत्यादि अगले सूत्र में कही जायगी ॥ सू० २ ॥

कितनेक संज्ञी जीवोंको भावदिशाविषयक ज्ञान नहीं होता यह कहते हैं-'**एवमेगेसिं**' इत्यादि।

मूलार्थ-किन्हीं जीवोंको यह ज्ञान नहीं होता कि-मेरा आत्मा उत्पत्तिशील है या मेरा आत्मा उत्पत्तिशील नहीं है। मैं पहले कौन था और यहाँ से मरकर परलोक में कौन होऊँगा ? ॥ सू०३ ॥

કેટલાક જીવોને દ્રવ્યદિશાસંબંધી જ્ઞાન નથી થતું. એ અપેક્ષાથી ભગવાને કહ્યું છે કેઃ-'इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ' ભાવદિશા વિષયનું જ્ઞાન કેટલાક જીવોને નથી. એ વાત 'एवमेगेसिं णो णायं भवइ' ઇત્યાદિ આગલા સૂત્રમાં કહીશું. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને ભાવદિશાવિષયનું જ્ઞાન નથી તે કહે છે—'एवमेगेसिं' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—કોઇ કોઈ જીવોને એ જ્ઞાન નથી કે મારો આત્મા ઉત્પત્તિશીલ છે, મારો આત્મા ઉત્પત્તિશીલ નથી, હું પ્રથમ કોણ હતો અને અહિંથી મૃત્યુબાદ પરભવમાં હું કોણ થઈશ ? (હું કયાં જઈશ ?) (સૂ. ૩)

टीका ।

'एवमेगेसिं' इति, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण एकेषां संज्ञिनां कियतांचित् ज्ञातं-ज्ञानम् आत्मनि विषये वर्त्तमानातीतानागतजन्मविषयकं नो भवति=नो समुत्पद्यते ।

किंस्वरूपं ज्ञानं नोत्पद्यते तेषाम् ? इति दर्शयति-अस्ति मे आत्मा औपपातिक इत्यादि । औपपातिक इति । उपपतनम्-उपपातः, प्रादुर्भावः= चतुर्गतिषु जन्मतो जन्मान्तरे संक्रमणम् । उपपाते भवः-औपपातिकः । मे मम आत्मा-औपपातिको जन्मान्तरसंक्रान्तोऽस्तीति । तथा-नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, ममात्मा वर्तमानजन्मनि कर्मक्षयसंभवाद् भाविजन्मान्तर-सम्बन्धरहितोऽस्तीति । इदं ज्ञानद्वयं वर्तमानजन्मविषयकम् ।

यद्वा – उपपातः – गर्भसंमूर्छनलक्षणजन्मद्वयविलक्षणो जन्मविशेषः । स च देवनारकाणां भवति । उक्तश्च—

टीकार्थ—आगे कहे अनुसार कितनेक संज्ञी जीवोंको अपने विषय में वर्तमान अतीत और अनागत जन्म सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता । उन्हें किस प्रकार का ज्ञान नहीं होता ? इस विषय में कहा गया कि-मेरा आत्मा औपपातिक है या नहीं ? अर्थात् चार गतियों में, एक जन्म से दूसरे जन्म में गमन करता है या वर्तमान जन्म में कर्मों का क्षय होने से भावी जन्म के सम्बन्ध से रहित है ?, ये दोनों ज्ञान वर्तमान जन्मसम्बन्धी है ।

अथवा-उपपातका अर्थ है-गर्भजन्म और संमूर्छनजन्म से विलक्षण एक तीसरे प्रकार का जन्म । वह देवों और नारकों का होता है । कहा भी है-

---

ટીકાર્થ—આગળ કહેવા પ્રમાણે કેટલાક સંજ્ઞી જીવોને પોતાના વિષયમાં વર્તમાન, ભૂતકાલ, અને ભવિષ્યકાલના જન્મ સંબંધી જ્ઞાન હોતું નથી. તેને કયા પ્રકારનું જ્ઞાન નથી હોતું તે વિષયમાં કહે છે કેઃ-મારો આત્મા ઔપપાતિક છે કે નહિ ? અર્થાત્ ચાર ગતિઓમાં એક જન્મથી બીજા જન્મમાં ગમન કરે છે, અથવા વર્તમાન જન્મમાં કર્મોનો ક્ષય થવાથી ભાવી જન્મના સંબંધથી રહિત છે ? તે બંને જ્ઞાન વર્તમાનજન્મસંબંધી છે.

અથવા ઉપપાતનો અર્થ છે-ગર્ભજન્મ અને સંમૂર્છન જન્મથી વિલક્ષણ એક ત્રીજા પ્રકારનો જન્મ છે, તે દેવો અને નારકીજીવોને થાય છે. કહ્યું છે કેઃ—

"दोण्हं उववाए पण्णत्ते तंजहा-देवाणं चेव णेरइयाणं चेव" इति। (स्थानाङ्ग० २ स्था० ३ उ०)

द्वयोरुपपातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-देवानां चैव नैरयिकाणां चैव। इति च्छाया।

उपपातादागतः औपपातिकः। देवभवाद् नरकभवाद्वा ममायमात्मा समागतोऽस्तीत्यर्थः। नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, अत्र-नञर्थस्यौपपातिकेऽन्वयः। ममात्मा-अनौपपातिकोऽस्तीत्यर्थः। संमूर्छनभवाद् गर्भभवाद् वा ममात्मा समागतोऽस्तीति भावः। इममर्थं स्पष्टीकर्तुमाह-कोऽहमासम्? इति।

अत्र प्रसङ्गवशेन जन्मतत्प्रभेदाश्च निरूप्यन्ते—

"दो प्रकार के जीवों के उपपातजन्म कहा गया है। वह इस प्रकार-देवोंके और नारकों के।" (स्था० २, उ. ३)

उपपात से उत्पन्न होनेवाला औपपातिक कहलाता है। तात्पर्य यह हुआ कि-मेरा आत्मा देवभव या नरकभव से आया है? इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता।

'णत्थि मे आया उववाइए' यहां निषेध का औपपातिक के साथ अन्वय है अर्थात् मेरा आत्मा औपपातिक नहीं है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि-मेरा आत्मा गर्भभव से या संमूर्छनभव से आया है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कहा गया है-मैं कौन था?

प्रसङ्ग पाकर यहाँ जन्म और जन्मों के भेदों का निरूपण करते हैं—

'બે પ્રકારના જીવોને ઉપપાત જન્મ કહેલો છે. તે આ પ્રમાણે-(૧) દેવોને અને (૨) નારકીઓને. (સ્થા. ૨ ઉ. ૩)

ઉપપાતથી ઉત્પન્ન થવા વાળા તે ઔપપાતિક કહેવાય છે, તાત્પર્ય એ થયું કે:-મારો આત્મા દેવભવ અથવા નરકભવથી આવ્યો છે? આ પ્રકારનું જ્ઞાન થતું નથી.

"णत्थि मे आया उववाइए" અહિં નિષેધનો ઔપપાતિકની સાથે અન્વય છે. અર્થાત્-મારો આત્મા ઔપપાતિક નથી. એવો અર્થ સમજવો જોઈએ. તાત્પર્ય એ છે કે-મારો આત્મા ગર્ભભવથી અથવા સંમૂર્છનભવથી આવ્યો છે? આ અર્થની સ્પષ્ટતા કરવાને માટે કહેલ છે, કે-"હું કોણ હતો?"

પ્રસંગ પ્રાપ્ત થવાથી અહિં જન્મ અને જન્મના ભેદોનું નિરુપણ કરે છે-

पूर्वभवसम्बन्धि – स्थूलशरीरपरित्यागानन्तरमन्तरालगत्या तैजस-कार्मणशरीरमात्रेण सहागतस्य जीवस्य नवीनभवयोग्यस्थूलशरीरार्थं प्रथमं योग्यपुद्गलानां ग्रहणं जन्म । तच्च त्रिविधं-संमूर्छन-गर्भो-पपातभेदात् ।

(१) संमूर्छनजन्म–

मातापित्रोः सम्बन्धं विनैवोत्पत्तिस्थानावस्थितानामौदारिकपुद्गलानां बाह्यानामाध्यात्मिकानां वा स्वशरीररूपेण जीवकर्तृकं परिणतिकरणं संमूर्छनम् । बाह्यपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा–काष्ठत्वक्पक्वफलादिषूत्पद्यमानाः कीटादयो जन्तवः काष्ठफलवर्तिनो बाह्यपुद्गलान् स्वशरीररूपेण परिणमयन्त उत्पद्यन्ते ।

पूर्वभवसम्बन्धी स्थूल शरीर का त्याग करने के अनन्तर विग्रहगतिसे तैजस और कार्मण शरीर के साथ आया हुआ जीव नवीन भव के योग्य स्थूल शरीर के लिए सर्व प्रथम योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वही जन्म कहलाता है।

जन्म तीन प्रकारका है–संमूर्छन, गर्भ, और उपपात ।

(१) संमूर्छनजन्म—

माता–पिता के सम्बन्ध विना ही, उत्पत्तिस्थान में रहे हुए बाह्य या आध्यात्मिक औदारिक पुद्गलोंका अपने शरीररूप से जीव द्वारा परिणत कर लेना संमूर्छन जन्म कहलाता है। काठ, त्वचा और पके फल आदि में उत्पन्न होने वाले कीडे वगरह जन्तु काठ या फल आदि के बाह्य पुद्गलों को अपने शरीर के रूप में परिणत कर लेते हैं। यह बाह्य पुद्गलनिमित्तक जन्म है,

---

પૂર્વભવસંબંધી સ્થૂલ શરીરનો ત્યાગ કરીને પછી વિગ્રહગતિથી તૈજસ અને કાર્મણ શરીરની સાથે આવેલો જીવ નવા ભવને યોગ્ય સ્થૂલ શરીર માટે સર્વપ્રથમ યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, તે જન્મ કહેવાય છે. જન્મ ત્રણ પ્રકારના છે–(૧) સંમૂર્છન (૨) ગર્ભ, અને (૩) ઉપપાત.

(૧) સંમૂર્છનજન્મ–

માતા-પિતાના સંબંધ વિના જ, ઉત્પત્તિસ્થાનમાં રહેલા બહારના અથવા આધ્યાત્મિક ઔદારિક પુદ્ગલોને, પોતાનાં શરીરરૂપથી જીવદ્વારા પરિણત કરી લેવું તે સંમૂર્છન જન્મ કહેવાય છે. કાષ્ઠ ત્વચા (છાલ) અને ફળ આદિમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા કીડા વગેરે જન્તુ કાષ્ઠ અથવા ફળ આદિમાં બહારના પુદ્ગલોને પોતાના શરીરના રૂપમાં પરિણત કરી લે છે. તે બહારનાં પુદ્ગલ નિમિત્તક જન્મ છે.

आध्यात्मिकपुद्‌गलनिमित्तकं जन्म, यथा – जीवितश्वशृगालादीनां शरीरेषु जायमानाः कीटादयस्तदीयशरीरान्तर्गतपुद्‌गलान् स्वशरीरतया परिणमयन्तो जायन्ते। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति–द्वित्रिचतुरिन्द्रिय–गर्भजव्यतिरिक्त–पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्–मनुष्याणां संमूर्छनजन्म भवति।

(२) गर्भजन्म–

उत्पत्तिस्थानावस्थितानामागन्तुकशुक्रशोणितपुद्‌गलानां स्वशरीररूपेण परिणतिकरणं मातृभुक्ताहाररसपरिपुष्टिसापेक्षं च गर्भजन्म। जरायुजानामण्डजानां पोतजानां च गर्भजन्म भवति, जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः जरायुजाः।

जीवित कुत्ते और श्रृगाल आदि के शरीरों में उत्पन्न होने वाले कीडे आदि उनके शरीरके अन्तर्गत पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करते हैं, वह आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म कहलाता है, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और गर्भज के सिवाय पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों और मनुष्यों का जन्म संमूर्छन होता है।

(२) गर्भजन्म–

उत्पत्तिस्थान में स्थित आगन्तुक रज–वीर्य के पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करना, और माता द्वारा भोगे हुए आहार के रस से पोषण की अपेक्षा रखनेवाला गर्भजन्म होता है। जरायुज, अण्डज और पोतज जीवों का जन्म गर्भज होता है, गर्भ को लपेट रखनेवाली चमडे की थैली जरायु कहलाती है, उसमें उत्पन्न होने वाले

જીવતા કુતરા અને શિયાળ આદિનાં શરીરોમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા કીડા આદિ તેનાં શરીરની અંદરનાં પુદ્‌ગલોને પોતાનાં શરીરરૂપમાં પરિણત કરે છે તે આધ્યાત્મિક પુદ્‌ગલનિમિત્તક જન્મ છે. પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, વનસ્પતિકાય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને ગર્ભજ સિવાય, પંચેન્દ્રિય, તિર્યંચો અને મનુષ્યોનો જન્મ સંમૂર્છન હોય છે.

(૨) ગર્ભજન્મ—

ઉત્પત્તિસ્થાનમાં સ્થિત, આગન્તુક રજ–વીર્યનાં પુદ્‌ગલોને પોતાનાં શરીરરૂપમાં પરિણત કરવું, અને માતાએ કરેલા આહારના રસથી પોષણની અપેક્ષા રાખવા વાળાં તે ગર્ભજન્મ કહેવાય છે. જરાયુજ, અંડજ અને પોતજ જીવોનું જન્મ ગર્ભજ હોય છે. ગર્ભને લપેટી રાખનારી ચામડાની થેલી જરાયુ કહેવાય છે. તેમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા જીવ જરાયુજ કહેવાય છે. મનુષ્ય, ગાય, ભેંસ, બકરી.

तत्र – मनुष्य – गो –महिष्य–जा–ऽविका–ऽश्व – खरो – ष्ट्र – मृग–चमर–वराह–गवय–सिंह–व्याघ्र–क्ष–द्वीपि–श्व–शृगाल–मार्जारादयो जरायुजाः । सर्प–गोधा–कृकलास–गृहगोधिका–(पल्ली)–मत्स्य–कूर्म–नक्र–शिशुमारादयः, पक्षिषु यथा–लोमपक्षाः, हंस–चाष–शुक–गृध्र–श्येन–पारावत–काक–मयूर–मण्डू–बकादयश्चा–ण्डजाः । पोता–ज्जाता इति पोतजाः शुद्धप्रसवाः, न तु जरायुजवच्चर्मा–दिवेष्टिता इति यावत् , यथा – शल्लक–हस्ति–श्वाविल्लापक–शश–शारिका–नकुल–मूषिकादयः, पक्षिषु च चर्मपक्षाः, जलूका–वल्गुलि–भारण्डपक्षि–विरालादयश्च–पोतजाः ।

जीव जरायुज कहलाते हैं । मनुष्य, गौ, भैंस, बकरी, मेष, घोडा, गधा, ऊंट, मृग, चमर शूकर, रोझ, सिंह, वाघ, रीछ, द्वीपि, कुत्ता, सियार, बिलाव आदि जरायुज हैं । सर्प, गोहेरा, कृकलास, छिपकली, मच्छ, कछुवा, नक्र, शिशुमार आदि, तथा पक्षियों में लोमपक्षी, हंस, चाष, शुक, गृध्र, बाज, कबूतर, कौवा, मोर, मण्डू (एक जातका पक्षी), बगुला आदि अण्डज हैं । जो जरायुज की भाँति चमडे से लिपटे हुए उत्पन्न न हों, वे पोतज कहलाते हैं, जैसे—सेही, हाथी, श्वाविल्लापक, शशक, शारिका, नकुल, मूषिक आदि । पक्षियों में चर्मपक्षी, जलूका (जौंक), वल्गुली, भारण्डपक्षी विराल आदि पोतज हैं ।

घेटां, घोडा, गधेडा, ઊંટ, મૃગલા, ચમર (હિમાલયમાં થતી એક ગાય વિશેષ) ભૂંડ, રોઝ, સિંહ, વાઘ, રીંછ, છીપલા, કુતરા, શિયાળ, બિલાડાં, વગેરે જરાયુજ છે, સર્પ ઘોયરાં, કણુસલાં, ઢેઢગરોડી, મચ્છ, કાચબા, નક્ર (મગર) શિશુમાર (એક પ્રકારનું જલચર પ્રાણી) આદિ તથા પક્ષિઓમાં લોમપક્ષી, હંસ, ચાષ (એક જાતનું લીલી પાંખોવાળું કાબરના જેવું પંખી) શુક–(પોપટ), ગીધ, બાજ, કબૂતર, કાગડો, મોર, મંડૂ (એક પક્ષી) બગલા વગેરે. અંડજ છે. જે જરાયુજ પ્રમાણે ચામડીથી વિંટાએલાં ઉત્પન્ન ન થાય તે પોતજ કહેવાય છે. જેમકે–સેહી–(સાહુડી) હાથી, શ્વાવિલ્લાપક, શશક, શારિકા, નકુલ–નોળીઓ, મૂષિક–ઉંદર વગેરે પક્ષીઓમાં ચર્મપક્ષ–(રૂંવાડાં વગરનાં ચામડાની પાંખોવાળા) જલૂકા (જળો) વલ્ગુલી (વડવાંગળ) ભારંડ–પક્ષી, વિરાલ આદિ પોતજ છે.

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथमं स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातजन्म। यथा - देवानां नारकाणां च। तत्र देवसमुद्भावो यथा-प्रच्छदपटस्योपरिष्टाद् देवदूष्यस्याधस्ताद् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते। नारकोत्पत्तिर्यथा-नरकस्थितातिसंकुटमुख-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते।

तथा—"अहं कः-चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त जिस में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पहले-पहल अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात-जन्म कहलाता है, देव और नारकों को यह जन्म होता है। देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-प्रच्छद पटके ऊपर और देवदूष्य वस्त्रके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है। नारकों की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-नरकवर्ती अत्यन्त संकुट (सकडे) मुखवाली कुंभियों में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गलों को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता हुआ नारकी जीव उत्पन्न होता है।

तथा—"मैं कौन था ? चार गतियों में से पूर्वभव में मैं नारक था, तिर्यञ्च था,

(૩) ઉપપાતજન્મ—

ઉપપાત ક્ષેત્રમાં પ્રાપ્તિમાત્ર જેમાં નિમિત્ત છે. એવા ઉત્પત્તિસ્થાનમાં સ્થિત વૈક્રિય પુદ્ગલોને પહેલાં-પહેલાં પોતાના શરીરરૂપમાં પરિણત કરવું તે ઉપપાતજન્મ કહેવાય છે. દેવ અને નારકીજીવોનો આ જન્મ હોય છે.

દેવની ઉત્પત્તિ આ પ્રમાણે થાય છેઃ—પ્રચ્છદપટ-ઉત્તરીય વસ્ત્રના ઉપર અને દેવદૂષ્ય વસ્ત્રની નીચે, એટલે કે બંનેની વચ્ચમાં વર્તમાન પુદ્ગલોને વૈક્રિયશરીરના રૂપમાં ગ્રહણ કરતા થકા દેવ ઉત્પન્ન થાય છે. નારકીઓની ઉત્પત્તિ આ પ્રમાણે છે કેઃ—નરકવર્તી અત્યન્ત સાંકડા મુખવાળી કુંભિઓમાં સ્થિત વૈક્રિય શરીરનાં પુદ્ગલોને વૈક્રિય શરીરના રૂપમાં ગ્રહણ કરતા થકા નારકી જીવ ઉત્પન્ન થાય છે.

તથા-"હું કોણ હતો ? ચાર ગતિઓમાંથી પૂર્વભવમાં હું નારકી હતો, તિર્યંચ

वा देवो वा आसम् ?," इति पूर्वजन्मस्मृतिरूपं ज्ञानं, तथा-"इतः=अस्माल्लोकात् च्युतः=वियुक्तः प्रेत्य=जन्मान्तरे इह चतुर्गतिरूपे संसारे को भविष्यामि ? चतुर्गतिषु कीदृशीं गतिं प्राप्स्यामि" इत्यागामिजन्मविषयकं निश्चयात्मकं ज्ञानं च न भवतीत्यर्थः। भावदिशाविषयकमपि ज्ञानं नास्ति कियतांचित् संज्ञिनाम्, असंज्ञिनां तु जीवानां नास्त्येव दिशाज्ञानमिति का वार्ता तेषामिति भावः ॥ सू. ३ ॥

संसारिणां स्वगत्यागतिज्ञानं न भवतीत्युक्तम्, संप्रति तज्ज्ञानं यथा भवति तत् प्रदर्शयितुमाह—'से जं पुण' इत्यादि।

मूलम्।

से जं पुण जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेणं अण्णेसिं अंतिए वा

मनुष्य था या देव था ?," इस प्रकार की पूर्व जन्म की स्मृति, और "इस भव से च्युत होकर अगले जन्म में चार गतियों में से कौन गति पाऊँगा ?," इस प्रकार का आगामी जन्म सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता। कितने ही संज्ञियों को भी भावदिशा-विषयक ज्ञान नहीं होता। असंज्ञी जीवों को तो दिशा का ज्ञान होता ही नहीं ॥ सू० ३ ॥

संसारी जीवों को अपनी गति और आगति का ज्ञान नहीं होता, यह बतलाया जाचुका, अब यह कथन किया जाता है कि-वह ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?—

—'से जं पुण' इत्यादि।

मूलार्थ—सहसम्मति से (परोपदेश के विना ही सहज ज्ञानसे) पर की वागरणा (स्पष्टीकरण) से, दूसरों के समीप से सुनकर जाने कि मैं पूर्व दिशा

હતો, મનુષ્ય હતો અથવા દેવ હતો ?" આ પ્રમાણે આગલા જન્મની સ્મૃતિ અને "આ ભવથી નીકળીને આગલા હવેના જન્મમાં ચાર ગતિમાંથી હું કઇ ગતિમાં જઇશ. અથવા હું કઇ ગતિ પામીશ ?" આ પ્રમાણે આગામી-હવે પછી થવાવાળા જન્મ સંબંધી નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન થતું નથી; કેટલાક સંજ્ઞીઓને (સંજ્ઞીજીવોને) પણ ભાવદિશા-વિષયનું જ્ઞાન થતું નથી. અસંજ્ઞી જીવોને દિશાઓ સંબંધીનું જ્ઞાન થતું જ નથી. ॥૩॥

સંસારી જીવોને પોતાની ગતિ અને આગતિ વિષેનું જ્ઞાન નથી થતું, તે બતાવી ગયા છીએ હવે તે કહેવામાં આવે છે કે:-તે જ્ઞાન કેવી રીતે થઈ શકે છે ?- 'से जं पुण' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ-સહસંમતિથી, (બીજાના ઉપદેશ વિના પણ સહજ જ્ઞાનથી), બીજાની વાગરણાથી (સ્પષ્ટીકરણથી), બીજાની પાસેથી સાંભળીને જાણે કે હું

सोच्चा, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि, एवमेगेसिं णायं भवइ-अत्थि मे आया ओववाइए, जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा संचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं ॥ सू० ४ ॥

(छाया)

अथ यत् पुनर्जानीयात्-सहसंमत्या, परव्याकरणेन, अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वा, तद्यथा-पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि। एवमेकेषां ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, योऽस्या दिशाया अनुदिशाया वा अनुसंचरति, सर्वस्या दिशायाः सर्वस्या अनुदिशाया य आगतः अनुसंचरति सोऽहम् ॥ सू० ४ ॥

'से जं पुण' इति। 'से' इत्यव्ययं मागधभाषायामथशब्दार्थकम्। 'अथ' इति, अनेन 'नो सन्ना भवइ' इति द्रव्यदिग्ज्ञानाभावं 'नो णायं भवइ' इति भावदिग्ज्ञानाभावं च प्रदर्श्य तज्ज्ञानमारम्भ इति द्योत्यते।

से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा विदिशा से मैं आया हूँ। इस प्रकार कितनेक जीवों को ज्ञान होता है कि-मेरा आत्मा औपपातिक (जन्म लेने वाला) है; जो इस दिशा से अथवा अनुदिशा से संचार करता है, सभी दिशाओं से, सभी अनुदिशाओं से आया हुआ जो आत्मा भ्रमण करता है, वह मैं हूँ। (सू० ४)

टीकार्थ-मागधी भाषा में 'से' अव्यय 'अथ' शब्द के अर्थ में है। यहाँ 'अथ' शब्द से यह प्रकट किया गया है कि-पहले के सूत्रोंमें **'नो सन्ना भवइ'** इत्यादि कहकर द्रव्यदिशा के ज्ञानका निषेध करके, और **'नो णायं भवइ'** इत्यादि कह कर भावदिशासम्बन्धी ज्ञान का निषेध करके अब इस ज्ञान की उत्पत्ति का प्रकार प्रदर्शित करते हैं-

પૂર્વ દિશાથી આવ્યો છું, યાવત્ બીજી દિશાઓથી અથવા વિદિશાઓથી હું આવ્યો છું, આ પ્રમાણે કેટલાક જીવોને જ્ઞાન થાય છે કે-મારો આત્મા ઔપપાતિક (જન્મ લેવાવાળો) છે; જે આ દિશાથી અથવા અનુદિશાથી સંચાર કરે છે. સર્વ દિશાઓથી, સર્વ અનુદિશાઓથી, આવેલો જે આત્મા ભ્રમણ કરે છે તે હું છું (સૂ. ૪)

ટીકાર્થ—માગધી ભાષામાં 'से' અવ્યય 'अथ,' શબ્દના અર્થમાં છે. અહિં 'अथ' શબ્દથી એ પ્રગટ કર્યું છે કે-પ્રથમના સૂત્રોમાં **'नो सन्ना भवइ'** ઇત્યાદિ કહીને દ્રવ્યદિશાના જ્ઞાનનો નિષેધ કરીને અને **'नो णायं भवइ**-ઇત્યાદિ કહીને ભાવદિશાસંબંધી જ્ઞાનનો નિષેધ કરીને હવે તે જ્ઞાનની ઉત્પત્તિનો પ્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—

टीका—

यत्=यदि पुनर्जानीयात् स्वस्वगत्यागत्यादिकं कश्चित्, तत् त्रिविधेन कारणेन, तदाह–सहसंमत्येत्यादि। आत्मना सह वर्तते या सम्यग्मतिः, सा सहसंमतिः, परोदेशमन्तरेण समुत्पन्ना जातिस्मरणावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानरूपा, तया सहसंमत्या। तत्र जातिस्मरणवान्नियमतः संख्यातभवान् जानाति, अवधिज्ञानी संख्यातभवानसंख्यातभवान् वेत्ति, तथैव मनःपर्ययज्ञानी च। केवलज्ञानी तु नियमतोऽनन्तान् भवान् विजानाति। जातिस्मरणज्ञानवानवान्तरे यद्यसंज्ञिभवं न कुर्यात्, तर्हि स्वकीयसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवस्योत्कृष्टतो नवशतभवान् विज्ञातुं शक्नुयात्। जातिस्मरणेन स्वकीयपूर्वभवं विज्ञातुर्दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अगर कोई अपनी–अपनी गति और आगति को जाने तो तीन प्रकार के कारण से जान सकता है, उसी को कहते हैं—सहसम्मति आदि से, आत्मा के साथ रहने वाली सम्यग्मति कहलाती है, अर्थात् परोपदेश के विना ही उत्पन्न होनेवाली जातिस्मरण, अवधि, मनःपर्यय और केललज्ञान रूप मति सहहम्मति कहलाती है, उनमें जाति स्मरणवाला नियम से संख्यात भवोंको जानता है, अवधिज्ञानी संख्यात या असंख्यात भवों को जानता है, इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी भी जानता है, किन्तु केवलज्ञानी नियम से अनन्त भवों को जानता है। जातिस्मरण–ज्ञानवाला बीच में यदि असंज्ञी का भव न करे तो अपने संज्ञी–पञ्चेन्द्रिय के उत्कृष्ट नौ सौ भवों को जान सकता है। जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जानने वाले का दृष्टान्त प्रदर्शित किया जाता है—

અથવા કોઈ પોતપોતાની ગતિ અને આગતિને જાણે તો ત્રણ પ્રકારના કારણથી જાણી શકે છે, તેને કહે છે-સહસંમતિ આદિથી, આત્માની સાથે રહેવા વાળી સમ્યગ્ મતિ-બુદ્ધિ અર્થાત્ પરોપદેશ વિનાજ ઉત્પન્ન થવા વાળી જાતિસ્મરણ, અવધિ, મનઃપર્યય, અને કેવલ-જ્ઞાનરૂપ મતિ તે સહસંમતિ કહેવાય છે. જાતિ-સ્મરણ વાળા નિયમથી સંખ્યાત ભવોને જાણે છે. અવધિજ્ઞાની સંખ્યાત અથવા અસંખ્યાત ભાવોને જાણે છે. એ પ્રમાણે મનઃપર્યાયજ્ઞાની પણ જાણે છે. પરંતુ કેવલજ્ઞાની નિયમથી અનન્ત ભવોને જાણે છે. જાતિસ્મરણ જ્ઞાનવાળા જીવ વચમાં જો અસંજ્ઞીનો ભવ ન કરે તો પોતાના સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિયના ઉત્કૃષ્ટ નવસો (૯૦૦) ભવોને જાણી શકે છે. જાતિસ્મરણથી પોતાના પૂર્વભવને જાણનારાનું દ્રષ્ટાંત બતાવે છે–

सुग्रीवनगरे बलभद्रनामा नृप आसीत् । तस्याग्रमहिषी मृगानाम्नी बभूव । बलभद्रनृपस्य तस्यां पुत्रो जातः । स च मातापितृभ्यां बलश्री-नाम लब्ध्वाऽपि लोके मृगापुत्र इति नाम्ना प्रसिद्धो बभूव । अथ मातापित्रोः परमप्रियः कृतयौवराज्याभिषेको मुदितचित्तो मृगापुत्रः प्रासादे दोगुन्दुगदेववत् प्रमदाभिः सह क्रीडतिस्म ।

स चैवं विलसन् मणिरत्नराजितकुट्टिमतले सर्वोपरिवर्तिनि प्रासाददेशे समुपविष्टः सकुतूहलं चतुष्क-त्रिक-चत्वर-मार्गान् विलोकमानः पथि शीलाढ्यं गुणसागरं तपोनियमसंयमधरं संयतमनिमिषदृशाऽद्राक्षीत् । तमवलोक्य शुभाध्य-

---

सुग्रीव नगर में बलभद्र नामक राजा था । उसकी पटरानी का नाम मृगा था इस मृगारानी से बलभद्र को पुत्र की प्राप्ति हुई । माता-पिताने उसका नाम बलश्री रक्खा, किन्तु वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ, वह माता-पिता का परम प्रिय था । उसका युवराज पद पर अभिषेक किया गया । वह प्रसन्न-चित्त होकर दोगुन्दुग (विलासी एक देवकी जाति) देव के समान अपने महलमें क्रीडा करता था ।

एक वार मृगापुत्र मणियों और रत्नों से सुशोभित फर्शवाले महल के सब से ऊपर के मंजिल पर बैठा था । वह कौतूहल के साथ नगर के चौपड त्रिक तथा चत्वर मार्गों का अवलोकन कर रहा था । तब उसे मार्ग में शील से विभूषित गुणों के सागर तप, नियम और संयम धारण करने वाले एक मुनि दृष्टिगोचर हुए । उसने टकटकी लगाकर

સુગ્રીવ નગરમાં બલભદ્ર નામનો રાજા હતો. તેની પટરાણીનું નામ-મૃગા હતું, તે મૃગા રાણી થકી બલભદ્રને પુત્રની પ્રાપ્તિ થઈ, માતા-પિતાએ તેનું નામ બલશ્રી રાખ્યું, પરંતુ તે લોકને વિષે મૃગાપુત્ર નામથી પ્રસિદ્ધ થયો. તે માતા-પિતાને પરમપ્રિય હતો, તેનો યુવરાજ પદ પર અભિષેક કર્યો. પછી તે પ્રસન્નચિત્ત થઈને દોગુન્દુગ (વિલાસી એક દેવની જાતિ) દેવ સમાન પોતાના મહેલમાં ક્રીડા કરતો હતો.

એક વાર મૃગાપુત્ર મણિઓ અને રત્નોથી-સુશોભિત ફર્શ-સુંદર તળિયાવાળો મહેલનો સૌથી ઉપરનો ખંડ હતો, તેના ઉપર બેઠો હતો. તે કુતુહલપૂર્વક નગરના ચૌપડ ત્રિક તથા ચત્વર માર્ગોનું અવલોકન કરી રહ્યો હતો. તે વખતે એ માર્ગમાં શીલથી વિભૂષિત, ગુણોના સાગર, તપ, નિયમ, સંયમ ધારણ કરવાવાળા એક મુનિ દૃષ્ટિગોચર

वसायेन मृगापुत्रो मूर्छामवाप्य जातिस्मरणं प्राप । 'पूर्वजन्मनि प्रव्रज्यां गृहीत्वा पञ्चमहाव्रतपालनेन स्वर्गसुखं लब्ध्वाऽहमिह राजकुले संजातः' इति । अनेन जातिस्मरणेन पुनरात्मकल्याणाय प्रयतते स्म ।

अवधिज्ञानिना मल्लीनाथेन भगवता संसारावस्थायां पूर्वजन्मवृत्तान्तोऽवलोकितः । मनःपर्यय-केवलज्ञानयोस्तु दृष्टान्तौ सुप्रतीतौ ।

तथा—परव्याकरणेन-परस्तीर्थङ्करस्तस्य व्याकरणं यथावस्थितार्थस्य-

---

उनकी ओर देखा । उन्हें देख कर मृगापुत्र को मूर्छा आ गई और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया । उससे मालूम हुआ कि-'पूर्व जन्म में दीक्षा धारण करके, पांचमहाव्रतों का पालन करके, पश्चात् स्वर्ग के सुख भोगकर मैं इस राजकुल में उत्पन्न हुआ हूँ ।' इस जातिस्मरण से वह फिर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो गया ।

अवधिज्ञानी भगवान् मल्लीनाथने संसार-अवस्थामें अपना पूर्व जन्म का वृत्तान्त देख लिया था । मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान के दृष्टान्त तो प्रसिद्ध ही हैं ।

तथा—परके व्याकरण से भी गति-आगति का ज्ञान होता है । पर का अर्थ है—तीर्थंकर । उनका व्याकरण अर्थात् पदार्थ का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर समझाकर कहना, अथवा परव्याकरण का अर्थ तीर्थंकर का प्रवचनरूप आगम समझना चाहिए ।

થયા, તે વખતે મૃગાપુત્ર એક નજરથી તેમની સામે જોયું, અને તેને જોઇને મૃગાપુત્રને મૂર્છા આવી ગઇ અને જાતિસ્મરણ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું, તેનાથી માલૂમ પડયું કે-"હું પૂર્વ જન્મમાં દીક્ષા ધારણ કરીને, પાંચ મહાવ્રતોનું પાલન કરી, પછી સ્વર્ગના સુખો ભોગવીને આ રાજકુલમાં ઉત્પન્ન થયો છું" આ પ્રમાણે જાતિસ્મરણ થવાથી તે ફરીને આત્મકલ્યાણમાં પ્રવૃત્ત થઈ ગયો.

અવધિજ્ઞાની મલ્લીનાથ ભગવાને સંસાર-અવસ્થામાં પોતાના પૂર્વ જન્મનો વૃત્તાન્ત જોઈ લીધો હતો. મનઃપર્યયજ્ઞાન અને કેવલજ્ઞાનના દ્રષ્ટાંત તો પ્રસિદ્ધ જ છે.

તથા-પરના વ્યાકરણથી પણ ગતિ-આગતિનું જ્ઞાન થાય છે. પરનો અર્થ છે-તીર્થંકર, તેનું વ્યાકરણ-અર્થાત્ પદાર્થનું સ્વરૂપ યથાર્થરૂપથી જાણી-સમજીને કહેવું, અથવા પરવ્યાકરણનો અર્થ-તીર્થંકરના પ્રવચનરૂપ આગમ સમજવું જોઈએ.

साक्षात्कारेण सम्बोध्य कथनम् , तीर्थङ्करप्रवचनरूप आगमो वा, तेन। परव्याकरणोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देशनया मेघकुमाराद्यो जातिस्मरणं प्राप्तवन्तः।

तथा—अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वेति, अन्येषां समीपे, श्रुत्वा स्वगत्या-गत्यादिबोधकतद्वचनश्रवणेन। तृतीयोदाहरणं यथा-षड् मित्रभूपाश्छद्मस्थावस्थस्य मल्लीनाथभगवतः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमवापुः।

अथात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेव दर्शयति-तद्यथा-इत्यादि 'पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावद् अन्यतरस्या दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि-द्रव्यदिशाज्ञानं, तथा-

---

परव्याकरणका उदाहरण जैसे-साक्षात् भगवान् की देशना से मेघकुमार आदिने जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त किया था।

तथा—दूसरों से सुनकर भी गति अगति का ज्ञान होता है। तात्पर्य यह है कि-अपनी गति एवं आगति समझाने वाले दूसरे के बचनों से भी जातिस्मरण हो जाता है। जैसे—छह मित्र-राजाओंने छद्मस्थ-अवस्था वाले भगवान् मल्लिनाथ के वचनों से जातिस्मरण प्राप्त किया था।

आत्मा के विषय में गति-आगति आदि का ज्ञान जिस प्रकार होता है, उसे दिखलाते हैं-'मैं पूर्व दिशा से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा अनुदिशा से मैं आया हूँ' इस कथन से अपने गमन तक की द्रव्य-दिशा का ज्ञान सूचित किया है। तथा 'मेरा आत्मा औपपातिक' है यहाँ से लेकर 'भ्रमण करता है,

---

परव्याकरणनुं उदाहरण, जेमके-साक्षात् भगवाननी देशनाथी मेघकुमार आदिए जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर्युं हतुं.

तथा-बीजा पासेथी सांभळीने पण गति-आगतिनुं ज्ञान थाय छे केः-पोतानी गति अने आगति समजाववावाळा बीजाना वचनोथी पण जातिस्मरण ज्ञान थई जाय छे. जेम-छ मित्र-राजाओए छद्मस्थ-अवस्था वाळा भगवान मल्लिनाथना वचनोथी जाति स्मरण प्राप्त कर्युं हतुं.

आत्माना विषयमां गति-आगतिनुं ज्ञान जे प्रमाणे होय छे तेने देखाडे छे-'हुं पूर्व दिशाथी आव्यो छुं, (यावत्) अन्यतर दिशाथी अथवा अनुदिशाथी हुं आव्यो छुं' आ कथनथी पोताना गमन सुधीनी द्रव्यदिशानुं ज्ञान सूचित कर्युं छे,

'अस्ति मे आत्मा औपपातिकः' इत्यारभ्य 'अनुसंचरति सोऽहम्' इत्यन्तेन द्रव्य-भावोभयदिशाज्ञानं भगवता प्रदर्शितम् ।

सोऽहमस्मी'त्येनेनेदमावेदितं भवति । त्रिविधान्यतमेन कारणेन ज्ञानं प्राप्तो जीवः स्वात्मस्वरूपमेवं विजानाति–यदयमात्मा सकलकर्मक्षयावधि चतुर्गति-भ्रमणकर्ता पुनरपि कस्याश्चिदेकस्यां दिशायामनुदिशायां वा गमिष्यति नास्त्यस्य गतिविरामस्तावदिति । एवमयमात्मा सर्वस्या दिशाया अनुदिशाया आगतःपुनरपि स्वकर्मवशगः सन् सर्वस्यां दिशायामनुदिशायां वा परिभ्रमिष्यति । न कदाचिदस्य विश्रान्तिलेशोऽपि तादृशोऽहमस्मीति ॥ सू० ४ ॥

वह मैं हूँ' यहाँ तक द्रव्यदिशा और भावदिशा, दोनों का ज्ञान भगवान्‌ने प्रदर्शित किया है ।

'वही मैं हूँ' इस कथन से यह प्रकट होता है कि—तीन में से किसी एक कारण के द्वारा ज्ञान को प्राप्त जीव इस रूप में अपना आत्मस्वरूप जानता है, कि—यह आत्मा जब तक समस्त कर्मों का क्षय नहीं कर देता तब तक चारों गतियों में भ्रमण करता है और फिर किसी एक दिशा में या अनुदिशामें गमन करेगा परन्तु कर्मों का क्षय जब तक न हो तब तक उसकी गति का अन्त नहीं आता है । इस प्रकार यह आत्मा सब दिशाओं से और अनुदिशाओं से आया है और कर्मों के अधीन हो कर फिर सब दिशाओं अथवा विदिशाओं में परिभ्रमण करेगा, इसे लेशमात्र भी कभी विश्राम नहीं मिल सकता, ऐसा मैं हूँ ॥ सू० ४ ॥

તથા-'મારો આત્મા ઔપપાતિક છે' ત્યાંથી લઇને 'ભ્રમણ કરે છે' તે હું છું, ત્યાં સુધી દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા, એ બન્નેનું જ્ઞાન ભગવાને પ્રદર્શિત કર્યું છે. "તે હું છું" આ કથનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે એ ત્રણમાંથી કોઈ કારણ દ્વારા જ્ઞાનને પામેલો જીવ આ રૂપમાં પોતાના આત્મસ્વરૂપને જાણે છે કે આ આત્મા જ્યાં સુધી સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરતો નથી, ત્યાં સુધી ચારેય ગતિઓમાં ભ્રમણ કરતો રહે છે, અને ફરી કોઈ દિશામાં અથવા તો અનુદિશામાં ગમન કરશે. પરંતુ જ્યાં સુધી કર્મોનો ક્ષય નહિ હોય ત્યાં સુધી તેની ગતિનો અંત આવતો નથી. એ પ્રમાણે આ આત્મા સર્વ દિશાઓથી અને અનુદિશાઓથી આવ્યો છે અને કર્મોને આધીન થઇને ફરીથી સર્વ દિશાઓ અથવા વિદિશાઓમાં પરિભ્રભમણ કરશે. તેને લેશમાત્ર પણ વિશ્રામ મળી શકતો નથી એવો હું છું, (સૂ૦ ૪)

आत्मवादिप्रकरणम्—

यस्तु द्रव्यदिक्षु भावदिक्षु चात्मनो गत्यागती अवगत्य स्वमात्मानमेवं विजानाति-'अयमात्मा असिद्धगतिप्राप्तिचतुर्गतिषु घूर्णमानो जन्मान्तरसंक्रान्त-स्त्रिकालवर्ती शरीराद् भिन्नो नित्यपरिणामी ज्ञानसम्यक्त्वचारित्रसुखवीर्यादिगुणवा-निति, स एवात्मवादीत्याह—'से आयावादी' इत्यादि ।

मूलम्—

से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स आत्मवादी, लोकवादी कर्मवादी, क्रियावादी ॥ सू० ५ ॥

आत्मवादिप्रकरण-

जो जीव द्रव्य दिशाओं में और भावदिशाओं में आत्मा का गमन-आगन जान कर अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार जानता है कि-यह आत्मा सिद्धगति की प्राप्तिरहित चार गतियों में भ्रमण करता हुआ एक जन्म से दूसरे जन्म को ग्रहण करता है, त्रिकालवर्ती है, शरीर से भिन्न है, नित्यपरिणामी है, और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य आदि गुणों वाला है, वही आत्मवादी है । अब इसी विषय का निरूपण किया जाता है :—'**से आयावादी**' इत्यादि ।

मूलार्थ—'**से आयावादी**' इति । वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है, क्रीयावादी है (सू० ५)

આત્મવાદીપ્રકરણ

જે જીવ દ્રવ્યદિશાઓમાં અને ભાવદિશાઓમાં આત્માનું જવું-આવવું જાણીને પોતાના આત્માના વિષયમાં એ પ્રમાણે જાણે છે કે:-આ આત્મા સિદ્ધગતિની પ્રાપ્તિ વિના બીજી ચાર ગતિઓમાં ભ્રમણ કરતો કરતો એક જન્મથી બીજો જન્મ ગ્રહણ કરે છે, ત્રિકાલવર્તી છે શરીરથી ભિન્ન છે, નિત્યપરિણામી છે અને સમ્યકત્વ, જ્ઞાન, ચારિત્ર, સુખ, વીર્ય આદિ ગુણો વાળો છે, તે આત્મવાદી છે. હવે આ વિષયનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—'से आयावादी' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ-'से अयावादी' ઇતિ. તે આત્મવાદી છે, લોકવાદી છે, કર્મવાદી છે અને ક્રિયાવાદી છે. (સૂ. ૫)

टीका—

'से आयावादी' इति। सः=इत्थमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी=आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनिः, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववान्। अयं भावः-आत्मस्वरूपं वक्तारो जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुसृत्यात्मानं विजानातीति।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम्। तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्रुचिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादत्रात्मज्ञानप्रसङ्गेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस (पूर्वोक्त) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है, अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है। तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले संसार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है। उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीकी निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण हैं—प्रवृत्ति नहीं होती, अतः आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

ટીકાર્થ—જે આ (પૂર્વોક્ત) પ્રકારથી આત્માને જાણે છે, તે આત્મવાદી છે, અર્થાત્-આત્માના સ્વરૂપને કહેવા વાળા છે; તાત્પર્ય એ છે કેઃ-આત્માનું સ્વરૂપ કહેવા વાળા સંસારમાં ઘણા છે. પરંતુ વાસ્તવમાં સાચા આત્મવાદી તે છે કે જે પૂર્વોક્ત પ્રકારથી આત્માના જ્ઞાતા છે, અર્થાત્ પૂર્વોક્ત પ્રકારે આત્માને જાણે છે.

આત્માના સ્વરૂપને સમજ્યા વિના બંધનું સ્વરૂપ સમજવું અશક્ય છે, તેના અભાવમાં કોઈનો આત્મા ઉત્કર્ષ કરવું રૂચિકર થતું નથી. અને તે રૂચિના અભાવમાં કોઈને નિશ્ચય-વ્યવહારરૂપ જ્ઞાન અને ક્રિયામાં જે મોક્ષનું કારણ છે તેમાં પ્રવૃત્તિ થતી નથી. તે કારણથી આત્મજ્ઞાનનો પ્રસંગ હોવાથી અહિં થોડું વિવેચન કરવામાં આવે છે—

आत्मशब्दार्थः—

अतति-नित्यं जानातीति आत्मा। 'अत सातत्यगमने' इत्यत्रात-धातोर्गत्यर्थकत्वाद्, गत्यर्थानां च ज्ञानार्थकतया स्वीकारादयमर्थो लभ्यते। सिद्धसंसारिभेदेन द्विविधस्यापि जीवस्य सर्वदाऽवबोधसद्भावादात्मनः कस्यांचिदवस्थायामुपयोगवियोगो न जायते। कदाचिदप्यवबोधाभावे च जीवत्वमेव व्याहन्येत। अत एव-'जीवो उवओगलक्खणो' इत्युक्तम् (उत्तरा.२८ अ. १० श्लो.)

यद्वा-अतति-सततं गच्छति, निरन्तरं प्राप्नोति स्वकीयान् पर्यायानिति-आत्मा।

आत्मशब्द का अर्थ—

'**अतति**'-**इति-आत्मा**' अर्थात् जो नित्य जानता रहता है वह आत्मा कहलाता है। '**अत**' धातु सतत गमन करने के अर्थ में है और गमनार्थक सभी धातु ज्ञानार्थक होते हैं, अतः उपर्युक्त अर्थ किया गया है। क्या सिद्ध और क्या संसारी, दोनों ही प्रकार के जीवों में सदैव ज्ञान विद्यमान रहता है, और किसी भी अवस्था में उपयोगका वियोग नहीं होता। किसी समय ज्ञान का अभाव हो जाय तो जीव में जीवत्व ही नहीं रहे। इसी कारण उत्तराध्ययन सूत्र (अ. २८ श्लो. १०) में कहा है :-"**जीवो उवओगलक्खणो**" जीव उपयोग लक्षण वाला है।

अथवा—अतति अर्थात् जो अपने पर्यायों को सतत प्राप्त होता रहता है वह आत्मा है।

આત્મા શબ્દનો અર્થ—

'अतति' इति आत्मा અર્થાત્ જે જાણતો રહે છે, તે આત્મા કહેવાય છે. 'अत' ધાતુ સતત ગમન કરવાના અર્થમાં છે. અને ગમનાર્થક સર્વ ધાતુ જ્ઞાનાર્થક પણ હોય છે. (ગમન કરવું એવા અર્થવાળા તમામ ધાતુ જ્ઞાન અર્થવાળા પણ હોય છે) એ કારણથી ઉપર કહેલો અર્થ કર્યો છે. તો શું સિદ્ધ અને સંસારી બંને પ્રકારના જીવોમાં હમેશાં જ્ઞાન વિદ્યમાન રહે છે અને કોઈ પણ અવસ્થામાં ઉપયોગનો વિયોગ થતો નથી કોઈ સમય જ્ઞાનનો અભાવ થઈ જાય તો જીવમાં જીવત્વ જ ન રહે. એ કારણથી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ. ૨૮ શ્લો. ૧૦) માં કહ્યું છે કેઃ— "जीवो उवओगलक्खणो" "જીવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે."

અથવા—अतति અર્થાત્ જે પોતાના પર્યાયોને સતત પ્રાપ્ત થતો રહે છે, તે આત્મા છે.

नन्वेवं गगनादीनामपि सततं स्वपर्यायप्राप्त्या तत्रात्मशब्दप्रयोगो दुर्वारः, कदापि पर्यायाभावे त्वपरिणामित्वेन तेषां वस्तुत्वमेव न स्यादिति चेन्मैवम्, सततस्वपर्यायप्राप्तिकर्तृत्वमिति व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रमात्मशब्दस्य, न तु तत् प्रवृत्तिनिमित्तम्। प्रवृत्तिनिमित्तं चास्योपयोग एवेति गगनादिषु नात्मशब्दः प्रवर्तते।

यद्वा—सततं गच्छतीत्ययमर्थोऽपि न विरुध्यते संसारदशायां कर्मवशेन नानागतिषु सततगमनात्, मुक्तावस्थायामपि भूतकालिकसततगमनसद्भावात्।

शङ्का—आकाश आदि भी अपने अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तो उनके लिये भी आत्मा शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होगा। किसी समय उन में पर्याय का अभाव हो तो वे अपरिणामी ठहरेंगे और तब उन में वस्तुत्व ही नहीं रहेगा।

समाधान—ऐसा मत कहिए। निरन्तर अपने पर्यायों को प्राप्त करना तो आत्मा शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र है, वह प्रवृत्तिनिमित्त नहीं है, प्रवृतिनिमित्त तो उपयोग ही है, अतः आकाश आदि में आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता।

अथवा 'निरन्तर गमन करता है' इस अर्थ का भी विरोध नहीं है; क्यों कि संसार–अवस्था में कर्म के अधीन होकर आत्मा नाना गतियों में सदैव गमन करता रहता है, मुक्त अवस्था में भी भूतकालीन सतत गमन विद्यमान है।

શંકા—આકાશ આદિ પણ પોત પોતાના પર્યાયોને નિરંતર પ્રાપ્ત થતા રહે છે, તો તેને માટે પણ આત્મા શબ્દનો પ્રયોગ કરવો અનિવાર્ય થશે. કોઇ સમય તેનામાં પર્યાયનો અભાવ હોય તો તે અપરિણામી ઠરશે ત્યારે તેનામાં વસ્તુત્વ પણ નહિ રહે.

સમાધાન—એ પ્રમાણે ન કહો. નિરન્તર પોતાના પર્યાયોને પ્રાપ્ત કરવું તે તો આત્મ શબ્દની વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત માત્ર છે, પરંતુ તે પ્રવૃત્તિનિમિત્ત નથી; પ્રવૃત્તિનિમિત્ત તો ઉપયોગ જ છે, તેથી આકાશ આદિમાં આત્મ શબ્દનો પ્રયોગ થઈ શકતો નથી.

અથવા—નિરન્તર ગમન કરે છે, આ અર્થનો પણ વિરોધ નથી. કેમકે–સંસાર અવસ્થામાં કર્મના આધીન બનીને આત્મા અનેક ગતિઓમાં હમેશાં ગમન કરતો રહે છે. મુક્ત–અવસ્થામાં પણ ભૂતકાલીન સતત ગમન વિદ્યમાન છે.

आत्मनोऽस्तित्वसिद्धिः—

तावत् प्रत्यक्षप्रमाणत एवात्मनः सिद्धिरुच्यते—(१) किमयमात्मा-अस्ति नास्ति वेति संशयादिविज्ञानं स्वस्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण सिद्धम् , स एवात्मा, संशयादिज्ञानस्यैव तदनन्यत्वेनात्मरूपत्वात् ।

(२) तथा-आत्मानमाश्रित्यैव सुखदुःखादयः स्वस्वशरीर एव प्रत्यक्षेण संवेद्यन्ते ।

(३) यद्वा-कृतवानहं, करोम्यहं, करिष्याम्यहम् , इत्यादिप्रकारेण योऽयम्-अहम्प्रत्ययः, एतस्मादपि प्रत्यक्ष एवायमात्मा । कथमसत्यात्मनि-

आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि—

सर्व प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण से ही आत्मा की सिद्धि कहते हैं:-

(१) आत्मा है या नही है, इस प्रकार का संशय आदि ज्ञान अपनी अपनी आत्मा में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है । वही ज्ञान आत्मा है, अर्थात् संशय आदि ज्ञान आत्मासे अभिन्न होने के कारण आत्मस्वरूप ही है ।

(२) आत्मा को आश्रित करके ही दुःख-सुख आदि अपने२ शरीर में प्रत्यक्ष से जाने जाते हैं ।

(३) अथवा-मैं कर चुका, मैं करता हूँ, मैं करूँगा, इत्यादि रूप से जो अहम्प्रत्यय होता है उससे भी आत्मा का प्रत्यक्ष होता है । आत्मा न होता तो आत्मा के विषय में अहम्प्रत्यय (मैं का ज्ञान) किस प्रकार हो सकता था ? आत्मरूप विषय के

આત્માના અસ્તિત્વની સિદ્ધિ—

સૌથી પ્રથમ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી જ આત્માની સિદ્ધિ કહે છે:—(૧) આત્મા છે કે નહિ, આ પ્રકારનું સંશય આદિ જ્ઞાન પોત પોતાના આત્મામાં સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે, તે જ્ઞાન આત્મા છે. અર્થાત્ સંશય આદિ જ્ઞાન આત્માથી અભિન્ન હોવાના કારણે આત્મસ્વરૂપ જ છે.

(૨) આત્માના આશ્રિતપણાથી જ દુઃખ-સુખ આદિ પોત-પોતાના શરીરમાં પ્રત્યક્ષ જાણવામાં આવે છે.

(૩) અથવા-હું કરી ચૂકયો, હું કરૂં છું. હું કરીશ, ઇત્યાદિરૂપથી જે અહંપ્રત્યય થાય છે, તેથી પણ આત્માનું પ્રત્યક્ષપણું થાય છે. આત્મા ન હોય તો આત્માના વિષયમાં અહમ્પ્રત્યય (હું પણાનું જ્ઞાન) કેવી રીતે થઈ શકે ? આત્મરૂપ

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते। आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात्। न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम्। जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात्। अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति। आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात् ?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात्। यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु। संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति।

अभाव में विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। शरीर ही इस ज्ञान का विषय है–अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि–ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता। आत्मा को विषय करनेवाले इस अम्हप्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का संशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मै हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है। आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है। विना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि संशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं ?' इस प्रकार का संशय करता कौन है? संशय एक प्रकार का ज्ञान–गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता।

વિષયના અભાવમાં વિષયી અર્થાત્ જ્ઞાનની ઉત્પત્તિ નથી થઈ શકતી. શરીર જ આ જ્ઞાનનો વિષય છે, અર્થાત્ 'અહમ્,' (હું) નો અર્થ આત્મા નથી બલ્કે શરીર છે, એમ કહેવું તે ઉચિત નથી, કેમકે જો એમ હોય તો મૃત શરીરમાં અહમ્પ્રત્યય થઈ શકશે. આત્માને વિષય કરવા વાળો આ–અહમ્પ્રત્યયની વિદ્યમાનતામાં "હું છું કે નથી" આ પ્રકારનો સંશય જ થતો નથી અહમ્પ્રત્યયના વિષયભૂત આત્માનો સદ્ભાવ હોવાથી "હું છું" આ પ્રકારનો નિશ્ચય જ થઈ શકે છે. આત્માના અસ્તિત્વના વિષયમાં સંશય કરવામાં આવે તો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે કે આ અહમ્પ્રત્યય કોને થાય છે? કારણ વિના તો તેની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી જો સંશય કરવા વાળો જીવ નથી તો "હું છું કે નહિ" એ પ્રકારનો સંશય કરનાર કોણ છે? સંશય એક પ્રકારનો જ્ઞાન–ગુણ છે, અને ગુણ ગુણીના અભાવમાં થઈ શકતો નથી.

न च देहोऽत्र गुणीति वाच्यम्, देहस्य मूर्तत्वाद् जडत्वाच्च ज्ञानस्य चामूर्तत्वाद् बोधरूपत्वाच्च । अहं नाहं वेतिगदतो 'माता मे वन्ध्या' इत्यादिवत् स्ववचनव्याघातः ।

(४) यद्वा-आत्मा गुणी प्रत्यक्ष एव, स्मृति-जिज्ञासा-चिकीर्षा-जिगमिषा-संशयादिज्ञानविशेषाणां तद्गुणानां स्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-सिद्धत्वात्, इह यस्य गुणाः प्रत्यक्षाः स प्रत्यक्षो दृष्टः, यथा घटः, प्रत्यक्षगुणश्चात्मा, तस्मात् प्रत्यक्षः । यथा घटोऽपि गुणी रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वादेव प्रत्यक्षः, तथा विज्ञानादिगुणप्रत्यक्षत्वादात्मापीति ।

यहाँ यह कहना ठीक नहीं है कि-'देह गुणी है', क्यों कि देह मूर्त है और जड है जब कि ज्ञान अमूर्त है और चेतनरूप है । मूर्त गुणी का अमूर्त गुण नहीं हो सकता और न जड का गुण चेतना हो सकता है । इस कारण 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार कहने वाले को 'मेरी माता वन्ध्या है' ऐसा कहने वाले के समान स्ववचनबाधा दोष आता है ।

(४) अथवा आत्मा गुणी प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है, क्योंकि स्मृति, जिज्ञासा, करने की इच्छा, गमन की इच्छा, संशय आदि ज्ञान-जो आत्मा के गुण है-अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष से सिद्र हैं, जिस पदार्थ के गुण प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं वह पदार्थ भी प्रत्यक्ष माना जाता है, जैसे घट, आत्माके गुण भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं इस कारण आत्मा प्रत्यक्ष है । घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से ही गुणी घट का प्रत्यक्ष होना देखा जाता है, इसी प्रकार विज्ञान आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा भी प्रत्यक्ष है ।

અહીં 'દેહ ગુણી છે' એમ કહેવું તે ઠીક નથી, કારણ કે દેહ મૂર્ત છે અને જડ છે. જ્યારે જ્ઞાન અમૂર્ત છે અને ચેતનરૂપ છે. મૂર્ત ગુણીનો અમૂર્ત ગુણ હોઇ શકે નહિ. અને જડનો ગુણ ચેતન થઈ શકે નહિ. આ કારણથી. "હું છું કે નહિ" એ પ્રમાણે કહેવાવાળાને "મારી માતા વંધ્યા છે" એ પ્રમાણે કહેનારના જેવો સ્વવચનબાધા નામનો દોષ આવે છે.

(૪) અથવા-આત્મા ગુણી પ્રત્યક્ષથી જ સિદ્ધ છે, કેમકે-સ્મૃતિ, જીજ્ઞાસા, કરવાની ઇચ્છા, ગમનની ઇચ્છા, સંશય આદિજ્ઞાન વગેરે જે આત્માના ગુણ છે તે પોતાના આત્મામાં પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે. જે પદાર્થનો ગુણ પ્રત્યક્ષથી પ્રતીત થાય છે તે પદાર્થ પણ પ્રત્યક્ષ માનવામાં આવે છે. જેમ-ઘટ, આત્માનો ગુણ પ્રત્યક્ષથી પ્રતીત થાય છે. તે કારણથી આત્મા પ્રત્યક્ષ છે. ઘટના રૂપ આદિ ગુણો પ્રત્યક્ષ હોવાથી જ ગુણી ઘટનું પ્રત્યક્ષ હોવું જોવામાં આવે છે. તે પ્રમાણે વિજ્ઞાન આદિ ગુણો પ્રત્યક્ષ હોવાથી આત્મા પણ પ્રત્યક્ષ છે.

न चाऽनैकान्तिकोऽयं हेतुः, यस्मादाकाशगुणः शब्दः प्रत्यक्षोऽस्ति, न पुनराकाशमिति वाच्यम्, शब्दस्याकाशगुणत्वाभावात्। शब्दो हि पुद्गलगुणः न्द्रियकत्वाद् रूपादिवदिति।

अस्तु, गुणाः प्रत्यक्षाः, गुणिनस्तु प्रत्यक्षत्वे किं मानम्? उच्यते—गुणेभ्योऽनन्यो गुणीति ज्ञानादिगुणानां प्रत्यक्षत्वादेवात्माऽपि गुणी प्रत्यक्षेण ज्ञायते। यदि गुणेभ्योऽन्यो गुणी स्यात्, तदा घटादयोपि गुणिनः प्रत्यक्षा न भवेयुः,

---

शङ्का—आप का दिया हुआ हेतु अनैकान्तिक है, क्यों कि आकाश के गुण शब्द का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता।

समाधान-ऐसा न कहिए, क्यों कि शब्द आकाश का गुण नहीं है। शब्द पुद्गल का गुण है, क्यों कि वह इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय) का विषय है, जो इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक ही होता है, जैसे—रूप आदि

शङ्का—गुणों को प्रत्यक्ष मान लें किन्तु गुणी के प्रत्यक्ष होने में क्या प्रमाण है?

समाधान—गुण और गुणी का कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है—गुणी, गुणों से अभिन्न होता है, अत एव गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होता है। अगर गुणी, गुणों से भिन्न होता तो गुणी घट आदिका भी प्रत्यक्ष न होता, क्योंकि सिर्फ रूपादि गुणों से भिन्न घट का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता।

શંકા—આપે જે હેતુ અહિં આપ્યો છે તે અનૈકાન્તિક છે; કેમકે આકાશનો ગુણ શબ્દ તે તો પ્રત્યક્ષ થાય છે, પરંતુ આકાશ પ્રત્યક્ષ થતું નથી.

સમાધાન—એ પ્રમાણે ન કહો, કેમકે શબ્દ તે આકાશનો ગુણ નથી પણ શબ્દ તે પુદ્ગલનો ગુણ છે. કેમકે તે ઈન્દ્રિય (શ્રોત્રેન્દ્રિય)નો વિષય છે. જે ઇન્દ્રિયનો વિષય હોય છે તે પૌદ્ગલિક જ હોય છે, જેમ-રૂપ આદિ.

શંકા—ગુણોને પ્રત્યક્ષ માની લઈએ. પરંતુ ગુણીના પ્રત્યક્ષપણામાં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાન—ગુણ અને ગુણીનો કંથચિત્ તાદાત્મ્ય સંબંધ છે-ગુણી, ગુણોથી અભિન્ન હોય છે, એટલે ગુણોના પ્રત્યક્ષપણાથી આત્મા ગુણી પણ પ્રત્યક્ષ પ્રતીત થાય છે. અગર જો ગુણી, ગુણોથી ભિન્ન હોત તો ગુણી ઘટ આદિ પણ પ્રત્યક્ષ થઈ શકત નહિ. કેમકે માત્ર રૂપાદિ ગુણોજ પ્રત્યક્ષ હોય છે, રૂપાદિ ગુણોથી ભિન્ન

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात्। अन्यस्मिन् ज्ञातेऽन्यज्ज्ञातं न भवति, यथा घटे ज्ञाते पटो न ज्ञायते। गुणाः कदापि द्रव्याद् भिन्नतया सत्तां न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेभ्यो भिन्नतया न सत्तां लभते। अयं गुणः अयं गुणीति नाममात्रतो भेदसत्त्वेऽपि न तत्त्वतो भेदः। यथा-अग्निर्गुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तभिन्नः स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न शक्नुयात्।

तथा-यद्यात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नो भवेत् तदा तस्य जड़त्वापत्तिः स्यात्। तस्माद् द्रव्यगुणयोर्भेदो न कदाचिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम्।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन तव मते गुणेभ्यः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा

अन्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता। जैसे-घट के जाननेसे पट मालूम नहीं होता। गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता। 'यह गुण है, यह गुणी है' इस प्रकारका भेद नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में भेद नही है। अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य (जलाने का कार्य) करने में असमर्थ होता।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में जडता आ जाती। अत एव द्रव्य और गुण का भेद न कभी था, न है, और न होगा।

दुर्जनसन्तोषन्याय से, तुम्हारे मत के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भले ही न हो

ઘટ ક્યારેય પ્રત્યક્ષ નથી થતો. અન્યનું જ્ઞાન થવાથી અન્યનો બોધ થતો નથી, જેમકે ઘટના જ્ઞાનથી પટ માલૂમ થતો નથી (પટનું જ્ઞાન થતું નથી;). ગુણ, દ્રવ્યથી ભિન્ન કદાપિ રહી શકતો નથી. 'આ ગુણ છે અને આ ગુણી છે' એ પ્રકારનો ભેદ નામમાત્રનો છે વાસ્તવિક રીતે ગુણ-ગુણીમાં ભેદ નથી. અગર અગ્નિ ગુણી પોતાના ઉષ્ણતાગુણથી અત્યન્ત ભિન્ન થઈ જાય તો તે દાહકાર્ય (બાળવાનું કાર્ય) કરવામાં અસમર્થ થઈ જાય છે.

બીજી વાત એ છે કે-આત્મા જો પોતાના જ્ઞાનગુણથી ભિન્ન હોય તો આત્મામાં જડતા આવી જાય. એટલા માટે દ્રવ્ય અને ગુણનો ભેદ કોઇ પણ વખતે હતો નહિ, છે નહિ અને થશે પણ નહિ.

દુર્જનસંતોષ ન્યાયથી તમારા મત પ્રમાણે કદાચિત્ એમ માની લઈએ કે આત્મા ગુણોથી ભિન્ન છે, અને તે કારણે આત્મા પ્રત્યક્ષ ભલે ન થાય તો પણ

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्बाधमेव। ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप आत्मा कथमपलप्येत।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव रूपादीनां घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा। प्रयोगश्चैवम्—देहगुणा एव ज्ञानादयः, तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरकृशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुषत्वाद् वा, गगनवत्। द्रव्यविरहितो गुणो न भवति।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नहीं आती। जिस के ज्ञानादि गुण मौजुद हैं उस गुणीरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है ?।

शङ्का—देह में ही ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, अतः इन गुणों का आधार गुणी देह ही है, जैसे—रूपादि गुणों का आधार घट है। आत्मा ज्ञानादि गुणों का आश्रयभूत गुणी नहीं है। अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण हैं, क्यों कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे—गौरपन, दुबलापन और स्थूलता आदि।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं हैं, क्यों कि वे अमूर्त्त हैं और अचाक्षुष (जो आंखसे नहीं दीखता) हैं; जो अमूर्त्त और अचाक्षुष होते हैं वे देहके गुण नहीं होते, जैसे आकाश।

गुण, द्रव्य के विना रह नहीं सकते अतः ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए। ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एवं अचाक्षुष गुणी हैं वह देह से भिन्न आत्मा ही है।

આત્માના અસ્તિત્વમાં કોઈ પ્રકારની હરકત આવતી નથી. જેના જ્ઞાનાદિ ગુણ હૈયાત છે, તે ગુણીરૂપ આત્માનો અપલાપ-(છતી વસ્તુને નથી એમ કહેવું તે) કેમ કરવામાં આવે ?.

શંકા—દેહમાં જ જ્ઞાનાદિ ગુણ દેખાય છે, તે કારણથી એ ગુણોનો-આધાર ગુણી દેહ જ છે, જેમ રૂપાદિ ગુણોનો આધાર ઘટ છે. આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો આશ્રયભૂત ગુણી નથી. અનુમાન આ પ્રમાણે છે-જ્ઞાન આદિ દેહના ગુણ છે, કેમકે તે દેહમાં જ ઉપલબ્ધ જણાય છે, જેમકે ગોરાપણું, દુબલાપણું અને સ્થૂળતા--જાડાપણું વગેરે.

સમાધાન—એ પ્રમાણે કહેલું તે યોગ્ય નથી; જ્ઞાન આદિ ગુણ તે દેહના ગુણ નથી, કેમકે તે અમૂર્ત્ત છે, અને અચાક્ષુષ છે. (જે નેત્રથી દેખાતા નથી). જે અમૂર્ત્ત અને અચાક્ષુષ હોય છે તે દેહના ગુણ થઈ શકતા નથી, જેમ આકાશ. ગુણ, દ્રવ્ય વિના રહી શકતા નથી, તે કારણથી જ્ઞાન આદિ ગુણોના આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય હોવું જોઈએ. એટલા માટે જ્ઞાનાદિ ગુણોને અનુરૂપ જે અરૂપી અને અચાક્ષુષ ગુણી છે, તે દેહથી ભિન્ન આત્મા જ છે.

तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुरूपो यो रूपरहितोऽचाक्षुषश्च गुणी स देहाद् भिन्न आत्माऽस्तीति विज्ञेयः ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षबाधितम्, ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसद्भावादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्याऽनुमानबाधितत्वात् । शरीरेन्द्रियभिन्नं ज्ञानादिगुणवत्त्वमनुमानेन सिध्यति । तथाहि—शरीरेन्द्रियभिन्नो ज्ञानादिगुणवान्, तदुपरमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् । यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलब्धमर्थमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टः, यथा—पञ्चवातायनोपलब्धार्थानुस्मर्ता देवदत्तः, इत्यादि । केनचित् कारणेन दृष्टिशक्तिविघातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं भवतीत्यतो देहेन्द्रियादिभिन्न आत्मा गुणी सिध्यति ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं हैं, यह अनुमान, प्रत्यक्ष से बाधित है, क्यों कि—प्रत्यक्षप्रमाण से वे देह में ही प्रतीत होते हैं, यह कथन ठीक नहीं है, क्यों कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से बाधित है। अनुमान से यह सिद्ध है कि—ज्ञान आदि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है। अनुमान इस प्रकार है—ज्ञानादि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है। जिसके नष्ट हो जाने पर भी, जिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है वह उस से भिन्न होता है। जैसे—पांच खिडकियों द्वारा जाने हुए पदार्थों को स्मरण करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देखने की शक्ति नष्ट हो जाने पर भी पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण होता है। इस से भलीभाँति सिद्ध है कि—देह और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है।

જ્ઞાનાદિ ગુણ દેહસંબંધી નથી, કારણ કે તે અનુમાન પ્રત્યક્ષથી બાધિત છે, કેમકે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી તે દેહમાં જ પ્રતીત થાય છે; તે કથન ઠીક નથી. કેમકે તે પ્રત્યક્ષ અનુમાનથી બાધિત છે. અનુમાનથી એ સિદ્ધ છે કે જ્ઞાન આદિ ગુણોનો આધાર શરીર અને ઇન્દ્રિયોથી કોઈ ભિન્ન પદાર્થ (આત્મા) જ છે. અનુમાન આ પ્રમાણે છે—જ્ઞાનાદિ ગુણોનો આધાર શરીર અને ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે, કેમકે તેના નષ્ટ થવા છતાંય તેના દ્વારા જાણેલા પદાર્થનું સ્મરણ હોય છે. જેના નષ્ટ થયા પછી પણ, જેના દ્વારા જાણેલો પદાર્થ તેનું જે સ્મરણ કરે છે તે તેનાથી ભિન્ન હોય છે. જેમ પાંચ બારીઓ દ્વારા જોવા વાળા પદાર્થોનું સ્મરણ કરવા વાળો દેવદત્ત છે. તેને કોઈ કારણથી દેખવાની શક્તિ નષ્ટ થઇ જવા છતાંય પ્રથમ દેખેલા પદાર્થોનું

एवं च प्रत्यक्षप्रमाणेनात्मनोऽस्तित्वं निरूपितम् ।

अथ ज्ञानादिगुणानां स्वात्मनि प्रत्यक्षतया तदनन्यभूतः स्वात्माऽपि प्रत्यक्षो भवतु, परशरीरे तु कथमात्मनोऽस्तित्वं विजानीयात् ? इति, उच्यते-यथा स्वदेहे प्रत्यक्षेणात्मा विज्ञायते, तथा परदेहेऽप्यनुमानतो विज्ञेयः ।

(१) परशरीरं सात्मकम् इष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्, यत्रेष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते, तत् सात्मकं दृष्टं यथा-स्वशरीरम्, तथा यत्

इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा का अस्तित्व निरूपण किया गया ।

अनुमान से आत्मा की सिद्धि-

शङ्का-ज्ञान आदि गुणों का अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष होने से उन गुणों से अभिन्न अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष मान लिया जाय किन्तु दूसरे के शरीर में आत्मा का अस्तित्व कैसे जान सकते हैं ?

समाधान—जैसे-अपने शरीर में प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा प्रतीत होता है, उसी प्रकार दूसरे के शरीर में अनुमानप्रमाण से आत्मा समझना चाहिए ।

अनुमान प्रमाण इस प्रकार है—

(१) दूसरे का शरीर सात्मक (आत्मा से युक्त) है, क्यों कि उस की इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट में निवृत्ति देखी जाती है । जहाँ इष्ट-अनिष्ट में प्रवृत्ति और निवृत्ति देखी जाती हैं, वह सात्मक होता है, जैसे-अपना शरीर । तथा जो सात्मक

સ્મરણ રહે છે તેથી બરાબર સિદ્ધ છે કે દેહ અને ઈન્દ્રિય આદિથી ભિન્ન આત્મા જ ગુણી છે.

આ પ્રમાણે પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી આત્માના અસ્તિત્વનું નિરૂપણ કર્યું છે.

અનુમાનથી આત્માની સિદ્ધિ—

શંકા—જ્ઞાન આદિ ગુણો પોતાના આત્મામાં હોવાથી, તે ગુણોથી અભિન્ન પોતાના આત્માને તો પ્રત્યક્ષ માની લેવામાં આવે, પરંતુ બીજાના શરીરમાં આત્માનું અસ્તિત્વ કેવી રીતે જાણી શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે પોતાના શરીરમાં પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી આત્મા પ્રતીત થાય છે તે પ્રમાણે બીજાના શરીરમાં અનુમાનપ્રમાણથી આત્મા સમજવો જોઈએ. અનુમાનપ્રમાણ આ પ્રમાણે છે:-

(૧) બીજાનું શરીર સાત્મક (આત્માથીયુક્ત) છે, કેમકે તેની ઈષ્ટમાં પ્રવૃત્તિ અને અનિષ્ટમાં નિવૃત્તિ જોવામાં આવે છે. જ્યાં ઈષ્ટ-અનિષ્ટમાં પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ જોવામાં આવે છે તે સાત્મક હોય છે. જેમ પોતાનું શરીર. તથા જે સાત્મક

सात्मकं न भवति तत्रेष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्ती न भवतः, यथा घट इति। तथा च परशरीरे प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते तस्मात् तत् सात्मकम्, इति।

यद्वा-शरीरं सकर्तृकं, आदिमत्प्रतिनियताकारत्वात्, यत् पुनरकर्तृकं तद् आदिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथा-अभ्रविकारः। यश्च कर्ता शरीरस्य, स आत्मा। मेर्वादावनैकान्तिकत्ववारणायादिमत्त्वविशेषणम्।

यद्वा-अस्तीन्द्रियाणामधिष्ठाता-आत्मा, तत्रानुमानप्रयोगश्चेत्थम्—

नहीं होता उसमें इष्ट-अनिष्ट की प्रवृत्ति-निवृत्ति भी नहीं होती, जैसे घट। दूसरे के शरीर में भी प्रवृत्ति-निवृत्ति देखी जाती है अतः वह सात्मक है।

(२) शरीर सकर्तृक (कर्ता से युक्त) है, क्यों कि वह आदिवाला और नियत आकार वाला है, जैसे घट। जो सकर्तृक नहीं होता वह आदि वाला और नियत आकार वाला नहीं होता, जैसे मेघों का विकार (बनावट)। शरीर का जो कर्ता है वही आत्मा है। यहाँ नियत आकार वाले सुमेरु आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) निवारण करने के लिए 'आदि वाला' विशेषण लगाया गया है।

अथवा इन्द्रियोंका अधिष्ठाता आत्मा है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए :—

(આત્માથીયુક્ત) નથી, તેમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટની પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ પણ થતી નથી, જેમકે-ઘટ, બીજાના શરીરમાં પણ પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ જોવામાં આવે છે, તેથી તે સાત્મક છે.

(૨) શરીર સકર્તૃક (કર્તાથી યુક્ત) છે. કેમકે તે આદિવાળું અને નિયત આકાર વાળું છે; જેમ ઘટ. જે સકર્તૃક નથી હોતાં તે આદિવાળાં અને નિયમ આકાર વાળાં નથી હોતાં જેમ મેઘોનો વિકાર (બનાવટ). શરીરનો જે કર્તા છે તે આત્મા છે. અહિં નિયત આકારવાળો સુમેરુ આદિથી વ્યભિચાર (હેતુ હોય અને સાધ્ય ન હોય) નિવારણ કરવા માટે 'આદિવાળા' વિશેષણ લગાવ્યું છે.

અથવા-ઈન્દ્રિયોનો અધિષ્ઠાતા આત્મા છે. આ વિષયમાં અનુમાનનો પ્રયોગ આ પ્રમાણે કરવો જોઈએ-

(३) इन्द्रियं साधिष्ठातृकं, करणत्वात्, यथा चक्रचीवरमृत्सूत्रदण्डादयः, अस्ति हि चक्रचीवरादीनामधिष्ठाता कुलालः। यच्च निरधिष्ठातृकं तन्न करणमपि न भवति, यथा–आकाशम्, यश्चेन्द्रियाणामधिष्ठाता स आत्मेति।

(४) यद्वा–इन्द्रियविषयाणामादाता संभवति, इन्द्रियविषया शब्दादय आदातृसहिताः आदानादेयभावसद्भावात्, संदंशकलोहवत्। यथा लोके संदंशकलोहानामयस्कार आदाताऽस्ति। इन्द्रियविषयाणां चादानादेयभावो विद्यते, अतस्तेषामप्यादाताऽस्तीत्यनुमीयते। यत्र तु आदाता नास्ति, तत्रादानादेयभावोऽपि न विद्यते, यथा–आकाशे।

---

(३) इन्द्रियाँ किसी अधिष्ठाता से युक्त हैं, क्यों कि–वे करण हैं, जैसे चक्र, चीवर, मृत्तिका, सूत और दण्ड आदि। चक्र, चीवर आदि का अधिष्ठाता कुंभार है, जिस का कोई अधिष्ठाता नहीं होता वह करण भी नहीं होता, जैसे—आकाश। इन्द्रियों का जो अधिष्ठाता है, वही आत्मा है।

(४) अथवा इन्द्रियों के विषय शब्द आदि आदातायुक्त (ग्रहण करने वाले से युक्त) हैं, क्यों कि इन में आदान आदेयभाव मौजूद है, जैसे संडासी और लोहे में, तात्पर्य यह है कि—लोक में संडासी और लोहे में आदान (लेना) आदेयभाव (जो लिया जाय) प्रसिद्ध है और उन का आदाता लुहार है, इसी प्रकार इन्द्रियों तथा विषयों का भी आदान–आदेयभाव है, अतः उनका भी कोई आदाता होना चाहिए। जहाँ आदाता नहीं होता वहाँ आदान–आदेयभाव भी नहीं होता, जैसे–आकाश में।

---

(૩) ઈન્દ્રિયો કોઈ પણ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે; જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને દંડ આદિ. ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુંભાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પણ હોય નહિ; જેમકે–આકાશ. ઇન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે.

(૪) અથવા–ઇન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત–(ગ્રહણ કરવાવાળા–યુક્ત) છે, કેમકે તેમાં આદાન–આદેય ભાવ મોજુદ છે. જેમ સાણસી અને લોહમાં. તાત્પર્ય એ છે કે લોકમાં સાણસી અને લોહમાં આદાન–આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે. અને તેના આદાતા લુહાર છે; આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પણ આદાન–આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પણ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ જ્યાં આદાતા નથી, ત્યાં આદાન–આદેય ભાવ પણ હોય નહિ, જેમ આકાશમાં.

(५) यद्वा-देहादिकं विद्यमानभोक्तृकम्, भोग्यत्वात्, यथा-अन्नवस्त्रादिकम्। अन्नवस्त्रादीनां भोक्ता मनुष्योऽस्ति। यस्य च भोक्ता नास्ति तद् भोग्यमपि न भवति, यथा खरविषाणम्, भोग्यं च शरीरादिकं, तस्माद् विद्यमानभोक्तृकम्।

(६) यद्वा-अस्ति देहादिकं सस्वामिकं, संघातरूपत्वात्, मूर्तिमत्त्वात्, ऐन्द्रियत्वात्, चाक्षुषत्वात्, यथा-गृहादिकम्। गृहादीनां स्वामिनः देवदत्तादयः सन्ति। यत् पुनरस्वामिकं तत् संघातरूपं न भवति, मूर्तिमन्न भवति, ऐन्द्रियं न भवति, चाक्षुषं च न भवति, यथा-गगनकुसुमम्। देहादिकं, चास्ति संघातादिरूपम्, तस्माद् विद्यमानस्वामिकम्। यश्च देहादीनां स्वामी स चात्मेति।

(५) अथवा-देह आदि का भोक्ता कोई अवश्य है, क्यों कि वे भोग्य हैं, जो भोग्य होते हैं उन का भोक्ता भी होता है, जैसे—अन्न, वस्त्र आदि का। अन्न-वस्त्र आदिका भोक्ता मनुष्य है। जिसका भोक्ता नहीं होता वह भोग्य भी नहीं होता, जैसे गधे का सींग। शरीर आदि भोग्य हैं अतः उनका भोक्ता अवश्य है।

(६) अथवा-देह आदि का कोई स्वामी है, क्यों कि वे संघातरूप हैं, मूर्तिमान् हैं, इन्द्रियों के विषय हैं और चाक्षुष हैं, घर आदि के समान। घर आदि के स्वामी देवदत्त आदि हैं। जिसका कोई स्वामी नहीं होता वह संघातरूप नहीं होता, मूर्तिमान् नहीं होता, इन्द्रिय का विषय नहीं होता, और चाक्षुष (आंख से दीखने वाला) भी नहीं होता, जैसे—आकाशपुष्प। देह आदि संघातरूप हैं, अतः उन का स्वामी अवश्य है। देह आदि का जो स्वामी है वही आत्मा है।

(૫) અથવા-દેહ આદિનો ભોક્તા કોઈ અવશ્ય છે, કેમકે તે ભોગ્ય છે, જે ભોગ્ય હોય છે, તેનો ભોક્તા પણ હોય છે. જેમકે અન્ન, વસ્ત્ર આદિનો. અન્ન-વસ્ત્ર આદિનો ભોક્તા મનુષ્ય છે. જેનો ભોક્તા નથી તે ભોગ્ય પણ નથી, જેમ ગધેડાના શીંગ. શરીર આદિ ભોગ્ય છે, તેથી તેનો ભોક્તા અવશ્ય છે.

(૬) અથવા દેહ આદિનો કોઈ સ્વામી છે, કેમકે-તે સંઘાતરૂપ છે, મૂર્તિમાન છે, ઈન્દ્રિયોનો વિષય છે અને ચાક્ષુષ છે, ઘર આદિ પ્રમાણે. ઘર આદિનો સ્વામી દેવદત્ત આદિ છે. જેનો કોઈ સ્વામી નથી તે સંઘાતરૂપ પણ નથી, અને તે મૂર્તિમાન પણ હોય નહિ, ઈન્દ્રિયોનો વિષય પણ હોય નહિ અને ચાક્ષુષ (નેત્રથી જોઈ શકાય તેવો) પણ હોય નહિ, જેમકે આકાશપુષ્પ. દેહ આદિ સંઘાતરૂપ છે, તેથી તેનો સ્વામી અવશ્ય છે, દેહ આદિનો સ્વામી છે, તે આત્મા છે.

न च—आदिमत्प्रतिनियताकारत्वादिहेतुभिः शरीरादीनां कर्त्रादय एव सिध्यन्ति, न तु प्रस्तुत आत्मेति वाच्यम्। अन्यस्येश्वरादेर्युक्त्यसहत्वेन कर्तृत्वाद्यसंभवाद् देहादीनां कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता, स्वामी चायमात्मैवेति निश्चयात्।

ननु—घटादीनां कर्त्रादिरूपाः कुलालादयो मूर्तिमन्तः संघातरूपा अनित्यादिस्वभावाश्च दृष्टाः, इत्यतो जीवोऽप्येतादृश एव सिध्यति, एतद्विपरीतश्चास्माकं साधनीयः, इत्येवं साध्यविरूद्धसाधकतया हेतूनां विरुद्धत्वापत्तिरिति चेन्नैवम्, संसारिणमात्मानं साधयितुं प्रवृत्तानामस्माकमेतद्दोषासंभवात्। संसारी चात्माऽष्टविधकर्म-

---

पूर्वोक्त–'आदिमान होते हुए नियत आकार वाले होने से' इत्यादि हेतुओं से शरीर आदि के कर्ता आदि ही सिद्ध होते हैं, प्रस्तुत आत्मा सिद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं कहना चाहिये क्यों कि–आत्मा से भिन्न ईश्वर आदिका कर्तापन युक्तिसङ्गत नहीं ठहरता, अतः देह आदिका कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता और स्वामी आत्मा ही है, ऐसा निश्चय हो जाता है।

शङ्का—घट आदि के कर्ता कुंभार वगैरह मूर्तिक, संघातरूप और अनित्य आदि स्वभाव वाले देखे जाते हैं, अतः जीव भी ऐसा ही सिद्ध होता है, मगर आपको इस से विपरीत धर्मोंवाला आत्मा सिद्ध करने के कारण पूर्वोक्त हेतुओं में विरुद्ध दोष आता है।

समाधान—ऐसा मत कहो। हम संसारी आत्मा सिद्ध करने के लिए उद्यत

પૂર્વોકત–'આદિમાન હોવા છતાંય નિયત આકારવાળા હોવાથી' ઈત્યાદિ હેતુઓથી શરીર આદિના કર્તા આદિ જ સિદ્ધ હોય છે. પ્રસ્તુત આત્મા સિદ્ધ થતો નથી. એમ નહિ કહેવું જોઈએ, કેમકે આત્માથી ભિન્ન ઈશ્વર આદિનું કર્તાપણું યુકિત સંગત થતું નથી, તેથી દેહ આદિનો કર્તા, અધિષ્ઠાતા, આદાતા, ભોકતા અને સ્વામી આત્મા જ છે. એમ નિશ્ચય થઈ જાય છે.

શંકા–ઘટ આદિના કર્તા કુંભાર વગેરે મૂર્તિક, સંઘાતરૂપ અને અનિત્ય આદિ સ્વભાવવાળા જોવામાં આવે છે, તેથી જીવ પણ એવો જ સિદ્ધ થાય છે પરંતુ તમને તેનાથી વિપરીત ધર્મોવાળો આત્મા સિદ્ધ કરવો છે, એવી સ્થિતિમાં સાધ્યથી વિરૂદ્ધ સિદ્ધ કરવાના કારણે પૂર્વોકત હેતુઓમાં વિરૂદ્ધતા દોષ આવે છે.

સમાધાન–એ પ્રમાણે ન કહો, અમે સંસારી આત્મા સિદ્ધ કરવા માટે તૈયાર થયા

पुद्गलसंघातोपगूढत्वात्, सशरीरत्वाच्च कथंचिन्मूर्तत्वादिधर्मयुक्त एवास्तीति।

(७) यद्वा-'जीव' इति पदं सार्थकं, व्युत्पत्तिमत्त्वे सति असमासपदत्वाद् एकपदत्वाद् घटादिपदवत्। घटादिपदं व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं लोके दृष्टम्, तथा च जीवपदं, तस्मात् सार्थकम्। यत्तु सार्थकं नास्ति तद् व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं च नास्ति, यथा-खरविषाणादिकं, डित्थादिकं च पदम्। जीवपदं च न तथा, तस्मात् सार्थकम्।

यद् व्युत्पत्तिमन्न भवति तदेकपदमपि सद् न सार्थकम्, यथा डित्थादिपदम्, इति हेतोरनैकान्तिकत्वापत्तिस्तद्वारणाय व्युत्पत्तिमत्त्वविशेषणमुपात्तम्।

हुए हैं, इस लिए कोई दोष नहीं आता। संसारी आत्मा आठ कर्मों के समूह से युक्त होने के कारण तथा सशरीर होने के कारण मूर्तत्व आदि धर्मों से युक्त ही है।

(७) अथवा—'जीव' पद का वाच्य अवश्य है, क्यों कि यह पद व्युत्पत्ति वाला होते हुए समासरहित है, एक पद है, घट आदि पदों के समान। घट वगैरह पद व्युत्पत्तिवाले, असमासपद, एक पद लोक में देखे जाते हैं अतः उनके वाच्य भी अवश्य हैं। 'जीव' पद भी ऐसा ही है, अतः वह भी सार्थक है। जो पद सार्थक नहीं होता वह व्युत्पत्तिवाला असमासपद, एक पद भी नहीं होता, जैसे—'खरविषाण' पद, अथवा 'डित्थ' पद, जीव पद ऐसा नहीं है, अतः वह सार्थक है।

जो व्युत्पत्ति वाला नहीं होता वह एक पद होते हुए भी सार्थक नहीं होता, जैसे 'डित्थ' आदि पद। इस हेतु में अनैकान्तिकता निवारण करने के लिए 'व्युत्पत्ति

છીએ, એટલા માટે કોઇ દોષ આવતો નથી, સંસારી આત્મા આઠ કર્મોના સમૂહથી યુક્ત હોવાના કારણે તથા સશરીર હોવાના કારણે મૂર્ત્તત્વ આદિ ધર્મોથી યુક્તજ છે.

(૭) અથવા 'જીવ' પદનો વાચ્ય અવશ્ય છે, કારણ કે આ પદ વ્યુત્પત્તિવાળું હોવા છતાંય સમાસરહિત છે, એક પદ છે, ઘટ આદિ પદોના સમાન. 'ઘટ' એ વ્યુત્પત્તિવાળું અસમાસ પદ એક પદ લોકમાં જોવામાં આવે છે, તે કારણથી તેનું વાચ્ય પણ અવશ્ય છે. 'જીવ' પદ, પણ એવું જ છે, તેથી તે પણ સાર્થક છે. જે પદ સાર્થક નથી થતું તે વ્યુત્પતિવાળા અસમાસ પદ એક પદ પણ થતું નથી. જેમકે ખરવિષાણ (ગધેડાના શીંગ) પદ, અથવા 'ડિત્થ' પદ. જીવ-પદ એવું નથી. તેથી તે સાર્થક છે.

જે વ્યુત્પતિવાળું થતું નથી તે એક પદ હોવા છતાંય પણ સાર્થક નથી થતું, જેમ 'ડિત્થ' આદિ પદ.

આ હેતુમાં અનૈકાન્તિકતા નિવારણ કરવા માટે, 'વ્યુત્પત્તિવાળું' વિશેષણ

यच्चैकपदं नास्ति किन्तु सामासिकम्, तदपि व्युत्पत्तिमत्त्वे सत्यपि सार्थकं नास्ति, यथा खरविषाणादिकमिति। तत्रानैकान्तिकत्वापत्तिदोषस्तत्परिहारार्थमेकपदत्वमिति।

ननु देह एव जीवपदस्यार्थोऽस्तु कथं पुनरात्मा विज्ञायेत। देहरूपेऽर्थे जीवशब्दप्रयोगोऽपि दृष्टः, यथा–' अयं जीवः, तस्मान्न हन्तव्यः ' इति। अतो देह एव जीवशब्दार्थतया ग्रहीतव्यः, इति चेन्न, पर्यायशब्दभेदाद् देहजीव-शब्दयोरर्थौ भिन्न एवेति बोधनात्, यथा घटाकाशयोः, तत्र–घटकुम्भकलशादयो घटशब्दस्य पर्यायाः, आकाशनभोव्योमादयस्त्वाकाशशब्दपर्यायाः, अतस्तयोरर्थे

वाला ' विशेषण लगाया है। तथा जो एक पद नहीं है किन्तु समासयुक्त पद है वह व्युत्पत्तिवाला होते हुए भी सार्थक नहीं होता। जैसे खरविषाण आदि पद। इस में अनैकान्तिकता हटाने के लिए 'एकपद'का प्रयोग किया गया है।

शङ्का–जीव पदका अर्थ देह ही क्यों न मान लिया जाय? आत्मा अर्थ कैसे समझा जाय? देह के अर्थ में जीव शब्दका प्रयोग देखा भी जाता है, जैसे 'यह जीव है, अतः हनन करने योग्य नहीं है'। इस लिए जीव शब्द का अर्थ शरीर ही लेना चाहिए।

समाधान–देहके और जीव के पर्यायवाची शब्द अलग अलग हैं, अतः दोनों का अर्थ अलग–अलग ही मानना चाहिए। जैसे घटके पर्यायवाची कुम्भ, कलश आदि शब्द अलग हैं, और आकाश के पर्यायवाची शब्द नभ, व्योम, गगन आदि

આપ્યું છે. તથા જે એક પદ નથી. પરંતુ સમાસયુક્ત પદ છે તે વ્યુત્પત્તિવાળું હોવા છતાંય સાર્થક થતું નથી. જેમ ખરવિષાણ આદિ પદ, તેમાં અનૈકાન્તિકતા હઠાવવા માટે–'એક પદ'નો પ્રયોગ કરેલો છે.

શંકા—'જીવ' પદનો અર્થ દેહ શા માટે માનવામાં નથી આવતો? આત્મા અર્થ કેમ સમજાય છે? દેહના અર્થમાં જીવ શબ્દનો પ્રયોગ જોવામાં પણ આવે છે. જેમ–'આ જીવ છે, તેથી હણવા યોગ્ય નથી' એટલા માટે જીવ શબ્દનો અર્થ શરીર જ લેવો જોઈએ.

સમાધાન—દેહ અને જીવના પર્યાયવાચી શબ્દ જૂદા જૂદા છે તેથી એ બંનેનો બોધ જૂદો–જૂદો માનવો જોઈએ. જેમ ઘટના પર્યાયવાચી કુંભ, કલશ આદિ શબ્દ અલગ છે, અને આકાશના પર્યાયવાચી શબ્દ–નભ, વ્યોમ, ગગન આદિ શબ્દ અલગ છે. એ કારણથી ઘટનો અર્થ અને આકાશનો અર્થ અલગ છે. એ

भिन्नता प्रतीयते। प्रकृतेऽपि प्राणी, भूतः, जीवः, सत्त्वः, इत्यादयो जीवशब्दस्य पर्यायाः, शरीरं वपुः, कायो, देहः, गात्रमित्यादयस्तु शरीरशब्दपर्याया 'अयं जीवस्तस्मान्न हन्तव्यः' इत्यनेनापि देहस्थितस्य प्राणिन एव हिंसा निषिध्यते।

आप्तागमस्तु समस्त एवात्मानं बोधयति, आत्मतत्त्वस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रार्थं तस्य प्रवृत्तत्वात्। तथापि कानिचिदागमवचनानि प्रमाणतया प्रदर्शयामः-

'से आयावादी' इति प्रस्तुतमेव वचनं तावद् गृहाण। 'से जं पुण

शब्द अलग हैं, इस लिए घटका अर्थ और आकाश का अर्थ अलग-अलग है। इसी प्रकार जीव के पर्यायवाचक प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व आदि शब्द अलग हैं और देह के पर्यायवाचक शरीर, वपु, काय, गात्र आदि भिन्न हैं, अतः इन दोनों का अर्थ भी अलग होना चाहिए। 'यह जीव है अतः हनन करने योग्य नहीं है' इस वाक्य द्वारा देह में स्थित प्राणी की ही हिंसा का निषेध किया जाता है।

आगम से आत्मा की सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मा का बोधक है। आत्मतत्त्व के सम्यग् दर्शन, ज्ञान, और चारित्र के लिए हो आगम की प्रवृत्ति होती है फिर भी आगम के कतिपय वाक्य प्रमाणरूप में प्रदर्शित करते हैः—

सब से पहले-'**से आयावादी**', इस प्रस्तुत वाक्य को ही लीजिए

प्रमाणे જીવનાં પર્યાયવાચક-પ્રાણી, ભૂત, જીવ સત્ત્વ આદિ શબ્દ અલગ છે. અને દેહના પર્યાયવાચક-શરીર, વપુ, કાય, ગાત્ર આદિ ભિન્ન છે. તે માટે એ બંનેનો અર્થ પણ અલગ થવો જોઇએ. "આ જીવ છે તેથી હનન કરવા યોગ્ય નથી" આ વાક્ય દ્વારા દેહમાં રહેલા પ્રાણીની જ હિંસાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે.

આગમથી આત્માની સિધ્ધ—

આપ્ત પુરુષ દ્વારા પ્રણીત સંપૂર્ણ આગમ આત્માનું બોધક છે. આત્મતત્વના સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્ર માટે જ આગમની પ્રવૃત્તિ હોય છે. તો પણ આગમના કેટલાક વાક્ય પ્રમાણરૂપમાં પ્રદર્શિત કરે છે—

સૌથી પ્રથમ 'से आयावादी' આ પ્રસ્તુત-ચાલુ વાકયને જ લઇએ 'से जं पुण

जाणेज्जा ' इत्यादि–' सोऽहं ' इत्यन्तं प्रागूव्याख्यातं च (आचा० १ अ०१ उ०)। ' अत्थि आया ' (अस्त्यात्मा) इति । ' अत्थि जीवा ' (सन्ति जीवाः) इति । ' एगे आया ' (एक आत्मा) (स्था० १ स्था० १ उ०) इति ।

" कइविहा णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा– जीवदव्वा य, अजीवदव्वा य " (अनु. सू. १४१)

इत्यादीन्यनुसन्धेयानि । अन्येऽपि सांख्यादयः प्रायशः स्वीकुर्वन्त्येव शरीराद्भिन्नतयाऽऽत्मनोऽस्तित्वमिति ।

आत्मनो द्रव्यत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा द्रव्यमस्ति, चेतनाद्यनन्तगुणवत्त्वात्, ज्ञानदर्शनलक्षणविविधोपयोगाद्यनन्तपर्यायवत्त्वाच्च । चेतनाद्वारेणात्मा नानारूपोपयोगरूपेण परिणमते ।

' से जं पुण जाणेज्जा ' से लेकर ' सोऽहं ' तक पहले व्याख्यान किया जा चुका है। (आचा. १ अ. १ उ.) तथा 'अत्थि आया' 'अत्थि जीवा' 'एगे आया' (स्था. १ स्था. १ उ.) तथा ' कइविहा णं भंते दव्वा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–जीवदव्वा य अजीवदव्वा य, (अनु. सू. १४१) इत्यादि अनेक आगमवाक्य समझ लेने चाहिए। दूसरे सांख्य वगैरह भी प्रायः शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

आत्माका द्रव्यत्वनिरूपण—

आत्मा द्रव्य है, क्यों कि वह चेतना आदि अनन्त गुणों से युक्त है और वह ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग आदि अनन्त पर्यायों वाला भी है। चेतना

जाणेज्जा' थी लईने 'सोऽहं' सुधी પહેલા વ્યાખ્યાન કરી દીધું છે (આચા. ૧–અ. ૧–ઉ) તથા 'अत्थि आया' 'अत्थि जीवा' 'एगे आया' (સ્થા.૧ સ્થા.૧ ઉ.) 'कइविहा णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–जीवदव्वा य अजीवदव्वा य' (અનુ. સૂ. ૧૪૧) ઈત્યાદિ અનેક આગમ–વાકય સમજી લેવાં જોઇએ. બીજા સાંખ્ય શાસ્ત્ર વગેરે પણ પ્રાયઃ શરીરથી ભિન્ન આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરે છે.

આત્માનું દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય છે, કેમકે તે ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોથી યુકત છે, અને તે જ્ઞાનોપયોગ તથા દર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયો વાળો પણ છે. ચેતનાદ્વારા આત્મા નાના પ્રકારના રૂપમાં પરિણત થાય છે. પરંતુ ચેતના આત્મદ્રવ્યના રૂપમાં

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुखादिगुणतश्चानपायिनो। तामेवाश्रित्य ज्ञानदर्शनादिविविधोपयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां त्रैकालिकः प्रवाहो भवति। तस्याश्चेतनायाः कार्यरूपः पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा प्रवृत्त्यात्मकपर्यायप्रवाहादयोऽनन्तपर्यायप्रवाहाः सह-युगपत् प्रवर्तन्ते। अतश्चेतनागुण इवात्मनि आनन्दवीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकरणीयतयाऽनन्तगुणाः सिध्यन्ति।

आत्मनि चेतनाऽऽनन्दवीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया एकस्मिन् समये समुपलभ्यन्ते परन्त्वेकस्य चेतनागुणस्य विविधाउपयोगपर्याया

के द्वारा आत्मा नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना, आत्मद्रव्य के रूप में, तथा आत्मा में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती, उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह वहता है। उस चेतना का कार्यरूप पर्याय—प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है।

उपयोगात्मक पर्याय—प्रवाह के समान सुख—दुःखसंवेदनरूप पर्याय का प्रवाह है; तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्यायप्रवाह आदि अनन्त पर्याय—प्रवाह एक साथ जारी रहते हैं; अतः चेतनागुण के समान आत्मा में आनन्द, वीर्य आदि एक एक गुण स्वीकार करने योग्य होने से अनन्त गुण सिद्ध होते हैं।

आत्मा में चेतना सुख वीर्य आदि गुणों की भिन्न२ विविध पर्यायें एक ही समय में उपलब्ध होती हैं, किन्तु एक ही समय में अकेले चेतनागुण की विविध

તથા આત્મામાં રહેવવાળા સુખ આદિ ગુણોના રૂપમાં હમેશાં વિદ્યમાન રહે છે. કોઈ વખત પણ નાશ પામતી નથી. તેના આધાર પર જ્ઞાન, દર્શન આદિ ભિન્ન ભિન્ન સમયોમાં થવાવાળા અનેક ઉપયોગોનો પ્રવાહ વહેતો રહે છે. તે ચેતનાના કાર્યરૂપ પર્યાયપ્રવાહ સ્વરૂપથી ઉપયોગ જ છે.

ઉપયોગાત્મક પર્યાય—પ્રવાહના સમાન સુખ—દુઃખસંવેદનરૂપ પર્યાયનો પ્રવાહ છે. તથા પ્રવૃત્ત્યાત્મક પર્યાય—પ્રવાહ આદિ અનંત પર્યાયપ્રવાહ એક સાથે જારી રહે છે. તેથી ચેતનાગુણ સમાન આત્મામાં આનંદ વીર્ય આદિ. એક—એક ગુણ સ્વીકાર કરવા યોગ્ય હોવાથી અનંત ગુણ સિદ્ધ થાય છે.

આત્મામાં ચેતના, સુખ, વીર્ય, આદિ ગુણોની ભિન્ન—ભિન્ન વિવિધ પર્યાયો એકજ સમયમાં ઉપલબ્ધ થાય છે, પરંતુ એકજ સમયમાં એકલા ચેતનાગુણની

एकस्मिन् समये न समुपलभ्यन्ते, तथैकस्यानन्दगुणस्य वा विविधा वेदनपर्याया एकस्मिन् समये नोपलभ्यन्ते ।

प्रत्येकगुणस्यैकस्मिन् समये एक एव पर्यायः प्रकटीभवति । यथा– जलावस्थितस्यापि नरस्य शीतोष्णोपयोगौ न युगपद् भवतः । उष्णोपयोगसमये शीतोपयोगो नोपलभ्यते, शीतोपयोगसमये चोष्णोपयोगोपि नैवेति ।

आत्मा नित्यः । तस्य चेतनादिगुणा अपि नित्याः । परन्तु चेतनाजन्य उपयोगपर्यायो न नित्यः, सतु सदैवोत्पादविनाशशालितया व्यक्तिरूपेणानित्यः । उपयोगपर्यायप्रवाहस्तु त्रैकालिकतया नित्य इति ।

उपयोगरूप पर्यायें उपलब्ध नहीं होती । उसी प्रकार एक ही समयमें अकेले आनन्दगुणकी भी विविध वेदनरूप पर्यायें उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुण की एक समय में एक ही प्रर्याय प्रकट होती है, परन्तु जैसे–जल में स्थित पुरुष के शीत और उष्ण, दोनों उपयोग एक साथ नहीं हो ते । उष्णोपयोग के समय शीतोपयोग नहीं पाया जाता, और शीतोपयोग के समय उष्णापयोग नही पाया जाता ।

आत्मा नित्य है, उसके चेतना आदि गुण भी नित्य हैं, परन्तु चेतना–जन्य उपयोग–पर्याय नित्य नहीं है, वह सदैव उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है, अतः व्यक्तिरूपसे अनित्य है, उपयोग–पर्याय का प्रवाह त्रिकालवर्ती होनेके कारण नित्य है ।

વિવિધ ઉપયોગરૂપ પર્યાયો ઉપલબ્ધ થતી નથી. એજ પ્રમાણે એક જ સમયમાં એકલા આનંદ ગુણની પણ વિવિધ વેદનરૂપ પર્યાયો ઉપલબ્ધ થતી નથી.

પ્રત્યેક ગુણની એક સમયમાં એકજ પર્યાય પ્રગટ થાય છે, જેમ જલમાં ઉભા રહેલા પુરૂષને શીત અને ઉષ્ણ, એ બંને ઉપયોગ એક સાથે થશે નહિ, ઉષ્ણોપયોગના સમયે શીતોપયોગ થશે નહિ અને શીતોપયોગના સમયે ઉષ્ણોપયોગ જણાશે નહીં.

આત્મા નિત્ય છે, તેના ચેતના આદિ ગુણ પણ નિત્ય છે, પરંતુ ચેતનાજન્ય ઉપયોગ–પર્યાય નિત્ય નથી, તે હમેશાં ઉત્પન્ન અને નાશ થતી રહે છે, તેથી વ્યક્તિરૂપથી અનિત્ય છે, તો પણ ઉપયોગ–પર્યાયનો પ્રવાહ ત્રિકાલવર્તી હોવાથી નિત્ય છે.

अनन्तगुणानामखण्डसमुदाय एव द्रव्यम्, तथाप्यात्मनश्चेतनाऽऽनन्द-चारित्रवीर्यादयो गुणाः परिमिता एव साधारणधियां छद्मस्थानां ज्ञेया भवन्ति, न तु सर्वे गुणाः। इदमत्र कारणम्-विशिष्टज्ञानमन्तरेणात्मनः सर्वे पर्यायप्रवाहा विज्ञातुमशक्याः भवन्ति। यो यः पर्यायप्रवाहः साधारणबुद्ध्या ज्ञातुं शक्यते तत्कारणीभूतानां गुणानां व्यवहारः क्रियते, अतस्ते गुणा व्यवहार्या भवन्ति। यथा-आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयो गुणा व्यवहार्याः सन्ति। शेषास्तु सर्वे केवलिगम्या इति।

त्रैकालिकानामनन्तपर्यायाणामेकैकप्रवाहस्य कारणीभूतकैस्यैकगुणोऽस्ति, तादृशानन्तगुणानां समुदायो द्रव्यम्। एतदपि कथञ्चिद् भेदविवक्षया। अभेद-

---

अनन्त गुणों का अखण्ड समुदाय ही द्रव्य है फिर भी आत्मा के चेतना सुख, चारित्र, वीर्य आदि गुण साधारणबुद्धि वाले छद्मस्थों के द्वारा परिमित ही जाने जाते हैं, सब गुण नहीं जाने जाते। इस का कारण यह है कि-विशिष्ट ज्ञान के विना आत्मा के समस्त पर्याय-प्रवाहों को जानना अशक्य है। जो जो प्रर्याय-प्रवाह साधारण बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है, उसके कारणभूत गुणों का व्यवहार किया जाता है, अत एव वे गुण व्यवहार्य होते हैं, जैसे-आत्मा के चेतना, सुख, चारित्र, और वीर्य आदि गुण व्यवहार्य होते हैं। शेष सब केवलिगम्य हैं।

तीन काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों के एक-एक प्रवाह का कारण एक-एक गुण है, और ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय द्रव्य है। यह कथन क्वचित् भेद-

---

અનન્ત ગુણોનો અખંડ સમુદાય જ દ્રવ્ય છે, તો પણ આત્માના ચેતના, સુખ ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ સાધારણ બુદ્ધિવાળા છદ્મસ્થોદ્વારા પરિમિત-મર્યાદિત જ જાણવામાં આવે છે, પરંતુ સર્વ ગુણ જાણવામાં આવતા નથી. તેનું કારણ એ છે કે-વિશિષ્ટ જ્ઞાન વિના આત્માના સમસ્ત પર્યાય-પ્રવાહોને જાણવા અશક્ય છે. જે જે પર્યાય-પ્રવાહ સાધારણ બુદ્ધિવાળા દ્વારા જાણી શકાય છે, તેના કારણભૂત ગુણોનો વ્યવહાર કરવામાં આવે છે, એ કારણથી તે ગુણ વ્યવહાર્ય થાય છે, જેમ આત્માનો ચેતના, સુખ, ચારિત્ર અને વીર્ય આદિ ગુણ વ્યવહાર્ય થાય છે, બાકી સર્વ કેવલિગમ્ય છે.

ત્રણ કાલ સંબંધી અનન્ત પર્યાયોના એક-એક પ્રવાહનું કારણ એક-એક ગુણ છે. અને એવા અનંત ગુણોનો સમુદાય તે દ્રવ્ય છે. આ કથન કંથચિત્

दृष्टया तु पर्यायाः स्वस्वकारणीभूतस्य गुणस्य स्वरूपाः, गुणा अपि द्रव्यस्वरूपा इति गुणपर्यायात्मकमेव द्रव्यमित्युच्यते ।

द्रव्येषु सर्वे गुणा एकरूपा न सन्ति । तत्र कतिचन साधारणाः अनेक-द्रव्यवर्तिनः सर्वद्रव्यवर्तिनश्च । यथा—अस्तित्व-प्रदेशवत्त्व-ज्ञेयत्वादयः सर्वद्रव्यवर्तिनः, निष्क्रियत्वाऽचेतनत्वाऽरूपित्वादयोऽनेकद्रव्यवर्तिनः । कतिचिदसाधारणा गुणा एकद्रव्यमात्रवर्तिनः सन्ति । यथा—आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयः । स्वस्वाऽसाधारणगुणानां तज्जन्यपर्यायाणां चापेक्षया प्रत्येकद्रव्यमन्यद्रव्याद् भिन्नमस्तीति बोध्यम् ।

विविक्षा से ही है । अभेद-विवक्षा से तो पर्यायें अपने कारणभूत गुण से अभिन्न हैं और गुण, द्रव्य से अभिन्न हैं, अतः गुणपर्यायरूप ही द्रव्य कहलाता है ।

द्रव्य में सभी गुण एकरूप नही हैं । कोई-कोई गुण साधारण हैं, अर्थात् सामान्य रूप से अनेक द्रव्यों में पाये जाते हैं, या समस्त द्रव्यों में पाये जाते हैं । जैसे—अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशवत्त्व, और ज्ञेयत्व, ये गुण समस्त द्रव्यों में पाये जाते हैं ।

निष्क्रियत्व, अचेतनत्व, और अरूपित्व आदि गुण अनेक द्रव्यवर्ती हैं । कोई-कोई गुण असाधारण हैं—सिर्फ एक द्रव्य में रहते हैं, जैसे—आत्मा के चैतन्य, सुख, चारित्र, वीर्य आदि गुण । अपने-अपने असाधारण गुणों और गुणों से उत्पन्न पयायों की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न है, ऐसा जानना चाहिए ।

ભેદવિવક્ષાથી જ છે. અભેદવિવક્ષાથી તો પર્યાયો પોતાના કારણભૂત ગુણથી અભિન્ન છે, અને ગુણ દ્રવ્યથી અભિન્ન છે તેથી ગુણપર્યાયરૂપજ દ્રવ્ય કહેવાય છે.

દ્રવ્યમાં સર્વ ગુણ એકરૂપ નથી, કોઇ કોઈ ગુણ સાધારણ છે, અર્થાત્-સામાન્ય રૂપથી અનેક દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. અથવા સમસ્ત દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. જેમ-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ અને જ્ઞેયત્વ, એ ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, અને અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી છે. કોઈ કોઇ ગુણ અસાધારણ છે-માત્ર એક દ્રવ્યમાં રહે છે. જેવી રીતે આત્માના ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ. પોત-પોતાના સાધારણ ગુણો અને ગુણોથી ઉત્પન્ન પર્યાયોની અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યથી ભિન્ન છે, એમ સમજવું જોઇએ.

आत्मनः स्वरूपम्-

आत्मनः स्वरूपं तावदुच्यते-

आत्मा-(१)-जीवः (२)-नित्यः (३)-चेतनावान्, (४)-उपयोगवान्, (५)-परिणामी, (६)-प्रभुः, (७)-कर्ता, (८)-साक्षाद्भोक्ता, (९)-स्वशरीरपरिमाणः, (१०)-अमूर्तः, (११)-प्रतिशरीरं भिन्नः, (१२)-पौद्गलिककर्मसंयुक्तः, (१३)-ऊर्ध्वगतिशीलश्च।

तत्राऽऽत्मनो जीवत्वादिस्वरूपं निरूप्यते—

(१) जीवत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चनयेन सत्ता-चैतन्य-ज्ञानादिरूपैः शुद्धप्राणैः, तथा

आत्मा का स्वरूप-

अब आत्मा का स्वरूप कहते हैं:—

आत्मा-(१)-जीव है, (२)-नित्य है, (३)-चेतनावान् है, (४)-उपयोगवान् है, (५)-परिणामी है, (६)-प्रभु है, (७)-कर्ता है, (८)-साक्षात् भोक्ता है, (९)-अपने शरीर के बराबर है, (१०)-अमूर्त है, (११)-प्रत्येक शरीर से भिन्न है, (१२)-पौद्गलिक कर्मों से युक्त है, और (१३)-ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है।

उन में अब आत्मा के जीवत्वादि स्वरूप का निरूपण करते हैं-

(१) जीवत्व का निरूपण-

आत्मा निश्चयनय से सत्ता चैतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से, तथा

આત્માનું સ્વરૂપ—

હવે આત્માનું સ્વરૂપ કહે છે—

આત્મા-(૧) જીવ છે, (૨) નિત્ય છે, (૩) ચેતનાવંત છે, (૪) ઉપયોગવંત છે, (૫) પરિણામી છે, (૬) પ્રભુ છે, (૭) કર્તા છે, (૮) સાક્ષાત્ ભોકતા છે, (૯) પોતાના શરીર બરાબર છે, (૧૦) અમૂર્ત્ત છે, (૧૧) પ્રત્યેક શરીરમાં ભિન્ન ભિન્ન છે. (૧૨) પૌદ્‌ગલિક કર્મોથી યુકત છે, અને (૧૩) ઉર્ધ્વગમન સ્વભાવવાળો છે.

તેમાં આત્માના જીવત્વાદિ સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે—

(૧) જીવત્વનું નિરૂપણ—

આત્મા નિશ્ચયનયથી સત્તા, ચૈતન્ય અને જ્ઞાન આદિરૂપ શુદ્ધ પ્રાણોથી, તથા

व्यवहारनयतो यथासंभवं क्षायोपशमिकैरिन्द्रियादिद्रव्यप्राणैश्च जीवति, जीविष्यति, जीवितवांश्चेत्यतोऽयमात्मा ' जीवः ' इत्युच्यते ।

" अयमात्मा न देहादन्यः, नापि जन्मान्तरसंक्रान्तः " इति नास्तिकमतं निराकर्तुमुक्तम्–' अयमात्मा जीवः ' इति । पूर्वभवसंस्कारं विना कथमिह प्रसूत एव बालो मातुः स्तन्यपाने प्रवर्तते । प्रवृत्तिं प्रति स्वकृतिसाध्यत्वस्येष्टसाधनताज्ञानस्य च कारणतया बालस्य तज्ज्ञानजनकपूर्वभवीयसंस्कारोऽस्तीति विज्ञायते । तस्मादात्मनः पूर्वभवसम्बन्धोऽवधार्यते । तेन च देहभिन्नत्वमपि ज्ञायते ।

अयमात्मा यदि पाञ्चभौतिकदेहरूपः स्यात्, तर्हि मृन्मयभाण्ड–सलिल–

व्यवहारनय से यथासंभव क्षयोपशम–जन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणों से जीवित है, जीवित रहेगा और जीवित था, इस कारण आत्मा ' जीव ' कहलाता है ।

" **आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है और न एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है** " नास्तिकों के इस मत का निराकरण करने के लिए कहा गया है कि– " **आत्मा जीव है** " । पूर्वभव के संस्कार के विना इस भव में तत्काल जन्मा हुआ शिशु माता के स्तन–पान में कैसे प्रवृत्त हो सकता है ?, शिशु की इस प्रवृत्ति से सिद्ध होता है कि उस में पूर्व भव का संस्कार विद्यमान है । इस से निश्चित हो जाता है कि–आत्मा पूर्व भव में भी था, और इस कारण वह शरीर से भिन्न भी मालूम होता है ।

पांच भूतों से बना हुआ शरीर ही यदि आत्मा है तो मिट्टी का पात्र, पानी, पावक–(अग्नि), पवन और आकाश रूप पांचों भूतों का चूले के ऊपर जब संयोग

વ્યવહારનયથી યથાસંભવ ક્ષયોપશમજન્ય ઇન્દ્રિયાદિ દ્રવ્યપ્રાણોથી જીવિત છે, જીવિત રહેશે અને જીવિત હતો, તેથી આત્મા 'જીવ' કહેવાય છે. " **આત્મા શરીરથી ભિન્ન નથી, અને એક જન્મથી બીજા જન્મમાં જતો નથી** " નાસ્તિકોનો એ પ્રમાણે જે મત છે, તેનું નિરાકરણ કરવા માટે કહ્યું છે કે " **આત્મા જીવ છે.** " પૂર્વ ભવના સંસ્કાર વિના આ ભવમાં તત્કાલ જન્મ પામેલું બાળક માતાના સ્તનપાનમાં (ધાવવામાં) પ્રવૃત્તિ કેવી રીતે કરી શકે છે ?, બાળકની આ પ્રવૃત્તિથી સિદ્ધ થાય છે કે:–તેનામાં પૂર્વ ભવના સંસ્કાર વિદ્યમાન છે. આ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે આત્મા પૂર્વભવમાં પણ હતો, અને તે કારણથી આત્મા શરીરથી ભિન્ન માલૂમ પડે છે.

પાંચ ભૂતોથી બનેલું શરીર જ જો આત્મા છે તો માટીનું પાત્ર, પાણી, અગ્નિ, આકાશ, પવન વગેરે પાંચ ભૂતોનો ચુલા ઉપર જ્યારે સંયોગ થાય છે, તો તે વખતે

दहन-पवन-गगनरूपपञ्चभूतेषु चुल्ह्युपरि मिलितेषु चेतनालक्षण आत्मा कथं नोपलभ्यते ? ।

यद्वा-मृतशरीरे पञ्चभूतसद्भावेऽपि चेतनालक्षण आत्मा नोपलभ्यते । अतोऽयमात्मा जडरूपपाञ्चभौतिकदेहाद् भिन्नो निश्चीयते ।

अपरञ्च-आत्मनो देहरूपत्वस्वीकारे कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्चापद्येत । कृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिं विनैव नाशः स्यात्, अकृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिश्च । अकर्तुः फलप्राप्तिः, कर्तुश्च नेति द्वयमयुक्तम् । तस्मात्-आत्मा देहाद् भिन्नो जन्मान्तरसंक्रान्तोऽपीति निश्चेयम् ।

होता है तो चेतनारूप आत्मा क्यों नही पैदा हो जाता?, वही पांचों भूतों का संयोग विद्यमान है और उसीसे आत्मा की उत्पत्ति मानते हो?

अथवा-मृत शरीर में पांचों भूतों का सद्भाव होने पर भी चेतनस्वरूप आत्मा क्यों उपलब्ध नहीं होता?, इस से निश्चित होता है कि आत्मा जडरूप पांच भूतों से भिन्न हैं और नित्य है ।

और भी आत्मा को देहरूप स्वीकार करने से कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष की प्राप्ति होगी। किए हुए कर्म, फल दिए विना ही नाश हो जायगा, और अकृत कर्म के फल को भोगना पडेगा। कर्म न करने वाला फल भोगे और करने वाला फल से बच जाय, यह दोनों बातें अनुचित है, अत अव यह निश्चय कर लेना चाहिए कि-आत्मा शरीर से भिन्न है और जन्मान्तर में गमन करता है।

ચેતનારૂપ આત્મા કેમ પેદા થતો નથી?, અહિં પાંચ ભૂતોનો સંયોગ વિદ્યમાન છે અને તેમાંથી તમે (નાસ્તિકો) આત્માની ઉત્પત્તિ માનો છો?

અથવા—મૃત્યુ પામેલા શરીરમાં પાંચ ભૂતોનો સદ્ભાવ હોવા છતાંય ચેતનસ્વરૂપ આત્મા કેમ ઉપલબ્ધ થતો નથી?, એ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે:—આત્મા જડ સ્વરૂપ પાંચભૂતોથી ભિન્ન છે અને નિત્ય છે.

અને બીજું એ પણ છે કે-આત્માને દેહરૂપ સ્વીકાર કરવાથી કૃતનાશ અને અકૃતાભ્યાગમ દોષની પ્રાપ્તિ થશે, કરેલા કર્મ, ફળ આપ્યા વિના જ નાશ થઈ જશે. અને અકૃત-નહિ કરેલા કર્મનું ફળ ભોગવવું પડશે. કર્મ નહિ કરવાવાળાને કર્મનું ફળ ભોગવવું પડે, અને કર્મ કરનાર ફળ ભોગવવામાંથી બચી જાય. આ બંને વાત અનુચિત છે. એ કારણે એ નિશ્ચય કરી લેવો જોઈએ કે આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, અને જન્માન્તર ગમન કરે છે.

आत्मा देहे कदाचित्तिष्ठति, कदाचिन्न तिष्ठति, अतः तस्याभावस्तत्र नियतो नास्ति। तस्माद् देहादन्य इति मन्तव्यम्। एवमनुमानप्रयोगः-

आत्मा-देहादन्यः, तद्भावेऽपि तत्र तस्यानियमेनाभावात्, उपाश्रयगतसाधु-श्रावकवत्। ननु देहे जीवस्य गमनागमनं न दृश्यते, तथा च जीवस्य देहे सदा सद्भावसत्त्वेनाभावरूपो हेतुरप्रसिद्ध इति चेन्न, मृतशरीरे तस्यादर्शनात्।

यद्वा—आत्मा देहेन्द्रियभिन्नः. तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात्।

आत्मा शरीर में कभी रहता है, कभी नहीं रहता, अतः उसका अभाव वहाँ नियत नहीं है। अत एव मानना चाहिए कि—आत्मा देह से भिन्न है। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए :—

आत्मा शरीर से भिन्न है, क्यों कि देह के होने पर भी आत्मा वहाँ नियम से नहीं रहता, उपाश्रय में स्थित साधु श्रावक के समान।

शंका—शरीर में जीव का गमन और आगमन दिखाई नहीं देता अतः वह देह में सदैव विद्यमान रहता है। ऐसी अवस्था में आप का यह अभाव सिद्ध करने वाला हेतु असिद्ध है।

समाधान—ऐसा कहना समीचीन नहीं है, क्यों कि मृत शरीर में आत्मा मालूम नहीं होता।

अथवा—आत्मा देह और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है। जैसे जातिस्मरण

આત્મા શરીરમાં કોઈ વખત રહે છે, કોઈ વખત નથી રહેતો તેથી તેનો અભાવ ત્યાં ચોક્કસ રૂપથી નથી. તેથી માનવું જોઈએ કેઃ-આત્મા દેહથી ભિન્ન છે. અનુમાનનો પ્રયોગ આ પ્રમાણે કરવો જોઈએઃ—

આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, કેમકે દેહ હોવા છતાંય આત્મા ત્યાં નિયમથી રહેતો નથી, ઉપાશ્રયમાં રહેલા સાધુ શ્રાવક પ્રમાણે.

શંકા—શરીરમાં જીવનું ગમન-જવું, અને આગમન-આવવું તે નજરે જોવામાં આવતું નથી, તેથી તે દેહમાં સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે. એવી અવસ્થામાં આપનો એ અભાવ સિદ્ધ કરવાનો હેતુ અસિદ્ધ છે. એમ કહેવું તે બરાબર નથી, કેમકે મૃત શરીરમાં આત્મા માલૂમ પડતો નથી.

અથવા-આત્મા દેહ અને ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે, કારણ કે-તેનો નાશ થયા પછી પણ તેના દ્વારા જાણવામાં આવેલા પદાર્થનું સ્મરણ થાય છે. જેમ જાતિસ્મરણ

यथा-जातिस्मरणशक्त्या मृगापुत्रवत् संयमी पूर्वभवं स्मरति, व्याध्यादिकारणेन नष्टदृष्टिः पूर्वानुभूतं रक्तपीतादिवर्णं, नष्टश्रवणश्च शब्दं स्मरति। यथा गेहगवाक्षैः पूर्वदृष्टस्य पूर्वश्रुतस्यान्यत्रानुस्मर्ता देवदत्तः।

(२) नित्यत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा नित्यत्वादमूर्त इति विज्ञायते। अमूर्तत्वाच्च देहादन्य इति निश्चीयते। तथाहि-आत्माऽनुत्पत्तौ सत्यामविनाशी, तथा सर्वकालावस्थायी। तथा-आत्मा क्षणापेक्षयापि न निरन्वयनाशवान्; वस्तुत्वे सति उत्पत्तेरभावात्,

---

ज्ञान से मृगापुत्र को पूर्व भव का स्मरण हुआ था। कोई-कोई संयमी अपने पूर्वभव का स्मरण करता है। रोग आदि किसी कारण से जिस की दृष्टि नष्ट हो गई है, वह पुरुष पहले अनुभव किए हुए लाल पीले आदि रंगों को स्मरण करता है, और जिसके कान नष्ट हो गये हैं वह शब्द का स्मरण करता है। किसी घर की खिडकियों के द्वारा पहले देखे हुए पदार्थों का या सुने हुए शब्दों का देवदत्त को अन्यत्र स्मरण होता है, अत एव देवदत्त खिडकियों से भिन्न है। उसी प्रकार आत्मा, इन्द्रियों से भिन्न है।

(२) आत्माकी नित्यता—

आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त प्रतीत होता है और अमूर्त होने के कारण देह से भिन्न है। वह इस प्रकार-आत्मा उत्पत्तिरहित और अविनाशी है, तथा सर्वकाल में स्थायी है, तथा आत्मा क्षण की अपेक्षा भी निरन्वय (समूल) नाशवान् नहीं है, क्यों कि वस्तु होने पर भी उस की उत्पत्ति नहीं होती; जैसे आकाश।

જ્ઞાનથી મૃગાપુત્રને પૂર્વભવનું સ્મરણ થયું હતું. કોઇ કોઇ સંયમીને પોતાના પૂર્વ ભવનું સ્મરણ થાય છે. રોગ આદિ કોઈ કારણથી જેની દૃષ્ટિ (નેત્રથી જોવાની શક્તિ) નાશ પામી ગઇ છે તે પુરૂષ પ્રથમ અનુભવેલા લાલ, પીળા આદિ રંગોનું સ્મરણ કરે છે. અને જેના કાન નષ્ટ થઇ ગયા હોય-(સાંભળવાની શકિત નાશ પામી હોય) તે શબ્દનું સ્મરણ કરે છે. કોઇ ઘરની ખડકીઓ દ્વારા પ્રથમ જોયેલા પદાર્થોનું અથવા તો સાંભળેલા શબ્દનું દેવદત્તને અન્યત્ર-બીજા સ્થળે સ્મરણ થાય છે. એ કારણથી દેવદત્ત ખડકીઓથી ભિન્ન છે. તે પ્રમાણે આત્મા ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે.

(૨) આત્માની નિત્યતા—

આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત્ત જણાય છે અને અમૂર્ત્ત હોવાના કારણે, દેહથી ભિન્ન છે. તે આ પ્રમાણે-આત્મા ઉત્પત્તિરહિત અને અવિનાશી છે, તથા સર્વ કાલમાં સ્થાયી છે, અને ક્ષણની અપેક્ષા પણ નિરન્વય (સમૂળ) નાશવાન્ નથી,

यथा गगनम्। अनुत्पत्तौ सत्यामविनाशित्वेन, तथा सर्वकालावस्थायित्वेन, तथा क्षणापेक्षयाऽपि निरन्वयनाशाभाववत्त्वेन चात्मनो नित्यत्वं सिध्यति। देहात्मवादिना परिमितकालावस्थायित्वमात्मनो मन्यते, तथा क्षणिकवादिनापि निरन्वयक्षणिकपरिणामप्रवाहस्य नित्यत्वं स्वीक्रियते। तौ चैवंविधनित्यत्वसाधनेन निराकृतौ। शशशृङ्गादावपि जन्माभावसत्त्वेन हेतौ साध्यव्याप्तिर्न स्यादतो वस्तुत्वे सतीत्युक्तम्।

न चामूर्त्तत्वस्य परमाणौ व्यभिचार आशङ्कनीयः, आर्हतमते नित्य–

उत्पत्तिरहित और अविनाशी होने के कारण, तथा सर्वकाल में विद्यमान रहने के कारण और क्षण की अपेक्षा भी समूल नाशवान् न होने के कारण आत्मा की नित्यता सिद्ध होती है। देह को ही आत्मा मानने वाला कहता है कि–आत्मा परिमित काल तक ठहरता है। तथा क्षणिकवादी भी निरन्वय क्षणिक परिणाम–प्रवाह को नित्य मानता है। इस प्रकार आत्मा की नित्यता सिद्ध करके इन दोनों के मत का निराकरण किया गया है। प्रस्तुत हेतु में **'वस्तु होते हुए भी'** यह विशेषण इस लिये लगाया है कि शश–विषाण आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) न हो, क्यों कि उत्पत्ति का अभाव तो उन में भी है किन्तु वस्तुत्व उन में नहीं है।

अमूर्तत्व, परमाणु में नहीं है और वहाँ नित्यत्व हेतु है, इस लिये परमाणु

કેમકે વસ્તુ છતાંય તેની ઉત્પત્તિ નથી હોતી, જેમકે આકાશ. ઉત્પત્તિરહિત અને અવિનાશી હોવાના કારણે, તથા સર્વકાલમાં વિદ્યમાન રહેવાના કારણે, અને ક્ષણની અપેક્ષાએ પણ સમૂળગો નાશવાન નહિ હોવાના કારણે આત્માની નિત્યતા સિદ્ધ થાય છે. દેહને જ આત્મા માનવાવાળા કહે છે કેઃ–આત્મા પરિમિત કાલ સુધી ચાલે છે, તથા ક્ષણિકવાદી પણ નિરન્વય ક્ષણિક–પરિણામપ્રવાહને નિત્ય માને છે. આ પ્રમાણે આત્માની નિત્યતા સિદ્ધ કરીને એ બંને (દેહવાદી અને ક્ષણિકવાદી)ના મતનું નિરાકરણ કર્યું છે. પ્રસ્તુત હેતુમાં **"વસ્તુ હોવા છતાંય પણ"** એ વિશેષણ એ કારણથી આપ્યું છે કેઃ–શશ–વિષાણ–(સસલાનાં શિંગડાં) આદિથી વ્યભિચાર (હેતુ હોય અને સાધ્ય ન હોય) ન થાય, કારણ કે ઉત્પત્તિનો અભાવ તો તેમાં પણ છે, પરંતુ વસ્તુત્વ તેમાં નથી.

અમૂર્તત્વ, પરમાણુમાં નથી, અને ત્યાં નિત્યત્વ હેતુ છે, એ કારણથી પરમાણુમાં

त्वामूर्तत्वयोरात्मन्येकान्ततोऽनङ्गीकारात् ।

यद्वा-आत्मा नित्यः संसारात्, त्रिकालविषयकक्रियापर्यालोचकत्वात्, 'स एष' इति प्रत्यभिज्ञावत्त्वात् । अनेन हेतुत्रयेण क्षणिकवादो निरस्तः ।

यत्तु-आत्मा-एकान्तनित्यः 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादिवचनप्रामाण्यात्, 'स एष अक्षयोऽजः' इत्यादिश्रुतिप्रामाण्याच्च, इति, तन्न युक्तम्, आत्मन एकस्वभावत्वे संसरणादिव्यवहारोच्छेदापत्तिः स्यात् तस्मात् कथञ्चिन्नित्यः कथञ्चिदनित्य इति

में व्यभिचार की आशङ्का नहीं करना, क्यों कि आत्मा में नित्यत्व और अमूर्तत्व एकान्त रूप से नहीं माना गया है ।

अथवा—आत्मा नित्य है, क्यों कि वह एक गति से दूसरी गति में जाता है, क्यों कि वह त्रिकालविषयक क्रियाका आलोचक है, और वह प्रत्यभिज्ञान (यह वही है इस प्रकार का जोडरूप ज्ञान) वाला है । इन तीन हेतुओं से क्षणिकवादका निराकरण हो गया ।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादि वचन से और **'स एषः अक्षयोऽजः'** इत्यादि श्रुति के प्रमाण से आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध होता है । ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्यों कि आत्मा को एकान्त नित्य स्वभाव वाला मानने से संसरण (एक जन्म से दूसरे जन्म में जाना) आदि व्यवहारों का नाश हो जायगा । अत एव कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य आत्मा स्वीकार करना चाहिए ।

વ્યભિચારની આશંકા કરવી નહિ. કારણ કે આત્મામાં નિત્યત્વ અને અમૂર્ત્તત્વ એકાન્તરૂપથી માનવામાં આવ્યું નથી.

અથવા—આત્મા નિત્ય છે, કારણ કે તે એક ગતિથી બીજી ગતિમાં જાય છે, કારણ કે-તે ત્રિકાળવિષયક ક્રિયાનો આલોચક (વિચાર કરનાર) છે, અને તે પ્રત્યભિજ્ઞાન ('આ તેજ છે' એ પ્રકારનું જોડરૂપ જ્ઞાન) વાળો છે. આ ત્રણ હેતુઓ વડે કરી ક્ષણિકવાદનું નિરાકરણ થઈ ગયું છે.

"**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि**" ઈત્યાદિ વચનથી અને '**स एष अक्षयोऽजः**' ઈત્યાદિ શ્રુતિના પ્રમાણથી આત્મા અકાન્ત નિત્ય સિદ્ધ થાય છે. એમ કહેવું તે પણ યુકત નથી, કારણ કે આત્માને એકાન્ત નિત્ય સ્વભાવ વાળો માનવાથી સંસરણ (એક જન્મથી બીજા જન્મમાં જવું તે) આદિ વ્યવહારોનો નાશ થઇ જશે, એ કારણથી કથંચિત્ નિત્ય અને કંથચિત અનિત્ય આત્મા છે. એ પ્રમાણે સ્વીકાર કરવો જોઇએ.

स्वीकर्तव्यम् । द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः, पर्यायार्थिकनयेन–अनित्य इति। एवमनङ्गीकारे हि 'संसारा '–दित्याद्युक्तहेतूनामसंगतिः स्यात् । आत्मन एकस्वभावत्वस्वीकारे स्वभावान्तरानापत्त्या वर्तमानकालिकभावातिरिक्तं भावान्तरं न लब्धुमर्हेत् । एवमनित्यत्वामूर्तत्वयोरपि स्याद्वाद आलम्बनीयः, अन्यथा व्यवहारोच्छेद-प्रसंगः स्यात् , एकान्तामूर्तस्य, तथैकान्ततो देहभिन्नस्य चातिपातादिप्रसंगाभावे सति हिंसादिनिवृत्तिदेशनादिपरकचरणकरणादिबोधकसकलशास्त्रानर्थक्यं, तथाऽऽत्मनः संसारगर्तादनुद्धारश्च स्यात् ।

आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और पर्यायार्थिकनय से अनित्य है। ऐसा स्वीकार न करने पर **'संसरण करने से'** इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असङ्गत हो जायेंगे। एक स्वभाव वाला आत्मा स्वीकार किया जाय तो उस में दूसरे स्वभाव की उत्पत्ति नहीं होगी, और वर्तमानकालीन भाव के अतिरिक्त दूसरा भाव कभी प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार अनित्यत्व और अमूर्तत्व के विषय में भी स्याद्वादका ही आश्रय लेना चाहिए, अन्यथा व्यवहार के अभाव का प्रसङ्ग आएगा। आत्मा को एकान्त अमूर्त मानने से, तथा देह से एकान्त भिन्न मानने से उस का घात होना असंभव है, और इस दिशा में हिंसा आदि से निवृत्त होने का उपदेश देने वाले चरण–करण आदि के बोधक सब शास्त्र व्यर्थ हो जाएँगे। इस के अतिरिक्त आत्मा का संसाररूपी खड्डे से कभी उद्धार भी नहीं होगा।

આત્મા દ્રવ્યાર્થિક નયથી નિત્ય છે, અને પર્યાયાર્થિક નયથી અનિત્ય છે. એ પ્રમાણે સ્વીકાર નહિ કરવાથી **'સંસરણ કરવાથી'** ઈત્યાદિ પૂર્વોકત હેતુ અસંગત થઇ જશે. એક સ્વભાવવાળો આત્મા સ્વીકાર કરવામાં આવશે તો તેમાં બીજા સ્વભાવની ઉત્પત્તિ નહિ થાય, અને વર્તમાનકાલીન ભાવ વિના બીજો ભાવ કોઇ પણ વખત પ્રાપ્ત નહિ થાય, એ પ્રમાણે અનિત્યત્વ અમૂર્તત્વના વિષયમાં પણ સ્યાદ્વાદનો જ આશ્રય લેવો જોઇએ. અન્યથા વ્યવહારના અભાવનો પ્રસંગ આવશે. આત્માને એકાન્ત અમૂર્ત માનવાથી તથા દેહથી એકાન્ત ભિન્ન માનવાથી તેનો ઘાત થવો અસંભવ છે, અને એ દશામાં હિંસા આદિથી નિવૃત્ત થવાનો ઉપદેશ દેવાવાળા ચરણ–કરણ આદિના બોધક તમામ શાસ્ત્રો વ્યર્થ થઇ જશે. તે સિવાય આત્માનો સંસારરૂપી ખાડાથી કોઇ વખત પણ ઉદ્ધાર નહિ થાય.

यद्वा-आत्मा नित्यः स्वकारणविभागाभावाद् आकाशवत्। आकाशस्य कारणाभावादेव कारणविभागो नास्ति। यस्तु न नित्यः, स न स्वकारणविभागाभाववान्, यथा पटः। दृश्यते हि पटस्तन्तूनां विभागो भवतीति।

किञ्च-आत्मा नित्यः कारणविनाशाभावाद् आकाशवदेव। कारणाभावादेव हि कारणस्य विनाशाभावः, यथा गगनमेव। यो न नित्यः, स न कारणविनाशाभाववान् अर्थात् कारणविनाशवानेव, यथा पटः। दृश्यते हि पटकारणीभूतस्य तन्तोर्विनाशो भवतीति। अयं चात्मा स्वकारणाभावेन कारणविनाशाभाववान्, तस्मान्नित्य इति। नित्यत्वादयममूर्तः, अमूर्तत्वाच्च शरीराद् भिन्न इति निश्चीयते।

अथवा—आत्मा नित्य है, क्यों कि उस के कारणों का विभाग नहीं है, जैसे आकाश। आकाश के कारणों का अभाव है, इसी कारण उसके कारणों का विभाग भी नहीं है। जो नित्य नहीं है, वह अपने कारणों के विभाग का अभाव वाला भी नहीं होता जैसे-पट। पट से तन्तुओं का विभाग होता दिखाई देता है।

और भी-आत्मा नित्य है, क्यों कि उसके कारणों के विनाश का अभाव है, जैसे-आकाश। कारणों का अभाव होने से ही कारणों के विनाश का अभाव है जैसे आकाश। जो नित्य नहीं होता वह कारण-विनाशभाव वाला भी नहीं होता, जैसे पट, देखा जाता है कि-पट के कारणभूत तन्तुओं का नाश हो जाता है। आत्मा के जनक कारणों का अभाव है अतः वह कारणों के विनाशका अभाव वाला है, अर्थात् आत्मा के कारण ही नहीं हैं तो उसके कारणों का अभाव क्या होगा ?

અથવા—આત્મા નિત્ય છે, કેમકે તેના કારણોનો વિભાગ નથી, જેમ આકાશ. આકાશને કારણોનો અભાવ છે તેથી જ તેના કારણોનો વિભાગ પણ નથી. જે નિત્ય નથી તે પોતાના કારણોના વિભાગના અભાવવાળો પણ નહિ થાય, જેમ પટ. પટથી તંતુઓનો વિભાગ થતો જોવામાં આવે છે.

ફરી પણ-આત્મા નિત્ય છે. કારણ કે તેના કારણોના વિનાશનો અભાવ છે, જેમ આકાશ. કારણોનો અભાવ હોવાથી જ કારણોના વિનાશનો અભાવ છે. જેમ આકાશ જે નિત્ય નથી તે કારણવિનાશભાવવાળું પણ નથી, જેમ પટ. જોવામાં આવે છે કે-પટના કારણભૂત તંતુઓનો નાશ થાય છે. પણ આત્માના જનક કારણોનો અભાવ છે, તેથી તે કારણોના વિનાશનો અભાવવાળો છે, અર્થાત્ આત્માને

परन्त्वेकान्तनित्यत्वे, एकस्यात्मनो नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिपरिणामा नोपपद्येरन्। एकान्तक्षणिकत्वेऽपि स्वाध्यायाध्ययनध्यानादिपरिश्रमप्रत्यभिज्ञानं नोपपद्येत। तस्मादात्मा कथञ्चिन्नित्यः, कथञ्चिदनित्यः, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम्।

यत्तु–"द्रव्यक्षेत्रकालभावैरेकान्तेनैव नित्यः, अविचलितस्वभाव आत्मे"–ति वदन्ति तत्सर्वमयुक्तम्। तथा सति सुखदुःखसंसारमोक्षाणामनुपपत्तिरापद्येत। तत्र हि आह्लादानुभवरूपं क्षणं सुखं, तापानुभवरूपं दुःखम्, तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवभवसंसरणरूपः संसारः, अष्टविधकर्मबन्धवियोगो मोक्षः। एकान्तवाद-

---

इस लिए आत्मा नित्य है। आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त है, और अमूर्त होने के कारण शरीर से भिन्न है।

किन्तु आत्मा को एकान्त नित्य मानने पर एक ही आत्मा नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप नाना पर्यायों को प्राप्त नहीं होगा। और एकान्त क्षणिक मानने पर भी स्वाध्याय, अध्ययन; ध्यान आदि का परिश्रम वृथा हो जायगा, और प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो जायगा। अत एव आत्मा कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, ऐसा अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

जो लोग द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से आत्मा को एकान्त नित्य अविचल स्वभाव वाला मानते हैं, वह सब अयुक्त है। ऐसा मानने से सुख, दुःख, संसार और मोक्ष नहीं बन सकते। आह्लाद का अनुभव करनारूप क्षण सुख कहलाता है। संताप का अनुभव करना दुःख है। तिर्यञ्च, मनुष्य, नारक और देव भव में जाना संसार है। आठ प्रकार के कर्मबन्ध का वियोग होना मोक्ष है। एकान्तवाद

કારણ જ નથી તો પછી તેના કારણોનો અભાવ શું થશે? એ કારણથી આત્મા નિત્ય છે. આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત છે. અને અમૂર્ત હોવાના કારણે શરીરથી ભિન્ન છે.

પરંતુ આત્માને એકાન્ત નિત્ય માનવાથી એક જ આત્મા નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિરૂપ નાના પર્યાયોને પ્રાપ્ત નહિ થાય, અને એકાન્ત ક્ષણિક માનવાથી પણ સ્વાધ્યાય, અધ્યયન, ધ્યાન આદિનો પરિશ્રમ વૃથા થઈ જશે, અને પ્રત્યભિજ્ઞાનનો અભાવ થઇ જશે, એ કારણથી આત્મા કંથચિત્ નિત્ય અને કંથચિત્ અનિત્ય છે. એ પ્રમાણે જરૂર સ્વીકારવું જોઇએ.

જે માણસો દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને ભાવથી આત્માને એકાન્ત નિત્ય, અવિચલ સ્વભાવ વાળો માને છે, તે સર્વ અયુક્ત છે. એ પ્રમાણે માનવાથી સુખ, દુઃખ સંસાર અને મોક્ષ બની શકશે નહિ. આહ્લાદનો અનુભવ કરવારૂપ ક્ષણ સુખ કહેવાય છે. સંતાપનો અનુભવ કરવો તે દુઃખ છે. તિર્યંચ, મનુષ્ય, નારકી અને દેવભવમાં જવું તે સંસાર છે, આઠ પ્રકારના કર્મ બંધનો વિયોગ થવો તે મોક્ષ છે. એકાન્તવાદ

समालम्बने तु सुखदुःखादयः सर्वे आत्मनोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतयाऽन्यथात्वरूपपरिणामासंभवान्नोपपद्येरन्, नारकत्वादिभावो यस्य यादृशो विद्यते, तदन्यरूपतां नासौ प्रपद्येत ।

भावतोऽप्रसन्नस्यात्मनः पूर्वरूपापरित्यागे सति पुनः प्रसन्नरूपताया असंभवः स्यात् । दृश्यते पुनरप्रसन्नस्य कदाचित् प्रसन्नताऽपि, सा नोपपद्येत । तस्मादेकान्तवादं परित्यज्यानेकान्तवादः समालम्बनीयः ।

(३) चेतनावत्त्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन शुद्धचेतनासहितः, व्यवहारनयेन च कर्मादि

स्वीकार करने पर आत्मा अप्रच्युत, अनुत्पन्न और स्थिर एकरूप तथा एक स्वभाव वाला होने के कारण, और उसमें रूपान्तर होना असंभव होने से सुख दुःखादि नहीं होंगे, अतः विभिन्न अवस्थाएँ भी नहीं हो सकेंगी, फिर जो आत्मा नारकत्वादि जिस रूप में है वह सर्वदा उसी रूप में रहेगी—एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकेगी । जो आत्मा अप्रसन्न है, मगर अप्रसन्न का भी कभी प्रसन्न होना दिखाई देता है, फिर ऐसा न हो सकेगा । अत एव एकान्तवाद का त्याग करके अनेकान्तवाद का आश्रय लेना चाहिए ।

(३) चेतनावत्त्व—

यह आत्मा निश्चयनय से शुद्ध चेतना से युक्त है और व्यवहारनय से

સ્વીકાર કરવાથી આત્મા અપ્રચ્યુત, અનુત્પન્ન અને સ્થિર એકરૂપ તથા એક સ્વભાવ વાળા હોવાના કારણે તેમાં રૂપાન્તર થવું અસંભવિત હોવાથી સુખ-દુઃખાદિ નહિ હોય. તે કારણથી વિભિન્ન અવસ્થાઓ પણ થઈ શકશે નહિ. ફરી જે આત્મા નારકત્વાદિ જે રૂપમાં છે, તે સર્વદા તે રૂપમાં જ રહેશે. એટલે એક ભવમાંથી બીજા ભવમાં જઈ શકશે નહિ. વળી જે આત્મા અપ્રસન્ન છે તે પોતાના પૂર્વરૂપનો પરિત્યાગ ન કરે તો તેને ફરી પ્રસન્નતામાં આવવું તે અસંભવ છે, પરંતુ અપ્રસન્ન પણ કોઈ વખત પ્રસન્ન હોય એમ દેખાય છે; ફરી એમ નહિ થઈ શકશે. એ કારણથી અનેકાન્તવાદનો ત્યાગ કરીને અનેકાન્તવાદનો આશ્રય લેવો જોઈએ.

(૩) ચેતનાવત્ત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી શુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે અને વ્યવહારનયથી 'આત્માને

पीडयत्यात्मानमिति ज्ञानरूपाशुद्धचेतनया सहितश्चेतनावानित्युच्यते। चेतनावानिति कथञ्चिदुच्यते; आत्मा वस्तुतश्चेतनास्वरूप एवास्ति। आत्मनो गुणश्चेतनेति सर्वेषां मतं, तदभिप्रायेण चेतनावानित्युक्तम्। चेतना द्विविधा-शुद्धा, अशुद्धा चेति। ज्ञानचेतनैव शुद्धचेतना। कर्मचेतना, तथा कर्मफलचेतना चाशुद्धचेतनोच्यते।

(४) उपयोगवत्त्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन केवलज्ञानकेवलदर्शनरूपाभ्यां शुद्धोपयोगाभ्यां सहितो व्यवहारनयेन मतिज्ञानाद्युपयोगयुक्तश्चेत्यतोऽयमुपयोगवानित्युच्यते।

'आत्मा को कर्म पीडित करते हैं' इस प्रकार के ज्ञानरूप अशुद्ध चेतना से युक्त है, अत एव आत्मा चेतनावान् कहलाता है। आत्मा को किसी अपेक्षा से ही चेतनावान् कहते हैं, वास्तव में तो आत्मा चेतनारूप ही है। 'चेतना आत्मा का गुण है' ऐसा सबका मत है, इसी अभिप्राय से उसे चेतनावान् कह दिया है। चेतना दो प्रकार की है-शुद्ध चेतना और अशुद्ध चेतना। ज्ञान चेतना ही शुद्ध है। कर्मचेतना और कर्म-फलचेतना अशुद्ध चेतना है।

(४) उपयोगवत्त्व-

यह आत्मा निश्चयनय से केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप शुद्ध उपयोगों से युक्त है। व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि उपयोगों से युक्त है, अत एव आत्मा उपयोगवान् कहलाता है।

કર્મો પીડિત કરે છે' એ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે એટલા માટે આત્મા ચેતનવાન્ કહેવાય છે. આત્માને કોઈ અપેક્ષાથી જ ચેતનવાન્ કહે છે, વાસ્તવમાં તો આત્મા ચેતનારૂપ જ છે. 'ચેતના આત્માનો ગુણ છે' એ પ્રમાણે સર્વનો મત છે. એ અભિપ્રાયથી તેને ચેતનાવાન્ કહી દીધો છે. ચેતના બે પ્રકારની છે. (૧) શુદ્ધ-ચેતના અને (૨) અશુદ્ધ-ચેતના. જ્ઞાનચેતના જ શુદ્ધ છે, કર્મચેતના અને કર્મફલચેતના તે અશુદ્ધ-ચેતના છે.

(૪) ઉપયોગવત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોથી યુક્ત છે. વ્યવહારનયથી મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોથી યુક્ત છે. એ કારણે આત્મા ઉપયોગવાન્ કહેવાય છે.

अयमात्मा ज्ञानदर्शनोपयोगाभ्यां न भिन्न इति बोधयितुमुपयोगवानिति, इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तभेद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम्। सर्वज्ञ-सिद्धान्ते तु द्रव्यं वस्तुतो गुणपर्यायेभ्यो न भिन्नम्, अतः कथञ्चिदभेद-विवक्षयाऽऽश्रयिभावं परिकल्प्य-उपयोगवानिति निगदितम्।

उपयोगो द्विधा-ज्ञानदर्शनभेदात्। सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः,। निर्विकल्प उपयोगो दर्शनोपयोगः। तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः-मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-श्रुत-विभंग-भेदेन त्रीण्यज्ञानानि चेति। अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानवर्गे निक्षिप्तानि। अत्रैकमेव केवलज्ञानं क्षायिकं सर्वा-

'आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है' यह बतलाने के लिए उसे उपयोगवान् कहा है। 'ज्ञान और आत्मा का एकान्त भेद है' ऐसा नैयायिकों का मत है। इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है। सर्वज्ञ के सिद्धान्त में द्रव्य वास्तव में गुण और पर्यायों से भिन्न नहीं है, अतः कथञ्चित् भेद की विवक्षा करके आधाराधेय भाव की कल्पना से उपयोगवान् कहा है।

उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। सविकल्प उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहलाता है। इनमें से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है-(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभङ्गज्ञान, अन्तके तीन अज्ञान कहलाते हैं। ये विपरीतज्ञानरूप होने के कारण इन्हें ज्ञान की कोटि में रक्खा है। इनमें

આત્મા જ્ઞાનોપયોગ અને દર્શનોપયોગથી ભિન્ન નથી, એ બતાવવા માટે જ તેને ઉપયોગવાન્ કહ્યો છે. 'જ્ઞાન અને આત્માનો એકાન્ત ભેદ છે' એવો નૈયાયિકોનો મત છે, એ મતનું નિરાકરણ કરવા માટે એ કથન કરવામાં આવ્યું છે. સર્વજ્ઞના સિદ્ધાન્તમાં દ્રવ્ય એ વાસ્તવમાં ગુણ અને પર્યાયોથી ભિન્ન નથી, તેથી કથંચિત્ ભેદની વિવક્ષા કરીને આધારાધેય ભાવની કલ્પનાથી ઉપયોગવાન્ કહ્યો છે.

ઉપયોગના બે ભેદ છે-(૧) જ્ઞાનોપયોગ અને (૨) દર્શનોપયોગ, સવિકલ્પ ઉપયોગને જ્ઞાનોપયોગ કહે છે, અને નિર્વિકલ્પ ઉપયોગ તે દર્શનોપયોગ કહેવાય છે. તેમાં જ્ઞાનોપયોગ આઠ પ્રકારનો છે. (૧) મતિજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન, (૫) કેવલજ્ઞાન, તથા (૬) કુમતિજ્ઞાન, (૭) કુશ્રુતજ્ઞાન અને (૮) વિભંગજ્ઞાન. તેમાં છેવટના ત્રણ અજ્ઞાન કહેવાય છે. પરંતુ વિપરીતજ્ઞાનરૂપ હોવાના કારણે તેને જ્ઞાનની કોટિમાં રાખ્યા છે. એમાં એક

वरणरहितं सर्वतः शुद्धमस्ति। अन्यानि मतिज्ञानादिकानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि देशत आवरणरहितानि देशतः शुद्धानि। त्रीण्यज्ञानान्यशुद्धानि। दर्शनोपयोगस्य चत्वारो भेदाः- (१) चक्षुर्दर्शनम्, (२) अचक्षुर्दर्शनम्, (३) अवधिदर्शनम्, (४) केवलदर्शनं च। तत्रैकं केवलदर्शनं क्षायिकं सर्वतोऽनावरणं सर्वतः शुद्धं च। चक्षुर्दर्शनादीनि त्रीणि क्षायोपशमिकानि देशतोऽनावरणानि देशतः शुद्धानि च सन्ति।

'ज्ञानादिगुणतः सर्वथा भिन्न आत्मे' ति नैयायिकाद्यभिमतं तु न युक्तम्, ज्ञानादिगुणसम्बन्धात् प्राक् कदाचिद् ज्ञानादिगुणहीनोऽप्यासीदिति तस्य मते

एक मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरण से रहित और पूर्ण शुद्ध है। शेष मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं, देशतः आवरणरहित हैं और देशतः शुद्ध हैं। तीनों कुज्ञान अशुद्ध हैं।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन। इनमें से अकेला केवलदर्शन क्षायिक है, पूर्ण रूप से आवरणरहित है और पूर्णरूप से शुद्ध है। चक्षुर्दर्शन आदि तीन क्षायोपशमिक हैं, देशतः निरावरण हैं, और देशतः शुद्ध हैं।

'आत्मा ज्ञानादि गुणों से सर्वथा भिन्न है' ऐसा नैयायिक आदि का मत युक्त नहीं है, क्यों कि ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध होने से पहले किसी समय आत्मा को ज्ञानादि गुणों से रहित भी मानना पडेगा और इस प्रकार उन के मत में आत्मा जड

માત્ર કેવલજ્ઞાન ક્ષાયિક છે, સંપૂર્ણ આવરણથી રહિત અને પૂર્ણ શુદ્ધ છે. બાકીનાં મતિજ્ઞાન આદિ ચાર જ્ઞાન ક્ષાયોપશમિક છે, દેશ થકી આવરણરહિત છે. અને દેશ થકી શુદ્ધ છે, ત્રણ કુજ્ઞાન અશુદ્ધ છે.

દર્શનોપયોગના ચાર ભેદ છે-(૧) ચક્ષુદર્શન, (૨) અચક્ષુદર્શન, (૩) અવધિદર્શન અને (૪) કેવલદર્શન. તેમાંથી એક કેવલદર્શન ક્ષાયિક છે. પૂર્ણરૂપથી આવરણરહિત છે, અને પૂર્ણરૂપથી શુદ્ધ છે. ચક્ષુદર્શન આદિ ત્રણ ક્ષાયોપશમિક છે, દેશ થકી નિરાવરણ છે અને દેશ થકી શુદ્ધ છે.

"આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોથી સર્વથા ભિન્ન છે." એવો નૈયાયિક આદિનો મત યુક્ત નથી-ઉચિત નથી, કારણ કે જ્ઞાનાદિ ગુણોનો સંબંધ થયા પહેલાં કોઈ સમય આત્માને જ્ઞાનાદિ ગુણોથી રહિત પણ માનવો પડશે, અને એ પ્રમાણે તેના મતમાં

जडरूपत्वापत्तिः। आत्मनि ज्ञानस्य नित्यानादिसम्बन्धस्वीकारेऽपि पदार्थद्वय-कल्पनायां पुनस्तत्सम्बन्धरूपसमवायस्य कल्पनायां महद् गौरवम्, तस्माद् गुणगुणिनोर्वस्तुतस्तादात्म्यस्वीकार एवौचित्यमर्हति। यदि गुणगुणिनोरभेद एव समवायोऽपीत्युच्येत तर्हि नास्ति काऽपि क्षतिः। उक्तञ्च—

" गुणपर्ययतादात्म्य;-विशिष्टं द्रव्यमुच्यते।
उत्पत्तिव्ययनैयत्व,-पर्यायास्तस्य शाश्वताः॥ १॥ " इति।

(५) परिणामित्वनिरूपणम्—

अयमात्मा परिणामी। प्रतिसमयमपरापरपर्यायेषु गमनं परिणामः,

हो जायगा। आत्मा में ज्ञान का नित्य-अनादि सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो दो पदार्थ मानने पडेंगे, और उन दोनों अर्थात् आत्मा और ज्ञान को सम्बद्ध करने के लिए तीसरा समवाय सम्बन्ध मानना होगा, यह बडा गौरव होगा। अत एव गुण और गुणीका वास्तव में तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना ही उचित है। अगर गुण और गुणी के अभेद को ही समवाय सम्बन्ध कहते हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है। कहा भी है :—

" जो गुण और पर्याय के तादात्म्य से युक्त हो वह द्रव्य कहलाता है। उस द्रव्य की पर्यायें सदा उत्पत्ति और विनाशवाली हैं, और वे अनादिप्रवाहरूप हैं " ॥ १ ॥

(५) आत्मा का परिणामीपन—

आत्मा परिणामी है। प्रत्येक समय एक पर्याय को छोडकर दूसरा पर्याय

આત્મા જડ થઈ જશે. આત્માને વિષે જ્ઞાનનો નિત્ય-અનાદિ સંબંધ સ્વીકાર કરવામાં આવે તો બે પદાર્થ માનવા પડશે, અને તે બંને અર્થાત્ આત્મા અને જ્ઞાન તે બંને ને સમ્બદ્ધ કરવા માટે ત્રીજો કોઈ સમવાય સંબંધ માનવો પડશે. એ ભારે ગૌરવ થશે. તે કારણથી ગુણ અને ગુણીનો વાસ્તવમાં તાદાત્મ્ય સંબંધ સ્વીકાર કરવો એજ ઉચિત છે. અથવા ગુણ-ગુણીના અભેદને જ સમવાય સંબંધ કહો તો તેનો સ્વીકાર કરવામાં કોઈ પ્રકારે હાનિ નથી. કહ્યું પણ છે:—

' જે ગુણ અને પર્યાયના તાદાત્મ્યથી યુક્ત હોય તે દ્રવ્ય કહેવાય છે તે દ્રવ્યની પર્યાયો સદાય ઉત્પત્તિ અને વિનાશ વાળી છે, અને તે અનાદિપ્રવાહરૂપ છે." ॥૧॥

(૫) આત્માનું પરિણામીપણું—

આત્મા પરિણામી છે. પ્રત્યેક સમય એક પર્યાયને છોડી બીજો પર્યાય ધારણ કરવો તે પરિણામ કહેવાય છે. તે પરિણામ જેમાં હોય તે પરિણામી કહેવાય છે.

सोऽस्यास्तीति परिणामी । अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम् । 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्याप्रच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात् । यदि तदा पदार्थविज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातुर्विज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्यभङ्गः । तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम् ।

(६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है। यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी। इस विशेषण से आत्मा की कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है। आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा। ऐसी दशा में आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा ?, क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है। अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अतः कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई। अत एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए। आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है।

(६) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

આ વિશેષણથી આત્માની કૂટસ્થનિત્યતાનું નિરાકરણ કર્યું છે. "આત્મા કૂટસ્થ નિત્ય છે" એવો સ્વીકાર કરવાથી આત્મા જેવો પહેલાં હતો તેવો જ જ્ઞાનની ઉત્પત્તિના સમયમાં પણ રહેશે, એવી દશામાં આત્મા પહેલાં અજ્ઞાતા હતો તો પછી પદાર્થોનો જ્ઞાતા કેવી રીતે થશે ?, કેમકે-આપના મત પ્રમાણે પ્રતિનિયત સ્વરૂપથી ચ્યુત નહિ થતાં જેવો છે તેવો જ બની રહે તે કૂટસ્થતા છે. અગર તો પછીથી આત્માને પદાર્થોનો જ્ઞાતા સ્વીકાર કરો છો તો પ્રથમ જે અજ્ઞાતા હતો તેનું જ્ઞાતાના રૂપમાં પરિણમન થઈ ગયું, તેથી કૂટસ્થરૂપ નિત્યતા નાશ પામી ગઈ, આ કારણથી આત્માને પરિણામી અવશ્ય માનવો જોઈએ. આત્મા કૂટસ્થ નિત્ય નથી પરંતુ પરિણામી નિત્ય છે.

(૬) આત્માનું પ્રભુત્વ—

નિશ્ચય નય પ્રમાણે આત્મા મોક્ષ અને મોક્ષના કારણરૂપ શુદ્ધ પરિણામો

सामर्थ्यात्, तथा व्यवहारनयतः संसारतत्कारणरूपाशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-शक्तिमत्त्वाच्च प्रभुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-शक्तिमत्तया च प्रभुरित्युच्यते । "सर्वज्ञो नास्ति कश्चि"-दिति नास्तिकमतं निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मनः प्रभुत्वमस्तीति संवेद्यते। यथा-अभ्रपटलमलाच्छन्नं रविचन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैर्मल्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽभ्रपटलमलादि-व्यपगमे सर्वतो भावेनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिभिरशुद्ध आत्मा क्रमशः शुद्धिं लभमानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा 'सर्वज्ञः' इत्युच्यते।

परिणमन-सामर्थ्यवाला है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अशुद्ध परिणामों के लिए परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रभु कहलाता है ।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की और सर्वज्ञाताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रभु है, **'कोई सर्वज्ञ नहीं है'** ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के लिए सर्वज्ञरूप में भी आत्मा का प्रभुत्व सूचित किया गया है । जैसे-मेघपटल तथा मल से आच्छादित सूर्य, चन्द्रमा की ज्योति, सुवर्ण या चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अभ्रपटल या मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण शुद्धता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है ।

માટે પરિણમન-સામર્થ્ય વાળો છે. તથા વ્યવહાર નયથી સંસાર અને સંસારના કારણરૂપ અશુદ્ધ પરિણામો માટે પરિણત થવાની શકિતથી યુકત છે. આ કારણથી આત્મા પ્રભુ કહેવાય છે.

આ આત્મા મોક્ષમાર્ગનો ઉપદેશ દેવાની, રત્નત્રયના દ્વારા મોક્ષસાધનની અને સર્વજ્ઞતાપ્રાપ્તિની શકિતથી યુકત હોવાના કારણે પ્રભુ છે. "કોઈ સર્વજ્ઞ નથી" એવો જે નાસ્તિકમત છે તેનું નિરાકરણ કરવા માટે સર્વજ્ઞરૂપમાં પણ આત્માનું પ્રભુત્વ સૂચિત કર્યું છે. જેમ-મેઘસમૂહ તથા મળથી આચ્છાદિત સૂર્ય, ચંદ્રમાની જ્યોતિ, સુવર્ણ અથવા ચાંદી વગેરે ક્રમથી નિર્મલ થતાં થતાં મેઘસમૂહ અથવા મળના ખસી જવાથી પૂર્ણ શુદ્ધ રૂપમાં આવી જાય છે-શુદ્ધ થઈ જાય છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ આદિથી અશુદ્ધ આત્મા ધીરે ધીરે શુદ્ધ થઈને પૂર્ણ શુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરી લે છે. એ પ્રમાણે પૂર્ણ શુદ્ધ આત્મા જ સર્વજ્ઞ કહેવાય છે.

किञ्च–आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी–भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

(७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा–अदृष्टादिकर्मकरणात् , निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात् , व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नोकर्मबाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै–कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तुमुक्तम्–'आत्मा कर्ते'ति ।

दूसरी बात यह है कि–आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। वह स्वकीय कल्याण–साधन में स्वयं समर्थ है। इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है। अतः आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और संयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए।

(७) आत्माका कर्तृत्व–

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्त्ता होने से; तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म–बाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

'आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है' सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है।

બીજી વાત એ છે કેઃ–આત્મા પોતાનું કલ્યાણ કરવામાં બીજાની અપેક્ષા રાખતો નથી, તે પોતાના કલ્યાણસાધનમાં પોતે જ સમર્થ છે. તે કારણથી આત્માનું પ્રભુત્વ સિદ્ધ થાય છે. એ કારણથી આત્મહિતના અભિલાષી પુરૂષોએ મોક્ષના કારણભૂત તપ અને સંયમની આરાધનામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ.

(૬) આત્માનું કર્તૃત્વ—

આ આત્મા અદૃષ્ટ આદિ કર્મો કરવાથી, નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ શુદ્ધ ભાવોનો કર્તા હોવાથી તથા વ્યવહારનયથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ તથા નોકર્મ–બાહ્યશરીર આદિનો કર્ત્તા હોવાથી કર્ત્તા કહેવાય છે.

"આત્મા એકાન્તરૂપથી અકર્ત્તા છે." સાંખ્યના આ મતનું નિરાકરણ કરવા માટે આત્માને કર્તા વિશેષણ આપ્યું છે.

औदारिकादिशरीरस्य कर्त्ताऽस्ति, आदिमत्प्रतिनियताकारित्वात्, कुम्भस्य यथा कुलालः। यत्पुनरकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथाऽभ्रविकारः। यश्च शरीरस्य कर्त्ता स आत्मा, इत्येवमात्मनः कर्तृत्वं सिध्यति। अत्रादिमत्त्वविशेषणं मेर्वादीनुपादाय हेतोरनैकान्तिकत्ववारणाय।

यद्वा-आत्मा कर्ता, स्वकर्मफलभोक्तृत्वात् वणिक्कृषीवलादिवत्। आत्मा स्वकृतकर्मफलभोक्ता तस्मात् कर्ता, यथा वणिक्कृषीवलादयोऽकृतकर्मणः फलं न प्राप्नुवन्ति।

इस औदारिकादि शरीर का कोई कर्ता है, क्यों कि औदारिकादि शरीर आदिमान् और प्रतिनियत आकारवाला है, जैसे-घडेका कर्ता कुंभार। जो वस्तु विना कर्ता की होती है वह आदिमान् और नियत आकार वाली नहीं होती, जैसे-बादल का विकार। जो शरीर का कर्ता है, वह आत्मा है। इस प्रकर आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है। यहाँ '**आदिमत्**' विशेषण से मेरु आदि से होने वाले अनेकातिन्क दोषका निवारण किया गया है, क्यों कि वे आदिमान् नहीं है।

अथवा आत्मा कर्ता है, क्यों कि वह अपने कर्मों का भोक्ता है, जैसे वणिक् या किसान। आत्मा अपने कर्मों के फलका भोक्ता है इस कारण कर्ता है। जैसे-वणिक् या किसान आदि विना किये कर्म का फल नहीं भोगते, इसी प्रकार आत्मा विना किये कर्म का फल नहीं भोगता।

આ ઔદારિકાદિ શરીરનો કોઇ કર્તા છે, કારણ કે ઔદારિકાદિ શરીર, આદિમાન્ અને પ્રતિનિયત આકાર વાળું છે, જેમ ઘડાનો કર્તા કુંભાર. જે વસ્તુ કર્તા વિનાની હોય છે, તે આદિમાન્ અને નિયત આકાર વાળી હોય નહિ, જેમ વાદળનો વિકાર. જે શરીરનો કર્તા છે તે આત્મા છે. એ પ્રકારે આત્માનું કર્તૃત્વ સિદ્ધ થાય છે. અહીં 'આદિમત્' વિશેષણથી મેરુ આદિથી થવા વાળા અનેકાન્તિક દોષનું નિવારણ કર્યું છે, કારણ કે તે 'આદિમાન્' નથી.

અથવા—આત્મા કર્તા છે, કારણ કે-તે પોતાના કર્મોનો ભોક્તા છે. જેમ વણિક્ અથવા ખેડુત. આત્મા પોતાનાં કર્મોનાં ફલનો ભોક્તા છે, તે કારણથી કર્તા છે, જેમ વણિક્ અથવા ખેડુત આદિ, કર્મ કર્યા વિના કર્મનું ફળ ભોગવતા નથી. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મ કર્યા વિના તેનું ફળ ભોગવતો નથી.

यद्वा—आत्मा सुकृतदुष्कृतकर्मणामकर्ता न भवति, सुकृतदुष्कृतकर्म-फलरूपसुखदुःखानुभवात्। अकर्तुरात्मनः सुखदुःखानुभवो न युज्यते, तथा सति अतिप्रसंगात्। मुक्तानामपि सांसारिकसुखदुःखानुभवापत्तेः, अकर्तृत्वाऽ-विशेषात्।

अनुभवितृत्वेन भोक्तृत्वसिद्धिः, भोक्तृत्वेन च कर्तृत्वसिद्धिः। यद्यय-मात्मा कर्ता न भवेत्तदाऽनुभविताऽपि न भवेत्। न चानुभवितुः कर्तृत्वस्वीकारे मुक्तस्यापि कर्तृत्वप्रसङ्गः, इति वाच्यम्, मुक्तात्मनः साक्षिरूपेणानुभवसत्त्वेऽपि द्रव्यभावकर्मरहितत्वादेव सांसारिकविषयसुखादिजनककर्मकर्तृत्वासंभवेनाकर्तृत्वात्,

अथवा–आत्मा सुकृत और दुष्कृतरूप कर्मों का अकर्ता नहीं है, क्यों कि वह अपने सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फलस्वरूप सुख–दुःख का अनुभव करता है। आत्मा अकर्ता होता तो उसे सुख–दुःख का अनुभव नहीं होना चाहिए था। कर्ता न होने पर भी फल का भोक्ता मानने से गडबडी मच जायगी। फिर तो मुक्त जीवों को भी सांसारिक सुख और दुःख भोगना पडेगा, क्यों कि वे भी अकर्ता हैं।

आत्मा अनुभव करने वाला होने के कारण भोक्ता सिद्ध होता है और भोक्ता होने के कारण कर्ता सिद्ध होता है। आत्मा कर्ता न होता तो अनुभविता (अनुभव करनेवाला) भी न होता। 'अनुभव करनेवाले को कर्ता मानने पर मुक्तात्मा को भी कर्तापन का प्रसङ्ग आयगा' ऐसा कहना उचित नहीं है, क्यों कि मुक्तात्माओं को साक्षीरूपसे अनुभव होने पर भी, द्रव्य–भाव को से रहित होने के कारण वे सांसारिक

અથવા આત્મા સુકૃત અને દુષ્કૃત–રૂપ કર્મોનો અકર્તા નથી, કારણુ કે તે પોતાના સુકૃત અને દુષ્કૃત રૂપ કર્મોના ફલસ્વરૂપ સુખ–દુઃખનો અનુભવ કરે છે. આત્મા અકર્તા હોત તો તેને સુખ–દુઃખનો અનુભવ નહિ થવો જોઈએ. કર્તા ન હોવા છતાંય પણ ફલનો ભોક્તા હોવાથી ગડબડ થઈ જશે. ફરી તો મુક્ત જીવોને પણ સંસારનું સુખ અને દુઃખ ભોગવવું પડશે; કારણુ કે તે પણ અકર્તા છે.

આત્મા અનુભવ કરવા વાળો હોવાથી ભોકતા સિદ્ધ થાય છે, અને ભોકતા હોવાના કારણે કર્તા સિદ્ધ થાય છે. આત્મા કર્તા ન હોય તો અનુભવિતા (અનુભવ કરવા વાળો) ન હોય. 'અનુભવ કરવા વાળાને કર્તા માનવાથી મુક્તાત્માને પણ કર્તાપણાનો પ્રસંગ આવશે,' એમ કહેવું તે ઉચિત નથી. કારણુ કે મુક્તાત્માઓને સાક્ષીરૂપ અનુભવથી હોવા છતાંય દ્રવ્ય, ભાવ કર્મોથી રહિત હોવાના કારણે તે

अकर्तृत्वाच्च तस्य सांसारिकविषयसुखानामभोक्तृत्वं च सिध्यति। प्रकृते हि कर्तृशब्देनादृष्टादिजनककर्मण एव कर्तृत्वं विवक्षितम्, तेन मुक्तात्मनि नातिप्रसंगः। तथा च यः सांसारिकसुखदुःखाद्यनुभविता स एव तत्कारणीभूतकर्मणः कर्ता, अकर्तुर्भोक्तृत्वानुपपत्तेः।

(८) भोक्तृत्वसिद्धिः-

अयमेवात्मा मोहोदयेन शुद्धमात्मस्वभावं विस्मृत्य परवस्तुनि मोहितः सन् रागद्वेषं करोति, रागद्वेषवशोऽहर्निशं नवनवविषयसंग्रहार्थं प्रयतमान-स्तद्वियोगे सति चिन्ताव्याकुलितचेता आर्त्तरौद्रध्यानमुपगतः स्वात्मनि कर्मरजः

विषयसुख आदि के जनक कर्मों के कर्ता नहीं हैं, इस कारण वे अकर्ता हैं। और अकर्ता होने के कारण वे सांसारिक विषयसुखों के भोक्ता भी नहीं हैं। यहाँ 'कर्ता' शब्द से अदृष्ट आदि के जनक कर्मों का कर्ता ही विवक्षित है, अतः मुक्त आत्मा में अति-प्रसङ्ग नहीं आता, अत एव सिद्ध हुआ कि जो सांसारिक सुख-दुःख आदि का भोक्ता होता है, वही उन के कारणभूत कर्म का कर्ता भी होता है। जो कर्ता नहीं है वह भोक्ता भी नहीं है।

(८) आत्मा का भोक्तृत्व

आत्मा मोह के उदय से शुद्ध आत्मस्वरूप को भूलकर पर-पदार्थों में मोहित होता हुआ राग-द्वेष करता है। राग-द्वेष के वश हो कर रात-दिन नवीन नवीन विषयों का संग्रह करने के लिए प्रयत्नशील होता हुआ, और उनका वियोग होने पर चिन्ता से व्याकुलचित हो कर आर्तध्यान और रौद्रध्यान को प्राप्त होता है, और इस

સંસારના વિષય-સુખ વગેરેને ઉત્પન્ન કરનાર કર્મોનો કર્તા નથી. એ કારણથી તે આત્મા અકર્તા છે, અને અકર્તા હોવાના કારણે તે સંસારના વિષયસુખોના ભોકતા પણ નથી. અહિં 'કર્તા' શબ્દથી અદષ્ટ આદિના જનક કર્મોનો કર્તા જ વિવક્ષિત છે. તેથી મુકત આત્મામાં અતિપ્રસંગ આવતો નથી. એ કારણથી એમ સિદ્ધ થયું કે જે સંસારના સુખ-દુઃખ વગેરેનો ભોકતા છે, તે એના કારણભૂત કર્મોનો કર્તા પણ હોય છે, જે કર્તા નથી તે ભોકતા પણ નથી.

(૮) આત્માનું ભોકતૃત્વ-

આત્મા મોહના ઉદયથી શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને ભૂલી જઇને પર-પદાર્થોમાં મોહિત થઇને રાગ-દ્વેષ કરે છે, રાગ-દ્વેષને વશ થઈને રાત્રી અને દિવસ નવા-નવા વિષયોને સંગ્રહ કરવા માટે પ્રયત્નશીલ રહેતો થકો, અને તેનો વિયોગ થતાં ચિન્તાથી વ્યાકુલ-ચિત્ત થઈને આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન ને પ્રાપ્ત થાય છે, અને તે કારણથી પોતાના

समुपादत्ते। यथा कोऽप्यज्ञानी व्याधिनिदानभूतमपथ्यमश्नन्अवाञ्छितमपि ज्वरादिकं स्वयमुत्पादयति, तथाऽयमात्मा कर्मबन्धनमवाञ्छन्नप्यार्तरौद्रध्यानवशेन कर्मबन्धनं प्राप्नोति। यथा कर्मबन्धनं स्वयमेवादत्ते, तथा तत्फलमपि बाह्यं किञ्चिन्निमित्त-मपेक्ष्य स्वयमेवोपभुङ्क्ते। एवं चात्मनो भोक्तृत्वं सिध्यति। भोक्तृत्वाच्च कर्तृ-त्वमपि तस्य निर्बाधम्।

सांख्यसिद्धान्ते प्रकृतेः कर्तृत्वं, न तु जीवस्य, भोक्तृत्वं चापि जीवस्योपचरितमेव। दर्पणाकारायां बुद्धौ संक्रान्तानां सुखदुःखादीनां स्वात्मनि

कारण अपनी आत्मा में कर्म–रज इकट्ठी कर लेता है। जैसे अज्ञानी मनुष्य रोग के कारणभूत अपथ्य का सेवन करता हुआ न चाहते हुए भी ज्वर आदि को उत्पन्न कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा कर्मबन्धन की इच्छा न कर के भी आर्त–रौद्रध्यान के अधीन होकर कर्मबन्ध को प्राप्त होता है। जैसे कर्मबन्ध को आत्मा स्वयं ग्रहण करता है, उसी प्रकार किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा से उसका फल भी स्वयं ही भोगता है। इसी प्रकार आत्मा में भोक्तापन सिद्ध होता है, और भोक्ता होने से उस में कर्तापन भी विना किसी बाधा के सिद्ध हो जाता है।

सांख्यमत से प्रकृति कर्ता है, जीव नहीं, और भोक्तापन जीव में उपचार से है। दर्पणाकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाले सुख–दुःख आदि का आत्मा में प्रतिबिम्ब

આત્માને વિષે કર્મ–રજ (કર્મના રજકણો) એકઠી કરી લે છે, જેમ અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગના કારણભૂત અપથ્યનું (રોગ ઉત્પન્ન કરે તેવું) સેવન કરીને, પોતે ઇચ્છતો નથી તો પણ જવર (તાવ) આદિને ઉત્પન્ન કરી લે છે. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મબંધનની ઇચ્છા નહિ કરવા છતાંય પણ આર્ત્ત–રૌદ્ર ધ્યાનને આધીન થઇને કર્મ બંધનને પ્રાપ્ત થાય છે. જેવી રીતે કર્મબંધનને આત્મા પોતે જ ગ્રહણ કરે છે, તે પ્રમાણે કોઈ બાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષાથી તેનું ફલ પણ પોતે જ ભોગવે છે. એ પ્રમાણે આત્મામાં ભોકતાપણું સિદ્ધ થાય છે. અને ભોકતા હોવાથી તેમાં કોઈ પ્રકારની બાધા વિના કર્તાપણું પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

સાંખ્યમત પ્રમાણે પ્રકૃતિ કર્તા છે, જીવ કર્તા નથી. ભોક્તાપણું તે પણ જીવમાં ઉપચારથી છે. દર્પણાકાર બુદ્ધિમાં પ્રતિબિમ્બિત (પ્રતિબિંબરૂપે) થવાવાળા (દેખાવવાવાળા) સુખ–દુઃખ આદિનું પ્રતિબિંબ આત્મામાં પડી શકતું નથી, સ્ફટિક

प्रतिबिम्बोदयासंभवात्। स्फटिकदर्पणादावपि परिणामेनैव प्रतिबिम्बोदय-समर्थनात्। तादृशपरिणामाङ्गीकारे च जीवस्य कर्तृत्वं, स्वत एव भोक्तृत्वं च सिद्धम्।

(९) आत्मनः स्वशरीरपरिमाणत्वम्-

अयमात्मा स्वशरीरपरिमाणः। निश्चयनयेन लोकाकाशपरिमाणोऽ-संख्यातप्रदेशी च। व्यवहारनयतः शरीरनामकर्मोदयाज्जातेन सूक्ष्मशरीरेण स्थूलशरीरेण वा समानपरिमाणो भवति, तस्मादयं स्वशरीरपरिमाण इत्युच्यते।

नहीं पड सकता। स्फटिक तथा दर्पण आदि में जो प्रतिबिम्ब पडता है सो परिणामी होने के कारण ही पडता है। स्फटिक आदि एकान्त अपरिणामी होते तो उन में किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड सकता था। इस प्रकार का परिणाम स्वीकार कर लेने पर जीव में कर्तापन सिद्ध हो जायगा और फिर भोक्तापन भी स्वतः सिद्ध हो जायगा।

(९) आत्माका शरीरपरिमाण—

आत्मा प्राप्त शरीर के बराबर है, अर्थात् शरीर का जो परिमाण है। वही आत्मा का भी परिमाण है। आत्मा निश्चयनय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी है। व्यवहारनय से शरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुए सूक्ष्म या स्थूल शरीर का जो परिमाण है उसी परिमाणवाला आत्मा है, अत एव आत्मा शरीर परिमाण कहलाता है।

તથા દર્પણ આદિમાં જે પ્રતિબિમ્બ પડે છે, તે પરિણામી હોવાના કારણે પડે છે. સ્ફટિક આદિ જો એકાન્ત અપરિણામી હોત તો તેમાં કોઇ પણ વસ્તુનું પ્રતિબિંબ પડી શકત નહી. આ પ્રમાણે પરિણામ સ્વીકાર કરી લેવાથી જીવમાં કર્તાપણું સિધ્ધ થઈ જશે, અને ભોક્તાપણું પણ સ્વતઃ સિધ્ધ થઈ જશે.

(૯) આત્માનું શરીરપ્રમાણ—

આત્મા પ્રાપ્ત શરીરની બરાબર છે, અર્થાત્ શરીરનું જે પરિમાણ છે તે આત્માનું પણ પરિમાણ છે. આત્મા નિશ્ચયનયથી લોકાકાશની બરાબર અસંખ્યાતપ્રદેશી છે. વ્યવહારનયથી શરીર-નામકર્મના ઉદયથી પ્રાપ્ત થએલ સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ શરીરનું જે પરિમાણ છે. તે પરિમાણ વાળો આત્મા છે. એટલા માટે આત્મા શરીરપરિમાણ કહેવાય છે.

आत्मा सर्वव्यापीति वेदान्तिकादिमतं, तथाऽऽत्मा–अणुरिति कस्यचिन्मतं च निराकर्तुं शरीरपरिमाण इत्युक्तम्। आत्मनः सर्वव्यापित्वे निष्क्रियत्वाद् भवान्तरसंक्रान्तेरसंभवापत्तिराकाशवत्।

आत्मा शरीरमात्रव्यापी, शरीर एव तद्गुणोपलब्धेः, अग्न्यौष्ण्यवत्, अथवा घटादिगुणवत्। यथा घटादेर्वर्णादयो गुणा यत्रैव देशे दृश्यन्ते तत्रैव तस्यास्तित्वं प्रतीयते, नान्यत्र। एवमात्मनोऽपि गुणाश्चैतन्यादयो शरीर एव दृश्यन्ते, न बहिः, तस्माद् देहप्रमाण एवावमात्मेति। न च पुष्पादीनां

'आत्मा सर्वव्यापक है' ऐसा वेदान्तिक आदि का मत है। कोई–कोई यह भी मानते हैं कि–'आत्मा अणु–परिमाणवाला है' इन सब मतों का निराकरण करने के लिए आत्मा को शरीर–परिमाण विशेषण लगाया है। आत्मा को सर्वव्यापक माने तो वह निष्क्रिय ठहरेगा और भवान्तर में नहीं जा सकेगा, जैसे आकाश।

आत्मा शरीरमात्रव्यापी है, क्यों कि शरीर में ही उसके गुण उपलब्ध होते हैं, जैसे अग्नि की उष्णता अथवा घट आदि। जैसे घट आदि के गुण रूप वगैरह जिस जगह देखे जाते हैं उसी जगह उसका अस्तित्व प्रतीत होता है, अन्यत्र नहीं। इस प्रकार आत्मा के गुण चैतन्य आदि जहाँ पाये जाएँ वहीं उसका अस्तित्व मानना चाहिए। आत्मा के गुण शरीर में ही पाये जाते हैं अतः शरीर में ही आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना उचित है, अतः आत्मा शरीरपरिमाण ही है।

'આત્મા સર્વવ્યાપક છે." એવો વેદાંતિક આદિનો મત છે કોઈ કોઈ એમ પણ માને છે કેઃ–"આત્મા અણુ–પરિમાણવાળો છે." તે સર્વ મતોનું નિરાકરણ કરવા માટે આત્માને શરીર–પરિમાણ વિશેષણ લગાડયું છે. આત્માને સર્વવ્યાપક માનશો તો તે નિષ્ક્રિય ઠરશે અને ભવાન્તરમાં જઈ શકશે નહિ, જેમ આકાશ.

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી છે કારણ કે શરીરમાં જ તેના ગુણ ઉપલબ્ધ થાય છે. જેમ અગ્નિની ઉષ્ણતા અથવા ઘટ આદિના ગુણ રૂપ વગેરે જે જગ્યામાં જોવામાં આવે છે, તે જ જગ્યામાં તેનું અસ્તિત્વ પ્રતીત થાય છે, અન્યત્ર (બીજા સ્થળે) નહિ. એ પ્રમાણે આત્માનાં ચૈતન્ય આદિ ગુણ જોવામાં આવે, ત્યાં જ તેનું અસ્તિત્વ માનવું જોઈએ. આત્માનો ગુણ શરીરમાં જ જોવામાં આવે છે તે કારણથી શરીરમાં જ આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવો તે ઉચિત છે. તેથી આત્મા શરીર

गन्धादिगुणः पुष्पाद्यवस्थितिदेशादन्यत्राप्युपलभ्यते, तथा च हेतोरनैकान्तिकत्वापत्तिरिति वाच्यम्, पुष्पाद्याश्रितगन्धादिपुद्गलानां वैस्रसिक्या प्रायोगिक्या वा गत्या गतिमत्त्वेन तदुपलम्भकघ्राणादिदेशपर्यन्तगमनोपपत्तेरिति।

आत्मा सर्वगतो न भवति, तद्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात्। यस्य यस्य गुणः सर्वत्रानुपलभ्यमानः स स सर्वगतो न भवति, यथा घटः। अयं चात्मा सर्वत्रानुपलभ्यमानगुणवान्, तस्मात् सर्वगतो न भवतीति। व्यतिरेक्युदाहरणं तु व्योमादि। न चासिद्धोऽयं हेतुरिति वाच्यम्, देहव्यतिरिक्तदेशे बुद्ध्यादीनां

यह कहना ठीक नहीं है कि–'फूल आदि का गुण–गन्ध वगैरह फूल की जगह से दूसरी जगह भी पाये जाते हैं, इस कारण आपका हेतु अनेकान्तिक है' क्यों कि गन्ध के आधारभूत पुद्गल स्वाभाविक गति से या प्रयत्नजन्य गति से गतिमान् होने के कारण, गन्ध को ग्रहण करने वाले घ्राण–देश तक आते हैं। तात्पर्य यह है कि जहां फूलकी गन्ध है वहाँ उस गन्ध के आधारभूत गन्ध–पुद्गल भी होते हैं, इस कारण हेतु में व्यभिचार नहीं आता।

आत्मा सर्वव्यापक नही है, क्यों कि आत्मा के गुण सर्वत्र नहीं पाये जाते। जिस–जिस के गुण सर्वत्र उपलब्ध नहीं होते, वह पदार्थ सर्वव्यापक नही होता, जैसे घट। आत्मा के गुण सर्वत्र नहीं पाये जाते, अतः वह सर्वव्यापक नही है। 'आकाश यहां व्यतिरेकी उदाहरण है। 'यह हेतु असिद्ध है,' ऐसा नहीं कह सकते, क्यों कि देह से अति-

---

પરિમાણુ છે. "ફૂલ આદિનો ગુણ–ગંધ વગેરે ફુલની જગ્યા વિના બીજી જગ્યાએ પણ જોવામાં આવે છે તે કારણથી આપનો હેતુ અનૈકાન્તિક છે." એમ કહેવું તે ઠીક નથી. કારણ કે ગંધના આધારભૂત પુદ્ગલ સ્વાભાવિક ગતિથી અથવા પ્રયત્નજન્ય ગતિથી ગતિમાન હોવાના કારણે, ગંધને ગ્રહણ કરવા વાળા ઘ્રાણદેશ સુધી આવે છે. તાત્પર્ય એ છે કે:–જ્યાં ફૂલની ગંધ છે ત્યાં તે ગંધના આધારભૂત ગંધપુદ્ગલ પણ હોય છે, આ કારણ હેતુમાં વ્યભિચાર આવતો નથી.

આત્મા સર્વવ્યાપક નથી. કેમકે આત્માનો ગુણ સર્વત્ર જોવામાં આવતો નથી, જેનો ગુણ સર્વત્ર ઉપલબ્ધ થતો નથી, તે પદાર્થ સર્વવ્યાપક હોય નહિ, જેમ ઘટ. આત્માનો ગુણ સર્વત્ર જોવામાં આવતો નથી, એ કારણથી તે સર્વવ્યાપક નથી. આકાશ અહિં વ્યતિરેકનું ઉદાહરણ છે. "તે હેતુ અસિદ્ધ છે." એમ કહી શકાશે

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात्। शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् बहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम्।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम्। चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः। इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा। यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है। शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है। इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए.

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्यों कि वह चेतन है। जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश। आत्मा चेतन है; अतः व्यापक नहीं है।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है। आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

નહિ. કારણ કે દેહથી અતિરિક્ત (દેહ સિવાય) દેશમાં બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો સદ્ભાવ નથી. એ પ્રમાણે સૌએ સ્વીકારેલું છે. શરીરમાં આત્માના ગુણોનું અસ્તિત્વ છે જ, એ કારણથી હેતુ અસિદ્ધ નથી. આ પ્રમાણે શરીરની બહાર આત્માનું અસ્તિત્વ માનવું ત્યજીને પોતાના દેહમાં જ અસ્તિત્વ માનવું જોઈએ.

અથવા—આત્મા વ્યાપક નથી, કારણ કે તે ચેતન છે. જે વ્યાપક હોય છે તે ચેતન હોય નહિ, જેમ આકાશ. આત્મા ચેતન છે તે કારણથી વ્યાપક નથી.

આ હેતુથી આત્માની અવ્યાપકતા સિદ્ધ થવાથી પૂર્વોક્ત હેતુથી (કેમકે શરીરમાં જ તેના ગુણ જોવામાં આવે છે એ હેતુથી) આત્માની શરીરપ્રમાણતા પણ સિદ્ધ થઇ જાય છે. આઠ સમયમાં સંપન્ન થવા વાળા કેવલિસમુદ્ઘાતની અવસ્થામાં ચૌદ રાજૂલોકમાં આત્માનું વ્યાપ્ત થઈ જવાનું અહિં જે માન્યું છે, તે કાદાચિત્ક

सर्वव्यापित्वं, तत् कादाचित्कमिति न तेन व्यभिचारः।

आत्मा श्यामाकतण्डुलमात्रो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, तावन्मात्रस्योपात्तशरीरव्यापित्वात्, तिले तैलवत् त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापित्वेन चोपलभ्यमानगुणत्वात्, तस्मादुपात्तशरीरे त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापीति सिद्धम्।

(१०) अमूर्तत्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैरग्राह्यत्वात्, खङ्गादिभिरच्छेद्यत्वात्, शूलादिभिरभेद्यत्वात्, रूपरहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, नित्यत्वात्।

कादाचित्क (कभी-कभी होनेवाला) है, उस से व्यभिचार नही आता।

आत्मा श्यामाक धान्यकण बराबर नहीं है, न अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर ही है, इतना सा आत्मा एक साथ समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, मगर आत्मा के गुण तो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे तिलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है, अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में त्वचापर्यन्तव्यापी है।

(१०) आत्मा का अमूर्त्तत्व-

आत्मा अमूर्त है, क्यों कि वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वह खड्ग आदि से छेदा नहीं जा सकता, शूल आदि से भेदा नहीं जा सकता, वह अरूपी है, अनादि काल से अमूर्त परिणामवाला है और वह नित्य है।

(કદાચિત થવાવાળું) છે, તેમાં વ્યભિચાર આવતો નથી.

આત્મા શ્યામાક ધાન્યના કણ બરાબર નથી; તેમજ અંગૂઠાના પર્વ (પોર) બરાબર પણ નથી. એટલે આત્મા એક સાથે સમસ્ત શરીરમાં વ્યાપક થઇ શકતો નથી, પરંતુ આત્માના ગુણ તો સંપૂર્ણ શરીરમાં ઉપલબ્ધ થાય છે, જેમ તલમાં તેલ સર્વત્ર હોય છે. એ કારણથી એ સિદ્ધ થયું કે આત્મા આ પ્રાપ્ત શરીરમાં ત્વચા-ચામડી સુધી વ્યાપી રહેલો છે.

(૧૦) આત્માનું અમૂર્ત્તત્વ

આત્મા અમૂર્ત્ત છે. કારણ કે તે ઇન્દ્રિયો દ્વારા ગ્રહણ કરી શકાતો નથી, ખડગ (તલવાર) આદિથી છેદી શકાતો નથી, શૂલ આદિથી ભેદી શકાતો નથી, અરૂપી છે, અનાદિ કાલથી અમૂર્ત્ત પરિણામવાળો છે. અને તે નિત્ય છે.

अनेन–"आत्मा नातीन्द्रियो नापि जडाद् भिन्नः" इति नास्तिकमतं निरस्तम् ।

नन्वमूर्तोऽयमात्मा नेत्रादिभिरिन्द्रियैस्तु न विज्ञेयस्तर्हि कथमिमं जनो जानीयात्–'अस्त्यत्रात्मे'–ति ।

श्रूयताम्–कस्यचित् समक्षमष्टवर्षीयो बालस्तिष्ठति; तत्समानाकृति-र्मृन्मयी पुत्तलिकाऽपि तिष्ठति । तत्रासौ द्रष्टा पश्यति–इयं पुत्तलिका चक्षुर्घ्राण-कर्णयुक्ताऽपि द्रष्टुं घ्रातुं श्रोतुं वा न शक्नोति, पुनरयं बालश्चक्षुर्भ्यां पश्यति, पुष्पमाघ्राति, कस्यचिद्भाषितं शृणोति च ।

इस कथन से नास्तिक के इस मत का निराकरण हो गया कि–'**आत्मा न अतीन्द्रिय है और न जड से भिन्न है**'।

शङ्का—आत्मा अमूर्त है, नेत्र आदि इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता तो मनुष्य कैसे समझे कि आत्मा का अस्तित्व है ?।

समाधान—सुनिये। मान लीजिए किसी के सामने आठ वर्ष का बालक खडा है, उसी के समान आकृतिवाली मिट्टी की एक पुतली भी रक्खी है। दोनों को देखने वाला देखता है कि–यह पुतली नेत्र, नाक और कान से युक्त तो है किन्तु देखने में सूंघने में और सुनने में समर्थ नहीं है, और यह बालक आँखों से देखता है, फूल सूंघता है, और किसी का भाषण सुनता है।

આ કથનથી નાસ્તિકના એ મતનું નિરાકરણ થઈ ગયું કે "આત્મા અતીન્દ્રિય નથી, અને જડથી ભિન્ન નથી."

શંકા—આત્મા અમૂર્ત્ત છે, નેત્ર આદિ ઈન્દ્રિયોથી જાણી શકાતો નથી; તો પછી માણસો કેવી રીતે સમજી શકશે કે આત્માનું અસ્તિત્વ છે.

સમાધાન—સાંભળો ? માની લો કે કોઈ (માણસ)ના સામે એક આઠ વર્ષનો બાળક ઉભો છે. તેની બાજુમાં તેના જેવી સમાન આકૃતિવાલી માટીની એક પુતળી પણ રાખી છે. આ બન્નેને જોવાવાળાં જુવે છે કે–આ પુતલી નેત્ર, નાક, કાનથી યુકત તો છે; પરન્તુ જોવામાં, સુંઘવામાં અને સાંભળવામાં સમર્થ નથી. અને આ બાળક નેત્રથી જુવે છે, ફૂલ સૂંઘે છે અને કોઈનું ભાષણ સાંભળે છે.

इयं च पुत्तलिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं बालः सकलेन्द्रियैर्विषय-मुपभुज्य सुखीभवितुमिच्छति। यदि कोऽपि खड्गमुत्थाप्येमावभिधावेत् तदा पुत्तलिका पूर्ववदेवावस्थिता भविष्यति, बालस्तु खड्गाभिघातजनितदुःखादुद्विज्य पलायिष्यते। असौ बालः कमपि बुभुक्षितं बालमुपकरिष्यति भोजनीयवस्तु-प्रदानेन, कमपि चान्यं बालं चपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति। पुत्तलिका तु हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नैव कर्तुं प्रभविष्यति। यदि मिष्टाशनाय बाल आहूतो भवेत् तदानीं सत्वरमागतो बालो भोक्तुं प्रवर्तेत, तज्जन्यसुखानुभवोऽपि तस्य जायेत। पुत्तलिका तु नागमिष्यति न किंचिद् भोक्ष्यते, का वार्ता सुखानुभवस्य ?।

यह पुतली कुछ भी इच्छा नहीं करती मगर बालक सभी इन्द्रियों के विषयों का भोग करके सुखी होने की इच्छा करता है। अगर कोई तलवार उठाकर इन्हें मारने दौडे तो पुतली ज्यों की त्यों खडी रहेगी मगर बालक तलवार के आघात के दुःख से उद्विग्न हो कर या आघात की आशङ्का से भाग जायगा। वह बालक किसी भूखे बालक को भोजन देकर उसका उपकार भी करेगा और किसी बालक को थप्पड आदि मारकर रुलाएगा, मगर पुतली किसीका हित या अहित करने में समर्थ नहीं है। अगर बालक को मिठाई खाने के लिए बुलाया जाय तो उसी समय आकर वह मिठाई पर टूट पडेगा और उसे मिठाई खाने के सुख का अनुभव भी होगा। पुतली न मिठाई के लिए आएगी न खाएगी, सुख का अनुभव करने की तो बात ही अलग रही। अत एव यह निश्चय होता है कि बालक में जीव का लक्षण ज्ञान

આ પુતળી કાંઇ પણ ઈચ્છા કરતી નથી. પરંતુ બાળક સર્વ ઇન્દ્રિયોના વિષયોનો ભોગ કરીને સુખી થવાની ઇચ્છા કરે છે. અથવા કોઈ તલવાર ઉઠાવીને તેને મારવા દોડે તો પુતલી તો જેમ છે તેમ ત્યાં ઉભી રહેશે. પરંતુ બાલક તલવાર મારવાના દુઃખથી ઉદ્વિગ્ન-ચિંતાતુર બનીને અથવા તો મારવાની આશંકાથી ભાગી જશે.

એ બાળક કોઈ ભૂખ્યા બાળકને ભોજન આપીને તેનો ઉપકાર પણ કરશે અને કોઇ બાળકને થપડ આદિ મારીને તેને રોવરાવશે, પરંતુ પુતલી કોઈનું હિત કે અથવા અહિત કરવા સમર્થ નથી. અથવા બાળકને મિઠાઈ ખાવા માટે બોલાવવામાં આવે તો તેજ સમયે આવીને મિઠાઇ પર તૂટી પડશે અને તેને મિઠાઈ ખાવાનો સુખનો અનુભવ પણ થશે. પુતલી મિઠાઇ માટે આવશે નહી. અને ખાશે પણ નહી. તો સુખના અનુભવની તો વાત જ જૂદી રહી. એ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે

तथा चायं निश्चयः-बाले जीवलक्षणस्य ज्ञानस्य सद्भावाद् बालशरीरे जीवोऽस्तीति। एवमन्यत्रापि सजीवशरीरे जीवस्य सत्ता निश्चेतुं शक्यते। वस्तुतोऽयमात्मैव कर्ता भोक्ता नानाविधशुभपरिणतिकर्ता चेति। अयमात्मा संसारावस्थायां स्वज्ञानवशेन दुःखमर्जयति। उक्तञ्च—

"संसारे पर्यटन् जन्तु,-र्बहुयोनिसमाकुले,
शारीरं मानसं दुःखं, प्राप्नोति बत दारुणम् ॥१॥
आर्तध्यानरतो मूढो, न करोत्यात्मनो हितम्,
तेनासौ सुमहत् क्लेशं, परत्रेह च गच्छति" ॥२॥

विद्यमान है, इस लिए उस में जीव है। इसी प्रकार अन्यत्र भी सजीव शरीर में जीव की सत्ता का निश्चय किया जा सकता है। वास्तव में यही आत्मा कर्ता, भोक्ता और नाना प्रकार की शुभ और अशुभ परिणतियों का कर्ता है। आत्मा संसार-अवस्था में अपने अज्ञान के आधीन हो कर दुःख उपार्जन करता है, कहा भी है :—

"नाना प्रकार की योनियों से युक्त इस संसार में भ्रमण करता हुआ जीव अनेक और भयानक शारीरिक एवं मानसिक दुःख प्राप्त करता है ॥ १ ॥

आर्तध्यान और रौद्रध्यान में लीन रहने वाला मूढ जीव आत्मा का हित नहीं करता। इसी कारण वह इस लोक और पर लोक में महान् क्लेश पाता है" ॥२॥

બાલકમાં જીવનું લક્ષણ-જે જ્ઞાન તે વિદ્યમાન છે, તે કારણથી તેમાં જીવ છે. એ પ્રમાણે અન્યત્ર પણ સજીવ શરીરમાં જીવની સત્તાનો નિશ્ચય કરી શકાય છે. વાસ્તવમાં આ આત્મા કર્ત્તા, ભોકતા અને નાના પ્રકારની શુભ અને અશુભ પરિણતિઓનો કર્ત્તા છે. આત્મા સંસાર અવસ્થામાં પોતાના અજ્ઞાનને આધીન થઈને દુઃખ ઉપાર્જન કરે છે. કહ્યું પણ છે કેઃ—

"નાના પ્રકારની યોનિયોથી યુકત આ સંસારમાં ભ્રમણ કરતો થકો જીવ અનેક ભયાનક શારીરિક અને માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૧॥

આર્ત્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનમાં લીન રહેવા વાળો મૂઢ જીવ આત્માનું હિત કરતો નથી. આ કારણથી તે આ લોક અને પરલોકમાં મહાન્ ક્લેશ પામે છે. ॥૨॥

(११) आत्मनः प्रतिशरीरं भिन्नत्वम्—

आत्मा-प्रतिशरीरं भिन्नः। एकस्यैवात्मनः प्रतिशरीरसत्त्वे तु जन्ममरणबन्ध-मोक्षव्यवस्था नोपपद्येरन्। अन्यो जातः, अन्यो मृतः। अन्यो बद्धः, अन्यस्तु मुक्त इति व्यवस्था कथमुपपद्येत, तस्मात् प्रतिशरीरं भिन्न इति सिद्धम्। तथा चानन्ता आत्मान इति मन्तव्यम्। अनेनाऽद्वैतवादो निराकृतः।

(१२) आत्मनः पौद्गलिककर्मसंयुक्तत्वम्—

अयमात्मा—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः। निश्चयनयेन कर्मरहितोऽपि व्यवहार-नयतोऽनादिकालतः पौद्गलिककर्मसंबद्धोऽस्ति, तस्मादयं पौद्गलिककर्मसंयुक्त इति कथ्यते।

---

(११) आत्मा का प्रतिशरीरभिन्नत्व-

आत्मा अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग है। समस्त शरीरों में एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो जन्म, मरण, बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था नहीं हो सकेगी। अर्थात् कोई जनमा, कोई मरा, कोई बद्ध हुआ और कोई मुक्त हुआ, ऐसी व्यवस्था कैसे बन सकेगी? अतः आत्मा प्रत्येक शरीर में अलग ही सिद्ध होता है। आत्माएँ अनन्त हैं; ऐसा मानना चाहिए। इस से अद्वैतवाद का निराकरण हो गया।

(१२) आत्मा का पौद्गलिक कर्मसंयोग-

यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है। निश्चयनय से कर्मरहित होने पर भी व्यवहारनयकी अपेक्षा अनादिकाल से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

---

(૧૧) આત્માનું પ્રતિશરીરભિન્નત્વ

આત્મા જૂદા-જૂદા શરીરોમાં જૂદો-જૂદો છે. સમસ્ત શરીરોમાં એક જ આત્માનું અસ્તિત્વ માનવામાં આવે તો જન્મ, મરણ, બંધ અને મોક્ષની વ્યવસ્થા થઈ શકશે નહી. અર્થાત્, કોઇનું જન્મ, કોઈનું મરણ, કોઈ બદ્ધ થાય અને કોઈ મુકત થાય એવી વ્યવસ્થા કેવી રીતે બની શકશે? આ કારણથી ‘આત્મા પ્રત્યેક શરીરમાં અલગ છે.’ એમ સિધ્ધ થાય છે આત્મા અનંત છે એમ માનવું જોઈએ, આથી અદ્વૈતવાદનું નિરાકરણ થઈ ગયું.

(૧૨) આત્માનો પૌદ્ગલિક કર્મસંયોગ

આ આત્મા પૌદ્ગલિક કર્મોથી સંયુકત (કર્મો સાથે જોડાએલો) છે નિશ્ચય-નયથી કર્મરહિત હોવા છતાંય પણ વ્યવહારનયની અપેક્ષા અનાદિકાલથી પૌદ્ગલિક

आत्मनो मिथ्यात्वेन सहानादिः सम्बन्धः। अनादिमिथ्यात्वजनित-विभावपरिणामरूपरागद्वेषपरिणत्याऽऽत्मा संतप्तायोगोलक इव सलिलं सर्वतोभावेन ज्ञानावरणीयादिकर्मदलं समाकृष्य स्वस्मिन् संयोजयति। ततोऽसौ वह्निनाऽयोगोलक इव, नीरेण क्षीरमिव तेन कर्मदलेनैक्यभावं प्राप्य मूर्त इव भवति, अत एव निश्चयनयेनाऽमूर्तोऽपि व्यवहारनयेनात्मा मूर्त इत्युच्यते। कर्मसम्बन्धोऽयमात्मनो व्यवहारनयत एव।

का संयोग है। अत एव उसे पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त कहते हैं। मिथ्यात्व के साथ आत्मा का अनादि सम्बन्ध है। अनादिकालीनमिथ्यात्वजनित विभाव-परिणतिरूप राग-द्वेष से आत्मा अपने समस्त प्रदेशों से ज्ञानावरण आदि के कर्मदलिकों को उसी प्रकार ग्रहण करता है, जैसे खूब तपा हुआ लोहे का गोला जल को ग्रहण करता है। अतः जैसे अग्नि और लोहगोलक एकमेक से हो जाते हैं, और दूध-पानी एक-मेक होया हुआ प्रतीत होता है, इसी प्रकार कर्मदलिकों के साथ आत्मा एकमेक होकर मूर्त-सा हो जाता है। इस प्रकार निश्चयनय से अमूर्त होने पर भी व्यवहारनय से आत्मा मूर्त है। आत्मा और कर्म का वह सम्बन्ध व्यवहारनय से ही समझना चाहिए।

કર્મોની સાથે આત્માનો સંયોગ છે. એ કારણથી તેને પૌદ્ગલિક કર્મોથી સંયુકત કહે છે.

મિથ્યાત્વની સાથે આત્માનો અનાદિ સંબંધ છે. અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વથી ઉત્પન્ન વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેષથી આત્મા પોતાના સમસ્ત પ્રદેશોથી જ્ઞાનાવરણ આદિના કર્મદળોને એવી રીતે ગ્રહણ કરે છે કે જેવી રીતે ખૂબ તપેલો લોઢાનો ગોળો જલનું ગ્રહણ કરે છે. એટલે કે જેમ અગ્નિ અને લોઢાનો ગોળો એકમેક થઇ જાય છે, અને દૂધ-પાણી એકમેક થયેલા પ્રતીત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મદલિકોની સાથે આત્મા એક-મેક થઇને મૂર્ત્ત જેવો થઇ જાય છે. આ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી અમૂર્ત્ત હોવા છતાંય પણ વ્યવહારનયથી આત્મા મૂર્ત્ત છે. આત્મા અને કર્મનો આ સંબંધ વ્યવહારનયથી જ સમજવો જોઇએ.

कर्मबन्धापेक्षयाऽऽत्मना सह पुद्गलस्यैक्यरूपः संबन्धः, परन्तु लक्षणापेक्षया द्वयोर्भिन्नता प्रतीयते। तस्मादात्मन एकान्तेनाऽमूर्तत्वं नास्ति। इदमत्र तत्त्वम्-बन्धस्तु वस्तुतः पुद्गलस्य पुद्गलेन सह भवति; यथा पृथक् पृथक् पुद्गला रूक्षस्निग्धगुणाभ्यां परस्परं बन्धं प्राप्नुवन्ति तद्वत्-आत्मना सह पूर्वबद्धैः कर्मपुद्गलैः सह नूतनकर्मपुद्गला निबध्यन्ते। आत्मनोऽसंख्यातप्रदेशेष्वेषां कर्मपुद्गलानामवगाहनं भवति। आत्मन एकैकप्रदेशेऽनन्तकर्मपुद्गलास्तिष्ठंति। आत्मप्रदेशानां कर्मपुद्गलानां चैकक्षेत्रेऽवगाहनरूप एव बन्धः। ईदृशोऽयं बन्धो नास्ति।

कर्मबन्ध की अपेक्षा आत्मा के साथ पुद्गल का एकत्व-रूप-सम्बन्ध है, किन्तु लक्षणों से दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, इस लिए आत्मा में एकान्त अमूर्तता नहीं है। तात्पर्य यह है कि-वास्तव में पुद्गलका बन्ध तो पुद्गल के साथ ही होता है, जैसे पृथक् पृथक् पुद्गल रूक्षता और स्निग्धता गुणों के कारण परस्पर बद्ध हो जाते हैं, इस प्रकार आत्मा के साथ पहले से बँधे हुए कर्मपुद्गल के साथ नवीन कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है, इन पुद्गलों की अवगाहना आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में होती है। आत्मा के एक-एक प्रदेश में अनन्त पुद्गल रहते हैं। आत्मप्रदेशों का और कर्म-पुद्गलों का बन्ध एकक्षेत्रावगाहन रूप ही है, जैसे एक पुद्गल दूसरे पुद्गल के साथ स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण मिल कर स्कन्ध बन जाता है, वैसा आत्मा और पुद्गल का बन्ध नहीं होता। कर्म-

---

કર્મ બંધની અપેક્ષા આત્માની સાથે પુદ્ગલનો એકત્વરૂપ સંબંધ છે, પરન્તુ લક્ષણોથી બંને ભિન્ન ભિન્ન પ્રતીત થાય છે. એ કારણથી એકાન્ત મૂર્ત્તતા નથી. તાત્પર્ય એ છે કેઃ—વાસ્તવમાં પુદ્ગલનો બંધ તો પુદ્ગલની સાથે જ થાય છે. પૃથક્-પૃથક્ પુદ્ગલ રૂક્ષતા અને સ્નિગ્ધતા ગુણોના કારણે પરસ્પર બદ્ધ થઇ જાય છે. એ પ્રમાણે આત્માની સાથે પ્રથમથી બદ્ધ થયેલા (આત્માને પ્રથમ ચોટેલા) કર્મપુદ્ગલોની સાથે નવીન કર્મપુદ્ગલોનો બંધ થાય છે. તે પુદ્ગલોની અવગાહના આત્માના અસંખ્યાત પ્રદેશોમાં થાય છે. આત્માના એક એક પ્રદેશમાં અનન્ત પુદ્ગલ રહે છે. આત્માના પ્રદેશો અને કર્મપુદ્ગલોનો બંધ એકક્ષેત્રાવગાહનરૂપ જ છે. જેવી રીતે એક પુદ્ગલ બીજા પુદ્ગલની સાથે સ્નિગ્ધતા અને રૂક્ષતા ગુણના કારણે મળીને સ્કંધ બની જાય છે, તેવી રીતે આત્મા અને પુદ્ગલનો બંધ થતો નથી. કર્મપુદ્ગલોની અવગાહના આત્માની સાથે આ પ્રકારે અનાદિકાલથી ચાલી આવે છે

यथा–पुद्गलस्य पुद्गलेन सह स्निग्धरूक्षगुणसद्भावे सति स्कन्धभावरूपो बन्धो भवति। कर्मपुद्गलानामवगाहनाऽऽत्मना सहेत्थमनादिकालतः प्रवृत्ता, यत्–एकपिण्डरूपं कार्मणशरीरमेव संजायते। तच्च शरीरमात्मनः प्रदेशमेकमपि न मुञ्चति। आत्मनः सर्वप्रदेशमभिव्याप्य तिले तैलमिव कार्मणशरीरं तिष्ठति, किन्तु–अक्षर–स्यानन्ततमो भागो वर्त्तत एव, मेघपटलाच्छादितसूर्यरश्मिवत्। इदं कार्मणं शरीरं तैजसं चेति द्वयं शरीरमतिसूक्ष्मं सदाऽऽत्मना सह वर्तते। यत्र सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे वाऽयमात्मा गच्छति तत्प्रमाणो भवन् संकुचितो विस्तृतो वा भवति। तदानीमिदं द्वयं शरीरमपि सूक्ष्मस्थूलशरीरानुसारेण संकुचितं विस्तृतं वा भवति।

यथा—अकृत्रिमपर्वतादौ स्कन्धरचना विद्यमानैव, तथापि तस्मात्

पुद्गलों की अवगाहना आत्मा के साथ इस प्रकार अनादिकाल से चली आती है कि एक पिण्डरूप कार्मण शरीर ही उत्पन्न होता है। यह कार्मण शरीर आत्मा के एक भी प्रदेशको नहीं छोडता। आत्मा के समस्त प्रदेशों को व्याप्त करके, तिल में तेल की तरह कार्मण शरीर रहता है, किन्तु ज्ञान का अनन्तवाँ भाग बादलों से आच्छादित सूर्य की प्रभा के समान खुला रहता ही है।

यह कार्मण शरीर और तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है और आत्मा के साथ सदैव रहते हैं। जिस सूक्ष्म या स्थूल शरीर में आत्मा जाता है उसी शरीरप्रमाण संकुचित या विस्तृत हो जाता है, और उस समय ये दोनों शरीर भी सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर के अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत हो जाते हैं।

जैसे अकृत्रिम पर्वत आदि में स्कन्ध की रचना तो ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है

કે એકપિંડરૂપ કાર્મણ શરીર જ ઉત્પન્ન થાય છે તે કાર્મણ શરીર આત્માના એક પણ પ્રદેશને છોડતો નથી. આત્માના તમામ પ્રદેશોને વ્યાપ્ત (ચારેય તરફ ઘેરાયેલું) કરીને તલમાં તેલ રહે છે તે પ્રમાણે કાર્મણ શરીર રહે છે.

પરંતુ જ્ઞાનનો અનંતમો ભાગ, વાદળાઓથી ઢંકાએલી સૂર્યની પ્રભા પ્રમાણે ખુલ્લો રહે જ છે? તે કાર્મણ શરીર અને તૈજસ શરીર અત્યન્ત સૂક્ષ્મ છે. અને આત્માની સાથે તે હમેશાં રહે છે. જે સૂક્ષ્મ કે સ્થૂલ શરીરમાં આત્મા જાય છે તે શરીર પ્રમાણે સંકુચિત અથવા વિસ્તૃત થઈ જાય છે. અને તે સમય આ બન્ને શરીર પણ સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ શરીરના અનુસારે સંકુચિત અથવા વિસ્તૃત થઈ જાય છે.

જેવી રીતે અકૃત્રિમ પર્વત આદિના સકંધની રચના તો જેવી છે તેવી જ

स्कन्धात् पुरातनाः पुद्गलाः क्षरन्ति नूतनास्तु तत्रागत्य मिलन्ति, तथाऽनयो-स्तैजस-कार्मण-शरीरयोः स्वरूपं न कदाचिद् विनश्यति, परन्तु तत्रत्याः पुरातनाः कर्मपुद्गलाः स्वस्वफलप्रदानपुरस्सरं स्वावस्थितिसमयं समाप्याप-गच्छन्ति, नूतनाः पुनः कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशेषु मिलित्वा संबद्धा भवन्ति। एवामात्मप्रदेशैः सहानादिकालतः प्रवाहरूपोऽयं समायातः कर्मणां सम्बन्धः।

अयं च कर्मसम्बन्धस्तदैव विनङ्क्ष्यति, यदाऽयमात्मा मुक्तिं लभेत। आभ्यां तैजसकार्मणशरीराभ्यां वियोग एव मुक्तिरुच्यते। यद्यनादिकालतः कार्मण-शरीरं संसारिणो न स्यात् तदा कदाचिदपि नवीनकार्मणवर्गणाभिर्बन्धो न भवेत्। कार्मणशरीराभावादेव सिद्धानां कार्मणवर्गणापरिपूर्णेऽपि सिद्धक्षेत्रे कर्मबन्धो न भवति।

फिर भी उस स्कन्ध से पुराने पुद्गल खिरते रहते हैं और नवीन पुद्गल आकर उसमें मिल जाते हैं, इसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीर का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु उसमें के पुराने कर्म-पुद्गल अपना-अपना फल देकर, अपनी स्थिति का काल समाप्त करके हट जाते हैं और नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशों में मिलकर बद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से प्रवाहरूप में चला आता है।

यह कर्म-सम्बन्ध उसी समय नष्ट होगा, जब आत्मा मुक्त हो जायगा। तैजस और कार्मण शरीर से सर्वथा वियोग हो जाना ही आत्मा की मुक्ति है। संसारी जीव के साथ अनादि काल से कार्मण शरीर का सम्बन्ध न होता तो नवीन कर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध कभी न होता। यद्यपि सिद्धक्षेत्र कार्मणवर्गणा से भरा हुआ है, फिर भी सिद्धों में कार्मण शरीर न होने से उन्हें कर्मबन्ध नहीं होता।

વિદ્યમાન રહે છે, તો પણ તે સ્કંધમાંથી પુરાણા પુદ્ગલ ખરતાં રહે છે. અને નવીન પુદ્ગલ આવીને તેમાં મળી જાય છે. એ પ્રમાણે તૈજસ અને કાર્મણ શરીરનું સ્વરૂપ કોઈ વખત પણ નાશ થતું નથી, પરંતુ તેમાં પુરાણા કર્મપુદ્ગલ પોત-પોતાનું ફળ આપીને પોતાની સ્થિતિનો સમય સમાપ્ત કરીને હઠી જાય છે, અને નવીન પુદ્ગલ આત્મપ્રદેશોમાં મળીને બદ્ધ થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે આત્મ-પ્રદેશોની સાથે કર્મોનો સંબંધ અનાદિ કાળથી પ્રવાહરૂપમાં ચાલ્યો આવે છે.

આ કર્મ-સંબંધ તે સમયે નાશ થશે કે જ્યારે આત્મા મુકત થઈ જશે તૈજસ અને કાર્મણ શરીરનો સર્વથા વિયોગ થઈ જવો તેજ આત્માની મુકિત છે. સંસારી જીવની સાથે અનાદિ કાલથી કાર્મણ શરીરનો સંબંધ જો ન હોત તો નવીન કર્મવર્ગણાઓનો સંબંધ પણ કોઇ વખત નહી થતે, જો કે સિદ્ધક્ષેત્ર

(१३) आत्मन ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वम्–

अयमात्मा–ऊर्ध्वगतिशीलः, अगुरुलघुत्वात्। यद्येवं तर्हि कथमधो गच्छति ?। अलाबुर्यथा स्वभावत ऊर्ध्वगमनशीलोपि मृल्लेपाज्जलेऽधो गच्छति; तदपगमादूर्ध्व-माजलान्ताद् गच्छति, एवमात्मापि कर्मलेपादधो गच्छति तदपगमादूर्ध्वमालो-कान्ताद् गच्छति। यथा वा–एरण्डबीजमपि बन्धनमुक्तं सदूर्ध्वं गच्छति।

---

(१३) आत्माका ऊर्ध्वगतिस्वभाव—

यह आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला है; क्यों कि वह अगुरुलघु है। प्रश्न किया जा सकता है कि अगर ऐसी बात है तो आत्मा अधोगमन क्यों करता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जैसे पानी में ऊपर की ओर गमन करने का तूंबेका स्वभाव है, फिर भी मिट्टी का लेप कर देने से वह अधोगमन करता है और लेप हट जाने पर जल की सतह तक ऊपर की ओर उठता है। इसी प्रकार आत्मा कर्मलेप के कारण नीचे जाता है और कर्मलेप हट जाने से लोक के अग्रभाग तक उपर की ओर जाता है। अथवा जैसे–एरण्ड का बीज बन्धन से मुक्त होकर उपर जाता है उसी प्रकार आत्मा भी कर्मबन्धन का नाश होने पर उपर जाता है।

કાર્મણવર્ગણાઓથી ભરેલો છે, તો પણ સિદ્ધોમાં કાર્મણ શરીર નહિ હોવાથી તેને કર્મબંધ થતો નથી.

(૧૩) આત્માનો ઊર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

આ આત્મા ઊર્ધ્વ–ગતિ–ગમન–સ્વભાવ વાળો છે, કારણ કે તે અગુરૂ–લઘુ છે. તો પ્રશ્ન કરી શકાય છે કે અગર જો એ પ્રમાણે છે તો આત્મા અધોગમન કેમ કરે છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કેઃ–તુંબડાનો સ્વભાવ જેમ પાણીમાં ઉપરની તરફ આવવાનો છે તો પણ તેને માટીનો લેપ કરી દેવાથી તે પાણીમાં નીચે જાય છે. અને માટીનો લેપ દૂર થતાં જલની સપાટી સુધી ઉપરના ભાગમાં આવે છે. એ પ્રમાણે આત્મા કર્મલેપના કારણે નીચે જાય છે, અને કર્મલેપ દૂર થવાથી લોકના અગ્રભાગ સુધી ઉપરના ભાગમાં જાય છે. અથવા જેવી રીતે એરંડાનું બીજ બંધનથી મુકત થતાં ઉપર જાય છે. તે પ્રમાણે આત્મા પણ કર્મબંધન નાશ થતાં ઉપર જાય છે.

लोकवादिप्रकरणम्–

यः पुनरेवंरूपमात्मानं सर्वथा विज्ञायात्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव वस्तुतो लोकवादीत्याह–'लोकवादी' इति। लोक्यते सर्वज्ञैरिति लोकः–षड्जीवनिकायरूपः। अत्र लोकशब्देन षड्जीवनिकायो गृह्यते, भगवताऽऽत्मज्ञानमेव पुरस्कृत्य लोकवादिप्रतिबोधनात्। यः षड्जीवनिकायरूपं लोकं विजानाति स एव लोकवादी=लोकस्वरूपकथनस्वभाववान्, न तु षड्जीवनिकायानभिज्ञ इत्यर्थः।

षड्जीवनिकायरक्षणेनैवात्मस्वरूपं प्रकटीभवति। तच्च षड्जीव–

लोकवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जान कर आत्मा के निरूपण में तत्पर होता है वही वास्तव में लोकवादी है।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोका जाय–अवलोकन किया जाय वह लोक है, अर्थात् षड्जीवनिकाय को लोक कहते हैं। 'लोक' शब्द से यहाँ षड्जीवनिकाय का ही ग्रहण किया गया है, क्यों कि भगवान् ने आत्मज्ञान को ही आगे रखकर लोकवादी का कथन किया है। जो षड्जीवनिकायरूप लोक को जानता है वही लोकवादी है, अर्थात् लोक के स्वरूप का कथन करने वाला है, किन्तु षड्जीवनिकाय से अनभिज्ञ नहीं।

षड्जीवनिकाय की रक्षा करने से ही आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है। षड्जीव–

લોકવાદીપ્રકરણ

જો આ પ્રમાણે આત્માના સ્વરૂપને જાણી કરીને આત્માના નિરૂપણમાં તત્પર થાય છે તે વાસ્તવિક રીતે લોકવાદી છે.

સર્વજ્ઞો દ્વારા જે લોકાવાય–અવલોકન કરાય,–અર્થાત્ સર્વજ્ઞો જેને જોઇ શકે છે તે લોક છે. અર્થાત્ ષડ્જીવનિકાયને લોક કહે છે. 'લોક' શબ્દથી ષડ્-જીવનિકાયનું જ ગ્રહણ કર્યું છે, કારણ કે ભગવાને આત્મજ્ઞાનને જ આગળ રાખીને લોકવાદીનું કથન કર્યું છે. જે ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને જાણે છે, તે લોકવાદી છે, અર્થાત્ લોકના સ્વરૂપનું કથન કરવા વાળા છે ષડ્જીવનિકાયથી અનભિજ્ઞ હોય તે નહિ.

ષડ્ જીવનિકાયની રક્ષા કરવાથી જ આત્માનું સ્વરૂપ પ્રગટ થાય છે. ષડ્

निकायज्ञानं विना तद्रक्षणं न संभवति। अतः षड्जीवनिकायस्वरूपं निरूप्यते—

जीवास्तावत् संक्षेपतो द्विविधाः–सिद्धा असिद्धाश्चेति। तत्र मुक्तिप्राप्ताः सिद्धाः, संसारिणोऽसिद्धाः। संसारिणः पुनर्द्विविधाः–त्रस–स्थावरभेदात्। तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः। त्रसाश्चतुर्विधाः – द्वीन्द्रिय – त्रीन्द्रिय – चतुरिन्द्रिय – पञ्चेन्द्रियभेदात्। तत्रेन्द्रियाणि पञ्च श्रोत्र–चक्षु–घ्राण–रसन–स्पर्शनाख्यानि। पृथिवीकायोऽप्कायस्तेजस्कायो वायुकायो वनस्पतिकायश्चेति पञ्चविधा जीवा एकेन्द्रियाः। कृम्यादयो द्वीन्द्रियाः,। पिपीलिकादयस्त्रीन्द्रियाः, भ्रमरादयश्चतुरिन्द्रियाः। मनुष्यादयःपञ्चेन्द्रियाः।

निकाय की रक्षा उसके ज्ञान के अभाव में नहीं हो सकती, अतः षड्जीवनिकाय के स्वरूप का निरूपण किया जाता है—

संक्षेप में जीवों के दो भेद हैं—सिद्ध जीव और असिद्ध जीव। मुक्त जीव सिद्ध कहलाते हैं और संसारी जीव असिद्ध कहलाते हैं। संसारी जीव भी दो प्रकार के हैं–त्रस और स्थावर। पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय स्थावर हैं। त्रस जीव चार प्रकार के हैं–द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण (नाक), रसना और स्पर्शन, ये पांच इन्द्रियाँ हैं। पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, ये पांच स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं। कृमि आदि द्वीन्द्रिय हैं। पिपीलिका (चिउंटी) आदि त्रीन्द्रिय हैं। भौंरा आदि चौइन्द्रिय हैं। मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय हैं।

જીવનિકાયની રક્ષા તેના જ્ઞાનના અભાવમાં થઈ શકતી નથી, તે કારણથી ષડ્-જીવનિકાયનાં સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છેઃ—

સંક્ષેપમાં જીવના બે ભેદ છે.-(૧) સિદ્ધજીવ અને (૨) અસિદ્ધજીવ. મુક્તજીવ તે સિદ્ધ કહેવાય છે અને અસિદ્ધ તે સંસારી જીવ કહેવાય છે. સંસારી જીવ પણ બે પ્રકારના છે. (૧) ત્રસ અને (૨) સ્થાવર. પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાય તે સ્થાવર છે. ત્રસ જીવ ચાર પ્રકારના છે. દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. શ્રોત્ર (કાન) ચક્ષુ (નેત્ર), ઘ્રાણ (નાક), રસના (જીભ), અને સ્પર્શન (ચામડી), આ પાંચ ઇંદ્રિયો છે. પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, આ પાંચ સ્થાવરજીવ એકેન્દ્રિય છે, કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય છે. કીડી આદિ ત્રીન્દ્રિય છે, ભમરા વગેરે ચૌઇન્દ્રિય

अत्र पञ्च स्थावरा एकस्त्रसश्चेति मिलित्वा ष जीवनिकाया भवन्ति एषां प्रत्येकं भेदान् प्रदर्शयामः-

(१) पृथिवीकायभेदाः-

पृथिवीकायस्तावदुच्यते-पृथिव्येव कायो यस्य स पृथिवीकायः। पृथिवीकायादयः पञ्च स्थावरनामकर्मोदयात् समुत्पन्नास्तस्मादिमे स्थावरा इति कथ्यन्ते। पृथिवीकायोऽनेकविधः, शुद्धपृथिवीशर्करा-वालुकादिभेदात्। तत्र शर्करादिभेदरहिता मृत्तिकारूपा, तथा गोमयकचवरादिरहिता वा पृथिवी-

---

पांच स्थावर और एक त्रस मिलकर षड्जीवनिकाय हैं। इन सबके भेद दिखलाते हैं—

(१) पृथिवीकाय के भेद—

पृथिवी ही जिस का शरीर हो, वह पृथ्वीकाय कहलाता है। पृथ्वीकाय आदि पांचों स्थावरनाकर्म के उदय से उत्पन्न होने के कारण स्थावर कहलाते हैं। पृथिवीकाय अनेक प्रकार का हैं—शुद्ध पृथिवी, शर्करा, वालु आदि। उनमें शर्करा आदि भेदों से रहित मृत्तिकारूप, तथा गोबर या कचरा आदि से रहित पृथिवी शुद्धपृथिवी कहलाती है। पत्थर के छोटे-छोटे खण्डों से मिली हुई मृत्तिका शर्करा पृथिवी है।

છે, મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય છે

પાંચ સ્થાવર અને એક ત્રસ મળીને ષડ્જીવનિકાય છે. એ તમામના ભેદો બતાવે છેઃ—

(૧) પૃથિવીકાયના ભેદ—

પૃથિવી જેનું શરીર હોય, તે પૃથિવીકાય કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય આદિ પાંચેય સ્થાવરનામકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન હોવાના કારણે સ્થાવર કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય અનેક પ્રકારે છે, શુદ્ધપૃથ્વી, શર્કરા, વાલૂ (રેતી) આદિ. તેમાં શર્કરા આદિ ભેદોથી રહિત મૃત્તિકારૂપ, અને છાણ અગર કચરા આદિથી રહિત પૃથ્વી શુદ્ધપૃથ્વી કહેવાય છે. પથ્થરના નાના-નાના કકડાઓથી મળેલી માટી તે શર્કરા પૃથિવી છે. વાલૂ (રેતી)

शुद्धपृथिवी। अश्मलघुखण्डमिश्रिता मृत्तिका–शर्करापृथिवी। वालुकाव्यतिमिश्रा मृत्तिका–वालुकापृथिवी। एवं बहुविधाः पृथिवीकायाः, तथाहि–

उपल – शिला – लवणो-षर - लोह - त्रपु - ताम्र - सीसक - रजत-सुवर्ण-हरिताल–हिङ्गुलक–मनःशिला–सस्यकाञ्जन–प्रवाला–भ्रकपटला–भ्रवालुका–गोमेद–रुचका-ङ्क-स्फटिक – लोहिताक्ष – मरकत–मसारगल्ल-भुजगे-न्द्रनील-गोपीचन्दन-गैरिक - हंसगर्भ-पुलक-सौगन्धिक-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त–वैडूर्य–जलकान्तादयः सर्वे बादरपृथिवीकाय-भेदाः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः स्वखनिस्थिता एव चेतनावन्तः। गोमय-कचवरादिरूपशस्त्रोपहता रविवह्नितापरूपशस्त्रोपहताश्च गतचेतना भवन्ति।

बालू मिली मृत्तिका बालुका पृथिवी कहलाती है। इस प्रकार पृथिवीकाय के अनेक भेद हैं, वे इस प्रकार :—

पत्थर, शिला, नमक, उषर, लोहा, रांगा, तांबा, शीशा; चांदी, सोना, हडताल, हिंगलु, मैनसिल, सस्यकांजन, मूंगा, अभ्रक अभ्रवालुका गोमेद, रुचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त, आदि बादर पृथिवीकाय के भेद हैं। वे शुद्ध पृथिवी आदि जब अपनी खान में स्थित होते हैं तभी सचेतन होते हैं। गोबर, कचरा आदि शस्त्रों से उपहत होकर या सूर्य की धूप और अग्नि के तापरूप शस्त्र से अचेमन हो जाते हैं।

મળેલી માટી વાલુકાપૃથિવી કહેવાય છે. એ પ્રમાણે પૃથિવી કાયના અનેક ભેદ છે.

પત્થર, શિલા, મીઠું, ઉષર–ખારો, લોઢું, રાંગો, (કલઇ), ત્રાંબું, સીસું, ચાંદી, સોનું, હડતાલ, હિંગલો, મનશિલ, સુરમો, મૂંગા–પરવાળાં, અભ્રક, અભ્રવાલુકા, ગોમેદ, રૂચક, અંક, સ્ફટિક, લોહિતાક્ષ, મરકત, મસારગલ્લ, ભુજંગ, ઈન્દ્રનીલ, ગોપીચન્દન, ગેરૂ, હંસગર્ભ, પુલક, સૌગંધિક, ચંદ્રકાન્ત, સૂર્યકાન્ત, વૈડૂર્ય, જલકાન્ત આદિ બાદરપૃથિવીકાયના ભેદ છે (આ ખર બાદર પૃથ્વીકાય છે). એ શુદ્ધ પૃથિવી આદિ જ્યારે પોતાની ખાણમાં સ્થિત હોય છે, ત્યારે તે સચેતન હોય છે. છાણ–કચરો આદિ શસ્ત્રોથી ઉપહત (હણાએલા) થઇને, અથવા તો સૂર્ય અને અગ્નિના તાપરૂપ શસ્ત્રથી અચેતન થઈ જાય છે.

उक्तबादरपृथिवीकायानां यत्रैको जीवस्तत्र नियमतोऽसंख्याताः पृथिवीकाया जीवाः सन्ति। स्थानमप्येषां पृथिवी-पाताल-भवन-नरक-प्रस्तर-विमानादिकं ज्ञेयम्। सूक्ष्मपृथिवीकायजीवास्तु सर्वलोकव्यापिनः। उभयेषां भेदप्रभेदाः सर्वज्ञप्रणीतादागमादवगन्तव्याः।

(२) अप्कायभेदाः—

अप्कायाऽनेकविधः-अवश्याय-मिहिका-करक-हरतनु-शुद्ध-शीतो-ष्ण-क्षारा-ऽम्ल-लवण-क्षीरोदक-घृतोदकादिभेदात्। एको यत्राप्कायस्तत्रासंख्याता अप्कायाः सन्ति। बादराप्कायानां समुद्र-ह्रद-नदी-वापी-कूपादिः स्थानम्। सूक्ष्माप्कायस्तु सर्वलोकव्यापकः। अस्यापि भेदप्रभेदा आगमतो विज्ञेयाः।

उक्त बादर पृथिवीकाय आदि का जहाँ एक जीव है वहाँ नियम से असंख्यात पृथिवीकाय के जीव हैं। पृथिवी. पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि इनके स्थान हैं। सूक्ष्म पृथिवीकाय के जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं। दोनों के भेद-प्रभेद सर्वज्ञोक्त आगम से समझ लेने चाहिए।

(२) अप्काय के भेद—

अप्काय अनेक प्रकार का है—ओस, मिहिका, ओले, हरतनु, शुद्धजल, शीतजल, उष्णजल, क्षार, अम्ल लवणजल (खारा पानी) क्षीरोदक, और घृतोदक आदि। जहाँ एक अप्काय है वहाँ असंख्यात अपकाय हैं। बादर अप्-कायका स्थान समुद्र, तलाव, नदी, वावडी, कूप आदि हैं, और सूक्ष्म अप्काय समस्त लोक में व्याप्त है। इसके भी भेद-प्रभेद आगम से समझना चाहिए।

ઉપર કહેલા બાદર પૃથિવીકાય આદિનો જ્યાં એક જીવ છે. ત્યાં નિયમથી અસંખ્યાત પૃથિવીકાય જીવ છે. પૃથિવી, પાતાલ, ભવન, નરક-પ્રસ્તર, વિમાન આદિ તેના સ્થાન છે. સૂક્ષ્મ પૃથિવી કાયના જીવ સમસ્ત લોકમાં વ્યાપ્ત છે. એ બંનેના ભેદ-પ્રભેદ સર્વજ્ઞોના આગમથી સમજી લેવા જોઈએ.

(૨) અપ્કાયના ભેદ—

અપ્કાયના અનેક પ્રકાર છે-ઓસ, મિહિકા (નિહાર), ઓળો, હરતનુ- (પૃથ્વીને ભેદીને તૃણના અગ્રભાગ વગેરે ઉપર રહેનારૂં પાણી) શુદ્ધ જલ (અંતરિક્ષથી પડેલું અથવા નદીનું પાણી) શીતલજલ, ઉષ્ણજલ (સ્વભાવથી ગરમ પાણીના કુંડોનું પાણી), ખાટું જલ, ખારૂં જલ, ક્ષીરોદક અને ઘૃતોદક આદિ, (લવણ, વારૂણ, ક્ષીર, ઈક્ષુરસ અને પુષ્કરવર સમુદ્રનાં પાણી) જ્યાં એક અપ્કાય છે, ત્યાં અસંખ્યાત અપ્કાય છે. બાદર અપ્કાયના સ્થાન સમુદ્ર, તળાવ, નદી, વાવડી, કૂવા આદિ છે, અને સૂક્ષ્મ અપ્કાય સમસ્ત લોકમાં વ્યાપ્ત છે. તેના ભેદ-પ્રભેદ પણ આગમથી સમજવા જોઈએ.

(३) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादिभेदात्। इमे तेजस्काया जीवा बादराः। यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति। तेषां स्थानं सार्धतृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो बहिः। सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः। एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

(४) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाश्चात्याद्युत्कलिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः। बादरवायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालभवनादिकम्। सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः। एषां भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः।

(३) तेजस्काय के भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध—अग्नि आदि। जहाँ एक बादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असंख्यात तेजस्काय होते हैं। इन का स्थान अढाईद्वीपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते। सूक्ष्म तेजस्काय के जीव लोकव्यापी हैं। इन के भी भेद—प्रभेद आगम से समझने चाहिए।

(४) वायुकाय के भेद—

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कलिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं। घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक और पाताल, भवन आदि बादर वायुकाय के स्थान हैं। सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है।

(3) તેજસ્કાયના ભેદ—

તેજસ્કાય અનેક પ્રકારના છે; જેમ કે અંગાર, જ્વાલા, અલાત, શુદ્ધ અગ્નિ, આદિ, જ્યાં એક બાદર તેજસ્કાયનો જીવ હોય છે ત્યાં અસંખ્યાત તેજસ્કાય હોય છે. તેનું સ્થાન અઢીદ્વીપરૂપ સમયક્ષેત્ર જ છે, તેનાથી બહાર તે નથી. સૂક્ષ્મ તેજસ્કાયના જીવ લોકવ્યાપી છે. તેના પણ ભેદ-પ્રભેદ આગમથી જાણી લેવા જોઈએ.

(4) વાયુકાયના ભેદ—

વાયુકાય પણ પૂર્વ અને પશ્ચિમ આદિના ભેદથી, અને ઉત્કલિક (જેમ સમુદ્રમાં કલ્લોલો) મંડલિક, (મૂળમાંથી જે ગોળ ફરતો વાતો હોય તે વાયુ) આદિ ભેદથી અનેક પ્રકારનો છે, ઘનવાત, તનુવાત, વલય, અધોલોક, અને પાતાલ, ભવન આદિ બાદર વાયુકાયના સ્થાન છે, અને સૂક્ષ્મ વાયુકાય સર્વલોકવ્યાપી છે.

इमौ तेजस्काय-वायुकायौ गतिस्वभावतया त्रसावपि निगद्येते।

(५) वनस्पतिकायभेदाः—

वनस्पतिकायोऽनेकविधः–शैवाल–पनक–हरिद्रा–ऽऽर्द्रक–मूलका–लूक–सूरण–पलाण्डु–लशुन–कन्दादिभेदात्। इमे वनस्पतिकायाः साधारणा उच्यन्ते। वृक्षगुच्छगुल्मलतादयः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते। साधारणवनस्पतिकायस्यैकस्मिन्

इनके भेद–प्रभेद पूर्ववत् आगम से जानने चाहिए। तेजस्काय और वायुकाय गतिशील होने के कारण त्रस भी कहे जाते हैं।

(५) वनस्पतिकाय के भेद–

वनस्पतिकाय अनेक प्रकार का है। जैसे–शैवाल, पनक, हरिद्रा, (हल्दी), आर्द्रक (अदरख) मूलक, अलूक (आलू), सूरण, प्याज, लहसुन, और कन्द आदि। ये वनस्पतियाँ साधारण कहलाती हैं। तथा वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि प्रत्येकशरीर कहलाती हैं। साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं। इनका

તેના ભેદ-પ્રભેદ પૂર્વ પ્રમાણે આગમથી સમજી લેવા જોઈએ. તેજસ્કાય અને વાયુકાય ગતિશીલ હોવાના કારણે ત્રસ પણ કહેવામાં આવે છે.

(૫) વનસ્પતિકાયના ભેદ—

વનસ્પતિ કાય અનેક પ્રકારે છે, જેમકે-શૈવાલ, પનક, હરિદ્રા, આદુ, મૂલક, આલૂ, સૂરણ, ડુંગળી, લસણ અને કન્દ આદિ. આ વનસ્પતિઓ સાધારણ કહેવાય છે, (જેમાં અનંત જીવો હોય તેને સાધારણ કહે છે) તથા વૃક્ષ, (ભગવતી સૂત્રમાં વૃક્ષોના ત્રણ ભેદો પાડેલા છે. (૧) શૃંગબેર (આદુ)ની પેઠે અનંત જીવોવાળાં ઝાડો, (૨) આંબાની માફક અસંખ્ય જીવોવાળાં ઝાડો, (૩) અને તાડ-તમાલ વગેરે પ્રમાણે સંખ્યાત જીવોવાળાં ઝાડો). ગુચ્છ, ગુલ્મ (નવમાલિકા જાઈ વગેરે) લતા આદિ પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે. સાધારણ વનસ્પતિ કાયના એક શરીરમાં અનન્ત જીવ હોય છે. તેનું સ્થાન ઘનોદધિ આદિ છે. સૂક્ષ્મ વનસ્પતિકાય સર્વ લોકવ્યાપી છે.

शरीरेऽनन्ता जीवाः सन्ति। एषां स्थानं घनोदध्यादि। सूक्ष्मास्तु वनस्पतिकाया सर्वलोकव्यापिनः। एषां भेदप्रभेदाश्च शास्त्रतोऽवसेयाः। एते पञ्च स्थावराः स्पर्शन-रूपैकेन्द्रियाः।

पञ्च जीवनिकाया उक्ताः, इदानीं षष्ठत्रसाधिकारः कथ्यते—

(६) त्रसकायभेदाः—

त्रसत्वं द्विविधं, क्रियातो लब्धितश्च। तत्र क्रिया=कर्म-चलनं-देशान्तर-प्राप्तिः। अतः क्रिययैव तेजस्कायो वायुकायश्च त्रसो भवति। लब्ध्या तूभौ स्थावरौ। द्वीन्द्रियादयस्तु क्रियया लब्ध्यापि त्रसा भवन्ति। लब्धिर्हि त्रसनामकर्मो-दयः, देशान्तरप्राप्तिलक्षणा क्रियाऽपि द्वीन्द्रियादीनाम्। स्थावरनामकर्मोदयरूपया

स्थान घनोदधि आदि है। सूक्ष्म वनस्पतिकाय सर्वलोकव्यापी है। इनके भेद-प्रभेद शास्त्र से समझ लेने चाहिए। इन पांच स्थावरों को एकमात्र स्पर्शनइन्द्रिय होती है।

पांच जीवनिकायों का कथन किया जा चुका है। अब छठे त्रसकाय का प्ररूपण किया जाता है—

(६) त्रसकाय—

त्रसपन दो प्रकार का है—क्रिया से और लब्धि से। कार्य करना, चलना, एक जगह से दूसरी जगह जाना क्रिया है। इस क्रिया से ही तेजस्काय और वायुकाय त्रस कहलाते हैं। लब्धिकी अपेक्षा ये दोनों स्थावर ही हैं। द्वीन्द्रिय आदि, क्रिया से भी त्रस हैं और लब्धि से भी। यहाँ त्रसनामकर्म का उदय लब्धि है, और देशान्तर में

તેના ભેદ-પ્રભેદ શાસ્ત્રથી સમજી લેવા જોઈએ. આ પાંચ સ્થાવરોને એક માત્ર સ્પર્શન ઈન્દ્રિય હોય છે.

આ પાંચ જીવનિકાયોનું કથન કરી ચૂકયા છીએ. હવે છઠ્ઠા ત્રસ કાયનું પ્રરૂપણ કરવામાં આવે છે—

(૬) ત્રસકાય—

ત્રસપણું બે પ્રકારનું છે-ક્રિયાથી અને લબ્ધિથી. કાર્ય કરવું, ચાલવું, એક જગ્યાથી બીજી જગ્યાએ જવું તે ક્રિયા છે. આ ક્રિયાથી જ તેજસ્કાય અને વાયુકાય ત્રસ કહેવાય છે, લબ્ધિની અપેક્ષાએ આ બન્ને સ્થાવર જ છે. દ્વીન્દ્રિય આદિ ક્રિયાથી પણ ત્રસ છે અને લબ્ધિથી પણ ત્રસ છે. અહિં ત્રસનામકર્મનો ઉદય તે લબ્ધિ છે, અને દેશાન્તરમાં ગમન કરવું તે ક્રિયા છે. દ્વીન્દ્રિય આદિમાં એ બંને જોવામાં

लब्ध्या पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सर्वे स्थावरा एव। एवं च त्रसः षड्विधः तेजस्काय-वायुकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-भेदात्। तत्र तेजस्कायो वायुकायश्च प्रागुक्तः।

द्वीन्द्रियादिषु चतुर्विधेषु त्रसजीवेषु द्वीन्द्रियास्तावदुच्यन्ते—

(१) द्वीन्द्रियः—

शरीरकाष्ठादिजाः—कृमयः, फलादिजाः—नीलङ्गुप्रभृतयः, गोमयादिजाः—गन्दोलकादयः, जलजाः—शङ्खशुक्तिशम्बूकजलौकाप्रभृतयो द्वीन्द्रियाः।

गमन करना क्रिया है, द्वीन्द्रिय आदि में ये दोनों पाई जाती हैं। स्थावरनामकर्मोदयरूप लब्धि की अपेक्षा पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, और वनस्पति, ये सब स्थावर हैं। इस प्रकार त्रसजीव छह प्रकार के हैं—तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय। इन में से तेजस्काय और वायुकाय का वर्णन पहले किया जा चुका है।

द्वीन्द्रिय आदि चार प्रकार के त्रसजीवों में से प्रथम द्वीन्द्रिय का स्वरूप बतलाते हैं—

(१) द्वीन्द्रिय-

शरीर और काठ आदि में उत्पन्न होने वाली कृमि, फल आदि में उत्पन्न होने वाले नीलंगु वगैरह, गोबर में उत्पन्न होने वाले गिंडोला वगैरह, जल में पैदा होने वाले शङ्ख, सीप, जोंक आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं। इन के स्पर्शन और रसना, ये दो

આવે છે. સ્થાવરનામકર્મોદય લબ્ધિની અપેક્ષા-પૃથ્વી, અપ્, તેજ, વાયુ, વનસ્પતિ, આ સર્વ સ્થાવર છે. આ પ્રમાણે ત્રસ જીવ છ પ્રકારના છે-તેજસ્કાય, વાયુકાય, દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. આમાંથી તેજસ્કાય અને વાયુકાયનું વર્ણન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે.

દ્વીન્દ્રિય આદિ ચાર પ્રકારના ત્રસ જીવોમાંથી દ્વીન્દ્રિય આદિનું સ્વરૂપ બતાવે છે.

(૧) દ્વીન્દ્રિય—

શરીર અને કાષ્ઠ આદિમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા કૃમિ, ફળ આદિમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા નીલંગુ વગેરે. છાણમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા ગિંડોલા વગેરે. જલમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા શંખ, શીપ, જળો વગેરે દ્વીન્દ્રિય જીવ છે. તેને સ્પર્શન અને

इमे स्पर्शन–रसनोभयेन्द्रियाः द्वीन्द्रिया जीवा असंख्याताः ।

(२) त्रीन्द्रियाः—

त्रीन्द्रियाः पिपीलिकादयः–पिपीलिका–रोहिणिका–कुन्थु–यूक–लिक्ष–मत्कुण–मत्कोटक–शुलशुल–गोपदिका–खर्जूरा–कर्णशूलादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन–रसन–घ्राणेन्द्रियाः । त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।

(३) चतुरिन्द्रियाः—

चतुरिन्द्रियाः भ्रमरादयः–भ्रमर–वटर–मक्षिका–दंश–मशक–वृश्चिक–कीट–कसारी–पतङ्गादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–रिन्द्रियाः । चतुरिन्द्रिया अपि असंख्याताः ।

इन्द्रियां होती हैं । द्वीन्द्रिय जीव असंख्यात हैं ।

(२) त्रीन्द्रिय—

पिपीलिका (कीडी), रोहिणिका, कुन्थुवा, जूं, लीख, खटमल, मकोडा, शुलशुल, गोपदिका, खजूरा, कर्णशूल, आदि त्रीन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । त्रीन्द्रिय जीव असंख्यात हैं ।

(३) चतुरिन्द्रिय-

भ्रमर, वटर, मक्खी, डांस, मच्छर, बिच्छू, कीट, पतङ्ग, कंसारी, आदि चौइन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं । ये जीव असंख्यात हैं ।

રસના એ બે ઇન્દ્રિયો વાળા જીવો અસંખ્યાત છે.

(૨) ત્રીન્દ્રિય—

કીડી, રોહિણિકા, કંથુવા, જુ, લીખ, માંકડ, મંકોડા, શુલશુલ, ગોપદિકા, કાનખજૂરા, કર્ણશૂલ આદિ ત્રીન્દ્રિય જીવ પ્રસિદ્ધ છે. તેને સ્પર્શન, રસના, અને ઘ્રાણ. આ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે. ત્રીન્દ્રિય જીવ અસંખ્યાત છે.

(૩) ચતુરિન્દ્રિય—

ભમરા, વટર, માંખી, ડાંસ, મચ્છર, વીંછી, કીટ, પતંગ, કંસારી આદિ ચાર ઇન્દ્રિયવાળા જીવ પ્રસિદ્ધ છે. તેમને સ્પર્શન રસના, ઘ્રાણ અને નેત્ર આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે. એ જીવ અસંખ્યાત છે.

(४) पञ्चेन्द्रियजीवाः—

पञ्चेन्द्रियजीवाश्चतुर्धा—नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देव-भेदात्, नारकाः सप्तविधाः, सप्तनरकेषु समुद्भवात्। रत्न(१)-शर्करा(२)-वालुका(३)-पङ्क(४)-धूम (५)-तमो(६)-महातमो(७)-नाम्न्यः सप्त पृथिव्यस्तत्र सप्त नरकभूमयः, तत्र ये निवसन्ति ते नारकाः सप्तविधा इति। नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चो द्विविधाः- गर्भज-संमूर्छिमभेदात्। तत्र-गर्भजाः पञ्चधा-जलचर-स्थलचर-खेचरो-रःपरिसर्प-भुजपरिसर्पभेदात्। संमूर्छिमा अपि

(४) पञ्चेन्द्रियजीव-

पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१) नारक, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य, और (४) देव।

नारक सात प्रकार के हैं, क्यों कि सात नरकों में उनकी उत्पत्ति होती है। (१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा, (४) पंकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा और (७) तमस्तमःप्रभा नामक सात पृथिवी हैं। वहाँ सात नरकभूमियाँ हैं। इन भूमियों में निवास करने वाले नारकी भी सात प्रकार के कहलाते हैं। नारक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र, ये पांच इन्द्रियाँ होती हैं।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च दो प्रकार के हैं—गर्भज और संमूर्च्छिम। इन में गर्भज के पांच भेद हैं-(१) जलचर, (२) स्थलचर, (६) खेचर, (४) उरःपरिसर्प और (५) भुजपरिसर्प।

(४) પંચેન્દ્રિય—

પાંચ ઇન્દ્રિયો વાળા જીવ ચાર પ્રકારના છે-(૧) નારકી, (૨) તિર્યંચ, (૩) મનુષ્ય, અને (૪) દેવ. નારકીના સાત પ્રકાર છે, કારણ કે સાત નરકોમાં તેની ઉત્પત્તિ હોય છે. (૧) રત્નપ્રભા, (૨) શર્કરાપ્રભા, (૩) વાલુકાપ્રભા, (૪) પંકપ્રભા, (૫) ધૂમપ્રભા, (૬) તમઃપ્રભા અને (૭) તમસ્તમઃ-પ્રભા નામની સાત પૃથિવી છે. ત્યાં સાત નરકભૂમિઓ છે. તે નરકભૂમિઓમાં નિવાસ કરવા વાળા નારકી પણ સાત પ્રકારના કહેવાય છે. નારકી, પંચેન્દ્રિય-તિર્યંચ, મનુષ્ય, અને દેવોને સ્પર્શન, રસના ઘ્રાણ, ચક્ષુ અને શ્રોત્ર, આ પાંચ ઇન્દ્રિયો હોય છે.

પંચેન્દ્રિય તિર્યંચ બે પ્રકારના છે-(૧) ગર્ભજ, (૨) સંમૂર્છિમ. તેમાં ગર્ભજના પાંચ ભેદ છેઃ-(૧) જલચર, (૨) સ્થલચર, (૩) ખેચર, (૪) ઉરઃપરિસર્પ, અને

पञ्चधा–जलचर(१)–स्थलचर(२)–खेचरो(३)–उरःपरिसर्प(४)–भुजपरिसर्पभेदात्। तत्र जलचरा मत्स्यमकरादयः, स्थलचरा गोमहिष्यादयः, खेचराः मयूरादयः, उरःपरिसर्पाः सर्पादयः, भुजपरिसर्पाः गोधादयः।

मनुष्या द्विविधाः—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः। यत्र जाता मनुष्याः सिध्यन्ति; बुध्यन्ते, परिनिर्वान्ति; सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति सा कर्मभूमिः। अत्रैव संसारान्तप्राप्तिकारकस्य रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गस्य विज्ञातारः कर्तार उपदेष्टारश्च भगवन्तस्तीर्थङ्करा अवतरन्ति। ते च स्वयं संसारार्णवं तरन्ति, परान् भव्यानपि तारयन्ति। अर्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे कर्मभूमयः पञ्चदशक्षेत्ररूपा भवन्ति–पञ्च

संमूर्च्छिम के भी पांच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४) उरः–परिसर्प और (५) भुजपरिसर्प। मच्छ, मकर, आदि जल के जीव जलचर कहलाते हैं। गाय, भैंस आदि स्थलचर कहलाते हैं। मयूर आदि खेचर कहलाते हैं। सर्प आदि उरःपरिसर्प, और गुहेरा (गोह) आदि भुजपरिसर्प कहलाते हैं।

मनुष्य दो प्रकार के हैं–कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज। जहाँ उत्पन्न होकर जीव सिद्ध बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं। संसार का अन्त करने वाले, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग के ज्ञाता, कर्ता और उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान कर्मभूमि में ही उत्पन्न होते हैं। वे स्वयं संसार समुद्र तरते हैं और दूसरे भव्य जीवों को भी तारते हैं। अढाई द्वीप में पन्द्रह कर्म–भूमियाँ हैं–पाच भरत क्षेत्र में, पांच ऐरवत क्षेत्र में, और पांच महाविदेह में। पांच

---

(५) ભુજપરિસર્પ. મચ્છ, મકર (મગર) આદિ જલના જીવ જલચર કહેવાય છે. ગાય, ભેંસ આદિ સ્થલચર કહેવાય છે મયૂર (મોર) આદિ ખેચર કહેવાય છે. સર્પ આદિ ઉરપરિસર્પ, અને ઘોયરા આદિ ભુજપરિસર્પ છે.

મનુષ્ય બે પ્રકારના છે—(૧) કર્મભૂમિજ, (૨) અકર્મભૂમિજ, જ્યાં ઉત્પન્ન થઇને જીવ સિદ્ધ બુદ્ધ હોય છે, નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરે છે, અને સર્વ દુઃખોનો અંત કરે છે તેને કર્મભૂમિ કહે છે. સંસારનો અંત કરવાવાળા, રત્નત્રયરૂપ મોક્ષમાર્ગના જ્ઞાતા કર્ત્તા, અને ઉપદેશક તીર્થંકર ભગવાન્ કર્મભૂમિમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે. તે સ્વયં સંસાર સમુદ્રને તરે છે અને બીજા ભવ્ય જીવોને પણ તારે છે. અઢી દ્વીપમાં પંદર કર્મભૂમિઓ છે–પાંચ ભરતક્ષેત્રમાં, પાંચ ઐરવત ક્ષેત્રમાં, અને

भरतानि, पञ्चैरवतानि, पञ्च महाविदेहाः। तत्र पञ्चसु महाविदेहेषु पञ्च देव-कुरुक्षेत्राणि पञ्चोत्तरकुरुक्षेत्राणि अन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा कर्मभूमयो भवन्ति। एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु जाता एव ज्ञानावरणीयादिसकल-कर्मतस्करेभ्यः संसारमहारण्ये परिमुक्ता मोक्षधामाभिधावन्ति। एतत्पञ्चदश-व्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्ताः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणमोक्षमार्गं लब्धुं न प्रभवन्ति।

अहो भव्यप्राणिनः! स्वनिः यसाय शीघ्रं प्रयतन्ताम्, अनन्तकालतः षड्जीवनिकायानां भवस्थिति-कायस्थितिषु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनुभूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लब्धम्। देशविरति-सर्वविरति-

महाविदेहों में पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र भी अन्तर्गत हैं, उन्हें छोडकर पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं। इन पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी चोरों से संसाररूपी महा अरण्यो में छूटकर मोक्षधाम जाते हैं। इन पन्द्रह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

अहो भव्य जीवो! अपने श्रेय (कल्याण) के लिए शीघ्र प्रयत्न करो। अनादि काल से षडजीवनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण आदि का दुःख भोगकर पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव मिला है। देशविरति और सर्वविरतिके रूप सुधा से परिपूर्ण मनुष्यायु रूप कटोरेको

પાંચ મહાવિદેહોમાં પાંચ દેવકુરૂ, અને ઉત્તરકુરૂ ક્ષેત્ર પણ અન્તર્ગત છે. તેને છોડીને પાંચ મહાવિદેહ કર્મભૂમિ છે. આ પંદર કર્મભૂમિમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા મનુષ્ય જ જ્ઞાનાવરણીય આદિ તમામ કર્મરૂપી ચોરોથી સંસારરૂપી મહા-અરણ્યમાંથી છુટીને મોક્ષધામ જાય છે. આ પંદર ક્ષેત્રોથી ભિન્ન ક્ષેત્રોમાં જન્મ લેવાવાળા સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્ર સ્વરૂપ મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરવા સમર્થ થતા નથી.

અહો ભવ્ય જીવો! પોતાના કલ્યાણ માટે શીઘ્ર-જલદી પ્રયત્ન કરો! અનાદિ કાળથી ષડ્જીવનિકાયની ભવસ્થિતિ અને કાયસ્થિતિમાં અનન્ત જન્મ, જરા, મરણ આદિનું દુઃખ ભોગવીને પૂર્વપુણ્યના ઉદયથી કર્મભૂમિમાં દુર્લભ મનુષ્ય ભવ મળ્યો છે. દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિરૂપ અમૃતથી પરિપૂર્ણ મનુષ્યાયુરૂપ આ

पीयूषपूर्णमेतन्मनुष्यायुःकटोरकं मृत्युरपहर्तुं पुरोऽवतिष्ठते। तदत्र विरतिसुधास्वाद-सुखवञ्चिता भवन्तो मा भवन्तु।

अकर्मभूमयः कथ्यन्ते—

पञ्च हैमवतानि, पञ्च हरिवर्षाणि, पञ्च रम्यकवर्षाणि, पञ्चैरण्यवतवर्षाणि, पञ्च देवकुरवः पञ्चोत्तरकुरवः, इति त्रिंशत्, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः। अन्तरद्वीपा अपि युगलक्षेत्रत्वादकर्मभूमयो भवन्ति। एताः सर्वा अकर्मभूमयः, तीर्थङ्करजन्मादिरहितत्वात्।

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रमर्यादाकारकहिमवत्पर्वतस्य पूर्वपश्चिमान्तभागद्वयात् वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः। एवम् ऐरवतक्षेत्रमर्यादाकारकशिखरि-

छीनने के लिए मृत्यु सामने खड़ा है, अतः आप विरतिरूपी सुधा के आस्वाद के सुख से वञ्चित मत रहो।

अकर्मभूमिका कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच ऐरण्यवत, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु, ये तीस, और छप्पन अन्तर द्वीप, ये सब अकर्मभूमि हैं। अन्तरद्वीप भी युगलियाक्षेत्र होने के कारण अकर्मभूमि ही हैं। इन में कभी भी तीर्थंकर का जन्म आदि नहीं होता।

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले हिमवत्पर्वत के पूर्वभाग और पश्चिमभाग से वक्र आकार की दो-दो दाढाएँ निकली हैं। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले शिखरिपर्वत के पूर्व और पश्चिम भागों से दो दो वक्राकार दाढाएँ

કટોરાને છીનવી લેવા માટે મૃત્યુ સામેજ ઉભેલો છે. એ કારણુથી તમે વિરતિરૂપી અમૃતના સ્વાદના સુખથી વંચિત રહેશો નહિ.

અકર્મભૂમિનું કથન—

પાંચ હૈમવત, પાંચ હરિવર્ષ, પાંચ રમ્યક વર્ષ, પાંચ ઐરણ્યવત, પાંચ દેવકુરૂ, અને પાંચ ઉત્તરકુરૂ, આ ત્રીસ, અને છપ્પન અન્તરદ્વીપ, આ સર્વ અકર્મ-ભૂમિ છે. અંતર દ્વીપ પણુ જુગળીયા ક્ષેત્ર હોવાના કારણે અકર્મભૂમિ જ છે, તેમાં કોઇ પણુ સ્થળે તીર્થંકરનો જન્મ આદિ થતો નથી.

જમ્બૂદ્વીપમાં ભરત ક્ષેત્રની મર્યાદા કરવાવાળા હિમવત પર્વતના પૂર્વભાગ અને પશ્ચિમ ભાગથી વક્ર આકારની બે-બે દાઢો નીકળી છે. એ પ્રકારે ઐરવત ક્ષેત્રની મર્યાદા કરવાવાળા શિખરી પર્વતના પૂર્વ અને પશ્ચિમ ભાગોથી બે-બે વક્રાકાર દાઢો નિકળી છે.

पर्वतस्य, पूर्व-पश्चिमान्तभागद्वयाद् वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः। अष्टासु दंष्ट्रासूर्ध्वभागे सप्त सप्तान्तरद्वीपाः सन्ति। एवं षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपा भवन्ति। अन्तरद्वीपजा अप्यकर्मभूमिजाः। तत्रोभयेषां मनुष्याणामुच्चारादिषु संमूर्छिमा मनुष्या उभयविधासु भूमिषु जायन्ते।

तत्र गर्भजा मनुष्या एकोत्तरशतम् (१०१), पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्व्यधिकशतद्वयम् (२०२), संमूर्छिममनुष्या अपर्याप्तमात्रतया-एकोत्तरशतमेव (१०१), सर्वेषु संमिलितेषु त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) मनुष्याणां भेदाः भवन्ति।

देवनिकायः—

देवाश्चतुर्विधाः—भवनपति१—व्यन्तर२—ज्योतिष्क३—वैमानिक४—भेदात्।

निकली हैं। इन आठ दाढों पर सात–सात अन्तरद्वीप हैं। इस प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप हैं। अन्तरद्वीपज (अन्तरद्वीप में उत्पन्न हुए) जीव भी अकर्मभूमिज (अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए) कहलाते हैं। इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मल आदि में, दोनों भूमियों में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

गर्भज मनुष्य एक सौ एक (१०१) प्रकार के हैं। इनके प्रर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से दो सौ दो (२०२) भेद होते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं, अतः उनके एक सौ एक (१०१) भेद मिला देने से मनुष्यों के कुल भेद तीन सौ तीन (३०३) हो जाते हैं।

देवनिकाय–

देव चार प्रकार के हैं–(१)भवनपति, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

આ આઠ દાઢો પર સાત–સાત અન્તરદ્વીપ છે. આ પ્રમાણે છપ્પન અન્તરદ્વીપ છે. અન્તરદ્વીપજ (અન્તરદ્વીપમાં ઉત્પન્ન થનારા) જીવ પણ અકર્મભૂમિજ (અકર્મભૂમિમાં ઉત્પન્ન થનારા) કહેવાય છે. આ બંને પ્રકારના મનુષ્યોનાં મળ આદિમાં એ બંને ભૂમિઓમાં સંમૂર્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે.

ગર્ભજ મનુષ્ય એકસો એક (૧૦૧) પ્રકારના છે. તેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી બસો બે (૨૦૨) ભેદ થાય છે. સંમૂર્છિમ મનુષ્ય અપર્યાપ્ત જ હોય છે તે કારણથી તેના એકસો એક (૧૦૧) ભેદ તેમાં મેળવવાથી મનુષ્યોના કુલ ત્રણસો ત્રણ (૩૦૩) ભેદ થાય છે.

દેવનિકાય—

દેવ ચાર પ્રકારના છે—(૧) ભવનપતિ, (૨) વ્યન્તર, (૩) જ્યોતિષ્ક અને (૪) વૈમાનિક.

(१) भवनपतिदेवभेदाः—

तत्र भवनपतयो दशविधाः-(१) असुरकुमाराः, (२) नागकुमाराः, (३) सुवर्णकुमाराः, (४) विद्युत्कुमाराः, (५) अग्निकुमाराः, (६) द्वीपकुमाराः, (७) उदधिकुमाराः, (८) दिशाकुमाराः, (९) वायुकुमाराः, (१०) स्तनितकुमाराश्च। कुमारा इव सुकुमारा मनोहरा मृदुमधुरललितगतयः कुमारवदभिव्यक्तरागाः केलिविलोलितचेतसः कुमारवच्चोद्धतरूपवेषभाषाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाश्चेत्यतः 'कुमारा' इत्युच्यन्ते। जम्बूद्वीपे सुमेरुपर्वतस्याधस्तादृक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यग्-भागेऽनेककोटिकोटिलक्षयोजनं यावद् भवनपतयो निवसन्ति।

(१) भवनपतिदेव-

भवनपति देव दश प्रकार के हैं-(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार।

कुमार के समान सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललित गतिवाले, कुमार के समान राग व्यक्त करने वाले, क्रीडा में चित्त लगाने वाले, कुमार के समान ही उद्धत रूप, वेष, भाषा, आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करने वाले होने से ये देव, कुमार कहलाते हैं। जम्बू द्वीप में सुमेरु पर्वत के नीचे दक्षिण भाग और उत्तर भाग के तिरछे भाग में अनेक कोडा-कोडी लाख योजन तक भवनपति देव निवास करते हैं।

(१) ભવનપતિદેવ—

ભવનપતિ દેવ દસ પ્રકારના છે—(૧) અસુરકુમાર, (૨) નાગકુમાર, (૩) સુવર્ણ-કુમાર, (૪) વિદ્યુત્કુમાર, (૫) અગ્નિકુમાર, (૬) દ્વીપકુમાર, (૭) ઉદધિકુમાર, (૮) દિશાકુમાર (૯) વાયુકુમાર, અને (૧૦) સ્તનિતકુમાર.

કુમાર પ્રમાણે, સુકુમાર, મનોહર, મૃદુ, મધુર, લલિતગતિવાળા, કુમારના સમાન રાગ વ્યક્ત કરવા વાળા, ક્રીડામાં ચિત્ત લગાવવા વાળા, કુમારના પ્રમાણે ઉદ્ધત-રૂપ, વેષ, ભાષા આભૂષણ, આયુધ, યાન, વાહન આદિ ધારણ કરવા વાળા હોવાથી તે દેવ, કુમાર કહેવાય છે. જમ્બૂદ્વીપમાં સુમેરુ પર્વતની નીચે દક્ષિણભાગ અને ઉત્તર ભાગના તિર્છા ભાગમાં અનેક કોડા-કોડી લાખ યોજન સુધી ભવનપતિ દેવ નિવાસ કરે છે.

तत्र बहवोऽसुरकुमारा आवासेषु, तथा कदाचिद् भवनेषु च निवसन्ति। तथा नागकुमारादयः सर्वे प्रायशो भवनेष्वेव प्रतिवसन्ति। रत्नप्रभापृथ्वीपिण्डादूर्ध्वमधश्चैकैकसहस्रयोजनं विहायैकलक्षाष्टसप्ततिसहस्रयोजनानि तु रत्नप्रभातोऽधस्तान्नवतिसहस्रयोजनपरिमाणभाग एव भवन्ति, तत्र भवनानि दक्षिणार्धाधिपतीनां चमरेन्द्रादीनाम्, उत्तरार्धाधिपतीनां बलीन्द्रादीनाम्। महामण्डपवदावासाः, भवनानि नगरसदृशानि भवन्ति, परन्तु तानि भवनानि बहिर्वृत्तानि, अभ्यन्तरे समचतुष्कोणानि, तलभागे तु पुष्करकर्णिकावद् भवन्ति। अम्बादयः परमाधार्मिका अपि असुरकुमारजातीयाः पञ्चदश सन्ति-१अम्बा२म्बरीष-

---

वहीं बहुत से असुरकुमार आवासों में और कभी-कभी भवनों में निवास करते हैं। नागकुमार सब प्रायः भवनों में ही रहते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के पिण्ड से ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोडकर एक लाख अठहत्तर हजार योजन परिमाण में मध्य भाग में सभी जगह असुरकुमार देवों के आवास हैं, किन्तु भवन रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे नव्वे हजार योजन परिमित भाग में ही हैं। वहाँ दक्षिणार्धाधिपति चमरेन्द्र आदि के और उत्तरार्द्धाधिपति बलीन्द्र आदि के भवन हैं। महामण्डप के समान आवास हैं। नगर के समान भवन हैं, किन्तु वे बाहर गोलाकार और भीतर समचतुष्कोण हैं। उनका तलभाग कमल की कर्णिका के समान होता है। अम्ब आदि पन्द्रह परमाधार्मिक भी असुरकुमार जाति के हैं। उनके नाम-(१) अम्ब, (२) अम्बरीष, (३) श्याम, (४) शबल,

---

ત્યાં ઘણા અસુર કુમારો, આવાસોમાં અને કોઈ કોઈ વખત ભવનોમાં નિવાસ કરે છે. નાગકુમાર સર્વ પ્રાયઃ ભવનોમાંજ નિવાસ કરે છે. રત્નપ્રભા પૃથ્વીના પિંડથી ઉપર અને નીચે એક-એક હજાર યોજન છોડીને, એક લાખ અઠ્યોતેર હજાર યોજન પરિમાણમાં મધ્યભાગમાં સર્વ જગ્યાએ અસુરકુમાર દેવોના આવાસ છે. પરન્તુ ભવન; રત્નપ્રભા પૃથ્વીની નીચે (૯૦૦૦૦) નેવું હજાર યોજન પરિમિત ભાગમાં જ છે. ત્યાં દક્ષિણાર્ધાધિપતિ ચમરેન્દ્ર આદિના અને ઉત્તરાર્ધાધિપતિ બલીન્દ્ર આદિના ભવન છે. મહામંડપની સમાન આવાસ છે. નગરના સમાન ભવન છે. પરંતુ તે ભવનો બહારથી ગોળાકાર અને અંદરથી સમચતુષ્કોણ છે. તેનો તળીઆનો ભાગ કમલની કર્ણિકાસમાન હોય છે. અમ્બ આદિ પંદર પરમાધાર્મિક પણ અસુરકુમાર જાતિના છે. તેઓના નામ જેમકે-(૧) અમ્બ, (૨) અમ્બરીષ, (૩) શ્યામ, (૪)

३श्याम४शबल५रुद्र६वैरुद्र७काल८महाकाल९ऽसिपत्र१०धनुः११कुम्भ१२वालुक१३ वैतरणी१४खरस्वर१५महाघोष–भेदात् ।

(२) व्यन्तरदेवाः—

रत्नप्रभाकाण्डस्य सहस्रयोजनपरिमाणयुक्तस्याधस्तादेकशतयोजनमूर्ध्वं च तथैकशतयोजनं विहायाष्टशतयोजनपरिमाणयुक्तरत्नप्रभाकाण्डे व्यन्तरदेवानामसंख्यातानि नगराणि सन्ति। तथैव भवनानि तेषामावासाश्च सन्ति। तत्र बालवत् स्वेच्छया शक्रादिदेवेन्द्राज्ञया वा चक्रवर्त्यादिपुरुषाज्ञया वा प्रायेणानियतगतिप्रचारा भवन्ति। मनुष्यानपि केचिद् भृत्यवदुपचरन्ति। विविधेषु च शैलकन्दरान्तरवनविवरादिषु प्रतिवसन्ति; अतो व्यन्तरा इत्युच्यन्ते ।

(५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुम्भ, (१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष ।

(२) व्यन्तर देव–

एक हजार योजन परिमाण वाले रत्नप्रभाकाण्ड के नीचे और एक सौ योजन ऊपर तथा एक सौ योजन छोडकर आठ सौ योजन परिमाण युक्त रत्नप्रभाकाण्ड में व्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं। उसी प्रकार भवन और उनके आवास हैं। बालकों के समान अपनी इच्छासे, शक्र आदि देवों की आज्ञा से, या चक्रवर्ती आदि की आज्ञासे प्रायः अनियतगति वाले होते हैं। ये देव किन्हीं–किन्हीं मनुष्यों की दास के समान सेवा करते हैं। ये विविध प्रकार के पर्वतों की गुफाओं में और वनविवर आदि में निवास करते हैं अतः इन्हें व्यन्तर कहते हैं।

શબલ, (૫) રુદ્ર, (૬) વૈરુદ્ર, (૭) કાલ, (૮) મહાકાલ, (૯) અસિપત્ર, (૧૦) ધનુષ, (૧૧) કુંભ, (૧૨) વાલુક, (૧૩) વૈતરણી, (૧૪) ખરસ્વર, (૧૫) મહાઘોષ.

(૨) વ્યન્તરદેવ—

એક હજાર યોજન પરિમાણવાળા રત્નપ્રભાકાંડની નીચે અને એકસો યોજન ઉપર તથા એકસો યોજન છોડીને આઠસો યોજન પરિમાણયુક્ત રત્નપ્રભાકાંડમાં વ્યતંર દેવોના અસંખ્યાત નગર છે. તે પ્રમાણે ભવન અને તેના આવાસો છે. બાળકોની જેમ પોતાની ઇચ્છાથી, ઇંદ્ર આદિ દેવોની આજ્ઞાથી. અથવા ચક્રવતી આદિની આજ્ઞાથી પ્રાયઃ અનિયત ગતિવાળા હોય છે. આ દેવ કોઇ કોઇ મનુષ્યની દાસની સમાન સેવા કરે છે. તે વિવિધ પ્રકારના પર્વતોની ગુફાઓમાં અને વન–ગુફાઓ આદિમાં નિવાસ કરે છે.

व्यन्तराः षोडशविधाः- १ पिशाच-२ भूत-३ यक्ष-४ राक्षस -५ किंनर ६किंपुरुष-७महोरग-८गन्धर्वा-९ प्रज्ञप्तिक- १०पञ्चप्रज्ञप्तिक-११ऋषिवादिक१२भूत-वादिक - १३ क्रन्दित - १४ महाक्रन्दित१५कूष्माण्ड-१६पतंग भेदात् । (स्था. स्था. २ उ ३)

जृम्भका अपि व्यन्तरदेवा दश सन्ति। यथा-(१) अन्नजृम्भकाः (२) पानजृम्भकाः, (३) वस्त्रजृम्भकाः, (४) लयनजृम्भकाः, (५) शयनजृम्भकाः, (६) पुष्पजृम्भकाः, (७) फलजृम्भकाः, (८) पुष्पफलजृम्भकाः, (९) विद्याजम्भकाः, (१०) अव्यक्तजृम्भकाः।

(६) ज्योतिष्कदेवाः-

ज्योतींषि-प्रभापुञ्जस्वरूपाणि समुज्ज्वलानि विमानानि, तत्र भवाः

व्यन्तर देव सोलह हैं-(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व, (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक, (११) ऋषिवादिक, (१२) भूतवादिक, (१३) क्रन्दित, (१४) महाक्रन्दित, (१५) कूष्माण्ड, और (१६) पतङ्ग (स्था. स्था. २ उ. ३)

जृम्भक व्यन्तर देव भी दश प्रकार के हैं। जैसे—

(१) अन्नजृंभक, (२) पानजृंभक, (३) वस्त्रजृंभक, (४) लयनजृंभक, (५) शयनजृंभक, (६) पुष्पजृंभक, (७) फलजृंभक, (८) पुष्पफलजृंभक, (९) विद्याजृंभक और (१०) अव्यक्त-जृंभक ।

(३) ज्योतिष्क देव

प्रभा के पुञ्ज के समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानों में उत्पन्न होने वाले

વ્યન્તર દેવ સોળ છે (૧) પિશાચ, (૨) ભૂત (૩) યક્ષ, (૪) રાક્ષસ (૫) કિન્નર, (૬) કિંપુરૂષ, (૭) મહોરગ, (૮) ગંધર્વ, (૯) અપ્રજ્ઞપ્તિજ્ઞ, (૧૦) પંચપ્રજ્ઞપ્તિક, (૧૧) ઋષિવાદિક, (૧૨) ભૂતવાદિક, (૧૩) ક્રન્દિત, (૧૪) મહાક્રન્દિત, (૧૫) કૂષ્માંડ અને (૧૬) પતંગ, (स्था.. स्था. २ उ. ३)

જૃંભક વ્યન્તર દેવ પણ દસ પ્રકારના છે, જેમ-(૧) અન્નજૃંભક, (૨) પાન જૃંભક, (૩) વસ્ત્રજૃંભક, (૪) લયનજૃંભક, (૫) શયનજૃભંક, (૬) પુષ્પ જૃભંક, (૭) ફ્લજૃંભક (૮) પુષ્પફલજૃંભક, (૯) વિદ્યાજૃંભક, અને (૧૦) અવ્યક્તજૃંભક.

(૩) જયોતિષ્કદેવો—

પ્રભાના પુંજ સમાન અત્યંત ઉજ્જવલ વિમાનોમાં ઉત્પન્ન થવા વાળા દેવ

ज्योतिष्काः। ज्योतिष्कदेवास्तिर्यग्लोके ज्योतिःप्रकाशं कुर्वन्ति। ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधाः-(१) चन्द्र-(२) सूर्य-(३) ग्रह-(४) नक्षत्र-(५) तारा-भेदात्। इमे पञ्च समयक्षेत्रान्तर्वर्तिनश्चरस्वभावाः सन्ति। अपरे पञ्च चन्द्रादयः समयक्षेत्राद् बहिः स्थिरा एव तिष्ठन्ति।

(४) वैमानिकदेवाः—

ऊर्ध्वलोके विमानेषु वसन्तीति वैमानिकाः। यद्वा-विशेषेण मानयन्ति=विशंति यत्र विशिष्टसुकृतिन इति विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः। यद्वा-वि=विशिष्टं मानं=ज्ञानं यत्र, समदर्शितया, अन्यदेवापेक्षया च हेयोपादेयज्ञान-विशिष्टा भवन्ति यत्र तानि विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः।

देव ज्योतिष्क कहलाते हैं। ज्योतिष्क देव मध्यम लोक में प्रकाश करते हैं। ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं——

१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, और ५ तारागण। ये पांचों समयक्षेत्र (अढाई द्वीप) में चलते हैं और समयक्षेत्र से बाहर स्थिर स्वभाव वाले हैं।

(४) वैमानिक देव-

ऊर्ध्व लोक में विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं। अथवा जहां विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं उन्हे विमान कहते हैं, और विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं। अथवा समदर्शी होने के कारण जहां विशिष्ट ज्ञान हो, या अन्य देवों की अपेक्षा जहां हेय उपादेय का विशिष्ट ज्ञान हो, वे विमान हैं और उन में होने वाले वैमानिक हैं।

જ્યોતિષ્ક કહેવાય છે. જ્યોતિષ્ક દેવ મધ્ય લોકમાં પ્રકાશ કરે છે. જ્યોતિષ્ક દેવ પાંચ પ્રકારના છે. (૧) ચન્દ્ર, (૨) સૂર્ય, (૩) ગ્રહ, (૪) નક્ષત્ર અને (૫) તારાગણ. આ પાંચ સમયક્ષેત્ર (અઢીદ્વીપ)માં ચાલે છે અને સમયક્ષેત્રની બહાર સ્થિર સ્વભાવવાળા છે.

(૪) વૈમાનિક દેવ-

ઉર્ધ્વલોકમાં વિમાનોમાં વાસ કરવા વાળા વૈમાનિક કહેવાય છે, અથવા જ્યાં વિશિષ્ટ પુણ્યાત્મા પ્રવેશ કરે છે તેને વિમાન કહે છે. અને વિમાનોમાં વાસ કરવા વાળા વૈમાનિક કહેવાય છે, અથવા-સમદર્શી હોવાના કારણે જ્યાં વિશિષ્ટ જ્ઞાન હોય, અથવા અન્ય દેવોની અપેક્ષાએ, જ્યાં હેય-ઉપાદેયનું વિશિષ્ટ જ્ઞાન હોય તે વિમાન છે, અને તેમાં થવા વાળા વૈમાનિક છે.

वैमानिकदेवानां द्वौ भेदौ–कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च। कल्पः=आचारः स चेहेन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशादिव्यवहाररूपस्तमुपगताः कल्पोपपन्नाः= सौधर्मादि-देवलोकनिवासिनो वैमानिका देवाः। यद्वा–कल्पेषु सौधर्मादिषु उपपन्नाः सौधर्मादि-देवलोकोत्पन्ना वैमानिकदेवाः कल्पोपपन्नाः। यद्वा–कल्पेन=नियमेन इन्द्रसामा-निकादिस्वामिसेवकादिभावरूपमर्यादयोपपन्नाः=युक्ताः=कल्पोपपन्नाः।

१इन्द्र– २सामानिक – ३त्रायस्त्रिंश – ४ लोकपाल– ५ पारिषद्या–६ नीका–७त्मरक्षका–८ऽऽभियोगिक–९प्रकीर्णाः, किल्विषिकाश्च१० स्वस्वमर्यादापालकतया कल्पोपपन्ना इत्युच्यन्ते। तत्रेन्द्राः – सामानिकादिदेवानामधिपतयः। इन्द्रसमानाः–सामानिकाः। मन्त्रिपुरोहितस्थानीयास्त्रायस्त्रिंशाः। सीमारक्षका

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं–कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्प का अर्थ है–आचार। यहां इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि का व्यवहार कल्प माना गया है, और यह कल्प जिन में पाया जाय वे कल्पोपपन्न कहलाते हैं। सौधर्म आदि देवलोकों मे निवास करने वाले वैमानिक देव कल्पोपपन्न हैं। अथवा कल्प से अर्थात् नियम से अर्थात् इन्द्र, सामानिक आदि, या स्वामी–सेवक आदिभावरूप मर्यादा से युक्त देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं।

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, पारिषद्य, आनीक. आत्मरक्षक, आभियोग्य, प्रकीर्णक और किल्विषिक, ये दश अपनी–अपनी मर्यादा का पालन करते हुए कल्पोपपन्न कहलाते है।

सामानिक आदि देवों के अधिपति इन्द्र कहलाते हैं। इन्द्र के समान

વૈમાનિક દેવ બે પ્રકારના છે–(૧) કલ્પોપપન્ન અને (૨) કલ્પાતીત. કલ્પનો અર્થ છે–આચાર. અહિં ઈન્દ્ર, સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ આદિનો વ્યવહાર કલ્પ માન્યો છે, અને આ કલ્પ જેનામાં જોવામાં આવે છે તે કલ્પોપપન્ન કહેવાય છે. સૌધર્મ આદિ દેવલોકોમાં નિવાસ કરવાવાળા વૈમાનિક દેવ કલ્પોપપન્ન છે. અથવા કલ્પથી અર્થાત્, નિયમથી અર્થાત્ ઈન્દ્ર સામાનિક આદિ, અથવા સ્વામી–સેવક આદિ ભાવરૂપ મર્યાદાથી યુક્ત દેવ કલ્પોપપન્ન કહેવાય છે.

ઈન્દ્ર, સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ, લોકપાલ, પારિષદ્ય, આનીક, આત્મરક્ષક, આભિયોગ્ય, પ્રકીર્ણક અને કિલ્વિષિક, પોત–પોતાની મર્યાદાનું પાલન કરતા થકા કલ્પોપપન્ન કહેવાય છે.

સામાનિક આદિ દેવોના અધિપતિ ઈન્દ્ર કહેવાય છે. ઈન્દ્રના સમાન સામાનિક

लोकपालाः। मित्रस्थानीयाः पारिषद्याः। सैनिकाः सेनाधिपतिरूपाश्च–आनीकाः। इन्द्रशरीररक्षाकारका आत्मरक्षकाः। दासस्थानीयाः सेवका आभियोग्याः। नागरिक–पौरजनसमानाः प्रकीर्णकाः। अन्त्यजसमानाः किल्विषिकाः। सौधर्मादि-द्वादशकल्पेषु दशविधा इन्द्रसामानिकादयो देवाः भवन्ति। व्यन्तरज्योतिष्कदेवेषु त्रायस्त्रिंशा लोकपालाश्च न भवन्ति।

कल्पोपपन्नदेवानां निवासस्थानानि द्वादश सन्ति–१सौधर्म–२शान–३सनत्कुमार–४माहेन्द्र–५ब्रह्मलोक–६लान्तक-७महाशुक्र-८सहस्रारा–९ऽऽनत-१०प्राणता-११ऽऽरणा–१२ऽच्युताः। इमे द्वादश देवलोकाः कल्पविमानानि। तत्र सौधर्मस्य

सामानिक होते हैं। मन्त्री और पुरोहित जैसे त्रायस्त्रिंश देव हैं। सीमा की रक्षा करने वाले लोकपाल हैं। मित्र के समान पारिषद्य हैं। सैनिक और सेनाधिपतिरूप आनीक हैं। इन्द्र के शरीर की रक्षा करने वाले आत्मरक्षक कहलाते हैं। नागरिक–पौरजनके समान प्रकीर्णक देव हैं। दास के समान देव आभियोगिक कहलाते हैं, और अन्त्यजों के समान किल्विषिक हैं। ये इन्द्र सामानिक आदि दशप्रकारके देव सौधर्म आदि सभी कल्पों में होते हैं। व्यंतरों और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते।

कल्पोपपन्न देवों के निवसस्थान बारह हैं—

१ सौधर्म, २ ऐशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत। ये बारह देवलोक कल्पविमान हैं। सौधर्म कल्प की बराबरी पर ऐशान कल्प है। ऐशान

હોય છે. મંત્રી અને પુરોહિત જેવા ત્રાયસ્ત્રિંશ દેવ છે. સીમાની રક્ષા કરનારા તે લોકપાલ છે મિત્રની સમાન પારિષદ્ય છે, સૈનિક અને સેનાધિપતિરૂપ આનીક છે. ઈન્દ્રના શરીરની રક્ષા કરવાવાળા આત્મરક્ષક કહેવાય છે. નાગરિક–પૌરજનની સમાન પ્રકીર્ણક દેવ છે. દાસના સમાન સેવક દેવ આભિયોગિક કહેવાય છે, અન્ત્યજોની સમાન કિલ્વિષિક છે. આ ઈન્દ્ર, સામાનિક આદિ દેવ સૌધર્મ આદિ સર્વ કલ્પોમાં હોય છે. વ્યંતરો અને જ્યોતિષ્ક દેવોમાં ત્રાયસ્ત્રિંશ અને લોકપાલ હોતા નથી.

કલ્પોપપન્ન દેવોના નિવાસસ્થાન બાર છે. (૧) સૌધર્મ, (૨) ઐશાન (૩) સનત્કુમાર (૪) માહેન્દ્ર (૫) બ્રહ્મલોક (૬) લાન્તક, (૭) મહાશુક્ર, (૮) સહસ્રાર, (૯) આનત, (૧૦) પ્રાણત, (૧૧) આરણ, (૧૨) અચ્યુત.

આ બાર દેવલોક કલ્પ વિમાન છે. સૌધર્મ કલ્પની બરાબરી પર ઐશન કલ્પ છે.

कल्पस्य समानदेशे ऐशानः कल्पः। ऐशानस्योपरि सनत्कुमारः कल्पः। सनत्कुमार-स्योपरि माहेन्द्रः कल्पः। एवमुपर्युपरि सर्वे कल्पाः सन्ति।

तत्रज्योतिष्कलोकादूर्ध्वम संख्यातयोजनकोटिकोटिषुमार्गमारुह्य रूपलक्षितद-क्षिणभागे गगनप्रदेशे सौधर्मकल्पस्तथैशानकल्पश्चाऽस्ति। सौधर्मकल्पः पूर्व पश्चिमदीर्घः, उत्तरदक्षिणविस्तीर्णोऽर्धचन्द्राकारः सूर्यवद्भास्वरः, आयामविष्कम्भाभ्यां-परिक्षेपतश्चाऽसंख्येययोजनकोटिकोटयः, सर्वरत्नमयः लोकान्तविस्तारोऽस्ति। तत्र मध्यभागे सर्वरत्नमयाशोक–सप्तपर्ण–चम्पका–ऽऽम्र–सौधर्मावतंसकसुशोभितः शक्रावासः। तत्र सुधर्मा नाम शक्रस्य देवेन्द्रस्य सभा तस्मिन् कल्पेऽस्तीति सौधर्मः कल्पः।

के ऊपर सनत्कुमार कल्प है। सनत्कुमार के ऊपर माहेन्द्र कल्प है। इसीप्रकार ऊपर–ऊपर सभी कल्प समझने चाहिए।

ज्योतिष्क मण्डल से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर जाकर मेरु से उपलक्षित दक्षिण भाग में आकाश–प्रदेश में सौधर्मकल्प और ऐशान कल्प हैं। सौधर्मकल्प पूर्व पश्चिम में लम्बा, उत्तर–दक्षिण में विस्तीर्ण और अर्धचन्द्र के आकार का है। सूर्य के समान चमक-दार, लम्बाई, चौडाई और परिधि से असंख्यात कोडाकोडी योजन, सर्वरत्नमय और लोक के अन्ततक विस्तृत है। उसके मध्य भाग में सर्वरत्नमय अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक, आम्र, एवं सौधर्मावतंसक से शोभित शक्र का आवास है। शक्र देवेन्द्र की सुधर्मानामक सभा जिस कल्प में हो, वह सौधर्मकल्प कहलाता है।

ઐશાનના ઉપર સનત્કુમાર કલ્પ છે, સનત્કુમારના ઉપર માહેન્દ્ર કલ્પ છે. એ પ્રમાણે ઉપર ઉપર તમામ કલ્પ સમજવા જોઈએ.

જ્યોતિષ્કમંડળની ઉપર, અસંખ્યાત કોડા-કોડી યોજન ઉપર જઈને મેરુથી ઉપલક્ષિત દક્ષિણ ભાગમાં આકાશ–પ્રદેશમાં સૌધર્મ કલ્પ અને ઐશાન કલ્પ છે. સૌધર્મકલ્પ પૂર્વ પશ્ચિમમાં લાંબો, ઉત્તર–દક્ષિણમાં વિસ્તીર્ણ અને અર્ધચન્દ્રકારે છે. સૂર્યના સમાન ચમકદાર લંબાઈ, ચોડાઈ અને પરિધિથી અસંખ્યાત કોડાકોડી યોજન, સર્વરત્નમય છે, અને લોકના અંત સુધી વિસ્તૃત છે. તેના મધ્ય ભાગમાં સર્વ રત્નમય અશોક, સપ્તપર્ણ, ચમ્પક, આમ્ર, એવં સૌધર્માવતંસથી શોભિત ઇંદ્રનો આવાસ છે. શક્ર દેવેન્દ્રની સુધર્મા નામની સભા જે કલ્પમાં હોય, તે સૌધર્મ કલ્પ કહેવાય છે.

तथैशानकल्पोऽप्यर्धचन्द्राकारोऽस्ति। उभौ मिलितौ पूर्णचन्द्रकारेणावस्थितौ स्तः ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटिषूपरि समानप्रदेशे सनत्कुमार-माहेन्द्रौ कल्पौ वर्तेते। अर्धचन्द्राकार इव सनत्कुमारस्तथैव माहेन्द्रोऽपि। उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्रसदृशाकारेण स्तः। ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटयुपरि ब्रह्मलोकः पूर्णचन्द्राकारोऽस्ति। एवमेव लान्तक–महाशुक्र–सहस्रारास्तावत्ताव-द्योजनोर्ध्वमुपर्युपरि प्रत्येकं पूर्णचन्द्राकाराः सन्ति ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि-कोटयुपरि समानगगनप्रदेशे आनत–प्राणतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः। उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारेण भवतः। ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि कोटयुपरि–आरणाच्युतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः। उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारं भजतः।

ऐशानकल्प भी अर्धचन्द्राकार है। दोनों कल्प मिलकर पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं। इन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर समान देश में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प हैं। सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार है और माहेन्द्र कल्प भी इसी प्रकार का है। दोनों मिलकर पूर्णचन्द्रमा के सदृश आकार वाले हैं। इन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर ब्रह्मलोक पूर्णचन्द्राकार है। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र, और सहस्रार उतने-उतने योजन ऊपर–ऊपर प्रत्येक पूर्णचन्द्रमा के समान अवस्थित हैं। उन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आकाश प्रदेश में आनत और प्राणत बराबरी पर प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है। ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्रके आकार के हो जाते हैं। उन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आरण और अच्युत लोक प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है। ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्र के आकार के जैसे हो जाते हैं।

ઐશાન કલ્પ પણ અર્ધચન્દ્રાકાર છે. બન્ને કલ્પો મળીને પૂર્ણ ચન્દ્રમાની સમાન છે. તેનાથી અસંખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર સમાન દેશમાં સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર કલ્પ છે. સનત્કુમાર કલ્પ અર્ધચન્દ્રાકાર છે અને માહેન્દ્ર કલ્પ પણ એ પ્રકારનો છે. બન્ને મળીને પૂર્ણચન્દ્રમાની બરાબર આકારવાળા છે. તેનાથી અસંખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર બ્રહ્મલોક પૂર્ણચન્દ્રાકાર છે. એ પ્રમાણે લાન્તક, મહાશુક્ર અને સહસ્રાર તેટલા–તેટલા યોજન ઉપર–ઉપર પ્રત્યેક, પૂર્ણચન્દ્રમાસમાન અવસ્થિત છે. તેથી અસંખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર આકાશપ્રદેશમાં આનત અને પ્રાણત બરાબરી પર પ્રત્યેક અર્ધચન્દ્રાકાર છે. એ બન્ને કલ્પો મળીને પૂર્ણ ચન્દ્રમાના આકારના થઈ જાય છે. તેથી અસંખ્યાત કોડા–કોડી યોજન ઉપર આરણ અને અચ્યુત લોક પ્રત્યેક અર્ધ-ચન્દ્રાકાર છે. એ બન્ને મળીને પણ પૂર્ણચન્દ્રાકાર જેવાં થઈ જાય છે.

द्वादशकल्पनिवासिनामिन्द्राणां नामानि यथा–सौधर्मकल्पस्य शक्रः १, ऐशानस्येशानः २, सनत्कुमारस्य सनत्कुमारः ३, माहेन्द्रस्य महेन्द्रः ४, ब्रह्म-लोकस्य ब्रह्मेन्द्रः ५, लान्तकस्य–लन्तकः ६, महाशुक्रस्य महाशुक्रः ७, सहस्रारस्य सहस्रारः ८, आनत–प्राणतयोः कल्पयोः एक-एव प्राणतनामा सुरपतिः ९, आरणाच्युतयोरपि तथैवैकोऽच्युतनामा देवराजोऽस्ति १० ।

एषु नव लोकांतिकाः-सारस्वता१-ऽऽदित्य२–वह्नि३–वरुण४-गर्दतोय५–तुषिता६–ऽव्याबाधा७–ऽऽग्नेय८–रिष्ट९–नामानः सन्ति। ब्रह्मलोके लोकान्तिका निवसन्ति। ईशानकोणे सारस्वताः१, पूर्वस्यामादित्याः२, आग्नेयकोणे वह्नयः३, दक्षिणस्यां वरुणाः४, नैऋत्ये गर्दतोयाः५, पश्चिमायां तुषिताः६, वायव्यकोणे-अव्याबाधाः७, उत्तरस्याम् अग्गिच्चा (आग्नेयाः)८, मध्ये रिष्टाः ९ निवसन्ति ।

बारह कल्पवासी इन्द्रों के नाम इस प्रकार हैं–सौधर्म कल्प का शक्र १, ऐशान का ईशान २, सनत्कुमार का सनत्कुमार ३, माहेन्द्र का महेन्द्र ४, ब्रह्मलोकका ब्रह्मेन्द्र ५, लान्तक का लन्तक ६, महाशुक्र का महाशुक्र ७, सहस्रार का सहस्रार ८ और आनत–प्राणत कल्पों का एक प्राणतनामक इन्द्र है ९ । आरण और अच्युत कल्पों का अच्युत नामक एक ही इन्द्र है १० ।

इन में नौ लोकान्तिक देव हैं–(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुषित, (७) अव्याबाध, (८) आग्नेय और, (९) रिष्ट । ये लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक में निवास करते हैं । ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य, आग्नेय कोण में वह्नि, दक्षिण में वरुण, नैऋत्य में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, वायव्य में अव्याबाध, उत्तर में अग्गिच्चा (आग्नेय) और मध्य में रिष्ट निवास करते हैं।

બાર કલ્પવાસી ઈન્દ્રોનાં નામો આ પ્રમાણે છે–સૌધર્મકલ્પના શક્ર; (૧) ઐશાનના ઈશાન (૨) સનત્કુમારના સનત્કુમાર (૩) માહેન્દ્રના મહેન્દ્ર, (૪) બ્રહ્મલોકના બ્રહ્મેન્દ્ર, (૫) લાન્તકના લન્તક, (૬) મહાશુક્રના મહાશુક્ર,(૭) સહસ્રારના સહસ્રાર અને આનત–પ્રાણત કલ્પોના એક પ્રાણત નામના ઈન્દ્ર છે, આરણ અને અચ્યુત કલ્પોના અચ્યુત નામના એક ઈન્દ્ર છે. (૧૦) તેમાં નવ લોકાન્તિક દેવ છે—(૧) સારસ્વત, (૨) આદિત્ય, (૩) વહ્નિ, (૪) વરુણ, (૫) ગર્દતોય, (૬) તુષિત, (૭) અવ્યાબાધ, (૮) આગ્નેય, અને (૯) રિષ્ટ. આ લોકાન્તિક દેવ બ્રહ્મલોકમાં નિવાસ કરે છે. ઈશાનકોણમાં સારસ્વત, પૂર્વમાં આદિત્ય, આગ્નેયકોણમાં વહ્નિ, દક્ષિણમાં વરુણ, નૈઋત્યમાં ગર્દતોય પશ્ચિમમાં તુષિત,વાયવ્યમાં અવ્યાબાધ,ઉત્તરમાં અગ્ગિચ્ચા(આગ્નેય)અને મધ્યમાં રિષ્ટ નિવાસ કરે છે.

कल्पातीताः—

कल्पमतीताः—अतिक्रान्ताः कल्पातीताः। सौधर्मादिद्वादशकल्पबहिर्भूताः स्वामिसेवकाद्याचारवर्जिताः, स्वातन्त्र्यादहमिन्द्रनाम्ना प्रसिद्धाः, भद्रादिनवग्रैवेयक-विमान-विजयादिपञ्चानुत्तरविमानाधिवासिनो देवाः कल्पातीताः।

सौधर्मादिद्वादशकल्पतश्चोर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोटिषूपरि नवग्रैवेय-कानि विमानान्युपर्युपरि सन्ति। पुरुषाकारलोकस्य ग्रीवास्थानीयतया विमानानि ग्रैवेयकान्युच्यन्ते। तद्वासिनो देवा अपि ग्रैवेयका उच्यन्ते। सर्वोपरितनग्रैवेयक-विमानादूर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोट्युपरि पञ्चानुत्तरविमानानि सन्ति। तत्रैकं मध्यभागे, चतुर्दिक्षु चत्वारि। अनुत्तरविमानवासिनो देवा अनुत्तरा उच्यन्ते।

कल्पातीत—

जो देव कल्प से परे हैं वे कल्पातीत कहलाते हैं, अर्थात् सौधर्म आदि कल्पों से बाहर, स्वामी, सेवक आदि मर्यादा से रहित—स्वतंत्र होने के कारण अहमिन्द्र नाम से प्रसिद्ध भद्र आदि नौ ग्रैवेयकों में तथा विजय आदि पांच अनुत्तर विमानों में निवास करने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं।

सौधर्म आदि बारह कल्पों से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन जाकर नौ ग्रैवेयक विमान एक दूसरे के उपर अवस्थित हैं। पुरुषाकार लोक की ग्रीवा के स्थान पर जो विमान हैं, वे ग्रैवेयक विमान कहलाते हैं। सब से ऊपर के ग्रैवेयक विमान से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन जाकर पांच अनुत्तर विमान हैं। उन में से एक मध्य भाग में है और चार चारों दिशाओं में हैं। अनुत्तरविमानवासी देव अनुत्तर कहलाते हैं।

કલ્પાતીત—

જે દેવો કલ્પથી બહાર છે તે કલ્પાતીત કહેવાય છે. અર્થાત્ સૌધર્મ આદિ કલ્પોથી બહાર સ્વામી—સેવક આદિ મર્યાદાથી રહિત, સ્વતંત્ર હોવાના કારણે અહમિન્દ્ર નામથી પ્રસિદ્ધ છે. ભદ્ર આદિ નવગ્રૈવેયકમાં, તથા વિજય આદિ પાંચ અનુત્તર વિમાનોમાં નિવાસ કરવા વાળા દેવ તે કલ્પાતીત કહેવાય છે.

સૌધર્મ આદિ બાર કલ્પોથી ઉપર અસંખ્યાત કોડા—કોડી યોજન જઈને નવ ગ્રૈવેયક વિમાન એક બીજાની ઉપર અવસ્થિત છે. પુરૂષાકાર લોકની ગ્રીવા (ડોક) ના સ્થાન પર જે વિમાન છે. તે ગ્રૈવેયક વિમાન કહેવાય છે.

સૌથી ઉપરના ગ્રૈવેયક વિમાન ઉપર અસંખ્યાત કોડા—કોડી યોજન જઈને પાંચ અનુત્તર વિમાન છે. તેમાંથી એક મધ્ય ભાગમાં છે, ચાર ચારેય દિશાઓમાં છે. અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અનુત્તર કહેવાય છે.

नवग्रैवेयकनामानि यथा - १ भद्र - २ सुभद्र - ३ सुजात - ४ सुमानस - ५ सुदर्शन-६ प्रियदर्शना-७ऽमोघ-८सुप्रतिभद्र-९यशोधराणि ।

पञ्चानुत्तरविमानानि यथा-१विजय-२वैजयन्त-३जयन्ता-४ऽपराजित-५ सर्वार्थसिद्धाख्यानि । अविद्यमानमुत्तर-मुत्कृष्टं विमानादि येभ्यस्तान्यनुत्तराणि । तानि च विमानानि-अनुत्तरविमानानि ।

तीर्थङ्करादीनां समवसरणादौ कल्पोपपन्नदेवा गमनागमनं कुर्वन्ति । कल्पातीतदेवास्तु स्वस्थानादन्यत्र न गच्छन्ति ।

ष जीवनिकायभेद-संकलनम्

षड्जीवनिकायानां त्रिषष्ट्युत्तरपञ्चशतानि (५६३) भेदाः । तथाहि-पृथिव्यप्तेजोवायुकायानां प्रत्येकं बादर-सूक्ष्म-भेदाद् द्वैविध्येऽष्टधा । तेषां

नौ ग्रैवेयकों के नाम-(१) भद्र, (२) सुभद्र, (३) सुजात, (४) सुमानस, (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिभद्र, और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुत्तर विमान-(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध । जिन से ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट और कोई विमान नहीं वे अनुत्तर विमान कहलाते हैं । तीर्थंकर आदि के समवसरण आदि में कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीत देव अपने स्थान से अन्य जगह नहीं जाते ।

षड्जीवनिकाय के भेदों का संकलन-

षड्जीवनिकायों के कुल पांचसो त्रेसठ (५६३) भेद हैं । वे इस प्रकार हैं-पृथिवी, अप्, तेज, और वायुकाय के बादर और सूक्ष्म के भेद से आठ भेद हुए ।

નવગ્રૈવેયકના નામ— (૧) ભદ્ર, (૨) સુભદ્ર, (૩) સુજાત, (૪) સુમાનસ, (૫) સુદર્શન, (૬) પ્રિયદર્શન, (૭) અમોઘ, (૮) સુપ્રતિભદ્ર અને (૯) યશોધર છે.

પાંચ અનુત્તર વિમાન-(૧) વિજય, (૨) વૈજયન્ત, (૩) જયન્ત, (૪) અપરાજિત અને (૫) સર્વાર્થસિદ્ધ. જેનાથી ઉત્તર અર્થાત્ ઉત્કૃષ્ટ કોઈ વિમાન ન હોય તે અનુત્તર વિમાન કહેવાય છે. તીર્થંકર આદિના સમવસરણ આદિમાં કલ્પોપપન્ન દેવ ગમનાગમન કરે છે. કલ્પાતીત દેવ પોતાના સ્થાનથી અન્ય જગ્યાએ જતા નથી.

ષડ્જીવનિકાયના ભેદોનો યોગ

ષડ્જીવનિકાયોના કુલ પાંચસો ત્રેસઠ (૫૬૩) ભેદ છે. તે આ પ્રકારે છે—પૃથ્વી, અપ્, તેજ અને વાયુકાય, તેના બાદર અને સૂક્ષ્મના ભેદથી આઠ ભેદ થયા.

पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्वैविध्ये षोडश (१६) भेदाः। वनस्पतिकायस्य सूक्ष्म-साधारणप्रत्येकभेदात् त्रैविध्यम्, त्रिविधस्य वनस्पतिकायस्य पर्याप्तापर्याप्त-भेदेन प्रत्येकं द्वैविध्ये तस्य षड् भेदाः, इत्थं (२२) द्वाविंशतिर्भेदाः स्थावर-पञ्चकस्यैकेन्द्रियजीवस्य भवन्ति ।

द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन प्रत्येकं द्वैविध्ये षड् भेदाः। सर्वसंकलनयाऽष्टाविंशिति (२८) र्भेदाः।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः–जलचर-स्थलचर-खेचरो–रःपरिसर्पभुजपरिसर्प–भेदात्–पञ्चविधाः। तेषां पञ्चानां संज्ञ्यसंज्ञिभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः। तेषां पर्याप्ता-पर्याप्तभेदेन विंशति(२०)र्भेदाः। पूर्वोक्ताष्टाविंशतिसंकलनतोऽष्टचत्वारिंशद् (४८) भेदास्तिरश्चाम्।

इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह भेद होते हैं। वनस्पतिकाय–सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक के भेद से-तीन प्रकार का है। इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से छह भेद हुए। इस प्रकार पांच एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के बाईस (२२)भेद हैं।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त भेद से छह भेद। सबको जोड देने पर अट्ठाईस (२८) भेद हुए।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय–जलचर, स्थलचर, खेचर, उरःपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से पांच प्रकार के हैं। पांचों के संज्ञी, असंज्ञी के भेद से दश हुए, इन के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से वीस (२०) भेद हुए। इन वीस में पूर्वोक्त अट्ठाईस और मिलाने से तिर्यञ्चों के अडतालीस (४८) भेद होते हैं।

તે આઠના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી સોળ ભેદ થાય છે. વનસ્પતિકાય સૂક્ષ્મ, સાધારણ અને પ્રત્યેકના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના છે. એ ત્રણેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી છ ભેદ થયા. આ પ્રમાણે પાંચ એકેન્દ્રિય સ્થાવર જીવોના બાવીસ ભેદ છે.

બેઇન્દ્રિય, ત્રણ–ઇન્દ્રિય અને ચૌઇન્દ્રિયના પર્યાપ્ત અપર્યાપ્તના ભેદથી છ ભેદ થયા તે સર્વને એક કરવાથી અઠાવીસ (૨૮) ભેદ થયા.

તિર્યંચ પંચેન્દ્રિય–જલચર, સ્થલચર, ખેચર, ઉરઃપરિસર્પ અને ભુજપરિસર્પના ભેદથી પાંચ પ્રકારના છે. તે પાંચના સંજ્ઞી અને અસંજ્ઞીના ભેદથી દસ થયા, તેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી વીશ (૨૦) ભેદ થયા, તે વીસમાં પૂર્વોક્ત અઠાવીસ મેળવવાથી તિર્યંચોના અડતાલીસ (૪૮) ભેદ થાય છે.

रत्नप्रभादयः सप्त नरकभूमयः। तत्र भवा नारकाः सप्तविधाः, तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये चतुर्दश भेदाः

मनुष्याणां त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) भेदाः पूर्वमेव तत्प्रकरणे सुस्पष्टं कथिताः।

देवानामष्टनवत्युत्तरशत (१९८) भेदाः। तत्र भवनपतीनां दश भेदाः असुरकुमारादयः। परमाधार्मिकाः पञ्चदश। एवं (२५)पञ्चविंशतिर्भेदाः। व्यन्तराणां षड्विंशतिर्भेदाः। तत्र पिशाचादयः षोडश,अन्नजृम्भकादयो दश (२६)। ज्योतिष्काणां दश भेदाः। तत्र चन्द्रादयः पञ्च। तेषां पञ्चानां चर-स्थिरभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः (१०) सन्ति। वैमानिकानामष्टत्रिंशद् भेदाः। तत्र सुधर्मादयो द्वादश, सारस्वतादयो नव, किल्विषिकास्त्रयः, ग्रैवेयकाः-भद्रादयो

रत्नप्रभा आदि सात नरकभूमियों में सात प्रकार के नारकी हैं। उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से चौदह भेद होते हैं।

मनुष्यों के तीनसौ तीन (३०३) भेद पहले स्पष्ट कहे जा चुके हैं।

देवों के एकसौ अट्ठानवे (१९८) भेद हैं। वे इस प्रकार-भवनपतियों के असुर-कुमार आदि दस, परमाधार्मिक पन्द्रह, सब पच्चीस (२५) भेद हुए। व्यन्तरों के छव्वीस भेद हैं-सोलह पिशाच आदि और दस अन्नजृंभक आदि (२६)। चन्द्रमा आदि पांच के चर और अचर भेद होने से ज्योतिष्क देवों के दश (१०) भेद हैं। वैमानिकों के अडतीस भेद हैं-सुधर्म आदि बारह, सारस्वत आदि नौ, किल्विषिक आदि तीन, भद्र आदि ग्रैवेयक नौ, विजय आदि पांच अनुत्तर विमान (३८)। इन सब का योग करने से

રત્નપ્રભા આદિ સાત નરકભૂમિઓમાં સાત પ્રકારના નારકી છે. તેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી ચૌદ ભેદ થાય છે.

મનુષ્યોના ત્રણસોત્રણ (૩૦૩) ભેદ પ્રથમ સ્પષ્ટ કહી ચૂકયા છીએ. દેવોના એકસો અઠાણું (૧૯૮) ભેદ છે. ભવનપતિયોના અસુરકુમાર આદિ દસ, પરમાધામી પંદર, સર્વ પચ્ચીસ ભેદ થયા. વ્યન્તરોના છવીસ ભેદ છે-સોળ પિશાચ આદિ, અને દસ અન્નજૃંભક-આદિ. ચંદ્રમા આદિ પાંચના ચર અને અચર ભેદ હોવાથી જ્યોતિષ્ક દેવોના દશ (૧૦) ભેદ છે. વમાનિક દેવોના આડત્રીસ(૩૮) ભેદ છે-સુધર્મ આદિ બાર, સારસ્વત આદિ નવ,કિલ્વિષિક આદિ ત્રણ, ભદ્ર આદિ ગ્રૈવેયક નવ, વિજય આદિ પાંચ અનુત્તર વિમાન, આ સર્વને એક

नव, विजयादयः पञ्चानुत्तरविमानाः (३८)। सर्वेषां संकलनेन (९९) नव-नवतिर्भेदाः। तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये सत्यष्टनवत्युत्तरशतं (१९८) भेदाः देवानां भवन्ति। इत्थं सकलभेदसंकलनया षड्जीवनिकायानां त्रिषष्टयुत्तर-पञ्चशतानि (५६३) भेदाः सन्ति।

जीवानां संख्या—

जीवा अनन्ताः सन्ति। तथाहि—

(१) संज्ञिनो मनुष्याः संख्याताः। (२) असंज्ञिनो मनुष्या असंख्याताः
(३) नारकिणोऽप्यसंख्याताः। (४) देवाः संख्याताः।
(५) तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रिया असंख्याताः। (६) द्वीन्द्रिया असंख्याताः।
(७) त्रीन्द्रिया असंख्याताः। (८) चतुरिन्द्रिया असंख्याताः।

निन्यानवे (९९) भेद होते हैं, और इन के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से एकसौ अट्ठानवे (१९८) भेद देवों के हैं। इस प्रकार सब भेदों का जोड करने से पांचसौ त्रेसठ (५६३) षड्जीवनिकाय के भेद होते हैं।

जीवों की संख्या—

जीव अनन्त हैं। वे इस प्रकार—

(१) संज्ञी मनुष्य संख्यात। (२) असंज्ञी मनुष्य असंख्यात।
(२) नारकी असंख्यात। (४) देव असंख्यात।
(५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असंख्यात। (६) द्वीन्द्रिय असंख्यात।
(७) त्रीन्द्रिय असंख्यात। (८) चतुरिन्द्रिय असंख्यात।

કરવાથી નવાણું (૯૯) ભેદ થાય છે. અને તેના પર્યાપ્ત અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી એકસો અઠાણું (૧૯૮) ભેદ દેવોના છે. આ પ્રમાણે ઉપર કહેલા સર્વ ભેદોને એકઠા કરવાથી પાંચસો ત્રેસઠ (૫૬૩) ષટ્જીવનિકાયના ભેદ થાય છે.

જીવોની સંખ્યા—

જીવ અનન્ત છે, તે આ પ્રકારે છે::—

(૧) સંજ્ઞી મનુષ્ય સંખ્યાત છે. (૨) અસંજ્ઞી મનુષ્ય અસંખ્યાત છે.
(૩) નારકી અસંખ્યાત છે. (૪) દેવ અસંખ્યાત છે.
(૫) તિર્યંચ પંચેન્દ્રિય અસંખ્યાત છે. (૬) દ્વિન્દ્રિય અસંખ્યાત છે.
(૭) ત્રીન્દ્રિય અસંખ્યાત છે. (૮) ચતુરિન્દ્રિય અસંખ્યાત છે.

(९) पृथिवीकाया असंख्याताः। (१०) अप्काया असंख्याताः।
(११) तेजस्काया असंख्याताः। (१२) वायुकाया असंख्याताः।
(१३) प्रत्येक-वनस्पतिकाया असंख्याताः। (१४) तदपेक्षया सिद्धजीवा अनन्ताः।
(१५) तेभ्योऽपि कन्दमूलादिरूपा बादरनिगोदजीवा अनन्तगुणाः। (१६) सूक्ष्मनिगोदजीवाः सर्वतोऽनन्तगुणाः।

कर्मवादिप्रकरणम्-

यः पुनरेवं षड्जीवनिकायस्वरूपनिरूपणपरः स एव लोकवादी वस्तुतः कर्मवादीत्याह-'कर्मवादी' इति। कर्म=ज्ञानावरणीयादि, तद् वदितुं शीलमस्येति कर्मवादी-कर्मस्वरूपकथनशीलः। षड्जीवनिकायतत्त्वज्ञः खलु लोकवादी ज्ञाना-

---

(९) पृथ्वीकाय असंख्यात। (१०) अप्काय असंख्यात।
(११) तेजस्काय असंख्यात। (१२) वायुकाय असंख्यात।
(१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात। (१४) इस से सिद्ध जीव अनन्त।
(१५) बादरनिगोदजीव कन्दमूल आदि सिद्धों से भी अनन्तगुणा। (१६) सूक्ष्म निगोदजीव सब से अनन्त गुणा।

कर्मवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार षड्जीवनिकाय का स्वरूप निरूपण करने वाला है, वही लोकवादी वास्तव में कर्तवादी है। ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करना जिस का स्वभाव हो, वह कर्मवादी है। षड्जीवनिकाय का तत्त्व समझने वाला लोकवादी ज्ञानावरण

---

(૯) પૃથ્વીકાય અસંખ્યાત છે. (૧૦) અપ્કાય અસંખ્યાત છે.
(૧૧) તેજસ્કાય અસંખ્યાત છે. (૧૨) વાયુકાય અસંખ્યાત છે.
(૧૩) પ્રત્યેકવનસ્પતિકાય અસંખ્યાત છે. (૧૪) તેનાથી સિદ્ધજીવ અનન્ત છે.
(૧૫) બાદર નિગોદ જીવ કન્દમૂળ આદિ સિદ્ધોથી પણ અનન્ત છે. (૧૬) સૂક્ષ્મ નિગોદ જીવ સૌથી અનન્તગણા છે.

કર્મવાદીપ્રકરણ—

જે આ પ્રમાણે ષડ્જીવનિકાયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવાવાળા છે તે લોકવાદી વાસ્તવિક રીતે કર્મવાદી છે. જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનું કથન કરવું તે જેનો સ્વભાવ હોય, તે કર્મવાદી છે. ષડ્જીવનિકાયના તત્ત્વને સમજવાવાળા લોકવાદી જ્ઞાનાવરણ

वरणीयाद्यष्टविधकर्मैव नरकादिचतुर्गतिभ्रमणकारणतया विजानाति । ज्ञाना-वरणीयादिकर्मबन्धादेव हि जीवाश्चतुर्विधासु गतिषु परिभ्रमन्तः सम्यग्ज्ञानचारित्र-प्राप्तिमन्तरेण संसारदावाग्निपतितमात्मानं समुद्धर्तुं न प्रभवन्ति । एवं कर्मबन्धवेदी भव्यः कर्मवादी बोद्धव्य इत्यर्थः ।

(१) कर्मस्वरूपम्—

अत्र कर्मप्रसङ्गेन तत्स्वरूपं निरूप्यते—

जीवेन मिथ्यात्वादिहेतुभिः क्रियते यत्, तत् कर्म । यथा तप्तायो-गोलकः सलिले निक्षिप्तः सन् सर्वतः सलिलमाकर्षति तथाऽनादिमिथ्यात्वा-

---

आदि आठ कर्मों को ही नरक आदि चार गतियों में भ्रमण का कारण जानता है । ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्ध के कारण ही जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के विना संसाररूपी दावानल में पडे हुए आत्मा का उद्धार करने में समर्थ नहीं होते । इस प्रकार कर्मबन्ध के वेत्ता (जाननेवाले) भव्यजीव कर्मवादी कहलाते हैं ।

(१) कर्मका स्वरूप—

कर्म का प्रसङ्ग होने से उसके स्वरूप का निरूपण करते है :—

जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि कारणों से जो कियाजाय वह कर्म है। जैसे-तपा हुआ लोहे का गोला जल में डाल दिया जाय तो वह सभी तरफ से जल को खींचता है, उसी प्रकार अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा निरन्तर

આદિ આઠ કર્મોનેજ નરક આદિ ચાર ગતિઓમાં ભ્રમણનું કારણ જાણે છે. જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના બંધના કારણથીજ જીવ ચાર ગતિઓમાં પરિભ્રમણ કરતો થકો સમ્યગ્જ્ઞાન અને ચારિત્રની પ્રાપ્તિ વિના સંસારરૂપી દાવાનલમાં પડેલા આત્માનો ઉદ્ધાર કરવામાં સમર્થ થતો નથી. આ પ્રકારે કર્મબંધને જાણનાર ભવ્યજીવ કર્મવાદી કહેવાય છે.

(૧) કર્મનું સ્વરૂપ—

કર્મનો પ્રસંગ હોવાથી તેના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છેઃ—

જીવદ્વારા મિથ્યાત્વઆદિ કારણોથી જે કરવામાં આવે તે કર્મ છે. જેવી રીતે અગ્નિથી તપાવેલો લોઢાનો ગોળો પાણીમાં નાખવામાં આવે તો તે ચારેય તરફથી પાણીને ખેંચે છે, તે પ્રમાણે અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વ આદિ કારણોથી આત્મા

दिहेतुभिर्निरन्तरमयमात्मा रागद्वेषपरिणत्या स्वस्मिन् सकलप्रदेशेषु कर्मवर्गणा-रूपं पुद्गलं समाकर्षन् क्षीरनीरन्यायेन तादात्म्यसमापन्नं करोति तदेव कर्मोच्यते ।

(२) कर्मणः सिद्धिः—

आत्मत्वधर्मेण सर्वेषामात्मनामेकरूपत्वेऽपि देवनारकमनुष्यतिर्यगादि-रूपं सुखि-दुःखि-सधन-निर्धन-सुरूप-कुरूप-सबला-ऽबल-नीरोग-सरोगादिरूपं वा यद् वैचित्र्यं तन्न निर्हेतुकं भवितुमर्हति, सदा भवाऽभावदोषप्रसंगात् । निर्हेतुकत्वे देवनारकादिभवः शाश्वतिकः स्यात्, तथा देवनारकादिभवा

रागद्वेषरूप परिणामों से अपने समस्त आत्मप्रदेशों में कर्मवर्गणा के पुद्गलों को खींचता है और क्षीर-नीर की तरह तद्रूप बना लेता है उन्हीं को कर्म कहते हैं ।

(२) कर्मकी सिद्धि—

सब आत्माओं में आत्मत्व समान होने पर भी कोई देव है, कोई नारक कोई मनुष्य है, कोई तिर्यञ्च, कोई सुखी है, कोई दुःखी, कोई सधन, कोई निर्धन, कोई सुरूप, कोई कुरूप, कोई सबल, कोई निर्बल, कोई रोगी है, कोई नीरोगी है, यह सब विचित्रता निष्कारण नहीं हो सकती, अगर इसका कोई कारण न होता तो या तो यह विचित्रता होती ही नहीं, अगर होती भी तो सदैव के लिए होती । निष्कारण ही देवगति या नरकगति होती तो वह नित्य होती । तथा देव नरक आदि भवका

निरंतर रागद्वेषरूप परिणामोथी पोताना समस्त आत्मप्रदेशोमां कर्मवर्गणाना पुद्-गलोने खेंचे छे, अने क्षीर-नीर प्रमाणे तद्रूप बनावी ले छे, तेने कर्म कहे छे.

(२) कर्मनी सिद्धि—

सर्व आत्माओमां आत्मत्व समान होवा छतांय पण कोई देव छे, कोई नारकी; कोई मनुष्य छे; कोई तिर्यंच, कोई सुखी छे, कोई दुःखी छे. कोई धनवान् छे, कोई निर्धन छे; कोई स्वरूपवान छे, कोई कुरूप छे, कोई सबल छे, कोई निर्बल छे. कोई रोगी छे, कोई निरोगी छे. आ सर्व विचित्रता कोई कारण विना होई शके नहीं. तेनुं कोई कारण न होय तो आवी विचित्रता पण होय नहीं. अने होय तो पछी ते हमेशां माटे रही शकते. कोई पण कारण विना देवगति अथवा नरकगति होय तो ते नित्य होय, तथा देव अने नारक आदि भवनो अभाव पण नित्य होत. ए प्रमाणे

भावोऽपि शाश्वतिकः स्यात्, एवं यः सुखी, तस्य सर्वदा सुखमेव स्यात्, यश्च दुःखी, तस्य सर्वदा दुःखमेव स्यात्-सर्वदा सुखाभावस्तस्य स्यात्।

अत एव-"नित्यं सत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्" इत्याहुः। सहेतुकत्वस्वीकारे च य एवास्य हेतुः स एवास्माकं कर्मेति। उक्तञ्च—

"आत्मत्वेन विशिष्टस्य, वैचित्र्यं तस्य यद्वशात्।
नरादिरूपं तच्चित्रमदृष्टं कर्मसंज्ञितम्" ॥ १ ॥

अभाव ही शाश्वतिक होता। इसी प्रकार जो सुखी है वह सदा के लिए सुखी होता। जो दुःखी है उसे सदैव दुःख ही होता-उस के लिए सदैव सुख का अभाव होता। इसी लिए कहा गया है कि- "जो वस्तु किसी कारणकी अपेक्षा नहीं रखती वह, या तो आकाश की भाँति सदैव विद्यमान रहती अथवा खरविषाण की तरह कदापि नहीं होती।" अगर इस विचित्रता का जो कारण है उसी कारण को हम कर्म कहते हैं। कहा भी है—

"आत्मत्व की समानता होने पर भी जिस कारण से मनुष्यादिरूप विचित्रता होती है वही अदृष्ट है। उसी को कर्म कहते हैं, वह नाना प्रकार का है ॥ १ ॥"

જે સુખી છે તે હમેશાં માટે સુખીજ હોત. અને જે દુઃખી છે તે હમેશાં દુઃખીજ રહેત, તેને હંમેશા માટે સુખનો અભાવ રહેત. એ કારણથી કહ્યું છે કેઃ-" જે વસ્તુ કોઈ કારણની અપેક્ષા રાખતી નથી તે આકાશ પ્રમાણે સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે, અથવા ખર-વિષાણ (ગધેડાના શિંગડા)ની પ્રમાણે કદાપિ હોય નહીં" અગર આ વિચિત્રતાનું કોઈ કારણ માનવામાં આવે તો તે કારણને અમે કર્મ કહીએ છીએ, કહ્યું છેઃ—

"આત્મત્વ-(આત્માપણુ)ની સમાનતા હોવા છતાં પણ જે કારણથી મનુષ્યાદિરૂપ વિચિત્રતા હોય છે-દેખાય છે. તે અદૃષ્ટ છે. તેને કર્મ કહે છે. અને તે નાના પ્રકારના છે-અર્થાત્ ઘણા પ્રકારના છે." ॥ ૧ ॥

एतत् कर्म पुद्गलस्वरूपं, नामूर्तमस्ति, अमूर्तत्वे हि कर्मणः सकाशादात्मनामनुग्रहोपघातासंभवात्, गगनादिवत्। उक्तञ्च—

" तुल्यप्रतापोद्यमसाहसानां,
केचिल्लभन्ते निजकार्यसिद्धिम्।
परे न तां मित्र! निगद्यतां मे,
कर्मास्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः? ॥१॥"

अपरञ्च—

" निबध्य मासान्नव गर्भमध्ये,
बहुप्रकारैः कललादिभावैः।
उद्वर्त्य निष्काशयते सवित्र्याः,
को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम्? " इति।

यह कर्म, पुद्गलस्वरूप है, अमूर्त नहीं। अगर कर्म अमूर्त माना जाय तो उस से आत्मा का अनुग्रह और उपघात होना असंभव है, जैसे आकाश से नहीं होता। कहा भी है :—

" समान प्रताप, उद्यम और साहस वालों में से कोई कोई अपना कार्य सिद्ध करलेते हैं और दूसरे नहीं करपाते। मित्र! कर्म के सिवाय इस का और कोई कारण हो तो कहो? अर्थात् कर्म ही इस का एकमात्र कारण है " ॥ १ ॥

और भी कहा है :—

" गर्भ में नौ महीने तक कलल आदि अनेक रूपों में बढाकर माता के गर्भ से पूर्वकर्म के सिवाय और कोन बाहर निकालता है? " ॥ १ ॥

એ કર્મ, પુદ્ગલસ્વરૂપ છે, અમૂર્ત્ત નથી. અથવા કર્મને અમૂર્ત્ત માનવામાં આવે તો તેનાથી આત્માનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થવો અસંભવ છે, જેમ આકાશથી થતો નથી. કહ્યું પણ છે:—

"સમાન પરાક્રમ, ઉદ્યમ, અને સાહસવાળી વ્યક્તિઓમાં કોઈ-કોઈ પોતાનું કાર્ય સિદ્ધ કરી લે છે; અને કોઈ કોઈ નથી કરી શકતી. મિત્ર! આ બાબતમાં કર્મ વિના બીજું કોઈ કારણ હોય તો કહો? અર્થાત્ કર્મજ એનું એક માત્ર કારણ છે." ॥૧॥

બીજું પણ કહ્યું છે—"ગર્ભમાં નવ માસ સુધી કલલ (ગર્ભનું પ્રથમ સ્વરૂપ) આદિ અનેક રૂપોમાં વૃદ્ધિ પામીને માતાના ગર્ભમાંથી પૂર્વકર્મ સિવાય બીજું કોણ બહાર કાઢે છે?" ॥૧॥

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहमाकारवृक्षरक्तनीलपीतादि-भावेन वैचित्र्यं बिभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्टं परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादि-शिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरि-गृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत्?।

शङ्का—जैसे कर्म के विना भी भाँति–भाँतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी संसारी जीवों में सुख–दुःख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है?।

समाधान—मेघविकार–गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र में अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख–दुःख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी?।

શંકા—જેવી રીતે કર્મ વિના પણ ભાત–ભાતના મેઘ આદિના વિકારો જોવામાં આવે છે, તે પ્રમાણે કર્મના અભાવમાં પણ સંસારી જીવોમાં સુખ–દુઃખ આદિની વિચિત્રતા હોય છે. એમ માનવામાં શું હાનિ છે?

સમાધાન—મેઘવિકાર–ગંધર્વનગર, ઈન્દ્રધનુષ આદિ, ગૃહ, પ્રાકાર, વૃક્ષ, રક્ત નીલ, પીત આદિ રૂપમાં વિચિત્રતા ધારણ કરે છે. ત્યાં સ્વભાવથી પરિણત ઈન્દ્રધનુષ આદિ પુદ્ગલના પરિણામોની વિચિત્રતા જોવામાં આવે છે. પરન્તુ ચિત્રકાર આદિ કોઈ શિલ્પીદ્વારા ગૃહીત ચિત્રમાં અંકિત, લેપ્ય, કાષ્ઠ આદિ પુદ્ગલો માં તેનાથી પણ અધિક વિશિષ્ટતા જોવામાં આવે છે તો પછી જીવદ્વારા ગ્રહણ કરેલા આન્તરિક કર્મપુદ્ગલોની સુખ–દુખ આદિ નાના (જૂદા–જૂદા) રૂપોમાં પરિણમનની વિશિષ્ટતર વિચિત્રતા કેમ ન હોય?

ननु अभ्रादिवत् कर्मपुद्गलानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीरमेव सुखदुःखादिनानारूपतया विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्यतां, किं पुनस्तद्वैचित्र्यहेतुभूतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणामवैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अवधेहि—

अभ्रादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परितोषमेषि, तर्हि कर्मापि ननु तनुरेव, सेयं कर्मतनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्यवेहि। जीवेन सहातिसंश्लिष्टत्वादतीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कार्मणं शरीरम्, औदारिकं तु बाह्यं स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विशेषो दृश्यते।

शंका—अभ्र—मेघ आदि के समान कर्मपुद्गलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख—दुःख आदि नाना रूपों में विचित्र परिणमन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या लाभ है ?, पुद्गलों की सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है।

समाधान—अभ्र आदि के समान शरीर का ही सुख—दुःख आदि विचित्र परिणमन अङ्गीकार करने में आप को सन्तोष मिलता है तो कर्म भी तो शरीर ही है, और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए। जीव के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर और सूक्ष्म कहलाता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है। बस इतना ही दोनों शरीरों में अन्तर है।

શંકા—અભ્ર (મેઘ) આદિના સમાન કર્મપુદ્ગલોનું વિચિત્ર પરિણમન સ્વીકાર કરો છો તો પછી, 'બાહ્ય શરીર જ સુખ–દુઃખ આદિ નાના રૂપોમાં વિચિત્ર પરિણમન કરે છે' એમ શા માટે માનતા નથી ? કર્મને એ વિચિત્રતાનું કારણ માનવાથી શું લાભ છે ?, પુદ્ગલોની પરિણમનની તમામ વિચિત્રતા સ્વભાવથીજ સિદ્ધ છે.

સમાધાન—મેઘ આદિના સમાન શરીરનું પણ સુખ દુઃખ આદિ વિચિત્ર પરિણમન અંગીકાર કરવામાં આપને સંતોષ મળે છે તો કર્મ તે શરીરજ છે, અને તે કર્મ–શરીર વિચિત્ર પરિણમન કરે છે, એ પ્રમાણે સમજી લ્યો. જીવની સાથે ઘનિષ્ઠ સંબંધ હોવાના કારણે અને અતીન્દ્રિય હોવાના કારણે કર્મ–શરીર આભ્યંતર અને સૂક્ષ્મ કહેવાય છે, તથા ઔદારિક શરીર બાહ્ય અને–સ્થૂલ છે. એટલું જ એ બે શરીરોમાં અન્તર છે.

ननु बाह्यशरीरस्य स्थूलत्वात् प्रत्यक्षदृष्टत्वाच्चाभ्रादिसादृश्येन बाह्यशरीरस्यैव सुखदुःखादिविचित्रपरिणामोऽस्तु किं पुनरप्रत्यक्षभूतस्य कर्मरूपातीन्द्रियशरीरस्य कल्पनेन, कार्मणशरीरानङ्गीकारे यदि कोऽपि दोष आपतति, ततोऽर्थापत्तेरेव कर्मवैचित्र्यमङ्गीकरिष्यामः ? इति । अत्रोच्यते—

मरणसमये प्रत्यक्षदृष्टबाह्यस्थूलशरीराद् विमुक्तस्य जीवस्य भवान्तरीयबाह्यस्थूलशरीरग्रहणे कारणभूतं सूक्ष्मं कार्मणशरीरं विनाऽग्रिमदेहग्रहणाभावरूपो दोषः समापद्यते, ततश्च देहान्तरग्रहणानुपपत्तेर्मरणानन्तरं सर्वस्यापि जीवस्य शरीराभावात् संसारोच्छेदः स्यात् । न च दृश्यते संसारसमुच्छेदः ।

शङ्का—बाह्य शरीर स्थूल है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है, अत एव बाह्य शरीर के साथ ही अभ्र आदि की समानता है, ऐसी स्थिति में बाह्य शरीर का ही सुख दुःख आदिरूप परिणमन मानना चाहिए । कभी प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले कर्मरूप अतीन्द्रिय शरीर की कल्पना करने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? हाँ !, कर्मणशरीर को स्वीकार न करने से अगर कोई दाष आया तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण से ही कर्म की विचित्रता स्वीकार कर लेंगे ? ।

समाधान—मृत्यु के समय प्रत्यक्ष दीखने वाले बाह्य स्थूल शरीर को ग्रहण करने का कारणभूत सूक्ष्म शरीर न हो तो जीव आगामी शरीर को ग्रहण ही नहीं कर सकेगा । सूक्ष्म शरीर न मानने से यह दोष आता है । जीव अगर अगले शरीर को ग्रहण न करे तो मृत्यु के पश्चात् अशरीर होने के कारण सभी जीव मुक्त हो जाएँगे, और

શંકા—બાહ્ય શરીર સ્થૂલ છે અને પ્રત્યક્ષ દેખાય છે, એ કારણથી બાહ્ય શરીરની સાથેજ મેઘ આદિની સમાનતા છે એવી સ્થિતિમાં બાહ્ય શરીરનુંજ સુખ–દુઃખ આદિ રૂપ પરિણમન માની લેવું જોઈએ. કોઈ વખત પ્રત્યક્ષ નહિ દેખાતા એવા કર્મરૂપ અતીન્દ્રિય શરીરની કલ્પના કરવાનું કષ્ટ શા માટે ઉઠાવો છો ? હા ! કાર્મણ શરીરનો સ્વીકાર નહિ કરવાથી જો કોઈ દોષ આવશે તો પછી અર્થાપત્તિ પ્રમાણથીજ કર્મની વિચિત્રતા સ્વીકારી લઈશું.

સમાધાન—મૃત્યુના સમયે પ્રત્યક્ષ દેખાતાં બાહ્ય સ્થૂલ શરીરથી જીવ અલગ થઈ જાય છે. આગલા ભવમાં બાહ્ય સ્થૂલ શરીરને ગ્રહણ કરવાના કારણભૂત સૂક્ષ્મ શરીર નહિ હોય તો જીવ આગામી શરીરને ગ્રહણુજ કરી શકશે નહિ. સૂક્ષ્મ શરીર નહિ માનવાથી આ દોષ આવે છે. જીવ જો મૃત્યુ પછી બીજાં શરીરને ગ્રહણ ન કરે તો મૃત્યુ પછી અશરીર હોવાને કારણે સર્વ જીવો મુક્ત થઇ જશે અને સંસાર બંધ થઇ જશે.

शरीरान्तरग्रहणं च निष्कारणं न संभवति। तस्मात्। स्थूलशरीकारणभूतं सूक्ष्म-कार्मणशरीरमस्तीत्यवश्यमङ्गीकर्तव्यम्।

ननु कर्मरहितः शुद्धजीवो नानाविधशरीरादीनां कर्ताऽस्तु, तथेश्वरः, स्वभावो यदृच्छा वा विविधशरीरादिकं करोतीत्येव मन्यते, किं कर्मकल्पनेन? अत्रोच्यते—

अयं जीवेश्वरादिरकर्मा न शरीरसुखदुःखादीनां कर्ता, उपकरणाभावात्, दण्डाद्युपकरणरहितकुम्भकारवत्। कर्म विनाऽन्यदुपकरणं शरीराद्यारम्भकं जीवेश्वरादीनां न संभवति, गर्भाद्यवस्थास्वन्योपकरणासंभवात्, कर्म विना शुक्रशोणितादिग्रहणस्याप्यनुपपत्ते।

संसार मिट जायगा, मगर संसार का मिटना दिखाई नहीं देता, और विना कारण के शरीर का ग्रहण नहीं हो सकता, अत एव स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म कार्मणशरीर का अस्तित्व अङ्गीकार करना चाहिए।

शंका—कर्मरहित शुद्ध जीव को नाना प्रकार के शरीरों का कर्ता मान लिया जाय, या ईश्वर; स्वभाव अथवा यदृच्छा को कर्ता स्वीकार कर लिया जाय, कर्म की कल्पना से क्या लाभ है?।

समाधान—कर्मरहित जीव या ईश्वर आदि, शरीर, सुख–दुःख आदि का कर्ता नहीं है, क्यों कि उसके पास उपकरण नहीं हैं, दण्ड आदि उपकरणों से रहित कुंभार के समान। कर्म के सिवाय, शरीर आदि रचने में ईश्वर आदि को और कोई भी उपकरण नहीं हो सकता। कर्म के अतिरिक्त और कोई उपकरण न होने के कारण गर्भ आदि अवस्थाओ में शुक्र शोणित आदिका ग्रहण भी नहीं हो सकता।

પરન્તુ સંસાર બંધ થયો તેવું જોવામાં આવતું નથી. અને કારણ વિના શરીરનું ગ્રહણ હોઈ શકે નહીં એ કારણથી સ્થૂલ શરીરનું કારણ સૂક્ષ્મ–કાર્મણ શરીરના અસ્તિત્વનો અંગીકાર કરવો જોઈએ.

શંકા–કર્મરહિત શુદ્ધ જીવને નાના પ્રકારના શરીરોના કર્તા માની લઈએ, અથવા ઈશ્વર સ્વભાવ યા યદૃચ્છાને કર્તા માની લઈએ તો પછી કર્મની કલ્પના કરવાથી શું લાભ?।

સમાધાન–કર્મરહિત જીવ અથવા તો ઈશ્વર આદિ, શરીર, સુખ, દુઃખના કર્તા નથી. કારણ કે તેની પાસે ઉપકરણ–(મુખ્ય સાધન) નથી, દંડ આદિ પ્રધાન સાધનો વિનાનો જેમ કુંભાર, તે પ્રમાણે, કર્મ વિના શરીર આદિ રચવામાં ઈશ્વર વગેરેને બીજું કોઈ પણ ઉપકરણ હોઈ શકે નહિ. કર્મના વિના બીજું કોઈ પ્રધાન સાધન નહિં હોવાને કારણે ગર્ભ આદિ અવસ્થાઓમાં શુક્ર શોણિત વગેરેનું ગ્રહણ પણ થઈ શકે નહી.

यद्वा—अकर्मा शरीरादिकं नारभते, निश्चेष्टत्वात्, अमूर्तत्वात्, आकाशवत्। तथा–एकत्वात् एकपरमाणुवत्।

यदि शरीरवानीश्वरः करोति विविधशरीरादिकमित्युच्यते तदाऽनवस्था-दोषः समापद्यते। तथाहि–शरीरस्येश्वरस्य जगद्वैचित्र्यकर्तृत्वस्वीकारे स्वशरीर-कर्तृत्वमकर्मणस्तस्यश्वरस्य न संभवति, निरुपकरणत्वात्, दण्डादिरहितकुम्भकारवत्। अथान्यः कोऽपीश्वरस्तदीयशरीरकरणाय प्रवर्तते ततः सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा? यद्यशरीरस्तर्हि नासौ शरीरकर्ता निरुपकरणत्वात्। शरीरवांश्चेत्–तर्हि

अथवा–जो कर्मरहित है वह शरीर आदि का उत्पादक नहीं हो सकता, क्यों कि वह चेष्टारहित है, अथवा अमूर्त है। जो चेष्टाहीन या अमूर्त होता है वह शरीर आदि का जनक नहीं होता, जैसे आकाश। तथा वह एक होने के कारण भी शरीर आदिका जनक नहीं हो सकता, जैसे एक परमाणु।

कदाचित् यह कहा जाय कि सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिका कर्ता है तो अनवस्था दोष आता है। वह इस प्रकार-जब सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण है तो वह विना शरीर के अपना शरीर भी नहीं बना सकेगा, क्यों कि वह उपकरणहीन है, दण्डआदि से रहित कुंभार के समान। अब यह कहा जाय कि कोई दूसरा ईश्वर, पहले ईश्वर का शरीर बनाने के लिए प्रवृत्त होता है तो उसके विषय में भी वही प्रश्न उपस्थित होता है कि–वह सशरीर है अथवा अशरीर है?, अगर वह अशरीर है तो उपकरणहीन होने के कारण शरीर का कर्ता

અથવા–જે કર્મરહિત છે તે શરીર આદિના ઉત્પાદક થઈ શકે નહિ, કારણ કે તે ચેષ્ટારહિત છે. અથવા અમૂર્ત્ત છે. જે ચેષ્ટાહીન અથવા અમૂર્ત્ત હોય છે, તે શરીર આદિના ઉત્પન્ન કરનાર હોય નહિ. જેવી રીતે–આકાશ, તથા તે એક હોવાના કારણે પણ શરીર આદિના ઉત્પન્ન કરનાર હોય નહિ. જેવી રીતે એક પરમાણુ.

કદાચિત્ એમ કહેવામાં આવે કે–સશરીર ઈશ્વર વિવિધ શરીર આદિના કર્તા છે. તો અનવસ્થા દોષ આવે છે. તે આ પ્રમાણે કેઃ–જ્યારે સશરીર ઈશ્વર જગતની વિચિત્રતાનું કારણ છે તો તે, શરીર વિના પોતાનું શરીર પણ બનાવી શકશે નહી; કારણ કે તે ઉપકરણહીન છે, જેમ દંડ આદિથી રહિત કુંભાર. હવે જો એમ કહેવામાં આવે કે કોઈ બીજો ઈશ્વર પ્રથમના ઈશ્વરનું શરીર બનાવવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે, તો તે વિષયમાં પણ એ પ્રશ્ન ઉભો થાય છે કેઃ–તે સશરીર છે અથવા અશરીર છે? અગર જો અશરીર છે તો ઉપકરણહીન

तच्छरीरारम्भेऽपि तुल्यता प्रश्नस्य। सोऽप्यकर्मा निजशरीरं नारभते निरुपकरणत्वात्। यदि तच्छरीरकर्ताऽन्यः कोऽपि, तर्हि सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा? इत्थं चानवस्था। अनिष्टं च सर्वमेतत्। तस्मान्नेश्वरो देहादीनां कर्ता, किन्तु कर्मसहितो जीव एव स्वकीयं देहादिकं करोति।

किञ्च-ईश्वरस्य देहादिकरणं निष्प्रयोजनमिति तदोन्मत्ततुल्यता स्यात्। सप्रयोजनकर्तृत्वे तु तस्यानीश्वरत्वप्रसङ्गः। किञ्चानादिशुद्धस्य तस्येश्वरस्य देहादिकरणेच्छा नोपपद्यते, इच्छाया रागरूपत्वात्।

नहीं हो सकता। अगर सशरीर है तो उसका शरीर बनाने वाला कोई तीसरा ईश्वर मानना पडेगा। वह तीसरा ईश्वर भी अशरीर है या सशरीर है?, इत्यादि विकल्प फिर उपस्थित होनेके कारण अनवस्था दोष आता है।

यह सब अभीष्ट नहीं है। अतः देह आदिका कर्ता ईश्वर नहीं हो सकता, वरन् कर्मसहित जीव ही अपने शरीर आदि का कर्ता है।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर, विना किसी प्रयोजन के ही अगर शरीर आदि की रचना करता है तो वह उन्मत्त के समान होगा। अगर उसका कोई प्रयोजन है तो वह ईश्वर नहीं रहेगा।

एक बात और-अनादि काल से शुद्ध ईश्वर की देह आदि रचने में इच्छा ही नहीं हो सकती, क्यों कि इच्छा एक प्रकार का राग है और रागी ईश्वर नहीं हो सकता।

હોવાના કારણે શરીરકર્તા થઈ શકતો નથી. અગર સશરીર છે તો તેનું શરીર બનાવવાવાળો કોઈ ત્રીજો ઈશ્વર માનવો પડશે. તે ત્રીજા ઈશ્વર પણ સશરીર છે અથવા સશરીર છે?, ઈત્યાદિ વિકલ્પ ફરીને ઉપસ્થિત હોવાના કારણે અનવસ્થા દોષ આવે છે, તે સર્વ અભીષ્ટ નથી, તે કારણથી દેહ આદિના કર્તા ઈશ્વર થઈ શકતા નથી. પરન્તુ કર્મસહિત જીવજ પોતાના શરીર આદિનો કર્તા છે.

બીજી વાત એ છે કે-ઈશ્વર કોઈ પ્રયોજન વિના જો શરીર આદિની રચના કરે છે તો તે ઉન્મત્તની સમાન ગણાશે. અથવા તો તેને કાંઈ પ્રયોજન છે, તો તે ઈશ્વર નહીં રહે. એક બીજી વાત એ છે કે-અનાદિ કાળથી શુદ્ધ ઈશ્વરની, દેહ આદિ રચનામાં ઈચ્છાજ રહેતી નથી, કારણ કે ઈચ્છા એક પ્રકારનો રાગ છે, અને રાગી ઈશ્વર થઈ શકતા નથી.

नापि स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति। स स्वभावः किं वस्तु-विशेषो वा? अकारणता वा? वस्तुधर्मो वा?, तत्र न तावद् वस्तुविशेषः, तस्य वस्तुविशेषरूपत्वे प्रमाणाभावात्। प्रमाणरहितस्यापि वस्तुत्वस्वीकारे कर्मापि कथं नाङ्गीकरोषि?, त्वन्मते कर्मणोऽपि प्रमाणरहितत्वात्।

किञ्च—वस्तुविशेषरूपः स स्वभावो मूर्त्तो वा स्यादमूर्त्तो वा?, यदि मूर्तस्तर्हि स्वभाव इति नामान्तरेण कर्मैव सिध्यति। यदि पुनरमूर्तस्तर्हि नासौ स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात् निरुपकरणत्वाच्च, गगनवत्।

स्वभाव भी देह आदि का कर्ता नहीं हो सकता। आखिर स्वभाव का अर्थ क्या है? स्वभाव कोई वस्तु है? अथवा कोई भी कारण न होना स्वभाव है? या किसी वस्तु का धर्म है?। स्वभाव कोई वस्तु तो है नहीं, क्यों कि उसे वस्तु मानने में कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण के अभावमें भी स्वभाव को वस्तु मान लिया जाय तो कर्म मानने में क्या आपत्ति है? तुम्हारे मत के अनुसार कर्म मानने में भी कोई प्रमाण नहीं है।

स्वभाव अगर कोई वस्तु है तो वह मूर्त है या अमूर्त?, अगर मूर्त है तो स्वभाव और कर्म एक ही वस्तु है। आप कर्म को ही स्वभाव—शब्द से कहते हैं तो कह लीजिये। स्वभाव को अमूर्त मानते हैं तो वह देह आदिका कर्ता नहीं हो सकता, क्यों कि वह अमूर्त है और उपकरणरहित है, जैसे आकाश। मूर्त शरीर का अनुरूप कारण मूर्त ही होना चाहिए,

---

સ્વભાવ પણ દેહ આદિનો કર્તા થઈ શકતો નથી. છેવટ સ્વભાવનો અર્થ શું છે? સ્વભાવ કોઈ વસ્તુ છે? અથવા કોઈપણ કારણ નહીં હોવું તે સ્વભાવ છે? અથવા કોઈ વસ્તુનો ધર્મ છે? સ્વભાવ કોઇ વસ્તુ તો છે નહીં, કારણ કે તેને વસ્તુ માનવામાં કોઈ પ્રમાણ નથી, પ્રમાણના અભાવમાં પણ સ્વભાવને વસ્તુ માની લેવામાં આવે તો કર્મ માનવામાં શું આપત્તિ છે? તમારા મત પ્રમાણે કર્મ માનવામાં પણ કોઈ પ્રમાણ નથી.

સ્વભાવ અગર કોઈ પણ વસ્તુ છે તો તે મૂર્ત્ત છે અથવા અમૂર્ત્ત છે? જો મૂર્ત્ત છે તો સ્વભાવ અને કર્મ એકજ વસ્તુ છે, તમે કર્મનેજ સ્વભાવ-શબ્દથી કહો છો તો ખુશીથી કહો. જો સ્વભાવને અમૂર્ત્ત માનશો તો તે દેહ આદિનો કર્તા થઈ શકશે નહીં, કારણ કે તે અમૂર્ત છે. અને ઉપકરણ (પ્રધાન સાધનો) રહિત છે જેવી રીતે આકાશ.

मूर्तस्य शरीरादिकार्यस्यानुरूपं कारणं मूर्तमेव संभवति, यथा मृत्पिण्डो घटस्य।

अकारणतारूपः स्वभावः? इति चेत्, एवं सति शरीरादिकमकारण-मेवोत्पद्यते, इत्ययमर्थः स्यात्, तथा सति कारणाभावस्य समानत्वादेकस्मिन्नेव समये सकलशरीरोत्पत्तिप्रसंगः।

यदि स्वभावो वस्तुधर्म इत्युच्यते, तथापि यदि विज्ञानादिवदात्मनो धर्मस्तर्हि नासौ स्वभावः शरीरकारणं भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात्, आकाशवदित्युक्तं प्रागेव। यदि स स्वभावो मूर्तवस्तुधर्मस्तर्हि सिद्धसाधनम्, कर्मापि पुद्गलरूप-मेवेति वयं ब्रूमः। तस्मात् कर्मैव जगद्वैचित्र्यकारणमिति सिद्धम्।

जैसे घट का कारण मिट्टी का पिण्ड है।

अगर कोई भी कारण न होना ही स्वभाव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर आदि निष्कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं। अगर निष्कारण ही शरीर की उत्पत्ति होती है तो फिर संसार के समस्त शरीर एक साथ क्यों नहीं हो जाते?।

स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है। अगर वह ज्ञान आदि के समान आत्मा का धर्म है तो आकाश की तरह अमूर्त होने के कारण शरीर का कर्ता नहीं हो सकता, यह पहले ही कहा जा चुका है। स्वभाव अगर किसी मूर्त वस्तु का धर्म है तो यह हमें भी इष्ट है, क्यों कि हमारे कथनानुसार कर्म भी पुद्गल का क्रमभावी धर्म है, अत एव यह सिद्ध हुआ कि कर्म ही जगत् की विचित्रता का कारण है।

भूर्त्त शरीरनुं अनुरूप कारण मूर्त्तज होवुं जोईए, जेम घटनुं कारण माटीनो पिंड छे.

अथवा कोईज कारण न होय एवो ज स्वभाव छे तो तेनो अर्थ ए थयो के शरीर आदि निष्कारणज उत्पन्न थई जाय छे, अने निष्कारण ज शरीरनी उत्पत्ति थाय छे तो पछी संसारना समस्त शरीर एक साथे केम थई नथी जतां?

'स्वभाव कोई वस्तुनो धर्म छे' ए प्रमाणे कहेवुं ते पण युक्तिसंगत नथी. अथवा तो ते ज्ञान आदिना समान आत्मानो धर्म छे. तो आकाशनी माफक अमूर्त्त होवाना कारणे शरीरना कर्ता थई शकशे नही, आ हकीकत प्रथमथीज कही आपी छे. स्वभाव ए कोई मूर्त्त वस्तुनो धर्म छे, तो ते वात अमारे पण मान्य छे, कारण के अमारा कहेवा प्रमाणे कर्म पण पुद्‌गलरूपज छे, ए माटे एम सिद्ध थयुं के कर्म ज जगतनी विचित्रानुं कारण छे.

(३) कर्मणो मूर्तत्वम्—

नन्वतीन्द्रियस्य कार्मणशरीरस्य मूर्तत्वे किं मानम्? अत्रोच्यते— शरीरादिकार्यदर्शनात्तत्कारणभूतं कर्म सिध्यति चेत् तर्हि कार्यानुरूपमेव कारणं भवितुमर्हतीति शरीरादिकार्याणां मूर्तत्वात्तत्कारणं कर्मापि मूर्तमेव। यथा मूर्तस्य घटादिकार्यस्य कारणं परमाणुपुद्गलास्ते मूर्ता एव सन्ति। यच्च पुनरमूर्तं कार्यं तस्य कारणमपि—अमूर्तम्, यथा ज्ञानस्यात्मेति।

ननु सुखदुःखादयोऽपि कर्मणः कार्यं तर्हि तेषाममूर्तत्वात् कर्मणोऽमूर्तत्वमपि प्राप्नोति, नहि मूर्तादमूर्तोत्पत्तिः संभवति, यथा पुद्गलाद् ज्ञानपर्यायः,

---

(३) कर्म का मूर्तपन—

शङ्का—अतीन्द्रिय कार्मण शरीर के मूर्त होने में क्या प्रमाण है?

समाधान—शरीर आदि कार्यों के देखने से उनके कारणभूत कर्म की सिद्धि होती है, और कारण, कार्य के अनुरूप ही होता है, अत एव जब शरीर आदि कार्य मूर्त हैं तो उन का कारण कर्म भी मूर्त ही होना चाहिए। जैसे मूर्त घट आदि कार्यों के कारणभूत पुद्गल परमाणु भी मूर्त ही हैं, जो कार्य अमूर्त होता है, उसका कारण भी अमूर्त ही होता है; जैसे ज्ञान का कारण आत्मा।

शङ्का—सुख और दुःख आदि का कारण भी कर्म है, और सुख दुःख आदि अमूर्त हैं; अतः उन का कारण कर्म अमूर्त भी होना चाहिए। मूर्त से अमूर्त की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जैसे पुद्गल से ज्ञानपर्याय की उत्पत्ति नहीं हो

---

(૩) કર્મનું મૂર્તપણું—

શંકા–અતીન્દ્રિય કાર્મણ શરીરમાં મૂર્તપણું હોવામાં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાન–શરીર આદિ કાર્યોના દેખવાથી તેના કારણભૂત કર્મની સિદ્ધિ થાય છે, અને કારણ, કાર્યના અનુરૂપજ હોય છે. એ કારણથી જ્યારે શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત છે, તો તેનું કારણ કર્મ પણ મૂર્તજ હોવું જોઈએ. જેવી રીતે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોના કારણભૂત પુદ્ગલપરમાણુ પણ મૂર્ત છે. જે કાર્ય અમૂર્ત હોય છે તેનું કારણ પણ અમૂર્ત જ હોય છે, જેમકે જ્ઞાનનું કારણ આત્મા.

શંકા–સુખ અને દુઃખ આદિનું કારણ કર્મ છે, અને સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત છે, તેથી તેનુ કારણ કર્મ પણ અમૂર્તજ હોવું જોઈએ. મૂર્તથી અમૂર્તની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી; જેવી રીતે પુદ્ગલથી જ્ઞાનપર્યાયની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, અને એકજ

नाप्येकस्यैव कर्मणो मूर्तत्वममूर्तत्वं च युज्यते, विरुद्धत्वादिति चेत् ? उच्यते—

अत्र कारणशब्देनोपादानकारणं परिगृह्यते; न तु निमित्तकारणम्, सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमेव कर्म, यथाऽन्नपानादयो विषादया वा सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमस्ति। उपदानकारणं तु तेषामात्मैव सुखदुःखादीनामात्मधर्मत्वादिति नास्ति दोषलेशोऽपि।

(४) जीवकर्मणोः सम्बन्धः।

ननु कर्म मूर्तमस्तीत्युक्तं परन्तु मूर्तस्य कर्मणोऽमूर्तेन जीवेन सह कथं संयोगलक्षणः सम्बन्धः? इति चेन्मैवम्, यथा मूर्तस्य घटस्यामूर्तेन गगनेन संयोगलक्षणः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्धोऽस्तीति। उक्तञ्च—

सकती। और एक ही कर्म मूर्त भी हो और अमूर्त भी हो, यह कैसे हो सकता है?, ये दोनों धर्म विरोधी हैं, एक जगह नहीं रह सकते।

समाधान—यहाँ कारण-शब्द से उपादान कारण ग्रहण किया गया है, निमित्त कारण नहीं। कर्म सुख-दुःख के प्रति निमित्त कारण ही है, जैसे अन्न, पान, विष आदि सुख-दुःख के निमित्त कारण हैं। सुख दुःख का उपादान कारण तो आत्मा ही है, क्यों कि वे आत्मा के धर्म हैं, अतः यहां दोष का लेश भी नहीं है।

(४) जीव और कर्म का सबन्ध—

शङ्काः—आपने कर्म को मूर्त सिद्ध किया, मगर मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है?।

समाधान—ऐसा न कहिए। जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ संयोग-सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कर्म का भी सम्बन्ध है। कहा भी है:—

કર્મ મૂર્ત પણ હોય અને અમૂર્ત પણ હોય, એ કેવી રીતે હોઈ શકે ? આ બન્ને ધર્મ વિરોધી છે તેથી એક જગ્યાએ રહી શકતા નથી.

સમાધાન-અહિં કારણ-શબ્દથી ઉપાદાન કારણ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે, નિમિત્ત કારણ નહિ. કર્મ, સુખ-દુઃખ થવામાં નિમિત્ત કારણજ છે, જેવી રીતે અન્ન, પાન, વિષ આદિ સુખ-દુઃખના નિમિત્ત કારણ છે, પરન્તુ સુખ-દુઃખનું ઉપાદાન કારણ તો આત્માજ છે, કારણ કે તે આત્માનો ધર્મ છે તેથી તેમાં લેશ પણ દોષ નથી.

(૪) જીવ અને કર્મનો સમ્બન્ધ—

શંકા-આપે કર્મને 'મૂર્ત્ત છે' એમ સિદ્ધ કર્યું તો પછી મૂર્ત કર્મનો અમૂર્ત જીવની સાથે સમ્બન્ધ કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

સમાધાન-આ પ્રમાણે નહિ કહો ? જેમ મૂર્ત્ત ઘટનો અમૂર્ત આકાશની સાથે સંયોગસમ્બન્ધ છે, તે પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો પણ સમ્બન્ધ છે. કહ્યું પણ છે:—

" यथा ह्यरूपमाकाशं, रूपिद्रव्यादिभाजनम् ।
तथा ह्यरूप आत्मापि, रूपिकर्मादिभाजनम् ॥१॥ "

यथा वा – अमूर्तयाऽऽकुञ्चनादिक्रियया सह मूर्तद्रव्यस्याङ्गुल्यादेः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्ध इति बोध्यम् ।

यद्वा–यथा बाह्यशरीरमिदं जीवेन सह सम्बद्धं प्रत्यक्षदृष्टमेवास्ति, एवं भवान्तरं गच्छता जीवेन सह कार्मणशरीरं सम्बद्धमेवेति ।

यदि बाह्यशरीरस्य जीवेन सह सम्बन्धे धर्माधर्मयोः कारणताऽस्ती-त्युच्यते तर्हि तावपि धर्माधर्मौ मूर्तौ स्यातामर्मूर्तौ वा ? । यदि मूर्तौ तर्हि

" जैसे अरूपी आकाश रूपी द्रव्य आदि का आधार है, उसी प्रकार अरूपी आत्मा कर्मों का आधार है " ॥ १ ॥

अथवा जैसे–आकुञ्चन (सिकोडना) आदि अमूर्त क्रिया के साथ अंगुली आदि मूर्त द्रव्य का सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार यहां जीव और कर्म का सम्बन्ध समझ लेना चाहिए ।

अथवा जैसे बाह्य शरीरका जीव के साथ सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसी प्रकार भवान्तर में जाते जीव के साथ कार्मण शरीर का सम्बन्ध है ।

अगर कहा जाय कि जीव के साथ बाह्य शरीर का सम्बन्ध होने में धर्म और अधर्म कारण है तो प्रश्न खडा होता है कि–धर्म अधर्म मूर्त हैं या अमूर्त है ?

" જેવી રીતે અરૂપી આકાશ, રૂપી દ્રવ્ય આદિનો આધાર છે. તે પ્રમાણે અરૂપી આત્મા, રૂપી કર્મોનો આધાર છે. " ॥૧॥

અથવા–જેવી રીતે–સંકોચવું આદિ અમૂર્ત ક્રિયાની સાથે આંગલી આદિ મૂર્ત દ્રવ્યનો સમ્બન્ધ હોય છે તે પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો સમ્બન્ધ સમજી લેવો જોઈએ.

અથવા જેવી રીતે આ બાહ્ય શરીર જીવની સાથે સંબદ્ધ છે. તે પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે. તે પ્રમાણે ભાવાન્તરમાં જતા જીવની સાથે કાર્મણ શરીરનો સંબંધ છે.

અથવા તો એમ કહેવામાં આવે કે જીવની સાથે બાહ્ય શરીરનો સમ્બન્ધ હોવામાં ધર્મ અને અધર્મ કારણ છે. તો પ્રશ્ન ઉભો થાય છે. કે–ધર્મ અધર્મ મૂર્ત છે કે અમૂર્ત છે ? જો તે મૂર્ત છે એમ કહો તો અમૂર્ત જીવની સાથે તેનો સંબંધ કેવી રીતે થયો ?

तयोरप्यमूर्तेन जीवेन कथं सम्बन्धः ?, यदि कथञ्चित् सम्बन्धस्तर्हि कर्मणोऽपि जीवेन सह सम्बन्धः कुतो न स्यात्। यद्यमूर्त्तौ धर्माधर्मौ तर्हि बाह्येन स्थूल-शरीरेण मूर्तेन सह तयोः कथं सम्बन्धः ? तवमते मुर्तामूर्तयोः सम्बन्धासंभवात्। यद्यमूर्तयोरपि धर्माधर्मयोर्बाह्यशरीरेण मूर्तेन सह सम्बन्धोऽङ्गीक्रियते तर्हि जीवेन सह कर्मणः सम्बन्धे कथं दोषः ?।

नन्वमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा कथं सुखदुःखाद्यनुग्रहोपघातौ स्याताम्, न ह्यमूर्तस्याकाशस्य मूर्तैःस्रक्चन्दनाग्निज्वालादिभिरनुग्रहोपघातौ जायेते ?।

अगर वे मूर्त हैं तो अमूर्त जीव के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हुआ ?, अगर किसी प्रकार उनका सम्बन्ध हो गया तो कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं हो सकता ?। अगर धर्म अधर्म अमूर्त हैं तो बाह्य स्थूल और मूर्त शरीर के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हो गया ?, आपके मत से मूर्त और अमूर्त का तो सम्बन्ध हो नहीं सकता। अगर अमूर्त धर्म अधर्म का मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होना स्वीकार करते हो तो जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध मानने में क्या दोष है ?।

शङ्का—अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा सुख दुःख आदिरूप अनुग्रह और उपघात कैसे हो सकता है, मूर्त माला, चन्दन, अग्नि, ज्वाला आदि से अमूर्त आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता ?

અથવા કોઈ પ્રકારે તેનો સમ્બન્ધ થઈ ગયો તો કર્મનો સમ્બન્ધ શા માટે નહિ થઈ શકે ? અગર ધર્મ અધર્મ અમૂર્ત છે તો બાહ્ય સ્થૂલ અને મૂર્ત શરીરની સાથે તેનો સમ્બન્ધ કેવી રીતે થઈ ગયો ? આપના મત પ્રમાણે તો મૂર્ત અને અમૂર્તનો સમ્બન્ધ-જ હોઈ શકે નહી. પરન્તુ જો અમૂર્ત ધર્મ-અધર્મનો મૂર્ત શરીરની સાથે સમ્બન્ધ થવો તે સ્વીકાર કરતા હો તો જીવની સાથે કર્મનો સમ્બન્ધ માનવામાં દોષ શું છે ?

શંકા-અમૂર્ત જીવનો, મૂર્ત કર્મદ્વારા સુખ-દુઃખ આદિરૂપ અનુગ્રહ અને ઉપઘાત કઈ રીતે થઈ શકે ? મૂર્ત માળા ચન્દન, અગ્નિ, જ્વાળા આદિથી અમૂર્ત આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થઈ શકતો નથી.

शृणु—यथामदिरापानैर्विषपिपीलिकादिभिर्भक्षितैरमूर्तानामपिधृतिस्मृति–मेधादीनामात्मगुणानामुपघातो जायते, "मेधां पिपीलिका हन्ति" इत्यादिवचनात्, तथा पयःशर्कराघृतादिभिश्चानुग्रहः क्रियते तथैवामूर्तस्यात्मनो मूर्तेन कर्मणाऽनुग्रहोपघातौ जायेते। इदं च जीवस्यामूर्तत्वमङ्गीकृत्य समाहितम्, न ह्येकान्तरूपेणाऽमूर्त एवात्मा किन्तु वह्नयोगोलकवत् क्षीरनीरवच्च कार्मणशरीराभेदरूपतां प्राप्तः कथञ्चिन्मूर्तोऽपीति। तस्य मूर्तेन कर्मणानुग्रहोपघातौ भवत एव। आकाशस्य तु तौ न भवतः, तस्यैकान्तरूपेणामूर्तत्वादचेतनत्वाच्च।

समाधान—सुनिये ऐसे—मदिरा का पान करने से, विषभक्षण से और कीडी आदि के खाये जाने से अमूर्त धैर्य, स्मृति और बुद्धि आदि आत्मिक गुणों का उपघात होता है, "**मेधां पिपीलिका हन्ति**" इत्यादि वचन से, तथा दूध, शक्कर और घृत आदि से अनुग्रह होता है, उसी प्रकार अमूर्त आत्मा का मूर्त कर्म द्वारा अनुग्रह और उपघात होता है। जीव को अमूर्त अङ्गीकार करके यह समाधान किया है, किन्तु जीव एकान्तरूप से अमूर्त नहीं है। क्षीर—नीर की तरह अथवा अग्नि और लोहे के गोले की तरह आत्मा कार्मणशरीर से कथञ्चित् अभिन्न है, अत एव मूर्त भी है। कर्मलिप्त आत्मा मूर्त होने के कारण मूर्त कर्मों से उसका अनुग्रह और उपघात होता ही है। हाँ! आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता, क्यों कि वह एकान्ततः अमूर्त और अचेतन है।

સમાધાન—સાંભળો! જેમ મદિરાનું પાન કરવાથી, વિષભક્ષણથી, અથવા કીડી આદિ પેટમાં ખાઈ જવામાં આવવાથી અમૂર્ત ધૈર્ય, અને બુદ્ધિ આદિ આધ્યાત્મિક ગુણોનો ઉપઘાત થાય છે. "મેધાં પિપીલિકા હન્તિ" ઈત્યાદિ વચનોથી, તથા દૂધ, સાકર અને ઘી આદિથી અનુગ્રહ થાય છે, તે પ્રમાણે અમૂર્ત આત્માનો મૂર્ત કર્મ અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાય છે.

જીવને અમૂર્ત અંગીકાર કરીને આ સમાધાન કર્યું છે, પરન્તુ જીવ એકાન્તથી અમૂર્ત નથી. ક્ષીર—નીરની પ્રમાણે અથવા અગ્નિ અને લોઢાના ગોળાની માફક આત્મા કાર્મણશરીરથી કથંચિત્ અભિન્ન છે. આ કારણથી મૂર્ત પણ છે. કર્મલિપ્ત આત્મા મૂર્ત હોવાના કારણે મૂર્ત કર્મોથી તેનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાયજ છે. હા! આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થતો નથી, કારણ કે તે એકાન્તથી અમૂર્ત અને અચેતન છે.

(५) कर्मणोऽनादित्वम्—

अनादिः कर्मणः प्रवाहः। शरीरकर्मणोः परस्परं कार्यकारण भावात्, बीजाङ्कुरवत्। यथा बीजादङ्कुरो जायते, अङ्कुरादपि क्रमेण बीजमुपजायते। एवं शरीरात् कर्म जायते कर्मतस्तु शरीरमित्येवं पुनः पुनरपि परस्परमनादिकालतः कार्यकारणभावसद्भावोऽस्ति। इह ययोः परस्परं कार्यकारणभावस्तयोरनादि प्रवाहो दृश्यते यथा बीजाङ्कुरयोः, यथा वा कुक्कुटाण्डयोः, तथा शरीरकर्मणो-रनादिप्रवाह इति।

(५) कर्मों का अनादिपन-

कर्मों की परम्परा अनादिकालीन है, क्यों कि शरीर और कर्म का परस्पर कार्य-कारणभाव है, जैसे बीज और अंकुर का। तात्पर्य है कि जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, और अंकुर से क्रमशः बीज की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार शरीर से कर्म और कर्म से शरीर उत्पन्न होता है। यह पारस्परिक कार्यकारणभाव अनादि काल से चला आता है। जिन दो पदार्थों में परस्पर कार्य—कारणभाव होता है उनका प्रवाह अनादिकालीन देखा जाता है, जैसे पूर्वोक्त बीज और अंकुर का, अथवा मुर्गी और अण्डे का। इस प्रकार शरीर और कर्म का प्रवाह अनादिकालीन है।

(૫) કર્મોનું અનાદિપણું—

કર્મોની પરંપરા અનાદિકાલીન છે. કારણ કે-શરીર અને કર્મોનો પરસ્પર કાર્ય-કારણભાવ છે, જેવી રીતે બીજ અને અંકુરનો. તાત્પર્ય એ છે કે—જેવી રીતે બીજથી અંકુર ઉત્પન્ન થાય છે, અને અંકુરથી ક્રમશઃ (ક્રમે-ક્રમે) બીજની ઉત્પત્તિ થાય છે. તે પ્રમાણે શરીરથી કર્મ અને કર્મથી શરીર ઉત્પન્ન થાય છે. આ પરસ્પરનો કાર્ય-કારણ ભાવ અનાદિ કાલથી ચાલ્યો આવે છે. જે બે પદાર્થોમાં પરસ્પર કાર્ય—કારણભાવ હોય છે તેનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન જોવામાં આવે છે. જેવી રીતે પૂર્વ કહેલ બીજ અને અંકુરનો, અથવા મરઘી અને ઇંડાનો, એ પ્રમાણે શરીર અને કર્મનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન છે.

(६) अकर्मवादिमतनिराकरणम्—

यः पुनरदृष्टं कर्म नास्तीति मन्यते स च नास्तिकः प्रष्टव्यः-अयमदृष्टाभावः किम् अप्रत्यक्षत्वात् , विचाराक्षमत्वात् , साधकाभावाद् वा मन्यसे ?

अप्रत्यक्षत्वान्नादृष्टाभावः सिध्यति, यतस्तव यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीति स्वीकारे त्वदीयपितामहादेरप्यभावः स्यात् , तस्य त्वज्जन्मतः पूर्वमेवातीतत्वेन तवाप्रत्यक्षत्वात् । तथा च भवन्मते पितामहादेरतीतकालिकसत्ताया अभावेन भवतोऽपि सत्ता कथमुपपद्येत ? ।

---

(६) अकर्मवादी के मत का निराकरण—

जो नास्तिक यह मानता है कि—अदृष्ट कर्म का सद्भाव नहीं है, उससे पूछना चाहिए कि—तुम अदृष्ट के अभाव को क्यों मानते हो ? प्रत्यक्ष न होने से, विचार को सहन न करने से अर्थात् विचारके योग्य नही होने से, या साधक प्रमाणों का अभाव होने से अदृष्ट का अभाव कहते हो ?

प्रत्यक्ष न होने मात्र से अदृष्ट का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता । जो तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता वह होता ही नहीं है, ऐसा मान लिया जाय तो तुम्हारे पितामह आदि का भी अभाव हो जायगा । वह तुम्हारे जन्म से पहले ही गुजर चुके हैं, अतः तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे सकते । ऐसी अवस्था में तुम्हारे पितामह आदि की भूतकालीन सत्ता का अभाव होजाने के कारण तुम्हारी सत्ता भी खतरे में पड जायगी ।

---

(૬) અકર્મવાદીના મતનું નિરાકરણ—

જે નાસ્તિક એવું માને છે કેઃ—અદૃષ્ટ કર્મનો સદ્ભાવ (અસ્તિત્વ) નથી, તેમને પૂછવું જોઈએ કે—તમે અદૃષ્ટનો અભાવ શા માટે માનો છો ? પ્રત્યક્ષ નહી હોવાથી, વિચારને સહન નહી કરવાથી અર્થાત્—વિચારવાયોગ્ય નહિ હોવાથી, અથવા સાધક પ્રમાણોનો અભાવ હોવાથી અદૃષ્ટનો અભાવ કહો છો ?

પ્રત્યક્ષ નહી હોવા માત્રથી અદૃષ્ટનો અભાવ સિદ્ધ થઈ શકતો નથી, જે વસ્તુ તમને પ્રત્યક્ષ જોવામાં ન આવે તે વસ્તુ હોયજ નહી, એ પ્રમાણે જો માની લેશો તો તમારા પિતામહ (બાપનો બાપ) આદિનો અભાવ થઈ જશે, કારણ કે તે તમારા જન્મતા પહેલાજ ગુજરી ગયા છે તેથી તમને તે પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવતા નથી, એવી અવસ્થામાં તમારા પિતામહ આદિની ભૂતકાલીન સત્તાનો અભાવ થઈ જવાથી તમારી સત્તા પણ ખતરામાં (ભયમાં) પડી જશે.

अथ सर्वप्रमातॄणां यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीत्यपि न संभवति। यतः सर्वमतीन्द्रियं वस्तु सर्वप्रमातॄणां प्रत्यक्षं न भवति, तादृशज्ञानशक्तेरभावात्। अस्माभिस्तु समस्तभावावभासनभास्करः सर्वज्ञः स्वीक्रियते।

विचाराऽक्षमत्वमपि न युक्तं, कर्कश(दुर्धर्ष)तर्कैस्तर्क्यमाणस्य कर्मणः सद्भावसंभवात्।

साधकाभावादपि नादृष्टाभावः, पूर्वोक्तागमानुमानयोस्तत्साधकयोः सत्त्वात्। यथा च-शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्येत्यागमः। शुभयोगः पुण्यस्य, अशुभयोगः पापस्य कारणमित्यर्थः।

अगर कहा जाय कि एक-दो के अप्रत्यक्ष होने से किसीका अभाव नहीं होता वरन् जो वस्तु सभी के अप्रत्यक्ष है, उसका अभाव होता है। यह कथन भी ठीक नहीं है, क्यों कि सब अतीन्द्रिय वस्तुएँ सब प्रमाताओं के प्रत्यक्ष नहीं होती, इसका कारण विशिष्ट ज्ञानशक्ति का अभाव है। मगर हम लोग तो समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में सूर्य के समान सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं।

अदृष्ट, विचार को सहन नहीं करता अर्थात् विचारने के योग्य नही है, यह कथन भी युक्त नहीं, कठोर तर्कों द्वारा विचार करने से कर्म का अस्तित्व सिद्ध हो ही जाता है।

साधक प्रमाणों का अभाव होने से कर्म का अभाव बतलाना भी ठीक नहीं, क्यों कि पूर्वोक्त आगम और अनुमान प्रमाण उसका सद्भाव सिद्ध करते हैं। '**शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य**' यह आगमप्रमाण है। अर्थात् शुभयोग पुण्य का और अशुभ योग पाप का कारण होता है।

અથવા કહેશો કે એક-બેના અપ્રત્યક્ષ હોવાથી કોઈનો અભાવ થતો નથી. પરન્તુ જે વસ્તુ સર્વને અપ્રત્યક્ષ છે તેનો અભાવ હોય છે. એમ કહેવું તે પણ ઠીક નથી, કારણ કે સર્વ અતીન્દ્રિય વસ્તુઓ પ્રમાતાઓને પ્રત્યક્ષ થતી નથી. તેનું કારણ વિશિષ્ટ જ્ઞાનશક્તિનો અભાવ છે. અથવા અમે તો સમસ્ત પદાર્થોને પ્રકાશિત કરવામાં સૂર્યના સમાન સર્વજ્ઞનો સ્વીકાર કરીએ છીએ.

અદૃષ્ટ, વિચારને સહન કરતા નથી અર્થાત્ વિચારવા યોગ્ય નથી, એમ કહેવું તે પણ યુક્ત નથી, કઠિન તર્કો દ્વારા વિચાર કરવાથી કર્મનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થઈ જ જાય છે.

સાધક પ્રમાણોનો અભાવ હોવાથી કર્મોનો અભાવ બતાવવો તે પણ ઠીક નથી; કારણ કે પૂર્વોક્ત આગમ અને અનુમાન પ્રમાણ તેનો સદ્ભાવ (અસ્તિત્વ-હોવાપણું) સિદ્ધ કરે છે. शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' એ આગમપ્રાણ છે, અર્થાત્ શુભ યોગ પુણ્યનું અશુભ યોગ પાપનું કારણ હોય છે.

कार्यविशेषेण कारणस्यानुमानं भवति यथा कार्यविशेषः सकारणकः, कार्यत्वात्, कुम्भवत्। उक्तञ्च—

"तुल्याकृत्योश्च यमयों,-र्दृश्यते महदन्तरम्।

चारित्र-वीर्य-विज्ञान,-वैराग्या-रोग्य-संपदाम्" ॥१॥ इति।

अदृष्टरूपकारणमन्तरेणेदं महदन्तरं न संभवति, तस्मादवश्यं स्वीकरणीयं कर्म।

(७) बन्धस्वरूपनिरूपणम्—

अत्र बन्धशब्देन भावबन्धो गृह्यते, न तु निगडादिबन्धरूपो द्रव्यबन्धः। बन्धनं बन्धः। कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामात्मप्रदेशानां च परस्परं क्षीर-

---

कार्यविशेष से कारण का अनुमान होता है। जैसे—इस कार्य का कोई कारण है, क्यों कि कार्य है, जैसे—घट, कहा भी है—

"समान आकृति वाले यमल (जोडली सन्तान) में चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य, और सम्पत्ति का महान् अन्तर दिखाई देता है" ॥ १ ॥

अदृष्टरूप कारण के विना यह महान् अन्तर नहीं हो सकता, अत एव कर्म अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

(७) बन्ध के स्वरूपका निरूपण—

बन्ध—शब्द से यहाँ भावबन्ध का ग्रहण करना चाहिए। बेडी आदि द्रव्यबन्धका नहीं। कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्धों का और आत्मप्रदेशों का आपस में दूध

કાર્ય-વિશેષથી કારણનું અનુમાન થાય છે જેવી રીતે આ કાર્યનું કોઈ કારણ છે, કારણ કે કાર્ય છે, જેવી રીતે ઘટ. કહ્યું પણ છે—

'સમાન આકૃતિ વાળાં યમલ-જોડલાં સંતાનમાં ચારિત્ર, વીર્ય, વિજ્ઞાન, વૈરાગ્ય, આરોગ્ય અને સમ્પત્તિનું મહાન અંતર જોવામાં આવે છે" ॥૧॥

અદૃષ્ટરૂપ કારણ વિના આ મહાન અન્ત હોઈ શકે નહિ, એ કારણથી કર્મનો અવશ્ય સ્વીકાર કરી લેવો જોઈએ.

(૭) બંધસ્વરૂપનું નિરૂપણ—

બંધ-શબ્દથી અહિં ભાવ-બંધનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ, બેડી આદિ દ્રવ્યબંધનું નહિ, કર્મવર્ગણાને યોગ્ય પુદ્ગલસ્કંધોનો અને આત્મ-પ્રદેશોનો પરસ્પર દૂધ અને

नीरवत् सम्बन्धो बन्धः। यद्वा-बध्यते=अस्वातन्त्र्यमापद्यते आत्मा येन, सबन्धः। ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपुद्गलानामवस्थानं हि जीवस्याऽनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य-रूपसामर्थ्यप्रतिबन्धकतया स्वातन्त्र्यविघातकं भवति।

यद्यपि निश्चयनयेन रागद्वेषरहितोऽयमात्मा, तथाप्यसौ व्यवहारनयेन रागद्वेषरूपभावकर्मणां ज्ञानावरणीयादिद्रव्यकर्मणां च कर्ता भवति। आत्मसंलग्न-शरीरावगाहनक्षेत्रावस्थितकर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धाः स्वकीयोपादानकारणशक्त्यैव कर्मरूपामवस्थां प्राप्नुवन्ति। ते च कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशैः सह परस्पर-मेकक्षेत्रावगाहरूपं बन्धं क्षीरनीरवत् प्राप्नोति। यथा समुड्डीयमानानि रजांसि

और पानी की तरह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है। आत्मा-जीव जिस के द्वारा बाँधा जाय=पराधीन किया जाय, वह बन्ध है। ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की स्थिति, जीव के अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप सामर्थ्य में बाधक होने के कारण स्वतन्त्रता का घात करने वाली है।

यद्यपि निश्चयनय से आत्मा राग-द्वेष से रहित है, किन्तु व्यवहारनय से राग-द्वेषरूप भावकर्मों का, तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों का कर्ता है। जिस आकाश-क्षेत्र में आत्मा से संबद्ध शरीर है, इसी आकाशक्षेत्र में स्थित कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्ध, अपनी उपादानकारण-शक्ति से ही कर्मरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं। वे कर्मपुद्गल आत्मप्रदशों के साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप बन्ध को क्षीर-नीर की नाईं प्राप्त होते हैं। जैसे-उडती हुई रज, तेल से चिकने घडे आदि पर चिपक जाती है,

---

પાણીની પ્રમાણે સમ્બન્ધ થઈ જવો તે બંધ છે. આત્મા-જીવ જેના દ્વારા બંધાઈ જાય-પરાધીન થઈ જાય. તે બંધ છે. જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની સ્થિતિ, જીવના અનન્ત જ્ઞાન, દર્શન સુખ અને વીર્યરૂપ સામર્થ્યમાં બાધક હોવાના કારણે સ્વતં-ત્રતાનો ઘાત કરવા વાળી છે.

જો કે નિશ્ચયનયથી આત્મા રાગ-દ્વેષથી રહિત છે, પરન્તુ વ્યવહારનયથી રાગ-દ્વેષરૂપ ભાવકર્મોનો, તથા જ્ઞાનાવરણ આદિ દ્રવ્યકર્મોનો કર્તા છે. જે આકાશક્ષેત્રમાં આત્માથી સંબદ્ધ શરીર છે, તે આકાશક્ષેત્રમાં સ્થિત (રહેલા) કર્મ-વર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલસ્કંધ, પોતાની ઉપાદાન કારણ-શક્તિથી જ કર્મરૂપ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે, તે કર્મપુદ્ગલ આત્મપ્રદેશોની સાથે પરસ્પર એકક્ષેત્રાવગાહરૂપ બંધને ક્ષીર-નીરના ન્યાય પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે; જેવી રીતે ઉડતી રજ. તેલના ચિકણા ઘડા આદિને

तैलस्निग्धे घटादौ संश्लिष्टानि भवन्ति, तथा रागद्वेषरूपतैलस्निग्धमलिनात्मप्रदेशेषु कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलाः स्वकीयोपादानशक्त्या ज्ञानावरणीयादिकर्मरूपामवस्थां प्राप्य संश्लिष्टा भवन्ति ।

परमाणुरूपा द्विप्रदेशिप्रभृतिस्कंधरूपाश्च पुद्गला औदारिक–वैक्रिया–ऽऽहारक–तैजस–भाषा–श्वासोच्छ्वास–मनः–कार्मण–भेदादष्टविधाः । तत्र कर्मवर्गणापुद्गला अपि समस्तलोकं व्याप्य वर्तन्ते, यत्र संसारिणां शरीराणि सन्ति, तत्रापि तद्बहिश्चापि सर्वत्र ते वर्तन्ते, तत्र कर्मयोग्यपुद्गला आत्मना परिगृहीताः कर्मरूपेण परिणता भवन्ति ।

रागद्वेषपरिणत्याऽऽर्द्रीकृतस्यात्मनो मनोवाक्कायरूपकरणसाहाय्येन

उसीप्रकार राग–द्वेषरूपी तेल से चिकने मलिन आत्मप्रदेशों में, कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल, अपनी–अपनी उपादानशक्ति से ज्ञानावरण आदि कर्म–रूप अवस्था को प्राप्त कर के चिपक जाते हैं ।

परमाणुरूप और द्विप्रदेशी वगैरह स्कन्धरूप पुद्गल औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन और कार्मण के भेद से आठ प्रकार के होते हैं । इन में से कार्मणवर्गणा के पुद्गल भी सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं । जहां संसारी जीवों के शरीर हैं, वहां भी हैं, और बाहर भी सर्वत्र हैं । ये कर्मयोग्य पुद्गल आत्माद्वारा जब ग्रहण किये जाते हैं तब कर्मरूप में परिणत हो जाते हैं ।

राग–द्वेषरूप परिणति से युक्त आत्मा का, मन, वचन, काय, की सहायता से

ચોંટી જાય છે, તે પ્રમાણે રાગ–દ્વેષ રૂપી તેલથી ચિકણા અને મલિન આત્મપ્રદેશોમાં કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલ પોત–પોતાની ઉપાદાનશક્તિથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ–રૂપ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરીને ચોંટી જાય છે.

પરમાણુરૂપ અને દ્વિ–પ્રદેશી વગેરે સ્કંધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક. તૈજસ, ભાષા, શ્વાસોચ્છ્વાસ, મન અને કાર્મણના ભેદથી આઠ પ્રકારના હોય છે. તેમાંથી કાર્મણવર્ગણાના પુદ્ગલ પણ સંપૂર્ણ લોકમાં વ્યાપ્ત છે. જ્યાં સંસારી જીવોનાં શરીર છે ત્યાં પણ છે અને બહાર સર્વત્ર પણ છે. તે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા જ્યારે ગ્રહણ કરવામાં આવે છે ત્યારે તે કર્મરૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે.

રાગ–દ્વેષરૂપ પરિણતિયુક્ત આત્માની મન, વચન અને કાયાની સહાયતાથી

वीर्यगुणपरिणामात्मिका शुभाशुभक्रिया भवति। इयं क्रिया चात्मनः प्रदेशानां परिस्पन्दः, कम्पनं, व्यापारो, योग इति चोच्यते। इयमेव मनोवाक्काययोग इति च कथ्यते। इयमात्मनो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मसम्बन्धरूपे बन्धे हेतुश्च।

आत्मनः शुभाशुभक्रियायां सत्यामात्मसंलग्नानादिकार्मणशरीरेणात्माऽनन्तानन्तप्रदेशिस्कन्धरूपांश्चतुःस्पर्शान् कर्मयोग्यपुद्गलानादाय कार्मणशरीरतया परिणमयति। आत्मसंलग्नं यदनादि कार्मणशरीरं, तद्धि आत्मैक्यात् कर्मयोग्यपुद्गलानां ग्रहणे स्वाधीनकरणे स्वस्मिन्नेकत्वपरिणामकरणे च समर्थं भवति। अनादिकार्मणशरीरसम्बन्धादेव संसारी जीवो मूर्तोऽस्ति। मूर्तत्वादेव च तस्य पौद्गलिककर्मसम्बन्धो भवति।

वीर्यगुण के परिणमनरूप शुभा-शुभ क्रिया होती है। इस क्रिया को आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन, कम्पन, व्यापार या योग कहते हैं। यही मन, वचन और काय का योग कहलाता है। यही क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बन्ध का कारण है।

आत्मा की जब शुभ या अशुभ क्रिया होती है तो आत्मा के साथ पहले से बंधे हुए कार्मणशरीर के द्वारा आत्मा, अनन्तानन्तप्रदेशी—स्कन्धरूप; चौस्पर्शी कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर के कार्मणशरीर के रूप में परिणत करता है। आत्मा से सम्बद्ध अनादिकालीन कार्मणशरीर आत्मा के साथ एकमेक होने के कारण कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करने में, अपने अधीन करने में और अपने साथ एकमेक करलेने में समर्थ होता है। अनादिकालीन कार्मण-शरीर के सम्बन्ध से ही संसारी जीव मूर्त है, और मूर्त होने के कारण ही उसका पौद्गलिक कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है।

વીર્યગુણના પરિણમનરૂપ શુભાશુભ ક્રિયા થાય છે. તે ક્રિયાને આત્માના પ્રદેશોનું પરિસ્પન્દન, કમ્પન, વ્યાપાર અથવા યોગ કહે છે. આજ મન વચન અને કાયાનો યોગ કહેવાય છે. આ ક્રિયા જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોના બંધનું કારણ છે.

આત્માની જ્યારે શુભ અથવા અશુભ ક્રિયા થાય છે તો આત્માની સાથે પહેલાથી બાંધેલા કાર્મણશરીરદ્વારા આત્મા અનંતાનન્તપ્રદેશી-સ્કંધરૂપ, ચૌસ્પર્શી કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરીને કાર્મણશરીરના રૂપમાં પરિણત કરે છે. આત્માથી સંબદ્ધ અનાદિકાલીન કાર્મણશરીર આત્માની સાથે એકમેક હોવાના કારણે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરવામાં, પોતાના આધીન કરવામાં અને પોતાની સાથે એકમેક કરી લેવામાં સમર્થ થાય છે. અનાદિકાલીન કાર્મણશરીરના સંબંધથી જ સંસારી જીવ મૂર્ત્ત હોવાના કારણે જ તેનો પૌદ્ગલિક કર્મોની સાથે સમ્બન્ધ થાય છે.

यथा दीपक ऊष्मगुणयोगाद् वर्तिद्वारा तैलमादाय ज्वालारूपेण परिणम-यति तथा रागद्वेषोष्मगुणसम्बन्धान्मनोवागादियोगवर्त्याऽऽत्मदीपः कर्मयोग्यपुद्गल-स्कन्धतैलमादाय कर्मज्वालारूपेण परिणतं करोति। मनोवागादिरूपकरणसंयोगादा-त्मनो वीर्यपरिणामो भवति, अतो मनोवागादिव्यापारो योगशब्देनोच्यते। यथा मृन्मय-घटस्याग्निसंयोगाद् रक्तत्वादिपरिणतिर्घटस्यैव भवति तथा मनोवागादिसंयोगात् शुभाशुभक्रियारूपा वीर्यपरिणतिरात्मन एव भवति, न तु पुद्गलरूपमनोवागादेः।

यथा च तैलाभ्यक्ते शरीरे जलार्द्रे वस्त्रे वा धूलिराश्लिष्टा भवति, तथा

जैसे—दीपक उष्मागुण के कारण बत्तीद्वारा तैल ग्रहण कर के ज्वाला के रूप में परिणत करता है, उसी प्रकार राग—द्वेष रूप उष्मागुणके सम्बन्ध से मन, वचन आदि योगों की बत्ती द्वारा आत्मरूपी दीपक कर्मयोग्यपुद्गलस्कन्धरूप तैल को ग्रहण कर के कर्मरूप ज्वाला में परिणत कर लेता है। मन, वचन और कायरूप करण के द्वारा आत्मा का वीर्य-रूप परिणमन होता है। इसीलिए मन, वचन, आदि का व्यापार योग कहलाता है। जैसे —अग्नि के संयोग से मिट्टी के घडे की ललाई आदिरूप परिणति होती है, और वह घडे की ही कहलाती है, उसीप्रकार मन, वचन आदि के संयोग से शुभा—शुभक्रियारूप वीर्य की परिणति आत्मा की ही होती है, पुद्गलरूप मन, वचन आदि की नहीं।

जैसे तेल से लिप्त शरीर पर या भीगे हुए वस्त्र पर धूल लग जाती है,

---

જેવી રીતે દીપક ઉષ્માગુણના કારણે બત્તીદ્વારા તેલને ગ્રહણ કરીને જ્વાળાના રૂપમાં પરિણત કરે છે તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપ ઉષ્માગુણના સમ્બન્ધથી મન વચન આદિ યોગોની બત્તી દ્વારા આત્મારૂપી દીપક કર્મયોગ્ય—પુદ્ગલસ્કંધરૂપ તેલને ગ્રહણ કરીને કર્મરૂપ જ્વાલામાં પરિણત કરી લે છે. મન, વચન અને કાયારૂપ કરણદ્વારા આત્માનું વીર્યરૂપ પરિણમન થાય છે; એ કારણથી મન, વચન આદિનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે. જેવી રીતે અગ્નિના સંયોગથી માટીના ઘડાની જ લાલી (રાતાશપણું) રૂપ પરિણતિ થાય છે, અને તે ઘડાની જ કહેવાય છે. તે પ્રમાણે મન, વચન આદિના સંયોગથી શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્યની પરિણતિ આત્માની જ થાય છે. પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિની નહિ.

જેવી રીતે તેલથી લિપ્ત શરીર, પર, અથવા ભિંજાએલા વસ્ત્ર પર ધૂળ લાગી જાય છે. તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપી તેલથી યુક્ત આત્માના કાર્મણશરીરરૂપ

रागादिरूपतैलाभ्यक्तस्यात्मनः कार्मणशरीरपरिणामो नवीनकर्मग्रहणे योग्यतां संपादयति। आत्मशरीरयोरैक्ये सति सम्यग्ज्ञानाभावरूपानाभोगवीर्यतः कर्मबन्धो भवति। इत्थं कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणीयादिकर्मतया परिणतानां सकषायस्यात्मनः सकलप्रदेशेषु लोलीभावो बन्ध इति बोध्यम्।

(८) बन्धकारणनिरूपणम्-

बन्धस्य पञ्च साधारणकारणानि मिथ्यात्वाऽ-विरति-प्रमाद-कषाय-योग-भेदात्।

तत्रातत्त्वे तत्त्वाध्यवसायरूपो विपरीतावबोधो मोहकर्मोदयजनित आत्म-परिणामो मिथ्यात्वम्। यद्वा-कुदेव-कुगुरु-कुधर्मेष्वभिरुचिरूपमतत्त्वार्थश्रद्धानं

उसी प्रकार राग-द्वेषरूपी तेल से युक्त आत्मा का कार्मणशरीररूप परिणाम नवीन कर्मों को ग्रहण करने में योग्य हो जाता है। आत्मा और शरीर के एकमेक होने पर सम्यग्ज्ञान के अभावरूप अनाभोग वीर्य से कर्मबन्ध होता है। इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मरूप में परिणत कार्मणवर्गणाओं के योग्य पुद्गलों का कषाययुक्त-आत्मा के समस्त प्रदेशों में एकमेक हो जाना बन्ध है।

(९) बन्धके कारण-

बन्ध के साधारण कारण पांच हैं-(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग।

अतत्त्व को तत्त्व समझनेरूप मोहनीयकर्मजन्य विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं, अथवा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म में रुचिरूप अतत्त्व का

પરિણામ નવીન કર્મો ગ્રહણ કરવામાં યોગ્ય થઈ જાય છે. આત્મા અને શરીરના એકમેક થવાથી સમ્યગ્જ્ઞાનના અભાવરૂપ અનાભોગ વીર્યથી કર્મબંધ થાય છે.

એ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મરૂપમાં પરિણત કાર્મણવર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલોનું કષાયયુક્ત આત્માના સમસ્ત પ્રદેશોમાં એકમેક થઈ જવું તે બંધ છે.

(૮) બંધનું કારણ--

બંધના સાધારણ કારણો પાંચ છે.—(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) અવિરતિ, (૩) પ્રમાદ, (૪) કષાય અને (૫) યોગ.

અતત્ત્વને તત્ત્વ સમજવા રૂપ મોહનીયકર્મજન્ય, વિપરીતજ્ઞાનરૂપ આત્મ-પરિણામને મિથ્યાત્વ કહે છે. અથવા કુદેવ કુગુરૂ, અને કુધર્મમાં રૂચિરૂપ અતત્ત્વની

मिथ्यात्वम् १। सावद्ययोगेषु प्रवृत्तिरविरतिः२। सदुपयोगाभावः प्रमादः, मोक्षमार्गं प्रति शैथिल्यं वा प्रमादः३। कष्यते=पुनःपुनर्जन्ममरणादिक्लेशोऽनुभूयते येन स कषायः, मोहनीयकर्मोदयजनित आत्मपरिणतिविशेषः, यद्वा-कष्यते यत्र शारीरिकमानसिकदुखैः, स कषः-संसारः, तस्य आयः-प्राप्तिकारणं कषायः= क्रोधादिः ४। युज्यते-आत्माऽनेनेति योगः=मनोवाक्कायव्यापाररूपः ५। उक्तञ्च-

"पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं १, अविरई २, पमाया ३, कसाया ४, जोगा ५"। (समवा० समवाय ५) 'आसवदारा' इति-आस्रवो बन्धकारणम्।

श्रद्धान मिथ्यात्व कहलाता है १। सावद्य योगों में प्रवृत्ति करना अविरत्ति है २। सम्यक् उपयोग (यतना) का अभाव प्रमाद कहलाता है, या मोक्षमर्ग के विषय में शिथिलता होना प्रमाद है ३। जिस के द्वारा आत्मा कषा जाय अर्थात् वारंवार जन्म-मरण का क्लेश भोगा जाय उसे कषाय कहते हैं। कषाय, मोहकर्म से उत्पन्न आत्मा की एक परिणति है। अथवा - जहाँ शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से जीव कषा जाय (युक्त हो) उसे कष अर्थात् संसार कहते हैं और उस कष (संसार) की आय-प्राप्ति जिस से हो वह कषाय कहलाता है ४। जिस से आत्मा व्याप्त हो, ऐसा मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलाता है ५। कहा है—

"पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा"। (समवायाङ्ग, समवाय ५) यहाँ 'आसवदारा' का अर्थ है-आश्रव के द्वार अर्थात् बन्धके कारण।

શ્રદ્ધા તેને મિથ્યાત્વ કહે છે (૧). સાવદ્ય યોગોમાં પ્રવૃત્તિ કરવી તે અવિરતિ છે (૨). સમ્યક્ ઉપયોગનો અભાવ તે પ્રમાદ કહેવાય છે, અથવા મોક્ષમાર્ગના વિષયમાં શિથિલતા થવી તે પ્રમાદ છે (૩). જેના દ્વારા આત્મા કષાય, અર્થાત્ વારંવાર જન્મ મરણનો ક્લેશ ભોગવવાય તેને કષાય કહે છે. કષાય, મોહ કર્મથી ઉત્પન્ન આત્માની એક પરિણતિ છે. અથવા—જ્યાં શારીરિક અને માનસિક દુઃખોથી જીવ કષાય અર્થાત્ પીડાય તેને કષ અર્થાત્ સંસાર કહે છે, અને તે સંસારની આય-પ્રાપ્તિ જેનાથી હોય તે કષાય કહેવાય છે (૪). જેનાથી આત્મા વ્યાપ્ત હોય એવા મન, વચન અને કાયાના વ્યાપાર તે યોગ કહેવાય છે. (૫), કહ્યું છે કે :—

"पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया जोगा." (સમવાયાંગ, સમવાય ૫,) અહિં "आसवदारा" નો અર્થ એ છે કેઃ-આશ્રવના દ્વાર, અર્થાત્ બંધના કારણ.

एषु पञ्चसु कारणेसु कषायः प्रधानम्। स च क्रोधमानमायालोभ-भेदाच्चतुर्विधः। चतुर्विधोऽप्ययं कषायो रागद्वेषान्तर्गत एवास्ति। उक्तञ्च—

"दोहिं ठाणेहिं पावकम्मा बंधति, तंजहा-रागेण य, दोसेण य। रागे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-माया य लोभे य। दोसे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-कोहे य माणे य" (स्था० स्थान २ उ०)

बन्धश्चतुर्विधः-प्रकृति-स्थित्य-नुभाव-प्रदेशभेदात्। उक्तञ्च—

"चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तंजहा-पगइबंधे१, ठिइबंधे२, अणुभावबंधे३, पएसबंधे४।" (समवायाङ्ग. समवाय४)

इन पांच कारणों में कषाय प्रधान है। क्रोध, मान, माया और लोभ के भेदसे वह चार प्रकार का है। कषाय के ये चारों भेद राग और द्वेष में ही अन्तर्गत हो जाते हैं। कहा भी है—

"दो स्थानों से पाप कर्मों का बन्ध होता है। वह इस प्रकार-राग से और द्वेष से। राग दो प्रकार का है-माया और लोभ। द्वेष भी दो प्रकार का है-क्रोध और मान"। (स्था० स्थान २ उ. २)

बन्ध चार प्रकार का है-(१) प्रकृति-बन्ध, (२) स्थिति बन्ध, (३) अनुभाव-बन्ध; और (४) प्रदेश-बन्ध। कहा भी है—

"बन्ध चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार-(१) प्रकृतिबन्ध, (२) स्थितिबन्ध, (३) अनुभावबन्ध, (४) प्रदेशबन्ध"। (सम. स. ४)

આ પાંચ કારણોમાં કષાય પ્રધાન છે:- મુખ્ય છે. ક્રોધ, માન, માયા અને લોભના ભેદથી તે ચાર પ્રકારના છે. કષાયના તે ચારે ય ભેદ રાગ-અને દ્વેષમાં સમાઈ જાય છે. કહ્યું છે કે:-

"બે સ્થાનોથી પાપકર્મોનો બંધ થાય છે. તે આ પ્રમાણે છે-રાગથી અને દ્વેષથી. રાગ બે પ્રકારનો છે-માયા અને લોભ. દ્વેષ પણ બે પ્રકારનો છે-ક્રોધ અને માન" (સ્થા. સ્થાન ૨-ઉ. ૨).

બંધ ચાર પ્રકારના છે-(૧) પ્રકૃતિબંધ, (૨) સ્થિતિબંધ, (૩) અનુભાવબંધ (૪) પ્રદેશબંધ. કહ્યું પણ છે-

"બંધ ચાર પ્રકારના છે. (૧) પ્રકૃતિબંધ, (૨) સ્થિતિબંધ, (૩) અનુભાવબંધ, (૪) પ્રદેશબંધ," (સમ૦ સ. ૪)

तत्र प्रकृतिः-स्वभावः। आत्मपरिगृहीतकर्मपुद्गलानां तच्छक्तिरूपेण परिणमनम्। यथा निम्बस्य तिक्तत्वम्, गुडस्य मधुरत्वम्। प्रकृतिर्द्विविधा-मूलप्रकृतिः, उत्तरप्रकृतिश्च। मूलरूपः कर्मणः स्वभावो मूलप्रकृतिः। मूलप्रकृतिरष्टधा-ज्ञानावरणीय१-दर्शनावरणीय२-वेदनीय३-मोहनीया४-ऽऽयुष्य५-नाम६-गोत्रा७-न्तराय८-भेदात्। उक्तञ्च—

"अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-णाणावरणिज्जं१, दंसणावरणिज्जं२, वेयणिज्जं३ मोहणिज्जं४, आउयं५, नामं६, गोयं७, अंतराइयं८"। (प्रज्ञापना० पद-२१ उ. १ सू. २८८)

प्रकृति अर्थात् स्वभाव। आत्मा के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मपुद्गलों में अमुक-अमुक प्रकार की शक्ति (स्वभाव) उत्पन्न हो जाना प्रकृतिबन्ध है। जैसे—नीम में कटुकता और गुड में मधुरता होती है।

प्रकृति दो प्रकार की है—मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति। कर्म का मूल स्वभाव मूलप्रकृति कहलाती है। मूलप्रकृति के आठ भेद हैं-(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, और (८) अन्तराय। कहा भी है:—

"आठ कर्मप्रकृतियां हैं, वे इस प्रकार-(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय।" (प्रज्ञा. पद २१ उ. १ सू. २८८)

પ્રકૃતિ અર્થાત્ સ્વભાવ,-આત્માદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મપુદ્ગલોમાં અમુક-અમુક પ્રકારની શક્તિ (સ્વભાવ) નું ઉત્પન્ન થઈ જવું તે પ્રકૃતિબંધ છે. જેવી રીતે લીંબડામાં કડવાશ અને ગોળમાં મધુરતા હોય છે.

પ્રકૃતિ બે પ્રકારની છે- (૧) મૂલપ્રકૃતિ અને (૨) ઉત્તરપ્રકૃતિ. કર્મનો મૂલ સ્વભાવ તે મૂલપ્રકૃતિ કહેવાય છે. તે મૂલ પ્રકૃતિના આઠ ભેદ છે- (૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય, (૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુ, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર અને (૮) અંતરાય. કહ્યું છે કે:-

"આઠ કર્મપ્રકૃતિઓ છે, તે આ પ્રમાણે-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર, અંતરાય." (પ્રજ્ઞા. પદ ૨૧ ઉ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

ज्ञानावरणीयं कर्म, जीवस्य ज्ञानगुणमावृणोति१। दर्शनावरणीयं कर्म दर्शनगुणम्२। वेदनीयकर्म जीवस्याव्याबाधगुणं संरुणद्धि३। मोहनीयकर्म जीवस्याविरतिं तत्त्वानभिरुचिं च जनयति४। आयुष्यकर्म जीवस्यामरत्वं प्रतिहन्ति५। नामकर्म जीवस्याऽमूर्तत्वं प्रतिबध्नाति६। गोत्रकर्म तस्यागुरुलघुगुणं व्याहन्ति७। अन्तरायकर्म जीवस्यानन्तवीर्यगुणं रुणद्धि८।

यथा-गवादिभक्षिततृणादयो दुग्धरूपेण परिणता भवन्ति, माधुर्य-स्वभावः सहैव जायते, स चैतावत्कालपर्यन्तस्थायीति स्थितिसमयमर्यादाऽपि जायते माधुर्ये तीव्रमन्दभावादिविशेषोऽपि भवति, तस्य दुग्धस्य पौद्गलिक-

---

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के ज्ञानगुणको ढँकता है, (२) दर्शनावरणीयकर्म दर्शनगुणको। (३) वेदनीयकर्म जीव के अव्याबाधगुण को रोकता है और (४) मोहनीय-कर्म जीव में अविरति और तत्त्व के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है। (५) आयुकर्म जीव की अमरता को रोकता है और (६) नामकर्म जीव के अमूर्तत्व गुण को रोकता है। (७) गोत्रकर्म अगुरु-लघुत्व गुण को नष्ट करता है और (८) अन्तरायकर्म जीव के अनन्त वीर्य का घात करता है।

जैसे गायद्वारा खाये हुए तृण आदि दूध रूप में परिणत होते हैं, और उन में मधुरता का स्वभाव भी साथ ही उत्पन्न हो जाता है। उस में अमुक कालपर्यन्त ठहरने की स्थिति-मर्यादा भी उत्पन्न हो जाती है, और मधुरता में तीव्रता या मन्दता की विशेषता भी आजाती है। उस दूध का पौद्गलिक परिणाम भी साथ ही उत्पन्न होता है।

---

(૧) જ્ઞાનાવરણીય કર્મ જીવના જ્ઞાન-ગુણને ઢાંકી દે છે; (૨) દર્શનાવરણીય કર્મ દર્શનગુણને ઢાંકે છે. (૩) વેદનીય કર્મ જીવના અવ્યાબાધ ગુણને, રોકી દે છે (૪) મોહનીય કર્મ જીવમાં અવિરતિ અને તત્ત્વપ્રતિ અરૂચી ઉત્પન્ન કરાવે છે. (૫) આયુ કર્મ જીવની અમરતાને રોકે છે. (૬) નામ-કર્મ જીવના અમૂર્ત્તત્વ ગુણને રોકે છે. (૭) ગોત્ર-કર્મ અગુરૂલઘુત્વ ગુણનો નાશ કરે છે અને (૮) અંતરાય કર્મ જીવના અનંતવીર્યનો ઘાત કરે છે.

જેવી રીતે ગાયે ખાધેલું ઘાસ આદિ દૂધ રૂપમાં પરિણત થાય છે અને તેમાં મધુરતાનો સ્વભાવ પણ સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે. તેમાં અમુકકાલપર્યન્ત સ્થિર રહેવાની સ્થિતિ-મર્યાદા પણ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. અને મધુરતામાં તીવ્રતા અથવા મંદતાની વિશેષતા પણ આવી જાય છે. તે દૂધનું પૌદ્ગલિક પરિણામ પણ સાથે જ

परिणामश्चापि सहैव प्रादुर्भवति तथा जीवेन परिगृहीतानां कर्मवर्गणायोग्य-पुद्गलानां कर्मरूपेण परिणमने चतुर्विधा अंशाः सहैव भवन्ति। त एवांशाः बन्धभेदाः प्रकृत्यादयः सन्ति।

कणिकागुडघृतकटुकादिद्रव्याणामौषधमोदकरूपेण परिणमने सहैवा-नेकाकारपरिणामो भवति। यथा मोदको हि कश्चिद् वातपित्तहरणशीलः, कश्चिद् बुद्धिवर्धनः, कश्चित् संमोहकारी, कश्चिन्मारकः, इत्यनेकाकारेण परिणमते जीवसंयोगात्, तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानामात्मसम्बन्धात्कर्मरूपेण परिणामे कश्चित्कर्मपुद्गलः ज्ञानमावृणोति, कश्चिद्दर्शनमावृणोति; अपरः सुखदुःखानुभवं जनयतीत्यादि योजनीयम्।

इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मवर्गणा के योग्यपुद्गलोंका कर्मरूप परिणमन होने पर चार प्रकार के अंश उन में साथ ही उत्पन्न होते है। वही अंश बन्ध के प्रकृति आदि भेद कहलाते हैं।

आटा, गुड, घी और कटुक आदि द्रव्यों से बने हुए लडडू में एक साथ अनेक प्रकार के परिणमन होते हैं। कोई लाडडू बात-पित्त का नाशक होता है, कोई बुद्धिवर्धक होता है, कोई सम्मोहजनक होता है, और कोई घातक होता है, इस प्रकार जीव के संयोग से लड्डू अनेक आकारों में परिणत होता है। इसी प्रकार कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गलों का आत्मा के निमित्त से कर्मरूप परिणमन होने पर कोई कर्म, ज्ञान को आच्छादित करता है, कोई दर्शनको कोई कर्म, सुख-दुःख का अनुभव कराता है। इत्यादि सब घटा लेना चाहिए।

ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે જીવદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોનું કર્મરૂપ પરિણમન થવાની સાથે ચાર પ્રકારના અંશ તેમાં સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે તે અંશ, બંધના પ્રકૃતિ આદિ ભેદ કહેવાય છે.

લોટ, ગોળ, ઘી અને કટુક આદિ દ્રવ્યો નાંખીને બનાવેલા લાડુમાં એક સાથે અનેક પ્રકારનું પરિણમન થાય છે, કોઈ લાડુ વાત-પિત્તનો નાશ કરનાર હોય છે. કોઈ બુદ્ધિપૂર્વધ હોય છે. કોઈ સંમોહ ઉત્પન્ન કરનાર હોય છે. અને કોઈ ઘાતક હોય છે. એ પ્રમાણે જીવના સંયોગથી લાડુ અનેક આકારોમાં પરિણત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોનું આત્માના નિમિત્તથી કર્મરૂપ પરિણમન થાય ત્યારે કોઈ કર્મ જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરે છે કોઈ દર્શનને, કોઈ કર્મ સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવે છે. એ પ્રમાણે સર્વ બાબતમાં ઘટાવી લેવું જોઈએ.

यथा वा-वातहारिद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या वातं हरति, पित्तोपशमकद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या पित्तं नाशयति, कफापहारकद्रव्यनिर्मितः कफं हरति। इत्येवं मोदकस्य नानाविधा प्रकृतिः। तस्यैव मोदकस्य स्थितिस्तु कस्यचिदेकदिनव्यापिनी, अपरस्य दिनद्वयस्थायिनी, अन्यस्य कस्यचिन्मासादिकालं व्याप्य स्थितिर्भवति, ततः परं तत्तन्मोदकस्य विनाशात्। एवं मोदकस्यानुभावो मधुरकटुकषायादिरूपः। रसस्तीव्रमन्दभावेन कस्यचिन्मोदकस्यैकगुणः, कस्यचिद् द्विगुणः, कस्यचित् त्रिगुणो भवति। प्रदेशोऽपि मोदकस्य कस्यचिदेककर्षमितः, कस्यचिद् द्विकर्षपरिमितः, कस्यचित्त्रिकर्षपरिमितो भवति।

अथवा जैसे-वातहारक द्रव्यों से बना मोदक स्वभाव से वात का नाश करता हैं, पित्तका नाश करने वाले द्रव्यों से बना मोदक पित्तका नाश करता है, कफहारी द्रव्यों से बना मोदक कफको दूर करता है, इस प्रकार मोदक की प्रकृति नाना प्रकार की है। कोई मोदक एकदिन तक हीं ठहर सकता है, कोई दो दिन तक और कोई महीने भरतक ठहर सकता है, उसके पश्चात् मोदक में वह शक्ति नहीं रहती है। इसी प्रकार किसी मोदक का मधुर या कटुक रस तीव्र होता है किसी का मन्द होता है, किसी मोदक में एकगुण रस होता है, किसी में द्विगुण और किसी में तीन गुणा, किसी मोदक का प्रदेशसमूह एक कर्ष परिमित होता है, किसीका दो कर्ष परिमित होता है, और किसीका तीन कर्ष परिमित होंता है।

અથવા-જેમ વાયુનાશક દ્રવ્યોથી બનેલા લાડુ સ્વભાવથી વાયુનો નાશ કરે છે; પિત્તને શાન્ત કરવા વાળા દ્રવ્યોથી બનેલા લાડુ પિતનો નાશ કરે છે. કફ નાશ કરનારા દ્રવ્યોથી બનેલા લાડુ કફને દૂર કરે છે, એ પ્રમાણે લાડુની પ્રકૃતિ જૂદા-જૂદા પ્રકારની છે. કોઈ લાડુ એક દિવસ સુધી રહી શકે છે, કોઈ બે દિવસ અને કોઈ મહિના સુધી રહી શકે છે. તે પછી લાડુમાં તે પ્રથમના જેવી શક્તિ રહેતી નથી. એ પ્રમાણે કોઈ લાડુનો મધુર અથવા કટુક રસ તીવ્ર હોય છે. કોઈ નો મંદ હોય છે, કોઈ લાડુમાં એક ગુણ રસ હોય છે, કોઈમાં દ્વિગુણ અને કોઈમાં ત્રણ ગુણ રસ હોય છે. કોઈ લાડુના પ્રદેશસમૂહ એક કર્ષ (બે તોલા) પરિમિત હોય છે. કોઈના બે કર્ષ (ચાર તોલા) પરિમિત હોય છે, અને કોઈના ત્રણ કર્ષ (છ તોલા) પરિમિતિ હોય છે.

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शनावरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

कर्मणः स्थितिश्च कस्यचित् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीरूपा, अपरस्य कस्यचित् कर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीरूपेत्यादि । रसस्तु कस्यचित् कर्मणस्तीव्रः, कस्यचित्तीव्रतरः, कस्यचित्तीव्रतमः, कस्यचिन्मन्दः, कस्यचिन्मन्दतर इत्यादि बोध्यम् ।

(१) प्रकृतिबन्धः-

॥ अष्टविध-मूलप्रकृतिबन्ध-लक्षणम्-

(१) ज्ञानस्य (विशेषबोधस्य) आवरकं कर्म ज्ञानावरणीयम् ।

इसी प्रकार किसी कर्म की ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शन को ढँकने की है, किसी की सुख-दुःख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म की तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है, किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है । किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(१) प्रकृतिबन्ध

(१) ज्ञान अर्थात् विशेष धर्मों के बाधको आच्छादित करने वाला कर्म ज्ञानावरण कहलाता है ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાવી પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને ઢાંકી દેવાની છે, કોઈની સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીશ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે. કોઈની સીતેર (૭૦) કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે. કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મંદ છે, કોઈનો મંદતર છે. ઈત્યાદિ સમજી લેવું જોઈએ.

(૧) પ્રકૃતિબંધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના બોધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે જ્ઞાનાવરણીય કહેવાય છે.

(२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आवरकं कर्म दर्शनावरणीयम् ।
(३) सुखदुःखानुभवजनकं कर्म वेदनीयम् ।
(४) मदिरावन्मोहजनकं कर्म मोहनीयम् ।
(५) भवधारणकारणं कर्म आयुष्कम् ।
(६) विशिष्टगतिजात्यादिप्राप्तिकारणं कर्म नाम ।
(७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
(८) दानलाभादिविघातकं कर्म अन्तरायः ।

मूलरूपः कर्मणः स्वभावोऽष्टविध इति मूलप्रकृतिरष्टविधा संक्षेपतः कथिता । अष्टानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरभेद एवोत्तरप्रकृतिः । सा च

---

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है ।

(३) सुख–दुःखका वेदन कराने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) भवधारणा का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान लाभ आदि में विघ्न डालने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, अतः आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है, इन आठ प्रकृतियों के अवान्तर भेदों को उत्तर–प्रकृति कहते हैं ।

---

(२) દર્શન અર્થાત્ સામાન્ય બોધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે દર્શનાવરણ છે.
(૩) સુખ–દુઃખનું વેદન કરાવવાવાળું કર્મ તે વેદનીયકર્મ કહેવાય છે.
(૪) મદિરાના સમાન મોહ ઉત્પન્ન કરાવવાવાળું કર્મ તે મોહનીય કહેવાય છે.
(૫) ભવ–ધારણ કરવાનું જે કારણ કર્મ તે આયુષ્ય કહેવાય છે.
(૬) વિશેષ પ્રકારની ગતિ–જાતિ આદિની પ્રાપ્તિનું કારણ તે નામકર્મ કહેવાય છે.
(૭) ઉત્કર્ષ અને અપકર્ષની પ્રાપ્તિનું કારણ તે ગોત્રકર્મ કહેવાય છે.
(૮) દાન–લાભ આદિમાં વિઘ્ન નાખવાવાળું તે અન્તરાય કર્મ કહેવાય છે.

કર્મનો મૂળ સ્વભાવ આઠ પ્રકારનો છે. તેથી આઠ પ્રકૃતિઓનું સંક્ષિપ્તમાં કથન કર્યું છે. એ આઠ પ્રકૃતિઓના અવાંતર ભેદોને ઉત્તરપ્રકૃતિ કહે છે. જીજ્ઞાસુ પુરૂષોને

विस्तरतो जिज्ञासूनां बोधाय शास्त्रे निर्दिष्टा। ज्ञानावरणीयादिमूलप्रकृतीनामष्टानामवान्तरभेदा यथाक्रमम्–(१) पञ्च, (२) नव, (३) द्वौ, (४) अष्टाविंशतिः, (५) चत्वारः, (६) द्विचत्वारिंशत्, (७) द्वौ, (८) पञ्च सन्ति। एतत्सर्वमागमतोऽववगन्तव्यम्।

(२) स्थितिबन्धः–

आत्मसंलग्नानां कर्मपुद्गलानां यया जघन्यमध्यमोत्कृष्टकालमर्यादयाऽऽत्मप्रदेशेष्ववस्थानं सा कालमर्यादा स्थितिबन्धः। किञ्च–अध्यसायविशेषगृहीतस्य कर्मदलिकस्य स्थितिकालनियमनं स्थितिबन्धः।

वेदनीयकर्मणो जघन्यस्थितिर्द्वादशमुहूर्तप्रमाणा। नाम–गोत्रकर्मणो-

---

विस्तार से जिज्ञासु परुषों की जानकारी के लिए शास्त्र में वर्णन किया गया है। ज्ञानावरणीय आदि मूल प्रकृतियों के अवान्तर भेदों की संख्या क्रम से पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पांच है। इन सबको आगम से समझ लेना चाहिए।

(२) स्थितिबन्ध

आत्मा के साथ लगे हुए कर्मपुद्गल जिस जघन्य मध्यम या उत्कृष्ट कालमर्यादा से आत्मप्रदेशों में स्थिर हैं, उस कालमर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं। अथवा यों कहिए कि–अध्यवसायविशेष द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मदलियों के आत्मा में ठहरने के काळसम्बन्धी नियमन को स्थितिबन्ध कहते हैं।

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की, तथा नाम और गोत्रकर्म की

જાણવા માટે શાસ્ત્રમાં વિસ્તારથી વર્ણનકરવામાં આવ્યું છે. જ્ઞાનાવરણીય આદિ મૂલ પ્રકૃતિના અવાન્તર ભેદોની સંખ્યા ક્રમથી–પાંચ, નૌ, બે, અઠાવીસ, ચાર, બેતાલીસ, બે, અને પાંચ છે, આ સર્વને આગમથી સમજી લેવું જોઈએ.

(૨) સ્થિતિબંધ

આત્માની સાથે લાગેલા કર્મપુદ્ગલ જે જઘન્ય, મધ્યમ, અને ઉત્કૃષ્ટ કાલ મર્યાદાથી આત્મપ્રદેશોમાં સ્થિતિ છે, તે કાલમર્યાદાને સ્થિતિબંધ કહે છે. અથવા એમ કહીએ કે–અધ્યવસાયવિશેષદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મદલિકોને આત્મામાં ટકી શકવાના કાલસંબંધી નિયમનને સ્થિતિબંધ કહે છે.

વેદનીય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ બાર મુહુર્તની, તથા નામ અને ગોત્ર કર્મની

जघन्य-स्थितिरष्टमुहूर्तप्रमाणा। ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीया-ऽऽयुष्या-ऽन्तरायकर्मणां जघन्यस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा।

ज्ञानावरणीय – दर्शनावरणीय – वेदनीयाऽ – न्तरायकर्मणामुत्कृष्टस्थितिः त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयकर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुत्कृष्टा। नाम–गोत्र–कर्मणोर्विंशतिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुत्कृष्टा। आयुष्यकर्मणस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा स्थितिरुत्कृष्टा। मध्यमा स्थितिस्त्व-संख्यातप्रकारा, कषायपरिणामतारतम्येन तस्या असंख्यातभेदात्।

आठ मुहूर्त की है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त की है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अन्तराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा–कोडी सागरोपम की मोहनीय कर्म की सत्तर कोडा–कोडी सागरोपम की, नाम और गोत्र कर्म की वीस कोडा–कोडी सागरोपम की है। आयुष्य कर्म की तेतीस सागरोपम की है। मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकार की है, कषायरूप परिणामों की हीनता और अधिकता के कारण उसके असंख्य प्रकार होते हैं।

स्थितिबन्धका कोष्टक टीका के अनुसार पृष्ट ३३६ से समझ लेना चाहिए।

આઠ મૂહુર્તની છે. જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય, આયુ અને અન્તરાય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ અન્તમુહૂર્તની છે.

જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય, અને અન્તરાય કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીશ કોડા–કોડી સાગરોપમની, મોહનીય કર્મની સીતેર (૭૦) કોડા–કોડી સાગરોપમની, નામ અને ગોત્ર કર્મની વીશ કોડા–કોડી સાગરોપમની, આયુષ્ય કર્મની તેત્રીસ સાગરોપમની છે. મધ્યમ સ્થિતિ અસંખ્યાત પ્રકારની છે. કષાયરૂપ પરિણામોની હીનતા અને અધિકતાના કારણે તેના અસંખ્ય પ્રકાર થાય છે.

સ્થિતિબંધનું કોષ્ઠક ટીકાના અનુસાર પૃષ્ઠ ૩૩૬થી સમજી લેવું જોઈએ.

स्थितिबन्ध—कोष्टकम् ।

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अबाधा-कालः	जघन्यः अबाधा-कालः	उत्कृष्टः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(१) ज्ञाना-वरणीय-कर्मणः	३० त्रिंशत्साग-रोपमकोटी-कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्तः	३००० त्रिसहस्र-वर्षाणि	अन्तर्मुहूर्त्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षोन-त्रिंशत्साग-रोपमकोटी-कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्त-न्यूनोऽन्त-र्मुहूर्त्तः
(२) दर्शना-वरणीय-कर्मणः	,,	,,	,,	,,	,,	,,
(३) वेदनीय-कर्मणः	,,	द्वादश १२ मुहूर्त्ताः	,,	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त्त-न्यूना एकादश ११ मुहूर्त्ताः
(४) अन्तराय-कर्मणः	,,	अन्तर्मुहूर्त्तः	,,	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त्त-न्यूनोऽन्त-र्मुहूर्त्तः
(५) मोहनीय-कर्मणः	७० सप्ततिसाग-रोपमकोटी-कोटयः	,,	७००० सप्तसहस्र-वर्षाणि	,,	सप्तसहस्र-वर्षोनसप्तति-सागरोपम-कोटीकोटयः।	,,

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अबाधा-कालः	जघन्यः अबाधा-कालः	उत्कृष्टः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः बाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(६) नाम-कर्मणः	२० विंशति-सागरोपम-कोटीकोटयः	अष्टौ मुहूर्त्ताः	२००० द्विसहस्र-वर्षाणि	,,	२००० द्विसहस्रवर्षोन-विंशतिसाग-रोपमकोटी-कोटयः	अन्तर्मुहुर्त्त-न्यूनाः सप्त मुहूर्त्ताः
(७) गोत्र-कर्मणः	,,	,,	,,	,,	,,	,
(८) आयुष्य-कर्मणः	पूर्वकोटि त्रि-भागाधिका-नि ३३ त्रय-स्त्रिंशत्साग-रोपमाणि ।	अन्त-र्मुहूर्त्तः	पूर्वकोटि-त्रिभागः	,,	पूर्वकोटि-त्रिभागोन-त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्त्त-न्यूनोऽन्त-र्मुहूर्त्तः

पूर्वकोटित्रिभागः-३३ लक्षाणि, ३३ सहस्राणि; ३ शतानि, ३३ पूर्वाणि, २३ लक्षाणि, ५२ सहस्रकोटिवर्षाणि । अन्तर्मुहूर्त्तस्यासंख्यभेदाः सन्ति, तेनान्त-र्मुहूर्त्तरूपाया जघन्यस्थितेरन्तर्मुहूर्त्त एवाबाधाकालः, तथाऽन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मु हूर्त्तश्च बाधाकाल इति विज्ञेयम् ।

(३) अनुभावबन्धः ।

कर्मपुद्गलानामेव शुभोऽशुभो वा घात्यघाती वा यो रसो विपाकः सोऽनुभावबन्धः। कर्मणां विशिष्टो विविधो वा पाको विपाकः। कर्मबन्धस्य फलं विपाकस्तस्योदयोऽनुभाव इति बोध्यम् । किञ्च-कर्मणां विविधफलदानशक्तिर्विपाकः सोऽनुभावः।

बन्धकारणस्य कषायपरिणामस्य तीव्रमन्दभावानुसारेण प्रत्येककर्मणि तीव्रमन्दफलदानशक्तिः प्रादुर्भवति। इदं च फलोत्पादनसामर्थ्यम्-अनुभवः, तत्तत्फलानुभवनं चेति ।

(३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलों का शुभ या अशुभ अथवा घाती या अघाती रूप जो रस है वही अनुभाव कहलता है। गृहीत कर्मपुद्गलों में यह रस उत्पन्न हो जाना अनुभाव या अनुभाग बन्ध है। कर्मों का विशिष्ट या विविध प्रकार का पाक विपाक कहलाता है। तात्पर्य यह है कि—कर्म का फल विपाक है, और उसका उदय अनुभाव कहा जाता है। अथवा कर्मों की भाँति-भाँतिकी फल देने की शक्ति को विपाक कहते हैं, और वही अनुमाव है, और तत्तत्फल का अनुभव भी अनुभाव है।

बन्ध के कारण कषायरूप परिणाम की तीव्रता और मन्दता के अनुसार प्रत्येक कर्म में तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इस फल को उत्पन्न करने का सामर्थ्य अनुभाव है।

(3) અનુભાવબંધ—

કર્મપુદ્ગલોનો શુભ અથવા અશુભ, અથવા-ઘાતી કે અઘાતીરૂપ જે રસ છે તે અનુભાવ કહેવાય છે ગૃહીત કર્મપુદ્ગલોમાં એ રસનું ઉત્પન્ન થવું તે અનુભાવ, અથવા અનુભાગ બંધ છે. કર્મોનો વિશિષ્ટ અથવા વિવિધ પ્રકારનો પાક તે વિપાક કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કેઃ-કર્મનું ફલ તે વિપાક છે, અને તેનો ઉદય તે અનુભાવ કહેવાય છે. અથવા કર્મોની તરેહ-તરેહની ફળ દેવાની શક્તિ ;તેને વિપાક કહે છે અને તેજ અનુભાવ છે અને તે તે ફળનો અનુભવ પણ અનુભાવ છે. *

બંધનાં કારણ કષાયરૂપ પરિણામની તીવ્રતા અને મન્દતાના પ્રમાણે પ્રત્યેક કર્મોમાં તીવ્ર અથવા મંદ ફલ દેવાની શક્તિ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે ફળને ઉત્પન્ન કરવાનું સામર્થ્ય તે અનુભાવ છે.

* "अणुभागे, अणुभावे, विवागे, रसे-त्ति एगट्ठा" अनुभागोऽनुभावो, विपाको रसः, इत्येकार्थकाः । અનુભાગ, અનુભાવ, વિપાક અને રસ એ બધા એકાર્થક છે.

कर्मणः फलप्रदानशक्तिरूपोऽयमनुभावो यत्कर्मनिष्ठस्तत्कर्मस्वभावानुसारं फलं प्रयच्छति, न त्वन्यकर्मस्वभावानुसारम्। यथा-ज्ञानावरणीयकर्मणोऽनुभाव-स्तत्कर्मस्वभावानुरूपं ज्ञानावरणमेव तीव्रं मन्दं वा फलं समुत्पादयति, न तु दर्शनावरणीय-वेदनीयादि-कर्मप्रकृत्यनुसारं दर्शनावरणं सुखदुःखानुभवादिरूपं फलम्। एवं दर्शनावरणीयकर्मणोऽनुभावस्तीव्रमन्दादिरूपेण दर्शनावरणमेव फलं ददाति, न तु ज्ञानावरणादिरूपमन्यकर्मप्रकृत्यनुसारम्।

अनुभावबन्धस्य चायं कर्मप्रकृत्यनुरूपेणैव फलदाननियमोऽपि ज्ञाना-

---

कर्म का फलदान-शक्तिरूप अनुभाव जिस कर्म में रहता है वह कर्म अपने स्वभाव के अनुसार ही फल देता है-दूसरे कर्म के स्वभाव के अनुसार नहीं। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव ज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार ही होता है अर्थात् वह तीव्र या मन्द रूप में ज्ञान का आच्छादन ही करता है। उस से दर्शनावरणीय या वेदनीय कर्म की प्रकृति के अनुसार दर्शन का आवरण अथवा सुख-दुःख का वेदन नहीं होता। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव तीव्र या मन्द रूप में दर्शन का आवरण करना ही है, ज्ञान का आवरण करना या अन्य कर्मप्रकृति के अनुसार फल देना नहीं।

अनुभावबन्ध का अपनी कर्मप्रकृति के अनुसार फल देने का यह नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों में ही लागू होता है; उत्तरप्रकृतियों के लिए

કર્મના ફલદાનશક્તિરૂપ અનુભાવ જે કર્મમાં રહે છે, તે કર્મ પોતાના સ્વભાવ પ્રમાણેજ ફલ આપે છે, બીજા કર્મના સ્વભાવ પ્રમાણે નહિ: જેવી રીતે કે-જ્ઞાનાવરણીય કર્મના અનુભાવ જ્ઞાનાવરણીયના સ્વભાવના પ્રમાણેજ હોય છે, અર્થાત્-તે તીવ્ર અથવા મંદરૂપમાં જ્ઞાનનુંજ અચ્છાદન કરે છે, તેનાથી દર્શનાવરણીય અથવા વેદનીય કર્મની પ્રકૃતિ અનુસાર દર્શનનું આવરણ અથવા સુખ-દુઃખનું વેદન થતું નથી. એ પ્રમાણે દર્શનાવરણીય કર્મનો અનુભાવ તીવ્ર અથવા મંદરૂપમાં દર્શનનું આવરણ કરવું તેજ છે, પરન્તુ જ્ઞાનનું આવરણ કરવું અથવા અન્ય કર્મપ્રકૃતિ અનુસાર ફળ આપવું તે નથી.

અનુભાવ બંધનો પોતાની કર્મપ્રકૃતિના અનુસાર ફળ આપવાનો આ નિયમ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ મૂલપ્રકૃતિઓમાંજ લાગુ થાય છે, પરન્તુ ઉત્તર પ્રકૃતિઓ માટે

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु। कस्यापि मूल-प्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात्। तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता भवन्ति। यथा-दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न

यह नियम नहीं है। किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है। वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल देता है।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान का आवरण करता है।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कभी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

આ નિયમ નથી. કોઈ પણ મૂલપ્રકૃતિની કોઈ ઉત્તરપ્રકૃતિ તે મૂલપ્રકૃતિની કોઈ બીજી ઉત્તર પ્રકૃતિના રૂપમાં પણ પરિણત થઈ શકે છે, કારણકે કર્મપુદ્ગલમાં એ પ્રમાણે પરિણમનની શક્તિ વિદ્યમાન છે. ત્યાં પ્રથમ વાળી ઉત્તરપ્રકૃતિમાં રહેલો અનુભાવ બદલી ગયેલી ઉત્તર પ્રકૃતિના સ્વભાવ અનુસાર તીવ્ર અથવા મંદ ફલ આપે છે.

જેમ—મતિજ્ઞાનાવરણીય જ્યારે શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય-સજાતીય ઉત્તર પ્રકૃતિના રૂપમાં પલટાય છે, ત્યારે મતિજ્ઞાનાવરણીયનો અનુભાવ પણ શ્રુતજ્ઞાનાવરણીયના સ્વભાવ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાનનું આવરણ કરે છે.

ઉત્તરપ્રકૃતિઓમાં કેટલીક એવી પણ પ્રકૃતિઓ છે કે જે સજાતીય હોવા છતાંય પણ અન્યરૂપમાં પલટતી નથી. જેવી રીતે-દર્શનમોહનીય કોઈ વખત ચારિત્રમોહનીયના

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदायुष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽध्यवसायसामर्थ्यात् स्थितिरसयोरपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिणमति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति । एवमुत्कृष्टा स्थितिर्जघन्यरूपेण परिणमति, जघन्या चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभावानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूतं भवति चेत् तदा तत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽपगता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुद्गलाः संलग्ना भवन्ति ।

बदलता, और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पलटता। उसी प्रकार नरकायु कभी तिर्यंचायु के रूप में नहीं पलटती और तिर्यंचायु किसी अन्य आयुके रूप में नहीं बदलती ।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के विषय में होता है उसी प्रकार अध्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है। कभी तीव्र रस, मंद रस के रूप में बदल जाता है, और कभी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति जघन्यरूप में और जघन्य स्थिति उत्कृष्टरूप में बदल जाती है ।

अनुभाव के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है, उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे आत्मा के साथ नहीं लगे रहते हैं ।

રૂપમાં બદલાતી નથી, અને ચારિત્રમોહનીય દર્શનમોહનીયના રૂપમાં બદલાતી નથી. એ પ્રમાણે નરકાયુ કોઈવખત પણ તિર્યંચ આયુના રૂપમાં પલટાતું નથી, અને તીર્યંચાયુ બીજા કોઈ આયુના રૂપમાં પલટાતું નથી.

આ તમામ પરિવર્ત્તન જેવી રીતે પ્રકૃતિબંધના વિષયમાં થાય છે, તે પ્રમાણે અધ્યવસાયની શક્તિથી સ્થિતિ અને રસમાં પણ થાય છે—કયારેક તીવ્રરસ, મંદરસના રૂપમાં બદલાઈ જાય છે, અને કયારેક મંદરસ, તીવ્રરસના રૂપમાં પરિવત્તિત થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ જઘન્ય રૂપમાં અને જઘન્ય સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ રૂપમાં બદલાઈ જાય છે.

અનુભાવપ્રમાણે કોઈ કર્મનું તીવ્ર અથવા મંદ ફલ ભોગવી લેવાય તો તે કર્મના પ્રદેશ આત્મપ્રદેશોથી હટી જાય છે—પછી તે આત્માની સાથે લાગેલા રહેતા નથી.

इदमत्र तत्त्वम्-कर्मणां फलं विविधं भवति। कर्मैव मूलप्रकृतिः। सर्वासां-मूलप्रकृतीनां फलविविधत्वं तथाऽन्यथा चेति प्रकारद्वयेन भवति।

येनाध्यवसायप्रकारेण यादृक्स्वभावं कर्म बद्धं, तत् तथा=तेनैव प्रकारेण अन्यथा च=प्रकारान्तरेणापि विपच्यते=तस्य विपाको भवति। स च तीव्र-मन्दाद्यवस्थाभेदेन शुभस्तथाऽशुभोऽपि। तत्र कदाचिच्छुभमप्यशुभरसतयाऽनु-भूतये कर्म, अशुभं च शुभरसतयेति बोध्यम्।

सकषायजीवेन मनोवागादिद्वारेण क्रियाविशेषस्य कर्ता भिन्नभिन्नस्वभा-वानां कर्मपुद्गलानां स्वभावानुसारं तत्तत्परिमाणविभागेन सम्बन्धः प्रदेशबन्धः।

तात्पर्य यह है कि कर्मों का फल विविध प्रकार का होता है। कर्म ही मूल प्रकृति है। समस्त मूलप्रकृतियों का फल उसी रूप में या अन्यथा रूप में दो प्रकार से होता है।

जिस प्रकार के अध्यवसाय से जिस स्वभाव वाला कर्म बँधा है वह उसी रूप में या अन्यथा रूप में फल देता है। वह फल तीव्र या मन्द अवस्था–भेद से शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है। कभी शुभ भी अशुभ रस के रूप में और कभी अशुभ शुभ रस के रूप में भोगा जाता है।

(४) प्रदेशबन्ध—

मन वचन आदि के द्वारा क्रियाविशेष करने वाले कषाययुक्त जीव के साथ भिन्न–भिन्न स्वभाव वाले कर्मपुद्गलों का स्वभाव के अनुसार अमुक–अमुक परिमाण विभाग के साथ सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है।

તાત્પર્ય એ છે કેઃ– કર્મોનાં ફલ વિવિધ પ્રકારના હોય છે. કર્મજ મૂલપ્રકૃતિ છે. તમામ મૂળપ્રકૃતિઓનું ફલ તે રૂપમાં અથવા બીજારૂપમાં, એમ બે પ્રકારથી હોય છે.

જે પ્રકારના અધ્યવસાયથી જે સ્વભાવવાળાં કર્મ બાંધ્યાં છે તે એજ રૂપમાં અથવા બીજા રૂપમાં ફલ આપે છે. તે ફલ તીવ્ર અથવા મંદ અવસ્થા–ભેદથી શુભ પણ હોય છે, અને અશુભ પણ હોય છે, કોઈ વખત શુભ પણ અશુભ રસના રૂપમાં અને કોઈ વખત અશુભ તે શુભ રસના રૂપમાં ભોગવવામાં આવે છે.

(૪) પ્રદેશબંધ—

મન, વચન આદિ દ્વારા ક્રિયા-વિશેષ કરવા વાળા કષાયયુક્ત જીવની સાથે ભિન્ન-ભિન્ન સ્વભાવ વાળા કર્મપુદ્ગલોના સ્વભાવ અનુસાર અમુક–અમુક પરિમાણવિભાગની સાથે સમ્બન્ધ થવો તે પ્રદેશબંધ છે.

(१) ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कारणीभूताः, (२) सर्वदिक्ष्ववस्थिताः, (३) तीव्रमन्दादिभेदाद् मनोवाक्कायक्रियाविशेषसंयोगात् कर्मवर्गणायोग्याः पुद्गलाः सर्वात्मप्रदेशेषु बद्धा भवन्ति। (४) औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मनोवर्गणाऽपेक्षयाऽपि सूक्ष्मपरिणतिरूपा एव कर्मवर्गणा-योग्याः बद्धाः भवन्ति, न तु बादराः। (५) तत्रापि त एव पुद्गला बद्धा भवन्ति, ये खलु यत्राकाशे जीवोऽवगाढस्तत्रैव वर्तमानाः, न तु तद्बहिःक्षेत्रवर्तिनः।

(६) तथाविधा अपि पुद्गलाःस्थिता एव बद्धा भवन्ति, न तु गतिपरिणताः, प्रचलितस्वभावत्वेन बन्धानर्हत्वात्। (७) असंख्यातप्रदेशिनो जीवस्यैकैकः

---

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारणभूत, (२) समस्त दिशाओं में स्थित, (३) तीव्र मन्द आदि के भेद से मन, वचन और काय की क्रियाविशेष के संयोग से कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बद्ध हो जाते हैं। (४) औदारिक वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म परिणतिरूप कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ही बंधते हैं, बादर नहीं बंधते। (६) उन में भी वही पुद्गल बँधते हैं जो एकक्षेत्रावगाढ हों, अर्थात् जिन आकाशप्रदेशों में जीव है उन्हीं आकाशप्रदेशो में विद्यमान हों, बाहर के क्षेत्र में अगवाहन करने वाले नहीं बँधते। (६) एसे पुद्गल भी स्थित ही बँधते हैं चलते-फिरते हुए पुद्गल नहीं बंधते, चलित स्वभाव वाले होने के कारण वे बन्ध के योग्य नहीं हैं, (७) असंख्यातप्रदेशी जीव का

---

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना कारणभूत, (२) समस्त दिशाओमां स्थित, (३) तीव्र, मंद आदिना भेदथी मन, वचन अने कायानी क्रिया-विशेषना संयोगथी कर्मवर्गणाना योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशोमां बद्ध थई जाय छे, (४) औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, अने मनोवर्गणानी अपेक्षाए पण सूक्ष्मपरिणतिरूप कर्म-वर्गणाना योग्य पुद्गलज बांधे छे; बादर बांधता नथी, (५) एमां पण ते पुद्गल बांधे छे के जे एक क्षेत्रावगाढ होय, अर्थात्-जे आकाशप्रदेशोमां जीव छे तेज आकाशप्रदेशोमां विद्यमान होय. बहारना क्षेत्रमां अवगाहन करवावाळा बंधाता नथी. (६) एवा पुद्गल पण जो स्थिर होय तो बंधाय छे, पण चालता फरतां पुद्गलो बंधाता नथी, कारण के चलित स्वभाववाळा होवाना कारणे ते बंधने योग्य नथी. (७) असंख्यात प्रदेशी जीवने

प्रदेशोऽनन्तैर्ज्ञानावरणीयकर्मस्कन्धैर्बद्धः। एवमनन्तैर्दर्शनावरणीयादिकर्मस्कन्धैर्बद्धः। (८) तत्र ते स्कन्धा अपि प्रत्येकमनन्तानन्तप्रदेशिनः सन्ति। इति प्रदेशबन्धेऽष्ट हेतवः।

पुण्यपापकर्मनिरूपणम्—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं पौद्गलिकं कर्म प्रत्येकं द्विविधम्–पुण्यपापभेदात्। शुभंकर्म–पुण्यम्। अशुभं कर्म–पापम्। ननु विनाऽपि पुण्यपापाभ्यां स्वभावत एव जगद्वैचित्र्यं जायते किं पुनस्तत्कल्पनया? उच्यते–शृणु–स्वभावादेव हि त्रयो विकल्पाः समुत्पद्यन्ते यथा–(१) स्वभावः किं वस्तुरूपः? (२) कारणाभावो

एक–एक प्रदेश अनन्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ बंधता है, उसी प्रकार अनन्तदर्शनावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ भी बंधता है। (८) कर्म के वे स्कन्ध भी अनन्तानन्तप्रदेशी होते हैं। प्रदेशबन्ध में ये आठ हेतु हैं।

पुण्यकर्म और पापकर्म—

ज्ञानवरणीय आदि प्रत्येक पौद्गलिक कर्म दो–दो प्रकार का है, पुण्यरूप और पापरूप। शुभ कर्म पुण्य और अशुभ पाप कहलाता है।

शङ्का–पुण्य और पाप के विना ही स्वभाव से जगत् की विचित्रता हो सकती है, फिर पुण्य पाप की कल्पना करने से क्या लाभ है?।

समाधान–स्वभाववाद में तीन विकल्प हो सकते हैं, जैसे स्वभाव कोई वस्तु है?, या कारण का अभाव ही स्वभाव कहलाता है?, अथवा स्वभाव किसी

એક એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બંધાય છે. એ પ્રમાણે દર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બંધાય છે. (૮) કર્મના તે સ્કંધ પણ અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોય છે. પ્રદેશ બંધમાં આ આઠ હેતુ છે.

પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ બે–બે પ્રકારના છે–(૧) પુણ્યરૂપ અને (૨) પાપરૂપ શુભ કર્મ–પુણ્ય અને અશુભ કર્મ પાપ કહેવાય છે.

શંકા—પુણ્ય અને પાપ વિનાજ, સ્વભાવથી જગતની વિચિત્રતા હોઈ શકે છે, તો પછી પુણ્ય પાપની કલ્પના કરવાથી શું લાભ છે?

સમાધાનઃ–સ્વભાવવાદમાં ત્રણ વિકલ્પ (તર્ક–વિતર્ક) થઈ શકે છે; જેમકે સ્વભાવ શું કોઈ વસ્તુ છે? અથવા કારણનો અભાવજ સ્વભાવ કહેવાય છે? અથવા સ્વભાવ કોઈ

वा स्वभावः? अथवा (३) स्वभावः कोऽपि वस्तुधर्मः?। इति विकल्पत्रयगत-दोषाणां कथनं पूर्वं कृतमासीदतो विरम्यते, तस्मात् पुण्यपापे कर्मणी पौद्गलिके विद्येते, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम्।

पुण्यपापसद्भावे युक्तीस्तावत् प्रदर्शयामः—

पुण्यपापे द्वे अपि भिन्ने स्वतन्त्रे स्तः, तत्कार्यभूतयोः सुखदुःखयो-र्यौगपद्येनानुभवाभावात्, अतोऽनेनैव भिन्नकार्यदर्शनेन तत्कारणभूतयोः पुण्यपापयोर्भिन्नताऽनुमीयते। जीवकर्मणोः परिणामरूपे पुण्यपापे कारणतः कार्यतश्चानुमीयेते।

दानादिक्रियाणां हिंसादिक्रियाणां च कारणरूपत्वात् तत्कार्यरूपपुण्य-

---

वस्तु का धर्म है?, इन तीनों विकल्पों में आने वाले दोषों का कथन पहले किया जा चुका है, अत एव यहाँ पुनरुक्ति नहीं की जाती। अत एव पुण्य और पाप को पौद्गलिक कर्म ही स्वीकार करना चाहिए।

पुण्य और पाप के सद्भाव में युक्तियाँ दिखलाते हैं—

पुण्य और पाप दोनों भिन्न और स्वतन्त्र हैं, क्यों कि उनका फल सुख और दुःख एक साथ नहीं भोगा जाता। कार्य की यह भिन्नता देखने से उनके कारणभूत पुण्य और पाप की भिन्नता का अनुमान होता है। जीव और कर्म के परिणामरूप पुण्य और पाप का अनुमान कारण से और कार्य से होता है।

दानादि क्रियाएं और हिंसा आदि क्रियाएँ कारण हैं, अत एव उनका कार्य

વસ્તુનો ધર્મ છે?. આ ત્રણેય વિકલ્પોમાં આવવાવાળા દોષોનું કથન પ્રથમ કહી ચૂકયા છીએ, એટલા કારણથી અહિં પુનરૂક્તિ કરતા નથી. એ માટે પુણ્ય અને પાપને પૌદ્ગલિક કર્મજ સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

પુણ્ય અને પાપના સદ્દભાવમાં યુક્તિઓ બતાવે છે:—

પુણ્ય અને પાપ બન્ને જૂદા અને સ્વતંત્ર છે, કારણ કે તેનું ફળ સુખ અને દુઃખ એક સાથે ભોગવવામાં આવતું નથી. કાર્યની આ ભિન્નતા જોવાથી તેના કારણભૂત પુણ્ય અને પાપની ભિન્નતાનું અનુમાન થાય છે. જીવ અને કર્મના પરિણામરૂપ પુણ્ય અને પાપનું અનુમાન કારણથી અને કાર્યથી થાય છે.

દાન આદિ ક્રિયાઓ અને હિંસા આદિ ક્રિયાઓ કારણ છે, તે માટે તેનું કાર્ય

पापात्मको जीवकर्मपरिणामोऽस्ति। यथा–कृष्यादिक्रियाणां शालि–यव–गोधूमादिकं नियमेन फलं भवति। इदमनुमानं कारणतो भवति।

एवं कार्यतोऽपि कारणस्यानुमानं भवति। यथा–अस्ति शरीरादीनां कारणं, तेषां कार्यरूपत्वात्। यथा–घटस्य मृद्दण्डचक्रादिसामग्रीसहितः कुम्भकारः कारणम्।

न च, दृष्ट एव मातापितादिकः शरीरादीनां कारणमस्तु, इति वाच्यम्, दृष्टकारणस्य समानत्वेऽपि सुरूपकुरूपादिभावेन शरीरादीनां वैचित्र्यदर्शनात्तस्य

भी अवश्य होना चाहिए, और वही कार्य जीव और कर्म का परिणामरूप पुण्य और पाप है। जैसे कृषि आदि क्रियाओं का शालि, जौ, गेहुँ आदि फल नियम से होता है। यह कारण से अनुमान है।

इसी प्रकार कार्य से भी कारण का अनुमान होता है, जैसे शरीर आदि का कारण अवश्य है, क्यों कि वह कार्य है, जैसे घटका कारण मिट्टी; दण्ड, चक्र आदि सामग्री से युक्त कुंभार होता है।

शङ्का–शरीर आदि का कारण प्रत्यक्ष से प्रतीत होने वाले माता–पिता आदि ही मानना चाहिए।

समाधान–दिखाई देने वाले कारण की समानता होने पर भी शरीर में सुरूपता कुरूपता आदि की विचित्रता देखी जाती है,. अतः उन्हें कारण नहीं माना जा सकता,

---

પણ અવશ્ય હોવું જોઈએ, અને તે કાર્ય જીવ અને કર્મના પરિણામરૂપ પુણ્ય અને પાપ છેઃ જેવી રીતે ખેતી આદિ ક્રિયાઓમાં શાલિ–ડાંગર, જવ, ઘઉં આદિ ફલ નિયમથી થાય છે. આ કારણથી અનુમાન છે.

આ પ્રમાણે કાર્યથી પણ કારણનું અનુમાન થાય છે. જેમ શરીર આદિનું કારણ જરૂર છે; કારણ કે તે કાર્ય છે, જેવી રીતે ઘટનું કારણ માટી, દંડ, ચક્ર–ચાકળો, આદિ સામગ્રીથી યુક્ત કુંભાર હોય છે.

શંકા—શરીર આદિનું કારણ પ્રત્યક્ષથી જણાતા માતા–પિતા આદિ માનવા જોઈએ.

સમાધાનઃ–દેખાવાવાળા કારણની સમાનતા હોવા છતાંય પણ શરીરમાં સુરૂપતા કુરૂપતા આદિની વિચિત્રતા જોવામાં આવે છે, તેથી તેમને કારણ માની શકાશે નહિ.

तत्कारणत्वासिद्धेः। तद्वैचित्र्यस्य चादृष्टकर्माख्यहेतुं विनाऽभावात्। शुभशरीरादीनां पुण्यकार्यत्वात्, अशुभशरीरादीनां पापकार्यत्वाच्च पुण्यपापभेदेन तस्य कर्मणो द्वैविध्यं सिद्धम्।

पुण्यं पापं चेति द्वे कर्मणी भिन्ने स्वतन्त्ररूपे स्तः, इत्यत्रागमोऽपि प्रमाणम्। उक्तञ्च स्थानाङ्गसूत्रे-"एगे पुण्णे। एगे पावे" इति। एवमेव समवायाङ्गेऽपि।

सर्वघातिप्रकृतयः—

(१) केवलज्ञानावरणीयम्। (२) केवलदर्शनावरणीयम्। (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा, (५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धिः, (८-११) अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयम्, (१२-१५) अप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयम्,

---

यह विचित्रता अदृष्ट कारण—कर्म के विना नहीं हो सकती, शुभ शरीर आदि पुण्य का कार्य है और अशुभ शरीर आदि पाप का कार्य है। अतः पुण्य और पाप के भेद से कर्म दो प्रकार का सिद्ध होता है।

पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों स्वतन्त्र—भिन्न हैं, इस विषय में आगम भी प्रमाण है। स्थानाङ्ग सूत्र में कहा है—'**पुण्य एक है पाप एक है**'। इसी प्रकार समवायाङ्गसूत्र में भी कहा है।

सर्वघाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा, (५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धि, (८-११) अनन्तानुबन्धी—क्रोध, मान, माया, लोभ, (१२-१५) अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) प्रत्याख्याना-

---

આ વિચિત્રતા અદૃષ્ટ કારણ-કર્મના વિના હોઈ શકે નહિ. શુભ શરીર આદિ પુણ્યનું કાર્ય છે. અને અશુભ શરીર આદિ પાપનું કાર્ય છે. તે કારણથી પુણ્ય અને પાપના ભેદથી કર્મ બે પ્રકારનાં સિદ્ધ થાય છે.

પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ બન્ને સ્વતંત્ર-ભિન્ન છે. આ વિષયમાં આગમ પણ પ્રમાણ છે, સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યું છે-"પુણ્ય એક છે, પાપ એક છે." એ જ પ્રમાણે સમવાયાઙ્ગ-સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે.

સર્વઘાતી પ્રકૃતિઓ—

(૧) કેવલજ્ઞાનાવરણીય, (૨) કેવલદર્શનાવરણીય, (૩) નિદ્રા, (૪) નિદ્રાનિદ્રા (૫) પ્રચલા, (૬) પ્રચલાપ્રચલા, (૭) સત્યાનર્દ્ધિ, (૮-૧૧) અનન્તાનુબંધી-ક્રોધ, માન, માયા,લોભ,(૧૨-૧૫) અપ્રખ્યાનાવરણ-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ,(૧૬-૧૯) પ્રત્યાખ્યાનાવરણ

(१६-१९) प्रत्याख्यानकषायचतुष्टयम्, (२०) मिथ्यात्वं च, एता विंशतिः प्रकृतयः सर्वघातिन्यः।

समस्तावरणक्षयादाविर्भूतं सकलद्रव्यपर्यायग्राहि केवलज्ञानं, तदाच्छादनकृत् केवलज्ञानावरणीयम्। इदं हि केवलज्ञानोपघातेन सर्वमेव द्रव्यपर्यायज्ञानं प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते।

ननु-सर्वजीवानां केवलज्ञानस्यानन्तभागोऽनावृत एवावतिष्ठते, तस्याप्यावरणे तु जीवस्याजीवत्वमापद्येत तर्हि कथं केवलज्ञानावरणीयस्य सर्वघातित्वसंभवः ? इति चेत्, उच्यते—

यथा घनीभूतघनपटलेन सूर्यचन्द्रमसोर्बहुतरप्रभासमावरणे सर्वाऽपि प्रभा

वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व। ये वीस प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं।

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षय से प्रकट होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को ग्रहण करने वाला है। इसे आच्छादित करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कहलाता है। यह कर्म केवलज्ञान का घात करके समस्त द्रव्य पर्यायों के ज्ञान का घात करता है, अत एव यह सर्वघाती कहलाता है।

शङ्का—सब जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग प्रकट रहता है, अगर उतना भी प्रकट न रहे तो जीव अजीव हो :जायगा। ऐसी स्थिति में केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कैसे हो सकता है ?

समाधान—जैसे अत्यन्त सघन मेघपटल के द्वारा सूर्य या चन्द्रमा की बहुत सी प्रभा छिप जाने के कारण लोक में कहा जाता है कि सूर्य—चन्द्र की सारी प्रभा छिप

-क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व. आ वीस प्रकृतिओ सर्वघाती छे.

કેવલજ્ઞાન સમસ્ત આવરણોનાં ક્ષયથી પ્રગટ થવાવાળું, તથા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને ગ્રહણ કરવા વાળું છે, તેને આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ કેવલજ્ઞાનાવરણીય કહેવાય છે. એ કર્મ કેવલ જ્ઞાનનો ઘાત કરીને સમસ્ત દ્રવ્ય-પર્યાયોના જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે. એટલા માટે તે સર્વઘાતી કહેવાય છે.

શંકા—સર્વ જીવોને કેવલજ્ઞાનનો અનન્તમો ભાગ પ્રગટ રહે છે. પણ જો એટલો પણ પ્રગટ ન રહે તો જીવ; અજીવ થઈ જશે. આવી સ્થિતિમાં કેવલજ્ઞાનાવરણીય સર્વઘાતી કેવી રીતે થઈ શકે છે?

સમાધાનઃ-જેવી રીતે અત્યન્ત, સઘન મેઘપટલ (ઘનઘોર વાદલ) દ્વારા સૂર્ય અથવા ચન્દ્રમાની ઘણીખરી પ્રભા-કાંતિ ઢંકાઈ જાવાથી લોકમાં કહેવાય છે કે સૂર્ય-ચંદ્રની

तयोरावृतेति लोकव्यवहारवत् जीवस्य सर्वज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्या क्रियते, इति व्यपदिश्यते ।

मतिज्ञानादिविषयान् अर्थान् न जानाति जीवस्तत्र मतिज्ञानावरणीयादिप्रकृत्युदय एव मतिज्ञानादिकमावृणोति, न तु केवलज्ञानावरणीयोदयस्तत्र कारणं भवतीति बोध्यम् । एवं केवलदर्शनस्यानन्तभागोऽप्यनावृत एव, तत्रापि मेघदृष्टान्तानुसारेणावरणव्यवहारमादाय केवलदर्शनावरणीयस्य सर्वघातित्वमुपपद्यते । तत्रापि चक्षुर्दर्शनावरणीयादिप्रकृत्युदयादेव जीवश्चक्षुर्दर्शनादिविषयानर्थान् ज्ञातुं न शक्नोति, न तु केवलदर्शनावरणीयोदयस्तत्र कारणमिति बोध्यम् ।

गई । इसी प्रकार 'केवलज्ञानावरण प्रकृति जीव के समस्त ज्ञानका आवरण करती है' ऐसा कहा जाता है ।

जीव मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को नहीं जानता, इस में मतिज्ञानावरणीय प्रकृति का उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोकता है । इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है । इसी प्रकार केवलदर्शन का अनन्तवाँ भाग उघाडा रहता है । वहाँ भी मेघ के दृष्टान्त के अनुसार आवरण का व्यवहार समझ कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वघाती प्रकृति समझना चाहिए । यहां भी चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों को जीव चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि के उदय से ही नहीं जानता । वहाँ केवलदर्शनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए ।

તમામ કાંતિ-પ્રકાશ ઢંકાઈ ગઈ. એ પ્રમાણે કેવલજ્ઞાનવરણ પ્રકૃતિ જીવના સમસ્ત જ્ઞાનનું આવરણ કરે છે, એમ કહેવાય છે.

જીવ મતિજ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોને જાણતો નથી; તેમાં મતિજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિ-કર્મનો ઉદયજ કારણરૂપ છે. તેજ મતિજ્ઞાનને રોકે છે એમાં કેવલજ્ઞાનાવરણીયનો ઉદય કારણ રૂપ નથી. એ પ્રમાણે કેવલદર્શનનો અનન્તમો ભાગ ઉઘાડો રહે છે. ત્યાં પણ મેઘના દૃષ્ટાન્ત પ્રમાણે આવરણનો વ્યવહાર સમજી લઈને કેવલદર્શનાવરણીયને સર્વઘાતી પ્રકૃતિ સમજવું જોઈએ, અહીં પણ ચક્ષુદર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોને જીવ ચક્ષુદર્શનાવરણીય આદિના ઉદયથી જાણતો નથી, ત્યાં કેવલદર્શનાવરણીય કારણ નહિ સમજવું જોઈએ.

ननु केवलज्ञानावरणीयस्य केवलदर्शनावरणीयस्य च क्षये सत्यपि मतिज्ञानादीनां चक्षुर्दर्शनादीनां च विषया ज्ञातुमशक्याः स्युः, तेषां केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीय-प्रकृत्योर्विषयाभावात्, मतिज्ञानावरणीयादीनां च क्षयाभावात्ताभिर्मतिज्ञानादीनां समावृतत्वादिति चेत्? उच्यते—

केवलज्ञानलाभे शेषावबोधलाभस्य तदन्तर्गतत्वात्। यथा-ग्रामलाभे क्षेत्रलाभो ग्रामलाभान्तर्भूत एव भवति।

निद्रादिपञ्चकमपि सकलपदार्थावबोधं प्रतिहन्तीति सर्वघाति भवति। यदि पुनः स्वापदशायामपि किंचिद् ज्ञानमस्तीति संभाव्यते, तर्हि तत्रापि जलधरदृष्टान्तमाश्रित्य समाधेयम्।

शङ्का—केललज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का क्षय होने पर भी मतिज्ञान आदि और चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जानना अशक्य होना चाहिए, क्यों कि वे केवलज्ञानावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियों के विषय नहीं हैं, और मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ है, उन्हीं से मतिज्ञान आदि आवृत होते हैं।

समाधान—केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर शेष ज्ञानों की प्राप्ति उसी में अन्तर्गत हो जाती है। जैसे ग्राम मिलने पर खेत आप ही मिल जाता है।

निद्रा आदि पांच प्रकृतियाँ भी सकल पदार्थों के ज्ञान का घात करती हैं, अत एव सर्वघाती हैं। अगर निद्रा-अवस्था में भी किञ्चित् ज्ञान की संभावना की जा सकती है तो वहाँ भी मेघ का दृष्टान्त लेकर समाधान करना चाहिए।

શંકા—કેવલજ્ઞાનાવરણીય અને કેવલદર્શનાવણીયનો ક્ષય થવા છતાંય પણ મતિજ્ઞાન આદિ અને ચક્ષુર્દર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોને જાણવું તે અશક્ય હોવું જોઈએ;કારણ કે તે કેવલજ્ઞાનાવરણીય અને કેવલદર્શનાવરણીય પ્રકૃતિઓનો વિષય નથી. અને મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થયો નથી, તેનાથી મતિજ્ઞાન આદિ આવૃત થાય છે.

સમાધાન—કેવલ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવાથી શેષ જ્ઞાનોની પ્રાપ્તિ તેમાં અન્તર્ગત થઈ જાય છે. જેવી રીતે ગામ મળવાથી ખેતર પોતેજ મલી જાય છે.

નિદ્રા આદિ પાંચ પ્રકૃતિઓ પણ તમામ પદાર્થોના જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, એ માટે તે સર્વઘાતી છે. અથવા નિદ્રા અવસ્થામાં પણ કિંચિત્ જ્ઞાનની સંભાવના કરાય છે. તો ત્યાં પણ મેઘનું દૃષ્ટાંત લઇને સમાધાન કરી લેવું જોઈએ.

अनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कषायाः प्रत्येकं यथाक्रमं सम्यक्त्वं देशविरति-चारित्रं सर्वविरतिचारित्रं च सर्वमेव घ्नन्ति, तस्मादेते द्वादश कषायाः सर्वघातिन इत्युच्यन्ते । तेषां प्रबलोदयेऽपि कुलाचारप्रभृतिकारणवशादशुद्धाहारादिविरमण-दर्शनात् सर्वघातित्वं न संभवतीति नाशङ्कनीयम्, नवीनघनघटादृष्टान्ता-श्रयणेन तस्यापि समाधेयत्वात् । मिथ्यात्वं तु सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सर्वमपि प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते । यदि मिथ्यात्वस्य प्रबलोदयेऽपि मनुष्यपश्वादिवस्तुविषयकं सम्यक्त्वमस्ति, कथं तर्हि सर्वघातित्वं मिथ्यात्वस्येति संभाव्यते, तदाऽत्राप्युक्तजलदावलीदृष्टान्तः शरणीकरणीयः ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय क्रमशः सम्यक्त्व का देशविरति का, और सर्वविरतिका पूर्णरूप से घात करते हैं, अतः ये बारह कषाय भी सर्वघाती कहलाते हैं । यह शङ्का नहीं करनी चाहिए कि—इन कषायों का प्रबल उदय होने पर भी कुलाचार आदि कारणों से अशुद्ध आहार आदि का त्याग देखा जाता है अत एव इन्हें सर्वघाती नहीं कहा जा सकता, क्यों कि नवीन मेघघटाका दृष्टान्त लेकर इस शङ्का का भी समाधान किया जा सकता है ।

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व का पूर्णरूप से घात करती ही है, अतः वह सर्वघाती है । यदि मिथ्यात्व का प्रबल उदय होने पर भी मनुष्य पशु आदि वस्तुओं सम्बन्धी सम्यक्त्व रहता है तो मिथ्यात्व को सर्वघाती कैसे कहा जा सकता है ? इस शङ्का के समाधान के लिए भी उक्त मेघपटल के ही दृष्टान्त का आश्रय लेना चाहिए ।

અનન્તાનુબંધી આદિ બાર કષાય ક્રમશઃ સમ્યક્ત્વનો દેશવિરતિનો અને સર્વ વિરતિનો પૂર્ણરૂપથી ઘાત કરે છે, તેથી એ બાર કષાય પણ સર્વઘાતી કહેવાય છે. એવી શંકા નહિ કરવી જોઇએ કેઃ—એ કષાયોના પ્રબલ ઉદય વખતે પણ કુલાચાર આદિ કારણોથી અશુદ્ધ આહાર આદિનો ત્યાગ જોવામાં આવે છે. તે માટે તેને સર્વઘાતી કહી શકાશે નહિ; કારણ કે નવીન મેઘ ઘટાનું દ્રષ્ટાંત લઇને આ શંકાનું સમાધાન કરી શકાય છે.

મિથ્યાત્વ પ્રકૃતિ તો તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યક્ત્વનો પૂર્ણરૂપથી ઘાત કરે છેજ, તેથી તે સર્વઘાતી છે. જો મિથ્યાત્વનો પ્રબલ ઉદય હોય તે વખતે પણ—મનુષ્ય, પશુ આદિ વસ્તુઓસંબંધી સમ્યક્ત્વ રહે છે તો મિથ્યાત્વને સર્વઘાતી કેવી રીતે કહી શકશો ? એ શંકાના સમાધાન માટે પણ આગળ કહેલ મેઘપટળનાંજ દ્રષ્ટાંતનો આશ્રય લેવો જોઇએ.

देशघातिप्रकृतयः—

अथ देशघातिप्रकृतयः कथ्यन्ते–। (१) मतिज्ञानावरणीयम् , (२) श्रुतज्ञानावरणीयम् , (३) अवधिज्ञानावरणीयम् , (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीयम् , एतानि चत्वारि ज्ञानावरणीयानि ४ । (१) चक्षुर्दर्शनावरणीयम् , (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीयम् , (३) अवधिदर्शनावरणीयम् , इति त्रीणि दर्शनावरणीयानि७ । संज्वलनरूपाः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः कषायाः ११ । हास्य–रत्य–रति–भय–शोक–जुगुप्सा–स्त्रीवेद–पुंवेद–नपुंसकवेदभेदतो नवसंख्यका नोकषायाः २० । तथा दान-लाभ–भोगो–पभोग–वीर्य५भेदात् पञ्चविंशतिः २५ प्रकृतयो देशघातिन्यः सन्ति ।

मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयी प्रकृतिः केवलज्ञानावरणीयावृतं दैशिकं ज्ञानं हन्ति, तस्मादेशघातिनीयमुच्यते ।

देशघाती प्रकृतियाँ—

अब देशघाती प्रकृतियों का कथन किया जाता हैः–(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ये चार ज्ञानावरणीय४ । तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, ये तीन दर्शनावरणीय७ । तथा संज्वलन–क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय ११ । हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद के भेद से नौ नोकषाय २० । तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभागान्तराय और वीर्यान्तराय, ये पांच अन्तराय २५ । सब मिलकर पच्चीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं ।

मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियाँ केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत एक देश ज्ञानका घात करती हैं; अत एव उन्हें देशघाती प्रकृतियाँ कहते हैं,

દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ—

હવે દેશઘાતી પ્રકૃતિઓનું કથન–નિરૂપણ–કરવામાં આવે છે-(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, આ ચાર જ્ઞાનાવરણીય છે ૪, તથા (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિ-દર્શનાવરણીય, આ ત્રણ દર્શનાવરણીય, ૭, તથા સંજ્વલન–ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, એ ચાર કષાય, ૧૧, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા. સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ, નપુંસકવેદ ના ભેદથી નવ નોકષાય, ૨૦, તથા દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય, અને વીર્યાન્તરાય. આ પાંચ અન્તરાય ૨૫, બધી મળીને પચીસ દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ છે.

મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર પ્રકૃતિઓ કેવલજ્ઞાનાવરણીયદ્વારા આવૃત એક દેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, તેટલા માટે તેને દેશઘાતી પ્રકૃતિ કહે છે.

मतिज्ञानादिविषयाणामर्थानामवबोधो यन्न भवति, तच्च मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयप्रकृत्युदयादेव। यत्तु मतिज्ञानाद्यविषयाणामनन्तपदार्थानां ज्ञानं न भवति तत् केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्युदयादेव।

चक्षुर्दर्शनावरणीयादित्रयी प्रकृतिः केवलदर्शनावरणीयानावृतं केवलदर्शनैकदेशं ज्ञानं हन्तीति देशघातित्वं सिद्धम्। चक्षुरादिदर्शनविषयभूतानामर्थानां दर्शनं यन्न भवति, तत् चक्षुरादिदर्शनावरणीयप्रकृत्युदयादेव; यच्च तद्विषयभूतान्अनन्तगुणान् न पश्यति, तत् केवलदर्शनावरणीयोदयादेव।

तथा-संज्वलनाश्चत्वारः कषायास्तथा नव नोकषायाश्च लब्धस्य

मतिज्ञान आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से ही समझना चाहिए। और जो पदार्थ मतिज्ञान आदि के विषय नहीं हैं, उनके ज्ञानका अभाव केवलज्ञानावरणीय प्रकृति के उदय से होता है।

चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि तीन प्रकृतियाँ केवलदर्शनावरणीयद्वारा अनावृत केवलदर्शन के एकदेश ज्ञानका घात करती हैं, अतः वे देशघाती हैं। चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से समझना चाहिए और केवलदर्शन के विषयभूत अनन्त गुणों के ज्ञानका जो अभाव होता है सो केवलदर्शनावरणीय के उदय से ही समझना चाहिए।

चार संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय प्राप्त हुए चारित्र के एक देश का

મતિજ્ઞાન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોનું જે જ્ઞાન થતું નથી તે મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથીજ સમજી લેવું જોઇએ. અને જે પદાર્થ મતિજ્ઞાનાદિનો વિષય નથી તેના જ્ઞાનનો અભાવ કેવલજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિના ઉદયથી હોય છે.

ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ ત્રણ પ્રકૃતિઓ કેવલદર્શનાવરણીય દ્વારા અનાવૃત કેવલદર્શનના એકદેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે. એ કારણથી તે દેશઘાતી છે ચક્ષુર્દર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોનું જે જ્ઞાન થતું નથી તે ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથી સમજવું જોઈએ, અને કેવલદર્શનના વિષયભૂત અનન્ત ગુણોના જ્ઞાનનો જે અભાવ થાય છે તે કેવલદર્શનાવરણીયના ઉદયથીજ સમજવું જોઈએ.

ચાર સંજ્વલન કષાય અને નવ નોકષાય પ્રાપ્ત થયેલા ચારિત્રના એક દેશનોજ

चारित्रस्य देशमेव घ्नन्ति, तेषां मूलोत्तरगुणातीचारजनकत्वात्। तस्मादेतास्त्रयोदश प्रकृतयो देशघातिन्य इति बोध्यम्।

तथा–दानान्तरायादिपञ्चान्तरायरूपाः प्रकृतयोऽपि देशघातिन्य एव। दानलाभभोगोपभोगानां चतुर्णां विषयस्तावद् ग्रहणधारणयोग्यान्येव द्रव्याणि सन्ति। तानि च सकलपुद्गलास्तिकायस्यानन्तभागरूपे देश एव वर्तन्ते, अतो यासां प्रकृतीनामुदयात् पुद्गलास्तिकायदेशवर्तीनि द्रव्याणि दातुं लब्धुं भोक्तुमुपभोक्तुं च न शक्नोति ताः प्रकृतयो दानलाभभोगोपभोगान्तरायरूपास्तावद्देशघातिन्य एव।

यत्तु–समस्तलोकान्तर्गतानि द्रव्याणि दातुं लब्धुं भोक्तुमुपभोक्तुं च न प्रभवति तद्दानान्तरायादिप्रकृत्युदयतो न भवति, किन्तु तेषामेव ग्रहणधारण-

---

ही घात करते हैं, क्यों कि वे मूलगुणों और उत्तरगुणों में अतिचार उत्पन्न करते हैं, इस कारण ये तेरह प्रकृतियाँ देशघाती हैं, ऐसा समझना चाहिए।

अन्तराय कर्म की पांच प्रकृतियां भी देशघाती ही हैं। दान, लाभ, भोग और उपभोग, इन चार के विषय ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्य ही हैं, और ऐसे द्रव्य समस्त पुद्गलास्तिकाय के अनन्तवें भाग हैं, अतः जिन प्रकृतियों के उदय से पुद्गलास्तिकाय के एकदेशवर्ती द्रव्यों का दान, लाभ, भोग या उपभोग न हो सके वे दानान्तराय आदि प्रकृतियाँ भी देशघाती ही हैं।

समस्त लोक के अन्तर्गत द्रव्यों का दान, लाभ, भोग और उपभोग नहीं हो सकता, सो यह दानान्तराय आदि प्रकृतियों के उदय से नहीं, परन्तु उन द्रव्यों को

ઘાત કરે છે કારણ કે તે મૂલગુણો અને ઉત્તરગુણોમાં અતિચાર ઉત્પન્ન કરે છે, આ કારણથી તે તેર પ્રકૃતિઓ દેશઘાતી છે. એ પ્રમાણે સમજવું જોઇએ.

અન્તરાય કર્મની પાંચ પ્રકૃતિઓ પણ દેશઘાતીજ છે. દાન, લાભ, ભોગ અને ઉપભોગ, એ ચારના વિષય ગ્રહણ અને ધારણ કરવા યોગ્ય દ્રવ્યજ છે, અને એવા દ્રવ્ય સમસ્ત પુદ્ગલાસ્તિકાયના અનન્તમો ભાગ છે, તેથી જે પ્રકૃતિઓના ઉદયથી પુદ્ગલાસ્તિકાયના એકદેશવર્તી દ્રવ્યોનો દાન, લાભ, ભોગ અને ઉપભોગ ન થઈ શકે, તે દાનાન્તરાય આદિ પ્રકૃતિઓ પણ દેશઘાતી છે.

સમસ્ત લોકના અન્તર્ગત દ્રવ્યોનો દાન, લાભ, ભોગ અને ઉપભોગ થઇ શકતો નથી. તે આ દાનાન્તરાય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથી નહિ; પરન્તુ તે દ્રવ્યોને ગ્રહણ અને

योग्यताया अभावादशक्यानुष्ठानत्वादिति मन्तव्यम् ।

वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि सर्वं वीर्यं न हन्तीति देशघातिन्येव । तथाहि-सूक्ष्मनिगोदजीवात् प्रभृति आक्षीणमोहनीयजीवं वीर्यान्तरायस्य क्षयोपशमविशेषाद् वीर्यं कस्यचिदल्पं, कस्यचिद् बहु, कस्यचिद् बहुतरं, कस्यचिद् बहुतमं भवति, वीर्यान्तरायकर्मणोऽभ्युदये सूक्ष्मनिगोदस्यापि आहारपरिणमनकर्मदलिकग्रहणगत्यन्तरगमनादिकं विद्यते । एतच्च वीर्यं विना न संभवति । तस्माद्देशत एव वीर्यं वीर्यान्तरायप्रकृत्या हन्यते, न तु सर्वतः । यदि पुनरियं सर्वघातिनी

ग्रहण और धारण करने की योग्यता न होने के कारण अशक्यानुष्ठान से समझना चाहिए ।

वीर्यान्तराय प्रकृति भी समस्त वीर्य का घात नहीं करती अतः देशघाती है । सूक्ष्म निगोदिया जीव से लेकर क्षीणमोह–गुणस्थान पर्यन्त के जीवों में वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से किसी जीव में अल्प वीर्य (शक्ति) होता है, किसी में बहुत वीर्य होता है, किसी में बहुत अधिक वीर्य होता है और किसी में अत्यन्त अधिक वीर्य होता है । वीर्यान्तराय कर्मका उदय होने पर भी सूक्ष्म निगोद का जीव आहार का परिणमन करता है, कर्मदलियों को ग्रहण करता है और दूसरी गति में जाता है । ये सब कार्य वीर्य के विना नहीं हो सकते । इस से यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय कर्म वीर्य को एकदेश से ही घात करता है, सर्वदेश से नहीं । अगर यह प्रकृति सर्वघाती मानी जाय तो जैसे सर्वघाती मिथ्यात्व के उदय में सम्यग्दर्शन लेशमात्र नहीं होता, और

धारण करवानी योग्यता नहि होवाना कारणे अशक्यानुष्ठानथी समजवुं जोईए.

वीर्यान्तराय प्रकृति पण समस्त वीर्यनो घात करती नथी, तेथी ते देशघाती छे. सूक्ष्मनिगोदना जीवथी लईने क्षीणमोहगुणस्थान सुधीना जीवोमां वीर्यान्तरायना क्षयोपशमथी कोई जीवमां अल्पवीर्य (थोडी शक्ति) होय छे, कोई जीवमां बहु वीर्य होय छे; कोइ जीवमां बहुज अधिक वीर्य होय छे, अने कोईमां अत्यन्त अधिक वीर्य होय छे. वीर्यान्तराय कर्मनो उदय होय त्यारे पण सूक्ष्म निगोदना जीव आहारनुं परिणमन करे छे, कर्मदलिकोने ग्रहण करे छे, अने बीजी गतिमां जाय छे. आ तमाम कार्य वीर्य विना थई शके नही, तेथी ए सिद्ध थयुं केः– वीर्यान्तराय कर्म वीर्यना एक देशनोज घात करे छे, सर्वदेशनो नही. अथवा तो आ प्रकृतिने सर्वघाती मानवामां आवे तो जेवी रीते सर्वघाती मिथ्यात्वना उदयमां सम्यक्दर्शन लेशमात्र पण होय नही, अने जेम

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम्।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति। तथाहि-प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-च्छ्वासा२-ऽऽतपो३-द्योता४-ऽगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति। (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३। षट् संस्थानानि६। षट् संहन-

---

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार-(१) पराघात, (२) उच्छ्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थंकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियां अघाती हैं८। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पांच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३। तीन उपाङ्ग१६, छह संस्थान२२,

---

બાર કષાયોના ઉદય થવા સમયે દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ એકદેશથી પણ હોય નહી; તે પ્રમાણે વીર્યાન્તરાય કર્મના ઉદય થતાં લેશમાત્ર પણ વીર્યગુણ પ્રગટ થવો નહી જોઈએ, પરન્તુ એ પ્રમાણે થતું નથી, એ કારણથી સિદ્ધ થયું કે-વીર્યાન્તરાય પ્રકૃતિ પણ દેશઘાતીજ છે.

અઘાતી પ્રકૃતિઓ—

અઘાતી પ્રકૃતિઓ પંચોતેર (૭૫) છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ-(૧) પરાઘાત, (૨) ઉચ્છ્વાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉદ્યોત, (૫) અગુરૂલઘુ, (૬) તીર્થંકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, આ આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિઓ અઘાતી છે. (૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ શરીર, આ પાંચ શરીર અઘાતી પ્રકૃતિઓ છે; (૧૩) ત્રણ ઉપાંગ, (૧૬) છહ સંસ્થાન, (૨૨) છહ સંહનન, (૨૮) પાંચ જાતિઓ, (૩૩) ચાર ગતિ, ૩૭ બે વિહાયો,

नानि६। पञ्च जातयः५। चतस्रो गतयः४। द्वे खगती२। चतस्रः आनुपूर्व्यः४। आयूंषि चत्वारि४। त्रसदशकम्१०। स्थावरदशकम्१०। उच्चैर्गोत्रम्१। नीचैर्गोत्रम्१। सातवेदनीयम्१। असातवेदनीयम्१। वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्याश्चतस्रः प्रकृतयः४। ७५॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न घ्नन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते। इमाः सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं प्रदर्शयन्ति। देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं दर्शयन्ति। यथा—स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवावभासते तद्वत्।

छह संहनन२८, पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७, दो विहायोगतियाँ३९, चार आनुपूर्वी४३, चार आयु४७, त्रसदशक५७, स्थावरदशक६७; उच्चगोत्र६८, नीचगोत्र६९, सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार प्रकृतियाँ७५।

ये प्रकृतियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं। इसी लिये ये अघाती कहलाती हैं। जब इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती होते हुए भी सर्वघाती रसको प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं। जैसे कोई पुरुष चोर न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है। यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है।

ગતિ, (૩૯) ચાર અનુપૂર્વી, (૪૩) ચાર આયુ, (૪૭) ત્રસદશક, (૫૭) સ્થાવરદશક, (૬૭) ઉચ્ચગોત્ર, (૬૮) નીચગોત્ર, (૬૯) શાતાવેદનીય, (૭૦) અસાતાવેદનીય, (૭૧) તથા વર્ણ રસ, ગંધ, અને સ્પર્શ નામની ચાર પ્રકૃતિઓ (૭૫).

આ પ્રકૃતિઓ જ્ઞાન આદિ કોઈ ગુણનો ઘાત કરતી નથી. એટલા માટે તેને અઘાતી પ્રકૃતિ કહે છે, પરન્તુ સર્વઘાતી પ્રકૃતિઓની સાથે જ્યારે તેનું વેદન થાય છે તો પોતે અઘાતી હોવા છતાંય પણ એ સર્વઘાતીનું ફળ પ્રદર્શિત કરે છે. અથવા દેશઘાતી પ્રકૃતિઓની સાથે તેનું વેદન હોય તો પોતે અઘાતી હોવા છતાંય પણ દેશઘાતી રસને પ્રગટ કરે છે. જેવી રીતે કોઈ પુરુષ ચોર ન હોય પરન્તુ ચોરોની સાથે હોય તો તે પણ ચોર જેવો જ દેખાય છે. એ પ્રમાણેજ આ અઘાતી પ્રકૃતિઓ વિષે સમજવું.

उत्तरप्रकृतिसंख्या–

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकशतं १४८ भवन्ति। तथाहि—

(१) ज्ञानावरणीयस्य–मति–श्रुता–ऽवधि–मनःपर्यय–केवलज्ञानावरणीय–भेदात् पञ्च।

(२) दर्शनावरणीयस्य–चक्षुर्दर्शना–ऽचक्षुर्दर्शना–ऽवधिदर्शन–केवलदर्शनावरणीयानि चत्वारि, तथा–निन्द्रा–निद्रानिद्रा–प्रचला–प्रचलाप्रचला–स्त्यानर्द्धिभेदात् पञ्च मिलित्वा नव भवन्ति।

(३) वेदनीयस्य शाताशातभेदेन द्वौ भेदौ स्तः।

उत्तरप्रकृतियोंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की संख्याएँ (मध्यमविवक्षा से) १४८ हैं। वे इस प्रकार—

(१) ज्ञानावरणीय की पांच–(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय।

(२) दर्शनावरणीय की नौ–(१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, तथा (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि, ये पांच निद्राएँ मिलकर कुल नौ प्रकृतियाँ हैं।

(३) वेदनीय की दो–सातावेदनीय और असातावेदनीय।

ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા (મધ્યમ વિવક્ષાથી) એકસોને અડતાલીસ (૧૪૮) છે. તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાંચ – (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય.

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે. (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા–નિદ્રા (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા–પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, આ પાંચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે.

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

(४) मोहनीयस्य-अष्टाविंशतिर्भेदा भवन्ति। तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-भेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि। पञ्चविंशतिश्चारित्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः। चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशतिभेदाः, यथा – कषायमोहनीय१ – नोकषायमोहनीय२–भेदेन चारित्रमोहनीयं द्विविधम्। तत्र कषायमोहनीयस्य षोडश भेदा भवन्ति, यथा–अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो, माया, लोभः ४, अनन्तः=संसारो नारक-तिर्यग्-मनुष्य-देव-जन्म-जरा-मरण-परम्परालक्षणः, तदनुबन्धादनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः कषायाः४। तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकाऽक्षमारूप आत्मपरिणामः। मानो-गर्वः, माया-शाठ्यम्, लोभो-गृध्नुता। अनन्तानुबन्धि-

---

(४) मोहनीय की अट्ठाईस–सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय, ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीय की कुल अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं। चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं–कषायचारित्र-मोहनीय, और नोकषायचारित्रमोहनीय। कषायचारित्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, । जो कषाय, नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में जन्म-जरा-मरण-रूप अनन्त संसार का अनुबंध करे, वह अनन्तानुबन्धी है। उस के चार भेद हैं–क्रोध, मान, माया और लोभ। कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है। गर्वको मान कहते हैं। माया का अर्थ कपट है। गृद्धिभाव (लालच) लोभ कहलाता है। अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राजि

---

(૪) મોહનીયકર્મની અઠાવીસ છે. (૧) સમ્યક્ત્વમોહનીય, મિશ્રમોહનીય, અને મિથ્યાત્વમોહનીય, આ ત્રણ દર્શનમોહનીયની, તથા પચીસ ચારિત્રમોહનીયની, એ પ્રમાણે કુલ અઠાવીસ પ્રકૃતિઓ છે. ચારિત્રમોહનીયની પચીસ પ્રકૃતિઓ આ પ્રમાણે છેઃ–ચારિત્રમોહનીયના બે ભેદ છે. (૧) કષાયચારિત્રમોહનીય અને (૨) નોકષાયચારિત્રમોહનીય, કષાયચારિત્રમોહનીયના સોળ ભેદ છે. જેમકે–અનન્તાનુબંધી ક્રોધ, માન, માયા, લોભ. જે કષાય નારક, તિર્યંચ, મનુષ્ય, અને દેવગતિમાં જન્મ, જરા, મરણરૂપ અનન્ત સંસારનો અનુબંધ કરે તે અનન્તાનુબંધી છે. તેના ચાર ભેદ છે, ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ, કર્ત્તવ્ય–અકર્ત્તવ્યનાં વિવેકનો નાશ કરવાવાળા અક્ષમારૂપ આત્માનો પરિણામ તે ક્રોધ કહેવાય છે. ગર્વને માન કહે છે. માયાનો અર્થ કપટ છે. લાલચ તે લોભ કહેવાય છે. અનન્તાનુબંધી કષાયચતુષ્કમાં ક્રોધને પર્વતની રાજિનું (પર્વત કપાવાથી

कषायचतुष्टये क्रोधस्य पर्वतराजिः, मानस्य शैलस्तम्भः, मायायाः-वंशमूलं, लोभस्य-कृमिजरागः, उदाहरणम् ।

एवमप्रत्याख्यानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः४ । तत्र प्रत्याख्यानं द्विविधम् - देशविति-सर्वविरति-भेदात् । प्रत्याख्यानमित्यत्र प्रतिशब्दः । प्रति-षेधवाची, प्रतिषेधस्याख्यानं=प्रकाशनम्-प्रत्याख्यानम् । 'सर्वान् प्राणिनो न हन्मि यावज्जीवम्' इत्यादि भावतः स्वाचार्यादि समीपे प्रकाशनमित्यर्थः । प्रत्याख्यानस्यावरणीयम् प्रत्याख्यानावरणीयम्, न प्रत्याख्यानावरणीयम् = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । अत्रोपमार्थो 'नञ्' - शब्दः ।

(पर्वत फटने से उत्पन्न हुई दरार,) का, मान को शैलस्तंभका, मायाको वांसकी जडका और लोभको किरमिची रंगका उदाहरण दिया गया है ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो प्रकारका है-देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-वाचक है, अर्थात् प्रतिषेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् "मैं जीवनपर्यन्त किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करुँगा" इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो प्रत्याख्यानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय है । यहाँ 'नञ्' शब्द उपमा के अर्थ में है, अर्थात् जो कषाय प्रत्याख्यानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી ફાટ-ચીર) માનને શૈલસ્તંભનું, માયાને વાંસની જડનું અને લોભને કિરમીચ રંગનું ઉદાહરણ આપ્યું છે.

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદી ચાર ભેદ છે. પ્રત્યાખ્યાન બે પ્રકારના છે-દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'प्रत्याख्यान' શબ્દમાં 'प्रति' ઉપસર્ગ નિષેધ-વાચક છે. અર્થાત્ પ્રતિષેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે. અર્થાત્ "હું જીવન સુધી કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહી." ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે. પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે. અહિં 'नञ्' શબ્દ ઉપમાના અર્થમાં છે. અર્થાત્—જે કષાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. અથવા 'नञ्' અલ્પ-થોડું-એવા અર્થમાં છે. અર્થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयवत् = अप्रत्याख्यानावरणीयम्। यद्वा-अल्पार्थो नञ्, अल्पं प्रत्याख्यानम्=अप्रत्याख्यानम्, तस्यावरणीयमिति। अल्पं=देशविरतिरूपं प्रत्याख्यानं समावृणोति कषायचतुष्टयम्, तस्मादप्रत्याख्यानावरणीयमित्युच्यते। यः कषायः स्वल्पं देशविरतिरूपमावृणोति स सर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानमावृणो-त्येवेति नात्र चित्रम्। यत्कर्मोदयादाविर्भूताः कषायाः केवलं विरतिमात्रमा-वृण्वन्ति ते त्वप्रत्याख्यानावरणीयाः कषायाः।

एवं प्रत्याख्यानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः। अत्र प्रत्याख्यान-शब्देन सर्वविरतिपरिग्रहः। ये पुनः कषायाः सर्वविरतिमेव प्रतिबध्नन्ति, न तु देशविरतिं ते प्रत्याख्यानावरणीया इति।

कहलाता है। अथवा '**नञ्**' अल्प-अर्थ में है, अर्थात् अल्प प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहलाता है, उसका आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय है। यह कषायचतुष्टय अल्प अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यान को आवृत करता है, इस कारण यह अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है। जो कषाय स्वल्प देशविरति को भी नहीं होने देता वह सर्वविरति को न होने दे, इस में आश्चर्य ही क्या है?। जिस कर्म के उदय से आविर्भूत कषाय केवल विरतिमात्र को रोकते हैं, वे अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय हैं। यहा प्रत्याख्यान शब्द से सर्वविरति का ग्रहण किया गया है। जो कषाय, सिर्फ सर्वविरति का ही घात करते हैं, देशविरति का नहीं वे प्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं।

અલ્પ પ્રત્યાખ્યાન અપ્રત્યાખ્યાન કહેવાય છે. તેનું આવરણીય અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે. આ કષાયચતુષ્ટય અલ્પ અર્થાત્ દેશવિરતિરૂપ પ્રત્યાખ્યાનને આવૃત કરે છે (ઢાંકી દે છે). એ કારણથી એ અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. જે કષાય સ્વલ્પ દેશ-વિરતિને પણ થવા દેતા નથી. તે સર્વવિરતિને નહિ થવા દે. એમાં આશ્ચર્યજ શું છે? જે કર્મના ઉદયથી આવિર્ભૂત (ઉત્પન્ન થયેલા) કષાય કેવલ વિરતિમાત્રને રોકે છે, તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે.

આ પ્રમાણે ક્રોધ આદિ ચાર પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે, અહિં પ્રત્યાખ્યાન શબ્દથી સર્વવિરતિનું ગ્રહણ કર્યું છે. જે કષાય, માત્ર સર્વવિરતિનો ઘાત કરે છે, દેશવિરતિનો નહી, તે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે.

प्रत्याख्यानस्य देशविरतिसर्वविरतिरूपस्य परिणामद्वयस्योत्पत्तेर्विघातकत्वात् प्रत्याख्यानावरणीया उच्यन्ते, न तु विद्यमानस्य प्रत्याख्यानस्य विघातकतयेति तत्त्वम् ।

एवं संज्वलनकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः ४ । समस्तसावद्ययोगविरतं संयमरतमपि यतिं दुःसहपरिषहसंपाते संज्वलयन्ति=मालिन्यमापादयन्ति – इति संज्वलनाः । (१६) ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये दृष्टान्ता उच्यन्ते–क्रोधस्य–तडागभूमिराजिः, मानस्यास्थिरतम्भः, मायायाः मेषशृङ्गः, लोभस्य कर्दमरागः ।

देशविरति और सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की उत्पत्ति का घातक होने से इसे प्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं, पहले से विद्यमान प्रत्याख्यान का घातक होने से नहीं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार संज्वलन कषाय हैं । सब प्रकार के सावद्य योग से निवृत्त संयम में लीन मुनि को दुःसह परीषह उपस्थित होने पर जलाने वाला अर्थात् मलिनता उत्पन्न करने वाला कषाय संज्वलन कहलाता है ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचौकडी के दृष्टान्त बतलाते हैं–क्रोध का दृष्टान्त तडागभूमिराजि है, अर्थात् तालाव की भूमि फटने से उत्पन्न होनेवाली दरार के समान यह क्रोध होता है । मान का उदाहरण हड्डीका स्तंभ है । मायाका उदाहरण मेढाका सींग है और लोभ का दृष्टान्त गाडी का ओंगन (गाडी के पैये में दिये हुए तेल का कीटा) है ।

દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિરૂપ પ્રત્યાખ્યાનની ઉત્પત્તિનું ઘાતક હોવાથી તેને પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહે છે, પહેલાથી વિદ્યમાન પ્રત્યાખ્યાનનું ઘાતક હોવાથી નહિ.

એ પ્રમાણે ક્રોધ આદિ ચાર સંજ્વલન કષાય છે, સર્વ પ્રકારના સાવદ્ય યોગથી નિવૃત્ત, સંયમમાં લીન મુનિને દુસ્સહ પરીષહ આવી પ્રાપ્ત થતાં જલાવવાવાળા અર્થાત્ મલિનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા કષાય સંજ્વલન કહેવાય છે.

અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય–કષાય–ચોકડીનું દૃષ્ટાન્ત બતાવે છે–ક્રોધનું દૃષ્ટાન્ત તલાવની ભૂમિરાજિ છે. અર્થાત્ તલાવની ભૂમિ ફાટવાથી ઉત્પન્ન થયેલી ફાટ–ચીરના સમાન એ ક્રોધ હોય છે. માનનું ઉદાહરણ હાડકાંના સ્તંભ છે. માયાનું ઉદાહરણ ઘેટાનાં સીંગ છે, અને લોભનું દૃષ્ટાન્ત ગાડીની મળી (ગાડીનાં પૈડાંમાં અપાયેલા તેલનું કીટું) છે.

प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये क्रोधस्य-वालुकाराजिः, मानस्य-काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छद्बलीवर्दमूत्रिका, लोभस्य-खञ्जनरागः ।

संज्वलनकषायचतुष्टये क्रोधस्य-सलिलराजिः, मानस्य-तृणस्तम्भः, मायाया-रथकारतक्षितकाष्ठसंवलितत्वक्, लोभस्य-हरिद्राराग इति ।

नोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्यं, रतिः, अरति, शोकः, भयं, जुगुप्सा, पुरुषवेदः, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-दैवायुर्भेदात् । यस्योदयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकडी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण वालू में खींची हुई लकीर है। मान का उदाहरण काठका खंभा है। माया का उदाहरण चलते हुए बैल के मूत्र की टेढी-मेढी लकीर है और लोभ का उदाहरण खंजन-राग है।

संज्वलन कषाय की चौकडी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण जल में बनाई हुई लकीर है। मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है। माया का उदाहरण बढई द्वारा छीले हुए काठका छिलका है, और लोभ का उदाहरण हलदी का रंग है।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु। जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કષાયની ચોકડીનું ઉદાહરણ-ક્રોધનું ઉદાહરણ-રેતીમાં કરેલી લીટી છે. માનનું ઉદાહરણ-કાષ્ઠનો થાંભલો છે. માયાનું ઉદાહરણ-ચાલતા બળદીઆના મૂત્રની વાંકી-ચૂંકી લીંટી છે, અને લોભનું ઉદાહરણ-ખંજન-રાગ છે.

સંજ્વલન કષાયની ચોકડીના ઉદાહરણ-ક્રોધનું ઉદાહરણ-પાણીમાં કરેલી લીટી છે. માનનું ઉદાહરણ તણખલાનો થાંભલો છે. માયાનું ઉદાહરણ બઢઈ દ્વારા (સુતાર દ્વારા) છોલેલા લાકડાની છાલ છે અને લોભનું ઉદાહરણ-હલદરનો રંગ છે.

નોકષાયમોહનીયના નવ ભેદ છે-હાસ્ય, રતિ, અરતિ, શોક, ભય, જુગુપ્સા, પુરુષવેદ, સ્ત્રીવેદ, અને નપુંસકવેદ. ૨૫.

(૫) આયુષ્ય-કર્મના ચાર ભેદ છે-નરકાયુ, તિર્યંચાયુ, મનુષ્યાયુ, અને દેવાયુ. જે કર્મના પ્રાયોગ્યપ્રકૃતિવિશેષાનુશાયી, અર્થાત્ જે કર્મના ઉદયથી તે-તે ગતિયોગ્ય પ્રકૃતિવિશેષમાં સ્થિત આત્મા નારકી આદિના રૂપમાં જીવે છે, અને જેના ક્ષયથી મરણ

क्षयान्मृत उच्यते, तदायुः। यद्वा-आनीयन्ते शेषप्रकृतयः उपभोगाय जीवेन यस्मिन्, तदायुः। यथा-कांस्यादिपात्रे शाल्योदनव्यञ्जनादयो भोक्त्रा भोक्तुमानीयन्ते, तद्वत्।

(६) नमयति=प्रापयति नारकादिसंज्ञां जीवमिति नाम। नामकर्मणस्त्रिनवतिर्भेदाः भवन्ति।

तत्र मूलभेदाः द्विचत्वारिंशत्। तथाहि—

(१) गतिनाम, (२) जातिनाम, (३) शरीरनाम, (४) अङ्गोपाङ्गनाम, (५) निर्माणनाम, (६) बन्धननाम, (७) संघातनाम, (८) संस्थाननाम, (९) संहनननाम, (१०) वर्णनाम, (११) गन्धनाम, (१२) रसनाम, (१३) स्पर्श—

और जिस के क्षय से मर जाता है, उसे आयुकर्म कहते हैं। अथवा जिस में जीव भोगने के लिए अन्य प्रकृतियों को लाता है वह आयु है, जैसे कांसे आदि के भाजन में चावल, ओदन, व्यंजन आदि वस्तुएँ भोगने वाला पुरुष लाता है, उसी प्रकार शेष प्रकृतियाँ आयु में भोगी जाती हैं।

(६) नाम—कर्म के तेरानवे (९३) भेद—जो कर्म जीव को नारक आदि संज्ञाओं का पात्र बनाता है, वह नामकर्म कहलाता है। उसके तेरानवे भेद हैं। उन में भी मूल भेद बयालीस हैं, वे इस प्रकार—(१) गतिनाम, (२) जातिनाम, (३) शरीरनाम, (४) अङ्गोपाङ्गनाम; (५) निर्माणनाम, (६) बन्धननाम, (७) संघातनाम, (८) संस्थाननाम, (९) संहनननाम (१०) वर्णनाम, (११) गन्धनाम, (१२) रसनाम, (१३) स्पर्शनाम, (१४) आनुपूर्वीनाम,

પામે છે, તેને આયુકર્મ કહે છે અથવા જેમાં જીવ અન્ય પ્રકૃતિઓને ભોગવવા માટે લાવે છે તે આયુ છે. જેમ કે કાંસા આદિના વાસણમાં ચોખા, ભાત, વ્યંજન (શાક) આદિ વસ્તુઓ ભોગવવાવાળા પુરૂષ લાવે છે તે પ્રમાણે શેષ-પ્રકૃતિઓ આયુમાં ભોગવાય છે.

(૬) નામકર્મના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે. જે કર્મ જીવને નારકી આદિ સંજ્ઞાઓનુ પાત્ર બનાવે છે, તે નામકર્મ કહેવાય છે, તેના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે. તેમાં પણ મૂલ ભેદ બેંતાલીસ છે. તે આ પ્રમાણે-(૧) ગતિનામ,(૨) જાતિનામ,(૩) શરીરનામ,(૪) અંગોપાંગનામ,(૫) નિર્માણનામ,(૬) બંધનનામ,(૭) સંઘાતનામ,(૮) સંસ્થાનનામ,(૯) સંહનનનામ,(૧૦) વર્ણમાન,(૧૧)ગંધનામ,(૧૨)રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વીનામ,(૧૫)

नाम, (१४) आनुपूर्वीनाम, (१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्स्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम. (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिर-नाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशोनाम, (४१) अयशोनाम, (४२) तीर्थङ्करनाम ।

एते मूलभेदाः पिण्डप्रकृतिनाम्नापि कथ्यन्ते । अत्र गत्यादिचतुर्दशपिण्ड-प्रकृतीनामुत्तरप्रकृतयः– पञ्चषष्टिः (६५) ।

---

(१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिर-नाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशःकीर्तिनाम, (४१) अयशःकीर्ति-नाम, और (४२) तीर्थंकरनाम–कर्म ।

इन बयालीस प्रकृतियों में जिन प्रकृतियों के अवान्तर भेद हैं, उन्हें पिण्ड-प्रकृति कहते हैं । गति आदि चौदह पिण्डप्रकृतियाँ हैं और उनके पैंसठ (६५) भेद होते हैं ।

અગુરૂલઘુનામ, (૧૬) ઉપઘાતનામ,(૧૭)પરાઘાતનામ, (૧૮)આતપનામ, (૧૯)ઉદ્યોતનામ, (૨૦) ઉચ્છ્વાસનામ, (૨૧) વિહાયોગતિનામ, (૨૨) પ્રત્યેકશરીરનામ, (૨૩) સાધારણ-શરીરનામ, (૨૪) ત્રસનામ, (૨૫) સ્થાવરનામ, (૨૬) સુભગનામ,(૨૭) દુર્ભગનામ, (૨૮) સુસ્વરનામ, (૨૯) દુઃસ્વરનામ, (૩૦) શુભનામ, (૩૧) અશુભનામ, (૩૨) સૂક્ષ્મનામ, (૩૩) બાદરનામ, (૩૪) પર્યાપ્તનામ, (૩૫) અપર્યાપ્તનામ, (૩૬) સ્થિરનામ, (૩૭) અસ્થિરનામ, (૩૮) આદેયનામ, (૩૯) અનાદેયનામ, (૪૦) યશઃકીર્તિનામ, (૪૧) અયશઃકીર્તિનામ, (૪૨) તીર્થંકરનામ–કર્મ.

આ બેંતાલીસ પ્રકૃતિઓમાં જે પ્રકૃતિઓના અવાન્તર ભેદ છે, તેને પિંડપ્રકૃતિ કહે છે. ગતિ આદિ ચૌદ પિંડપ્રકૃતિઓ છે. અને પાંસઠ (૬૫) તેના ભેદ છે.

[१] गतिनाम्नः पिण्डप्रकृतेश्चत्वारो भेदाः— नरकगतिनाम, तिर्यग्गतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगतिनाम च ।

[२] जातिनाम्नो भेदाः पञ्च - एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

[३] शरीरनाम पञ्चविधम्-औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम ।

[४] अङ्गान्युपाङ्गानि च यस्य कर्मण उदयाद्भवन्ति, तदङ्गोपाङ्गनामकर्म । तत् त्रिविधम्-औदारिक-वैक्रियका-ऽऽहारक-भेदात् । तत्राङ्गान्यष्टौ-उरः, शिरः,

---

[१] गतिनामकर्म के चार भेद—नरकगतिनामकर्म, तिर्यंचगतिनामकर्म, मनुष्यगति-नामकर्म और देवगतिनामकर्म ।

[२] जातिनामकर्म के पांच भेद हैं—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रिय-जातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम और पञ्चेन्द्रियजातिनाम—कर्म ।

[३] शरीरनामकर्म के पांच भेद हैं—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम; आहारक-शरीरनाम, तैजसशरीरनाम और कार्मणशरीरनाम—कर्म ।

[४] जिस कर्म के उदय से अङ्ग और उपाङ्ग होते हैं वह अङ्गोपाङ्गशरीरनामकर्म, कहलाता है । उसके तीन भेद हैं औदारिक—अङ्गोपाङ्ग, वैक्रिय—अङ्गोपाङ्ग और आहारक अङ्गोपाङ्ग । इन में अङ्ग आठ होते हैं—छाती, सिर, पीठ, पेट, दो हाथ और दो पैर । वन्दना करने में पांच अङ्ग प्रशस्त माने जाते हैं—दो पैर, दो हाथ, और सिर । यहाँ

---

(१) ગતિનામકર્મના ચાર ભેદ—નરકગતિનામકર્મ, તિર્યંચગતિનામકર્મ, મનુષ્યગતિનામકર્મ અને દેવગતિનામ-કર્મ.

(૨) જાતિનામકર્મના પાંચ ભેદ છે—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ, અને પંચેન્દ્રિયજાતિનામ-કર્મ.

(૩) શરીરનામકર્મના પાંચ ભેદ છે—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ, અને કાર્મણશરીરનામ-કર્મ.

જે કર્મના ઉદયથી અંગ અને ઉપાંગ થાય છે તે અંગોપાંગશરીરનામકર્મ કહેવાય છે. તેના ત્રણ ભેદ છે. ઔદારિકઅંગોપાંગ, વૈક્રિયઅંગોપાંગ અને આહારક—અંગોપાંગ. તેમાં અંગ આઠ હોય છે- છાતી, શિર, પીઠ, પેટ બે હાથ અને બે પગ. વંદના કરવામાં પાંચ અંગ પ્રશસ્ત માન્યાં છે. બે પગ બે હાથ અને શિર-માથું. અહિ

पृष्टम्, उदरं, करौ, पादौ च। वन्दने तु पञ्चाङ्गान्येव प्रशस्तानि- द्वौ चरणौ, द्वौ करौ, शिरश्चेति। तत्र चरणावित्यनेन जानुनी गृह्येते। एतानि पञ्चाङ्गानि भूमावारोप्य वन्दनं पञ्चाङ्गवन्दनम्। अष्टानामङ्गानामेकैकस्योपाङ्गमनेकप्रकारम्, तत्र शिरोङ्गस्योपाङ्गनामानि - यथा - मस्तिष्क - कपाल - कृकाटिका - शङ्ख-ललाट-तालु-कपोल-हनु-चिबुक-दशनौ-ष्ठ-भ्रू-नयन-कर्ण -नासादीनि। तत्र मस्तिष्कं शिरोऽङ्गस्यारम्भकोऽवयवः।

ननु मस्तिष्कं धातुविशेषो नत्वङ्गं नाप्युपाङ्गम्? इति चेत्, उच्यते-कपालादिवत् शिरोऽङ्गस्यारम्भकत्वान्मस्तिष्कमप्युपाङ्गं शिरसोऽवगन्तव्यम्।

स्थावरपञ्चके तूरःप्रभृतीन्यङ्गानि न सन्ति।

पैरों का अभिप्राय घुटना समझना चाहिए। इन पांचों अङ्गों को भूमि पर टिका कर वन्दना करना पञ्चाङ्गवन्दना है। इन आठों अङ्गों में से प्रत्येक अङ्ग के अनेक उपाङ्ग हैं। उन में से सिरअङ्ग के उपाङ्ग इस प्रकार हैं—मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शंख, ललाट, तालु, कपोल, हनु, दाडी, चिबुक (ठोडी) दांत, ओठ भौंह, नेत्र, कान, नाक, आदि। मस्तिष्क, शिररूप अङ्ग का आरम्भक अवयव है।

'मस्तिष्क एक प्रकार की धातु है, अङ्ग नहीं है और न उपाङ्ग ही है' इसका समाधान यह है कि—कपाल आदि के समान सिररूप अङ्गका आरम्भक होने के कारण मस्तिष्क शिर का उपाङ्ग, ही है।

पांच स्थावरों में छाती आदि अङ्ग नहीं होते।

પગનો અભિપ્રાય ઘુંટણુ સમજવું જોઇએ. આ પાંચ અંગોને ભૂમિપર અડાડીને વંદના કરવી તે પંચાંગ વંદના છે. આ આઠે અંગોમાંથી પ્રત્યેક અંગનાં અનેક ઉપાંગ છે. તેમાંથી શિર–અંગના ઉપાંગ આ પ્રમાણે છે—મસ્તિષ્ક, કપાલ, કૃકાટિકા (ગ્રીવાનો ઉન્નત દેશ) શંખ (કર્ણુસમીપનુ અસ્થિ) લલાટ, તાળુ, ગાલ, દાઢી, ચિબુક (હડપચી વચ્ચેનો છાછર ખાડો) દાંત, ઓઠ, ભૌંહ, નેત્ર, કાન, નાક આદિ. મસ્તિષ્ક શિરરૂપ અંગનું આરંભક અવયવ છે.

'મસ્તિષ્ક એક પ્રકારની ધાતુ છે, અંગ નથી અને પ્રત્યંગ પણ નથી' તેનું સમાધાન એ છે કે–કપાલ આદિ પ્રમાણે શિરરૂપ અંગનું આરંભક હોવાના કારણે મસ્તિષ્ક, શિરનું ઉપાંગજ છે.

પાંચ સ્થાવરોમાં છાતી આદિ અંગ નથી.

(५) शरीरनामकर्मोदयाद् गृहीतेषु गृह्यमाणेषु वा तद्योग्यपुद्गलेष्वात्मप्रदेशस्थितेषु शरीराकारेण परिणामितेष्वपि जतुकाष्ठवत् परस्परमवियोगलक्षणं बन्धननाम। यदीदं न स्यात् ततो वालुकापुरुषवद् विघटितानि शरीराणि स्युः। बन्धननाम पञ्चधा–औदारिकादिभेदात्।

(६) काष्ठपिण्डमृत्पिण्डायःपिण्डवत् बद्धानामपि पुद्गलानां संघातविशेषजनकं संघातनाम। यदि संघातनामरूपः कर्मभेदो न स्यात्तर्हि पुरुषयोषिद्गवादिरूपनानाशरीरभेदो न स्यात्। संघातविशेषजनकाऽन्यकर्मविशेषाभावात्।

[५] शरीरनामकर्म के उदय से ग्रहण किये हुए या ग्रहण किये जाते हुए आत्मप्रदेशों में स्थित और शरीर के आकार परिणत किये हुए शरीर के योग्य पुद्गलों में लाख और लकडी के समान परस्पर अवियोग होना बन्धननामकर्म है, अगर बन्धननामकर्म न होता तो वालु से बनाये हुए पुरुष के समान बिखर जाता। औदारिक आदि के भेद से बन्धन के भी पांच भेद हैं।

[६] काष्ठपिंड, मृत्तिकापिंड या लोह के पिंड के समान बद्ध पुद्गलों में भी एक विशेष प्रकार का संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करने वाला कर्म संघातनामकर्म कहलाता है, और संघातनामकर्म न होता तो पुरुष स्त्री गो आदिरूप भेद शरीर में न होता, क्यों कि संघातविशेष उत्पन्न करने वाला अन्य कर्म ही नहीं है। कार्य, कारण जैसा

(५) શરીરનામકર્મના ઉદયથી ગ્રહણ કરેલા અથવા ગ્રહણ કરવામાં આવતા આત્મપ્રદેશોમાં સ્થિત અને શરીરના આકારે પરિણત કરેલા શરીરના યોગ્ય પુદ્ગલોમાં લાખ અને લાકડીના સમાન અવિયોગ હોવું તે બંધનનામકર્મ છે. અથવા બંધનનામ કર્મ ન હોત તો રેતીથી બનાવેલા પુરૂષની સમાન વિખેરાઈ જાત. ઔદારિક આદિના ભેદથી બંધનના પણ પાંચ ભેદ છે.

(૬) કાષ્ઠપિંડ, મૃતિકાપિંક, અથવા લોઢાના પિંડ સમાન બદ્ધ પુદ્ગલોમાં પણ એક વિશેષ પ્રકારના સંઘાત (ઘનિષ્ઠતા) ઉત્પન્ન કરવાવાળા કર્મ તે સંઘાત–નામકર્મ કહેવાય છે અથવા સંઘાતનામકર્મ ન હોય તો પુરૂષ, સ્ત્રી, ગાય આદિ રૂપભેદ શરીરમાં હોય નહિ. કારણકે સંઘાત–વિશેષ ઉત્પન્ન કરવાવાળા અન્ય કર્મજ નથી.

कारणानुरूपं हि कार्यं दृष्टम्। संघातविशेषादेव हि विभागेन पुरुषादिशरीरव्यपदेशी भवति। संघातनाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात्।

[७] बध्यमानेषु शरीरयोग्यपुद्गलेषु यस्य कर्मण उदयात् आकारविशेषो भवति तत् संस्थाननाम। एतच्च षड्विधम्-(१) समचतुरस्रनाम-(२) न्यग्रोधपरिमण्डलनाम-(३) सादिनाम-(४) कुब्जनाम-(५) वामननाम-(६) हुण्डनामभेदात्।

[८] संहनननाम-अस्थ्नां बन्धविशेषः। तच्च षड्विधम्-(१) वज्रर्षभनाराचनाम, (२) अर्धवज्रर्षभनाराचनाम, (३) नाराचनाम, (४) अर्धनाराचनाम, (५) कीलिकानाम, (६) सेवार्तनाम च।

ही होता है। संघात की भिन्नता के कारण ही शरीरों में स्त्री, पुरुष आदिका भेद-व्यवहार होता है। औदारिक आदि के भेद से संघात भी पांच प्रकार का है।

[७] बांधे जाते हुए शरीरयोग्य पुद्गलों में जिस कर्म के उदय से आकृति-विशेष बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं। संस्थान छह प्रकारका है—

(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुब्जक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान।

[८] अस्थियों के बन्धविशेष को संहनननामकर्म कहते हैं। उसके छह भेद हैं-(१) वज्रर्षभनाराच-संहनन, (२) अर्धवज्रर्षभनाराच-संहनन, (३) नाराच-संहनन, (४) अर्धनाराच-संहनन, (५) कीलिका-संहनन और (६) सेवार्त-संहनन।

કાર્ય, કારણ જેવાંજ હોય છે. સંઘાતની ભિન્નતાના કારણેજ શરીરોમાં સ્ત્રી, પુરૂષ આદિનો ભેદ-વ્યવહાર હોય છે. ઔદારિક આદિના ભેદથી સંઘાત પણ પાંચ પ્રકારના છે.

(૭) બંધાતા શરીરયોગ્ય પુદ્ગલોમાં જે કર્મના ઉદયથી આકૃતિવિશેષ બને છે. તેને સંસ્થાનનામકર્મ કહે છે. સંસ્થાન છ પ્રકારના છે—(૧) સમચતુરસ્ર-સંસ્થાન, (૨) ન્યગ્રોધપરિમંડલ-સંસ્થાન, (૩) સાદિ-સંસ્થાન, (૪) કુબ્જક-સંસ્થાન, (૫) વામન-સંસ્થાન, (૬) હુંડક-સંસ્થાન.

(૮) અસ્થિઓના બંધવિશેષને સંહનનનામકર્મ કહે છે. તેના છ ભેદ છેઃ-(૧) વજ્રઋષભનારાચસંહનન, (૨) અર્ધવજ્રઋષભનારાચસંહનન, (૩) નારાચસંહનન, (૪) અર્ધનારાચસંહનન, (૫) કીલિકાસંહનન અને (૬) સેવાર્ત્તસંહનન.

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्श-विशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम। स्पर्शनामाष्टधा-कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-स्निग्ध-रूक्ष-शीतो-ष्णनामभेदात्।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुरभेदात्। लवणो मधुरान्तर्गत इति केचित्।

(११) शरीरविषयं सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद् गन्धनाम। गन्धनाम द्विविधम्-सुगन्ध-दुर्गन्धभेदात्।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम, तत् पञ्चविधम्-कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्लभेदात्। सर्वाणि चैतानि स्पर्शना-मादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति।

---

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है-कठोर, कोमल, भारी, हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण।

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकार का है-तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा और मीठा। किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्ध-नामकर्म कहते हैं। उसके दो भेद हैं-सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है, वह वर्णनामकर्म है। इस के पांच भेद हैं-कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर वर्ण तक ये सब, शरीरवर्त्ती पुद्गलों में ही परिणत होते हैं।

---

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમાં જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે. સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકારે છે—તીખો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો. કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે.

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમાં સુગંધ અથવા દુર્ગંધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગંધનામકર્મ કહે છે. તેના બે ભેદ છે-સુગંધનામ અને દુર્ગંધનામ.

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમાં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે. તેના પાંચ ભેદ છે—કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ધોળો. સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાંજ પરિણત થાય છે.

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तत्तद्देशक्रमेण] तत्तत्प्रापणसमर्थमानुपुर्वीनाम। गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयाद्-तिशयेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपुर्वीशब्दवाच्यं भवति। यथा-वारिवेगो बलीवर्दादेः, यथा वा नस्योतस्य बलीवर्दस्य नासारज्ज्वां प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनु-पूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम्।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताव-त्कालिकी गतिः। सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च। तत्र यदा ऋज्व्या समय-

---

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुंचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं। यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं। जैसे जलका प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है। अथवा जैसे गाडीवान बैलको नाथ पकड कर अपनी ओर मोड लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोडकर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् बीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं। वह दो प्रकार की है-सरल और वक्र। जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

---

(૧૩) નરક આદિ ગતિમાં જવાવાળા જીવ જો કે-અન્તર્ગતિ (વિગ્રહગતિ)માં વર્તમાન છે તેને તે નરક આદિ ગતિઓની તરફ અભિમુખ કરીને આનુપૂર્વીથી અર્થાત્ તે તે સ્થાનના ક્રમથી તે તે ગતિઓમાં પહોંચાડવામાં જે કર્મ સમર્થ હોય છે તે કર્મને આનુ-પૂર્વી કર્મ કહે છે. જો કે આનુપૂર્વી શબ્દનો અર્થ તે તે સ્થાનનો ક્રમ, એવો છે તો પણ ગત્યન્તરમાં જતે જીવને જે કર્મનો ઉદય થવાથી તે ગતિમાં તે તે સ્થાનના ક્રમથી જવું હોય છે, આટલા માટે તે કર્મને આનુપૂર્વી કહે છે. જેમ પાણીનો પ્રવાહ બળદીયાને પોતાની તરફ ખેંચી લે છે, અથવા જેમ ગાડીવાળો બળદીયાને તેની નાથ પકડીને પોતાની બાજુ મોડી લે છે તેજ પ્રમાણે આનુપૂર્વી કર્મ-જીવ જે ગતિનું કર્મ બાંધ્યું છે તે ગતિમાં તેને પહોંચાડી દે છે માટે તે ગતિમાં પહોંચાડવાને માટે સહાયક છે.

જ્યાં સુધી મનુષ્ય પોતાની મનુષ્યગતિને મૂકીને નરક આદિ બીજી ગતિમાં નથી પહોંચ્યો ત્યાં સુધીની અર્થાત્ વચલી ગતિને અન્તર્ગતિ-વિગ્રહગતિ કહે છે. તે બે પ્રકારની હોય છેઃ-સરલ અને વક્ર. જીવ જ્યારે એકસમયપ્રમાણવાળી સરલ (સીધી) ગતિથી

प्रमाणया गच्छति, तदाऽऽयुष्यकर्मणैवोत्पत्तिस्थानं प्राप्नोति । तत्रानुपुर्वीनाम्नः कश्चिदुपयोगो न भवति । वक्रगत्या पुनः प्रवृत्तः कूर्पर- (वक्राकाररथावयव)-लाङ्गल-गोमूत्रिकालक्षणया द्वित्रिचतुःसमयमानया वक्रारम्भकाले पुरस्कृत-मायुरादत्ते, तदैव चानुपूर्वीनामाप्युदेति ।

ननु च यथैव ऋज्व्यां गतौ विनाऽऽनुपूर्वीनामकर्मणा गतिं प्राप्नोति, तद्वद् वक्रगत्यामपि कस्मान्न ? इति चेत्, उच्यते-ऋज्व्यां-पूर्वायुष्कर्मव्यापारेणैव गच्छति, यत्र तत् पूर्वायुष्कर्म क्षीणं, तत्र तस्याध्वयष्टिस्थानीयस्यानुपूर्वीनामकर्मण उदयो भवति ।

गति से जाता है तब आयु कर्म के द्वारा ही उत्पत्तिस्थान को प्राप्त कर लेता है, वहां आनुपूर्वीनामकर्म का कोई उपयोग नहीं होता । जब जीव कूर्पर (रथ का टेढा अवयव) हल या गोमूत्रिका सरीखी और दो तीन या चार समयवाली वक्र गति से जाता है तब मोडके आरम्भ-समय में आगे की आयु ग्रहण करता है, उसी समय आनुपूर्वी कर्मका उदय होता है ।

शङ्का-जैसे सरलगति में आनुपूर्वीकर्म के विना ही गति प्राप्त करता है, उसी प्रकार वक्र गति में भी क्यों नहीं गति करता ?।

समाधान-सरल गति में पहले के आयुकर्म के व्यापार से ही जीव गति करता है । जहाँ वह आयु क्षीण हो जाती है वहाँ मार्गयष्टि के समान आनुपूर्वीनामकर्म का उदय होता है ।

જાય છે, ત્યારે આયુકર્મદ્વારાજ ઉત્પતિ સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી લે છે. ત્યાં આનુપૂર્વી નામકર્મનો કાંઈ ઉપયોગ થતો નથી. જ્યારે જીવ કૂર્પર (રથનો વાંકો એક ભાગ) હલ અથવા ગોમૂત્રિકા સરખી અને બે, ત્રણ અથવા ચાર સમયવાળી વક્રગતિથી જાય છે ત્યારે વળવાના આરંભ સમયમાં આગળની આયુ ગ્રહણ કરે છે તે સમય આનુપૂર્વી કર્મનો ઉદય થાય છે.

શંકા—જેમ સરલગતિમાં આનુપૂર્વીકર્મ વિનાજ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. તે પ્રમાણે વક્રગતિમાં ગતિ શા માટે કરતા નથી?

સમાધાન—સરલગતિમાં પ્રથમના આયુકર્મના વ્યાપારથીજ જીવ ગતિ કરે છે. જ્યાં તે આયુ ક્ષીણ થઈ જાય છે ત્યાં માર્ગયષ્ટિ-માર્ગની લાકડી-ના સમાન આનુપૂર્વી નામકર્મનો ઉદય થાય છે.

आनुपूर्वीनाम चतुर्विधम्-नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, देवगत्यानुपूर्वीनाम च ।

(१४) लब्धि-शिक्षर्द्धि-प्रत्ययस्याकाशगमनस्य जनकं नाम विहायोगतिः सामान्य गमनरूपा गतिरपि विहायोगति रित्युच्यते न तु केवलमाकाशगमनरूपेति। सा द्विधा-शुभा-शुभभेदात् । तत्र-हंस गज-वृषादीनां शुभा । उष्ट्रशृगालादीनाम् अशुभा । तत्र-लब्धिर्देवादीनां देवत्वोत्पत्त्यविनाभाविनी । शिक्षया ऋद्धिः, शिक्षर्द्धिः, लब्ध्या शिक्षर्द्ध्या च तपस्विनां, शिक्षर्द्ध्या प्रवचनमधीयानानां विद्याद्यावर्तनप्रभावाद् वा आकाशगमनस्य जनकं विहायोगतिनामकर्म ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है-नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लब्धि एवं शिक्षाऋद्धिकारणक; आकाशगमन उत्पन्न करने वाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाता है। वह सामान्य गमनरूप गति भी विहायोगति कहलाती है, नहीं कि मात्र आकाशगमनरूप । इस के दो भेद हैं-शुभ और अशुभ । हंस, गज, वृषभ आदि की गति के समान शुभविहायोगति है और ऊंट सियार आदि की गतिके अनुसार अशुभविहायोगति है । देव के रूप में उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली लब्धि देवों को प्राप्त होती है । शिक्षा से प्राप्त होने वाली ऋद्धि शिक्षा-ऋद्धि कहलाती है। लब्धि एवं शिक्षा-ऋद्धि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है । प्रवचन का अध्ययन करने वालों का विद्या आदि के आवर्तन के प्रभाव से या शिक्षाऋद्धि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति है ।

આનુપૂર્વીનામકર્મ ચાર પ્રકારનાં છે-નરકગત્યાનુપૂર્વીનામ, તિર્યગ્ગત્યાનુપૂર્વીનામ, મનુષ્યગત્યાનુપૂર્વીનામ, અને દેવગત્યાનુપૂર્વીનામ.

(૧૪) લબ્ધિ એવં શિક્ષા-ઋદ્ધિકારણક આકાશગમન ઉત્પન્ન કરવાવાળું કર્મ વિહાયોગતિનામકર્મ કહેવાય છે. સામાન્ય ગમનરૂપ ગતિ પણ વિહાયોગતિ કહેવાય છે ફક્ત આકાશગમનરૂપ ગતિ નહીં. તેના બે ભેદ છે-શુભ અને અશુભ. હંસ, હાથી, બળદ વીગેરેની ગતિ સમાન શુભવિહાયોગતિ છે. અને ઉંટ, શિયાલ વગેરેની ગતિ અનુસાર અશુભવિહાયોગતિ છે. દેવના રૂપમાં ઉત્પન્ન હોવાના સાથેજ ઉત્પન્ન થવાવાળી લબ્ધિ દેવોને પ્રાપ્ત થાય છે. શિક્ષાથી પ્રાપ્ત થવાવાળી ઋદ્ધિ શિક્ષાઋદ્ધિ કહેવાય છે. લબ્ધિ એવં શિક્ષાઋદ્ધિથી તપસ્વિઓ આકાશગમન કરે છે. પ્રવચનનું અધ્યયન કરવાવાળાના વિદ્યા આદિના આવર્તનના પ્રભાવથી અથવા શિક્ષાઋદ્ધિથી જે આકાશગમન થાય છે તે વિહાયોગતિ છે.

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्-उच्चनीचभेदात् । तत्रउच्चगोत्रं-देश-जाति-कुल-स्थान-मान-सत्कारै-श्वर्याद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश-चाण्डालादिजातिदास्य-निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्-दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैकशतं (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तषड्जीवनिकायानां यथार्थ-

---

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अडतालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त षड्जीवनिकाय के वास्तविक

---

(૭) ગોત્રકર્મ બે પ્રકારનું છે—ઉચ્ચગોત્ર અને નીચગોત્ર. ઉચ્ચગોત્રથી દેશ, જાતિ, કુલ, સ્થાન, માન, સત્કાર, ઐશ્વર્ય આદિનો ઉત્કર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે. નીચ ગોત્ર તેનાથી વિપરીત છે. તેનાથી અનાર્ય દેશ, ચાંડાલ આદિ જાતિ અને દાસપણું વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે.

અંતરાયકર્મના પાંચ ભેદ છે—દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય અને વીર્યાન્તરાય.

આ પ્રમાણે સર્વનો યોગ કરતાં આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓ એકસો અડતાલીસ (૧૪૮) થાય છે.

કર્મક્ષયનો વિચાર—

જ્ઞાન અને ક્રિયાથી કર્મોનો ક્ષય થાય છે. પૂર્વોક્ત ષડ્જીવકાયના વાસ્તવિક

स्वरूपस्य विस्तरेण संक्षेपेण वा अवबोधो ज्ञानम्। गुप्तिसमितिसमाराधनपूर्वकं शास्त्रविधिना तपःसंयमाचरणं क्रिया।

अष्टकर्मणां भस्मसात्कारकं तपः। तस्यानशनादयो द्वादश भेदाः। सावद्यक्रियाः सम्यक् परित्यज्य निरवद्यक्रियासु प्रवृत्तिः संयमः। तस्य पृथिवीकायसंयमादयः सप्तदश भेदाः।

उक्तषड्जीवनिकायस्वरूपं सम्यग् विज्ञाय संयमपूर्वकतपश्चरणेनाभिनवकर्मप्रवेशाभावः, पूर्वोपचितकर्मपरिक्षयश्च भवति। तत्रैवं क्रमः—

अष्टमगुणस्थानादात्मा क्षपकश्रेणिं समारोहति। असौ क्षपको नवमं दशमं गुणस्थानं समारुह्य द्वादशं गुणस्थानमारोहति। तत्र शुक्लध्यानस्य द्वितीय-

---

स्वरूप का विस्तारपूर्वक या संक्षिप्त बोध—ज्ञान कहलाता है। गुप्ति समिति का आराधन करते हुए शास्त्रोक्त विधि के साथ तप और संयम का आराधन करना क्रिया है।

आठ कर्मों का भस्म करना तप है। तप के अनशन आदि बारह भेद हैं। सावद्य क्रियाओं का सम्यक् प्रकार से परित्याग करके निरवद्य क्रियाओं में प्रवृत्ति करना संयम है। पृथ्वीकायसंयम आदि के भेद से वह सत्तरह (१७) प्रकार का है।

उक्त षड्जीवनिकाय का स्वरूप समीचीन प्रकार से जानकर, संयमपूर्वक तप का आचरण करने से नवीन कर्मों का आना रुक जाता है और पहले के संचित कर्मों का क्षय होता है। कर्मक्षय का क्रम यह है—

आत्मा आठवें गुणस्थान से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होता है। यह क्षपक आत्मा नौवें दशवें गुणस्थानों पर आरूढ हो कर बारहवें गुणस्थान पर पहुंचता है।

સ્વરૂપનો વિસ્તારપૂર્વક અથવા સંક્ષિપ્ત બોધ તે જ્ઞાન કહેવાય છે. ગુપ્તિ, સમિતિની આરાધના કરતાં શાસ્ત્રોક્ત વિધિ પ્રમાણે તપ અને સંયમનુ આરાધન કરવું તે ક્રિયા છે. આઠ કર્મોને બાળી નાંખવા તે તપ છે. તપના અનશન આદિ બાર ભેદ છે. સાવદ્ય ક્રિયાઓનો સમ્યક્ પ્રકારે પરિત્યાગ કરીને નિરવદ્ય ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્તિ કરવી તે સંયમ છે. પૃથ્વીકાયસંયમ આદિના ભેદથી તે સત્તર (૧૭)પ્રકારનો છે. આગળ કહેલા ષડ્જીવનિકાયના સ્વરૂપને સારી રીતે જાણીને સંયમપૂર્વક તપનું આચરણ કરવાથી નવીન કર્મોનું આવવું રોકાઈ જાય છે, અને પહેલાના સંચિત કર્મોનો ક્ષય થાય છે. કર્મક્ષયનો ક્રમ એ છે—આત્મા આઠમાં ગુણસ્થાનથી ક્ષપકશ્રેણીપર આરૂઢ થાય છે. આ ક્ષપક આત્મા નવમાં, દસમા ગુણસ્થાનો પર આરૂઢ થઈને બારમા ગુણસ્થાન પર જઈ પહોંચે છે.

पादे प्रथमं मोहनीयं कर्म क्षपयति। तदनु ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीया-ऽन्तराय-कर्माणि युगपदेव क्षपयित्वा द्वादशगुणस्थानान्ते त्रयोदशगुणस्थानादौ सर्वद्रव्य-पर्यायविषयं पारमैश्वर्यमनन्तं केवलं ज्ञानदर्शनं प्राप्य शुद्धो बुद्धः सर्वज्ञः सर्वदर्शी जिनः केवली भवति। ततः सयोगिकेवली प्रतनु-शुभ-चतुष्कर्मावशेषः, आयुः-कर्मसंस्कारवशाद् भव्यजनबोधनाय भूमण्डले विहरति, विविधं कर्मरजो भव्यानां हरति च।

असौ तत्पश्चाद् अयोगिकेवली भूत्वा चतुर्दशगुणस्थाने-आयुष्यकर्मपरिसमाप्तौ सत्यां, वेदनीय-नाम-गोत्रकर्माणि क्षपयति। एवं मूलप्रकृतिवाच्यमष्टविधं ज्ञाना-वरणीयादिसकलकर्म क्षीयते।

वहाँ शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाये में सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय करता है। तत्पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों को एक ही साथ क्षय करके बारहवें गुणस्थान के अन्त में और तेरहवें गुणस्थान की आदि में समस्त द्रव्य पर्याय को विषय करने वाला परम ऐश्वर्य को प्राप्त होने योग्य अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन और केवली हो जाता है। फिर वह सयोगी केवली चार हल्के अघातिया कर्म शेष रहने पर आयुकर्म के संस्कार वश हो कर भव्य जीवों को बोध देने के लिए भूमण्डल में विहार करते हैं।

तत्पश्चात् अयोगी केवली हो कर चौदहवें गुणस्थान में आयुकर्म की समाप्ति होने पर वेदनीय नाम आयु गोत्र कर्मों का क्षय करते हैं। इस प्रकार मूलप्रकृति कहलाने वाले आठों ही कर्मों का क्षय हो जाता है।

ત્યાં શુકલ ધ્યાનના બીજા પાયામાં સર્વપ્રથમ મોહનીય કર્મનો ક્ષય કરે છે. તે પછી જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અંતરાય કર્મોનો એકી સાથે ક્ષય કરીને, બારમા ગુણ-સ્થાનના અંતમાં અને તેરમા ગુણસ્થાનની આદિમાં સમસ્ત દ્રવ્ય-પર્યાયને વિષય કરવાવાળા પરમ ઐશ્વર્યને પ્રાપ્ત થવા યોગ્ય અનન્ત કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શન પ્રાપ્ત કરીને શુદ્ધ, બુદ્ધ, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, જિન અને કેવલી થઈ જાય છે. પછી તે સયોગી કેવલી ચાર હલકાં અઘાતિયાં કર્મ બાકી રહેવા પર આયુકર્મના સંસ્કારવશ થઈને ભવ્યજીવોને બોધ આપવા માટે પૃથ્વીમાં વિહાર કરે છે.

તે પછી અયોગી કેવલી થઈને ચૌદમાં ગુણસ્થાનમાં આયુકર્મની સમાપ્તિ થયા પછી વેદનીય, નામ અને ગોત્રકર્મનો ક્ષય કરે છે. આ પ્રમાણે મૂળપ્રકૃતિ કહેવાતા આઠ કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે.

एवमात्मप्रदेशेभ्यः सकलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साद्यनन्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्थानं प्राप्नोति। ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो भवतीति सिद्धम्।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थविषयकतया बलवत्तरत्वेन मिथ्याज्ञानं निवर्तयति। मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते। कारणाभावे कार्यस्यानुत्पादात्। रागाद्यभावे च तत्फलभूता मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्न भवति। प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः। आरब्धकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशों से समस्त कर्मों के हटजाने पर ऊर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है। अत एव सिद्ध हुआ कि ज्ञान और क्रिया से सफल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थ को विषय करता है, अतः वह बलवान् है, और बलवान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है। मिथ्याज्ञान जब हट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं होती; क्यों कि कारण के अभाव में काय उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार रागादि का अभाव होने पर उस से होने वाली मन, वचन और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है। प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती। जिन का कार्य

આત્મપ્રદેશોથી સમસ્ત કર્મો દૂર થયા પછી ઉર્ધ્વગતિશીલ હોવાના કારણે આત્મા સાદિ-અનન્ત, પુનરાગમનરહિત સિદ્ધિગતિ નામના સ્થાનને પ્રાપ્ત કરે છે. એટલે એ સિદ્ધ થયું કે જ્ઞાન અને ક્રિયાથી સકલ કર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે.

કેટલાક માણસોનુ કહેવું એ છે કેઃ-સમ્યગ્જ્ઞાન યથાર્થ પદાર્થનો વિષય કરે છે, એ કારણથી તે બળવાન છે. અને બળવાન હોવાના કારણે મિથ્યાજ્ઞાનને દૂર કરે છે. મિથ્યાજ્ઞાન જ્યારે દૂર થઈ જાય છે, તો તેના કારણે ઉત્પન્ન થવાવાળા રાગ-આદિની ઉત્પત્તિ થતી નથી; કેમકે કારણના અભાવમાં કાર્ય ઉત્પન્ન થતું નથી. આ પ્રકારે-રાગાદિનો અભાવ થવાથી તેનાથી થવા વાળી મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃતિ અટકી જાય છે. પ્રવૃતિના અટકાવથી પુણ્યકર્મ અને પાપ કર્મની ઉત્પત્તિ થતી નથી. જેનું કાર્ય આરંભ

पुण्यपापकर्मणोरुपभोगादेव प्रक्षयो भवति; सञ्चितरूपयोस्तु पुण्यपापकर्मणोस्तत्त्वज्ञानादेव प्रक्षयः। एवं कर्मक्षयो भवति। उक्तञ्च—

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा"। इति। तथा "नाभुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि" इति च।

केचिच्च—संचितकर्मणामपि प्रक्षयो भोगादेव भावतीत्युक्तं तत्रानुमानं प्रमाणं च प्रदर्शितम्। तथाहि-पूर्वकर्माण्युपभोगादेव क्षीयन्ते, कर्मत्वात्। यत् यत् कर्म तत् तत् उपभोगादेव क्षीयते, यथा-आरब्धशरीरं कर्म, तथा चैतत् कर्म, तस्मादुपभोगादेव क्षीयते।

न चोपभोगात् कर्मप्रक्षयस्वीकारे कर्मान्तरस्यावश्यम्भावात् संसारानुच्छेदः इति वाच्यम्,

---

आरम्भ हो चुका है, ऐसे पाप-पुण्य का, उपभोग से क्षय होता है और सञ्चित पुण्य-पाप का, तत्वज्ञान से। इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है। कहा भी है—

"ज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर डालती है"। तथा-" करोडों सैकडों कल्पों में भी कर्म का भोगे विना क्षय नहीं होता"।

किसी का कहना है कि-संचित कर्मों का क्षय भी भोग से ही हो जाता है। इस विषय में अनुमान प्रमाण भी दिया गया है। वह इस प्रकार है-पूर्वसंचित कर्म उपभोग से ही क्षीण होता है, क्यों कि वह कर्म है। जो जो कर्म होता है वह वह उपभोग से ही क्षीण होता है, जैसे आरब्ध शरीरकर्म। संचितकर्म भी कर्म हैं अतः वे भी उपभोग से ही क्षीण होते हैं।

उपभोग से कर्मों का क्षय स्वीकार किया जाय तो नवीन कर्मों की उत्पत्ति अवश्य होगी और फलतः जन्म-मरण का कभी नाश नहीं होगा। ऐसी आशङ्का करना उचित नहीं है।

થઈ ચૂકયું છે, એવા પાપ-પુણ્યનો ઉપભોગથી ક્ષય છે, અને સંચિત પુણ્ય-પાપનો તત્ત્વજ્ઞાનથી ક્ષય થાય છે. આ પ્રકારે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છે કેઃ-"જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મોને બાળી નાંખે છે." તથા "કરોડો સેંકડો કલ્પોમાં પણ કર્મ ભોગવ્યા વિના ક્ષય થતા નથી."

કેટલાક કહે છે કે- સંચિત કર્મોનો ક્ષય પણ ભોગથીજ થઈ જાય છે. આ વિષયમાં અનુમાન પ્રમાણ પણ આપવામાં આવ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે-પૂર્વસંચિતકર્મ ઉપભોગથીજ ક્ષીણ થાય છે, કારણ કે તે કર્મ છે, જે જે કર્મ હોય છે તે તે ઉપભોગથીજ ક્ષીણ થાય છે, જેવી રીતે આરબ્ધ શરીરકર્મ સંચિત કર્મ પણ કર્મ છે, એ કારણથી તે પણ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે.

ઉપભોગથી કર્મોનો ક્ષય સ્વીકાર કરવામાં આવે તો, નવીન કર્મોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય થશે અને ફલતઃ જન્મ મરણનો કયારેય નાશ નહિ થાય, આવી શંકા કરવી તે ઉચિત નથી.

समाधिबलेनोत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य जनस्य कर्मज्ञानसामर्थ्यात्तदुपभोगार्थमशेषशरीरमुत्पाद्याशेषभोगादेव पूर्वकर्मक्षयः, पुनस्तस्य तत्त्वज्ञानिनो मिथ्याज्ञानाभावात्तज्जनितसंस्कारस्याप्यभावेन कर्मान्तरानुत्पत्तिश्च । तथा चोपभोगादेव सकलकर्मक्षयस्वीकारेऽपि नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ।

न च पुण्यपापकर्मणोर्जन्मान्तरशरीरोत्पादने सहकारि कारणं मिथ्याज्ञानजनितसंस्कारोऽस्ति; तस्याभावादेव तत्त्वज्ञानिनां विद्यमाने अपि कर्मणी न जन्मान्तरशरीराण्युत्पादयतः, अतस्तेषां कर्मसत्त्वेऽपि न काऽपि हानिरिति वाच्यम् ।

समाधि के बल से उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाले पुरुष के कर्मज्ञान के सामर्थ्य से कर्म का उपभोग करने के लिए अशेष शरीर उत्पन्न करके अशेष भोग से ही पूर्वकर्म का क्षय हो जाता है । उस तत्त्वज्ञानी पुरुष में मिथ्याज्ञान नहीं होता और मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार भी नहीं होता । इस कारण नवीन कर्म की उत्पत्ति भी नहीं होती । ऐसी स्थिति में उपभोग से ही समस्त कर्मों का क्षय मान लेने में लेशमात्र भी दोष नहीं है ।

मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार जन्मान्तर के शरीर की उत्पत्ति में सहकारी कारण होता है । वह संस्कार तत्त्वज्ञानी में नहीं रहता । उस का अभाव हो जाने पर, पुण्य–पाप कर्म भले ही विद्यमान रहें मगर वे शरीर उत्पन्न नहीं कर सकते । अत एव उन में कर्म का सद्भाव होने पर भी कोई हानि नहीं होती । यह सब कथन सत्य नहीं है ।

સમાધિના બળથી ઉત્પન્ન તત્ત્વજ્ઞાન વાળા પુરુષનાં કર્મજ્ઞાનનાં સામર્થ્યથી કર્મનો ઉપભોગ કરવા માટે અશેષ શરીર ઉત્પન્ન કરીને અશેષ ભોગથીજ પૂર્વકર્મનો ક્ષય થઈ જાય છે. તે તત્ત્વજ્ઞાની પુરુષમાં મિથ્યાજ્ઞાન નથી અને મિથ્યાજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા સંસ્કાર પણ નથી. આ કારણથી નવીન કર્મની ઉત્પત્તિ પણ થતી નથી. એવી સ્થિતિમાં ઉપભોગથીજ સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય માની લેવામાં લેશ માત્ર પણ દોષ નથી.

મિથ્યાજ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા સંસ્કાર જન્માન્તરના શરીરની ઉત્પત્તિમાં સહકારી કારણ થાય છે. તે સંસ્કાર તત્ત્વજ્ઞાનીમાં રહેતા નથી. તેનો અભાવ થઈ જવાથી, પુણ્ય-પાપકર્મ ભલેને વિદ્યમાન રહે. પરન્તુ તે શરીર ઉત્પન્ન કરી શકતાં નથી, એટલા માટે તેમાં કર્મનો સદ્ભાવ હોવા છતાંય પણ કોઈ પ્રકારે હાનિ થતી નથી. આ સર્વ કથન સાચાં નથી.

जन्यपदार्थस्य नित्यत्वापत्तिः स्यादित्येव महान् दोषः समापद्येत। तथाहि—पुण्यपापरूपकर्मणोः स्वफलानुत्पादनेन तत्सत्तास्वीकारे कार्यरूपयोरपि तयोर्नित्यत्वप्रसङ्गः। किञ्च—भविष्यत्काले पुण्यपापकर्मणोरनुत्पत्तिस्वीकारे तत्त्वज्ञानिनां प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं कथमुपपद्येत ? इति वदन्ति। अत्रोच्यते—

यत्तु—उक्तम्—आरब्धकार्ययोः पुण्यापुण्यकर्मणोरुपभोगात् प्रक्षयः संचितयोश्च तयोः प्रक्षयस्तत्त्वज्ञानादित्यादि, तदपि न संगतम्। तथाहि—उपभोगात् कर्मप्रक्षये तदुपभोगकालेऽभिलाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारस्यापरकर्मकारणस्य

सब से पहले महान् हानि तो यही है कि जन्य पदार्थ (काय) भी नित्य हो जायगा। वह इस प्रकार—पुण्य—पाप रूप कर्मों के फल को उत्पन्न न कर के सत्ता स्वीकार की गई है, सो कार्यरूप होने पर भी उन में नित्यता का प्रसङ्ग आता है। दूसरी बात यह है कि—आगामी काल में पुण्य—पाप की उत्पत्ति न स्वीकार करने पर तत्त्वज्ञानियों के लिए, प्रत्यवाय (दोष) का परिहार करने के लिए नित्य—नैमित्तिक अनुष्ठान करना किस प्रकार संगत होगा। ऐसा इन का कथन है,

इस पर विचार किया जाता है—

कार्यरूप में परिणत पुण्य और पाप कर्मों का उपभोग से क्षय होता है और संचित कर्मों का तत्त्वज्ञान से, इत्यादि कथन भी संगत नहीं है। उपभोग से कर्मों का क्षय मानने पर कर्मों का उपभोग करते समय इच्छापूर्वक मन वचन और कायाका व्यापार

સૌથી પ્રથમ મહાન્ હાનિ તો એજ છે કે જન્ય પદાર્થ (કાર્ય) પણ નિત્ય થઈ જશે. તે આ પ્રમાણે-પુણ્યપાપરૂપ કર્મોના ફળને ઉત્પન્ન ન કરતાં નિત્યતાનો સ્વીકાર કરવામાં આવ્યો છે. તે કાર્યરૂપ હોવા છતાંય પણ તેમાં નિત્યતાનો પ્રસંગ આવે છે. બીજી વાત એ છે કે-આગામી કાળમાં પુણ્યપાપની ઉત્પત્તિ નહિ સ્વીકારવાથી તત્ત્વજ્ઞાનીઓ માટે પ્રત્યવાય (દોષ) નો પરિહાર કરવા માટે નિત્ય-નૈમિત્તિક અનુષ્ઠાન કરવું તે કેવી રીતે સંગત થશે આ પ્રમાણે તેમનું કથન છે.

તેના પર વિચાર કરવામાં આવે છે:—

કાર્યરૂપમાં પરિણત પુણ્ય અને પાપ કર્મોનો ઉપભોગથી ક્ષય થાય છે. અને સંચિત કર્મોનો તત્ત્વજ્ઞાનથી. ઇત્યાદિ કથન પણ સંગત નથી. ઉપભોગથી કર્મોનો ક્ષય માનવાથી, કર્મોનો ઉપભોગ કરવા સમયે ઇચ્છાપૂર્વક મન, વચન અને કાયાનો વ્યાપાર

संभवात् पुनः प्रचुरतरपुण्यपापकर्मसद्भावे कथमात्यन्तिकः कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विद्यते, किन्तु चारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संचितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं संभाव्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । ततश्च रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियानिवृत्तिरूपचारित्रसहयोगाद् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्भवति । तद्वत् संचित-कर्मक्षयोऽपि चारित्रसहकृतसम्यग्ज्ञानादेव भवति । यथौषधं ज्ञानमात्रेण नाममात्रेण वा न व्याधिं निवर्तयति, किन्तु तत्सेवनादिक्रियापरिणत्यैव, तद्वत् चारित्रसहि-तसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, और यह व्यापार नवीन कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए फिर बहुत से पुण्यकर्म और पापकर्म संचित हो जाएँगे । ऐसी दशा में आत्यन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

अकेला सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ, चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप चारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संचित कर्मों का क्षय भी चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे—औषधि ज्ञानमात्र से या नाम लेने मात्रसे व्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

થશે, અને તે વ્યાપાર નવીન કર્મબંધનું કારણ છે, એ માટે ફરી ઘણુંજ પુણ્ય-પાપ કર્મ સંચિત થઈ જશે. એવી દશામાં આત્યન્તિક કર્મક્ષય કેવી રીતે થશે ?

એકલું સમ્યગ્જ્ઞાન આગામી કર્મોની ઉત્પત્તિને રોકવામાં સમર્થ નથી. હા. ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન સંચિત કર્મોના ક્ષયમાં અને આગામી કર્મોની ઉત્પત્તિ રોકવામાં સમર્થ થઈ શકે છે. સમ્યગ્જ્ઞાનથી મિથ્યાજ્ઞાનની નિવૃત્તિ થાય છે. પછી રાગ-દ્વેષ વગેરેનો અભાવ થઈ જવાથી હિંસાદિ પાપક્રિયાની નિવૃત્તિરૂપ ચારિત્રની સહાયતાથી નવીન કર્મોની ઉત્પત્તિ અટકે છે. એ પ્રમાણે સંચિત કર્મોનો ક્ષય પણ ચારિત્રથી યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનથીજ થાય છે. જેવી રીતે ઔષધના જ્ઞાનમાત્રથી અથવા ઔષધનું નામ લેવાથી વ્યાધિ દૂર થતી નથી, પરન્તુ સેવન કરવાથી જ દૂર થાય છે. તે પ્રમાણે ચારિત્રયુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનથીજ કર્મોનો ક્ષય થાય છે.

यथा—उष्णस्पर्शस्यागामिशीतस्पर्शानुत्पादनसामर्थ्यं पूर्वकालिकशीतस्पर्शध्वंसेऽपि च सामर्थ्यं लोके दृष्टम्, तद्वच्चारित्रसहितसम्यग्ज्ञानस्यापि सकलकर्मक्षयसामर्थ्यं भवति ।

इदमत्रावधेयम्—सम्यग्ज्ञानं तदेवास्ति, यत् खलु परिणामिजीवाजीवादिविषयकम्, न त्वेकान्ततोऽपरिणामिकूटस्थनित्यात्मादिविषयकम्, तस्य विपरीतार्थविषयकतया मिथ्यात्वरूपत्वात् । यदि पुनः संवररूपचारित्रसहितसम्यग्ज्ञानस्याग्निरूपत्वं स्वीकृत्य निःशेषकर्मक्षयसामर्थ्यमङ्गीक्रियते, "यथैधांसि समिद्धोऽग्निः" इत्यादिवचनेन तर्हि मन्मतसिद्ध एवार्थस्तेन साधित इति ।

जैसे उष्ण स्पर्श, आगामी शीतस्पर्श की उत्पत्ति को रोकता हैं और पूर्व कालीन शीतस्पर्श का नाश करने में भी समर्थ होता है, यह बात लोक में देखी जाती है । उसी प्रकार चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान भी समस्त कर्मों के क्षय में समर्थ होता है ।

सारांश यह है कि—सम्यग्ज्ञान वही है जो जीव—अजीव आदि को परिणामी जानता है । आत्मा आदि को एकान्तअपरिणामी, कूटस्थ नित्य समझने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है । यह ज्ञान विपरीत वस्तु का बोधक होने से मिथ्या है । हाँ, अगर संवररूप चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान को अग्नि के समान मान कर उसको सब कर्मों के क्षय का कारण मानते हो, जैसा कि कहा है— "बढी हुई अग्नि इन्धन को भस्म करती है" यह तो हमारे ही मत का समर्थन किया गया है, अर्थात् यह कथन हमें भी इष्ट ही है ।

જેવી રીતે ઉષ્ણસ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શની ઉત્પત્તિને રોકે છે, અને પૂર્વકાલીન શીતસ્પર્શનો નાશ કરવામાં પણ સમર્થ થાય છે. આ વાત લોકમાં જોવામાં આવે છે, તે પ્રમાણે ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન પણ સમસ્ત કર્મોના ક્ષય માટે સમર્થ થાય છે.

સારાંશ એ છે કેઃ—સમ્યગ્જ્ઞાન તેજ છે કે જે—જીવ—અજીવ આદિને પરિણામી જાણે છે. આત્મા આદિને એકાન્ત અપરિણામી, કૂટસ્થ, નિત્ય સમજવાવાળું જ્ઞાન તે સમ્યગ્જ્ઞાન નથી. તે જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુનું બોધક હોવાથી મિથ્યા છે. હા. અગર સંવરરૂપ ચારિત્રથી યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનને અગ્નિસમાન માનીને તેને સર્વ કર્મોના ક્ષયનું કારણ માનો છો; જેવી રીતે કહ્યું છે કેઃ—"જેમ વધેલી અગ્નિ લાકડાંને બાળી નાંખે છે." એ તો અમારાજ મતનું સમર્થન કર્યું છે, અર્થાત્ તે કથન તો અમારે પણ ઇષ્ટ છે.

इति संक्षेपतः कर्मवादिप्रकरणं वर्णितम् । विस्तरतस्तु यथाशास्त्रमवगन्तव्यम् ।

॥ अथ क्रियावादिप्रकरणम् ॥

यः पुनरेवं कर्मबन्धवेदी भव्यः कर्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव कर्मवादी वस्तुतः क्रियावादीत्याह—'क्रियावादी' इति । करणं क्रिया । क्रियते जीवेन इति वा क्रिया । कर्मबन्धनिबन्धना चेष्टा । एषा मनोवाक्कायसम्बन्धिनी यथासंभवं योग उच्यते । अथवा-युनक्ति जीवो यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं पर्यायं स योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं मनोयुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं मनोयोगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं वाक्संयुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं

इस प्रकार संक्षेप में कर्मवादी के प्रकरण का वर्णन किया गया है। अधिक विवरण शास्त्रों से समझ लेना चाहिए।

क्रियावादी का प्रकरण।

जो भव्य जीव इस प्रकार कर्मबन्ध का ज्ञाता है, और कर्म के स्वरूप का निरूपण करने वाला है वही कर्मवादी सच्चा क्रियावादी है।

करना क्रिया है। अथवा जीव के द्वारा जो की जाय वह क्रिया है। कर्मबन्ध का कारण चेष्टा क्रिया है। मन, वचन, काय सम्बन्धी यह क्रिया यथासम्भव योग कहलाती है। अथवा जिस के द्वारा जीव वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जनित पर्याय से युक्त बनता है, उसको योग कहते हैं। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित मन-युक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन मनोयोग कहलाता है। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित, वचनयुक्त आत्मप्रदेशो में रहे हुए वीर्य का परिणमन वचनयोग

આ પ્રમાણે સંક્ષેપમાં કર્મવાદીના પ્રકરણનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અધિક વિવરણ શાસ્ત્રોથી સમજી લેવું જોઈએ.

ક્રિયાવાદીનું પ્રકરણ.

જે ભવ્ય જીવ આ પ્રમાણે કર્મબંધના જ્ઞાતા છે, અને કર્મના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવાવાળા છે; તેજ કર્મવાદી સાચા ક્રિયાવાદી છે.

કરવું તે ક્રિયા છે, અથવા જીવ દ્વારા જે કરવામાં આવે તે ક્રિયા છે. કર્મબંધનું કારણ ચેષ્ટા, ક્રિયા છે. મન, વચન, કાયા સંબંધી એ ક્રિયા યથાસંભવ યોગ કહેવાય છે. અથવા જેના દ્વારા જીવ વીર્યાન્તરાય-કર્મના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન પર્યાયયુક્ત બને છે, તેને યોગ કહે છે. વીર્યાન્તરાયના ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન, મનયુક્ત આત્મ-પ્રદેશોમાં રહેલા વીર્યના પરિણમન તે મનોયોગ કહેવાય છે વીર્યાન્તરાયના ક્ષયોપશમથી

वाग्योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं काययुक्तात्मप्रदेशगतवीर्यपरिणमनं काययोगः। सा च क्रिया सकलकर्मबन्धस्य कारणम्, अतः कर्मवादी भव्यः क्रियां सकलकर्मकारणस्वरूपतयाऽऽत्मपरिणतिरूपत्वेन च विजानाति, तस्मात् सकलकर्मबन्धकारणमात्मपरिणतिरूपा च क्रियेति वेदिता, क्रियावादी-क्रियास्वरूप-कथनस्वभावो वेदितव्य इत्यर्थः।

क्रिया कर्मणः कारणमिति भगवता भगवतीसूत्रे निगदितम्, तथाहि—

"मंडिअपुत्ता! जावं च णं से जीवे सया समियं एयइ, वेयइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, खुब्भइ, उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ, तावं च णं से जीवे आरंभइ सारंभइ समारंभइ, आरंभे वट्टइ सारंभे वट्टइ, समारंभे वट्टइ, आरंभमाणे सारंभमाणे समारंभमाणे आरंभे वट्टमाणे सारंभे वट्टमाणे समारंभे वट्टमाणे बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खावणयाए, सोयावणयाए, झूरावणयाए, तिप्पावणयाए, परियावणयाए वट्टइ, से तेणट्ठेणं मंडिअपुत्ता! एवं वुच्चइ-जावं च णं से जीवे सया समियं एयइ जाव परिणमइ, तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया न भवइ" (भगवती. ३. शत. ३उ.)

कहलाता है। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित, काययुक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन काययोग कहलाता है। यह क्रिया सकल कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए भव्य पुरुष क्रिया को सब कर्मों का कारण और आत्मा की परिणतिरूप समझता है, अतः "क्रिया, समस्त कर्मों का कारण और आत्मा की परिणतिरूप है" इस प्रकार जानने वालेको क्रियावादिक्रिया के स्वरूप का कथन करने वाला समझना चाहिए।

क्रिया, कर्म का कारण है, यह बात भगवान् ने भगवतीसूत्र में कही है, वह इस प्रकारः—

ઉત્પન્ન, વચન-યુક્ત આત્મપ્રદેશોમાં રહેલા વીર્યના પરિણમન કાયયોગ કહેવાય છે. આ ક્રિયા સકલ કર્મબંધનું કારણ છે. એટલા માટે ભવ્ય પુરૂષ ક્રિયાને સર્વ કર્મોનું કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ સમજે છે. તે કારણથી "ક્રિયા સમસ્ત કર્મોનું કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ છે." આ પ્રમાણે જાણવાવાળાને ક્રિયાવાદી-ક્રિયાના સ્વરૂપનું કથન કરવા વાળા સમજવા જોઈએ.

ક્રિયા એ કર્મનું કારણ છે, એ વાત ભગવાને ભગવતીસૂત્રમાં કહી છે, તે આ પ્રમાણે છે—

छाया-मण्डितपुत्र ! यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते व्यजते चलति स्पन्दते घट्टते क्षुभ्यति उदीरयते तं तं भावं परिणमति, तावच्च खलु स जीव आरभते संरभते समारभते, आरम्भे वर्तते संरम्भे वर्तते समारम्भे वर्तते, आरभमाणः, संरभमाणः समारभमाणः । आरम्भे वर्तमानः, संरम्भे वर्तमानः समारम्भे वर्तमानो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, दुःखापनतया शोचापनतया झूरापनतया तेपापनतया पिट्टापनतया परितापनतया वर्तते तत् तेनार्थेन मण्डितपुत्र ! एवम् उच्यते-यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते यावत् परिणमति, तावच्च खलु तस्य जीवस्य अन्ते अन्तक्रिया न भवति ।

भावार्थः—

मनोवाक्काययोगसहितस्य जीवस्य सर्वदा क्रियापरिणत्या कम्पन-स्थानान्तरगमन-किञ्चिच्चलन-सर्वदिग्गमन-पृथिव्यादिक्षोभण-बलात्कारपूर्वकप्रेरणो-त्क्षेपणा-पक्षेपणा-ऽऽकुञ्चन-प्रसारणादिपरिणामं प्राप्तस्य पृथिव्यादिजीवानामुप-द्रवकरणेन वा, विनाशसंकल्पनेन वा, परितापनेन वा, मरणलक्षणदुःख-प्रापणया वा, प्रियवियोगादिदुःखप्रापणया वा, शोकप्रापणया वा, शोकाधिक्यजन्य-

---

"मन वचन और काययोग से सहित जीव सदा क्रियारूप परिणति से कम्पन, विविध कम्पन; एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, किंचित् चलना, सब दिशाओं में गमन करना, पृथ्वी आदि को क्षुब्ध करना, बलात्कार से प्रेरित करना, ऊपर उठाना, नीचे करना, सिकोडना, फैलाना, इत्यादि परिणामों को प्राप्त होता है । इस परिणाम के कारण जीव को पृथिवीकाय आदि के जीवों को उपद्रव करने से, घातका संकल्प करने से, परिताप पहुँचाने से, मृत्युरूप दुःख पहुँचाने से, इष्टवियोग आदि का कष्ट पहुँचाने से, शोक

મન, વચન અને કાયયોગથી સહિત જીવ સદાય ક્રિયારૂપ પરિણતિથી કંપન, વિવિધ કમ્પન, એક સ્થાનથી બીજા સ્થાનપર ગમન, કિંચિત્ ચાલવું, સર્વ દિશાઓમાં ગમન કરવું, પૃથ્વી આદિને ક્ષુબ્ધ કરવું, બલાત્કારથી પ્રેરિત કરવું, ઉપર ઉઠાવવું, નીચે કરવું, સંકોચાવું, ફેલાવું, ઈત્યાદિ પરિણામોને પ્રાપ્ત થાય છે. આ પરિણામના કારણે જીવને પૃથ્વીકાય આદિના જીવોને ઉપદ્રવ કરવાથી, ઘાતનો સંકલ્પ કરવાથી, પરિતાપ પહોંચાડવાથી, મૃત્યુરૂપ દુઃખ પહોંચાડવાથી, શોકની અધિકતાથી થવાવાળી શરીરની

शरीरजीर्णताप्रापणया वा, अश्रुपातादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, ग्लानिजननेन वा सकलकर्मक्षयात्मिका मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः। एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः।

क्रियायाः पञ्चविंशतिर्भेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था. २ उ. १। स्था. ३ उ. ३)

कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः—

प्राणातिपातं कुर्वन् जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि बध्नाति। तत्रायुर्बन्धे सत्यष्टौ कर्माणि, आयुर्बन्धाभावे सप्त कर्माणि बध्नाति।

तत्र जीवः कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति? उच्यते– कदाचित् तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः।

पहुँचाने से शोक की अधिकता से, होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि करवाने से, शरीर में पीडा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता। तात्पर्य यह है कि–इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण संसाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता।"

किया के पच्चीस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं। (स्था. २ उ. १, स्था. ३ उ. ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता हैं?।

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का बन्ध करता हैं। आयु का बन्ध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है। इस का उत्तर यह है–कदाचित् तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से।

જીર્ણતા પહોંચાડવાથી, આંસુ પડાવવાથી, શરીરમાં પીડા ઉત્પન્ન કરવાથી, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરવાથી સમસ્તકર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી. તાત્પર્ય એ છે કેઃ— આ પ્રમાણે જીવનો ચારગતિના દુઃખોથી પરિપૂર્ણ સંસારરૂપી વિકટ અટવી (વન)માં ભ્રમણ કરવાનો અંત આવતો નથી.

ક્રિયાના પચીસ ભેદ સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યા છે. (સ્થા. ૨–ઉ–૧. સ્થા. ૩–૩)

પ્રાણાતિપાત કેટલી ક્રિયાઓથી થાય છે?

પ્રાણાતિપાત કરનાર જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત અથવા આઠ કર્મોનો બંધ કરે છે. આયુનો બંધ હોય તો આઠ કર્મોનો–અન્યથા સાત કર્મોનો બંધ કરે છે.

જીવ કેટલી ક્રિયાઓથી પ્રાણાતિપાત કરી શકે છે? તેનો ઉત્તર એ છે કેઃ—કદાચિત્ ત્રણ ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ ચાર ક્રિયાઓથી; કદાચિત્ પાંચ ક્રિયાઓથી.

तत्र—कायिक्याधिकरणिकीप्राद्वेषिकीभिः क्रियाभिस्त्रिक्रियो जीवः कर्माणि बध्नाति। कायिकीनाम—हस्तपादादिव्यापारणम्। अधिकरणिकी—खड्गतीक्ष्णीकरणादिकम्। प्राद्वेषिकी—'एनं मारयामी'—त्यशुभमनःसंप्रधारणमिति।

प्राणातिपातं कर्तुंर्जीवस्य चतुष्क्रियता—कायिक्याधिकरणिकीप्राद्वेषिकी पारितापनिकीभिश्चतसृभिः क्रियाभिर्भवति। तत्र—पारितापनिकीनाम—खड्गादिघातेन पीडाकरणम्। पञ्चक्रियता तदा भवति यदा प्राणातिपातक्रियाऽपि पञ्चमी भवति। प्राणातिपातक्रियानाम—जीवितात् व्यपरोपणम्। उक्तरीत्या ज्ञानावरणी-

---

कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओं वाला होकर जीव कर्मबन्ध करता है। हाथ—पैर आदि का हिलाना डुलाना वगैरह '**कायिकि**' **क्रिया है**। तलवार को तीक्ष्ण करना वगैरह '**आधिकरणिकी**' क्रिया है। 'इसे मारूंगा' इस प्रकार मन में अशुभ विचार करना '**प्राद्वेषिकी**' क्रिया है।

प्राणातिपात करने वाला जीव चार क्रिया वाला होता है—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी, ये चार क्रियाएँ उसे लगती हैं। तलवार आदिका आघात कर के पीडा पहूँचाना '**पारितापनिकी**' क्रिया है। जब प्राणातिपात क्रिया भी जीव कर डालता है तब उसे पांचों क्रियाएँ लगती हैं। किसी प्राणी को जीवन से वियुक्त कर देना '**प्राणातिपातिकी**' क्रिया है। इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारणभूत

કાયિકી, આધિકરણિકી અને પ્રાદ્વેષિકી, આ ત્રણ ક્રિયાઓવાળા થઈને જીવ કર્મબંધ કરે છે, હાથ-પગ આદિને હલાવવું-ફેરવવું વગેરે कायिकी ક્રિયા છે. તલવાર વગેરેને તીક્ષ્ણ કરવી વિગેરે आधिकरणिकी ક્રિયા છે 'એને મારીશ' આ પ્રકારનો મનમાં અશુભ વિચાર કરવો તે प्राद्वेषिकी ક્રિયા છે.

પ્રાણાતિપાત કરવાવાળા જીવ ચાર ક્રિયાવાળા હોય છે-કાયિકી, આધિકરણિકી, પ્રાદ્વેષિકી અને પારિતાપનિકી, આ ચાર ક્રિયાઓ તેને લાગે છે. તલવાર આદિનો આઘાત કરીને પીડા પહોંચાડવી તે पारितापनिकी ક્રિયા છે. જ્યારે પ્રાણાતિપાત ક્રિયા પણ જીવ કરી નાંખે છે ત્યારે તેને પાંચ ક્રિયાઓ લાગે છે. કોઈ પ્રાણીને જીવનથી વિયુક્ત (જૂદું) કરી દેવું તે प्राणातिपातिकी ક્રિયા છે. આ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણીય આદિ

यादिकर्मणां कारणीभूतस्य प्राणातिपातस्य निष्पत्तिस्त्रिक्रियतया, चतुष्क्रियतया पञ्चक्रियतया वा त्रिधा भवति । एवं चतुर्विंशतिदण्डकेषु विज्ञेयम् ।

मृगवधोद्यतस्य क्रिया—

मृगवधोद्यतो लुब्धकः खलु वनपर्वतजलाशयादिषु मृगवधार्थं गत्वा मृगग्रहणाय गर्तादिकं तद्बन्धनार्थं च पाशं रचयति, तदा मृगवधार्थं गमनगर्त-पाशादिकरणात् तस्य कायिक्यादिकाः क्रिया भवन्ति । तत्र गमनधावन-ग्रहणादिना गमनादिकायचेष्टारूपा कायिकी, गर्तपाशादिरूपेणाधिकरणेन निर्वृत्ता क्रिया आधिकरणिकी, यश्च मृगेषु प्रद्वेषस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी क्रिया भवति ।

प्राणातिपात की निष्पत्ति कहीं तीन, चार तथा कहीं पांच क्रियाओं से, ऐसे तीन प्रकार से होती है । चौवीसों दण्डकों में इसी प्रकार समझना चाहिए ।

मृगवध में उद्यतको क्रिया—

मृग मारने के लिए उद्यत हुआ शिकारी वन पर्वत और जलाशय आदि में मृगका वध करने के लिए जाकर मृग पकडने के लिए खड्डा बनाता है और उसे बांधने के लिए जाल रचता है । उस समय मृगवध के लिए गमन करने से, तथा खड्डा एवं पाश तैयार करने से, उसे कायिकी आदि क्रियाएँ लगती हैं । जाना दौडना, पकडना आदि से कायिकचेष्टारूप **कायिकी** क्रिया लगती है । खड्डा और जालरूप अधिकरणों के कारण **आधिकरणिकी** क्रिया होती है, मृग पर होने वाले द्वेष के कारण

કર્મોના કારણભૂત પ્રાણાતિપાતની ઉત્પત્તિ કોઈ સ્થળે ત્રણ, કોઈ ઠેકાણે ચાર તથા કોઈ ઠેકાણે પાંચ ક્રિયાઓથી એવા ત્રણ પ્રકારથી હોય છે. ચોવીશેય દંડકોમાં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

મૃગવધમાં તૈયાર થનારને ક્રિયા—

મૃગને મારવા માટે તૈયાર થયેલો શિકારી વન, પર્વત અને જલાશય આદિમાં મૃગનો વધ કરવા માટે જઈને મૃગ પકડવા માટે ખાડો બનાવે છે, અને તેને બાંધવા માટે જાલ રચે છે તે સમયે મૃગના વધ માટે ગમન કરવાથી, તથા ખાડો અને પાશ તૈયાર કરવાથી તેને કાયિકી આદિ ક્રિયાઓ લાગે છે. જવું, દોડવું, પકડવું આદિથી કાયિક ચેષ્ટારૂપ **कायिकी** ક્રિયા લાગે છે. ખાડો અને જાલરૂપ અધિકરણોના કારણે **आधिकरणिकी**

बद्धे सति तु मृगे तस्य लुब्धकस्य पारितापनिकी, परितापनप्रयोजना क्रिया भवति। घातिते च सति मारणरूपा प्राणातिपातक्रिया।

पूर्वं क्रियया ज्ञानावरणीयादिकं कर्म जन्यते। तत्तत्कर्मफलानुभवनरूपा वेदना च तत्पश्चादेव भवति। उक्तञ्च—

"पुव्वं भंते! किरिया पच्छा वेयणा? पुव्वं वेयणा तच्छा किरिया? मंडिअपुत्ता! पुव्वं किरिया पच्छा वेयणा, णो पुव्वं वेयणा, पच्छा किरिया"। (भग. ३ श. ३. उ.)

छाया-पूर्वं भदन्त! क्रिया पश्चाद् वेदना? पूर्वं वेदना पश्चात् क्रिया? भोमण्डितपुत्र! पूर्वं क्रिया पश्चाद् वेदना, नो पूर्वं वेदना पश्चात् क्रिया॥

कुशूलादौ लोहमुत्क्षिपतः क्रिया-

लोहं लोहप्रतापनार्थे कुशूले. लोहमयेन संदंशनेनोत्क्षिपन् प्रक्षिपन् वा

प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है। मृग के बँध जाने पर शिकारी को **पारितापनिकी** क्रिया लगती है। मृग का घात करने पर हिंसारूप **प्राणातिपातिकी** क्रिया होती है।

पहले क्रिया से ज्ञानावरण आदि कर्मों का बंध होता है और उस का फल भोगनारूप वेदना बाद में ही होती है। कहा भी है--

"हे भगवन्! पहले क्रिया और फिर वेदना होती है? अथवा पहले वेदना और पश्चात् क्रिया होती है? हे मण्डितपुत्र! पहले क्रिया, पश्चात् वेदना होती है। पहले वेदना और पश्चात् क्रिया नहीं होती" (भगवती. श. ३. उ. ३.)

कुशूल आदि में लोहा डालने वाले को क्रिया-

तपाने के लिए कुशूल (मूष) में लोहे की संडासी से लोहा डालने वाले को

ક્રિયા થાય છે. મૃગ ઉપર થવાવાળા દ્વેષથી प्राद्वेषिकी ક્રિયા લાગે છે. મૃગના બંધાઈ જવાથી શિકારીને पारितापनिकी ક્રિયા લાગે છે. મૃગનો ઘાત કરવાથી હિંસારૂપ प्राणातिपातिकी ક્રિયા થાય છે.

પ્રથમ ક્રિયાથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોનો બંધ થાય છે, અને તેનું ફળ ભોગવવા રૂપ વેદના પછીથીજ થાય છે. કહ્યું છે કેઃ—

"હે ભગવન્! પહેલાં ક્રિયા અને પછી વેદના થાય છે? કેપહેલાં વેદના અને પછીથી ક્રિયા થાય છે? હે મંડિતપુત્ર! પહેલી ક્રિયા, અને પછીથી વેદના થાય છે, પહેલી વેદના અને પછીથી ક્રિયા થતી નથી." (ભગ. શ. ૩. ઉ. ૩).

મૂષ આદિમાં લોઢું નાખનારને ક્રિયા—

તપાવવા માટે મૂષમાં, લોઢાની સાણસીથી લોઢું નાંખવાવાળાને કાયિકીથી લઇને

कायिक्यादि–प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति। एवं लोहेन फालपरशुकुठारकुद्दालदात्रादिनिर्माणे लोहकारादीनां पञ्चक्रियत्वं भवति, अविरतिसद्भावात्। एवं घनोपरि स्थापनेन कुट्टनेन भस्त्रया ध्मापनेन विध्यापनेन प्रज्वालितेन शैत्यकरणार्थं जले तप्तलोहप्रक्षेपेण प्रत्येकतत्तद्व्यापारे पञ्चभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

धनुषा विध्यतः क्रिया–

धनुर्धरः शरैर्व्यापादयन् यावत् धनुर्गृह्णाति, धनुः प्रसारयति, कर्णपर्यन्तमाकर्षति, वर्तुलीकरोति, बाणं संयोजयति, ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, स्वाभिमुखमागच्छतो हन्ति, अन्योन्यगात्रं संहतीकरोति, मनाक् स्पृशति, समन्ततः परिता-

---

कायिकी से प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांच क्रियाओं का स्पर्श होता है। इसी प्रकार लोहे से फाल, फरसा, कुल्हाडा, कुदाल, दांतला आदि के बनाने में लुहार वगैरह को पांच क्रियाएँ लगती हैं, क्यों कि उस में अविरति मौजूद है। इसी प्रकार घन के ऊपर रखने में, कूटने में, धौंकने में, आग बुझाने में, प्रज्वलित करने में, ठंडा करनेके लिए जल में लोहा डालने में, इस प्रत्येक में पांच २ क्रियाएँ लगती हैं।

धनुष से वेधने में क्रिया–

धनुर्धारी पुरुष बाण से मारता हुआ जब तक धनुष ग्रहण करता है, धनुष फैलाता है, कानपर्यन्त खींचता है, गोल करता है, उस में बाण जोडता है, ऊपर फैंकता है, अपने सामने आते को मारता है, शरीर को सिकोडता है, जरा–सा स्पर्श

પ્રાણાતિપાત સુધીની પાંચ ક્રિયાઓનો સ્પર્શ થાય છે. એ પ્રમાણે લોઢાના ફાલ–હળની કોસ, ફરસી, કુવાડા, કોદાલી, દાંતલા આદિ બનાવવામાં લુહાર વગેરેને પાંચ ક્રિયાઓ લાગે છે, કારણ કે તેમાં અવિરતિ હાજર છે. આ પ્રકારે ઘણને ઉપર રાખવામાં, કૂટવામાં ધોકનીથી ધોકવામાં, અગ્નિ બુઝાવામાં; પ્રજ્વલિત કરવામાં અને લોઢું ઠંડું કરવા માટે પાણીમાં નાખવામાં. આ પ્રત્યેક કાર્યમાં પાંચ ક્રિયાઓ લાગે છે.

ધનુષથી વિંધવામાં ક્રિયા—

ધનુષ ધારણ કરનાર પુરૂષ બાણથી મારતો જ્યાંસુધી ધનુષ ગ્રહણ કરે છે, ધનુષ ફેલાવે છે, કાન સુધી ખેંચે છે, ગોળ કરે છે, તેમાં બાણ જોડે છે, ઉપર ફેંકે છે, પોતાના સામે આવનારને મારે છે, શરીરને સંકોચે છે, થોડો એવો સ્પર્શ કરે છે,

पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, जीविताद् व्यपरोपयति। तत्र कायिक्यादि-प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

वृष्टिज्ञानाय हस्तादिकं प्रसारयतः क्रिया—

रात्रौ निबिडान्धकारे चक्षुर्दर्शनाभावे सति वृष्टिं विज्ञातुमाकाशे यः खलु हस्तं पादं वा बाहुं वा ऊरुं वा यावत्कालं प्रसारयेत् संकोचयेत् तावत्कालत एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

करता है, पूरी तरह परितापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाता हैं, जीवन से च्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले को क्रियाएँ—

रात्रि के समय घोर अन्धकार में—चक्षुर्दर्शन का अभाव होने पर, वर्षा जानने के लिए आकाश में जो हाथ, पैर, बाहु, या ऊरु, जब तक पसारता है, सिकोडता है, तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

પૂરી રીતે પરિતાપના કરે છે, એક સ્થાનથી બીજા સ્થાનમાં લઈ જાય છે, જીવનથી ચ્યુત (વિયુક્ત) કરે છે. એવી રીતે કરવામાં તે કાયિકી આદિ પ્રાણાતિપાતિકી સુધીની પાંચેય ક્રિયાઓથી સ્પૃષ્ટ થાય છે, અર્થાત્ તેને પાંચેય ક્રિયાઓ લાગે છે.

વૃષ્ટિજ્ઞાન માટે હાથ આદિ ફેલાવવા વાળાને ક્રિયાઓ—

રાત્રિના ઘોર અંધકારમાં, ચક્ષુદર્શનનો અભાવ હોવાથી, વરસાદ આવે છે કે નહિ ? એ જાણવા માટે, આકાશમાં જે હાથ, પગ, બાહુ અથવા ઉરૂ જ્યાં સુધી પ્રસારે છે, સંકોચે છે, ત્યાં સુધી તે કાયિકી આદિ પ્રાણાતિપાતિકીસુધીની પાંચ ક્રિયાઓ તેને સ્પર્શે છે.

॥ तालमारुह्य तत्फलं पातयतः क्रिया ॥

तालवृक्षमारुह्य तत्फलं पातयन्नपि तावत्कालत एव पञ्चभिः कायिक्यादिक्रियाभिः स्पृष्टो भवति।

अष्टादश पापस्थानानि—

(१) प्राणातिपातः—

जीवानां प्राणातिपाताध्यवसायेन प्राणातिपातक्रिया भवति। हिंसापरिणामकाल एव प्राणातिपातक्रिया भवति। प्राणातिपातादीनामध्यवसायमात्रादपि ज्ञानावरणीयादि कर्म जन्यते। उक्तञ्च—

"परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणाणं" इति।

तालवृक्ष पर चढ कर फल गिरानेवाले को क्रियाएँ—

ताल वृक्ष पर चड कर उस के फल गिराता हुआ तब तक कायिकी आदि पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

अठारह पापस्थान—

(१) प्राणातिपात—

जीवों का प्राणातिपात करने के अध्यवसाय से प्राणातिपातक्रिया होती है। हिंसारूप परिणाम के समय ही प्राणातिपातक्रिया होती है। प्राणातिपात का अध्यवसाय होने मात्र से भी ज्ञानावरण आदि कर्म उत्पन्न होते हैं। कहा भी है—

"परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणाणं"

अर्थात् प्राणातिपात करने का निश्चय करने वाले का परिणाम ही कर्मबन्ध का कारण है

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યાં સુધી કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓનો સ્પર્શ કરે છે.

અઢાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે. હિંસારૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે. પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે. કે:—

"परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणाणं."

અર્થાત્—પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાનાં પરિણામજ કર્મબંધનું કારણ છે.

इयं च प्राणातिपातक्रिया षड्जीवनिकायविषये भवति। यथा-रज्ज्वादौ सर्पादिबुद्ध्या मारणाध्यवसायोऽपि जीवविषयक एव। तत्र हि-'सर्पोऽय'-मितिबुद्ध्या मारणाध्यवसायो जायते, तस्मात् रज्जुं प्रति सर्पवधभावयुक्तः सर्पवधजन्यया प्राणातिपातक्रियया स्पृष्टो भवति। अजीवविषयको मारणाध्यवसायस्तु नैव संभवति, यथा रज्जुं रज्जुत्वेन विज्ञाय न कश्चिद्रज्जुविषये मारणाध्यवसायं करोति तस्मात् षट्सु जीवनिकायेष्वेव प्राणातिपातक्रिया प्रवर्तते, न त्वजीवविषय इति। उक्तञ्च—

"कम्हि णं भंते! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ!। गोयमा छसु जीवणिकाएसु" इति

यह प्राणातिपात क्रिया षड्जीवनिकाय के विषय में होती है। रस्सी आदि में सांप आदि की भावना से मारने का अध्यवसाय होना भी जीवविषयक ही अध्यवसाय है। वहाँ 'यह सर्प है' इस प्रकार की भावना से मारने का अध्यवसाय होता है, अत एव वहाँ रस्सी में सर्प के वधके भाव से युक्त पुरुष सर्पवधजन्य प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट होता है। अजीवविषयक मारने का अध्यवसाय तो हो ही नहीं सकता है-रस्सी को रस्सी समझ कर कोई रस्सी में मारने की भावना नहीं करता, अतः षड्जीवनिकायों में ही प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवृत्त होती है, अजीव में नहीं। कहा भी है—

"भगवन्! किन में जीवों को प्राणातिपातिकी क्रिया होती है? गौतम! छह जीवनिकायों में"।

આ પ્રાણાતિપાત ક્રિયા ષડ્જીવનિકાયના વિષયમાં થાય છે. દોરડાં આદિમાં સર્પઆદિની ભાવનાથી મારવાનો અધ્યવસાય થવો તે પણ જીવવિષયજ અધ્યવસાય છે. ત્યાં 'આ સર્પ છે' આ પ્રકારની ભાવનાથી મારવાનો અધ્યવસાય થાય છે. એટલા કારણથી ત્યાં રસી-દોરડાંમાં-સર્પના વધની ભાવનાયુક્ત પુરૂષ સર્પવધજન્ય પ્રાણાતિપાત ક્રિયાને સ્પર્શે છે. અજીવવિષયક મારવાના અધ્યવસાય તો થઈ શકતા નથી-રસીને રસી (દોરડી) સમજીને કોઈ રસી-દોરડામાં મારવાની ભાવના કરતા નથી, તે માટે ષડ્જીવનીકાયોમાંજ પ્રાણાતિપાતની ક્રિયા પ્રવૃત્ત હોય છે. અજીવમાં નહિ. કહ્યું પણ છે—

"ભગવન્! શેમાં જીવોને પ્રાણાતિપાતિકી ક્રિયા થાય છે? ગૌતમ! છ જીવનિકાયોમાં."

(२) मृषावादः–

सतोऽपलापोऽसतश्च प्ररूपणं मृषावादः। स सर्वद्रव्यपर्यायविशेषये भवति।

(३) अदत्तादानम्–

अदत्तस्य=देवगुर्वादिभिरननुज्ञातस्यादानं=ग्रहणम्=अदत्तादानम्, यद् वस्तु ग्रहीतुं धारयितुं वा शक्यते, तद्वस्तुमात्रविषयकमादानं भवति, न तु तदन्यवस्तु-विषयकम्, उक्तञ्च—

"कम्हि णं भंते! जीवाणं अदिन्नादाणेणं किरिया कज्जइ?। गोयमा गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु"। इति (भग० १ श. ६ उ.)

(४) मैथुनम्–

स्त्रीपुंसयोः कर्म-मैथुनम्। मैथुनाध्यवसायोऽपि चित्रलेप्यकाष्ठादिकर्म-

---

(२) मृषावाद–

सत् का अपलाप करना और असत् का प्ररूपण करना मृषावाद है। मृषावाद समस्त द्रव्यों और पर्यायों के विषय में होता है।

(३) अदत्तादान–

अदत्त अर्थात् देव एवं गुरु आदि द्वारा जिस की आज्ञा प्राप्त न हुई हो उसको ग्रहण करना अदत्तादान है। जो वस्तु ग्रहण की जा सकती है या धारण की जा सकती है उसी वस्तु का आदान हो सकता है, अन्य वस्तु का नहीं। कहा भी है:—

"भगवन्! किस वस्तु में अदत्तादान के द्वारा क्रिया की जाती है? गौतम! ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों में (भग., श. १, उ. ६)

(४) मैथुन—

मिथुन अर्थात् स्त्री और पुरुष का कार्य मैथुन कहलाता है। मैथुन का अध्यवसाय

મૃષાવાદ–

સત્–ને ખોટું કહેવું અને અસત્‌ને સાચું કહી તેનું પ્રરૂપણ કરવું તે મૃષાવાદ–સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોના વિષયોમાં થાય છે.

(૩) અદત્તાદાન–

અદત્ત અર્થાત્ દેવ–ગુરૂ આદિદ્વારા જેની આજ્ઞા મળી ન હોય, તેવી વસ્તુને ગ્રહણ કરવી તે અદત્તાદાન છે. જે વસ્તુ ગ્રહણ કરી શકાય છે, અથવા ધારણ કરી શકાય છે તે વસ્તુનું આદાન થઈ શકે છે. બીજી વસ્તુનું નહિ. કહ્યું પણ છે:—

ભગવન્! કઇ વસ્તુમાં અદત્તાદાન દ્વારા ક્રિયા થઈ શકે છે? ગૌતમ! ગ્રહણ કરવા અને ધારણકરવા યોગ્ય દ્રવ્યોમાં." (ભાગ. શ. ૧ ઉ. ૬)

(૪) મૈથુન—

મૈથુન અર્થાત્ સ્ત્રી અને પુરૂષનું કાર્ય મૈથુન કહેવાય છે, મૈથુનના અધ્યવસાય

गतरूपेषु रूपसहगतेषु स्त्र्यादिषु विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये। उक्तञ्च—

"कम्हि णं भंते! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ?। गोयमा! रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु" इति (भग. १ श. ६ उ.)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः=स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा। स च प्राणिनामधिकलोभात् समस्त-वस्तुविषये प्रादुर्भवति।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६। मानो= गर्वः ७। माया=शाठ्यम् ८। लोभो=गृध्नुता ९। राग:=प्रीतिरासक्तिर्वा १०।

भी सब वस्तुओं में नहीं होता। चित्र, लेप्य, या काष्ठ आदि में अङ्कित किये जाने वाले रूपों में या स्त्री आदि में ही मैथुन का अध्यवसाय होता है। कहा भी है—

"भगवन्! किस विषय में जीव मैथुन किया करते हैं? गौतम! रूपों में और रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में। (भग. श. १, उ. ६)

(५) परिग्रह-

"यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ" इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह कहते हैं। प्राणियों में लोभ की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो सकती है।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम (६) क्रोध कहलाता है। गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं।

પણ સર્વ વસ્તુઓમાં નથી. ચિત્ર લેપ્ય અથવા કાષ્ઠ આદિમાં ચિતરવામાં આવેલા રૂપોમાં અથવા સ્ત્રી આદિમાંજ મૈથુનનો અધ્યવસાય થાય છે. કહ્યું પણ છે :—

"ભગવન્! કયા વિષયમાં જીવ મૈથુન ક્રિયા કરે છે?

ગૌતમ! રૂપોમાં અને રૂપયુક્ત વિષયો (સ્ત્રિયો આદિ)માં" (ભગ૦૧ શ-૬-ઉ)

(૫) પરિગ્રહ—

"આ વસ્તુ મારી છે-હું તેનો માલિક છું" આ પ્રકારની મૂર્છાને પરિગ્રહ કહે છે. પ્રાણીઓમાં લોભની અધિકતા હોવાના કારણે સર્વ વસ્તુઓમાં મૂર્છા હોય છે.

કર્તવ્ય-અકર્તવ્યના વિવેકને નાશ કરવાવાળા, અક્ષમારૂપ આત્માનું પરિણામ તે ક્રોધ કહેવાય છે. (૬), ગર્વ ને માન (૭), અને કપટને માયા કહે છે (૮), ગૃદ્ધિ તે

द्वेष=अप्रीतिः ११। कलहो=विरोधः १२। अभ्याख्यानम्=असद्दोषारोपणम् १३। पैशुन्यं=कर्णान्तिकादौ परोक्षे विद्यमानस्याविद्यमानस्य वा दोषस्योद्घाटनम् १४। परपरिवादः=प्रभूतजनसमक्षं परदोषप्रकाशनम् १५। रत्यरतिः=विषयेष्वनुरागो रतिः, धर्मेऽनभिरुचिररतिः, रतिसहिता-अरतिः रत्यरतिः, इदमेकं पापस्थानम् १६। मायामृषा=मायासहितो मृषावादः, इदमप्येकं पापस्थानम् १७। मिथ्यादर्शन-शल्यम्=मिथ्यादर्शनं मिथ्यात्वं तदेव शल्यमिव विविधव्यथाजनकत्वात् मिथ्या-

---

गृद्धि-(९) **लोभ** है, प्रीति या आसक्ति (१०) **राग** हैं, और अप्रीति को (११) **द्वेष** कहते हैं, (१२) **कलह** अर्थात् विरोध। (१३) **अभ्याख्यान** अर्थात् किसी को झूठा दोष लगाना। चुगली वगैरह को (१४) **पैशुन्य** कहते हैं, अर्थात् विद्यमान या अविद्य-मान दोष को पीठ पीछे प्रकाशित करना। बहुत से लोगों के समक्ष दूसरे के दोष प्रकाशित करना (१५) **परपरिवाद** है। विषयों में अनुराग होना रति और धर्म में अनुराग न होना अरति है, रतिसहित अरति को (१६) **रत्यरति** कहते हैं। यह एक पापस्थानक है। माया से युक्त मृषावाद (१७) **मायामृषा** कहलाता है, यह भी एक पापस्थानक है। शल्य के समान विविध प्रकार की व्यथाएँ उत्पन्न करने वाला मिथ्यात्व (१८) **मिथ्यादर्शनशल्य** कहलाता है, अर्थात् कुदेव कुगुरु और कुधर्म को

લોભ છે (૯). પ્રીતિ અથવા આસક્તિ તે રાગ છે (૧૦). અને અપ્રીતિને દ્વેષ કહે છે (૧૧). કલહ અર્થાત્ વિરોધ (૧૨). અભ્યાખ્યાન અર્થાત્ કોઈના પર જુઠો આરોપ મૂકવો તે (૧૩). ચુગલી વગેરેને પૈશુન્ય કહે છે, અર્થાત્ વિદ્યમાન અથવા અવિદ્યમાન દોષોને પાછળથી પ્રકાશિત કરવા (૧૪). ઘણા લોકોના સમક્ષ બીજાના દોષો પ્રકાશિત કરવા તે પરપરિવાદ છે (૧૫). વિષયોમાં અનુરાગ થવો તે રતિ છે, અને ધર્મમાં અનુરાગ નહિ થવો તે અરતિ છે, રતિસહિત અરતિને રત્યરતિ કહે છે. આ પણ એક પાપ-સ્થાનક છે (૧૬). માયાથી યુક્ત મૃષાવાદ તે માયામૃષા કહેવાય છે. તે પણ એક પાપસ્થાનક છે (૧૭). શલ્યની પ્રમાણે વિવિધ પ્રકારની પીડાઓ ઉત્પન્ન કરવાવાળા મિથ્યાત્વ મિથ્યાદર્શનશલ્ય કહેવાય છે. અર્થાત્ કુદેવ કુગુરૂ અને કુધર્મને સુદેવ

दर्शनशल्यम्=कुदेव-कुगुरु-कुधर्मेषु सुदेवादिबुद्धिः १८। एतान्यष्टादश पापस्थानानि। एताभिः क्रियाभिर्जीवः कर्म बध्नाति ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरणम् ॥

क्रिया किलात्मनः परिणामः। तेन क्रियावत्त्वं कर्तृत्वं चात्मनः सिध्यति। तत्तत्कालिकक्रियासम्बन्धादात्मनस्त्रिकालवर्तित्वं च सिध्यतीत्याशयेनाह-"अकरिस्सं" इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

अकरिस्सं चऽहं, कारवेसुं चऽहं, करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि। एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू. ६ ॥

सुदेव सुगुरु और सुधर्म समझना **मिथ्यादर्शनशल्य** है। ये अठारह पापस्थानक हैं। इन अठारह प्राणातिपात आदि क्रियाओं से जीव को कर्मों का बन्ध होता है। ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरण ॥

क्रिया आत्मा का एक परिणाम है। उस से आत्मा का क्रियावत्त्व या कर्तृत्व सिद्ध होता है, और अमुक-अमुक-कालीन क्रियाओं के सम्बन्ध से यह भी सिद्ध होता है कि-"**आत्मा त्रिकालवर्ती है**" यह बात अब बतलाई जाती है:-'**अकरिस्सं चऽहं**' इत्यादि।

मूलार्थ—मैंने किया था, मैं कराता हूँ और करने वाले की मैं अनुमोदना करूंगा। यह सब लोक में कर्मसमारम्भ जानने चाहिए। सू. ६ ॥

સુગુરૂ અને સુધર્મ સમજવા તે મિથ્યાદર્શનશલ્ય છે (૧૮). આ અઢાર પાપ સ્થાનક છે. આ અઢાર પ્રાણાતિપાત આદિ ક્રિયાઓથી જીવને કર્મોનો બંધ થાય છે. (સૂ. ૫)

ઇતિ ક્રિયાવાદિપ્રકરણ.

ક્રિયા આત્માનું એક પરિણામ છે, તેનાથી આત્માનું ક્રિયાવત્ત્વ અથવા કર્તૃત્વ સિદ્ધ થાય છે, અને અમુક-અમુક-કાલીન ક્રિયાઓના સંબંધથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કેઃ-આત્મા ત્રિકાલવર્તી છે. તે વાત હવે બતાવવામાં આવે છે-'अकरिस्सं चऽहं' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ:—મેં કર્યું, મેં કરાવ્યું અને કરવાવાળાને મેં અનુમોદન આપ્યું. આ સર્વ લોકમાં કર્મ-સમારંભ જાણવા જોઇએ. (સૂ. ૬)

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ टीका ॥

'अकार्षं चाहम्' इति । अत्र 'च'-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं कुर्वन्तमन्यमन्वमूमुदम्, इति भेदत्रयं भवति। 'कारयामि चाहम्' इति, अत्र 'च'-शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम् ,। तेन-(१) अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति।

टीकार्थ-'अकरिस्सं चऽहं' यहाँ जो 'च' का प्रयोग किया है; उस से यह अर्थ समझना चाहिए कि-"मैंने अनुमोदन किया था।" इस प्रकार मैंने किया, करवाया और अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

'कारवेसुं चऽहं' यहाँ भी 'च' पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ; इन तीन भेदों का कथन समझना चाहिए ।

"करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि" यहाँ भी 'च' पद से भविष्यकालीन करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अतः करने वाले का मैं अनुमोदन करूंगा, मैं स्वयं करूंगा और मैं कराऊंगा। ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

ટીકાર્થ—'अकरिस्सं चऽहं' અહિં જે 'च' નો પ્રયોગ કર્યો છે, તેથી એ અર્થ સમજવો જોઈએ કે—'મેં કરાવ્યું હતું' આ પ્રમાણે 'મેં' કર્યું, કરાવ્યું, અને મેં અનુમોદન આપ્યું, આ ત્રણ ભેદોનું કથન સમજવું જોઈએ.

'कारवेसुं चऽहं' અહિં પણ 'च' પદથી બે ક્રિયાઓનું ગ્રહણ થાય છે. તેથી 'મેં કર્યું', મેં કરાવ્યું, અને મેં અનુમોદન આપ્યું.' આ ત્રણ ભેદોનું કથન સમજવું જોઈએ.

'करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि' અહિં પણ 'च' પદથી ભવિષ્યકાલીન કરીશ અને કરાવીશ. તે અર્થ લેવો જોઈએ. એ કારણથી 'કરવાવાળાને હું અનુમોદન કરીશ, હું સ્વયં કરીશ અને હું કરાવીશ' એ ક્રિયાના ત્રણ ભેદ સમજી લેવા જોઈએ.

कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि, इति। अत्रापि 'च'-शब्दोपादानेन भविष्यत्कालिककृतकारितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्। 'समनुज्ञः' इत्यस्य समनुज्ञाता अनुमोदयितेत्यर्थः। तथा च-(१) अहमन्यस्य कुर्वतोऽनुमोदयिता भविष्यामि, (२) स्वयमहं करिष्यामि, (३) अहं कारयिष्यामि, इति भेदत्रयं क्रियायाः भवति। कुर्वतश्चापीत्यत्र 'अपि'-शब्दोपादानेन तासां नवानां क्रियाणां मनोवाक्कायभेदेन सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्ति।

आत्मवाचकमहमिति पदं पुरस्कृत्य 'अकार्षम्' इत्यादिक्रियापदोपादानात् "सर्वाः क्रिया आत्मपरिणामरूपाः" इति बोधितम्। एतेन "आत्मा निष्क्रियः" इति सांख्याद्यभिमतं निराकृतम्।

'यावि' शब्द में जो 'अपि' पद है, उस से यह समझना चाहिए कि—इन नौ क्रियाओं के मन वचन और कायके भेद से सत्ताईस भेद हो जाते हैं। अर्थात् पूर्वोक्त नौ क्रियाएं मन से की जाती हैं. वचन से की जाती हैं, और काय से भी की जाती हैं, अतः उनके सत्ताईस भेद हो जाते हैं।

आत्मा के वाचक अहम् (मैं) पदको प्रधान करके 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदों का ग्रहण करने से यह सूचित किया गया है कि—ये सब क्रियाएँ आत्मा का ही परिणाम हैं। इस सूचना से आत्माको निष्क्रिय मानने वाले सांख्य आदि मतों का निराकरण हो गया है।

'यावि' શબ્દમાં જે 'अपि' પદ છે તેથી એ સમજવું જોઈએ કે એ નવ ક્રિયાઓના મન, વચન અને કાયાના ભેદથી સત્તાવીશ ભંગ થાય છે. અર્થાત્ પૂર્વોક્ત નવ ક્રિયાએ મનથી કરી શકાય છે. વચનથી અને કાયાથી પણ કરી શકાય છે. તેથી તેના સત્તાવીશ ભેદ થઈ જાય છે.

આત્માનો વાચક 'अहम्' હું-પદને પ્રધાન રાખીને 'अकार्षम्' આદિ ક્રિયાપદોના ગ્રહણ કરવાથી એ સૂચન કરવામાં આવ્યું છે કે—એ સર્વ ક્રિયાઓ આત્માનુંજ પરિણામ છે. આ સૂચનથી આત્માને નિષ્ક્રિય માનવાવાળા સાંખ્ય આદિના મતનું નિરાકરણ થઈ ગયું છે.

एकस्य चात्मनस्त्रिकालवर्तितत्तत्क्रियासम्बन्धेन क्षणिकवादोऽपि निरस्तः। किञ्च-आत्मपरिणतिरूपां क्रियां कुर्वन्नात्मा स्वस्य त्रिकालस्थायित्वं मतिज्ञानमात्रेण जानातीति भगवता बोधितम्। तेनात्मनि विषये प्रत्यभिज्ञाऽप्येवं प्रादुर्भवति-

येन मया मृगतृष्णाम्भसा मृगवद् विविधविषयैराकृष्टेन गर्ते मुग्ध-मृगवन्मोहगर्ते निपतितेन सुखलिप्सयाऽऽरम्भपरिग्रहरूपसावद्यक्रियापरायणतया वृथायुः क्षपितम्,

स एवाहं संप्रति वातैर्गिरिशिखरद्रुम इव जन्मजरामरणाधिव्याधि-विविधदुःखसंपृक्ततुच्छसुखभोगैर्जर्जरीकृतः कथमस्माद् दुःखजालसंसारान्मुक्तो

एक ही आत्माका त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध दिखलानेसे क्षणिकवाद का भी खण्डन किया गया है। भगवान्‌ने यह भी प्रकट कर दिया है कि-अपनी परिणतिरूप क्रियाएँ करता हुआ आत्मा मतिज्ञान से ही यह जान लेता है कि-यह (आत्मा) त्रिकालवर्ती है। इससे आत्मा के विषयमें इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है—

"जैसे मृगतृष्णा में फँसकर मूढ मृग कष्ट पाता है उसी प्रकार भाँति-भाँति के विषयों से आकृष्ट हो कर मोहरूपी गडहे में गिर कर सुख की लालसा से जिसने आरम्भ-परिग्रह-रूप सावद्य क्रियामें उद्यत हो कर वृथा आयु गँवाई थी वही मैं आज जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि वगैरह विविध प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण और तुच्छ इन्द्रिय-भोगोंद्वार ऐसा जर्जरित कर दिया गया हूँ, जैसे पर्वत के उपर का पेड

એકજ આત્માનું ત્રિકાલવર્તી અમુક-અમુક ક્રિયાઓની સાથે સંબંધ દેખાડવાથી ક્ષણિકવાદનું પણ ખંડન કરવામાં આવ્યું છે. ભગવાને એ પણ પ્રગટ કરી દીધું છે કે-પોતાની પરિણતિરૂપ ક્રિયાઓ કરતો આત્મા મતિજ્ઞાનથીજ એ જાણી લે છે કે-તે ત્રિકાલવર્તી છે. એ કારણથી આત્માના વિષયમાં આ પ્રકારનું પ્રત્યભિજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે.

જેમ મૃગતૃષ્ણામાં ફસાઈને મૂઢ મૃગ કષ્ટ પામે છે તે પ્રમાણે જાત-જાતના વિષયોથી આકૃષ્ટ થઈને-ખેંચાઈને મોહરૂપી ખાડામાં પડી જઈને સુખની લાલસાથી જે આરંભ પરિગ્રહરૂપ સાવદ્ય ક્રિયામાં ઉદ્યમી થઈને વૃથા આયુ ગુમાવ્યું હતું, તે હું આજે જન્મ-જરા-મરણ-આધિ-વ્યાધિ વગેરે વિવિધ પ્રકારનાં દુઃખોથી પરિપૂર્ણ અને તુચ્છ ઈન્દ્રિયભોગો દ્વારા એવો જર્જરિત કરવામાં આવ્યો છું કે જેમ-પર્વત ઉપરનું ઝાડ

भविष्यामीति चिन्तानलेन कोटरस्थवह्निना जरद्द्रुम इव संतप्तोऽस्मीति भावः।

लोके=जिनशासने, सर्वे कर्मसमारंभाः=कर्माणि ज्ञानावरणीयादीनि समारभन्ते =जनयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारंभाः। एतावन्त एव, नातोऽधिका इत्यर्थः, परिज्ञातव्या भवन्ति-परिज्ञाविषयीकृत्य ज्ञेया हेयाश्च भवन्तीत्यर्थः। परिज्ञा हि द्विविधा-ज्ञपरिज्ञा, प्रत्याख्यानपरिज्ञा च। तत्र ज्ञपरिज्ञया सप्तविंशतिभङ्गरूपाः कर्मसमारंभाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः। प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सर्वे कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः कर्मबन्धहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भावः॥ सू० ६॥

आँधी से जर्जरित हो जाता है। अब मैं दुःखमय संसार से किस प्रकार छुटकारा पाऊँगा ? इस तरह की चिन्तारूपी अग्नि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे कोटरस्थ अग्नि से जीर्ण वृक्ष भीतर ही भीतर भस्म हो जाता है।

"लोक में अर्थात् जिनशासन में इतने ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उत्पन्न करने वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं"। यह परिज्ञा विषय करने योग्य है, अर्थात् परिज्ञा से ही ये सब ज्ञेय और हेय होते हैं। परिज्ञा दो प्रकारकी है- ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा। इन में से सत्ताईस भंग रूप कर्मसमारम्भ (क्रियाविशेष) ज्ञपरिज्ञा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों का त्याग करना चाहिए॥ सू. ६॥

વાવાઝોડાથી જર્જરિત થઈ જાય છે. 'હવે હું દુઃખમય સંસારથી છુટકારો કેવી રીતે પામીશ? આ પ્રમાણે ચિન્તારૂપી અગ્નિથી હું એવો સંતપ્ત છું કે જેમ-કોટરસ્થ (ઝાડની બખોલમાં રહેલું) અગ્નિથી જીર્ણ વૃક્ષ અંદરને અંદરજ ભસ્મ થઈ જાય છે.

લોકમાં અર્થાત્ જિનશાસનમાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોને ઉત્પન્ન કરવાવાળા આટલાંજ કર્મસમારંભ છે, તેનાથી ઓછા કે વધારે નથી. આ પરિજ્ઞા વિષય કરવા યોગ્ય છે, અર્થાત્ પરિજ્ઞાથીજ આ બધાં જ્ઞેય અને હેય થાય છે. પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે. (૧) જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા, તેમાંથી સત્તાવીશ ભંગરૂપ કર્મ-સમારંભ (ક્રિયા-વિશેષ) જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણવું જોઇએ, અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી કર્મોનું કારણ સમસ્ત કર્મસમારંભોનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. (સૂ૦ ૬)

॥ मूलम् ॥

अपरिण्णायकम्मा खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ साहेइ ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अपरिज्ञातकर्मा खलु अयं पुरुषः यः इमा दिशा अनुदिशा वा अनुसंचरति, सर्वा दिशाः सर्वा अनुदिशाः सहैति ॥ सू० ७ ॥

टीका—

'अपरिण्णायकम्मा' इत्यादि । यः इमा दिशा अनुदिशा अनुसंचरति-कर्मपरतन्त्रः संश्चतुर्गतिकसंसारं प्राप्य दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमति । तथा-सर्वा-दिशा अनुदिशाः सहैति । इह सर्वशब्देन द्रव्यभावोभयविधदिशो ग्रहणम् । द्रव्यभावदिशः सह=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिः साकम् एति=गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः । यत्तच्छब्दयोर्नित्यसाकाङ्क्षतयाऽत्र यच्छब्देन स इति परामृश्यते । सः अयं पुरुषः= जीवः खलु=निश्चयेन अपरिज्ञातकर्मा अस्तीति शेषः । न परिज्ञातं=परिज्ञाविषयी-

---

मूलार्थ—अपरिज्ञातकर्मा यह पुरुष इन दिशाओं और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है और सब दिशाओं एवं अनुदिशाओं को प्राप्त होता है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—कर्म से परतन्त्र जीव चार गतिरूप संसार को प्राप्त होकर दिशाओं में और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है । तथा समस्त दिशाओं और अनुदिशाओं को प्राप्त होता है, अर्थात् द्रव्य—दिशाओं एवं भाव—दिशाओं (ज्ञानावरण आदि कर्मों) के साथ प्राप्त होता है । वह जीव निश्चयपूर्वक अपरिज्ञातकर्मा है । कर्म की कारणभूत क्रियाओं का स्वरूप जिसने न जाना हो वह अपरिज्ञातकर्मा कहलाता है । अथवा जिसने ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की कारणभूत क्रियाओं का त्याग न किया हो उसे भी

મૂલાર્થ—અપરિજ્ઞાત કર્મા આ પુરૂષ આ દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં પરિ-ભ્રમણ કરે છે, અને સર્વ દિશાઓ એવં અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે. (૭)

ટીકાર્થ—કર્મથી પરતંત્ર જીવ ચાર ગતિરૂપ સંસારને પ્રાપ્ત થઈને દિશાઓમાં અને વિદિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે, તથા સમસ્ત દિશાઓ અને અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્ દ્રવ્યદિશાઓ અને ભાવદિશાઓની સાથે પ્રાપ્ત થાય છે. તે જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મા છે, કર્મની કારણભૂત ક્રિયાઓના સ્વરૂપને જે જાણતા નથી તે અપરિજ્ઞાતકર્મા કહેવાય છે. અથવા જેને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની કારણભૂત ક્રિયાઓનો ત્યાગ ન કર્યો હોય તેને પણ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહે છે. આશય

कृतं कर्म=कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा। अज्ञातापरित्यक्त-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः। यावदयं जीवः क्रिया-स्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावद् द्रव्य-भावोभयविधां दिशं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति-'अणेगरूवाओ.' इत्यादि।

॥ मूलम् ॥

अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे पडिसंवेएइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा योनीः संधयति, विरूपरूपान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति ॥ सू० ८॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा जीवः अनेकरूपा=विविधाः योनीः=प्राणिनामुत्पत्ति-स्थानानि, संधयति=प्राप्नोति। अयमात्मा पूर्वभव नाशानन्तरं शरीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं। आशय यह है कि—संसारी जीव जबतक कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं को जान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यभावरूप दोनों प्रकार की दिशाओं में परिभ्रमण करता रहता है। ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं:—'अणेगरूवाओ.' इत्यादि।

मूलार्थ—(अपरिज्ञातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नाना प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ—अपरिज्ञातकर्मा जीव विविध प्रकार की योनियों को अर्थात् जीवों के उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है। पूर्वभव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

એ છે કેઃ-સંસારી જીવ જ્યાં સુધી કર્મબંધની કારણભૂત ક્રિયાઓને જાણી લેતા નથી અને ત્યજી દેતા નથી ત્યાં સુધી તે દ્રવ્ય-ભાવરૂપ બન્ને પ્રકારની દિશાઓમાં પરિ-ભ્રમણ કરતા રહે છે. (સૂ૦ ૭).

એ અર્થને ફરી અધિક સ્પષ્ટ કરે છે—"अणेगरूवाओ." ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થઃ—(અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ) અનેકરૂપ યોનિઓને પ્રાપ્ત થાય છે અને નાના પ્રકારની યાતનાઓને ભોગવે છે. (૮)

ટીકાર્થઃ—અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ વિવિધ પ્રકારની યોનિઓને અર્થાત્-જીવોના ઉત્પત્તિસ્થાનોને પ્રાપ્ત કરે છે. પૂર્વભવના અંત થવા અનન્તર જીવ નવીન શરીર ગ્રહણ

शरीरान्तरप्राप्तिस्थाने यान् पुद्गलान् गृह्णाति तान् बाह्यपुद्गलान् कार्मणेन सह तप्तायःपिण्डजलग्रहणवत् मिश्रयति यस्मिन् स्थाने, तत् स्थानं योनिः। प्रादुर्भावमात्रं शरीरिणां जन्म, इति योनि–जन्मनोर्भेदः। सा नवविधा। (१) सचित्ता, (२) अचित्ता, (३) सचित्ताचित्ता, (४) शीता, (५) उष्णा, (६) शीतोष्णा, (७) संवृता, (८) विवृता, (९) संवृतविवृता। उक्तञ्च—

"कइविहाणं भंते! जोणी पण्णत्ता? गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा–सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीआसिणा जोणी। तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा–सचिता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी।

ग्रहण करने के लिए नवीन शरीर की प्राप्ति के स्थान पर जिन बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, उन्हें जिस जगह पर कार्मणशरीर के साथ तपे लोहे के गोले और जलके समान एकमेक करता है, वह स्थान योनि कहलाता है। जीवों का प्रादुर्भाव होना जन्म है। यह योनि और जन्म में अन्तर है। जन्म का आधार योनि है, अतः योनि और जन्म में आधाराधेयभाव–सम्बन्ध है। योनि के नौ भेद हैं:–(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) सचित्ताचित्त, (४) शीत, (५) उष्ण, (६) शीतोष्ण, (७) संवृत, (८) विवृत और (९) संवृत–विवृत। कहा भी है—

"भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है? गौतम! तीन प्रकार की योनि कही गई है। वह इस प्रकार–शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्णयोनि। तथा तीन प्रकार की योनि कही है। वह इस प्रकार–सचित्तयोनि, अचित्तयोनी और मिश्रयोनि।

કરવા માટે નવીન શરીરની પ્રાપ્તિના સ્થાન પર જે બાહ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે. તેને જે જગ્યા પર કાર્મણશરીરની સાથે તપેલા લોઢાનો ગોળો અને જલની સમાન એકમેક કરે છે તે સ્થાન યોનિ કહેવાય છે. જીવોનો પ્રાદુર્ભાવ થવો તે જન્મ છે. યોનિ અને જન્મમાં એજ અન્તર છે, જન્મનો આધાર યોનિ છે, તેથી યોનિ અને જન્મમાં આધાર–આધેય ભાવ સંબંધ છે. યોનિના નવ ભેદ છેઃ–(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત (૩) સચિત્તાચિત્ત (૪) શીત (૫) ઉષ્ણ (૬) શીતોષ્ણ (૭) સંવૃત (૮) વિવૃત અને (૯) સંવૃત–વિવૃત. કહ્યું પણ છે—

"ભગવન્! યોનિ કેટલા પ્રકારની કહી છે? ગૌતમ! ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે. તે આ પ્રમાણે છે—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ, અને શીતોષ્ણયોનિ. તથા ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે. તે આ પ્રમાણે છે–સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોનિ અને મિશ્રયોનિ. ફરી પણ ત્રણ

तिविहा जोणी पण्णत्ता, तंजहा-संवुडा जोणी, वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी "। (प्रज्ञा. योनिपद ९)

जीवप्रदेशैरधिष्ठिता योनिः सचित्ता, जीवप्रदेशैरनधिष्ठिता योनिरचित्ता। क्वचिदंशे जीवप्रदेशैरधिष्ठिता, क्वचिदनधिष्ठिता सा सचित्ताऽचित्ता। यत्र शीतस्पर्शः सा शीता। यत्रोष्णस्पर्शः सा योनिरुष्णा। यत्र क्वचिदंशे शीतस्पर्शः, क्वचिदुष्ण-स्पर्शः सा शीतोष्णा। अप्रकटिता संवृता। प्रकटिता विवृता। यत्र क्वचिदंशे प्रकटिता, क्वचिदप्रकटिताः सा संवृतविवृता योनिः।

कस्य जीवस्य का योनिर्भवती ?-त्युच्यते-देवनारकाणामचित्ता योनिः। देवानां प्रच्छदपटदेवदूष्यान्तरालं योनिः, तच्च जीवप्रदेशवर्जितम्। नाराकाणां तु

फिर भी तीन तरह की योनि कही है। वह इस प्रकार-संवृतयोनि विवृतयोनि और संवृत-विवृतयोनि "। (प्रज्ञा. योनिपद ९)

जीवप्रदेशों से अधिष्ठित योनि सचित्त कहलाती है और जो जीवप्रदेशों से अधिष्ठित न हो वह अचित्त कहलाती है। जो योनि कहीं जीवप्रदेशों से अधिष्ठित हो और कहीं अधिष्ठित न हो वह मिश्र योनि है। जहाँ शीत स्पर्श हो वह शीतयोनि, जहाँ उष्ण स्पर्श हो वह उष्णयोनि और जिस में कहीं शीत और कहीं उष्ण स्पर्श हो वह शीतोष्णयोनि है। अप्रकट योनि संवृत कहलाती है। प्रकट को विवृत कहते हैं और जो कहीं अप्रकट और कहीं प्रकट हो वह संवृतविवृतयोनि है।

किस जीव की कौन-सी योनि होती है ? वह बताते हैं-देव और नारकी जीवों की अचित्त योनि होती है। देवों की योनि प्रच्छदपट और देवदूष्य के बीच में होती है,

---

પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છેઃ—સંવૃતયોનિ, વિવૃતયોનિ અને સંવૃત-વિવૃતયોનિ" (પ્રજ્ઞા. યોનિપદ ૯).

જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ઠિત યોનિ સચિત્ત કહેવાય છે. અને જે જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ઠિત ન હોય તે અચિત્ત કહેવાય છે. જે યોનિ કોઈ સ્થળે જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ઠિત હોય અને કોઇ સ્થળે અધિષ્ઠિત ન હોય તે મિશ્રયોનિ કહેવાય છે. જ્યાં શીત સ્પર્શ હોય તે શીતયોનિ, જ્યાં ઉષ્ણુસ્પર્શ હોય તે ઉષ્ણુયોનિ, અને જેમાં કયાંક શીત અને કયાંક ઉષ્ણુ સ્પર્શ હોય તે શીતોષ્ણુ યોનિ છે. અપ્રગટ યોનિ સંવૃત કહેવાય છે, અને પ્રકટ યોનિને વિવૃત કહે છે, અને જે કયાંક પ્રગટ અને કયાંક અપ્રગટ હોય તે સંવૃત-વિવૃત યોનિ છે.

કયા જીવની કઈ યોનિ છે? તે બતાવે છે—દેવ-નારકી જીવોની અચિત્તયોનિ હોય છે. દેવોની યોનિ પ્રચ્છદપટ અને દેવદૂષ્યના વચમાં હોય છે અને તે જીવ

वज्रमयवातायनकल्पाः कुम्भयो योनयः, ता अपि जीवप्रदेशरहिताः। ये गर्भजास्तिर्यञ्चो मनुष्यास्तेषां मिश्रासचित्ताचित्तरूपा योनिः। स्थावरपञ्चकस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिममनुष्याणां च त्रिविधा सचित्ता १अचित्ता, सचित्ताचित्ता च।

गर्भजमनुष्यतिरश्चां देवानां च शीतोष्णा योनिः। तेजस्कायस्य उष्णा। स्थावरचतुष्टयस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिममनुष्याणां नारकाणां च त्रिविधा शीता, उष्णा, शीतोष्णा च योनिः।

नारकाणां देवानामेकेन्द्रियाणां च संवृता योनिः। गर्भजानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च संवृतविवृता योनिः। विकलेन्द्रियत्रयस्य

और वह जीवप्रदेशों से रहित है। नारकों की योनि वज्रमय वातायन के समान कुंभियाँ हैं। वे भी जीवप्रदेशों से रहित हैं। गर्भज तिर्यंचों और मनुष्यों की मिश्र (सचित्ताचित) योनि होती है। पांच स्थवरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों की तथा संमूर्च्छिम मनुष्यों की योनि तीनों प्रकार की (सचित्त, अचित्त और मिश्र) होती है।

गर्भज—मनुष्यों, तिर्यंचों और देवों की शीतोष्ण योनि होती है। तेजस्काय की उष्ण योनि है। चार स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, आगर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों की संमूर्च्छिम मनुष्यों की और नारकों की तीनों प्रकार की (शीत उष्ण और मिश्र) योनि होती है।

नारकों देवों और एकेन्द्रियों की संवृत योनि है। गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों की संवृतविवृत योनि होती है। तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय

પ્રદેશોથી રહિત છે. નારકીઓની યોનિ વજ્રમય વાતાયન (બારી)ની સમાન કુંભીઓ છે. તે પણ જીવપ્રદેશોથી રહિત છે.

ગર્ભજ તિર્યંચો અને મનુષ્યોની મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) યોનિ હોય છે. પાંચ સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેંદ્રિયોની, અગર્ભજ પચેંદ્રિય તિર્યંચોની તથા સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની યોનિ ત્રણેય પ્રકારની (સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર) હોય છે.

ગર્ભજ મનુષ્યો, તિર્યંચો અને દેવોની શીતોષ્ણ યોનિ હોય છે. તેજસ્કાયની ઉષ્ણયોનિ છે. ચાર સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોની સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની અને નારકોની ત્રણેય પ્રકારની (શીત, ઉષ્ણ અને મિશ્ર) યોનિ હોય છે.

નારકી, દેવો, અને એકેન્દ્રિયોની સંવૃત યોનિ છે. ગર્ભજ પંચેન્દ્રિય તિર્યંચો અને મનુષ્યોની સંવૃત-વિવૃત યોનિ હોય છે. ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની અગર્ભજ પંચેન્દ્રિય

अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्चां संमूर्छिमममनुष्याणां च विवृता योनिः।

यद्वा—चतुरशीतिलक्षणभेदेनानेकरूपा योनयः सन्ति, तथा हि—पृथिव्यप्तेजोवायूनां प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षाणि २८, प्रत्येकवनस्पतीनां दश लक्षाणि ३८, साधारणवनस्पतीनां चतुर्दश लक्षाणि, ५२, विकलेन्द्रियत्रयस्य प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे, इति तेषां षड् लक्षाणि ५८, देव-नारक-पञ्चेन्द्रियतिरश्चां प्रत्येकं चत्वारि लक्षाणीति तेषां द्वादश लक्षाणि ७०, मनुष्याणां चतुर्दश लक्षाणि ८४। एवं सर्वसंकलने चतुरशीतिलक्षाणि जीवानां योनयो भवन्ति।

अनेकविधयोनिप्राप्तौ सत्यामपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मफलं यथाऽनुभवति तत् प्रदर्शयति—'विरूपरूपान् प्रतिसंवेदयति' इति, विरूपं=दुःख-

तिर्यंचों की और संमूर्च्छिम मनुष्यों की विवृतयोनि होती है।

अथवा—योनियों के चौरासी लाख भेद भी हैं। वे इस प्रकार हैः—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, और वायुकाय, की सात-सात लाख योनियाँ हैं२८, प्रत्येक वनस्पति की दश लाख ३८, साधारण वनस्पति की चौद लाख ५२, तीन विकलेन्द्रि की प्रत्येक की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की कुल छह लाख५८, देवों नारकों और पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रत्येक की चार-चार लाख, कुल बारह लाख७०, मनुष्यों की चौदह लाख८४, इस प्रकार कुल चौरासी लाख जीवयोनियाँ हैं।

अनेक प्रकार की योनियाँ प्राप्त होने पर अपरिज्ञातकर्मा जीव किस प्रकार कर्मफल भोगता है, सो बतलाते हैं—दुःखजनक होने के कारण इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों

તિર્યંચોની અને સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની વિવૃત યોનિ હોય છે.

અથવા-યોનિઓના ચોરાસી લાખ ભેદ પણ છે, તે આ પ્રમાણે છે—પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, અને વાયુકાયની. સાત-સાત લાખ યોનિઓ છે (૨૮), પ્રત્યેક વનસ્પતિની દસલાખ (૩૮), સાધારણ વનસ્પતિની ચૌદલાખ (૫૨), ત્રણ વિકલેન્દ્રિયની પ્રત્યેકની બેબે લાખ, અર્થાત્ વિકલેન્દ્રિયની કુલ છ લાખ (૫૮), દેવો નારકીઓ, અને પંચેન્દ્રિય તિર્યંચોમાં પ્રત્યેકની ચાર-ચાર લાખ, તમામ મળી બાર લાખ (૭૦), મનુષ્યોની ચૌદ લાખ (૮૪), આ પ્રમાણે કુલ ચોરાસી લાખ જીવયોનિ છે.

અનેક પ્રકારની યોનિઓ પ્રાપ્ત થવા છતાંય અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ કેવી રીતે કર્મફલ ભોગવે છે? તે બતાવે છે-દુઃખ ઉત્પન્ન કરનાર હોવાના કારણે ઇન્દ્રિયોના અનિષ્ટ-

हेतुत्वादशोभनं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=अनिष्टाः, तान्, स्पर्शान्=इन्द्रियाणां विषयैः सह सम्बन्धाः स्पर्शाः, तान् प्रतिसंवेदयति=पुनः पुनरनुभवति। अनिष्टविषयसंयोगैः पुनः पुनर्दुःखमेव प्राप्नोतीत्यर्थः।

यद्वा—विरूपं=विभिन्नरूपं विभिन्नात्मकं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=नानाविधस्वरूपाः, तान् स्पर्शान्=दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयति। लक्षणया कार्य-कारणयोरभेदाद्वा स्पर्शजन्या अपि दुःखसंपाताः स्पर्शा इति व्यपदिश्यन्ते। अत्र स्पर्शानित्युपलक्षणं, तेन मानसानामपीष्टवियोगादिजन्यदुःखसंपातानां संग्रहः।

यद्वा—स्पर्शान्=स्पर्शनेन्द्रियवेद्यान् दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयतीत्यर्थः।

को भोगता है। इस प्रकार अनिष्ट विषयों का संयोग होने के कारण वह जीव पुनः—पुनः दुःख ही अनुभव करता है।

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न—भिन्न स्वरूपवाले—नानाप्रकार के दुःखजनक स्पर्शों का संवेदन करता है। लक्षणावृत्ति से, अथवा कार्य-कारण के अभेद की विवक्षा से स्पर्शजन्य दुःख भी स्पर्श ही कहलाते हैं। यहाँ स्पर्श उपलक्षण मात्र है, उस से इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखों का भी ग्रहण समझना चाहिए।

अथवा—स्पर्श का अर्थ है—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख। जीव उन्हें भोगता है। तात्पर्य यह है कि — जीव अपरिज्ञातपापकर्मा होकर निगोद आदि नाना

દુઃખકારક વિષયોને ભોગવે છે, એ પ્રમાણે અનિષ્ટ વિષયોનો સંયોગ હોવાના કારણે તે જીવ ફરી—ફરી દુઃખનોજ અનુભવ કરે છે.

અથવા—વિરૂપ અર્થાત્ ભિન્ન—ભિન્ન સ્વરૂપવાળા નાના પ્રકારના દુઃખજનક, સ્પર્શોનું સંવેદન કરે છે. લક્ષણાવૃત્તિથી, અથવા કાર્યકારણના અભેદની વિવક્ષાથી સ્પર્શજન્ય દુઃખ પણ સ્પર્શજ કહેવાય છે. અહિં સ્પર્શ ઉપલક્ષણ માત્ર છે, તેમાં ઇષ્ટવિયોગ આદિ માનસિક દુઃખોનું ગ્રહણ પણ સમજી લેવું જોઈએ.

અથવા—સ્પર્શનો અર્થ છે—સ્પર્શનેન્દ્રિયવિષયભૂત દુઃખ, જીવ તેને ભોગવે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જીવ અપરિજ્ઞાત—પાપકર્મા થઈને નરક—નિગોદ આદિ અનેક યોનિઓમાં

अपरिज्ञातकर्मतया नरकनिगोदाद्यनेकविधयोनीः संप्राप्य सर्वे जीवाः विचित्रकर्मो-दयात् स्वकर्मफलं नानाविधं दुःखमेवानुभवन्तीति भावः ॥ ८ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद-'तत्थे'-इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता ॥ सू० ९ ॥

टीका—

हे जम्बूः ! अपरिज्ञातकर्मा जीवो विभावपरिणामं कुर्वन् नानाविध-योनिषु पुनः पुनर्दुःखमेव लभते । तत्र-अपरिज्ञातकर्मणो जीवस्य कृतकारि-तानुमोदितादिभेदेनोक्तसप्तविंशतिभङ्गरूपसावद्यक्रियानुष्ठानान्नरकनिगोदादिनानावि-धयानिषु पुनः पुनर्दुःखानुभवविषये भगवता श्रीमहावीरस्वामिना परिज्ञा

योनियों में उत्पन्न होकर विचित्र कर्मों के उदय से अपने-अपने कर्मों का नानाविध दुःख-रूप फल अनुभव करते हैं ॥ सू. ८ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-' तत्थ खलु.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है ॥ सू. ९ ॥

टीकार्थ- हे जम्बू ! अपरिज्ञातपापकर्मा जीव विभाव परिणाम धारण करता हुआ नाना प्रकार की योनियों में बारंबार दुःख पाता है । अपरिज्ञातपापकर्मा जीव के कृत कारित अनुमोदना आदि के भेद से सत्ताईस भंगरूप सावद्यक्रिया के अनुष्ठान से नरक निगोद आदि नाना प्रकार की योनियों में पुनः पुनः दुःखानुभव करने के विषयमें

ઉત્પન્ન થઈને વિચિત્રકર્મોના ઉદયથી પોત-પોતાના કર્મોના અનેક પ્રકારના દુઃખરૂપ ફલનો અનુભવ કરે છે. (સૂ० ८)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે-' तत्थ खलु.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે. (૯)

ટીકાર્થ—હે જમ્બૂ ! અપરિજ્ઞાતપાપકર્મા જીવ વિભાવ પરિણામ ધારણ કરતો થકો નાના પ્રકારની યોનિઓમાં વારંવાર દુઃખ પામે છે. અપરિજ્ઞાત-પાપકર્મા જીવના કૃત કારિત અને અનુમોદના આદિના ભેદથી સત્તાવીશ ભંગરૂપ સાવદ્ય ક્રિયાના અનુષ્ઠાનથી નરક-નિગોદ આદિ નાના પ્રકારના યોનિઓમાં પુનઃ પુનઃદુઃખ અનુભવ કરવાના વિષયમાં

खलु प्रवेदिता । तत्तद्दुःखकारणकर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः परिज्ञा=सम्यगवबोधः । परिज्ञा द्विविधा ज्ञ–प्रत्याख्यान–भेदात् । 'सावद्यव्यापारेण कर्मबन्धो भवती'ति ज्ञानं ज्ञ–परिज्ञा । कर्मबन्धकारणस्य सावद्यव्यापारस्य परित्यागः प्रत्याख्यान–परिज्ञा । अत्रेदमवगन्तव्यम्–अतीतकाले मनसा वाचा कायेन च मया सावद्यक्रिया कृता, कारिता, अनुमोदिता च, तथा वर्त्तमानकाले सावद्यक्रियां करोमि, कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यमनुमोदयामि । एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावद्यक्रियां करिष्यामि, कारयिष्यामि करिष्यमाणमन्यमनुमोदयिष्यामि । इत्थमनेकविधसावद्यव्यापारं कुर्वन् जीवः संसारे परिभ्रमति, नरकनिगोदाद्यनेकविधदुस्सहयातनां

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञा की प्ररूपणा की है। दुःखों के कारणभूत कर्मों के बन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का शरण अवश्य ग्रहण करना चाहिए; ऐसा भगवान् ने कहा है। परिज्ञा का अर्थ है–सम्यग्ज्ञान। परिज्ञा दो प्रकार की है– ज्ञ–परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा। सावद्य व्यापार से कर्मबन्ध होता है' ऐसा जानना ज्ञ–परिज्ञा है। और कर्म बन्ध के कारण सावद्य व्यापारों का परित्याग कर देना प्रत्याख्यान परिज्ञा है। यहाँ यह समझना चाहिए कि–भूतकाल में मैंने मन, वचन, काय से सावद्य क्रिया की, कराई और उस की अनुमोदना की, तथा वर्तमान काल में सावद्य क्रिया करता हूँ, कराता हूँ और दूसरे करने वाले का अनुमोदन करता हूँ,। इसी प्रकार भविष्यकाल में भी सावद्य क्रिया करूंगा, कराऊंगा, और दूसरे का अनुमोदन करूंगा। इस प्रकार भाँति–भाँति का सावद्य व्यापार करता हुआ जीव संसार में परिभ्रमण करता है और नरक निगोद आदि की

ભગવાન મહાવીર સ્વામીએ પરિજ્ઞાની પ્રરૂપણા કરી છે. દુઃખોના કારણભૂત કર્મોના બંધનો નાશ કરવા માટે જીવને પરિજ્ઞાનું શરણ અવશ્ય ગ્રહણ કરવું જોઈએ, એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે. પરિજ્ઞાનો અર્થ છે સમ્યગ્જ્ઞાન. પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે– (૧) જ્ઞ–પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા 'સાવદ્ય વ્યાપારથી કર્મબંધ થાય છે.' આ પ્રકારે સમજવું તે જ્ઞ–પરિજ્ઞા છે, અને કર્મબંધના કારણથી સાવદ્ય વ્યાપારોનો ત્યાગ કરી દેવો તે પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા છે. અહિં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ કેઃ— ભૂતકાળમાં મેં મન, વચન, કાયાથી સાવદ્ય ક્રિયા કરી છે, કરાવી છે. અને તેને અનુમોદન આપ્યું છે તથા વર્તમાન કાલમાં સાવદ્ય ક્રિયા કરૂં છું, કરાવું છું, અને બીજા કરવાવાળાને અનુમોદન આપું છું. આ પ્રમાણે ભવિષ્યકાલમાં પણ સાવદ્ય ક્રિયા કરીશ. કરાવીશ અને બીજાને અનુમોદન આપીશ. આ પ્રમાણે અનેક તરેહના જૂદા–જૂદા

चानुभवति । एवं ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया सावद्यक्रिया परित्याज्येति भगवता बोधितमिति । इदं च ज्ञानं सहसम्मत्या (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानैर्जाति-स्मृत्या वा) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्मान्निश्चयव्यवहारस्वरूपसंयममार्गे प्रवृत्तिरेव-जीवस्य हितकारिणी, अनयैव हि परमपदं मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्त्तते जीवः ? इत्याशङ्का-यामाह-'इमस्स चेव.' इत्यादि ।

मूलम्—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं ॥ सू० १० ॥

छाया—अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-जातिमरणमोच-नाय दुःखप्रतिघातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

अनेक प्रकार की दुस्सह यातनाएँ भोगता है, इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सावद्य क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार भगवान्‌ने उपदेश दिया है । यह बोध—अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान और जातिस्मरण से होता है, या, मतिज्ञान से होता है । इस लिये निश्चयव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के लिए हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावद्य क्रियाएँ दुःख का कारण हैं तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशंका का समाधान करते हैं—'इमस्स चेव.' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस जीवन के लिए, परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख दूर करने के लिए, (जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १० ॥

સાવદ્ય વ્યાપાર કરતો જીવ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે, અને નરક, નિગોદ આદિની અનેક પ્રકારની કઠિન યાતનાઓ ભોગવે છે. આ પ્રમાણે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યા-ખ્યાન-પરિજ્ઞાથી સાવદ્ય ક્રિયા ત્યાગવા યોગ્ય છે, આ પ્રમાણે ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે.

આ બોધ-અવધિ, મનઃપર્યય, કેવલજ્ઞાન અથવા જાતિસ્મરણથી થાય છે, અથવા તો મતિજ્ઞાનથી થાય છે. એ માટે નિશ્ચય-વ્યવહારરૂપ સંયમમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરવી એજ જીવને માટે હિતકર છે, અને એનાથી પરમપદ મોક્ષ થાય છે (સૂ૦ ૯)

જો કે સાવદ્ય ક્રિયાઓ દુઃખનું કારણ છે, તો તેમાં જીવ પ્રવૃત્તિ શા માટે કરે છે ? એ શંકાનું સમાધાન કરે છે—'इमस्स चेव.' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—આ જીવનને માટે, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે, દુઃખ દૂર કરવા માટે (જીવ પાપક્રિયામાં પ્રવૃત્ત થાય છે). (૧૦)

टीका—'अस्य' इति-अस्य=प्रत्यक्षमनुभूयमानस्य वारितरङ्गवच्चञ्चलतरस्य, सन्ध्यारागवत्त्वरितभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य चिरसुखार्थमपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मबन्धहेतुभूतेषु क्रियाविशेषेषु प्रवर्त्तते। यथा-जीवनार्थं लावकतित्तिरादिपक्षिणाम्, अजमेषमृगमृगराजादिपशूनां वधरूपघोरकर्मसमाचरणम्। तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, तत्र-परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-स्वख्यातिप्राप्त्यर्थं सापराध-निरपराध-प्राणिनां हिंसनम्। माननम्=अभ्युत्थानासनदानादिरूपः सत्कारः, स्वाज्ञा-स्वीकारो वा, तदर्थम्, यथा-माननार्थं परेषां हिंसनादिकरणम्। पूजनम्-रत्नवस्त्रादि-पुरस्कारः, प्रतिमादीनां पूजाप्रतिष्ठादि च, तदर्थं, प्राण्युपमर्दनरूपहिंसादिसावद्य-

---

टीकार्थ—प्रत्यक्ष अनुभव किये जाने वाले, जलकी तरङ्ग के समान अतिशय चंचल, सन्ध्या की लालिमा के समान भङ्गुर—जीवन के चिरकालीन सुख के लिए अपरिज्ञातकर्मा जीव कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं में प्रवृत्त होता है। जैसे—जीवित रहने के लिए; लावा, तीतर आदि पक्षियों का और बकरा, मेढा, हिरन एवं सिंह आदि पशुओं का वधरूप घोर पापकर्म का आचरण करना।

तथा परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए जीव पापकर्म करता है। '**परिवन्दन**' का अर्थ है प्रशंसा। प्रशंसा के लिए सापराध और निरपराध प्राणियों का घात किया जाता है। उठकर खडा होना, आसन देना आदि सत्कार, अथवा अपनी आज्ञा स्वीकार कराना '**मानन**' कहलाता है, इस के लिए भी दूसरों की हिंसा की जाती है। रत्नों और वस्त्रों आदि का पुरस्कार '**पूजन**' कहलाता है, और प्रतिमा आदि की पूजा-

---

ટીકાર્થ—પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરવામાં આવેલા જલના તરંગોની સમાન અતિશય ચંચલ, સંધ્યાની લાલાશ (રાતાપણા)ની સમાન ભંગુર જીવનના લાંબા સમયના સુખ માટે અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ કર્મબંધની કારણભૂત ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. જેવી રીતે જીવિત રહેવા માટે લાવા તેતર, આદિ પક્ષીઓના અને બકરા, ઘેટા, હરણ એ પ્રમાણે સિંહ આદિ પશુઓના વધરૂપ ઘોર પાપકર્મનું આચરણ કરવું.

તથા પરિવન્દન, માનન અને પૂજન માટે પણ જીવ પાપ કર્મ કરે છે. 'પરિવંદન'નો અર્થ છે:-પ્રશંસા, પ્રશંસા માટે અપરાધવાળા અને અપરાધ વિનાના પ્રાણીઓનો ઘાત કરવામાં આવે છે. ઉઠીને ઉભા થઈ જવું. આસન આપવું આદિ સત્કાર અથવા પોતાની આજ્ઞા સ્વીકાર કરાવવી તે 'માનન' કહેવાય છે, તે માટે પણ બીજાની હિંસા કરવામાં આવે છે. રત્ન અને વસ્ત્રો આદિનો પુરસ્કાર તે પૂજન કહેવાય છે, અને પ્રતિમા

क्रियां करोति । जातिमरणमोचनाय=जातिर्जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखप्राप्त्यर्थं झम्पापातादिकं समाचरति । मरणार्थम्=मरणं येषां पित्रादीनां संजातं, तदर्थं पिण्डदानादिक्रियासु प्रवर्त्तते । यद्वा मरणं=वधस्तदर्थं, वधं निमित्तीकृत्य वैरनिर्यापनार्थम् । यद्वा-मरणार्थं=मृत्युनिवृत्त्यर्थं मिथ्यात्वबुद्धया देवीपूजादौ बलिदानादिकरणम् । मोचनम्=आत्मनः कर्मबन्धापगमस्तदर्थं विपरीतमत्या पञ्चाग्नितापादौ प्राण्युपमर्दनकर्मणि प्रवर्त्तते । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखानां प्रतिघातो=विध्वंसस्तस्य हेतुं क्रियाविशेषं हिंसादिकं करोति, यथा-व्याधि-

---

प्रतिष्ठा वगैरह भी '**पूजन**' है, उसके लिए भी मनुष्य प्राणियों का उपमर्दनरूप हिंसा वगैरह सावद्य क्रियाएँ करता है।

जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए सावद्य क्रियाएँ की जाती है। '**जाति**'-जन्म के लिए जैसे आगामी भव में सुख प्राप्त करने के उद्देश से जीव झंपापात-(अग्नि तथा पाणीमें पडकर अथवा ऊपरसे गिरकर मरना) आदि का आचरण करता है। '**मरण**'-पिता आदि का मरण होने पर उनके लिए पिंडदान आदि क्रियाओं में प्रवृत्त होता है। अथवा-मृत्यु को निमित्त बनाकर वैर का प्रतिशोध (बदला) लेने के लिए पाप करता है। अथवा मृत्यु टालने की मिथ्याबुद्धि से देवी वगैरह के लिए बलिदान आदि करता है। तथा '**मोचन**' के लिए अर्थात् अपना कर्मबन्ध हटाने के लिए विपरीतमति हो कर पंचाग्निताप आदिरूप प्राणि हिंसा में प्रवृत्त होता है। तथा '**दुःखप्रतिघातहेतुं**' दुःखों को निवारण करने के लिए हिंसा आदि पाप करता है। जैसे रोग मिटाने की बुद्धि से मांस

(મૂર્તિ) આદિની પૂજા-પ્રતિષ્ઠા વગેરે પણ 'પૂજન' છે. તેના માટે પણ જીવ, પ્રાણિઓનું ઉપમર્દનરૂપ હિંસા વગેરે સાવદ્ય ક્રિયાઓ કરે છે.

જન્મ અને મરણથી છુટવા માટે પણ સાવદ્ય ક્રિયાઓ કરવામાં આવે છે. જાતિ-જન્મ માટે, જેમ આગામી ભવમાં સુખ પ્રાપ્ત કરવાના ઉદ્દેશથી જીવ ઝંપાપાત (અગ્નિ કે પાણીમાં પડીને મરવું. ઉંચેથી પડતું મૂકવું) આદિનું આચરણ કરે છે. 'મરણ' પિતા આદિના મરણ પ્રસંગે તેના માટે પિંડદાન આદિ ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, અથવા મૃત્યુ નિવારણ માટે મિથ્યાબુદ્ધિથી દેવી વગેરેને બલિદાન આદિ આપવાં. તથા 'મોચન' માટે અર્થાત્ પોતાના કર્મબંધને દૂર કરવા માટે વિપરીત મતિથી પંચાગ્નિતાપ આદિરૂપ હિંસામાં પ્રવૃત્ત થાય છે. તથા 'दुःखप्रतिघातहेतुं'-દુઃખોનું નિવારણ કરવા માટે હિંસાઆદિ પાપ કરે છે. જેમ રોગ

विध्वंसनबुद्धया मांसं भक्षयति, मदिरादिकं पिबति, वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्यासादि-शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं वह्निवनस्पत्याद्यारम्भं करोति। अत्र कारितानुमोदित-भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यैः कर्मसमारम्भरूपा सकलसावद्यक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति—'एयावंति' इत्यादि।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड, छाल, पत्ता, रस वगैरह निकालता है, शतपाक एवं सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का आरम्भ करता है। यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण संसारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव करते हैं। ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावद्य क्रियाओं का त्याग करना चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते हैं—"एयावंति." इत्यादि।

મટાડવાની બુદ્ધિથી માંસ ખાય છે, મદિરા વગેરેનું પાન કરે છે, વનસ્પતિનાં મૂળ, છાલ, પાંદડાં રસ વગેરે કાઢે છે. શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલો માટે અગ્નિ અને વનસ્પતિ આદિનો આરંભ કરે છે. અહિં કરાવવું અને અનુમોદન આપવું, તથા ભૂત ભવિષ્ય-કાલ આદિ ના ભેદથી કર્મસમારંભરૂપ અન્ય ક્રિયાઓ પણ સમજી લેવી જોઈએ.

આ પ્રમાણે અપરિજ્ઞાતપાપકર્મી હોવાના કારણે, સંસારી જીવ કર્મસમારંભરૂપ ક્રિયાઓદ્વારા સંસારમાં, સમસ્ત દિશાઓમાં ભ્રમણ કરતા અનેક યોનિઓમાં દુઃખ-નોજ અનુભવ કરે છે. આ પ્રમાણે સમજીને ભવ્ય જીવોએ પાપકર્મજનક સાવદ્ય ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. (સૂ૦ ૧૦)

કર્મસમારંભરૂપ ક્રિયાવિશેષોનું સ્મરણ કરાવવા માટે પૂર્વોક્ત અર્થને ફરી કહે છેઃ—'एयावंति' ઇત્યાદિ.

मूलम्— एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू. ११ ॥

छाया—एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवंति ॥सू. ११॥

टीका—'एतावन्तः' इति-लोके=जिनशासने कर्मसमारम्भाः=कर्मबन्धहेतवः क्रियाविशेषाः सर्वे एतावन्तः। कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधानां कर्मसमारम्भाणां प्रत्येकमतीतवर्त्तमानानागतत्रयभेदेन नवविधानां पुनर्मनोवाक्कायभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति रीत्या पूर्वकथितसप्तविंशतिभङ्गवन्तः, न तु तेभ्योऽधिका इत्यर्थः। एते च कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवन्ति, एतत्परिज्ञानार्थं यत्नो विधेय इत्यर्थः। ज्ञाते सति पुनः पुनरस्यानुस्मरणं करणीयं, न त्वत्र प्रमादः कार्य इति भावः ॥ सू. ११ ॥

कर्मसमारम्भपरिज्ञानस्य फलमाह-'जस्सेते.' इत्यादि।

मूलार्थ-जिनशासन में इतने कर्मसमारम्भ जानने योग्य हैं ॥ सू. ११ ॥

टीकार्थ—जिनशासन में कर्मबन्ध के कारण इतने ही हैं। कृत, कारित, और अनुमोदित के भेद से तीन प्रकार के कर्मसमारम्भोंका अतीत वर्तमान और भविष्य काल के साथ गुणाकार करने पर नौ भेद होते हैं। ये नौ भेद मन, वचन, काय के भेदसे सत्ताईस भङ्गरूप हो जाते हैं। इस प्रकार सत्ताईस तरह के कर्मसमारम्भ जानने चाहिए, इनसे न कम हैं और न अधिक हैं। उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए। जान लेने के पश्चात् उनका बार-बार स्मरण करना चाहिए। इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भ के ज्ञानका फल बतलाते हैं-' जस्सेते ' इत्यादि।

મૂલાર્થ—જિનશાસનમાં આટલા કર્મસમારંભ જાણવા યોગ્ય છે (૧૧).

ટીકાર્થ—જિનશાસનમાં કર્મબંધનાં કારણ આટલાંજ છે. કરવું. કરાવવું અને અનુમોદન આપવું આ ભેદથી ત્રણ પ્રકારના કર્મસમારંભોને ભૂતકાલ, વર્ત્તમાન અને ભવિષ્ય કાલની સાથે ગુણાકાર કરવાથી નવ ભેદ થાય છે. આ નવ ભેદ મન, વચન, કાયાના ભેદથી સત્તાવીસ ભંગરૂપ થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે સત્તાવીસ તરેહના કર્મસમારંભોને જાણવા જોઇએ. એનાથી ઓછા નથી અને અધિક પણ નથી. તેને જાણવા માટે યત્ન કરવો જોઈએ. જાણ્યા પછી તેનું વારંવાર સ્મરણ કરવું જોઈએ. આ વિષયમાં પ્રમાદ નહિ કરવો જોઈએ. (૧૧)

કર્મસમારંભના જ્ઞાનનું ફળ બતાવે છે:—' જસ્સેતે ' ઇત્યાદિ.

मूलम्—जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे—त्तिबेमि ॥ सू० १२ ॥

छाया—यस्य एते लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—'यस्य' इति—लोके यस्य=भव्यजीवस्य एते=प्रागुक्ताः कर्मसमारम्भाः=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणः समुत्पादकाः, सावद्यक्रियाविशेषा इत्यर्थः परिज्ञाता भवन्ति=' एते हिंसादयः सप्तविंशतिभङ्गवन्तः सावद्यक्रियाविशेषा आत्मनः कर्मबन्धे हेतवो भवन्ति ' इत्येवं ज्ञपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति स परिज्ञातकर्मा=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धनिबन्धनत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तसकलसावद्यक्रियाविशेषो निश्चयेन मुनिः=सर्वसावद्यक्रियोपरतिप्रतिज्ञावान् भवतीत्यर्थः ।

इति=आत्मतत्त्वस्वरूपनिरूपणं, कर्मबन्धहेतुभूतसकलसावद्यक्रियास्वरूपप्रदर्शनं, सावद्यक्रियानिवृत्तिपुरस्सरं मुनेर्विहरणं चेति यत् तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य

मूलार्थ—लोक में जो कर्मसमारम्भ जान लेता है, वह मुनि निश्चय से परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. १२ ॥

टीकार्थ—लोक में जिस भव्य को पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के उत्पादक सावद्यव्यापार ज्ञात हो जाते हैं, अर्थात् जो पूर्वोक्त सत्ताईस भंगों वाले हिंसादिक क्रियाविशेषों को अपने कर्मबन्धों का कारण समझ लेता है, वह परिज्ञात—कर्मा है । जो ज्ञ-परिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझ कर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सम्पूर्ण सावद्य क्रिया-ओंका त्याग करता है वह निश्चय से परिज्ञातकर्मा मुनि है ।

' त्ति बेमि ' इति=इस प्रकार का आत्मा के स्वरूप का निरूपण, कर्मबन्ध के कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारों के स्वरूप का प्रदर्शन, और सावद्य क्रिया की निवृत्तिपूर्वक

મૂલાર્થ—લોકમાં જે કર્મસમારંભને જાણી લે છે, તે મુનિ નિશ્ચયથી પરિજ્ઞાત-કર્મા છે. એ પ્રમાણે હું કહું છું. (સૂ૦ ૧૨)

ટીકાર્થ—લોકમાં જે ભવ્ય જીવને પૂર્વોક્ત કર્મસમારંભ અર્થાત્ જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોનો ઉત્પાદક સાવદ્ય વ્યાપાર જાણવામાં આવી જાય છે. અર્થાત્ જે પૂર્વે કહેલા સતાવીસ ભંગોવાળા હિંસાદિક્રિયાવિશેષોને પોતાના કર્મબંધનું કારણ સમજી લે છે તે પરિજ્ઞાતકર્મા છે. જે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ સમજીને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી સમ્પૂર્ણ સાવદ્ય ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરે છે. તે નિશ્ચયથી પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ છે.

त्ति बेमि'-इति=આ પ્રમાણે આત્માના સ્વરૂપનું નિરૂપણ, કર્મબંધના કારણભૂત સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપારોના સ્વરૂપનું પ્રદર્શન, અને સાવદ્ય ક્રિયાની નિવૃત્તિપૂર્વક મુનિનું

सकाशान्मया साक्षात् श्रुतं तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम् । यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च-छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अत्र सङ्ग्रहगाथा-

" सुअणाणस्स अविणओ, परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं ।
छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थि-त्ति सूइयं इइणा ॥ १ ॥ " इति ।

सावद्यक्रियायाः षड्जीवनिकायं प्रति शस्त्रवदुपघातकतया सावद्यक्रिया-स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिज्ञया व्यपदेशः । ॥ सू. १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुनिका विचरना जो तीर्थंकर भगवान् महावीर के सन्निकट मैंने साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि'=मैं कहता हूँ, अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्थंकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात यह है कि छद्मस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ । यहाँ यह सङ्ग्रहगाथा है:—

" सुख के अभिलाषी भव्यों को श्रुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए छद्मस्थों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ 'इति' शब्द से सूचित किया गया है " ॥ १ ॥

सावद्य क्रिया षड्जीवनिकाय के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावद्य क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

વિચરવું. જે તીર્થંકર ભગવાન મહાવીર પાસે મેં સાક્ષાત્ સાંભળ્યું છે, તેજ 'ब्रवीमि'=હું કહું છું, પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પિત કહેતો નથી. પોતાની બુદ્ધિથી—તીર્થંકરની વાણીની અપેક્ષા નહી રાખીને કહીએ તો શ્રુતજ્ઞાનનો અવિનય થાય છે. બીજી વાત એ છે કેઃ—છદ્મસ્થની દૃષ્ટિ પણ અપૂર્ણ હોય છે, તે કારણથી ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદન કરાએલું તત્વજ હું તમને કહું છું. અહિં આ સંગ્રહગાથા છે.—

"સુખના અભિલાષી ભવ્યોએ શ્રુતજ્ઞાનના અવિનયનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિ પૂર્ણ હોય નહી. એ પ્રમાણે 'इति' શબ્દથી સૂચના કરવામાં આવી છે."(૭)

સાવદ્ય ક્રિયા ષડ્જીવનિકાય માટે શસ્ત્ર (હથીઆર) સમાન ઘાતક છે. એ કારણથી સાવદ્ય ક્રિયાના સ્વરૂપનો બોધ કરાવનારૂં આ પ્રથમ-અધ્યયન છે, તેનું શસ્ત્રપરિજ્ઞાનામ પડયું છે.

નામક પ્રથમ અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ
સંપૂર્ણ (૧-૧)

अथ प्रथमाध्ययनस्य

द्वितीयोद्देशः ।

प्रथमोद्देशे सामान्यरूपेणात्मनः स्वरूपं निरूपितम्, तस्यैव विशेषरूपेण बोधनाय द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते, तस्येदमादिसूत्रम्–'अट्टे' इत्यादि ।

तथा–इह 'पूर्वभवस्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं न भवति केषांश्चि'–दिति प्रथमोद्देशे निगदितम्, अथ तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते–'अट्टे' इत्यादि ।

प्रथम अध्ययनका

द्वितीय उद्देश ॥

पहले उद्देश में सामान्यरूपसे आत्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है। अब विशेषरूप से आत्मा का स्वरूप समझाने के उद्देश्य से दूसरा उद्देश आरम्भ किया जाता है, उसका यह आदिसूत्र है–'अट्टे' इत्यादि ।

तथा–पहले उद्देशमें बतलाया गया था कि–किन्हीं–किन्हीं जीवों को पूर्व भव का स्मरणरूप विशिष्ट ज्ञान नहीं होता। वह ज्ञान क्यों नहीं होता? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं–'अट्टे' इत्यादि ।

પહેલા અધ્યયનનો - બીજો ઉદ્દેશ.

પહેલા ઉદ્દેશમાં સામાન્યરૂપથી આત્માના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. હવે વિશેષરૂપથી આત્માનું સ્વરૂપ સમજાવવાના ઉદ્દેશથી બીજા ઉદ્દેશનો આરંભ કરવામાં આવે છે, તેનું આ આદિસૂત્ર છે–'અટ્ટે' ઇત્યાદિ.

તથા—પહેલા ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવ્યું છે કે-કોઈ-કોઈ જીવોને પૂર્વ-ભવના સ્મરણરૂપ વિશિષ્ટ-ઉત્તમ અસાધારણ જ્ઞાન થતું નથી. તે જ્ઞાન કેમ થતું નથી? એવી જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે:–'અટ્ટે' ઇત્યાદિ.

तथा-अयमात्मा परिज्ञातकर्मतया सकलसावद्यक्रियानिवृत्तः सन् मुनिर्भवतीत्युपदिष्टम्, अथ यः पुनरपरिज्ञातकर्मा स खलु कीदृशो भवतीत्याकाङ्क्षायामाह-'अट्टे' इत्यादि ।

अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अविजाणए, अस्सिं लोए पव्वहिए तत्थ तत्थ पुढो पास, आतुरा अस्सिं परितावेंति ॥सू. १॥

छाया—

आर्तः लोकः परिद्यूनः (परिजीर्णः) दुःसंबोधः अविज्ञानकः अस्मिन् लोके प्रव्यथिते तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुरा अस्मिन् परितापयन्ति ॥ सू. १ ॥

तथा-यह कहा जा चुका है कि आत्मा कर्मों का स्वरूप समझ कर, और समस्त सावद्य व्यापारों से विरत हो कर मुनि हो जाता है, मगर जिसने कर्मों का स्वरूप नहीं समझा है, उस आत्मा की कैसी स्थिति होती है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं- '**अट्टे**' इत्यादि ।

मूलार्थ-(कर्मबन्ध का स्वरूप न समझने वाला) आर्त लोक परिजीर्ण है-असमर्थ है, बोध पाने मे अशक्त है, अज्ञान है, इस लोक में व्यथित है, पृथक्-पृथक् जीवों को देखो । वे आतुर-अज्ञानी-होकर जीवोंको परिताप पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

તથા-એ પ્રમાણે કહી ચૂકયા છીએ કે આત્મા કર્મોના સ્વરૂપને સમજીને અને સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપારોથી વિરત (દૂર) થઈને મુનિ થઈ જાય છે, પણ જેઓ કર્મોના સ્વરૂપને સમજ્યા નથી તે આત્માની સ્થિતિ કેવી થાય છે ? એવી જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે:-'अट्टे' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—(કર્મબંધના સ્વરૂપને નહી સમજવાવાળા) આર્ત્તલોક પરિજીર્ણ છે. અસમર્થ છે. બોધ પામવામાં અશક્ત છે. અજ્ઞાન છે. આ લોકમાં દુઃખી છે. જૂદા-જૂદા જીવોને જુઓ તે આતુર-અજ્ઞાની થઇને જીવોને પરિતાપ પહોંચાડે છે. (૧)

टीका-

लोकः=पृथिव्यादिषड्जीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध-हेतुभूतसावद्यक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति। अत एव परिद्यूनः=शारीरमानसादिदुःखानलसंतप्तः। यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसंबोधः=ब्रह्मदत्तवच्चरणकरण-शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः। 'पश्य' इति पदेन शिष्येति संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मोदयेन क्षुधा-

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञाना-वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावद्य व्यापारों का स्वरूप न समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं। अतएव वे शारीरिक और मानसिक दुःखों की आग से संतप्त हैं। अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते। इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं। ऐसे जीव **अविज्ञानक** अर्थात् सम्यग्ज्ञान से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हें पूर्व भव की स्मृतिरूप विशिष्ट (जातिस्मरण) ज्ञान भी नहीं होता।

'**पश्य**' (देखो) इस पद के द्वारा शिष्य के संबोधन का अध्याहार किया गया है। हे शिष्य! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से भूख, प्यास, त्रास, इष्टवियोग,

ટીકાર્થ—લોક અર્થાત્ પૃથ્વીકાય આદિ છ પ્રકારના જીવસમૂહ જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોના બંધના કારણે સાવદ્ય વ્યાપારોના સ્વરૂપને નહિ સમજીને આર્ત થાય છે. વિષય સુખની તૃષ્ણાથી વ્યાકુલ થાય છે. તે કારણથી તે શારીરિક અને માનસિક દુઃખોની આગથી સંતપ્ત-ખૂબતપેલા છે. અથવા ક્ષાયોપશમિક ભાવોના અભાવના કારણે મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવૃતિ કરી શકતા નથી. એ કારણથી તે બ્રહ્મદત્તની પેઠે ચરણ અને કરણની શિક્ષા લેવામાં પણ અસમર્થ છે, એવા જીવ **અવિજ્ઞાનક** અર્થાત્ સમ્યગ્જ્ઞાનથી રહિત હોય છે. આ કારણથી તેને પૂર્વભવની સ્મૃતિરૂપ વિશિષ્ટ (જાતિસ્મરણ) જ્ઞાન પણ થતું નથી.

'**पश्य**' (દેખો-જુવો) આ પદથી શિષ્યના સમ્બોધનનું અધ્યાહાર કરવામાં આવ્યું છે; હે શિષ્ય! પૂર્વોપાર્જિત કર્મોના ઉદયથી ભૂખ, તરસ, ત્રાસ, ઈષ્ટવિયોગ,

पिपासा-त्रास-प्रियवियोगा-ऽऽधि-व्याधि-परिपीडिते, अस्मिन् लोके तत्र-तत्र=सर्व प्राणिषु पृथक्=प्रत्येकं पश्य। आतुराः=विषयसुखतृष्णाव्याकुला अज्ञानिनः अस्मिन् लोके परितापयन्ति=पृथिव्यादिजीवान् परिपीडयन्ति, इति पश्येत्यर्थः।

यद्वा-लोकः-षड्जीवनिकायः, आर्तः=परिपीडितः अस्तीति शेषः। कुतः कारणाद् आर्तः? इत्यत आह-'परिजुण्णे' इति। यतः परिजीर्णः=मोक्ष मार्गप्रवृत्तावक्षमः। कथं परिजीर्णः? इत्यत आह-'दुस्संबोहे' इति, यतो दुःसंबोधः ब्रह्मदत्तवच्चरणकरणशिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः। दुःसंबोधः कुतोऽस्ती?-त्यत आह-यतः-अविज्ञानकः=विज्ञानरहितः, पूर्वभवार्जितघोरतरहिंसादिदुरितकर्म-

---

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा आदि से पीडित इस लोक में जहाँ पृथक्-पृथक् प्राणियों को देखो। वे विषयसुख के लिए व्याकुल एवं ज्ञानहीन हो कर संसार में संताप भोग रहे हैं। वे पृथिवीकाय आदि जीवों को पीडा पहुंचाते हैं (यह देखो)।

अथवा-षड्जीवनिकायरूप यह लोक आर्त्त है-पीडा भुगत रहा है। यह किस कारण से आर्त्त है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-वह परिजीर्ग अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने में असमर्थ है। यह परिजीर्ण क्यों है? इस का समाधान यह है कि-वह दुःसंबोध है अर्थात् ब्रह्मदत्त की भाँति चरण-करण की शिक्षा ग्रहण करने में अशक्त है। वह दुःसंबोध क्यों है? इस का कारण यह है कि-वह ज्ञानहीन है अर्थात् पूर्वभव में उपार्जन किये हुए घोरतर हिंसा आदि पापकर्मोंके वश हो कर एवं अत्यन्त

માનસિક પીડા, શારીરિક પીડા, આદિથી પીડિત આ લોકમાં જ્યાં-ત્યાં જૂદા-જૂદા પ્રાણીઓને જુઓ, તે વિષયસુખ માટે વ્યાકુલ એવં જ્ઞાનહીન થઈને સંસારમાં સંતાપ ભોગવી રહ્યા છે. તે પૃથિવીકાય આદિ જીવોને પીડા પહોંચાડે છે. તે જુઓ.

અથવા ષડ્જીવનિકાયરૂપ આ લોક આર્ત્ત છે-પીડા ભોગવી રહ્યા છે. તે શું કારણથી આર્ત્ત છે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે:-તે પરિજીર્ણ અર્થાત્ મોક્ષ માર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરવાને અસમર્થ છે. તે પરિજીર્ણ શા માટે છે? તેનું સમાધાન એ છે કે-તે દુઃસંબોધ છે, અર્થાત્ બ્રહ્મદત્તની પ્રમાણે ચરણ-કરણની શિક્ષા ગ્રહણ કરવામાં અશક્ત છે. તે દુઃસંબોધ શા માટે છે? તેનું કારણ એ છે કે:- તે જ્ઞાનહીન છે. અર્થાત્ પૂર્વ-ભવમાં ઉપાર્જન કરેલા ઘોરતર હિંસા આદિ પાપકર્મોને વશ થઈને, એમ-એ પ્રમાણે

वशतः प्रगाढमिथ्यात्वमोहनीयोदयात् प्रगाढमोहाक्रान्त इत्यर्थः। एवं स्वकर्मवशतः परिपीडितमपि नितान्तदयनीयमपि रागद्वेषमोहान्धाः परितापयन्तीत्याह–अस्मिन् लोके' इत्यादि। अस्य व्याख्या पूर्ववत् बोध्या।

'पश्य' इति पदेन भागवता मां संबोध्य यथोपदिष्टं तथा कथयामीति जम्बूस्वामिनं श्रीसुधर्मा स्वामी प्रतिबोधयति।

'प्रव्यथिते' इति विशेषणपदं च स्वस्वकर्मणैव नानाविधवेदना-समन्वितानामपि पृथिव्यादिषड्जीवनिकायानां परिपीडने विषयसुखतृष्णाक्रान्ताना-

---

गाढे मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से मोहयुक्त है। इस प्रकार अपने कर्मों से पीडित और अत्यन्त दयनीय पृथ्वीकाय आदि जीवों को राग–द्वेष और मोह से अन्धे पुरुष पीडा पहुंचाते हैं। **'अस्मिन् लोके'**–(इस लोक में) इत्यादि की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए.

'पश्य' (देखो) इस पद से श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि–मुझे संबोधन करके भगवान् ने जैसा उपदेश दिया है वैसा ही मैं कहता हूँ।

'प्रव्यथिते' पद से यह सूचित किया गया है कि–बेचारे षट्काय के जीव अपने–अपने कर्मों के कारण नाना प्रकार की वेदनाएँ भोग ही रहे हैं, इस पर भी विषय–सुख के लोलुप लोग उन्हें और सताते हैं। उन्हें दुःखी देख कर भी इनके

અત્યન્ત ગાઢા મિથ્યાત્વમોહનીયના ઉદયથી મોહયુક્ત છે. એ પ્રકારે પોતાના કર્મોથી પીડિત અને અત્યન્ત દયાપાત્ર પૃથ્વીકાય આદિ જીવોને રાગ–દ્વેષ અને મોહથી અંધ થયેલ પુરૂષ પીડા પહોંચાડે છે 'अस्मिन् लोके' (આ લોકમાં) ઈત્યાદિની વ્યાખ્યા પ્રથમ પ્રમાણે સમજી લેવી જોઈએ.

'पश्य' (જુઓ) આ પદથી શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કેઃ–મને સંબોધન કરીને ભગવાને જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવોજ હું કહું છું.

'प्रव्यथिते' પદથી એ સૂચિત કરવામાં આવે છે કેઃ–બિચારા ષટ્કાયના જીવ પોત–પોતાના કર્મોના કારણે નાના પ્રકારની વેદનાઓ ભોગવીજ રહ્યા છે. તે ઉપરાંત પણ વિષય–સુખના લોલુપ માણસો. તેને વધારે સતાવે છે. તેને દુઃખી જોઈને પણ

मातुराणां हृदयं मनागपि न द्रवति; प्रत्युत मृगान् क्षुधितव्याघ्र इव ते पृथिव्यादिप्राणिगणं प्रणिघ्नन्ति, इति संसूचयति ॥ सू. १ ॥

तत्र षड्जीवनिकायरूपे लोके प्राथम्यात् पृथिवीकायस्याधिकारमाह-' संति पाणा ' इत्यादि ।

मूलम्—

संति पाणा पुढो सिया लज्जमाणा पुढो पास । अणगारामो-त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।। सू. २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ।। २ ॥

मन में दया नहीं आती, प्रत्युत भूखा वाघ जैसे मृगों को मारता है उसी प्रकार विषयलोलुप लोग उन जीवों की हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

षड्जीवनिकायरूप लोक में पृथ्वीकाय पहला है, अतः पृथ्वीकाय का अधिकार कहते हैं:-' **संति पाणा** ' इत्यादि ।

मूलार्थ-पृथ्वी में अलग-अलग प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के आरंभ की निवृत्ति करने वालों (मुनियों) को पृथक् समझो । ' हम अनगार हैं ' इस प्रकार कहनेवाले द्रव्यलिंगी नाना प्रकार के पृथ्वीशस्त्रों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीशस्त्र का समारम्भ करते हुए अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ॥ सू. २ ॥

તેના મનમાં દયા આવતી નથી, પરન્તુ ભૂખ્યો વાઘ જેમ મૃગોને મારે છે, તે પ્રમાણે વિષય-લોલુપ લોક તે જીવોની હિંસા કરે છે. (૧)

ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકમાં પૃથ્વીકાય પ્રથમ છે, તે કારણથી પૃથ્વીકાયનો અધિકાર કહે છેઃ—' संति पाणा ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પૃથ્વીમાં અલગ-અલગ પ્રાણી છે. પૃથ્વીકાયના આરંભની નિવૃત્તિ કરવાવાળા (મુનિયો)ને જૂદા જાણો. પરંતુ ' અમે અનગાર-સાધુ મુનિ છીએ. ' આ પ્રકારનું કહેવાવાળા દ્રવ્યલિંગી (વેષ ધારણ કરનારા) નાના-પ્રકારના શસ્ત્રોથી પૃથ્વી કર્મનો સમારંભ કરીને પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરતા થકા અનેક પ્રકારના અન્ય પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે. (૨)

टीका—

प्राणाः=प्राणाः सन्ति येषामित्यर्थेऽच्प्रत्ययः, प्राणिन इत्यर्थः । पृथक्= भिन्नभिन्नतया श्रिताः=स्वस्वशरीराधिष्ठिताः सन्ति । यद्वा–श्रिताः-पृथिव्याश्रिताः= अङ्गुलासंख्यातभागप्रमाणस्वशरीरावगाहिनः पृथिव्यामवस्थिताः पृथिवीकायिकाः, प्राणाः=जीवाः, पृथक्=पृथग्भावेन सन्ति, इति पश्य । इदमुक्तं भवति–पृथिव्या एकदेवतारूपत्वं मन्यमाना भ्रान्ताः, वस्तुतस्तु प्रत्येकशरीररूपाणामसंख्यात-पृथिवीकायिकजीवानां समुदायः पृथिवी । एवं च पृथिवी सचित्ताऽनेकजीवाधि-ष्ठिता चेति ।

अथ द्वारप्रदर्शनेन वस्तुस्वरूपं सम्यग् निर्णीयते तस्माद् द्वारणि

टीकार्थ—प्राण का अर्थ है प्राणी । प्राणी पृथक्–पृथक् आश्रित हैं अर्थात् अलग–अलग प्राणी अपने–अपने शरीर में रहते हैं । अथवा '**श्रित**' का अर्थ है–पृथ्वी में आश्रित । अंगुल के असंख्यातवें भाग अवगाहना वाले जीव पृथ्वी–आश्रित हैं, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव पृथक्–पृथक् हैं । यह देखो । तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को एक ही देवता मानने वाले लोग भ्रम में हैं । वास्तव में पृथ्वी प्रत्येक शरीर वाले असंख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का पिंड है । इसी प्रकार पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है ।

द्वारों के प्रदर्शन से वस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अतः यहाँ द्वार

ટીકાર્થ—પ્રાણનો અર્થ પ્રાણી છે. પ્રાણી પૃથક્–પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત્ અલગ–અલગ પ્રાણી પોત–પોતાના શરીરમાં રહે છે. અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે. 'પૃથ્વીમાં આશ્રિત' આંગલના અસંખ્યાતમાં ભાગની અવગાહનાવાળા એ જીવ પૃથ્વી–આશ્રિત છે. એવા પૃથ્વીકાયના જીવ જૂદા–જૂદા છે તે જુઓ.

તાત્પર્ય એ છે કે:—પૃથ્વીને એકજ દેવતા માનવાવાળા લોક ભ્રમમાં છે વાસ્ત વિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસંખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે. આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે.

દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે; એટલે અહિં દ્વાર બતા-

प्रदर्श्यन्ते-(१) लक्षणं, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाणं, (४) वधः, (५) शस्त्रम्, (६) उपभोगः, (७) वेदना, (८) निवृत्तिश्चेत्यष्टौ । उक्तञ्च—

"लक्खण १ परूवणा २ खलु, परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं ५ च। उवभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वत्ती ८ अट्ठ दाराइं ॥ १ ॥"

(१) लक्षणद्वारम्—

ननु पृथिवी सचेतनाऽस्तीत्यत्र किं प्रमाणम्? उच्यते-अनुमानमेव तावत्प्रथमं गृहाण। पृथिवी सचेतना तदधिष्ठितशरीरोपलब्धेः, गवाश्वादिवत् ।

बतलाये जाते हैं—(१) लक्षण, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाण, (४) वध, (५) शास्त्र, (६) उपभोग, (७) वेदना, और (८) निवृत्ति। ये आठ द्वार हैं। कहा भी है—

"लक्खण १ परूवणा २ खलु, परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं च ५। उपभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वित्ती ८ अट्ठ दाराइं ॥ १ ॥" इति।

लक्षण, प्ररूपणा, परिणाम, वध, शास्त्र, उपभोग, वेदना और निवृत्ति, ये आठ द्वार कहे गये है। ॥ १ ॥

शंङ्का—पृथ्वी सजीव है इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लीजिए—पृथ्वी सचेतन है, क्यों कि उसमें चेतना से अधिष्ठित शरीर की उपलब्धि होती है, गाय और अश्व के समान।

વવામાં આવે છે કેઃ-(૧) લક્ષણ, (૨) પ્રરૂપણા, (૩) પરિમાણ, (૪) વધ, (૫) શસ્ત્ર, (૬) ઉપભોગ, (૭) વેદના અને (૮) નિવૃત્તિ, આ આઠ દ્વાર છે. કહ્યું પણ છે કેઃ—

"लक्खण १ परूवणा २ खलु, परिमाणं ३ वह ४ तहेव सत्थं च ५। उवभोग ६ वेयणावि ७ य, निव्वित्ती ८ अट्ठ दाराइं ॥ १ ॥" इति।

"લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, વધ, શસ્ત્ર, ઉપભોગ વેદના અને નિવૃત્તિ. આ આઠ દ્વાર કહ્યા છે." (૧)

(૧) લક્ષણદ્વાર—

શંકાઃ—પૃથ્વી સજીવ છે, એ વિષયમાં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાનઃ—પ્રથમ અનુમાન પ્રમાણને લઈએ-પૃથ્વી સચેતન છે. કારણ કે તેમાં ચેતનાથી અધિષ્ઠિત શરીરની ઉપલબ્ધિ થાય છે. ગાય અને અશ્વની સમાન.

किञ्च–जीवस्य यानि लक्षणानि तानि पृथिवीकायस्य सन्ति, केवलमत्रस्त्यानर्द्धिना-मदर्शनावरणकर्मोदयादुपयोगशक्तिर्ज्ञानदर्शनरूपा नास्ति व्यक्ता इत्यव्यक्तरूपेणोपयोगो वर्त्तते ।तथौदारिक–तन्मिश्र–कार्मणशरीरात्मकः काययोगो वृद्धयष्टिवत् तस्यालम्बनाय वर्त्तते । तथा मानसिकचिन्ताविशेषवत्सूक्ष्मा आत्मपरिणामविशेषरूपा अध्यवसाया-स्तत्र सन्ति । तथा साकारोपयोगान्तर्गतमतिश्रुतरूपमज्ञानद्वयं च तत्रास्ति । तथा स्पर्शनेन्द्रियमात्रस्य सद्भावादचक्षुर्दर्शनं च । तथा सेवार्त्तसंहननं, चन्द्रमसूर-संस्थानं चास्ति । तथा–मिथ्यात्वादिसद्भावादष्टविधकर्मबन्धोऽपि । कृष्णनील-

---

दूसरी बात यह है कि–जीव के जो लक्षण हैं वे सब पृथ्वी में पाये जाते हैं । हां, पृथ्वीकाय में स्त्यानर्द्धिनामक दर्शनावरण कर्म के उदय से ज्ञान–दर्शनरूप उपयोगशक्ति प्रकटरूप में नहीं है । पृथ्वी में अव्यक्तरूप से उपयोग रहता है ।

तथा औदारिक औदारिकमिश्र और कार्मण शरीररूप काययोग वृद्धपुरुष की लकडीके समान उस के आलम्बन के लिए विद्यमान है । पृथ्वी में आत्मा के परिणाम मानसिकचिन्ता-रूप अध्यवसाय भी मौजूद है ।

पृथ्वी में साकार–उपयोग के अन्तर्गत मति और श्रत–अज्ञान भी पाये जाते हैं । अकेली स्पर्शनेन्द्रिय होने से अचक्षुदर्शन भी है । और सेवार्त संहनन, एवं चन्द्रमसूर संस्थान भी है । मिथ्यात्व आदि कारण विद्यमान होने से आठ प्रकारका कर्मबन्ध होता है । कृष्ण, नील, कापोत और तैजस ये चार लेश्याएँ भी पृथ्वीकाय में हैं ।

બીજી વાત આ છે કે–જીવના જે લક્ષણ છે તે સર્વ પૃથ્વીમાં જોવામાં આવે છે. હા. પૃથ્વીકાયમાં સ્ત્યાનર્ધિનામક દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી જ્ઞાન–દર્શનરૂપ ઉપ-યોગશક્તિ પ્રકટ રૂપમાં નથી. પૃથ્વીમાં અવ્યકત રૂપમાં ઉપયોગ રહે છે.

તથા–ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર અને કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરૂષની લાકડી સમાન તેના આલંબન માટે વિદ્યમાન છે. પૃથ્વીમાં આત્માના પરિણામ, માનસિકચિન્તારૂપ અધ્યવસાય પણ મોજુદ છે.

પૃથ્વીમાં સાકાર ઉપયોગના અન્તર્ગત મતિ અને શ્રુત અજ્ઞાન પણ જોવામાં આવે છે. એકલી સ્પર્શેન્દ્રિય હોવાથી અચક્ષુદર્શન પણ છે. અને સેવાર્ત સંહનન, એ પ્રમાણે ચન્દ્ર–મસૂર સંસ્થાન પણ છે.

મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિદ્યમાન હોવાથી આઠ પ્રકારનાં કર્મબંધ પણ થાય છે. કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, અને તૈજસ. આ ચાર લેશ્યાઓ પણ પૃથ્વીકાયમાં છે.

कापोततैजसलेश्याचतुष्टयं, सूक्ष्मपृथिवीकायस्याद्यलेश्यात्रयम् । तथा-आहारादि-सञ्ज्ञा अपि । तथा-वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्धाताऽसञ्ज्ञित्वं, नपुंसकवेदः। पर्याप्ति-चतुष्टयम् । तथा पृथिवीकायजीवा निरन्तरं सततमुच्छ्वसन्ति निःश्वसन्ति च । एवमुपयोगादिश्वासोच्छ्वासान्तजीवलक्षण समन्वितत्वान्मनुष्यवत्पृथिवीसचित्ताऽस्तीति सिद्धम् ।

ननु-उपयोगादीनि जीवलक्षणानि पृथिवीकायजीवेषु क्वचिन्नोपलभ्यन्ते, तथा सति-असिद्धेनैव उपयोगादिजीवलक्षणेन कथं पृथिव्याः सचित्तत्वं साध्यते ? ।

उच्यते-पृथिवीकायजीवेषुमासन्तुसुव्यक्तान्युपयोगलक्षणानि, अव्यक्तानि

सूक्ष्म पृथ्वीकाय में आदि की तीन लेश्याएँ हैं । आहार आदि संज्ञाएँ भी उसमें हैं ।

पृथ्वी में वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्धात हैं, असंज्ञीपन है, नपुंसक वेद है और चार पर्याप्तियाँ भी हैं, पृथ्वीकाय के जीव निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेते रहते हैं । इस प्रकार उपयोग से लगाकर श्वासोच्छ्वास पर्यन्त जीव के लक्षणों से युक्त होने के कारण पृथ्वी मनुष्य के समान सचित्त है, यह बात सिद्ध हुई ।

शङ्का-जीव के लक्षण उपयोग वगैरह पृथ्वीकाय के जीवों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होते । ऐसी स्थिति में वहाँ उपयोग आदि जीव के लक्षणों का होना असिद्ध है। असिद्ध कथन से पृथ्वी की सचित्तता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

समाधान-पृथ्वीकाय के जीवों में भलीभाँति व्यक्त उपयोग आदि लक्षण भले

સૂક્ષ્મપૃથ્વીકાયમાં આદિની ત્રણ લેશ્યાઓ છે. આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ પણ તેમાં છે.

પૃથ્વીમાં વેદના, કષાય અને મારણાન્તિકસમુદ્ઘાત છે. અસંજ્ઞીપણું છે. નપુંસક વેદ છે અને ચાર પર્યાપ્તિઓ પણ છે. પૃથ્વીકાયના જીવ નિરંતર શ્વાસોચ્છ્વાસ લેતા રહે છે. આ પ્રમાણે ઉપયોગથી લઈને શ્વાસોચ્છ્વાસ પર્યંત જીવના લક્ષણોથી યુક્ત હોવાથી પૃથ્વી મનુષ્ય પ્રમાણે સચિત્ત છે. તે વાત સિદ્ધ થઈ.

શંકા—જીવનું લક્ષણ ઉપયોગ વગેરે પૃથિવીકાયના જીવોમાં કોઈ સ્થળે ઉપ-લબ્ધ થતાં નથી. એવી સ્થિતિમાં જ્યાં ઉપયોગ આદિ જીવના લક્ષણોનું હોવું તે નક્કી નથી. એ અસિદ્ધ કથનથી પૃથ્વીની સચિત્તતા કેવી રીતે સિદ્ધ થઈ શકે છે ?

સમાધાન—પૃથિવીકાયના જીવોમાં સારી રીતે (સ્પષ્ટ) વ્યક્ત ઉપયોગ આદિ

तु तत्र सन्त्येव, यथा–कस्यचिन्मनुष्यस्य अत्युत्कटमदिरातिपानजनित-पित्तोदयमूर्छितस्य चेतनाया अव्यक्तत्वेऽपि न तस्याचित्तरूपता विज्ञायते, एवं पृथिवीकायजीवेष्वव्यक्तचेतना संभवति ।

न चाव्यक्तचेतनाऽभिव्यञ्जकमुच्छ्वासादिकं मद्यमूर्छितमनुष्यस्य सचित्तत्वमावेदयति, इह तु न किञ्चिच्चेतनालक्षणं लक्ष्यत इति वाच्यम् ।

यथा मनुष्यशरीरे क्षतस्थानं मांसादिरिक्तमपि पश्चात्क्षतादिनिवृत्तौ स्वयं भ्रियते, तथैव खनितं खनिभूम्यादिकं सजातीयावयवैर्भ्रियमाणं दृश्यते ।

ही न हों, मगर अव्यक्तरूप में तो विद्यमान हैं ही । जैसे कोई मनुष्य खूब नसैली मदिराका डँटकर पान कर ले और पित्त के प्रकोप से मूर्च्छित हो जाय तो उसकी भी चेतना अव्यक्त हो जाती है, फिर भी उसे अचित्त (अचेतन) नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार पृथ्वीकाय के जीवों में अव्यक्त चेतना है ।

शङ्का–अव्यक्त चेतना के बोधक उच्छ्वास वगैरह मद्यमूर्च्छित मनुष्य की सचित्तता को प्रकट करते हैं; मगर यहाँ (पृथ्वीमें) तो चेतना का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देता । ऐसी स्थिति में पृथ्वी की सचेतनता किस प्रकार मानी जाय ?

समाधान–जैसे–मनुष्य के शरीर में घाव हो जाता है तो उस स्थान में मांस आदि नहीं रहता । पश्चात् घाव मिट जाने पर वह भर जाता है । इसी प्रकार खोदी हुई खान आदि की भूमि अपने सजातीय अवयवों से भरजाती दिखाई देती है ।

લક્ષણ ભલે ન હોય, પરન્તુ અવ્યકત રૂપમાં તો વિદ્યમાન છેજ. જેમ કોઇ મનુષ્ય ખૂબ પેટભરીને ઘણા નીસાવાળી મદિરાનું પાન કરી લે અને પિત્તના પ્રકોપથી મૂર્છિત થઈ જાય તો તેની પણ ચેતના અવ્યકત થઈ જાય છે, એટલે તેને અચિત્ત કહી શકતા નથી. એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયના જીવોમાં અવ્યકત ચેતના છે.

શંકા—અવ્યક્ત ચેતનાના બોધક તરીકે ઉચ્છ્વાસ વગેરે મનુષ્યની સચિત્તતાને પ્રગટ કરે છે પરન્તુ અહિં (પૃથ્વીમાં) તો ચેતનાનું કોઈ પણ લક્ષણ જોવામાં આવતું નથી. એવી સ્થિતિમાં પૃથ્વીની સચેતનતા કેવી રીતે માની શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે મનુષ્યના શરીરમાં ઘાવ-ઉંડા જખમ થઇ જાય છે તો તે સ્થાનમાં માંસ આદિ રહેતું નથી. પાછળથી ઘાવ રૂઆઈ જતાં તે માંસથી ભરાઈ જાય છે. એ પ્રમાણે ખોદેલી ખાણની ભૂમિ પોતાના સજાતીય અવયવોથી ભરાઈ જાય છે.

एवं च मनुष्यवद् व्रणस्थानभरणरूपस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकघर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतलवत्, तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः सजीवत्वम् ।

अथवा-विद्रुमपाषाणिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादि-दर्शनात्, शरीरस्थितास्थ्यादिवत् । तद्यथा-शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान घाव का भरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है ।

अथवा-पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उस में प्रतिदिन घिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलभाग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन घिसती है और भरजाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा-मूंगा, पाषाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है; जैसे शरीर की हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कछुवे की पीठ की भाँति कठोर होने पर भी सचित्त मालूम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मूंगा-शिला

તે પ્રમાણે મનુષ્યના સમાન ઘાવનું ભરાઇ જવું તે પણ એક ચેતનાનું લક્ષણ છે, અને તે પૃથ્વીકાયમાં વિદ્યમાન છે.

અથવા—પૃથિવી સજીવ છે, કારણ કે તેમાં પ્રતિદિન ઘસાવું અને વધવું તે જોવામાં આવે છે, પગના તળીઆની પ્રમાણે. તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ પગના તળી-આનો ભાગ ઘસાય છે અને ફરી પાછા પુષ્ટ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે પૃથિવી પણ પ્રતિદિન ઘસાય છે અને ફરી પાછી ભરાઈ જાય છે, તેથી પૃથિવી પણ સજીવ છે.

અથવા—મુંગા (પરવાળા) પાષાણ આદિરૂપ પૃથ્વી સજીવ છે કેમકે-તેમાં કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ વગેરે જોવામાં આવે છે, જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ. તાત્પર્ય એ છે કે-જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ કાચબાની પીઠ જેવા કઠોર હોવા છતાંય પણ સચિત્ત માલૂમ પડે છે, અને વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થતાં હોય તેમ દેખાય છે, તે

पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् ।

अथ च-विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्ति-दर्शनात्, अर्शोऽङ्कुरवत् । तद्यथा-अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीय-धातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात् सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

किञ्च - यथा सास्नाविषाणाद्यवयवसंघातानां गोमहिष्यादिशरीराणां छिन्न-भिन्नो-त्क्षिप्त-स्पृष्ट-दृष्ट-द्रव्यत्वेन जीवशरीरत्वं, तथैव पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षदृष्टं

आदिरूप पृथ्वी में, कठिनता होने पर वृद्धि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देता है । इस कारण पृथिवी सचित्त है ।

अथवा-मूँगा आदि पृथ्वी सचित्त है, क्यों कि उसका छेदन होने पर वहां उसी की सजातीय धातु उत्पन्न होती है, अर्श (मस्सा) के अंकुर के समान, जैसे अर्श के अंकुर एकवार काट देने पर भी फिर वहाँ उसी जाति के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मूंगा-शिला आदि रूप पृथिवी का खान आदि में छेदन कर देने पर भी उसी की सजातीय धातुओं से यह खाली स्थान भर जाता है, अतः पृथिवी की सचित्तता सिद्ध हुई ।

और भी लीजिए-जैसे सास्ना (गायके गले में लटकने वाली चमडी) सीग आदि अवयवों का समुदायरूप गाय, भैंस आदि के शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट और द्रव्यत्व के कारण जीव के शरीर हैं, इसी प्रकार पृथिवी आदि में प्रत्यक्ष से

પ્રમાણે મૂગા (પરવાળાં) શિલા આદિ રૂપ પૃથ્વીમાં કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે, આ કારણથી પૃથ્વી સચિત્ત છે.

અથવા—મૂંગા (પરવાળાં) આદિ પૃથ્વી સચિત્ત છે. કેમકે—તેનું છેદન થવાથી ત્યાં તેની સજાતીય ધાતુ, ઉત્પન્ન થાય છે, અર્શ (મસ્સા)ના અંકુર પ્રમાણે, જેમ અર્શના અંકુર એકવાર કાપી નાંખવા છતાંય પણ ફરીથી ત્યાં તે જાતિનો અંકુર ઉત્પન્ન થાય છે, તે પ્રમાણે મૂંગા-શિલા આદિરૂપ પૃથ્વિનું ખાણ આદિમાં છેદન કરી દેવા છતાંય પણ તેની સજાતીય ધાતુઓથી તે ખાલી સ્થાન ભરાઈ જાય છે, તે કારણથી પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ થઈ.

બીજું પણ પ્રમાણ લઈએ, જેમ સાસ્ના (ગાયના ગળામાં લટકવાવાળી ચામડી) સીંગ આદિ અવયવોના સમુદાયરૂપ-ગાય, ભેંસ આદિના શરીર છિન્ન, ભિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ, અને દ્રવ્યત્વના કારણથી જીવનું શરીર છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી આદિમાં પ્રત્યક્ષ

छिन्नत्वादिकमपलपितुं न शक्यते, तस्मात्पृथिव्यादीनामपि जीवशरीरत्वं सिद्ध्यति। जीवशरीरत्वेन निरूपितत्वाच्च पृथिव्यादीनामपि करचरणसंघातानामिव कदाचिच्चैतन्यं सिद्ध्यति, नतु सर्वथा शाश्वतिकनिर्जीवत्वं तेषां संभवति, कदाचिदचित्तत्वमपि शस्त्रोपहतत्वादेव भवति करचरणादिवदिति।

पृथिव्याः सचित्तत्वेऽनेकजीवाधिष्ठितत्वे चागमोऽपि प्रमाणम्। तथाहि—
"पुढवी चित्त मंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं" (दश.४ अ.)

पृथिवी चित्तवती=सजीवा-आख्याता=भगवता कथिता अनेकजीवा=

दिखाई देने वाली छिन्नता आदि का अपलाप नहीं किया जा सकता, अतः पृथिवी आदि जीव के शरीर हैं, इस प्रकारका निरूपण करने से हाथ पैर की तरह उन में भी किसी समय चैतन्य का अस्तित्व सिद्ध होता है, उनकी सदैव और सर्वथा निर्जीवता सिद्ध नहीं हो सकती। पृथिवी आदि कदाचित् निर्जीव होती है सो उसका कारण शस्त्र का उपघात है। शस्त्र के प्रयोग से जैसे हाथ-पैर आदि अवयव निर्जीव हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी निर्जीव हो जाती है।

पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है, इस विषय में आगमप्रमाण भी है वह इस प्रकार-" पृथ्वी सचित्त कही गई है उसमें अनेक जीव हैं और उन सब की सत्ता पृथक्-पृथक् है,-शस्त्रपरिणत पृथ्वी को छोडकर " (दश. ४. अ.)

अर्थात्-पृथ्वी सजीव है, ऐसा भगवानने कहा है। उस में अनेक एकेन्द्रिय जीव हैं।

દેખાઈ આવે તેવી છિન્નતા આદિનો અપલાપ (છતી વસ્તુ દેખાય તે ના કહેવી કે નથી દેખાતી) કરી શકાશે નહિ, એ માટે પૃથ્વી આદિ પણ જીવનું શરીર સિદ્ધ થાય છે. પૃથ્વી આદિ જીવનાં શરીર છે. એ પ્રકારનું નિરૂપણ કરવાથી હાથ-પગની પ્રમાણે તેમાં પણ કોઈ સમય ચૈતન્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે. તેની હમેશાં અને સર્વથા નિર્જીવતા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી. પૃથ્વી આદિ કદાચિત્ નિર્જીવ હોય છે, તો તેનું કારણ શસ્ત્રનો ઉપઘાત છે. (હથિઆરથી કપાવું-ખોદાવું તે છે) શસ્ત્રના પ્રયોગથી જેમ હાથ-પગ અવયવ નિર્જીવ થઈ જાય છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી પણ નિર્જીવ થઈ જાય છે.

પૃથ્વી સચિત્ત છે. અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે. આ વિષયમાં આગમ પ્રમાણ પણ છે. તે આ પ્રમાણે:—

" પૃથ્વી સચિત્ત કહેવામાં આવી છે, તેમાં અનેક જીવ છે, અને તે સર્વની સત્તા પૃથક્-પૃથક્ છે; શસ્ત્રપરિણુત પૃથ્વીને ત્યજીને." (દશવૈકાલિક, ૪-અ)

અર્થાત્—પૃથ્વી સજીવ છે; એવું ભગવાને કહ્યું છે. તેમાં અનેક એકેન્દ્રિય જીવ છે.

अनेके=बहवो जीवा एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता, पृथक्सत्त्वा=पृथक् पृथग्भूता अङ्गुलासंख्येयभागमात्रशरीरावगाहनामाश्रित्य विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्वाः= स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्यां सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तेन संबन्धः।

ननु तर्हि तथाभूतायां सचित्तायां पृथिव्यां गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां संयतानामहिंसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति प्रत्युतावश्यकरणीयोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियया हिंसैव भवति, तस्मादहिंसाव्रतपालनं वन्ध्यापुत्रपालनवद्-संभवम् ?–इत्यत आह–'अन्नत्थ सत्थपरिणएणं' इति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र, शस्त्रपरिणतां पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवा। शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शस्त्रं। यद् यस्य विनाशकारणं तत्तस्य शस्त्रमित्यर्थः। तत् द्विविधं द्रव्यभाव-

---

वे सब जीव अंगुल के असंख्यातवें भागकी शरीर–अवगाहनावाले भिन्न-भिन्न रूप में स्थित हैं। यहाँ सत्त्व का अर्थ एकेन्द्रिय जीव समझना चाहिए।

शङ्का—पृथ्वी अगर सचित्त है तो सचित्त पृथ्वी पर गमन–आगमन आदि क्रिया करने वाले साधुओं का अहिंसाव्रत कैसे स्थिर रह सकता है? प्रत्युत मल–मूत्र आदि का त्याग अनिवार्य है और इस से हिंसा होना भी अनिवार्य है। एसी स्थिति में अहिंसा का पालन करना वंध्या–पुत्र का पालन करने के समान असंभव है।

समाधान—शास्त्र में कहा है–'**अन्नत्थ सत्थपरिणएणं**' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वी को छोडकर दूसरी पृथ्वी सचित्त है। जिस के द्वारा प्राणिगण का हनन हो उसे शस्त्र कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो जिस के विनाश का कारण है, वह उस

તે સર્વ જીવ અંગુલના અસંખ્યાતમા ભાગની શરીર–અવગાહનાવાળા ભિન્ન–ભિન્ન રૂપમાં સ્થિત છે. અહિં સત્ત્વનો અર્થ એકેન્દ્રિય જીવ સમજવો જોઈએ.

શંકા—પૃથિવી અગર સચિત્ત છે તો સચિત્ત પૃથ્વી પર જવા આવવાની ક્રિયા કરવાવાળા સાધુઓનું અહિંસાવ્રત સ્થિર કેવી રીતે રહી સકે છે? ઉલટું મલ–મૂત્ર આદિનો ત્યાગ અનિવાર્ય છે, તેથી હિંસા થવી પણ અનિવાર્ય છે. એવી સ્થિતિમાં અહિંસાનું પાલન કરવું તે વંધ્યાપુત્રના પાલન કરવા સમાન અસંભવ છે.

સમાધાન—શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે કેઃ– 'अन्नत्थ सत्थपरिणएणं' અર્થાત્ શસ્ત્ર–પરિણત પૃથ્વીને ત્યજી બીજી પૃથ્વી સચિત્ત છે. જેના દ્વારા પ્રાણિગણનું હનન (નાશ) થાય તેને શસ્ત્ર કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે–જે જેના વિનાશનું કારણ છે તે તેના માટે શસ્ત્ર છે.

भेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयलक्षणम् । तत्र स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः पृथिव्येव यथा-कृष्णमृत्तिकायाः शुक्लमृत्तिकेत्यादि । परकायशस्त्रं जलाग्निगोमय-चरणशकटचक्रादि । उभयकायशस्त्रं जलादिमिश्रमृत्तिका । एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चारप्रस्रवणादिक्रियया मुनीनामहिंसाव्रतक्षतिः ।

(२) प्ररूपणाद्वारम्-

पृथिवीजीवा द्विविधाः सूक्ष्मबादरभेदात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः, न तु बदरामलकवदापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं बादरत्वं च ।

के लिए शस्त्र है । शस्त्र के दो भेद हैं-द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप द्रव्य-शस्त्र है । पृथ्वी का शस्त्र पृथ्वी-स्वकायशस्त्र है जैसे काली मिट्टी का शस्त्र सफेद मिट्टी है । परकायशस्त्र जैसे-जल, अग्नि, गोबर, चरण (पग), शकट (गाडी) का पैया आदि । जल आदि से मिली हुई मृत्तिका उभयकायशस्त्र है । इस प्रकार शस्त्र से परिणत पृथ्वी अचित्त हो जाती है, अत एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों के अहिंसाव्रत में कोई क्षति नहीं पहुँचती ।

(२) प्ररूपणा-द्वार-

पृथ्वी के सूक्ष्म और बादर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और बादरनामकर्म के उदय से बादर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और बादरता बेर और आवले की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

શસ્ત્રના બે ભેદ છે. દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્ર, સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્ર છે. પૃથ્વીનું શસ્ત્ર પૃથ્વી સ્વકાય-શસ્ત્ર છે, જેમ કાલી માટીનું શસ્ત્ર સફેદ માટી છે. પરકાય-શસ્ત્ર જેમકે જલ, અગ્નિ, છાણ, પગ, ગાડીનું ચાક આદિ. જલ-પાણી આદિથી મળેલી માટી ઉભયકાય-શસ્ત્ર છે. આ પ્રમાણે શસ્ત્રથી પરિણત પૃથ્વી અચિત્ત થઈ જાય છે. એટલા માટે તેના પર મળ-મૂત્રાદિ ત્યાગ કરવાવાળા મુનિ-ઓના અહિંસાવ્રતમાં કોઈ હાનિ પહોંચતી નથી.

(૨) પ્રરૂપણાદ્વાર—

પૃથ્વીકાયના જીવ સૂક્ષ્મ અને બાદરના ભેદથી બે પ્રકારના છે. સૂક્ષ્મનામકર્મના ઉદયથી સૂક્ષ્મ અને બાદરનામકર્મના ઉદયથી બાદર થાય છે. અહિં સૂક્ષ્મતા અને બાદરતા. બોર અને આંબળાની પ્રમાણે સાપેક્ષ સમજવી નહિ જોઈએ.

तत्र सूक्ष्माः द्विविधाः-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, ते कज्जलकूपिकावत् सर्वलोक-व्यापिनः ।

बादरा अपि द्विधा-पर्याप्तापर्याप्तभेदात् । तत्र बादराः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च लोकस्यैकदेशे पृथिव्यष्टकाधोऽधःपाताल-भवन-नकरप्रस्तरादौ सन्ति । ते विद्विधाः श्लक्ष्ण-खरभेदात् । तत्र श्लक्ष्णा बादरपृथिवी सप्तधाकृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-पण्डु-पनकभेदात् । खरबादरपृथिव्यास्तु चत्वारिंशद् (४०) भेदाः, तथाहि—

(१)शुद्धपृथिवी, (२)शर्करापृथिवी, (३)वालुकापृथिवी, (४)उपलः, (५)शिला, (६)लवणः,(७)ऊषः (८)अयः, (९)ताम्रः, (१०)त्रपुः, (११)सीसकम्, (१२)रूप्यम्, (१३)सुवर्णम्, (१४)वज्रः, (१५)हरितालः (१६)हिङ्गुलकः, (१७)मनःशिला,

---

सूक्ष्म जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । ये जीव काजल की कुप्पी के समान सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं ।

बादर भी पर्याप्त और अपर्याप्त—दो प्रकार के हैं । ये जीव लोक के एक देश में हैं । इन के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और खर । श्लक्ष्णबादरपृथ्वी के सात भेद हैं—कृष्ण नील लोहित (लाल) पीत शुक्ल पाण्डु और पनक खरबादर पृथ्वी के चालीस भेद हैं, वे इस प्रकार—

(१) शुद्ध-पृथिवी, (२) शर्करा-पृथिवी, (३) बालुका-पृथिवी, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊष-क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा, (११) सीसा, (१२) चांदी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगळ,

---

સૂક્ષ્મ જીવ પણ બે પ્રકારના છે. પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત-જીવ કાજળની કુપ્પીના સમાન સંપૂર્ણ લોકમાં ભરેલા છે.

બાદર પણ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત એમ બે પ્રકારના છે. એ જીવ લોકના એક દેશમાં છે. તેના બે ભેદ છે. શ્લક્ષ્ણ અને ખર, શ્લક્ષ્ણ બાદર પૃથ્વીના સાત ભેદ છે. કૃષ્ણ, નીલ, લોહિત (લાલ) પીત, શુકલ, પાંડુ અને પનક. ખર-બાદર પૃથ્વીના ચાલીસ ભેદ છે-તે આ પ્રમાણે છે:—

(૧) શુદ્ધ પૃથિવી; (૨) શર્કરા પૃથિવી, (૩) વાલુકા પૃથિવી, (૪) ઉપલ, (૫) શિલા, (૬) લવણ-નમક, (૭) ઉષ-ક્ષાર, (૮) લોહા, (૯) ત્રાંબા, (૧૦) રાંગા-કલાઈ, (૧૧) સીસા, (૧૨) ચાંદી, (૧૩) સોના, (૧૪) વજ્ર, (૧૫) હરતાલ, (૧૬) હીંગુલ,

(१८) शस्यकः-पारदः, स्वनामख्यातो रत्नविशेषश्च, (१९) अञ्जनं, (२०) प्रवालम्, (२१)अभ्रपटलम्, (२२)अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्णम्,) (२३)गोमेदकः, (२४)रुचकः, (२५)अङ्कः, (२३)स्फटिकः, (२७)लोहिताक्षः, (२८)मरकतः, (२९)मसारगल्लः, (३०)भुजमोचकः, (३१)इन्द्रनीलः, (३२)चन्दनम्।, (३३) गैरिकम्ः, (३४)हंसगर्भः, (३५)पुलकः, (३६)सौगन्धिकः, (३७)चन्द्रप्रभः, (३८)वैडूर्यम्ः, (३१)जलकान्तः, (४०)सूर्यकान्तः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः पृथिवीकायिकाः स्वाकरादौ सचित्ता भवन्ति।

गोमय-कचवर-सवितृतापादिसंपर्कात्तु गतचेतना अपि भवन्ति। बादरपृथिव्या यत्रैको जीवस्तत्राऽसंख्यातैर्नियमतो भाव्यम्।

एवमप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिष्वपि विज्ञेयम्। निगोदे तु यत्रैको

---

(१७) मैनसिल, (१८) शस्यक-पारा, अथवा रत्नविशेष, (१९) अंजन,(२०) प्रवाल, (२१) अभ्रपटल, (२२) अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्ण), (२३) गोमेद,(२४) रुचक,(२५) अंकरत्न,(२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८)मरकत, (२९) मसारगल्ल,(३०) भुजमोचक,(३१) इन्द्रनील, (३२) चंदन, (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६)सौगंधिक, (३७) चन्द्रप्रभ-चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य, (३९)जलकान्त, (४०) सूर्यकान्त। ये शुद्ध पृथिवी आदि चालीस जब अपने आकर (खान) में रहते हैं तो सचित्त होते हैं। गोबर कचरा सूरज की धूप आदि के संपर्क से अचेतन हो जाते हैं। जहां बादरपृथ्वीकाय का एक जीव होता है वहाँ असंख्यात जीव नियम से होते हैं।

इसी प्रकार अप्, तेज, वायु, और प्रत्येकवनस्पति में भी समझना चाहिए।

---

(૧૭) મનશીલ, (૧૮) પારો, (૧૯) સુરમો, (૨૪) રૂચક, (૨૫) અંક-રત્ન, (૨૬) સ્ફટિક, (૨૭) લોહિતાક્ષ, (૨૮) મરકત, (૨૯) મસારગલ્લ, (૩૦) ભુજમોચક, (૩૧) ઈન્દ્રનીલ, (૩૨) ચન્દન, (૩૩) ગેરૂ, (૩૪) હંસગર્ભ, (૩૬) પુલક, (૩૬) સૌગંધિક, (૩૬) ચન્દ્રપ્રભ-ચંદ્રકાન્ત, (૩૮) વૈડૂર્ય, (૩૯) જલકાન્ત, (૪૦) સૂર્યકાન્ત. આ શુદ્ધ પૃથ્વી આદિ ચાલીશ જ્યારે પોતાનાં આકર-ખાણમાં રહે છે તો સચિત્ત હોય છે. છાણ, કચરા, સૂરજનો તડકો વગેરેના સંપર્કથી તે અચેતન થઈ જાય છે. જ્યાં બાદર પૃથ્વીકાયનો એક જીવ હોય છે, ત્યાં અસંખ્યાત જીવ નિયમથી હોય છે.

એ પ્રકારે અપ્, તેજ, વાયુ અને પ્રત્યેકવનસ્પતિમાં પણ સમજવું જોઈએ.

निगोदजीवस्तत्र नियमतोऽनन्ताः ।

बादराणां सूक्ष्माणां च पृथिवीकायानामेते वक्ष्यमाणा भेदाः सन्ति, तत्रोभयोः पर्याप्तापर्याप्तभेदः प्रागुक्तः, अन्ये भेदा उच्यन्ते–शरीरत्रया–ऽङ्गुला-संख्येयभागशरीर–सेवार्त्तसंहनन–मसूरचन्द्रसंस्थान–कषायचतुष्क–सञ्ज्ञाचतुष्का–ऽऽद्यलेश्यात्रय–स्पर्शनेन्द्रिय–वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घाता–ऽसञ्ज्ञित्व – नपुंसक-वेद–पर्याप्तिचतुष्टय– मिथ्यादर्शना–ऽचक्षुदर्शना– ऽज्ञान–काययोग–साकारानाकारो–पयोगाऽऽहारादिप्रभृतयः । तत्र विशेषस्तु बादरपृथिवीकायानां लेश्या आद्याश्चतस्रः, शेषं सर्वं समानम् । असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये ।

निगोद में जहाँ एक जीव होता है वहाँ नियम से अनन्त जीव होते हैं ।

बादर और सूक्ष्म पृथिवीकायों के भेद इस प्रकार हैं–दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद पहले कहे जा चुके हैं । अब अन्य भेद कहते हैं–तीन शरीर, अंगुलका असंख्यातवां भाग शरीर, सेवार्त संहनन, मसूरचन्द्रसंस्थान, चार कषाय, चार संज्ञाएँ, प्रारंभ की तीन लेश्याएँ, स्पर्शनेन्द्रिय, वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्घात, असंज्ञीपन, नपुंसकवेद, चार पर्याप्तियाँ, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन तीन अज्ञान; काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि । इन में विशेषता इतनी ही है कि बादरपृथिवी-काय में पहले की चार लेश्याएँ होती हैं । शेष सब बोल समान हैं । दोनों ही असंख्यात–असंख्यात हैं ।

નિગોદમાં જ્યાં એક જીવ હોય છે ત્યાં નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે.

બાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના ભેદ આ પ્રમાણે છેઃ—બન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ ભેદ પ્રથમ કહેવામાં આવ્યા છે. હવે બીજા ભેદ કહે છે–ત્રણ શરીર, અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સંહનન, મસૂર–ચન્દ્ર સંસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સંજ્ઞાઓ, પ્રારંભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કષાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત, અસંજ્ઞીપણું, નપુંસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ. તેમાં વિશેષતા એટલી જ છે કેઃ–બાદર પૃથિવીકાયમાં પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે. બન્ને જ અસંખ્યાત–અસંખ્યાત છે.

(३) परिमाणद्वारम्--

बादरपर्याप्ताः पृथिवीकायजीवाः सर्वतः स्तोकाः। तदपेक्षया बादराऽपर्याप्ताः असंख्येयगुणाः। तदपेक्षया सूक्ष्माऽपर्याप्ता असंख्येयगुणाः। तदपेक्षया सूक्ष्मपर्याप्ता असंख्येयगुणाः। यदि जवारीधान्यकणप्रमाणपृथिव्यंशाश्रया जीवा एकैकं बहिर्निर्गत्य पृथक्-पृथक् कपोतमितं कायं कुर्युस्तर्हि तेषां लक्षयोजनप्रमाणजम्बूद्वीपे समावेशोऽपि न संभवति।

ननु जवारीधान्यकणमात्रे पृथिव्यंशे कथमियन्तो जीवास्तिष्ठन्ति ? इति चेत् उच्यते-यथा सहस्रौषधिसंमिश्रणनिष्पन्नसहस्रपाकतैलस्याल्पीयसि

---

(३) परिमाणद्वार-

पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय के जीव सब से थोडे हैं। उन की अपेक्षा बादर अपर्याप्त असंख्यात गुना अधिक है। उन से सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्येय गुना है। उन से सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात गुना है। अगर जवार नामक धान्य के कण के बराबर पृथ्वी के अंश में रहने वाले जीव एक-एक करके बाहर निकल जाएँ और वे सब अपना शरीर कबूतर के शरीर के बराबर बनालें तो एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप में उनका समावेश नहीं हो सकता।

शङ्का—जवार के एक दाने के बराबर पृथिवी के अंश में इतने अधिक जीव किस प्रकार रह सकते हैं ?

समाधान—जैसे हजार औषधों के सम्मिश्रण से बने हुए सहस्र-पाक तैल के

---

(३) પરિમાણદ્વાર-

પર્યાપ્ત બાદર પૃથ્વીકાયના જીવ સૌથી થોડા છે; તેની અપેક્ષા બાદર અપર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણુા અધિક છે. તેનાથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણુા છે, તેનાથી સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણુા છે. અગર જુવાર નામના ધાન્યના કણુની બરાબર પૃથ્વીમાં રહેવાવાળા જીવ એક-એક થઈને બહાર નિકળે અને તે સર્વ પોતાનું શરીર કબૂતર-પારેવાનાં શરીર બરાબર બનાવી લીએ તો એક લાખ યોજનના વિસ્તારવાળા જમ્બૂ દ્વીપમાં તેનો સમાવેશ થઈ શકે નહિ.

શંકા—જુવારના એક દાણુાની બરાબર પૃથિવીમાં એટલા અધિક જીવ કેવી રીતે રહી શકે છે?

સમાધાન—જેવી રીતે હજાર ઔષધોના સંમિશ્રણુથી બનેલા સહસ્ર-પાક તેલના

सूच्यग्रलग्नबिन्दुमात्रेऽपि सहस्रौषधिसमावेशस्तथैव पृथिवीकायजीवास्तावन्मात्रे पृथिव्यंशे तिष्ठन्तीति। यथा वा सहस्रौषधिसंमिश्रणे कृते चूर्णीकृत्य परिपिष्य खसखसकणप्रमाणगुटिका क्रियते, तत्र प्रत्येकगुटिकायां सहस्रौषधिसमावेशो दृश्यते, तद्वज्जवारीधान्यकणमात्रेऽल्पीयसि पृथिव्यंशे पृथिवीकायजीवास्तिष्ठन्तीति नैतच्चित्रम्।

यदि लोकाकाशस्य प्रत्येकप्रदेशे, एकैकः पृथिवीकायजीवः स्थाप्यते तदा असंख्याता लोका पूरिता भवेयुः। पृथिवीकायजीवानां परिमाणं तावदस्ति, यदि लोका असंख्याता भवेयुः, तेषामसंख्यातलोकानां यावन्तः प्रदेशाः भवेयुस्तावन्तः पृथिवीकायजीवाः सन्तीति बोध्यम्।

छोटे से, सूई को नोंक पर लगे हुए एक बूंद में भी हजार औषधों का समावेश हो जाता है, इसी प्रकार जवार के एक दाने के बराबर पृथ्वी के अंश में इतने जीव रहते हैं। अथवा जैसे एक हजार औषधों को मिला दिया जाय और उनका चूर्ण बना लिया जाय, खूब पीसा जाय और उससे खसखस के दाने के बराबर गोली बना ली जाय तो उस प्रत्येक गोली में हजार औषधियों का समावेश जान पडता है। इस प्रकार जवार बराबर पृथ्वी के अंश में अगर इतने जीव रहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?

अगर लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में, एक-एक जीव स्थापित किया जाय तो असंख्यात लोक भरजाएँ। पृथिवीकाय के जीवों का परिमाण इतना है कि-यदि लोक असंख्यात हों और उन असंख्यात लोकों के जितने प्रदेश हों, उतने ही पृथिवीकाय जीव हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

નાના એવા સોઈની અણી પર લાગેલા એક ટીપામાં પણ હજાર ઔષધોનો સમાવેશ થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે જુવારના એક દાણાની બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા જીવ રહે છે. અથવા જેવી રીતે-એક હજાર ઔષધોને મેળવવામાં આવે અને તેનું ચૂર્ણ બનાવી લેવાય, અને તેને ખૂબ વાટવામાં આવે અને તેમાંથી ખસ-ખસના દાણા બરાબર ગોળી બનાવવામાં આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમાં હજાર ઔષધીઓનો સમાવેશ થયેલો છે, એમ જાણી શકાય છે. એ પ્રમાણે જુવાર બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા જીવ રહે છે તો તેમાં આશ્ચર્યની વાત શું હોઈ શકે?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમાં, એક-એક જીવ સ્થાપિત કરવામાં આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય. પૃથિવીકાયના જીવોનું પરિણામ એટલું છે- જો લોક અસંખ્યાત હોય અને તે અસંખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ પૃથિવીકાય જીવ છે. એમ સમજી લેવું જોઈએ.

ये पृथिवीकायहिंसायां लज्जमानास्ते-अनगाराः, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते द्रव्यलिङ्गिनः, इति बोधयितुमाह-' लज्जमाणाः ' इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया संकोचमापद्यमानाः पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मबादरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु-' वयमगाराः साधवः स्मः ' इति साभिमानं प्रवदमानाः ' वयमेव पृथिवीकायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः ' इति व्यर्थं

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही अनगार हैं । जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यलिंगी हैं । यह बतलाने के लिए कहते हैं-' **लज्जमाणा** ' इत्यादि ।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, द्रवित हृदय वाले होने से, संकोच-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकाय का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं, त्रस्त होते हैं, और तीनकरण, तीनयोग से पृथिवीकाय के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई-कोई ' **हम साधु हैं** । ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए ' **हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं** ' । इस प्रकार वृथा प्रलाप

જે પુરૂષ પૃથિવીકાયની હિંસાથી વિરત-નિવૃત્ત થાય છે તેજ અણુગાર છે. મુનિ છે. જે હિંસામાં પ્રવૃત્ત છે તે દ્રવ્યલિંગી છે. તે બતાવવા માટે કહે છે—'**लज्जमाणा**' ઈત્યાદિ.

કોઈ-કોઈ પુરૂષ પૃથિવીકાયના આરંભમાં અત્યન્ત કરૂણાશીલ હોવાના કારણે દ્રવિત હૃદયવાળા હોવાથી સંકોચ-વૃત્તિ કરે છે. તેમાંથી કોઈ-કોઈ પ્રત્યક્ષજ્ઞાની અર્થાત્ અવધિજ્ઞાની, મનઃપર્યયજ્ઞાની અને કેવલજ્ઞાની અને કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની ભાવિ-તાત્મા અણુગાર છે. પૃથક્=પૃથગ્ભાવથી જુઓ, અર્થાત્ તે પુરૂષોને જુઓ કે જે સૂક્ષ્મ અને બાદર પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવામાં લજ્જા કરે છે-શરમાય છે-ત્રાસ પામે છે. અને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી પૃથ્વીકાયના આરંભના ત્યાગી છે.

અને કોઈ-કોઈ ' અમે સાધુ છીએ ' એવા અભિમાનની સાથે કહે છે કે-'અમે પણ પૃથ્વીકાયની રક્ષામાં તત્પર છીએ, અને મહાવ્રતધારી છીએ.' આ પ્રમાણે વૃથા-

प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

(४) वधद्वारं, (५) शस्त्रद्वारं च ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति--

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः शस्त्रैः=लोष्टपाषाणादिभिः स्वकायरूपैः, अग्न्यादिभिः=परकायरूपै हलकुद्दालखनित्रादिभिस्तदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्याः कर्मसमारम्भः-पृथिवीकर्मसमारम्भः पृथिवीमाश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारः, तेन इमं= पृथिवीकायं विहिंसन्ति । पृथिवीकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकाय-

---

करते हुए द्रव्यलिंगी हैं उन्हें पृथक् देखो ।

(४) वध और (५) शस्त्रद्वार

अपने आप को अनगार समझने वाले ये द्रव्यलिङ्गी साधु के गुणों में तनिकभी प्रवृत्त नहीं होते, और न गृहस्थों के किसी कार्य का त्याग करते हैं, यह बात बतलाते हैं-

ये द्रव्यलिङ्गी लोग विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पत्थर आदि स्वकाय-शस्त्रों से अग्नि आदि परकाय-शस्त्रों से, हल, कुदाल आदि खोदने के साधनरूप उभयकाय शस्त्रों से पृथिवीकर्मसमारम्भ करते हैं, अर्थात् पृथिवी के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मबन्ध का कारण सावद्य व्यापार करते हैं, और उस से पृथिवीकाय की हिंसा करते हैं । पृथिवीकाय की हिंसा में प्रवृत्त होने वाला पुरुष छहों जीवनिकायों

મિથ્યા પ્રલાપ કરનારા દ્રવ્યલિંગી છે. તેને જૂદા જૂદા ભાવથી જુઓ.

(૪) વધ અને (૫) શસ્ત્ર દ્વાર—

પોતેજ પોતાને અણુગાર-સાધુ સમજવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી, સાધુના ગુણોમાં જરા પણ પ્રવૃત્ત થતા નથી. અને ગૃહસ્થોના કોઈ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી. એ વાત બતાવે છેઃ—

એ દ્રવ્યલિંગી લોક જૂદા-જૂદા પ્રકારની માટી, પથ્થર આદિ સ્વકાય શસ્ત્રોથી અગ્નિ આદિ પરકાય શસ્ત્રોથી હળ, કોદાળી આદિ ખોદવાના સાધનરૂપ ઉભયકાય શસ્ત્રોથી પૃથ્વીકર્મસમારંભ કરે છે. અર્થાત્ પૃથ્વીના નિમિત્તથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મબંધના કારણ સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે, અને તેથી પૃથ્વીકાયની હિંસા કરે છે. પૃથ્વીકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થવાવાળા પુરૂષ છજીવનિકાયોની હિંસા કરે છે.

रूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'पुढवीसत्थं'-इत्यादि।

पृथिवीशस्त्रम्=पृथिव्युपमर्दकं शस्त्रम्, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रम्, तद् द्विविधं-द्रव्य-भाव-भेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकायपरकायतदुभयरूपम्। भावशस्त्रं=दुष्प्रयुक्तमनोवाक्कायलक्षणम्, समारभमाणाः=पृथिवीकायं प्रति व्यापारयन्तः, अन्यान् पृथिवीकायभिन्नान् अनेकरूपान् अप्कायादीन् स्थावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति।

(६) उपभोगद्वारम्-

जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा-'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः

की हिंसा करता है, यह बतलाने के लिए कहते हैं-'पुढवीसत्थं' इत्यादि।

पृथिवीशस्त्रका अर्थ है-पृथिवीकाय की हिंसा करनेवाला शस्त्र। जिस से हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है। शस्त्र दो प्रकार का है-(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र। स्वकाय, परकाय और उभय-स्वपर-कायरूपसे द्रव्यशस्त्र तीन प्रकार का है। मन वचन और कायका दुष्प्रयोग करना भावशस्त्र है।

पृथ्वीकाय का आरंभ करनेवाले, पृथिवीकाय से भिन्न अनेक अप्काय आदि स्थावर जीवों की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं।

(६) उपभोगद्वार-

संसार में बहुत से द्रव्यलिंगी हैं। जैसे-'हम पंचमहाव्रतधारी हैं, सब आरंभ

એ બતાવવા માટે કહે છે :—'पुढवीसत्थं' ઈત્યાદિ.

પૃથ્વીશસ્ત્રનો અર્થ છે-પૃથ્વીકાયની હિંસા કરવાવાળાં શસ્ત્રો જેનાથી હિંસા થઈ શકે તે શસ્ત્ર કહેવાય છે. શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે. (૧) દ્રવ્ય શસ્ત્ર અને (૨) ભાવ-શસ્ત્ર-સ્વકાય, પરકાય, અને ઉભય-સ્વ-પરકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્ર ત્રણ પ્રકારના છે. મન, વચન અને કાયના દુષ્પ્રયોગ કરવા તે ભવશાસ્ત્ર છે.

પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળા, પૃથ્વીકાયથી ભિન્ન અનેક અપ્કાય આદિ સ્થાવર જીવોની તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે.

(૬) ઉપભોગ-દ્વાર-

સંસારમાં ઘણાજ દ્રવ્યલિંગી સાધુ છે. જેવી રીતે "અમે પંચમહાવ્રતધારી

सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-शाक्यादयः सन्ति। तत्र केचिद्देहशुद्ध्यर्थं मृत्तिकास्नायिनो भवन्ति। केचित्स्वनिवासार्थं गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति। केचित् स्वोदर-पूर्त्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति। केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति. पार्थिवी-देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

"जिणभवणकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्ठाई। भियगाणइसंधाणं, सासयवुड्ढी य जयणा य ॥९॥....एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सड्ढस्स।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं'। इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य आदि हैं। इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं। कोई अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं। कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि करते हैं। कोई देवकुल आदि के लिए सावद्य उपदेश देते हैं-देव गुरु आदि की पार्थिव प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है, ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि-

"जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—"शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें, पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना" इत्यादि।....भगवान की आज्ञाके

છીએ. સર્વ આરંભ અને પરિગ્રહના ત્યાગી છીએ, ષટ્કાયના રક્ષક સાધુ છીએ.' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દંડી શાક્ય આદિ છે તેમાં કોઈ-કોઈ તો શરીરની શુદ્ધિ માટે માટીથી સ્નાન કરે છે. કોઈ પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવામાં કોદાળી, કોસ આદિ ખોદવાનાં સાધનો દ્વારા પૃથ્વીકાયનું ઉપમર્દન કરે છે, કોઈ-કોઈ પોતાનું પેટ ભરવાના ઉદ્દેશથી ખેતી કરે છે; કોઈ દેવકુળ આદિને માટે સાવદ્ય ઉપદેશ કરે છે-દેવ, ગુરૂ આદિની પાર્થિવ પ્રતિમા નિર્માણ કરાવવામાં અને જીર્ણોદ્ધાર કરા-વામાં ભવસાગરથી આત્મા તરી શકે છે, એવું માન છે અને કહે છે કેઃ—

"જિનમંદિર બનાવવાની વિધિ આ પ્રમાણે છેઃ-શુદ્ધ ભૂમિ, શુદ્ધ ઈંટો, પથ્થર, કાષ્ઠ આદિ જોઇએ. કામ કરવાવાળા કારીગરોને પ્રસન્ન રાખવા, પોતાનાં પરિણામ ઉત્તરોત્તર ચઢતાં રાખીને યતનાપૂર્વક કાર્ય કરવું." ઈત્યાદિ....ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક શ્રાવકને

चित्तं सुहाणुबंधं, निव्वाणं तं जिणिंदेहिं ॥ ४४ ॥ (पञ्चाशक टीका ७. वि.)

" जिणभवणाइं जे उद्धरंति भत्तीइ सडियपडियाइं ।
ते उद्धरंति अप्पं, भीमाओ भवसमुद्दाओ ॥ " (धर्मसंग्रहटीका २अधि.)

छाया—" जिनभवनकारणविधिः—शुध्धा भूमिर्दलं च काष्ठादि ।
भृतकानतिसन्धानं, स्वाशयवृद्धिश्च (शोभनाशयवृद्धिः) यतना च ॥
....एतस्य फलं भणितं, इत्याज्ञाकारिणस्तु श्राद्धस्य ।
चित्रं सुखानुबन्धं, निर्वाणान्तं जिनेन्द्रैः (भणितम्) ॥ ४४ ॥
जिनभवनानि ये उद्धरन्ति भक्त्या शटितपतितानि ।
ते उद्धरन्त्यात्मानं भीमाद् भवसमुद्रात् " इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसावद्यकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यलिङ्गिनोऽपि स्वात्मानं मुनिमेव मन्यन्ते । ये पथिवीशस्त्रं प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकाय-

---

आराधक श्रावक को भगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है—"उसको अनेकानेक सुखों का अनुबन्ध होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है "। (पञ्चाशकटीका ७ वि.)

" जो पुरुष जीर्ण जिनभवनों का भक्तिसे उद्धार कराते हैं वे भीम भवसागर से अपनी आत्मा को तारते हैं " । (धर्मसंग्रहटीका २ अधि.)

इसी प्रकार शास्त्रनिषिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि सावद्य कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिंगी भी अपनने आप को मुनि मानते हैं। आशय है कि—जो लोक पृथिवी-शस्त्र का प्रयोग करके षड्जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और भगवानका नाम लेकर स्वयं खोटी प्ररूपणा करते हैं अतः वे द्रव्य

ભગવાને તેનું ફલ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે—તેને અનેકાનેક સુખોનો અનુબંધ થાય છે; અને પરમ્પરાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે." (पंचाशकटीका ७ वि.)

" જે પુરૂષ જીર્ણ થયેલું જિનમંદિર, તેનો ભક્તિથી ઉદ્ધાર કરાવે છે તે મહાન ભવસાગરથી પોતાના આત્માને તારે છે. " (धर्मसंग्रहटीका २ अधि.)

આજ પ્રમાણે શાસ્ત્રનિષિદ્ધ પૂજા, પ્રતિષ્ઠા આદિ સાવદ્ય કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ કરીને દ્રવ્યલિંગી પણ પોતે પોતાને મુનિ માને છે. આશય એ છે કે—જે લોક પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને ષડ્જીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે અને ભગવાનનું નામ લઈને પોતે ખોટી પ્રરૂપણા કરે છે માટે તે દ્રવ્યલિંગી છે, સાચા

रूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति ते द्रव्यलिङ्गिनो नानगारा इति भावः, उक्तञ्च–

"सावज्जा किरिया जेसिं, सावज्जा देसणा तहा ।
भमंति दीहसंसारे, ते सव्वे दव्वलिंगिणो ॥ १ इति ॥ सू. २ ॥

एवं शाक्यादीनां पृथिवीकायोपमर्दकत्वेन द्रव्यलिङ्गित्वं प्रतिबोधितं भगवतेति जम्बूस्वामिनं सुधर्मा स्वामी कथयति–'तत्थे'–त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइआ, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं, से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं

लिंगी हैं–सच्चे अनगार नहीं हैं । कहा भी है–

"जिन की क्रिया सावद्य है और जिनका उपदेश सावद्य है, वे दीर्घ संसारमें परिभ्रमण करते हैं । उन सबको द्रव्यलिंगी जानना चाहिए" ॥ सू. २ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय का उपमर्दन करने वाले होने से शाक्य आदि को भगवान् ने द्रव्यलिंगी कहा है । यह बात सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं–'**तत्थ खलु**' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है । इसी जीवन के लिए-वन्दना, मान और पूजन के लिए, जन्म और मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख का नाश करने के लिए वह स्वयं ही पृथिवीकाय का आरंभ करता है, दूसरों से पृथिवीकायका आरम्भ कराता है, और पृथिवीकायका आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

અણગાર-સાધુ નથી. કહ્યું છે કેઃ—

"જેની ક્રિયા સાવદ્ય છે, અને જેનો ઉપદેશ સાવદ્ય છે, તે દીર્ઘ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે. તે સર્વને દ્રવ્યલિંગી જાણવા જોઈએ." (સૂ૦ ૨)

એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયનું ઉપમર્દન–નાશ કરવાવાળા હોવાથી શાક્ય આદિને ભગવાને દ્રવ્યલિંગી કહ્યા છે. આ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–'तत्थ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે, આ જીવનને માટે, વંદના, માન અને પૂજન માટે, જન્મ અને મરણથી મુક્ત હોવાના માટે, દુઃખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે જ પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે છે, બીજાથી પૃથિવીકાયનો આરંભ કરાવે છે, અને પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરનાર બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરંભ તેના

समारंभंते समणुजाणइ । तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय, जाति-मरण-मोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति । तत् तस्य अहिताय, तत् तस्य अबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=पृथिवीकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः । परिज्ञा द्विविधा, ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् । 'सावद्यव्यापार एव कर्मबन्धस्य कारण'-मिति ज्ञानं-ज्ञपरिज्ञा, तद्व्यापारपरित्यागः -प्रत्याख्यानपरिज्ञा ।

वह आरंभ उसके अहित के लिए और उसको अबोधि के लिए है ॥ सू. ३ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने सम्यग्बोधरूप परिज्ञा का सदुपदेश दिया है। तात्पर्य यह है कि—कर्मबन्ध को नष्ट करने के लिए जीव को वह परिज्ञा अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिए, ऐसा भगवान्ने कहा है। परिज्ञा दो प्रकार की है—ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा। 'सावद्य व्यापार से ही कर्मबन्ध का कारण होता है' ऐसा जानना ज्ञ-परिज्ञा है, और सावद्यव्यापार का त्याग करना प्रत्याख्यान-परिज्ञा है।

अहित माटे अने ते तेनी अबोधि माटे छे. (३)

टीकार्थ—पृथ्वीकायना समारंभना विषयमां भगवान श्री महावीर स्वामीए सम्यग्बोधरूप परिज्ञानो सदुपदेश आप्यो छे. तात्पर्य ए छे के:-कर्मबंधने नाश करवा माटे जीवे ते परिज्ञा अवश्यज स्वीकार करवी जोईए, ए प्रमाणे भगवाने कह्युं छे. परिज्ञा बे प्रकारनी छे. ज्ञपरिज्ञा, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञा, 'सावद्य व्यापारज कर्मबंधनुं कारण थाय छे.' ए प्रमाणे जाणवुं ते ज्ञ-परिज्ञा छे, अने सावद्य व्यापारनो त्याग करवो ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे.

जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?–त्याह–'इमस्स चेवे'–त्यादि। अस्यैव विद्युल्लताविलासवत्क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवन-स्वार्थे चिरसुखार्थे, प्रासादसदनादिरचनार्थं, गमना–गमना–वस्थानो–पवेशन–पार्श्व-परिवर्त्तन–पुत्तलिकाप्रतिमादिकरणो–च्चारप्रस्रवणादिकरणो–पकरणादिग्रहणनिक्षेपणा–ऽऽलेपन–प्रहरण–भूषण–क्रय–विक्रय–कृषिकरण–भाण्डादिनिर्माणाद्यर्थमित्यर्थः। तथा परिवन्दन–मानन–पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं यथा *आश्चर्यगृहादि-

---

जीव किस प्रयोजनके लिये पृथिवीकाय के विषय में सावद्य व्यापार करता है ? सो बतलाते हैं—

विजली की चमक के समान इस क्षणविनश्वर जीवन के चिरकालीन सुख के उद्देश से महल, मकान आदि का निर्माण कराने के लिए, अथवा गमन, आगमन, अवस्थान (स्थित रहना), उपवेशन (बैठना), पार्श्व-परिवर्तन (पसवाडा बदलना), पुतली बनाना, प्रतिमा बनाना, मल-मूत्र त्यागना, उपकरण आदि ग्रहण करना, रखना, लेपकरना, ग्रहण करना, सजाना, खरीदना, बेचना, खेती करना, तथा वर्तन आदि बनाना, इत्यादि कार्यों के लिए सावद्य व्यापार किया जाता है।

इस के अतिरिक्त परिवन्दन मानन और पूजन के लिए भी सावद्य व्यापार किया जाता है। परिबन्दन अर्थात् प्रशंसा के लिए, जैसे आश्चर्यगृह (आजायव घर)

જીવ કયા પ્રયોજન માટે પૃથ્વીકાયના વિષયમાં સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે ? તે બતાવે છે:—

વિજલીના ચમકારાની સમાન આ ક્ષણભંગુર જીવનના ચિરકાલીન (લાંબા સમય સુધી) સુખના ઉદ્દેશથી, મહેલ મકાન આદિ બનાવવાને માટે, અથવા ગમન, આગમન, અવસ્થાન, (સ્થિત રહેવું) ઉપવેશન, (બેસવું) પાર્શ્વ–પરિવર્ત્તન, (પડખાં–બદલવાં) પુતલી બનાવવી, પ્રતિમા બનાવવી, મલ–મૂત્ર ત્યાગ કરવો; ઉપકરણ આદિનું ગ્રહણ કરવું, રાખવું, લેપ કરવો, પ્રહરણ કરવું, સજાવવું, ખરીદવું, વેચવું, ખેતી કરવી તથા વાસણ બનાવવાં, ઇત્યાદિ કાર્યોને માટે સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામાં આવે છે.

તે સિવાય પરિવંદન માન અને પૂજન માટે પણ સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામાં આવે છે. પરિવન્દન અર્થાત્ પ્રશંસા માટે જેમ આશ્ચર્યગૃહ–(અજાયબ ઘર) આદિ બનાવવામાં

---

* आश्चर्यगृहम्–'म्युझियम' 'अजायबघर' इति भाषाप्रसिद्धम्।

करणे, माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे पूजनं=वस्त्ररत्नादि-पुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-शिल्पिनां राजदेवप्रतिमादिरचने । जातिमरणमोचनाय-जातिः=जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखप्राप्त्यर्थं देवकुलादिकरणे, मरणं=मरणं येषां जातं तदर्थं मृतपित्रादिस्मरणार्थमित्यर्थः, यथा स्तूपचैत्यादि-करणे, मोचनं=मुक्तिस्तदर्थं, यथा-देवभवनप्रतिमादिकरणे । यद्वा जातिमरण-मोचनाय=जन्ममरणविमुक्तये । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखविध्वंसार्थं, यथा-

आदि बनवानेसे प्रशंसा होती है। मानन अर्थात् जनताद्वारा मिलने वाला सत्कार। उस सत्कार के लिए कीर्तिस्तम्भ (मेमोरियल) आदि बनवाकर समारम्भ करते हैं। पूजन का अर्थ है-वस्त्र या रत्न आदि का पुरस्कार पाना। जैसे शिल्पी लोग पुरस्कार पाने के उद्देश्य से राजा या देवता की प्रतिमा बनाते हैं।

जन्म, मरण और मुक्ति के लिए भी पृथिवीकायका समारम्भ किया जाता है। जन्म के लिए जैसे भवान्तर में सुख पाने के लिए देवकुल आदि का निर्माण कराने में और मृत्यु के लिए जैसे मृत पिता आदि का स्मारक (स्तूप-चैत्य) बनवाने में, और मोचन के अर्थात् मुक्ति के लिए देवभवन एवं उनकी प्रतिमा बनवाने में, अथवा जन्म-मरण-मोचन का अर्थ है-जन्म और मरणसे मुक्त होना, उस के लिए पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं।

तथा दुःखका नाश करने के लिए भी पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, जैसे

આરંભ કરે છે. માનન અર્થાત્ જનતા દ્વારા મળવાવાળો સત્કાર, તે સત્કાર માટે-કીર્તિસ્તંભ (મેમોરિયલ) આદિ બનાવીને સમારંભ કરે છે. પૂજનનો અર્થ છે-વસ્ત્ર અથવા રત્ન આદિનો પુરસ્કાર પ્રાપ્ત કરવો. તે માટે શિલ્પીલોગ રાજાની કે દેવતાની પ્રતિમા બનાવવામાં સમારંભ કરે છે.

જન્મ મરણ મોચન (મૂકાવવા) માટે પણ પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરવામાં આવે છે. જન્મના માટે જેમ ભવાન્તરમાં સુખ પ્રાપ્ત કરવા માટે દેવકુલ આદિના નિર્માણ કરાવવામાં, અને મૃત્યુ માટે જેમ મૃત પિતા આદિનું સ્મારક સ્તૂપ-ચૈત્ય બનાવવામાં, મોચન અર્થાત્ મુક્તિને માટે દેવભવન એવં તેની પ્રતિમા બનાવવામાં, અથવા જન્મ-મરણ-મોચનનો અર્થ છે-જન્મ અને મરણથી મુક્ત થવું,તે માટે પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરેછે.

તથા દુઃખનો નાશ કરવા માટે પણ પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરે છે, જેમ-ગ્રીષ્મના

ग्रीष्मतापादिनिवारणार्थं, स्वचक्रपरचक्रभयनिवृत्त्यर्थं च भूमिगृहप्राकारादिरचने ।

सः=जीवनपरिवन्दनमाननपूजनाद्यर्थं जनः स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते=पृथिव्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं व्यापारयति । अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् समनुजानाति= अनुमोदयति ।

एममतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्कायैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भ-भेदा अवगन्तव्याः ।

(७) वेदनाद्वारम्—

पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः किं फलं प्राप्नोतीत्याह-'तं से अहियाए' इत्यादि ।

ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए, अथवा स्वचक्र और परचक्र के भयकी निवृत्ति, के लिए, भोंहरा या चहारदीवारी (प्रकोटा) बनवाना । इस प्रकार जीवन परिवन्दन मानन और पूजन आदि के लिए मनुष्य स्वयं ही पृथ्वीशस्त्रका समारम्भ करता है अर्थात् पृथिवी का घात करने वाले द्रव्य और भावशस्त्र का व्यापार करता है और पृथिवीशस्त्र का प्रयोग करने करानेवाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

इस प्रकार अतीत और अनागत से तथा मन, वचन और कायसे पृथिवीशस्त्र के आरम्भ के भेद समझलेने चाहिए.

(७) वेदनाद्वार-

पृथिवीशस्त्र का आरम्भ करनेवाला क्या फल पाता है? सो कहते हैं-' तं से अहियाए ' इत्यादि ।

તાપથી બચવા માટે અથવા સ્વચક્ર અને પરચક્રના ભયની નિવૃત્તિ માટે ભોંયરા અથવા કોટ બનાવવા.

આ પ્રમાણે જીવન, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન આદિ માટે મનુષ્ય પોતેજ પૃથ્વી-શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે. અર્થાત્ પૃથ્વીનો ઘાત કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રના વ્યાપાર કરે છે. તથા બીજા પાસે પૃથ્વીશસ્ત્રનો વ્યાપાર કરાવે છે. અને પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે.

આ પ્રમાણે અતીત અને અનાગત (ભૂત-ભવિષ્ય)થી તથા મન, વચન અને કાયાથી પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભના ભેદોને સમજી લેવા જોઈએ.

(૭) વેદનાદ્વાર—

પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા શું ફળ પામે છે? તે કહે છે-'तं से अहियाए' ઈત્યાદિ.

तत्-पृथिवीकायसमारम्भणं तस्य=पृथिवीशस्त्र समारभमाणस्य अहि-ताय=अकल्याणाय भवतीति शेषः। तत्-तदेव च पृथिवीकायसमारम्भणमेव च तस्य पृथिवीशस्त्र समारभमाणस्य अबोधये=सम्यक्त्वालाभाय, जिनधर्मप्राप्त्यभावाय च भवति। पृथिवीकायसमारम्भणं हि कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधं, तस्यातीतवर्तमानानागतभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये नवधा भवति, नवविधस्यापि पृथिवीकायसमारम्भणस्य मनोवाक्काययोगभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सप्तविंशति-भङ्गा भवन्ति। एवंविधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः खलु षट्कायारम्भसंपातजन्य-घोरतरदुरितार्जनेन दुरन्तसंसारदावानलज्वालान्तःपातं प्राप्यानन्तनरकनिगोदादि-दुःखमनुभवन् न कदाचित्कल्याणं शाश्वतसुखप्रदं मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ॥३॥

वह पृथिवीकाय का आरंभ, आरंभ करने वाले के अहित के लिए और अबोधि के लिए होता है। अर्थात् आरंभ करने से सम्यक्त्व और जिनधर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

पृथिवीकाय का आरंभ-करना, कराना, और अनुमोदन के भेद से तीन प्रकार का है। इन तीनों भेदों के अतीत वर्तमान और अनागत के भेद से तीन-तीन भेद करने पर आरम्भ नौ प्रकार होता है। इन नौ भेदों का मन, वचन, और काय से गुणाकार कर देने पर सत्ताईस भेद हो जाते हैं।

इस प्रकार के पृथिवीकाय के समारम्भ में प्रवृत्त पुरुष छहों कायों का आरम्भ करता है और अत्यन्त घोर पाप उपार्जन करके दुरन्त संसाररूपी दावानलकी ज्वालाओं में पडकर नरक निगोद आदि के दुःख भोगता हुआ न कभी कल्याण की प्राप्ति करता है और न शाश्वत सुख देनेवाले मोक्षमार्ग को पाता है ॥ ३ ॥

તે પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળાના અહિત માટે અને અબોધિને માટે હોય છે. અર્થાત્-આરંભ કરવાથી સમ્યક્ત્વ અને જિનધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી.

પૃથ્વીકાયનો આરંભ-કરવો, કરાવવો અને કરવાવાળાને અનુમોદન આપવો વગેરેના ભેદથી ત્રણ પ્રકારનો છે, એ ત્રણેય ભેદોના ભૂતકાળ, ભવિષ્યકાળ અને વર્ત્ત-માનકાળના ભેદથી ત્રણ ત્રણ ભેદ કરવાથી આરંભ નવ પ્રકારનો છે. એ નવ ભેદોને મન, વચન અને કાયા, આ ત્રણથી ગુણવા વડે કરી સત્તાવીશ ભેદ થઈ જાય છે.

આ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયના સમારંભમાં પ્રવૃત્ત પુરૂષ છ કાયોનો આરંભ કરે છે, અને અત્યન્ત ઘોર પાપ ઉપાર્જન કરીને દુરન્તસંસારરૂપી દાવાનલની જવાલાઓમાં પડીને, નરક-નિગોદ આદિનાં દુઃખ ભોગવતાં કોઈ વખત પણ કલ્યાણની પ્રાપ્તિ કરી શકતા નથી, અને શાશ્વત સુખ દેવાવાળા મોક્ષમાર્ગને પણ પ્રાપ્ત થતા નથી. (૩)

(८) निवृत्तिद्वारम्

येन तु तीर्थंकरादीनां समीपे पृथिवीकायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह–'से तं संबुज्झमाणे' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं अंतिए । इहमेगे सिणायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं, गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. ४ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणामन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः पथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्रणान् विहिंसति ॥ सू. ४ ॥

(८) निवृत्तिद्वार–

जिसने तीर्थंकर आदिके समीप में पृथिवीकाय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर भगवान् के अथवा अनगारों के निकट उपदेश सुनकर समझता है और उपादेय (चारित्र) को अङ्गीकार करके विचरता है उसे ज्ञात हो जाता है कि पृथिवीकायका यह आरंभ ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । इस में आसक्त पृथ्वीशस्त्र का आरंभ, करने वाला लोक तरह–तरह के शास्त्रों से पृथ्वीकायका आरंभ करके अन्य अनेक प्रकार के प्राणीकी हिंसा करता है ॥ सू. ४ ॥

(૮) નિવૃત્તિદ્વાર

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમાં પૃથ્વીકાયના જીવોનું સ્વરૂપ જાણી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે જાણે છે–'से तं.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ–જે પુરૂષ તીર્થંકર ભગવાનની અથવા અણગારોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળીને સમજે છે, અને ઉપાદેય (ચારિત્ર)ને અંગીકાર કરીને વિચરે છે; તેને માલૂમ પડે છે કેઃ–પૃથ્વીકાયનો આરંભ એ ગ્રંથ છે, એ મોહ છે, એ માર છે, એ નરક છે, એમાં આસક્ત પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા જાત–જાતના શસ્ત્રથી પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરીને અન્ય અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (૪)

॥ टीका ॥

यः खलु भगवतः=तीर्थंकरस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्, उपादेयं सर्वसावद्ययोग-परित्यागरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भणम् संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवतीति।

स हि एवं विचारयति-इह मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजात-सम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवती?-त्याकाङ्क्षायामाह—'एस खलु गंथे'. इत्यादि।

एषः पृथिवीशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः। कारणे कार्योपचारात् पृथिवीशस्त्रसमारम्भस्य

टीकार्थ—जो भगवान् तीर्थंकर के या उनके निर्गन्थ श्रमणों के समीप उपदेश सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को अङ्गीकार करके विचरता है वह पृथ्वीकायके समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है।

वह इस प्रकार विचार करता है-इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही ज्ञात होता है। उन्हें क्या ज्ञात होता है? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं-'**एस खलु गंथे.**' इत्यादि।

यह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही ग्रंथ है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोंका बंध है। कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यहाँ ग्रन्थ कहा है।

ટીકાર્થ—જે ભગવાન તીર્થંકરની અથવા તેના નિર્ગ્રંન્થ શ્રમણોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળી ઉપાદેયને અર્થાત્ સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ ચારિત્રને અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તે પૃથ્વીકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિજનક સમજે છે.

તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે કેઃ-આ મનુષ્ય લોકમાં શ્રમણ નિર્ગ્રંન્થોના ઉપદેશથી જેને સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય થઈ ગયો છે તે આત્માર્થી પુરૂષોને જ જાણવામાં હોય છે.

તે શું જાણવામાં હોય છે? એવી શંકા થતાં કહે છે-'एस खलु गंथे.' ઈત્યાદિ આ પૃથ્વીકાયનો સમારંભ નિશ્ચયજ ગ્રંથ છે. અર્થાત્ આઠ પ્રકારના કર્મોનો બંધ છે. કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને પૃથ્વીકાયના સમારંભને અહિં ગ્રંથ કહ્યો છે. આશય એ છે કે—

ग्रन्थरूपत्वम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा–एष एव पृथिवीसमारम्भः मोहः=विपर्यासः, विपरीतज्ञानरूपः । तथा–एष एव मारः=मरणम् निगोदादिमरणरूपः । तथा–एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध–मोह –मरण–नरकरूपं घोरं दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृद्धः=विषयभोगासक्तः लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थं =एतदर्थमेव–कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते ।

यद्यपि–विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमानन-पूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति

आशय यह है कि आरंभ–ग्रन्थ (बंध) का कारण होने से ग्रन्थ कहा गया है । इसी प्रकार का उपचार आगे के कथन में भी समझ लेना चाहिए ।

यह पृथिवीकायसमारंभ मोह अर्थात् विपर्यास है–विपरीत ज्ञानरूप है, तथा यही आरम्भ, निगोद आदि मरणरूप है । तथा यही आरंभ नरक है अर्थात् नारकी जीवों के लिए दश प्रकार की क्षेत्र वेदनाओं का स्थान है । इस समारंभ के कारण कर्मबंध, मोह, मरण एवं नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्तकर के भी अज्ञानी लोग बार–बार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा संसारी जीव विषयभोगों में आसक्त होता है अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के लिए ही अज्ञानी जीव प्रवृत्ति करते हैं ।

विषयभोगों में आसक्त जीव यद्यपि शरीर आदि को पुष्ट करने के लिए परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दु.ख का

આરંભ–ગ્રંથ (બંધ)નું કારણ હોવાથી ગ્રન્થ કહ્યો છે, આ પ્રમાણેનો ઉપચાર આગળના કથનમાં પણ સમજી લેવો જોઇએ.

આ પૃથ્વીકાય–સમારંભ મોહ અર્થાત્ વિપર્યાસ છે, વિપરીતજ્ઞાનરૂપ છે, તથા એ આરંભ નિગોદ આદિ મરણરૂપ છે. તથા એ આરંભ નરક છે અર્થાત્ નારકીના જીવો માટે દસ પ્રકારની ક્ષેત્ર વેદનાઓનું સ્થાન છે. આ સમારંભના કારણે કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક વારંવાર તેની ઇચ્છા કરે છે. અથવા સંસારી જીવ વિષયભોગોમાં આસક્ત થાય છે, અર્થાત્ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકના માટેજ અજ્ઞાની જીવ તેમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે.

વિષયભોગોમાં આસક્ત જીવ હજી પણ શરીર આદિને પુષ્ટ કરવા માટે પરિવંદન, માનન, અને પૂજનને માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે દુઃખનો નાશ કરવા માટે,

तथापि तत्फलं कर्मबन्धमोहमरणनरकरूपमेव लभन्ते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः। इत्यर्थमिति प्रयोगस्तु यथा-अयं संसारी लोको जायते मरणायैव, म्रियते च जननायैव, इति, तद्वत्।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव प्रवर्त्तते वा, इति प्रतिज्ञायां हेतुमाह-'जमिणं'. इत्यादि।

यद्=यस्मात्=विरूपरूपैः = नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकायपरकायतदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्युपमर्दकसावद्यव्यापारकरणेन, यद्वा-पृथिवीकायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादकसावद्यव्यापारेण, इमं = पृथिवीकायं विहिनस्ति,

---

विनाश करने के लिए, पृथिवीशस्त्र का आरंभ करता है तथापि इस आरंभ का फल उसे कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के रूप में ही मिलता है। अत एव आशय यह है कि-कोई किसी भी अभिलाषा से पृथिवीकायका आरंभ करे मगर फल तो वही कर्म-बंध आदि ही होगा। (इच्चत्थं) इस का प्रयोग यह बतलाने के लिए किया गया है-यह संसारी जीव उत्पन्न होता है मरने के लिए और मरता है जनमने के लिए, इसी प्रकार यह प्रयोग है।

लोक बारम्बार कर्मबंध आदि के लिए ही अभिलाषी है, अथवा-कर्मबंध के लिए ही प्रवृत्ति करता है। इस प्रतिज्ञा में हेतु कहते हैं-'जमिणं.' इत्यादि।

जिस कारण से गृद्ध (आसक्त) लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से-स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से-पृथिवीकाय का समारंभ करके अर्थात् पृथिवीकाय की हिंसा करने वाला सावद्य व्यापार करके, अथवा पृथिवीकाय के निमित्त से आठों कर्म-जनक सावद्य

પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે તો પણ તે આરંભનું ફળ તેને કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકના રૂપમાંજ મળે છે. એ માટે આશય એ છે કે-કોઈ કાંઈ પણ અભિલાષાથી પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે પરન્તુ ફળ તો તે કર્મબંધ આદિજ થશે.

'इच्चत्थं' એનો પ્રયોગ એ બતાવવા માટે, કર્યો છે કે આ સંસારી જીવ ઉત્પન્ન થાય છે મરવાને માટે, અને મરે છે તે જન્મ લેવા માટે, આ પ્રમાણે એ પ્રયોગ છે.

લોક વારંવાર કર્મબંધ આદિ માટેજ અભિલાષી છે. અથવા કર્મબંધ માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે. આ પ્રતિજ્ઞામાં હેતુ કહે છે-'जमिणं'. ઇત્યાદિ.

જે કારણથી ગૃદ્ધ-આસકત લોકો નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી-સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોથી-પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરીને અર્થાત્ પૃથ્વીકાયની હિંસા કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને અથવા પૃથ્વીકાયના નિમિત્તથી આઠ કર્મોને ઉત્પન્ન કરનાર સાવદ્ય વ્યાપારથી

छिनत्ति, भिनत्ति, प्राणरहितं करोति गृद्धो लोक इत्यादि । तथा पृथिवीशस्त्र=पृथिव्युपमर्दकं शस्त्र स्वकायपरकायतदुभयरूपं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=अप्कायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो विहिनस्ति । पृथिवीकायहिंसया षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुनः कर्मबन्धादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्त्तते न पुनर्मोक्षायेति भावः ॥ सू. ४ ॥

ननु पृथिवीकायजीवानां श्रोत्रनेत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि न सन्ति, नापि मनस्तेषां, कथं तर्हि दुःखवेदना संभवति ? ततश्च पृथिवीकायसमारम्भिणां

व्यापार से इस पृथिवीकाय का हनन करता है, छेदन करता है, भेदन करता है, उसे प्राणहीन बनाता है। तथा पृथिवीकाय के स्वकाय, परकाय, और उभयकायरूप शस्त्रों का उपयोग करता हुआ अप्काय आदि अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है।

तात्पर्य यह है कि–पृथिवीकाय की हिंसा के द्वारा समस्त षड्जीवनिकायरूप लोक की हिंसा करता है। इस प्रकार अत्यन्त घोर पाप करता हुआ बारबार कर्मबंध करता है और यहाँ तक कि नरक को प्राप्त करके भी नरक के लिए ही प्रवृत्ति करता है, मोक्ष के लिए नहीं ॥ सू. ४ ॥

पृथिवीकाय के जीवों में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना–इन्द्रिय और मन नहीं है, फिर उन्हें दुःख का अनुभव कैसे हो सकता है ? और ऐसी अवस्था में पृथिवीकाय का आरंभ करनेवालों को कर्मबंध क्यों होता है ? इस शंका का समाधान

આ પૃથ્વીકાયનો ઘાત કરે છે. છેદન કરે છે. ભેદન કરે છે, તેને પ્રાણહીન બનાવે છે. તથા પૃથ્વીકાયના સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ શસ્ત્રોનો ઉપયોગ કરતા થકા અપ્કાય આદિ અનેક ત્રસ–સ્થાવર પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે.

તાત્પર્ય એ છે કે–પૃથ્વીકાયની હિંસા દ્વારા સમસ્ત ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકની હિંસા કરે છે. આ પ્રમાણે અત્યન્ત ઘોર પાપ કરીને વારંવાર કર્મબંધ કરે છે. અને ત્યાં સુધી કે નરકને પ્રાપ્ત કરીને પણ નરક માટે જ પ્રવૃત્તિ કરે છે, મોક્ષ માટે કરતા નથી. (૪)

પૃથ્વીકાયના જીવોમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય, ચક્ષુરિન્દ્રિય, ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસના–ઇન્દ્રિય અને મન નથી, તો પછી તેને દુઃખનો અનુભવ કેવી રીતે થઈ શકશે ? અને એવી અવસ્થામાં પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળાને કર્મબંધ કેમ થઇ શકશે ? આ શંકાનું

कथं कर्मबन्धः ? इति जिज्ञासायामाह—' से बेमि. ' इत्यादि ।

(मूलम)

से बेमि—अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे, अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे. अप्पेगे गुंफमब्भे२, अप्पेगे जंघमब्भे२, अप्पेगे जाणुमब्भे२, अप्पेगे उरुमब्भे२, अप्पेगे कडिमब्भे२, अप्पेगे णाभिमब्भे२, अप्पेगे उयरमब्भे२, अप्पेगे पासमब्भे२, अप्पेगे पिट्ठिमब्भे२, अप्पेगे उरमब्भे२, अप्पेगे हिययमब्भे२, अप्पेगे थणमब्भे२, अप्पेगे खंधमब्भे२, अप्पेगे बाहुमब्भे२, अप्पेगे हत्थमब्भे२, अप्पेगे अंगुलिमब्भे२, अप्पेगे णहमब्भे२, अप्पेगे गीवामब्भे२, अप्पेगे हणुयमब्भे२, अप्पेगे होट्ठमब्भे२, अप्पेगे दंतमब्भे२, अप्पेगे जीहमब्भे२, अप्पेगे तालुमब्भे२, अप्पेगे गलमब्भे२, अप्पेगे, गंडमब्भे२, अप्पेगे कन्नमब्भे२, अप्पेगे णासमब्भे२, अप्पेगे अच्छिमब्भे२, अप्पेगे भमुहमब्भे२, अप्पेगे णिडालमब्भे२, अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे संपमारए अप्पेगे उद्दवए ॥ सू. ५ ॥

(छाया)

अथ ब्रीवीमि-अप्येकः अन्धमाभिन्द्यात् अप्येकः अन्धमाच्छिन्द्यात् । अप्येकः पादमाभिन्द्यात्, अप्येकः पादमाच्छिन्द्यात् । अप्येकः गुल्फमाभिन्द्यात्२, अप्येकः जङ्घामाभिन्द्यात्२, अप्येकः जानु आभिन्द्यात्२, अप्येकः उरु आभिन्द्यात्२, अप्येकः कटिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः नाभिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः उदरमाभिन्द्यात्२, अप्येकः पार्श्वमाभिन्द्यात्२, अप्येकः पृष्टिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः उर आभिन्द्यात्२, अप्येकः

करने के लिए सूत्र कहते हैं:–'**से बेमि.**' इत्यादि ।

मूलार्थ—मैं कहता हूँ-कोई अन्धे को भेदे, कोई अंधे को छेदे, कोई पैर को भेदे कोई पैर को छेदे, कोई गुल्फ को भेदे छेदे, कोई पिण्डी को भेदे छेदे, कोई घुटने को भेदे, छेदे, कोई जांघ को भेदे छेदे, कोई कमर को भेदे छेदे, कोई नाभि को भेदे छेदे, कोई पेट को भेदे छेदे, कोई, पसवाडे को भेदे छेदे, कोई पीठ को भेदे छेदे, कोई छाती

સમાધાન કરવા માટે સૂત્ર કહે છે:–' से बेमि. ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હું કહું છું કોઈ આંધળાને ભેદન કરે, કોઇ આંધળાને છેદન કરે, કોઈ પગને કાપે, કોઈ પગને છેદે કોઈ ગુલ્ફ-(ઘુંટી)ને ભેદે, છેદે, કોઈ પીંડીને ભેદે, છેદે, કોઈ ઘુંટણને ભેદે છેદે,કોઈ જાંઘને ભેદે છેદે,કોઈ કમરને ભેદે છેદે કોઈ નાભિ(ડુંટી)ને ભેદે છેદે;કોઈ પેટને ભેદે છેદે, કોઈ પાંસળીઓને ભેદે-છેદે કોઈ પીઠને ભેદે-છેદે, કોઈ-છાતીને ભેદે-છેદે કોઈ

हृदयमाभिन्द्यात्२, अप्येकः स्तनमाभिन्द्यात्२, अप्येकः स्कन्धमाभिन्द्यात्२, अप्येकः बाहुमाभिन्द्यात्२, अप्येकः हस्तमाभिन्द्यात्२, अप्येकः अङ्गुलिमाभिन्द्यात्२, अप्येकः नखमाभिन्द्यात्२, अप्येकः ग्रीवामाभिन्द्यात्२, अप्येकः हनु आभिन्द्यात्२, अप्येकः ओष्ठमाभिन्द्यात्२, अप्येकः दन्तमाभिन्द्यात्२, अप्येकः जिह्वामाभिन्द्यात्२, अप्येकः तालु आभिन्द्यात्२, अप्येकः गलमाभिन्द्यात्२, अप्येकः गण्डमाभिन्द्यात्२, अप्येकः कर्णमाभिन्द्यात्२; अप्येकः नासामाभिन्द्यात्२, अप्येकः अक्षि आभिन्द्यात्२, अप्येकः भ्रुवमाभिन्द्यात्२, अप्येकः ललाटमाभिन्द्यात्२, अप्येकः शीर्षमाभिन्द्यात्२, अप्येकः संप्रमारयेत्, अप्येकः उपद्रावयेत् ॥ सू. ५ ॥

को भेदे छेदे, कोई हृदय को भेदे छेदे, कोई स्तन को भेदे छेदे, कोई कन्धे को भेदे छेदे, कोई बाहु को भेदे छेदे, कोई हाथ को भेदे छेदे, कोई उंगली को भेदे छेदे, कोई नख को भेदे छेदे, कोई गर्दन को भेदे छेदे, कोई हनु (डाढी–ठोडी) को भेदे छेदे, कोई होठ को भेदे छेदे, कोई दांत को भेदे छेदे, कोई जीभ को भेदे, छेदे, कोई तालु को भेदे छेदे, कोई गले को भेदे छेदे, कोई गंडस्थल (कनपटी) को भेदे छेदे, कोई कान को भेदे छेदे, कोई नाकको भेदे छेदे, कोई आंख को भेदे छेदे, कोई भौंह को भेदे छेदे, कोई ललाट को भेदे छेदे, कोई सिरको भेदे छेदे, कोई मारकर बेहोश कर दे; या कोई मार ही डाले, इस प्रकार इन्द्रियबलहीन होने पर भी उसे वेदना का अनुभव होता ही है ॥ सू. ५ ॥

હૃદયને ભેદે છેદે, કોઈ સ્તનને ભેદે છેદે, કોઈ કાંધને ભેદે-છેદે, કોઈ બાહૂને ભેદે છેદે, કોઈ હાથને ભેદે-છેદે, કોઈ આંગલીને ભેદે-છેદે, કોઈ નખને ભેદે-છેદે, કોઈ ગર્દનને ભેદે છેદે, કોઈ ડાઢીને ભેદે–છેદે, કોઈ હોઠને છેદે-ભેદે, કોઈ દાંતને ભેદે છેદે, કોઈ જીભને ભેદે છેદે, કોઈ તાલુ–(તાળવા)ને ભેદે–છેદે, કોઈ ગળાને ભેદે–છેદે, કોઈ ગંડસ્થલ (લમણા) કાનપટીને ભેદે–છેદે, કોઈ કાનને ભેદે–છેદે, કોઈ નાકને ભેદે–છેદે, કોઈ આંખને ભેદે–છેદે, કોઈ ભંમરને ભેદે–છેદે, કોઈ લલાટને ભેદે–છેદે, કોઈ શિરને ભેદે–છેદે, કોઈ મારીને બેહોશ કરી દે, અથવા કોઈ મારીજ નાંખે, આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયબલહીન હોવા છતાં પણ તેને વેદનાનો અનુભવ થાય છે. (૫)

॥ टीका ॥

'से बेमि' इत्यादि। अथेति प्रतिवाक्यप्रारम्भद्योतनाय। ब्रवीमि=पृथिवीकायस्य वेदनाविषये कथयामि। यथा—एकः=कश्चित् अन्धं-जन्मान्धं आभिन्द्यात्, तथा एकः=अपरः कश्चित् अन्धमपि आछिन्द्यात्।

अत्र अन्धमित्युपलक्षणं, बधिरमूकपङ्गुप्रभृतीनाम्। यः खलु जन्मान्धो जन्मबधिरो जन्ममूको जन्मपङ्गुर्मृगापुत्रवत्करचरणाद्यवयवविभागरहितः पूर्वभवार्जिताशुभकर्मोदयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहाराक्षमोऽतिदयनीयदशामुपगतः।

एवंविधजन्मान्धादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्दयतयाऽतिनिशितभल्लादिना भिनत्ति चेत्, सुतीक्ष्णपरशुकुठारादिना छिनत्ति चेत्तदाऽसौ स्वाङ्ग भेदनच्छेदनसमये भेदकं छेदकं न

टीकार्थ—'अथ' शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है—'कहता हूं' अर्थात् पृथिवीकाय की वेदना के विषय में कहता हूँ। जैसे—कोई पुरुष अंधे अर्थात् जन्म से अंधे को भेदे छेदे। यहाँ 'अंध' पद उपलक्षण है, उस से बहिरा, मूंगा, लंगडा, आदि भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

जो जीव मृगालोढक की तरह जन्मान्ध है, जन्म से बहिरा है, जन्म से मूंगा है, जन्म से लंगडा है, हाथ—और आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में भेद नहीं है, और जो पूर्वभव के अशुभ कर्मों के उदय से अपने हित की प्राप्ति तथा अहित के परिहार में असमर्थ है, अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त है, इस प्रकार के जन्मान्ध वगैरह को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय हो कर आवेश के साथ, बहुत तीखे भाले वगैरह से भेदता है, अत्यन्त तीखे फरसी कुठार आदि से छेदता है,

---

ટીકાર્થ—'અથ' શબ્દ નવું વાકય આરંભ કરવાનું પ્રગટ કરે છે 'કહું છું' અર્થાત્ પૃથ્વીકાયની વેદનાના વિષયમાં કહું છું—જેમ કોઈ મનુષ્ય અન્ધ અર્થાત્—જન્મથી અંધને (આંધળો છે તેને) ભેદે છેદે. અહિં 'અંધ'પદ તે ઉપલક્ષણ છે, તેનાથી બહેરા મૂંગા, લંગડા આદિ પણ ગ્રહણ કરી લેવા જોઈએ.

જે જીવ મૃગલોઢાની માફક જન્માંધ છે. (જન્મથી આંધળો છે) જન્મથી; બહેરા છે. જન્મથીજ મૂંગો છે જન્મથી લંગડા છે. હાથ—પગ આદિ વિભિન્ન અવયવોના જેના શરીરમાં ભેદ નથી, અને તે પૂર્વભવના અશુભ કર્મોના ઉદયથી પોતાના હિતની પ્રાપ્તિ તથા અહિતના પરિહારમાં અસમર્થ છે, અત્યન્ત દયાપાત્ર—દશાને પ્રાપ્ત છે, આ પ્રકારના જન્માંધ વગેરેને કોઈ કઠોર હૃદયવાળા પુરૂષ નિર્દય થઈને આવેશની સાથે બહુજ તીક્ષ્ણ ભાલા વગેરેથી ભેદે છે (વિંધે છે), અત્યન્ત તીખી ધારવાળી ફરસી, કુઠાર આદિથી

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतुं वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते। जात्यन्धबधिरमूकपङ्ग्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूरुकटिनाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वाताल्‍ु-गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानर्द्ध्यादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन–छेदन के समय, अपने अंग के भेदने–छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उंची आवाज से चिल्लाता हैं; इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता। इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है। अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरे, मूंगे, लंगडे आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्क, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर–छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढी, होठ, दांत, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँख, भौंह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने–छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

છેદે છે, તો ભેદન–છેદનના સમયે પોતાના અંગનું ભેદન–છેદન કરનારને તે દેખતો નથી, સાંભળતો નથી, ઉંચા અવાજથી શોર–બકોર કરી શકતો નથી. એટલામાત્રથી તેમાં અજીવપણું અથવા વેદનાનો અભાવ નિશ્ચિત કરી શકાતો નથી, તેમ કહેવાતું પણ નથી. એ પ્રમાણે પૃથ્વી સચેતન છે અને તેને વેદના પણ થાય છે. એ વાત નિશ્ચિત થઈ જાય છે. અર્થાત્ જેવી રીતે મૃગાલોઢીઆ પ્રમાણે–બહેરા, મૂંગા, લંગડા આદિ પુરૂષને વેદના થાય છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વીકાયને પણ વેદના થાય છે.

અથવા–સ્પષ્ટ ચેતનાવાળા જન્માન્ધ આદિ પંચેન્દ્રિય જીવોના પગ, ઢીંચણ, જાંઘ, જાનૂ, ઉરૂ કમર, નાભિ, ઉદર, પાર્શ્વ, પૃષ્ઠ, ઉર–છાતી, હૃદય, સ્તન, સ્કંધ, બાહુ હાથ, આંગલી, નખ, ગ્રીવા દાઢી, હોઠ, દાંત, જીભ, તાળુ, ગળુ, લમણા, કાન, નાક, આંખ, ભમર, લલાટ, મસ્તક આદિના ભેદવા–છેદવાથી જેમ અત્યન્ત ઘોર વેદના ઉત્પન્ન થાય છે, તેમ પ્રગાઢ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैव घोरतरवेदना भवतीति भगवता केवलालोकेन साक्षात्कृत्य प्रवेदितम् ।

अत्रैवान्यमपि दृष्टान्तमाह–"अप्पेगे संपमारए अप्पेगे उद्दवए" इति । एकः कश्चित् यथा सर्वावयवयुक्तं कश्चित्प्राणिनं संप्रमारयेत्=तीव्रद्वेषावेशेन शस्त्रादिप्रहारेण चेष्टाराहित्यरूपां मूर्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्छापन्नं उद्द्रावयेत्=प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छावशेन व्यक्त-वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना भवत्येव ॥ सू. ५ ॥

इत्थं पृथिवीकायस्य जीवत्वं शस्त्राद्याघातेन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान वाले स्त्यानर्द्धि आदि कर्म के उदय से अप्रकट चेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है । यह बात भगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं–'अप्पेगे' इत्यादि । जैसे–कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के वश हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के चेष्टारहित–मूर्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्छित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ५॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सचित्तता और शस्त्र आदि के आघात से होने वाली

---

(६७) મોહ અજ્ઞાનવાળા સ્ત્યાનર્દ્ધિ આદિ કર્મના ઉદયથી અપ્રકટ ચેતનાવાળા પૃથ્વી-કાય આદિ જીવોને અપ્રકટ પરન્તુ અત્યન્ત દારુણ વેદના થાય છે, આ વાત ભગવાને કેવલ જ્ઞાનથી સાક્ષાત્ જાણીને પ્રકટ કરી છે.

આ વિષયમાં એક બીજું દૃષ્ટાન્ત કહે છે-'અપ્પેગે' ઈત્યાદિ, જેમ કોઈ પુરૂષ, સર્વ અવયવોથી યુક્ત કોઈ પ્રાણીને તીવ્ર દ્વેષથી આવેશને વશ થઈ શસ્ત્ર આદિનો પ્રહાર કરીને ચેષ્ટારહિત-મૂર્છિત કરી નાખે છે, તથા કોઈ તે મૂર્છિત પુરૂષને પ્રાણહીન કરે છે. તે મૂર્છિતમાં વ્યક્ત વેદના નથી. તો પણ અવ્યક્ત (જાણી-જોઈ શકાય નહિ તેવી રીતે) અત્યન્ત ઘોર વેદના થાય છે. એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયમાં પણ ઘોર વેદના થાય છે. ॥૫॥

આ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયની સચિત્તતા અને શસ્ત્ર આદિના આઘાતથી થવાવાળી

तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह-' एत्थ ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये. शस्त्र=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्र, दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते= प्रागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=खननकृष्यादिरूपाः सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्र समारभमाणः खननादिसावद्यव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामविज्ञाय चारित्ररूप-

---

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि-पृथिवीकाय का आरंभ करने में कर्म का बंध होता है-'**एत्थ**' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरंभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि-पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का खनन एवं कृषि आदिरूप सावद्य व्यापार कर्मबंध के कारण हैं। तात्पर्य यह है कि-जो पुरुष पृथिवीकाय का आरंभ करता है, उसे यह माल्रम नहीं होता कि-यह सावद्य व्यापार कर्मबंध का कारण है, यह माल्रम न होने के कारण

વેદના બતાવીને હવે એ બતાવે છે કેઃ-પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવામાં કર્મનો બંધ થાય છે-' एत्थ ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળાને આ (પૂર્વોક્ત) આરંભ જ્ઞાન હોતું નથી. (૬)

ટીકાર્થ—પૃથ્વીકાયમાં સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ દ્રવ્યશસ્ત્રનો તથા મન, વચન, કાયાનાં દુષ્પ્રણિધાન (ખરાબ ભાવ)રૂપ ભાવશસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવાવાળાને ખબર નથી હોતી કે-પૂર્વોક્ત (પૂર્વે કહેલા) સત્તાવીસ પ્રકારના ખનન (ખોદવું) એ પ્રમાણે કૃષિ-ખેતી આદિરૂપ સાવદ્ય-વ્યાપાર કર્મબંધનું કારણ છે. તાત્પર્ય એ છે કેઃ-જે પુરૂષ પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે છે, તેને એ માલૂમ નથી કેઃ-આ સાવદ્ય વ્યાપાર કર્મ

मोक्षमार्गतो दूरमपगतो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

(८) विवृत्तिद्वारम्-

पृथिवीकायसमारम्भपरिज्ञाने हि परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवतीत्याह-'एत्थ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढविसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा। जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्तिबेमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इय सत्थपरिण्णाए बीओ उद्देसो समत्तो ॥ १-२ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्रं असमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं पृथिवीशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः पृथिवीशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् पृथिवीशस्त्रं समारभतः समनुजानीयात्, यस्यैते पृथिवीकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञायां द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १ । २ ॥

यह चारित्ररूप मोक्षमार्ग से दूर ही रहता है ॥ सू. ६ ॥

पृथिवीकाय के समारम्भ का परिज्ञान होने पर ही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है, इस बात को कहते हैं-'एत्थ' इत्यादि ।

मूलार्थ- -पृथिवीकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को यह आरंभ ज्ञात होता है । उन्हें जान कर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं पृथिवीकाय के शास्त्र का आरंभ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय के शस्त्रका आरंभ करावे और न पृथ्वीकाय का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करे । इन पृथिवीकर्मसमारम्भों को जानने वाला ही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. ७ ॥

બંધનું કારણ છે. આ માલૂમ નહિ હોવાથી તે ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગથી દૂરજ રહે છે. ॥૬॥

પૃથિવીકાયના સમારંભનું પરિજ્ઞાન હોવાથીજ પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ હોય છે, આ વાત બતાવે છેઃ-'एत्थ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પૃથ્વીકાયમાં શસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળાને આ આરંભની ખબર હોય છે. તેને જાણીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ પોતે પૃથ્વીકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરતા નથી; બીજા પાસે પણ પૃથ્વીકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરાવતા નથી. અને પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપતા નથી. એ પૃથ્વીકર્મ-સમારંભોને જાણવાવાળાજ મુનિ છે, તે પરિજ્ઞાતકર્મા છે; એ પ્રમાણે હું કહું છું. (૭)

टीका—

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति। ज्ञपरिज्ञया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मबन्धहेतुत्वेन अनन्तनरकनिगोदादि-दुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गे प्रवर्तत इति भावः। उपसंहारमाह—

तत्=पृथिवीकायसमारम्भणं परिज्ञाय=बन्धहेतुत्वेनावबुध्य मेधावी=सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च-अन्यैरपि पृथिवीशस्त्रं नैव समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनुजानाति। एवं मनोवाक्कायभेदेनातीतानागतवर्त्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

---

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरंभ न करने वाले को यह पूर्वोक्त सावद्यव्यापाररूप आरंभ ज्ञात होता है। इन आरंभों को जानने वाला अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसबंधी आरंभों को कर्मबंध का कारण तथा अनन्त नरक निगोद के दुःखो का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है। उपसंहार करते हैं—

पृथ्वीकाय के आरंभ को बंधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद समझने वाला, द्रव्य—भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वयं व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार नहीं कराता और व्यापार करने वाले की अनुमोदना भी नहीं करता। इसी प्रकार मन, वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

ટીકાર્થ—પૃથ્વીકાયમાં સ્વકાય પરકાય આદિ શસ્ત્રોનો આરંભ નહિ કરવાવાળાને એ પૂર્વોક્ત સાવદ્ય વ્યાપારરૂપ આરંભની ખબર હોય છે, તે આરંભોને જાણવાવાળા અર્થાત્ જ્ઞપરિજ્ઞાથી પૃથ્વીકાયસમ્બન્ધી આરંભોને કર્મબંધનું કારણ, તથા અનન્ત નરક નિગોદના દુઃખોનું કારણ જાણીને ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. હવે ઉપસંહાર કરે છે—

પૃથ્વીકાયના આરમ્ભને બંધનું કારણ જાણીને બુદ્ધિમાન સત્—અસત્‌ના ભેદને જાણવા—સમજવાવાળા, દ્રવ્યભાવરૂપ પૃથ્વીશસ્ત્રનો પોતે વ્યાપાર કરતા નથી, બીજા પાસે વ્યાપાર કરાવતા નથી, અને વ્યાપાર કરવાવાળાને અનુમોદન પણ કરતા નથી. આ પ્રમાણે મન, વચન, કાયાના ભેદથી, અને ભૂતકાળ, ભવિષ્યકાળ, વર્ત્તમાનકાળના

समारंभान् विज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषयाः खननकृष्यादिरूपाः सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=विदितपरित्यक्त-सकलसावद्यक्रियाविशेषः मुनिर्भवति, न त्वपरो द्रव्यलिङ्गीत्यर्थः । इति ब्रवीमि=यथा भगवता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञाध्ययने द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीकायसमारंभ को जानकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी खोदना जोतना आदि सावद्य व्यापारो को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है, और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उन का त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावद्य क्रियाओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलाता है, सिर्फ द्रव्यलिंगी मुनि नहीं कहलाता । 'त्तिबेमि' भगवान्ने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥

आचाराङ्ग-सूत्र की आचारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादमें
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनका द्वितीय उद्देश
समाप्त ॥ १-२ ॥

ભેદથી સત્તાવીસ પ્રકારના પૃથ્વીકાયના સમારંભને જાણી કરીને સર્વનો ત્યાગ કરવો જોઇએ.

આ પ્રમાણે જે પુરૂષ પૃથ્વીકાયસમ્બન્ધી ખોદવું, ખેડવું આદિ સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ સમજે છે, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી દે છે, તે પરિજ્ઞાતકર્મા અને સકલસાવદ્યક્રિયાઓને જાણવાવાળા પુરૂષ મુનિ કહેવાય છે, માત્ર દ્રવ્યલિંગી મુનિ કહેવાતા નથી. ભગવાને જેવું કહ્યું છે, એવું જ હું કહું છું ॥૭॥

આચારાંગ સૂત્રની આચારચિંતામણિ ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં
શસ્ત્રપરિજ્ઞાનામક પ્રથમ અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ
સમાપ્ત થયો ॥૧-૨॥

अथ तृतीयोद्देशः।

द्वितीयोद्देशे पृथिव्याः सचित्तत्वं तत्र पृथक्पृथगनेकपृथिवीकायजीवाश्रितत्वं च प्रसाधितम्, तस्य हिंसया कर्मबन्धो भवतीत्युक्तम्, अन्ततश्च पृथिवीकायजीव-हिंसानिवृत्त्या मुनिर्भवतीति सिद्धान्तितम्। इदानीमपां सचित्तत्वमनेकाप्कायजीवा-श्रितत्वं बोधयता भगवताऽप्कायहिंसया षट्कायजीवहिंसासंपातात् कर्मबन्धो भवति, तथाऽप्कायहिंसानिवृत्त्या च मुनित्वं लभ्यत इति बोधयितुं तृतीयोद्देशः प्रारभ्यते— 'से बेमि' इत्यादि।

अप्कायजीवस्वरूपविचारणायां प्रथममनगारस्य योग्यता दर्शयति—

तीसरा उद्देश

द्वितीय उद्देशक में पृथिवी की सचित्तता सिद्ध की और पृथिवी में पृथक्-पृथक् अनेक पृथिवीकाय के जीवों का रहना सिद्ध किया। यह भी बतलाया जा चुका है कि—उन जीवों की हिंसा करने से कर्म का बंध होता है। अन्त में यह भी प्रमाणित किया है कि—पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा का त्याग करने से मुनि होता है। अब यह बतलाते हैं कि—अप्काय सचित्त है, अनेक अप्काय के जीवों से आश्रित है और अप्काय की हिंसा से षट्काय के जीवों की हिंसा होती है और अप्काय की हिंसा का त्याग करने वाला मुनिपन पाता है। यह सब बतलाने के लिए तीसरा उद्देश आरंभ किया जाता है—'से बेमि' इत्यादि।

अप्काय के जीवों के स्वरूप का विचार करते हुए सर्व प्रथम अनगार की

ત્રીજો ઉદ્દેશક—

બીજા ઉદ્દેશકમાં પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ કરી છે. અને પૃથ્વીમાં જૂદા-જૂદા અનેક પૃથ્વીકાયના જીવો રહે છે તે સિદ્ધ કર્યું છે. એ પણ બતાવવામાં આવ્યું છે કે તે જીવોની હિંસા કરવાથી કર્મનો બંધ થાય છે. અન્તમાં એ પણ પ્રમાણિત કર્યું કે પૃથ્વીકાયના જીવોની હિંસાનો ત્યાગ કરવાથી મુનિ થાય છે. હવે તે બતાવે છે કેઃ-અપ્કાય સચિત્ત છે, અનેક અપ્કાયના જીવોથી આશ્રિત છે, અને અપ્કાયની હિંસાથી ષટ્કાયના જીવોની હિંસા થાય છે, અને અપ્કાયની હિંસાનો ત્યાગ કરવાવાળા મુનિપણાને પામે છે. એ સર્વ બતાવવા માટે ત્રીજા ઉદ્દેશકનો આરંભ કરવામાં આવે છેઃ—'સેબેમિ' ઈત્યાદિ.

અપકાયના જીવોના સ્વરૂપનો વિચાર કરતા થકા સૌથી પ્રથમ અણગારની યોગ્યતા

सर्वविरतिरूपं पदं प्राप्तो मुनिः पृथिवीकायादिसूक्ष्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि- कर्तव्यतायामल्पीयोऽपि प्रमादजातं स्खलनं समुपेक्षते चेत् तर्हि पुनस्तत्राधिकतरं स्खलनं कर्तुं न लज्जते, तथाविधनियमानुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः स्वल्पमपि संयमतः स्खलनं यथा न भवेत् तथा प्रयतितव्यं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

केनचिद् बाल्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकामात्रं स्तेयवृत्त्याऽपहृत्य स्वमातुरग्रे निहितम् । माता तदवलोक्य हृष्टा सती तस्मै मधुरं वस्तु ददौ । अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि प्रवृत्तः स्वमातृहस्तात् पारितोषिकं प्राप्तः क्रमेण

योग्यता दिखलाते हैं—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे—छोटे जीवों के आरंभ का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण थोडे से भी स्खलन की उपेक्षा करता है तो फिर और अधिक स्खलन करने में भी संकोच नहीं करता । मनोवृत्ति का ऐसा ही नियम है कि—गिरी सो गिरती ही जाती है, अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि, जिस से संयम में तनिक भी स्खलन न हो ।

इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक कौडी चुराकर अपनी माता के पास रख दी । माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को मीठी चीज दी । इस के बाद वह बारबार चौरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से पारितोषिक प्राप्त करने लगा । धीरे—धीरे वह ताम्रपण (तांबे का सिक्का) कार्षापण

બતાવે છે—સર્વવિરતિરૂપ પદને પામેલા મુનિ પૃથ્વીકાય આદિ નાના—નાના જીવોના આરંભનો ત્યાગ કરવામાં જો પ્રમાદના કારણે થોડાં પણ સ્ખલન (ત્રુટી)ની ઉપેક્ષા કરે છે. તો ફરીને વધારે સ્ખલન કરવામાં પણ સંકોચ કરતા નથી. મનોવૃત્તિનો એવોજ નિયમ છે કે—નીચે પડવા પછી વધારે નીચે પડી જાય છે. એ કારણથી મુનિઓએ એવો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ કેઃ—જેનાથી સંયમમાં થોડું પણ સ્ખલન નહી હોય.

આ વિષયમાં દૃષ્ટાન્ત કહે છેઃ—

કોઈ બાળકે પોતાની બાલ્યાવસ્થામાં એક કોડી ચોરીને પોતાની માતાની પાસે રાખી દીધી; માતા તેને જોઈને રાજી થઈ અને તેને ઈનામ આપવાના ઢંગથી બાળકને મીઠી વસ્તુ આપી. ત્યાર પછી તે બાળક વારંવાર ચોરી કરવા લાગ્યો. અને પોતાની માતા પાસેથી (માતાના હાથથી) ઈનામ મેળવવા લાગ્યો. ધીરે ધીરે તે તામ્રપણ—ત્રાંબાના

ताम्रपण-कार्षापण-रूप्यक - दीनार-रत्न - स्वर्ण-मणि- माणिक्यादिहरणप्रवीणः कस्यचिन्नृपस्य कोशागारं प्रविष्टः। ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सघोषणं धृतो राजान्तिकं समानीतः। तदपराधं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्-अयं चौरः शूले समारोप्यताम्, इति।

असौ पृष्टश्च राज्ञा-तव काचिदिच्छा वर्तते? चेद् ब्रूहि। चौरेणोक्तम्-राजन्! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थये। अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता। स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्चिच्छेद। ततोऽसौ राज्ञा पृष्टः-त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम्?। चौरोऽवदत्-इयमेव ममै-

---

(चौअन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण-मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक आदि चुराने में भी प्रवीण हो गया। वह किसी राजा के खजाने में घुसा। खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे पकड लिया और राजा के सामने पेश किया। राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ, उसने आज्ञा दी-'इस चोर को शूली पर चढा दो'।

राजाने उस से पूछा-अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो।

चोरने कहा-'महाराज! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली। चौरने राजा के सामने ही वेग के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दांतों से काटली। यह देखकर राजाने पूछा-अरे! तूंने यह दुष्कर्म क्यों किया?

સિક્કા, ચાર આની, રૂપિઆ, સોના મહોર, રત્ન, સોનું, મણિ, માણેક આદિ ચોરવામાં પણ પ્રવીણ થઈ ગયો. (કેટલોક સમય જતા) તે કોઇ રાજાના ખજાનામાં ઘુસી ગયો. ખજાનાના બલવાન્ પહરેદારો રક્ષકોએ તેને પકડી લીધો અને રાજાની સામે-હાજર કર્યો. રાજા તેનો અપરાધ સાંભળીને ક્રોધાયમાન થયા, અને આજ્ઞા આપી કે એ ચોરને શૂલી પર ચઢાવી દ્યો!

રાજાએ તેને પૂછ્યું કે તારી કાંઈ ઇચ્છા હોય તો કહો.

ચોરે કહ્યું-'મહારાજ! હું મારી માતાને મળવાની પ્રાર્થના કરૂં છું.'

રાજાની આજ્ઞાથી ચોરની માતા ત્યાં આગળ આવી. અને ચોરને મળી, ચોરે રાજાના સામેજ વેગથી એકદમ ઉઠીને જલ્દીથી પોતાની માતાનું નાક પોતાના દાંતથી કાપી લીધું. તે જોઈને રાજાએ પૂછ્યું-અરે! તેં આવું દુષ્કર્મ શા માટે કર્યું?

तद्घोरतरदुःखप्रदशूलारोपणफलप्रदात्री प्राणापहर्त्री, न तु भवान् । इत्युक्त्वा सर्वं पूर्ववृत्तं राज्ञे विज्ञापयामास । ततः स्वकृतस्तेयकर्मणो विपाकं शूलारोपेण घोरतरवेदनां प्राप्नुवन्मृतः । तस्मात् स्वल्पोऽपि दोषो महाऽनर्थाय भवतीति विज्ञायात्मार्थिभिर्मुनिभिः संयमतः स्वल्पमपि स्खलनं यथा न भवेत् तथा वर्तितव्यम् ।

तपःसंयमे कदाचिदाकस्मिकस्खलनसंपातस्त्वन्य एव, स्खलनोपेक्षणमप्यन्यदेव, यतः स्खलनोपेक्षया पुनरुत्तरोत्तरस्खलनवृद्ध्या साधुत्वमेव नश्यतीति विचिन्त्य जागरूकाः साधवो नवनवागन्तुकस्खलनपरंपराविरहिताः पूर्वजातस्खलन-

---

चोर—महाराज ! इसी के कारण मुझे घोर दुःख देने वाली शूली पर चढना पड रहा है; यही मेरे प्राण लेने वाली है, आप नहीं । यह कह कर चोरने अपना सम्पूर्ण पूर्व—वृत्तांत राजा को सुना दिया ।

तत्पश्चात् अपने किये चौर्य कर्म का घोरवेदनारूप फल—शूली पर चढनेरूप—को भोगता हुआ वह चोर मर गया ।

अत एव थोडा—सा भी दोष महान् अनर्थ का कारण बन जाता है, ऐसा समझकर आत्मकल्याण के अभिलाषी मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिस से संयम में तनिक भी स्खलन न हो ।

तप और संयम में कदाचित् अकस्मात् स्खलना की बात दूसरी है किन्तु स्खलना की उपेक्षा करना और बात है, उस का कारण यह है कि स्खलना की उपेक्षा करने से उत्तरोत्तर स्खलना बढती ही चली जाती है, ऐसा विचार करके सदैव सावधान

ચોર કહે—મહારાજ! એ માતાના કારણે જ મારે ઘોર દુઃખ આપવાવાળી શૂલી ઉપર ચઢવાનું થાય છે, એ મારો પ્રાણ લેવાવાળી છે, આપ નહિ. આ પ્રમાણે કહીને ચોરે પોતાની આગળની સંપૂર્ણ હકીકત રાજાને સંભળાવી. તે પછી પોતાનું કરેલ ચોરીનું કર્મનું ઘોરવેદનારૂપ ફલ—શૂલી પર ચઢવાનું, તે ભોગવતો થકો તે ચોર મરણ પામ્યો.

એટલે કે:—થોડો પણ દોષ મહાન્ અનર્થનું કારણ બની જાય છે. એ પ્રમાણે સમજીને આત્મકલ્યાણના અભિલાષી મુનિઓએ એવો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ કે, જેનાથી સંયમમાં થોડુંક પણ સ્ખલન ન થાય.

તપ અને સંયમમાં કોઇ વખત અકસ્માત્ સ્ખલનની વાત જૂદી છે. પણ સ્ખલનની ઉપેક્ષા કરવી તે બીજી વાત છે. તેનું કારણ એ છે કે—સ્ખલનની ઉપેક્ષા કરવાથી ઉત્તરોત્તર સ્ખલન (ભૂલ) વધતું જ જાય છે. એવો વિચાર કરીને સદૈવ—હંમેશાં સાવધાન રહેવાવાળા

दोषमपनेतुं शक्नुवन्ति । तदेव विशदयन् सुधर्मा स्वामी प्राह–'से बेमि' इत्यादि ।

द्वितीयोद्देशसमाप्तौ "जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मा" इत्युक्तम् । अधुना तु–न च तावतैव सर्वथा मुनिर्भवितुमर्हति। यथा भवति तथा दर्शयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह–'से बेमि' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से बेमि–से जहावि अणगारे उज्जुकडे नियागपडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

तद् ब्रवीमि स यथापि अनगार ऋजुकृतः नियागप्रतिपन्नः अमायां कुर्वाणो व्याख्यातः ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

'से बेमि' इत्यादि। तद् ब्रवीमि यदन्यच्च भगवदन्तिके मया

रहने वाले साधु नयी–नयी होने वाली स्खलना के दोषों से बच सकते हैं । यही बात स्पष्ट करते हुए सुधर्मा स्वामी आगे कहते हैं–'से बेमि' इत्यादि ।

मूलार्थ (भगवान् के मुखारविन्द से जो सुना है,) सो कहता हूँ–ऋजुकृतः मोक्षमार्ग में प्राप्त और माया न करने वाला अनगार कहा गया है ॥ सू. १ ॥

टीकार्थ—भगवान् के समीप और भी जो सुना है वह कहता हूँ । पृथ्वीकाय के विषय में शस्त्र का आरंभ न करने वाला पृथ्वीकाय के आरंभ को जानने वाला पुरुष जिस

साधु–नवी नवी थवावाळी स्खलना दोषोथी बची शके छे, ए वात स्पष्ट करीने सुधर्मा स्वामी आगळ कहे छे–'से बेमि' ઇत्यादि.

બીજા ઉદ્દેશકની સમાપ્તિમાં કહ્યું હતું કેઃ–જે પુરૂષ પૃથ્વીકાયના આરંભને જાણીને તેનો ત્યાગ કરી આપે છે, તે મુનિ છે. અહિં એ બતાવવામાં આવે છે કેઃ–આટલું કરવા માત્રથી જ કોઈ પૂરી રીતે મુનિ થઇ શકતા નથી, મુનિ થવાને માટે બીજી –જે જે વાતોની (જાણવાની) આવશ્યકતા છે, તેને સુધર્મા સ્વામિ કહે છે–'से बेमि' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—(ભગવાનના મુખારવિંદથી જે સાંભળ્યું છે) તે કહું છું.—ઋજુકૃત, મોક્ષમાર્ગમાં પ્રાપ્ત અને માયા નહિ કરવાવાળા અણગાર કહ્યા છે (૧)

ટીકાર્થ—ભગવાનની પાસેથી બીજું પણ જે સાંભળ્યું છે, તે કહું છું.—પૃથ્વીકાયના વિષયમાં શસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળા, પૃથ્વીકાયના આરંભને

श्रुतं तत् कथयामि । स पृथिवीकायशस्त्रमसमारभमाणः परिज्ञातपृथिवीकर्मसमारम्भो यथा संपूर्णोऽनगारो भवति, अपिच-यथाऽनगारो न भवति, तद् द्वयमपि ब्रवीमि, वक्ष्यति च-'अणगारामोत्ति एगे पवयमाणा' इत्यादि। सावद्यक्रियाया गृहाश्रयत्वाद् गृहपरित्याग एव मुनित्वे प्रधानकारणमिति बोधनाय साध्वादिशब्दं परित्यज्य 'अनगार'-शब्दोपादानम्। कथं सर्वथाऽनगारो भवति? इत्याकाङ्क्षायामाह—

'उज्जुकडे' इति, ऋजुकृतः, अर्जयति क्षान्त्यादिगुणानिति ऋजुः। यद्वा-अर्जयति-सकलप्राणिगणहितं दयास्वभावमिति ऋजुः। यदिवा-अर्जयति= यथावस्थितात्मस्वरूपं प्रापयतीति ऋजुः। यद्वा-अर्जयति=प्रापयति शाश्वतिकं

प्रकार पूर्ण अनगार होता है, और जिस प्रकार पूर्ण अनगार नहीं होता, ये दोनों बातें मैं कहता हूँ-'अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा' इत्यादि सूत्र में आगे कहा जायगा।

गृह में सावद्यक्रिया अवश्य होती है, अत एव गृह का त्याग करना ही मुनिपन का प्रधान कारण है। यह बात प्रकट करने के लिए साधुवाचक अन्य शब्द छोडकर यहाँ अनगार शब्द का प्रयोग किया है। पूरा अनगार किस प्रकार बनता है, एसी आकांक्षा होने पर कहते हैं-'उज्जुकडे' इति।

उज्जुकडे का संस्कृत रूप है 'ऋजुकृतः'। क्षमा आदि गुणों को उपार्जन करने वाला ऋजु कहलाता है। अथवा समस्त प्राणियों के हितरूप दया को उपार्जन करने वाला ऋजु कहलाता है। अथवा आत्मा को अपने असली स्वरूप पर पहुंचाने

જાણુવાવાળા પુરૂષ, જે પ્રમાણે પૂર્ણ અણુગાર થાય છે અને જે પ્રમાણે પૂર્ણ અણુગાર નથી થતા, તે બન્ને વાતો હું કહું છું-'अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा' ઈત્યાદિ સૂત્રમાં આગળ કહેવામાં આવશે.

ઘરમાં સાવદ્યક્રિયા અવશ્ય થાય છે એટલા માટે ઘરનો ત્યાગ કરવો તેજ મુનિપણાંનું પ્રધાન કારણ છે એ વાત પ્રગટ કરવા માટે સાધુવાચક અન્ય સબ્દ ત્યજીને અહિં 'अनगार' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે. પૂરા અણુગાર કેવી રીતે બને છે, એવી ઈચ્છા થવાથી કહે છે—'उज्जुकडे' ઇતિ.

'उज्जुकडे'નું સંસ્કૃત રૂપ 'ऋजुकृत' થાય છે. ક્ષમા આદિ ગુણોનું ઉપાર્જન કરવાવાળા ऋजु (સરલ-સિધા) કહેવાય છે અથવા સમસ્ત પ્રાણીઓના હિતરૂપ દયાને ઉપાર્જન કરવાવાળા ऋजु કહેવાય છે. અથવા આત્માને અસલ સ્વરૂપ સુધી પહોંચાડવા-

शिवस्थानमिति – ऋजुः = विषमभावरहितत्वाद् दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायनिरोधरूपः संयमः, स कृतः=अनुष्ठितो येन स ऋजुकृतः–मनोवाक्कायजन्यसकलसावद्य-क्रियानिवृत्त इत्यर्थः।

यद्वा–संपूर्णसंवरस्वरूपसंयमेन संयमिना मोक्षस्थानगमनार्थं ऋजुगतिः प्राप्यते, तत्र ऋजुगतेः कारणं संयम इति कारणे कार्योपचारात्सप्तदशविध-संयमोऽपि ऋजुरित्युच्यते, स कृतः=समाचरितो येनासौ ऋजुकृतः कृतसंपूर्ण-संयमानुष्ठान इत्यर्थः।

वाला ऋजु कहलता है। अथवा आत्मा को शाश्वत मोक्षस्थान पर पहुँचाने वाला ऋजु कहलाता है। अथवा ऋजु का अर्थ है–संयम। मन, वचन, काय के खोटे व्यापार को रोकनारूप संयम है। जिस ने एसा व्यापार रोक दिया है वह **ऋजुकृत** कहलाता है। अर्थात् जो मन, वचन और काय से होने वाली समस्त सावद्य क्रियाओं से निवृत्त हो गया हो वह '**ऋजुकृत**' है।

अथवा–सम्पूर्णसंवररूप संयम के द्वारा संयमी मोक्ष में गमन करने के लिए ऋजुगति प्राप्ति करता है। इस ऋजुगति का कारण संयम है। अतः कारण में कार्य का उपचार करने से सत्रह प्रकार का संयम भी 'ऋजु' कहलाता है। उस 'ऋजु' अर्थात् संयम का जिसने आचरण किया हो वह 'ऋजुकृत' कहलाता हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्ण संयम का अनुष्ठान करने वाला **ऋजुकृत** है।

વાળા ऋजु કહેવાય છે. અથવા આત્માને શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહોંચાડવાવાળા ऋजु કહેવાય છે. અથવા ऋजुનો અર્થ છે સંયમ–મન, વચન અને કાયના ખોટા વ્યાપારને રોકવા રૂપ સંયમ છે. જેણે એવો વ્યાપાર રોકી આપ્યો છે તે 'ऋजुकृत' કહેવાય છે. અર્થાત્ જે મન, વચન અને કાયાથી થવાવાળી સમસ્ત સાવદ્ય ક્રિયા-ઓથી નિવૃત્ત થઈ ગયા હોય તે ऋजुकृत છે.

અથવા—સંપૂર્ણસંવરરૂપ સંયમદ્વારા સંયમી મોક્ષમાં ગમન કરવા માટે ઋજુગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. તે ઋજુગતિનું કારણ સંયમ છે. તેથી કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી સત્તર (૧૭) પ્રકારનો સંયમ પણ 'ऋजु' કહેવાય છે. તે ઋજુ અર્થાત્ સંયમનું જેણે આચરણ કર્યું છે તે 'ऋजुकृत' કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્ણ–સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા ऋजुकृत છે.

तथा नियागप्रतिपन्नः, नि=निश्चयेन यजति=सम्यग्गमनं कुर्वन्ति यत्र स नियागः=मोक्षमार्गः ज्ञानक्रियालक्षणः । यद्वा-नि=निश्चयेन यजति=ददाति सिद्धिगतिमिति नियागः=क्षान्त्यादिदशविधो यतिधर्मः, तं प्रतिपन्नः=प्राप्तः ।

तथा 'अमायां कुर्वाणः' माया=वीर्याचारसंगोपनं परवञ्चनं वा, न माया अमाया, तां कुर्वाणः अनगारो व्याख्यातः=भगवता कथितः ।

अयं भावः-न केवलं पृथिवीशस्त्रसमारम्भमात्रनिवृत्त्याऽनगारो भवति किन्तु यः खलु पृथिवीशस्त्रसमारम्भनिवृत्तः परिज्ञातसकलसावद्यकर्मा निरव-

---

अब '**नियागप्रतिपन्न**' शब्दका अर्थ करते हैं। '**नि**' अर्थात् निश्चय से '**याग**' अर्थात् सम्यक् गमन जहाँ किया जाता है उसे '**नियाग**' या मोक्षमार्ग कहते है। ज्ञान और क्रिया मोक्ष का मार्ग है।

अथवा '**नि**' अर्थात् निश्चय से '**याग**' अर्थात् सिद्धिगति देने वाला क्षमा आदि दश प्रकार का यतिधर्म '**नियाग**' कहलाता है, एसे नियाग को जो प्राप्त हो चुका हो वह **नियागप्रतिपन्न** है।

तथा माया अर्थात् वीर्याचर का गोपन करना या दूसरे को गोखा देना माया है। इस माया का सेवन न करने वाला जो वही अनगार है, एसा भगवान् ने कहा है।

तात्पर्य यह है कि-केवल पृथ्वीशास्त्र के आरंभ का त्याग कर देने मात्र से ही कोई अनगार नहीं हो जाता, वरन् जो पृथ्वीशास्त्र के आरंभ का त्याग कर के सकल

હવે 'नियागप्रतिपन्न' શબ્દનો અર્થ કરે છે. 'नि' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'याग' અર્થાત્ સમ્યક્ગમન જ્યાં કરવામાં આવે છે. તેને નિયાગ અથવા મોક્ષમાર્ગ કહે છે. જ્ઞાન અને ક્રિયા મોક્ષનો માર્ગ છે. અથવા 'नि' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'याग' અર્થાત્ સિદ્ધગતિ આપવાવાળો ક્ષમા આદિ દસ પ્રકારનો યતિધર્મ 'नियाग' કહેવાય છે. એવા નિયાગને જે પ્રાપ્ત થઇ ચૂકયા છે, તે नियागप्रतिपन्न છે. તથા માયા અર્થાત્ વીર્યાચરનું ગોપન કરવું અથવા બીજાને ધોખો દેવો તે માયા છે. તે માયાનું સેવન નહિ કરવાવાળા જે હોય તે અણુગાર છે. એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-કેવલ પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભનો ત્યાગ કરી દેવા માત્રથીજ કોઇ અણુગાર થતા નથી. પરન્તુ જે પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભનો ત્યાગ કરીને, સકલ સાવદ્ય કર્મોનો

शेषसंयमानुष्ठानप्रवृत्तः समाश्रितमोक्षमार्गः कर्पूरखण्डवदन्तर्बहिरेकरूपतया स्ववीर्यसंगोपन-परवञ्चनलक्षणमायाचाररहितो भवति स एव वस्तुतोऽनगारो बोद्धव्य इति ॥ सू० १ ॥

उक्तरूपस्यानगारस्य कर्त्तव्यमाह—'जाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहित्ता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

यया श्रद्धया निष्क्रान्तस्तामेवानुपालयेत् विस्रोतसिकां पूर्व-संयोगम् ॥ २ ॥

॥ टीका ॥

यया श्रद्धया विस्रोतसिकां=शङ्कां, सर्वशङ्कां देशशङ्कां चेत्यर्थः ।

सावद्य कार्यों का ज्ञाता होता है और पूर्ण संयम के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो तथा मोक्षमार्ग का आश्रय लेता है । कपूर के टुकडे की भाँति भीतर-बाहर एकसा उज्ज्वल होने के कारण अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता और दूसरों को धोखा नहीं देता अर्थात् मायाचार से रहित होता है, उसी को वास्तव में अनगार समझना चाहिए ॥ सू. १ ॥

उक्त प्रकार के अनगार का कर्तव्य बतलाते हैं-'जाए' इत्यादि ।

मूलार्थ—शङ्का काङ्क्षा आदि का त्याग कर के और पूर्वकालीक संयोगों का त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ निकला है, उसी श्रद्धा का निरन्तर पालन करे ॥ सू. २ ॥

टीकार्थ—'**विस्रोतसिका**' का अर्थ है शङ्का, शङ्का दो प्रकार की हैं (१) सर्वशङ्का

ज्ञाता-જાણુનાર થાય છે. અને પૂર્ણ સંયમના અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, તથા મોક્ષ માર્ગનો આશ્રય લે છે. કપૂરના ટુકડાની માફક અંદર અને બહાર એકજ પ્રકારે ઉજ્વલ હોવાના કારણે પોતાની શક્તિનું ગોપન કરતો નથી. અને બીજાને દગો દેતો નથી. અર્થાત્ માયાચારથી રહિત હોય છે, તેને વાસ્તવિક રીતે અણગાર સમજવો જોઇએ. (સૂ. ૧)

ઉપર કહ્યા તેવા અણુગારનું કર્તવ્ય બતાવે છેઃ-'जाए' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—શંકા, કાંક્ષા વગેરેનો ત્યાગ કરીને અને પૂર્વ કાલના સંયોગોનો ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી નિકળ્યા છે, તે શ્રદ્ધાનું નિરંતર પાલન કરવું. (સૂ. ૨)

ટીકાર્થ—'विस्रोतसिका'નો અર્થ છે. શંકા, શંકા બે પ્રકારની છે-(૧) સર્વશંકા

"किमार्हतो मार्गोऽस्ति न वा" इति सर्वागमविषयिका शङ्का सर्वशङ्का, तथा- "किमप्कायादयो जीवाः सन्ति न वा" इति देशशङ्का।

केवलालोकेन विलोक्य भगवता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अप्कायादयः सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनारूपात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति अप्कायादयो जीवाः, इत्युत्तरा कोटिः प्रादुर्भवति। पूर्वसंयोगं=मातापित्रादिसम्बन्धं, धनधान्यस्वजनादिसम्बन्धं वा।

इदमुपलक्षणम्-तेन पश्चात्संयोगमपि श्वशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य निष्क्रान्तः=अनगारो जातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः।

और (२) देशशङ्का। अर्हन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है या नहीं? ऐसी-शंका सर्वशङ्का है। अप्काय आदि के जाव हैं या नहीं?' यह देश शङ्का है।

भगवान्ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अप्काय आदि के जीवों का अस्तित्व प्रगट किया है, यह शङ्का की पूर्वकोटि है। आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अप्काय आदि अजीव हैं, वह शङ्का की दूसरी कोटि है।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन; धान्य; स्वजन आदि का संबंध पूर्वसंयोग। कदलाता है। उपलक्षण से सास-ससुर आदि का संबंध पश्चात्संयोग कहलाता है। इन दोनों संयोगों की त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अनगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे अर्थात् उस की निरतिचार रक्षा करे।

અને (૨) દેશશંકા 'અર્હન્ત ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત માર્ગ વાસ્તવિક રીતે મોક્ષ માર્ગ છે કે નહીં ?' આ પ્રકારની શંકા તે સર્વશંકા છે. અપ્કાય આદિના જીવ છે કે નહીં ? આ દેશશંકા છે.

ભગવાને કેવલજ્ઞાન વડે જોઈને પ્રવચનમાં અપ્કાય આદિના જીવોનું અસ્તિત્વ પ્રગટ કર્યું છે; આ શંકાની પૂર્વકોટિ છે. આત્માનું ચેતનાલક્ષણ સ્પષ્ટરૂપથી જોવામાં આવતું નથી તેથી અપ્કાય આદિ અજીવ છે, આ શંકાની બીજી કોટિ છે.

માતા-પિતા આદિનો સંબંધ તથા ધન, ધાન્ય સ્વજન આદિનો સંબંધ પૂર્વ-સંયોગ કહેવાય છે, ઉપલક્ષણથી સાસુ, સાસરા આદિનો સંબંધ પશ્ચાત્સંયોગ કહેવાય છે. આ બન્ને સંયોગનો ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી અણગાર થયા છે, તે શ્રદ્ધાનું પાલન કરે, અર્થાત્ તેની નિરતિચાર (વિના અતિચાર) રક્ષા કરે.

ननु का नाम श्रद्धा, यया विनाऽनगारत्वं नोपलभ्यते ? उच्यते–जीवादितत्त्वेषु श्रद्धानं, रुचिः, अभिप्रीतिः, सम्यग्दर्शनं श्रद्धा, 'एतत्तत्त्वमेवमेवे'–त्यवधारणम्, "तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं" इति वचनानुस्मरणेन जगदेकबन्धुना वीतरागेण भगवता यथा कथितं तथैवेदं जीवादितत्त्वं सत्यमिति निश्चय इति यावत्।

यद्वा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मण उपशमात् क्षयोपशमात् क्षयाद्वा आत्मनोऽपूर्वा ज्ञानावस्था जायते, आविलसलिलस्य कतकफलचूर्णसंयोगात्स्वच्छतावत् सैव श्रद्धा।

शङ्का—यह श्रद्धा कौन–सी है जिस के विना साधुपन नही रह सकता ?

समाधान—जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना, रुचि होना, अभिप्रीति होना, यह सम्य-ग्दर्शन–श्रद्धा है। 'यह **तत्त्व ऐसा ही है**' इस प्रकार पक्का निश्चय करना श्रद्धा है। '**जिन भगवान्ने जो कहा है वही सत्य और संदेह–रहित है**' इस वचन के अनुसार यह निश्चय करना कि जगत के अद्वितीय बन्धु वीतराग भगवान् ने जैसा निरूपण किया है, उसी प्रकार जीवादितत्त्व सत्य है। यह श्रद्धा का स्वरूप है।

अथवा—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उपशम से, क्षयोपशम से अथवा क्षय से आत्मा की एक अपूर्व ज्ञानावस्था उत्पन्न होती है। जैसे–मलिन जल में कतकफल का चूर्ण डालने से जल स्वच्छ हो जाता है। ऐसी स्वच्छ-निर्मल आत्मदशा श्रद्धा कहलाती है।

શંકા—તે શ્રદ્ધા કેવી છે, કે જેના વિના સાધુપણું રહી શકે નહિ ?

સમાધાન—જીવાદિ તત્ત્વો પર શ્રદ્ધા કરવી, રૂચિ થવી, અભિપ્રીતિ થવી, તે સમ્યગ્દર્શન શ્રદ્ધા છે, "**આ તત્ત્વ આવુંજ છે**" એ પ્રમાણે પાકો નિશ્ચય કરવો તે શ્રદ્ધા છે. "**જિન ભગવાને જે કહ્યું છે તે સત્ય અને સંદેહરહિત છે**" એ વચન પ્રમાણે એ નિશ્ચય કરવો કે જગતના અનેક બન્ધુ વીતરાગ ભગવાને જેવું નિરૂપણ કર્યું છે, તે પ્રમાણે જીવાદિ તત્ત્વ સત્ય છે. આ શ્રદ્ધાનું સ્વરૂપ છે

અથવા—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમથી, ક્ષયોપશમથી, અથવા ક્ષયથી આત્માની એક અપૂર્વ જ્ઞાનાવસ્થા ઉત્પન્ન થાય છે. જેમ મલીન પાણીમાં કતકફળ–નિર્મળીફળનું ચૂર્ણ નાંખવાથી જલ સ્વચ્છ થઈ જાય છે. એવી સ્વચ્છ–નિર્મલ આત્મદશા શ્રદ્ધા કહેવાય છે.

अस्या लक्षणं तु शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्यानां प्रादुर्भावः। तत्र वीतरागप्रणीतप्रवचनतत्त्वाभिनिवेशवशेनाऽनन्तानुबन्धिकषायाणामनुदयः शम इत्युच्यते। यद्वा विषयासक्तिनिवृत्तिः शमः।

तथा संवेगः=जिनप्रवचनानुसारेण नरकादिगतिषु नानाविधदुःखावलोकनाद्भयम्, यथा स्वकृतकर्मोदयान्नरकेषु-क्षेत्रजन्यशीतोष्णादिदशविधवेदनासहनं, परमाधार्मिकदेवकृतं, परस्परोदीरितं चेति त्रिविधं दुःखं, तथा तिर्यक्षु-ताडन-तर्जन-क्षुत्पिपासा-पारवश्य-भारारोपणाद्यनेकविधं दुःखं, मनुष्येषु-दारिद्र्य-

---

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य का प्रकट हो जाना श्रद्धा का चिह्न है।

वीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचन के तत्त्व में गाढी प्रीति होने से अनन्तानुबंधी कषायों का (क्रोध, मान, माया, लोभ, का) उदय न होना **शम** कहलाता है। अथवा विषयों के प्रति आसक्ति हट जाना '**शम**' है।

जिन भगवान् के वचन के अनुसार नरक आदि गतियों में नाना प्रकार के दुःखों को जानकर उन से भयभीत होना '**संवेग**' है। जैसे-"अपने किये कर्मों के उदय से नरकों में क्षेत्रजन्य शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी) आदि दश प्रकार की वेदना, परमाधामी देवों द्वारा दीजाने वाली वेदना और परस्पर नारकी जीवों द्वारा होने वाली वेदना, नरक में यह तीन तरह की वेदना है। तिर्यंचों में ताडना, तर्जना, भूख, प्यास, पराधीनता, बोझा ढोना आदि अनेक प्रकार की वेदना है। मनुष्यों में दरिद्रता,

---

શમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્તિકય વગેરે પ્રગટ થઇ જાય તે શ્રદ્ધાનું ચિહ્ન છે.

વીતરાગદ્વારા પ્રરૂપિત પ્રવચનનાં તત્ત્વોમાં સજ્જડ પ્રીતિ થવાથી અનન્તાનુબંધી કષાયોનો (ક્રોધ, માન, માયા, લોભનો) ઉદય થાય નહિ તે **શમ** કહેવાય છે. અથવા વિષયો પ્રતિ આસક્તિ હઠી જાય તે શમ છે.

જિન ભગવાનના વચન-અનુસાર નરક આદિ ગતિઓમાં નાના પ્રકારના દુઃખોને જાણી ને તેનાથી ભયભીત થવું તે 'સંવેગ' છે. જેમકે-"પોતાના કરેલાં કર્મોના ઉદયથી નરકોમાં ક્ષેત્રજન્ય શીત-ઉષ્ણ (શર્દી-ગરમી) આદિ દસ પ્રકારની વેદના, પરમાધામી દેવો દ્વારા જે થાય છે તે વેદના, અને પરસ્પર નારકી જીવો દ્વારા થનારી વેદના, નરકમાં આ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકારની વેદના છે. તિર્યંચોમાં તાડના, તર્જના (મારવું-તરછોડવું) ભૂખ, તરસ, પરાધીનતા, બોજા ઉપાડવા આદિ અનેક પ્રકારની વેદના છે. મનુષ્યોમાં દરિદ્રતા, દુર્ભાગ્ય,

दौर्भाग्य-जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक-सन्तापादि, देवेषु-ईर्ष्या-विषाद-परप्रेष्य-त्वादिदुःखं जीवा अनुभवन्ति, तस्माद्-'यथा ममेदृशं दुःखं न स्यात् तथा यत्नं करोमि' इत्याकारक आत्मिकपरिणामः संवेगः ।

यद्वा-सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलोऽनुरागः संवेगः । उक्तञ्च—

"तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रबन्धे, देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते ।
साधौ सर्वग्रन्थसन्दर्भहीने, संवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥ १ ॥" इति ।

आगमोऽप्यत्रार्थे प्रमाणम्—

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, संताप आदि की वेदना है । देवों में ईर्ष्या, विषाद, आज्ञा-पालन आदि के दुःख हैं । जीव इन दुःखों का अनुभव करते हैं, अत एव मैं ऐसा प्रयत्न करूँ कि-जिस से मुझे इस प्रकार के दुःख न भुगतने पडे" । इस प्रकार का आत्मा का परिणाम '**संवेग**' कहलाता है ।

अथवा सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में अचल अनुराग होना '**संवेग**' कहलाता है । कहा भी है—

"हिंसा आदि की परम्परा से रहित सच्चे धर्म में, राग द्वेष और मोह आदि से रहित देव में, तथा सब प्रकार के परिग्रह से रहित गुरु-साधु में निश्चल अनुराग होना संवेग है" ॥ १ ॥

इस विषय में आगम प्रमाण भी है—

જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક, સન્તાપ આદિની વેદના છે. દેવોમાં ઈર્ષ્યા, વિષાદ, (શોક) આજ્ઞાપાલન આદિનાં દુઃખો છે. જીવ આ દુઃખોનો અનુભવ કરે છે. તે કારણથી હું એવો પ્રયત્ન કરૂં કે-જેથી મને આ પ્રકારનું દુઃખ ભોગવવું પડે નહિ." આ પ્રકારનું આત્માનું પરિણામ તે સંવેગ કહેવાય છે.

અથવા સુદેવ, સુગુરૂ અને સુધર્મમાં અચલ અનુરાગ-પ્રીતિ થવો તે સંવેગ કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે કેઃ-

"હિંસા આદિની પરમ્પરાથી રહિત સાચા ધર્મમાં, રાગ દ્વેષ અને મોહ આદિથી રહિત દેવમાં, તથા સર્વ પ્રકારના પરિગ્રહથી રહિત ગુરૂ-સાધુમાં નિશ્ચલ અનુરાગ થવો તે સંવેગ છે." ॥ ૧ ॥

આ વિષયમાં આગમ પ્રમાણ પણ છેઃ-

"संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ । अणंताणुबंधिकोहमाणमायालोभे खवेइ । नवं च कम्मं न बंधइ । तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ । विसोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥" (उत्तरा० अ० २९)

छाया—"संवेगेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ? संवेगेन अनुत्तरां धर्मश्रद्धां जनयति । अनुत्तरया धर्मश्रद्धया संवेगो हव्यमागच्छति, अनन्तानुबन्धि-क्रोधमान-मायालोभान् क्षपयति, नवं च कर्म न बध्नाति, तत्प्रत्ययिकां च खलु मिथ्यात्वविशोधिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति, दर्शनविशोध्या च खलु विशुद्धया अप्येककस्तेनैव भव-ग्रहणेन सिद्धयति । विशोध्या च खलु विशुद्धया तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति ॥"

सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलानुरागरूपेण संवेगेन उत्कृष्टतमां धर्मश्रद्धां

"भगवान् ! संवेग से जीव को क्या लाभ होता है ?

संवेग से सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न होती है, और धर्मश्रद्धा से संवेग शीघ्र उत्पन्न हो जाता है । अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का वह क्षय करता है । नवीन कर्मों का बंध नहीं करता, और इन कारणों से मिथ्यात्व की विशुद्धि कर के जीव दर्शन का अराधक होता है । दर्शनविशुद्धता बढजाने से कोई-कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है, अगर कोई उसी भव में मोक्ष न जावे तो तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् तीसरे भव में वह अवश्य मोक्ष जाता है" । –(उत्तराध्ययन अ. २९)

"सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में निश्चल अनुरागरूप संवेग से जीव को सर्वोत्कृष्ट

"ભગવન્ સંવેગથી જીવને શું લાભ થાય છે ?" સંવેગથી સર્વશ્રેષ્ઠ ધર્મશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, અને ધર્મશ્રદ્ધાથી સંવેગ શીઘ્ર ઉત્પન્ન થાય છે. અનન્તાનુબંધી ક્રોધ, માન, માયા અને લોભનો તે ક્ષય કરે છે. નવીન કર્મોનો બંધ કરતો નથી, અને એ કારણોથી મિથ્યાત્વની વિશુદ્ધિ કરીને જીવ દર્શનનો આરાધક થાય છે. દર્શનવિશુદ્ધતા વધી જવાથી કોઈ-કોઈ એ ભવમાં સિદ્ધ થઈ જાય છે; કોઈ એ ભવમાં મોક્ષે ન જાય તો ત્રીજા ભવનું ઉલ્લંઘન કરતા નથી, અર્થાત્ ત્રીજા ભવમાં તે અવશ્ય મોક્ષે જાય છે." (ઉત્તરા૦અ.૨૯)

સુદેવ, સુગુરૂ અને સુધર્મમાં નિશ્ચલ અનુરાગરૂપ સંવેગથી જીવને સર્વોત્કૃષ્ટ

जीवो जनयति । तया च नरकादिभवेषु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न बध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निर्वेदः—आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, ' इह —अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबंधी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बंध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, એ શ્રદ્ધાથી નરક આદિ ગતિઓમાં ઘોર અને બહુજ અસાતાની વેદના જોઈને. તથા એ વેદનાના ભયથી મોક્ષમાર્ગનો આશ્રય લઈને મોક્ષાભિલાષારૂપી સંવેગને શીઘ્રજ સ્વીકાર કરી લે છે. તે અનન્તાનુબંધી કષાયોનો ક્ષય કરે છે. અને નવીન કર્મના બંધને રોકી દે છે. મિથ્યાત્વનો ક્ષય કરીને શુદ્ધ ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વનું નિરતિચાર પાલન કરે છે. આ પ્રમાણે અત્યન્ત નિર્મલ દર્શનવિશુદ્ધિના કારણે કોઈ–કોઈ ભવ્ય જીવ એજ ભવમાં મુક્ત થઈ જાય છે, અને કોઈ–કોઈ ત્રીજા ભવનું ઉલ્લંઘન કરતા નથી. અર્થાત્ મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના સંપૂર્ણક્ષયથી શુદ્ધક્ષાયિકસમ્યક્ત્વી જીવ ત્રણ ભવોમાં અવશ્ય મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે.

અર્હંત ભગવાનના પ્રવચનમાં પ્રગાઢ-સજ્જડ પ્રીતિ હોવાના કારણે સર્વ ઇન્દ્રિયોના

कामभोगाध्यवसायः खलु दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिकटुको नरकादि-जन्मफलप्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन कामभोगाध्यवसायेन, परित्याज्य एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

"निव्वेएणं भंते! जीवे किं जणयइ? निव्वेएणं दिव्वमाणुसतेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरंभपरिच्चायं करेइ। आरंभपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिदइ, सिद्धिमग्गं पडिवन्ने य हवइ।" (उत्तरा० अ. २९)

आसक्ति न होना '**निर्वेद**' है। 'कामभोगसम्बन्धी अध्यवसाय इस लोक में अत्यन्त दुःख-दायक है, और परलोक में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अत एव कामभोगसंबंधी अध्यवसाय से मुझे क्या लेन-देन है। इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही देना चाहिए'। इस प्रकार का आत्मिक परिणाम '**निर्वेद**' कहलाता है। निर्वेद का स्वरूप और फल इस प्रकार कहा गया है:—

"भगवन्! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है? निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य और तिर्यंच संबंधी काम भोगों में शीघ्र ही विरक्ति उत्पन्न होती है। सब विषयों से जीव विरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है। आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग को त्यागता है और मोक्षमार्ग को अंगीकार करता है"।—(उत्तरा. अ. २९)

વિષયોમાં આસક્તિ થાય નહિ તે निर्वेद છે. 'કામભોગસમ્બન્ધી અધ્યવસાય આ લોકમાં અત્યન્ત દુઃખદાયક છે, અને પરલોકમાં પણ અત્યન્ત કટુક નરકગતિ આદિ રૂપ ફળ દેવાવાળા છે, એટલા માટે કામભોગસમ્બંધી અધ્યવસાયથી મારે શું લેવા દેવા છે. તેને ખૂબ પરિશ્રમ કરીને ત્યજી દેવા જોઈએ.' આ પ્રકારનું આત્મિક પરિણામ તે નિર્વેદ કહેવાય છે. નિર્વેદનું સ્વરૂપ અને ફલ આ પ્રકારે કહ્યું છે—

"ભગવન્! નિર્વેદથી જીવને શું લાભ થાય છે?

નિર્વેદથી જીવને દેવતા, મનુષ્ય અને તિર્યંચસમ્બન્ધી કામભોગોમાં શીઘ્રજ વિરકિત ઉત્પન્ન થાય છે. સર્વવિષયોથી જીવ વિરકત થઈ જાય છે. સર્વ વિષયોથી વિરકત થઈને આરંભનો પરિત્યાગ કરતો થકો સંસારમાર્ગને ત્યજી દે છે. અને મોક્ષમાર્ગનો અંગીકાર કરે છે." (ઉત્તરા૦ અ૦ ૨૯)

'कदाऽहं संसारं परित्यजेयम् ?' इत्येवंरूपेण निर्वेदेन दिव्यमानुषतैरश्चेषु कामभोगेषु निर्वेदम्=अनासक्तिं जीवः शीघ्रं प्राप्नोति। इममेवार्थं स्पष्टयति–सर्वविषयेषु विरज्यते–'अलमेतैरनर्थहेतुभूतैर्विषयैः' इत्येवंरूपं वैराग्यं प्राप्नोति । वैराग्यं प्राप्तश्च सावद्यव्यापारं परित्यजति । तत्परित्यागं कुर्वन् संसारमार्गं=मिथ्यात्वाविरतिप्रभृति-रूपं व्यवच्छिनत्ति, संसारमार्गव्यवच्छेदे च जीवः सिद्धिमार्गं=सम्यग्दर्शनादिरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

अनुकम्पा–अनु=अनुकूलं कम्पनं=रक्षणचेष्टाकरणमनुकम्पा=जिनप्रवच-नानुसारेणजीवानामुपरि कारुण्यं, प्राणातिपाताकरणं, परदुःखनिवारणं, म्रियमाण-

'कब मैं संसार का त्याग करूँ?' इस प्रकार के निर्वेद से जीव को देव मनुष्य और तिर्यंच संबंधी काम भोगों में अनासक्ति प्राप्त होती है । इसी विषय को स्पष्ट करते हैं कि–जीव सब विषयों से विरक्त हो जाता है, अर्थात् 'इन अनर्थ के कारणभूत विषयों से बस करो!' इस प्रकार का वैराग्य पाता है । वैराग्य पाकर जीव सावद्य व्यापार का त्याग कर देता है । सावद्य व्यापारका त्याग करता हुआ मिथ्यात्व अविरति आदि संसारमार्ग को छोडता है और संसारमार्ग का त्याग कर के सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है ।

'**अनु**' अर्थात् अनुकूल '**कम्पन**' अर्थात् रक्षा करने की चेष्टा करना–अनुकम्पा है । अर्थात् जिन भगवान् के उपदेश के अनुसार जीवों पर करुणाभाव होना, किसी के प्राणों का वियोग न करना, दूसरों का दुःख दूर करना, मरते हुए और मारे जाते हुए प्राणियों को प्राण

'हुं क्यारे संसारनो त्याग करुं?' आ प्रकारना निर्वेदथी जीवने देव, मनुष्य अने तिर्यंच सम्बन्धी कामभोगोमां अनासक्ति प्राप्त थाय छे, ते विषयने स्पष्ट करे छे केः–जीव सर्व विषयोथी विरक्त थई जाय छे. अर्थात् आ अनर्थना कारणभूत विषयोथी बस करो!' आ प्रकारनो वैराग्य पामे छे. वैराग्य पामीने जीव सावद्य व्यापारनो त्याग करी दे छे. सावद्य व्यापारनो त्याग करतो थको मिथ्यात्व, अवि-रति आदि संसारमार्गने छोडे छे, अने संसारमार्गनो त्याग करीने सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्गने प्राप्त करी ले छे.

अनु अर्थात् अनुकूल, कम्पन अर्थात् रक्षा करवानी चेष्टा करवी ते अनुकम्पा छे. अर्थात्–जिन भगवानना उपदेश प्रमाणे जीवो पर करुणाभाव थवो, कोईना प्राणोनो वियोग करवो नहि, बीजाना दुःख दूर करवां, मरतां अने मरातां प्राणीओने प्राण–

मार्यमाणप्राणिनां प्राणसंकटान्मोचनं च ।

आस्तिक्यम्-जिनप्रणीतागमानुसारेण 'अस्ति जीवादिपदार्थसार्थः' इति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तस्य भावः आस्तिक्यम् । 'जिनेन्द्रप्रवचनोपदिष्टा जीवपरलोकादयः सर्वेऽतीन्द्रियाः पदार्थाः सन्ति' इत्येवंरूप आत्मपरिणामः ।

एभिः शमसंवेगादिभिर्भव्यानां श्रद्धाऽवबुध्यते ।

। मिथ्यादृष्टेरपि श्रद्धाप्राप्तिः-

श्रद्धा निसर्गादधिगमाद्वा जायते । उक्तञ्च—

"सम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते तंजहा-निसग्गसम्मद्दंसणे चेव अधिगम-

---

संकट से छुडाना-**अनुकम्पा** है ।

'आस्तिक्य'—"जिनप्रणीत आगम के अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है" । एसी "जिस की मति हो वह **'आस्तिक'** है । आस्तिकपन को **'आस्तिक्य'** कहते हैं । जिनप्रवचन में उपदिष्ट जीव, परलोक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ हैं" इस प्रकार का आत्म-परिणाम **'आस्तिक्य'** है ।

इन शम संवेग आदि से भव्यों के सम्यक्त्व का पता लगता है ।

मिथ्यादृष्टि को श्रद्धाप्राप्ति

जिस ? (स्वभाव) से अथवा अधिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) से श्रद्धा उत्पन्न होती है । कहा भी है—

"सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है-निसर्ग-सम्यग्दर्शन और अधिगम-

---

સંકટથી છોડાવવા તે अनुकम्पा છે.

आस्तिक्य—"જિનપ્રણીત આગમ અનુસાર જીવાદિ પદાર્થોનું અસ્તિત્વ છે." એવી જેની મતિ છે. તે આસ્તિક છે. આસ્તિકપણાને 'आस्तिक्य' કહે છે. 'જિન પ્રવચનમાં ઉપદિષ્ટ જીવ, પરલોક આદિ સર્વ અતીન્દ્રિય પદાર્થ છે. આ પ્રકારનાં આત્મપરિણામ તે आस्तिक्य છે.

આ શમ, સંવેગ, આદિથી ભવ્યોના સમ્યક્ત્વનો પતો લાગે છે.

મિથ્યાદૃષ્ટિને શ્રદ્ધાની પ્રાપ્તિ

નિસર્ગ (સ્વભાવ)થી અથવા અધિગમ (કોઈના દ્વારા સાંભળવું આદિ)થી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે. કહ્યું પણ છે કે-

"સમ્યગ્દર્શન બે પ્રકારનું કહ્યું છે-નિસર્ગ-સમ્યગ્દર્શન અને (૨) અધિગમ-

सम्मद्दंसणे चेय" (स्थानाङ्ग० स्था. २ उ. १)

तत्र निसर्गः, परिणामः, स्वभावः, इत्येकार्थकाः।

अपूर्वकरणानन्तरं यद् भवत्यनिवृत्तिकरणं तन्निसर्ग इति कथ्यते। निसृज्यते कार्योत्पत्तौ सत्यामिति निसर्गः, कार्ये समुत्पन्ने सति कारणस्य न किञ्चित् प्रयोजनं भवति, उत्पन्ने सम्यक्त्वे प्रयोजनाभावादनिवृत्तिकरणं परित्यज्यते। न चात्यन्तं परित्यागस्तस्येष्यते यतस्तदेव कारणं तेनाकारेण परिणतम्, यथा–उत्थितोऽपि पुरुषः पुरुष एव, आसीनो शयितो वा पुरुषः पुरुष एव, अवस्थामात्रभेदादवस्थावतो भेदः क्वापि न दृश्यते। तत्र–परिणामस्यानेकरूपत्वेऽपि परिणामिनोऽन्वयिद्रव्यस्य न तत्त्वात् सर्वथा भेदः,

---

सम्यग्दर्शन"। (स्थानांग. स्था. २ उ. १)

निसर्ग, परिणाम, या स्वभाव, ये सब पर्यायवाचक हैं।

अपूर्वकरण के पश्चात् होने वाला अनिवृत्तिकरण 'निसर्ग' कहलाता है। कार्य की उत्पत्ति हो जाने पर जो त्याग दिया जाता है वह 'निसर्ग' है। कार्य की उत्पत्ति हो जाने के बाद कारण का कोई प्रयोजन नहीं रहता, क्यों कि सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर प्रयोजन नहीं रहने से अनिवृत्तिकरण त्याग दिया जाता है, मगर उस का अत्यन्त परित्याग नहीं किया जाता, क्यों कि वही कारण उस आकार में–कार्यरूप में–परिणत हो जाता है। जैसे–खडा हुआ पुरुष–पुरुष ही है। बैठा हुआ या सोया हुआ पुरुष भी पुरुष ही है। अवस्थाओं में भेद होनेमात्र से अवस्थावाले में कहीं सर्वथा

સમ્યગ્દર્શન" (સ્થાનાંગ૦ સ્થા. ૨ ઉ. ૧)

નિસર્ગ, પરિણામ અથવા તો સ્વભાવ, આ સર્વ પર્યાયવાચક શબ્દો છે. અપૂર્વ-કરણની પછી થવાવાળાં અનિવૃત્તિકરણ નિસર્ગ કહેવાય છે. કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ જવા પછી જે ત્યજી દેવામાં આવે છે. તે નિસર્ગ છે. કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ ગયા પછી કારણનું કોઈ પ્રયોજન રહેતું નથી. કેમકે–સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન હોવા છતાંય પણ પ્રયોજન નહિ રહેવાથી અનિવૃત્તિકરણ ત્યાગી દેવામાં આવે છે. અર્થાત્ પ્રયોજન નહિ રહેવાથી અનિવૃત્તિકરણનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે. પરન્તુ તેનો અત્યન્ત પરિત્યાગ કરવામાં આવતો નથી; કારણ કે તે કારણ તેવા આકારમાં–કાર્યરૂપમાં–પરિણત થઈ જાય છે. જેમ ઉભો રહેલો પુરૂષ, પુરૂષજ છે, બેઠેલો અથવા સુતેલો પુરૂષ પણ પુરૂષજ છે, અવસ્થાઓમાં ભેદ થવા માત્રથી અવસ્થા-

तथाऽत्रापि अनिवृत्तिकरणरूपः परिणामो निसर्गः सम्यक्त्वाकारेण वर्तते पूर्वावस्थामपनुद्यावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव। परिणामोऽप्यत्र वैस्रसिक एव, अभ्रेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम्।

ननु श्रद्धा निसर्गतः कथमुत्पद्यते? उच्यते-कर्मणोऽनादित्वात्पूर्वकर्मोदयेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वेनैव कृतं तदपि कार्मणशरीरेण सहैव बध्यते कर्मत्वादिदानींतनकर्मवत्। एवंविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपभुञ्जानस्य भव्यजीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि तादृशभवस्थिति-

---

भेद नहीं देखा जाता। जैसे परिणमन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी-अन्वयिद्रव्य एक होने से उस में सर्वथा भेद नहीं होता। उसी प्रकार यहाँ अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है-उसकी पूर्व-अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी-जीवद्रव्य-ज्यों का त्यों ध्रुव बना रहता है। परिणाम भी यहाँ **वैस्रसिक** (स्वाभाविक) लेना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, अत एव परिणाम का अर्थ-स्वभाव है।

शङ्का--श्रद्धा, स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं?।

समाधान--अनादि काल से लगे हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो-जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कार्मण शरीर के साथ ही बँधते हैं, क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान। इस प्रकार के पहेले ग्रहण किये हुए कर्मों का फल भोगते हुए भव्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभाववाला होने के कारण

વાળામાં કોઈ સર્વથા ભેદ જોવામાં આવતો નથી જેમ-પરિણમન અનેક પ્રકારનાં હોવા છતાંય પણ પરિણામી-અન્વયિદ્રવ્ય એક હોવાથી તેમાં સર્વથા ભેદ થતો નથી, તે પ્રમાણે અહિં અનિવૃત્તિકરણરૂપ પરિણામ નિસર્ગસમ્યક્ત્વના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે-તેની પૂર્વ અવસ્થા મટીને નવીન અવસ્થા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, પણ પરિણામી-જીવદ્રવ્ય-જેમ છે તેમ ધ્રુવ બની રહે છે. પરિણામ પણ અહિં **વૈસ્રસિક** (સ્વાભાવિક) લેવું જોઈએ, મેઘ તથા ઈન્દ્રધનુષની માફક. એ પ્રમાણે પરિણામનો અર્થ સ્વભાવ છે.

શંકા—શ્રદ્ધા સ્વભાવ (નિસર્ગ)થી કયા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે?

સમાધાન—અનાદિ કાળથી લાગેલાં પૂર્વ કર્મોના ઉદયથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ જે-જે કર્મ જીવે કર્યાં છે, તે સર્વ કાર્મણ શરીરની સાથેજ બંધાય છે; કેમકે તે કર્મ છે, વર્તમાનકાલીન કર્મોની સમાન. આ પ્રકારનાં પહેલાં ગ્રહણ કરેલા કર્મોનું ફલ ભોગવતો

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति। तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते। तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादिमिथ्यादृष्टिश्च। यः पूर्वं कदापि सम्यक्त्वं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः। यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकषायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं। उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं। इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है। और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है। इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थंकर आदि के उपदेश के विना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं-(१) **अनादिमिथ्यादृष्टि** और (२) **सादिमिथ्यादृष्टि**। जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह **अनादिमिथ्यादृष्टि** कहलाता है। जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

થકો ભવ્ય જીવ જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગસ્વભાવવાળા હોવાના કારણે. અનાદિ કાલથી મિથ્યાદૃષ્ટિ હોવા છતાંય પણ અમુક પ્રકારની ભવસ્થિતિનો પરિપાક હોવાથી તેને શુભ પરિણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે. તે અધ્યવસાયોનાં સ્થાન મંદ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોય છે. તેમાં જઘન્ય શુભ પરિણામનું સ્થાન વિશુદ્ધ છે, તેનાથી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર છે, અને એનાથી પણ ઉત્કૃષ્ટ શુભ પરિણામ વિશુદ્ધતમ છે. આ સ્થાનોને પ્રાપ્ત જીવના વધતા ગયેલા શુભ પરિણામોમાંથી એક એવું પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે કે જેના દ્વારા તીર્થંકર આદિના ઉપદેશ વિનાજ સ્વયમેવ, જીવને કર્મોનો ઉપશમ આદિ થવાથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે.

ક્રમ આ પ્રકારે છે-

બે પ્રકારના જીવ શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારી છે. (૧) અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ અને (૨) સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ. જે જીવે પહેલા ક્યારેય સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું. નથી તે અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ કહેવાય છે. જે ભવ્ય જીવે પહેલાં સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું પરન્તુ પછીથી

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, स उत्कर्षतो देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्राप्स्यति, स सादिमिथ्यादृष्टिर्भवति ।

यथाप्रवृत्तिकरणम्–

एवमुभयविधस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाध्यवसायः पूर्वं जघन्य-शुभपरिणाममङ्गीकृत्य परः परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते । स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'-मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण-मित्यस्य शब्दार्थस्त्वेवम्-यथा=येन अनादिसंसिद्ध-प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मक्षपणमनेनेति करणं=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मक्षपणकारणस्या-

---

बाद में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से फिर मिथ्यात्व आ गया किन्तु वह मिथ्यात्व जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह जीव **सादिमिथ्यादृष्टि** है ।

यथाप्रवृत्तिकरण–

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवों का अध्यवसाय पहले के जघन्य शुभ परिणाम से लेकर उत्तरोत्तर बढते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है । उसी परिणामविशेष को **'यथाप्रवृत्तिकरण'** कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है–**'यथा'** अर्थात् अनादि-कालीनरूप से जिस की **प्रवृत्ति** हो वह **यथाप्रवृत्ति** कहलाता है । जिस से कर्मों का क्षय किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को **'करण'** कहते हैं । यथाप्रवृत्ति-

---

અનન્તાનુબંધી કષાયના ઉદયથી ફરીથી મિથ્યાત્વ આવી ગયું. પણ તે મિથ્યાત્વ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્દ્ધ પુદ્ગલપરાવર્ત્તન સુધી રહે છે. તે જીવ સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ—

આ પ્રકારના બન્ને મિથ્યાદષ્ટિ જીવોના અધ્યવસાય પહેલાના જઘન્ય શુભ પરિણામથી લઈને ઉત્તઉરોત્તર વધતા શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહેવાય છે. તે પરિણામ-વિશેષને યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહે છે. "યથાપ્રવૃત્તિકરણ" નો શબ્દાર્થ આ પ્રકારે છે—'યથા' અર્થાત્ અનાદિ કાલીનરૂપથી જેની 'પ્રવૃત્તિ' હોય તે 'યથાપ્રવૃત્તિ' કહેવાય છે. જેનાથી કર્મોનો ક્ષય કરવામાં આવે છે, જીવના તે શુભ પરિણામને "કરણ" કહે છે.

ध्यवसायमात्रस्य सर्वदैव भावादुदयावलिकाप्रविष्टानां कर्मणां सर्वदैव क्षपणात् ।

यथाप्रवृत्तिकरणं भव्यस्याभव्यस्य च भवति । वक्ष्यमाणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च भव्यस्यैव भवति, न त्वभव्यस्य ।

मिथ्यात्ववशादनन्तान् पुद्गलपरावर्त्तान् अनन्तदुःखान्यनुभूय कथमपि तादृशभवस्थितिपरिपाकवशाद् गिरिणदीप्रवहद्दुद्वर्त्तितापवर्त्तितपाषाणवर्त्तुलावस्थावदनाभोगनिर्वर्त्तितेन यथाप्रवृत्तिकरणेन विशुद्धपरिणामविशेषरूपेणायुष्यकर्म वर्जयित्वा ज्ञानावरणीयादिकर्माणि सर्वाण्यपि पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैक-

---

रूप करण **यथाप्रवृत्तिकरण** कहलाता है । कर्मक्षय का कारणभूत अध्यवसाय सदैव बना रहता है, क्यों कि उदयावलिका में आए हुए कर्मों का सदा क्षय होता रहता है ।

यथाप्रवृत्तिकरण भव्य जीव को भी होता हैं और अभव्य जीव को भी होता है, किन्तु आगे कहे जाने वाले अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण भव्य जीव को ही होते हैं; अभव्य जीव को नहीं ।

मिथ्यात्व के वश होकर अनन्त पुद्गलपरावर्तनों तक अनन्त दुःखों को भोगने के पश्चात् किसी भी तरह उस प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से पहाडी नदी के प्रवाह में बहने वाला; लुढक (गुडक)ने वाला, घिसने वाला पाषाण जैसे गोलमटोल बन जाता है, उसी प्रकार अनजान में ही यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणाम के कारण आयुकर्म को छोडकर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम

યથાપ્રવૃત્તિરૂપ કરણ તે 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' કહેવાય છે. કર્મક્ષયના કારણભૂત અધ્યવસાય હમેશાં બની રહે છે, કેમકે-ઉદયાવલિકામાં આવેલાં કર્મોનો હમેશાં ક્ષય થયા કરે છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ ભવ્ય જીવને પણ થાય છે, અને અભવ્ય જીવને પણ થાય છે, પરન્તુ આગળ કહેવામાં આવશે તે અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ ભવ્ય જીવોને જ થાય છે, અભવ્ય જીવોને થતાં નથી.

મિથ્યાત્વને વશ થઈને અનન્ત પુદ્ગલપરાવર્ત્તનો સુધી અનન્ત દુઃખોને ભોગવ્યા પછી કોઈ પણ પ્રકારે આ પ્રકારની ભવસ્થિતિનો પરિપાક થવાથી પ્રહાડી નદીના પ્રવાહમાં વહેવાવાળો-ગબડવાવાળો, ઘસાતો જતો પથ્થર જેવી રીતે ગોળ-મટોળ બની જાય છે, એ પ્રમાણે અજાણતાં પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણરૂપ વિશુદ્ધ પરિણામના કારણે આયુકર્મને છોડીને બીજા જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત કર્મ પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગ-ઓછાં

सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति। उक्तञ्च—

"अंतिमकोडाकोडीए होइ सव्वासिं कम्मपगडीणं।
पलियामसंखभागे, खीणे सेसे हवइ गंठी ॥ १ ॥"

तत्रायं क्रमो विज्ञेयः—ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-वेदनीया-ऽन्तरायकर्म-चतुष्टयस्य त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। नामगोत्रयोर्विंशति-सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटय उत्कृष्टा स्थितिः। तत्र यथाप्रवृत्तिकरणेन जीव उत्कृष्टां स्थितिं ह्रासयन् तावतीं स्थितिं प्रापयति, येन समानरूपेण सप्तानां कर्मणां पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थिति-

---

एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति में लाये जाते हैं। कहा भी है—

"समस्त कर्म प्रकृतियाँ जब पल्य के असंख्यातवें भाग कम कोडाकोडी की स्थितिवाली होती हैं, तब ग्रन्थि होती है" ॥ १ ॥

क्रम इस प्रकार है-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस-तीसकोडा-कोडी सागरोपम की है। नाम और गोत्रकी वीस-वीस कोडाकोडी सागरोपम की है, और मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सित्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है। यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा जीव इस सारी उत्कृष्ट स्थिति को घटाकर इतनी कम कर डालता है कि सातों कर्मों की स्थिति समानरूप से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम कोडाकोडी

એક કોડા-કોડી સાગરોપમની સ્થિતિમાં લાવવામાં આવે છે. કહ્યું પણ છે.

"સમસ્ત કર્મપ્રકૃતિઓ જ્યારે પલ્યના અસંખ્યાતમાં-ભાગ ઓછા-એક કોડા-કોડીની સ્થિતિવાળી હોય છે, ત્યારે ગ્રંથિ થાય છે." ॥૧॥

ક્રમ આ પ્રમાણે છે-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય અને અન્તરાય આ ચાર કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીસ-ત્રીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. નામ અને ગોત્રની વીસ વીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. અને મોહનીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ સીતેર (૭૦) કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા જીવ તમામ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિને ઓછી કરીને-એટલી ઓછી કરી નાંખે છે કે-સાતે કર્મોની સ્થિતિ સમાનરૂપથી પલ્યોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગ ઓછા એક સાગરોપમ કોડા-કોડીની બાકી રહી જાય છે એના

रवशिष्टा भवति । अत्रान्तरे च यथाप्रवृत्तिकरणेन कर्मनिर्जरां कुर्वतो जीवस्य यावत् पूर्वकर्मणो निर्जरा न भवति तावत् स्थीयमानं तीव्ररागद्वेषपरिणामरूपं कर्म, ग्रन्थि-सादृश्याद् ग्रन्थिरित्युच्यते ॥

यथा काष्ठविशेषस्य अतिकठोरनिविडातिशुष्कघनगूढग्रन्थिर्दुर्भेद्यस्तथा तीव्ररागद्वेषपरिणामरूपः कर्मविशेषोऽपि दुर्भेद्यो भवति तस्माद् ग्रन्थिशब्देन व्यवह्रियते ।

अभव्या अपि यथाप्रवृत्तिकरणबलेन कर्म क्षपयित्वाऽनन्तवारमेतद्ग्रन्थि-पर्यन्तमागच्छन्ति । कश्चिद् ग्रन्थिस्थानं प्राप्य तस्मादधः पतति । कश्चित्तत्रैव ग्रन्थिस्थाने स्थितस्तिष्ठति, न तस्मादग्रे प्रवर्तते ।

की बाकी रह जाती है । इसी बीच—यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा कर्मों की निर्जरा करते हुए जीव के जितने कर्मों की निर्जरा नहीं होती अर्थात् जो कर्म शेष रह जाते हैं, वे तीव्र राग-द्वेषपरिणामरूप कर्म, ग्रन्थि के समान होने के कारण **ग्रन्थि** (गांठ) कहलाती हैं ।

जैसे—काठविशेष की अत्यन्त कठिन घनी और एकदम सूखी भीतरी गांठ दुर्भेद्य होती है, उसी प्रकार राग—द्वेषपरिणामरूप कर्मविशेष भी दुर्भेद्य होता है, अत एव वह कर्म, **ग्रन्थि** कहलाती है ।

अभव्य जीव भी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा कर्म का क्षय कर के अनन्त वार ग्रन्थि पर्यन्त आ पहुँचते हैं, कोई-कोई ग्रन्थिस्थान को प्राप्त कर के फिर नीचे गिर जाता है । कोई—कोई ग्रन्थिस्थान पर ही ठहर जाता है, आगे नहीं बढता है ।

વચમાં—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મોની નિર્જરા કરતા થકા જીવનાં જેટલાં કર્મોની નિર્જરા નથી થતી અર્થાત્ જે કર્મ શેષ રહી જાય છે તે તીવ્ર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મ, ગ્રંથિના સમાન હોવાના કારણે ગ્રંથિ (ગાંઠ) કહેવાય છે.

જેવી રીતે કાષ્ઠ (લાકડા) વિશેષની અત્યન્ત કઠિન, મજબુત અને એકદમ સૂકી અંદરની ગાંઠ દુર્ભેદ્ય હોય છે, એ પ્રમાણે રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ પણ દુર્ભેદ્ય હોય છે. એટલા માટે તે કર્મ, ગ્રંથિ કહેવાય છે.

અભવ્ય જીવ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મનો ક્ષય કરીને અનંતવાર ગ્રંથિ સુધી પહોંચે છે. કોઈ કોઈ ગ્રંથિ સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈને પાછા નીચે પડી જાય છે. કોઈ—કોઈ ગ્રંથિ સ્થાન ઉપરજ રહી જાય છે. આગળ વધી શકતા નથી.

अभव्योऽपि कश्चिद् यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिपर्यन्तं समागत्य तीर्थङ्करातिशय-दर्शनेन लब्धिधारिभावितात्ममहात्मनो महिमावलोकनेन, प्रयोजनान्तरेण वा प्रवर्त्तमानः सूत्रार्थतदुभयश्रवणपठनरूपं श्रुतसामायिकं लभते, न त्वन्यदपूर्व-करणादिकम् ।

॥ अपूर्वकरणम्—

तदनन्तरं कश्चिदेव भव्यजीव आसन्नसिद्धिसुखत्वादुदितप्रचुरदुर्निवारवीर्य-प्रसरोऽतिनिशितकुठारेणेव यथाप्रवृत्तिकरणापेक्षया विशुद्धतरेणाभूतपूर्वशुभा-ध्यवसायविशेषरूपेणापूर्वकरणेन प्रागुक्तं दुर्भेद्यं कर्मग्रन्थिं भिनत्ति ।

कोई अभव्य भी यथाप्रवृतिकरणद्वारा ग्रन्थि तक आकर तीर्थंकर भगवान् का अतिशय देखकर, लब्धिधारी भावितात्मा महात्मा की महिमा देखकर, अथवा किसी अन्य प्रयोजन से प्रवृत्ति करता हुआ सूत्र, अर्थ और तदुभय आगम का श्रवण या पठनरूप श्रुतसामायिक को प्राप्त कर लेता है, मगर वह अपूर्वकरण आदि को नहीं पा सकता ।

अपूर्वकरण—

तदनन्तर मोक्षसुख समीप होने के कारण जिस में प्रचुर और दुर्निवार शक्ति उत्पन्न हो गई है ऐसा कोई भव्य जीव ही बहुत तीखे कुल्हाडे के समान यथाप्रवृत्ति-करण की अपेक्षा अधिक विशुद्ध, और पहले कभी भी प्राप्त न होने वाले शुभअध्यवसायरूप **अपूर्वकरण** के द्वारा उस दुर्भेद्य कर्मग्रन्थि को भेदता है ।

કોઈ અભવ્ય પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા ગ્રંથી સુધી આવીને તીર્થંકર ભગવાન્‌ના અતિશયને જોઇને, લબ્ધિધારી ભાવિતાત્મા મહાત્માનો મહિમા જોઈને, અથવા કોઈ અન્ય પ્રયોજનથી પ્રવૃત્તિ કરતો થકો, સૂત્ર, અર્થ અને તદુભય આગમના શ્રવણ અથવા પઠનરૂપ શ્રુત-સામાયિકને પ્રાપ્ત કરી લે છે, પરન્તુ તે અપૂર્વકરણ આદિને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી.

અપૂર્વકરણ—

ત્યાર પછી મોક્ષસુખ સમીપ હોવાના કારણે જેનામાં મહાન અને કોઈથી નિવારી શકાય નહિ તેવી શક્તિ ઉત્પન્ન થઈ ગઈ છે. એવો કોઈ ભવ્ય જીવજ બહુજ તીખા કુહાડા સમાન યથાપ્રવૃતિકરણની અપેક્ષા અધિક વિશુદ્ધ, અને પહેલાં કોઈ વખત પણ પ્રાપ્ત નહિ થયેલા શુભ-અધ્યવસાયરૂપ **અપૂર્વકરણ** દ્વારા એ દુર્ભેદ્ય કર્મગ્રંથિને ભેદે છે.

अस्मिन् ग्रन्थिभेदे मनःक्षोभपरिश्रमादिविघ्नाः भवन्ति । यथा विद्यासाधकस्य विद्याधिष्ठातृदेवताकृतोपसर्गैर्मनःक्षोभो भवति, यथा घोरमहासमरगतसुभटस्य दुर्धर्ष-बहुतरशत्रुगणपराजयकरणात्परिश्रमो भवति, यथा च महासमुद्रादिभ्यो नौकादितारणे नाविकस्य परिश्रमो भवति तथा प्रचुरदुर्जयकर्मशत्रुसंघातपराजये परिश्रमोऽतिशयेन जायते । वज्राश्मवद्दुर्भेद्योऽयं कर्मग्रन्थिः । अपूर्वकरणवज्रसूच्याश्रयमन्तरेणास्य भेदो दुष्करः ।

अपूर्वकरणवज्रसूच्या सकृद् ग्रन्थिभेदे कृते सति लब्धविशुद्धतमश्रद्धा-

---

ग्रन्थिभेदन करने में मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं । जैसे विद्या की साधना करने वाले को विद्या की अधिष्ठात्री देवता के द्वारा किये जाने वाले विघ्नों से मन में क्षोभ होता है, और घनघोर महायुद्ध में गये हुए योद्धा को बहु-संख्यक और दुर्जय शत्रुओं के दल पर विजय प्राप्त करने में परिश्रम करना पडता है, अथवा जैसे किसी महासमुद्र से जहाज वगैरह को पार लगाने में नाविक को परिश्रम करना पडता है, उसी प्रकार बहुत–से दुर्जय कर्मशत्रुओं के दल को पराजित करने में अत्यन्त परिश्रम करना पडता है । यह कर्मग्रन्थि वज्र की तरह बडी कठिनाई से भेदी जाती है । **अपूर्वकरणरूपी** वज्र की सुई का सहारा लिये विना उस का भेदन होना अशक्य है ।

अपूर्वकरण की वज्रमय सुई से एक बार कर्मग्रन्थि का भेदन हो जाने पर

ગ્રંથિભેદન કરવામાં માનસિક ક્ષોભ તથા પરિશ્રમ આદિ અનેક વિઘ્ન ઉપ-સ્થિત થાય છે. જેમ વિદ્યાની સાધના કરવાવાળાને વિદ્યાની અધિષ્ઠાત્રી દેવતાદ્વારા થવાવાળા વિઘ્નોથી મનમાં ક્ષોભ થાય છે, અને ઘનઘોર મહાયુદ્ધમાં ગયેલા યોધાને ઘણીજ સંખ્યાવાળા અને દુર્જય શત્રુઓના દળ ઉપર વિજય મેળવવામાં જેમ પરિશ્રમ કરવો પડે છે. અથવા—જેવી રીતે કોઈ મહાસમુદ્રમાંથી વહાણુ વગેરેને પાર લઈ જવામાં નાવિકોને પરિશ્રમ કરવો પડે છે, એ પ્રમાણે બહુજ દુર્જય કર્મશત્રુઓના દળનો પરાજય કરવામાં અત્યન્ત પરિશ્રમ કરવો પડે છે.

આ કર્મગ્રંથિ વજ્રના જેવી મહાકઠિનતાથી ભેદી શકાય છે. अपूर्वकरण રૂપી વજ્રની સોયની સહાય લીધા વિના તેનું ભેદન થવું અશક્ય છે.

अपूर्वकरणની વજ્રમય સોયથી એકવાર કર્મગ્રંથિનું ભેદન થઈ જવા પછી

सामर्थ्यान्न पुनर्ग्रन्थिबन्धनं भवति, यथा जातवेधो मणिः कथञ्चिद्रजसा परिपूरितेऽपि रन्ध्रे न पूर्वावस्थां प्राप्नोति, तथैव संस्पृष्टसम्यक्त्वो जीवः कथञ्चित्सम्यक्त्वापगमे पश्चात्तीव्ररागद्वेषपरिणामप्राप्तावपि न पुनर्ग्रन्थिरूपेण कर्म बध्नाति ।

यथा जन्मान्धस्य कथञ्चिच्चक्षुःप्राप्तौ सत्यां यथावस्थितपदार्थसार्थाविलोकनेन, यथा च महाव्याधिजनितदुरन्तघोरवेदनासमाक्रान्तस्य तद्व्याध्यपगमे महान् प्रमोदो जायते तथा भव्यस्यानिवृत्तिकरणबलेन वीतरागोपदिष्ट-

---

जीव को श्रद्धा की अत्यन्त विशुद्ध शक्ति प्राप्त हो जाती है, अत एव फिर कभी ग्रंथिबंध नहीं होता। किसी मणि में एक वार छेद कर दिया जाय और कालान्तर में उस में धूल भर जाय तो भी वह छेद पहले की भाँति नहीं होता। इसी प्रकार एकवार सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने वाला जीव सम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर भी बाद में तीव्र राग–द्वेषरूप परिणामों की प्राप्ति होने पर भी ग्रंथि के रूप में कर्मों का बंध नहीं करता।

जैसे जन्म से अंधे को किसी उपाय से आंख मिलने पर पदार्थों का असली स्वरूप देखकर अत्यन्त हर्ष होता है, अथवा जैसे किसी महान् रोग से होने वाली घोर वेदना से पीडित पुरुष के रोग हट जाने पर महान् हर्ष होता है, उसी प्रकार भव्य–जीव को **अनिवृत्तिकरण**–के बल से भगवान् वीतराग द्वारा कथित यथार्थ

જીવને શ્રદ્ધાની અત્યન્ત વિશુદ્ધ શક્તિ પ્રાપ્ત થઇ જાય છે, એટલા માટે ફરી કોઈ વખત ગ્રંથિબંધ થતો નથી. કોઈ મણિમાં એક વખત છિદ્ર–કાણું પાડ્યાં પછી કાલાન્તરમાં તે છિદ્રમાં કદાચ ધૂળ ભરાઈ જાય તો પણ તે છેદ પ્રથમ પ્રમાણે થતો નથી. આ પ્રકારે એકવાર સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરી લેવાવાળા જીવ, સમ્યક્ત્વનો નાશ થવા છતાં પણ પછીથી તીવ્ર રાગ–દ્વેષ રૂપ પરિણામોની પ્રાપ્તિ થવા છતાંય પણ ગ્રંથિના રૂપમાં કર્મોનો બંધ કરતા નથી.

જેવી રીતે જન્મથી આંધળાને કોઈપણ ઉપાયથી નેત્ર મળી જતાં પદાર્થોના અસલી સ્વરૂપને જોઈને અત્યંત હર્ષ થાય છે, અથવા જેમ કોઈ મહાન્ રોગથી થવાવાળી મહાઘોર વેદનાથી પીડિત પુરૂષનો રોગ નિવારણ થઈ જતાં તેને મહાન્ હર્ષ થાય છે. એ પ્રમાણે ભવ્ય જીવને **अनिवृत्तिकरण**ના બળથી, ભગવાન વીતરાગદ્વારા કથિત

यथावस्थितवस्तुतत्त्वाऽभिरुच्या श्रद्धयाऽभूतपूर्वो विषयवैरस्यपुरस्कृतः प्रमोदः प्रादुर्भवति ।

॥ अनिवृत्तिकरणम्—

ततश्च ग्रन्थिभेदोत्तरकालमेव ततो विशुद्धतमं शुभाध्यवसायविशेषमनिवृत्तिकरणं प्राप्नोति, येन तावन्न निवर्त्तते जीवः सम्यक्त्वं न लभते यावदित्यनिवृत्तिकरणमुच्यते । अनिवृत्तिकरणबलेन जीवः सम्यग्दर्शनं लभते । तदेव नैसर्गिकी श्रद्धोच्यते ।

ननु प्रागुक्तं 'मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धा जायते' पुनरुच्यते 'निसर्गादधिगमाद्वा श्रद्धा जायते ' तदसंगतम् ।

वस्तुस्वरूप के प्रति रूचिरूप श्रद्धा से विषयवैराग्यपूर्वक एक ऐसा आनन्द उत्पन्न होता है, जिस का पहेले कभी अनुभव नहीं हुआ था ।

अनिवृत्तिकरण—

ग्रंथिभेद के अनन्तर काल में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है । वही **अनिवृत्तिकरण** कहलाता है । यह परिणाम प्राप्त होने पर जीव सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना नहीं लौटता, इसी कारण इसे **'अनिवृत्तिकरण'** कहते हैं । **अनिवृत्तिकरण** के द्वारा जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है । उसी को नैसर्गिक श्रद्धा कहते हैं ।

शङ्का—पहले कहा था कि—'मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उपशम आदि से श्रद्धा उत्पन्न होती है' और बाद में कहते हैं कि—'निसर्ग से, अथवा अधिगम से श्रद्धा उत्पन्न होती है ' । यह कथन परस्पर असंगत है ?

યથાર્થવસ્તુસ્વરૂપની રૂચિરૂપ શ્રદ્ધાથી વિષયવૈરાગ્યપૂર્વક એક એવો આનંદ ઉત્પન્ન થાય છે કે–જેનો પહેલા કોઈ વખત અનુભવ થયો નથી.

અનિવૃત્તિકરણ—

ગ્રંથિભેદના અનન્તર (તરતના) કાળમાં અત્યન્ત વિશુદ્ધ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે તે 'अनिवृत्तिकरण' કહેવાય છે. આ પરિણામ પ્રાપ્ત થયાં પછી જીવ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યા વિના પાછો નથી ફરતો તેથીજ એને अनिवृत्तिकरण કહે છે. अनिवृत्तिकरण જીવ દ્વારા સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે. તેનેજ નૈસર્ગિક (સ્વાભાવિક) શ્રદ્ધા કહે છે.

શંકા—પહેલાં કહ્યું હતું કે–' મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમ આદિથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે. ' અને પછી કહો છો કે–' નિસર્ગ અથવા અધિગમથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, એ કથન પરસ્પર અસંગત છે.

अत्रोच्यते-स एव क्षयोपशमादिर्निसर्गाधिगमाद्वा जायते, तथा च श्रद्धाया अपि तद्द्वयं कारणं सिद्धयतीति न दोषः।

ननु सम्यक्त्वगुणरहितेनैव जीवेन द्राघीयसी कर्मस्थितिर्ग्रन्थिभेदात्पूर्वं यथाप्रवृत्तिकरणेन यथा क्षपिता तथा तदवशिष्टमपि कर्मग्रन्थिं यथाप्रवृत्तिकरणेनैव भिनत्तु, ततो मोक्षमप्येवमेव प्राप्नोतु किं पुनरपूर्वकरणालम्बनेन ? अत्रोच्यते-महाविद्यासाधनवदेतद् द्रष्टव्यम्। यथा महाविद्यायाः साधने पूर्वं स्वल्प एव परिश्रमो भवति, तत्सिद्धिप्राप्तिसमये तु सा विद्या तद्विद्याधिष्ठातृदेवताकृत-

---

समाधान—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि, निसर्ग से अथवा अधिगम से होता है, ऐसी स्थिति में यह दोनों कारण श्रद्धा के ही हैं, अतः कोई दोष नहीं है।

शङ्का—जीव ने सम्यक्त्व न होने पर भी जैसे उतनी बडी भारी कर्मस्थितिको ग्रंथिभेद से पहले ही **यथाप्रवृत्तिकरण** के द्वारा खपा डाली इसी प्रकार शेष स्थिति भी **यथाप्रवृत्तिकरण** के द्वारा ही खपा ले और मोक्ष भी इसी प्रकार प्राप्त करले फिर **अपूर्वकरण** का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान— महाविद्या की साधना की तरह ही यहाँ समझना चाहिए। जैसे महाविद्या की साधना में पहले थोडा-सा श्रम होता है किन्तु जब उस को सिद्धि का समय नजदीक आता है तो वह विद्याधिष्ठात्री देवताद्वारा किये जानेवाले नाना प्रकार के उपसर्गों द्वारा विघ्नयुक्त हो जाती है और प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य बन जाती है,

---

સમાધાન—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમ આદિ, નિસર્ગથી અથવા અધિગમથી થાય છે, એવી સ્થિતિમાં આ બન્ને કારણો શ્રદ્ધાનાજ છે તેથી કોઈ દોષ નથી.

શંકા—જીવને સમ્યક્ત્વ ન હોય તો પણ જેવી રીતે એવડી મહાભારી કર્મ સ્થિતિને ગ્રંથિભેદના પહેલાજ યથાપ્રવૃત્તિકરણના દ્વારા ખપાવી નાંખે છે તે પ્રમાણે શેષ સ્થિતિ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારાજ ખપાવી નાંખે અને મોક્ષ પણ આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત કરી લીએ તો પછી अपूर्वकरणનો આશ્રય લેવાની શું આવશ્યકતા છે ?

સમાધાન—મહાવિદ્યાની સાધના પ્રમાણેજ અહિં સમજી લેવું જોઈએ. જેમ મહાવિદ્યાની સાધનામાં પહેલાં થોડો એવો શ્રમ થાય છે, પરન્તુ જ્યારે તેની સિદ્ધિનો સમય નજીક આવે છે ત્યારે તે વિદ્યાની અધિષ્ઠાત્રીદેવતાદ્વારા કરવામાં આવતા નાના પ્રકારના ઉપસર્ગો દ્વારા વિઘ્નયુક્ત થઈ જાય છે. અને ઘણું કરીને અત્યન્ત કષ્ટસાધ્ય

विविधोपसर्गैः सविघ्ना कष्टतरसाध्या च प्रायशो भवति, तद्वद् ग्रन्थिभेदो मनः-क्षोभादिविविधोपसर्गैः, परमवीर्याविष्कारपूर्वककष्टतरसाध्यत्वेन च सविघ्नोऽतिदुष्करश्च, तस्मात् केवलं यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिभेदो न भवितुमर्हति, अत एवा पूर्वकरणमावश्यकमिति। इत्थं चापूर्वकरणेन ग्रन्थिभेदं विधायाऽनिवृत्ति-करणेन श्रद्धा लभ्यते।

॥ अधिगमश्रद्धा—

येन प्रकारेण निसर्गतः श्रद्धा जायते स कथितः, अधुना—अधिगमश्रद्धा व्याख्यायते—अधि=अधिकृत्य तीर्थङ्कराद्युपदेशं निमित्तीकृत्य गमः=ज्ञानं यद्भवति सोऽधिगमः, वीतरागोपदेशश्रवणाद् वीतरागप्रणीतागमार्थपर्यालोचनाद्वा यथाव-

---

इसी प्रकार ग्रन्थिभेद भी मनःक्षोभ आदि अनेक उपसर्गों के कारण विघ्नयुक्त हो जाता है और ग्रंथिभेद के करने में बडी शक्ति की आवश्यकता होती है, अत एव अकेले **यथाप्रवृत्तिकरण** से ग्रंथिभेद नहीं हो सकता, उस के लिए **अपूर्वकरण** की आवश्यकता होती है। इस प्रकार **अपूर्वकरण**—द्वारा ग्रन्थिभेद करने पर **अनिवृत्तिकरण**—द्वारा श्रद्धा प्राप्त की जाती है।

अधिगमश्रद्धा—

जिस प्रकार निसर्ग से श्रद्धा उत्पन्न होती है वह प्रकार कहा जा चुका। अब **अधिगमश्रद्धा** की व्याख्या की जाती है—तीर्थङ्कर आदि के उपदेश के निमित्त से होने वाला ज्ञान **अधिगम** कहलाता है। वीतराग भगवान् का उपदेश सुनने से

બની જાય છે; એ પ્રમાણે ગ્રંથિભેદ પણ મનઃક્ષોભ આદિ અનેક ઉપસર્ગોના કારણે વિઘ્નયુક્ત થઈ જાય છે, અને તે ગ્રન્થિભેદના કરવામાં ભારે શક્તિની આવશ્યકતા હોય છે, એટલા માટે એકલા **યથાપ્રવૃત્તિકરણથી** ગ્રંથિભેદ થતો નથી, તેને માટે **અપૂર્વકરણની** આવશ્યકતા રહે છે, એ પ્રમાણે **અપૂર્વકરણ**-દ્વારા ગ્રંથિભેદ કરવાથી **અનિવૃત્તિકરણ**-દ્વારા શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવામાં આવે છે

અધિગમશ્રદ્ધા—

જે પ્રમાણે નિસર્ગથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રકાર કહેવામાં આવી ગયો છે. હવે **અધિગમશ્રદ્ધાની** વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે–તીર્થંકર આદિના ઉપદેશના નિમિત્તથી થવાવાળું જ્ઞાન તે **અધિગમ** કહેવાય છે. વીતરાગ ભગવાનનો ઉપદેશ સાંભળવાથી, અથવા

स्थितपदार्थनिर्णयो जायते सोऽधिगमः, तस्मादुपशमादिद्वारेण तत्त्वार्थाभिरुचिर्जायते सा-अधिगमश्रद्धा ।

श्रद्धया शमसंवेगादयः प्रादुर्भवन्ति, ततश्च राज्यादिविभवं पुत्रदारादिकं स्वजनं सर्वं परिणामदुःखप्रदं विषवत्परित्यज्य सर्वसुखसारभूतं नित्यं ध्रुवं शाश्वतिकं मोक्षसुखं प्राप्तुकामः प्रव्रजितो भवति ।

संयमश्रेणिप्राप्तिकाले या प्रवृद्धपरिणामधारा वर्तते तां सर्वथा रक्षेन्न तु ह्रासयेदिति भावः । श्रद्धायाः परमदुर्लभत्वात्, ज्ञानचारित्रकारणतया मोक्षस्यादि-

---

अथवा वीतराग द्वारा निरूपित आगम के अर्थ का विचार करने से पदार्थों का यथार्थ निर्णय होता है। उस निर्णय को **अधिगम** कहते हैं। उस **अधिगम** से मिथ्यात्व-मोहनीय का क्षय, उपशम आदि होने पर तत्त्वार्थ की जो रुचि होती है, वह **अधिगम-श्रद्धा** है।

श्रद्धा से शम, संवेग आदि उत्पन्न होते हैं, अत एव "राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी आदि समस्त आत्मीयजन अन्त में दुःखदायक हैं" ऐसा जान कर, और विष के समान उन का परित्याग कर के सब सुखों में उत्तम, नित्य, ध्रुव, शाश्वतिक मोक्ष-सुख की इच्छावाला वह सम्यग्दृष्टि पुरुष दीक्षित हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि-संयमप्राप्ति के समय परिणामों की जो बढी हुई धारा थी उस की सब प्रकार से रक्षा करना चाहिए, उसे घटने नहीं देना चाहिए। श्रद्धा परम दुर्लभ है, और ज्ञान एवं चारित्र का कारण होने से मोक्ष का आद्य कारण है, अत एव

વીતરાગદ્વારા નિરૂપિત આગમના અર્થનો વિચાર કરવાથી પદાર્થોનો યથાર્થ નિર્ણય થાય છે તે નિર્ણયને અધિગમ કહે છે. તે અધિગમથી મિથ્યાત્વમોહનીયનો ક્ષય-ઉપશમ આદિ થયા પછી તત્ત્વાર્થની જે રૂચિ થાય છે, તે અધિગમશ્રદ્ધા છે.

શ્રદ્ધાથી શમ, સંવેગ આદિ ઉત્પન્ન થાય છે. એટલા માટે "રાજ્ય આદિ વૈભવ તથા પુત્ર, પત્ની વગેરે સમસ્ત આત્મીયજન અંતમાં દુઃખદાયક છે." એ પ્રમાણે જાણીને વિષની સમાન તેનો ત્યાગ કરીને સર્વસુખોમાં ઉત્તમ, નિત્ય, ધ્રુવ, શાશ્વતિક મોક્ષ સુખની ઇચ્છાવાળા સમ્યગ્દૃષ્ટિ પુરૂષ દીક્ષિત થઈ જાય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-સંયમની પ્રાપ્તિના સમયે પરિણામોની જે વધતી જતી ધારા હતી તેનું સર્વ પ્રકારથી રક્ષણ કરવું જોઇએ. તેને ઘટવા દેવી જોઇએ નહિ. શ્રદ્ધા પરમ દુર્લભ છે અને જ્ઞાન, એવી રીતે ચારિત્રનું કારણ હોવાથી મોક્ષનું મુખ્ય કારણ છે. એટલા માટે

कारणत्वाच्च श्रद्धां न परित्यजेत् । यथा–कथञ्चित्प्राप्तस्यापि संयमस्य श्रद्धापूर्वकरक्षणे यावज्जीवं सावधानो भवेदिति सूत्राशयः ॥ सू० २ ॥

शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय 'परिशीलितमार्गोऽनुगम्यते' इति लोकरीत्या 'पूर्व-महापुरुषाचरितोऽयं मार्गः' इत्याशयेन कथयति—

यद्वा 'पूर्वमहापुरुषतीर्थङ्कर-गणधरादिभिरप्याचरितोऽयं मार्गः' इति प्रदर्शनाय शिष्यचेतसि श्रद्धातिरेको यथा स्यात्तथा सूत्रकारः स्वयमाह–'पणया' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पणया वीरा महावीहिं ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

प्रणता वीरा महावीथिम् ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, आशय यह है कि–बडी कठिनाई से प्राप्त होने वाले संयम की श्रद्धापूर्वक रक्षा करने में जीवनभर सावधान रहना चाहिए ॥सू. २॥

'चले मार्ग पर चला जाता है' इस लोकव्यवहार के अनुसार शिष्य की श्रद्धा मजबूत करनेके लिए 'यह मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा आचरित है' इस आशयसे कहते हैं—

अथवा–'पूर्वकाल के तिर्थङ्कर गणधर आदिने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया है' यह बतलाते हुए शिष्य के चित्त की श्रद्धा बढाने के लिए कहते हैं:— **'पणया'** इत्यादि ।

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्ग को प्राप्त हुए ॥ सू. ३ ॥

શ્રદ્ધાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ નહિ; આશય એ છે કેઃ–મહાન કઠિનાઈથી પ્રાપ્ત થવાવાળા સંયમની શ્રદ્ધાપૂર્વક રક્ષા કરવામાં જીવનના છેલ્લા રક્ષણ સુધી સાવધાન રહેવું જોઈએ. (સૂ. ૨)

"ચાલતા માર્ગ પર ચલાવાય છે." આ લોકવ્યવહાર પ્રમાણે શિષ્યની શ્રદ્ધા મજબૂત કરવા માટે–'આ માર્ગ પૂર્વકાલીન મહાપુરૂષોએ આચરણ કરેલ છે.' આ આશયથી કહે છે—

અથવા પૂર્વ કાલના તીર્થંકર ગણધર આદિ સૌએ આ માર્ગનું અવલમ્બન (આશ્રય) કર્યું. એ બતાવવા માટે શિષ્યના ચિત્તની શ્રદ્ધાને વધારવા માટે કહે છે— **'પણયા'** ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વીર પુરૂષ મહામાર્ગને પ્રાપ્ત થયા–(વીર પુરૂષે મહામાર્ગને પ્રાપ્ત કર્યો) (સૂ. ૩)

॥ टीका ॥

वीराः=परीषहोपसर्गकषायादिरूपशत्रुविजयिनो भाववीराः संयमानुष्ठाने वीर्य-वन्तः सर्वोत्कृष्टा इति यावत्,

महती चासौ वीथिः महावीथिः=सम्यग्ज्ञानादिलक्षणो महामार्गः, महा-पुरुषसेवितत्वात्, तां महावीथिम् प्रणताः=प्राप्ताः कठिनतरतपःसंयमाराधनेन प्राप्तवन्त इत्यर्थः, अयमेव मार्गो मोक्षावाप्तिकरोऽशेषसंयमिसेवितत्वात्। तीर्थङ्करादिमहापुरुषा अपि मार्गमिममनुशीलितवन्त इति विश्वसनीयतया शिष्याणां श्रद्धापूर्वकप्रवृत्तिर्यथा स्यादिति भावः।

यथा राजानो विपक्षपक्षदलनाद् वीरत्वेन प्रसिद्धा भवन्ति, एवमेव

टीकार्थ—परीषह, उपसर्ग, कषाय आदिरूप शत्रुओं को जीतनेवाले, संयम के आचरण में पराक्रम करनेवाले सर्वोत्कृष्ट भाववीर यहाँ 'वीर' शब्द से ग्रहण किये गये हैं।

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष का महामार्ग 'महावीथि' कहलाता है, क्यों कि महापुरुषोंने उस का सेवन किया है। भाववीर इस महामार्ग को प्राप्त हुए हैं। अत्यन्त कठोर तप और संयम का आराधन करना ही इस मार्ग को प्राप्त करना है। यही मार्ग मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है, क्यों कि समस्त मुनियोंने इसी का सेवन किया है। तीर्थंकर आदि महापुरुषोंने भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है, अत एव विश्वसनीय समझ कर शिष्यगण की भी इसी में प्रवृत्ति होनी चाहिए।

'वीर' पद से यह प्रकट किया गया है कि—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओं का

ટીકાર્થ—પરીષહ, ઉપસર્ગ કષાય વગેરે શત્રુઓને જીતવાવાળા, સંયમના આચરણમાં પરાક્રમ કરવાવાળા સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવવીર અહિં 'वीर' શબ્દ વડે ગ્રહણ કરવામાં આવ્યા છે.

સમ્યગ્જ્ઞાન આદિ મોક્ષનો માર્ગ તે "महावीथि" કહેવાય છે, કારણ કે મહા-પુરૂષોએ તેનું સેવન કર્યું છે. ભાવવીર આ મહામાર્ગને પ્રાપ્ત થયા છે. અત્યન્ત કઠોર તપ અને સંયમનું આરાધન કરવું એ જ આ માર્ગને પ્રાપ્ત કરવો તે છે. આ માર્ગજ મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળો છે, કારણ કે સમસ્ત મુનિઓએ એ માર્ગનો સેવન કર્યું છે. તીર્થંકર આદિ મહાપુરૂષોએ પણ આ માર્ગનો આશ્રય લીધો છે, એટલા માટે આ માર્ગને વિશ્વાસપાત્ર સમજીને શિષ્યગણની પણ આ માર્ગમાં પ્રવૃત્તિ થવી જોઈએ.

'वीर' પદથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે:—જેમ રાજા લોક પોતાના શત્રુઓનો

परिषहादिरूपशत्रुविजयेन संयमिनोऽपि मोक्षमार्गं लब्ध्वा लोकोत्तरवीरा भवन्ति, इति वीरपदेन व्यज्यते, इति सूत्राशयः ॥ सू० ३ ॥

कश्चिन्मन्दधीः शिष्योऽनेकदृष्टान्तैर्बोध्यमानोऽपि अप्कायादिजीवेषु न श्रद्दधातीति तमुद्दिश्य कथयति–हे शिष्य ! तव मतिर्यद्यप्यप्कायजीवविषये न परिस्फुरति, तद्विषये विशेषज्ञानाभावात्, तथापि भगवदाज्ञया श्रद्धा नितरां विधेयेत्याशयेनाह—'लोगं च' इत्यादि ।

मूलम्—

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लोकं चाज्ञयाऽभिसमेत्य अकुतोभयम् ॥ सू० ४ ॥

दलन करके वीर पदवी पाते हैं, उसी प्रकार परीषह आदि शत्रुओं को जीतने से संयमी मोक्षमार्ग प्राप्त कर के लोकोत्तर वीर कहलाते हैं ॥सू. ३ ॥

कोई मन्दबुद्धिवाला शिष्य अनेक दृष्टान्तों से समझाने पर भी अप्काय आदि के जीवों पर श्रद्धा नहीं करता तो उसे लक्ष्य कर के कहते हैं–हे शिष्य ! यद्यपि तुम्हारी बुद्धि अप्काय के जीवों के विषय में नहीं दौडती, क्यों कि तुम्हें उस विषय का विशेष ज्ञान नहीं है; फिर भी भगवान् की आज्ञा से अवश्य ही श्रद्धा रखनी चाहिए । इस आशय से कहते हैं–'**लोगं च**' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् की आज्ञा से (अप्कायरूप) लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर संयम का पालन करना चाहिए ॥ सू. ४ ॥

નાશ કરીને વીર પદવી પ્રાપ્ત કરે છે, તે પ્રમાણે પરીષહ આદિ શત્રુઓને જીતવાથી સંયમી પણ મોક્ષમાર્ગ પ્રાપ્ત કરીને લોકોત્તર વીર કહેવાય છે. (સૂ. ૩)

કોઈ મંદબુદ્ધિવાળા શિષ્ય અનેક દૃષ્ટાન્તોથી સમજાવ્યા છતાં પણ અપ્કાય આદિના જીવો પર શ્રદ્ધા નથી કરતા તો તેને લક્ષ્યરૂપ રાખીને કહે છે કેઃ–હે શિષ્ય ! હજી સુધી તમારી બુદ્ધિ અપ્કાયના જીવો વિષયમાં દોડતી નથી. (કામ કરતી નથી) કારણ કે તમને આ વિષયનું વિશેષ જ્ઞાન નથી તો પછી ભગવાનની આજ્ઞાથી અવશ્યજ શ્રદ્ધા રાખવી જોઈએ. એ આશયથી કહે છે–' लोगं च ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાનની આજ્ઞાથી (અપ્કાયરૂપ) લોકને સમ્યક્ પ્રકારથી જાણીને સંયમનું પાલન કરવું જોઈએ. (સૂ. ૪)

टीका—

अत्र लोकशब्देन प्रकरणवशादप्कायलोक एव गृह्यते, तमप्काय-लोकं, 'च'-शब्देनान्याँश्चाप्कायाश्रितान्, आज्ञया=तीर्थङ्करवचनेन, अभिसमेत्य= आभिमुख्येन सम्यक् ज्ञात्वा 'अप्कायादयो जीवाः सन्ती-त्येवमवबुध्येत्यर्थः, अकुतोभयम्=नास्ति कुतश्चित्केनापि प्रकारेण प्राणिनां भयं यस्मात्सोऽकुतोभयः= संयमस्तम् अनुपालयेत् इत्यन्वयः। सर्वथा जीवाभिरक्षणरूपसंयमानुपालने सावधानतया यत्नः कार्य इत्यर्थः।

यद्वाऽकुतोभयोऽप्कायलोको, यतोऽसौ न कुतश्चिदन्यस्माद्भयमिच्छति, स्वकीयमरणादिभयात् सर्वः प्राणिगणः खिन्नो भवति। 'सव्वे जीवा वि

टीकार्थ--मूल सूत्र में दिये हुए **'लोक'** शब्द से, प्रकरण के कारण यहां अप्काय-लोक ही समझना चाहिए। **'च'** शब्द से अप्काय के आश्रय रहे हुए अन्य जीवों का ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अप्काय और अप्काय के आश्रित रहनेवाले अन्य जीवों को तिर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा से सम्यक् प्रकार जानकर अर्थात् 'अप्काय आदि जीव हैं' ऐसा समझ कर संयम का पालन करना चाहिए। **'अकुतोभय'** अर्थात् जिस से किसी भी प्राणि को किसी प्रकार का भय न हो ऐसा संयम। सर्वथा जीवरक्षारूप संयम के पालने में सावधान होकर यत्न करना चाहिए।

अथवा--**'अकुतोभय'** का अर्थ है-अप्कायलोक, क्यों कि वह दूसरे से भय की इच्छा नहीं करता। सभी प्राणो अपनी मृत्यु आदि के भय से खिन्न होते हैं।

ટીકાર્થ—મૂલસૂત્રમાં આપેલા 'लोक' શબ્દથી પ્રકરણના કારણે અપૂકાય-લોકજ સમજવું જોઈએ. 'च' શબ્દથી અપ્કાયના આશ્રયે રહેલા અન્ય જીવોનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ. એ પ્રમાણે અપ્કાય અને અપ્કાયના આશ્રિત રહેવાવાળા અન્ય જીવોને તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાથી, સમ્યક્ પ્રકારે જાણી કરીને અર્થાત્ 'અપ્કાય આદિ જીવ છે.' એ પ્રમાણે સમજીને સંયમનું પાલન કરવું જોઇએ. "अकुतोभय" અર્થાત્ જેના વડે કોઇપણ પ્રાણીને કોઈ પ્રકારનો ભય ન હોય એવો સંયમ, સર્વથા જીવ-રક્ષારૂપ સંયમના પાલનમાં સાવધાન થઈને યત્ન કરવો જોઈએ.

અથવા 'अकुतोभय'નો અર્થ છે-અપ્કાયલોક, કારણ કે તે બીજાના તરફથી ભયની ઇચ્છા કરતા નથી; સર્વ પ્રાણી પોતાના મૃત્યુ આદિના ભયથી ખિન્ન-દુઃખી થાય છે.

इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात्। तमप्कायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः। संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मित्ती मे सव्वभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावाद्बुद्धिसंस्कारराहित्येनाप्कायजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'–त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण–तीर्थङ्कर–वचनप्रामाण्यादवश्यं

आगम में कहा है–'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते।" उस अप्कायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे। संयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है। वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता। "मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है" इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है। इस कारण संयमी उन्हे भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, संस्कार से रहित होने के कारण अप्काय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

આગમમાં પણ કહ્યું છે કેઃ–"સર્વ જીવ જીવતા રહેવાની ઇચ્છા કરે છે, મરવાની ઇચ્છા કરતા નથી." તે અપ્કાયલોકનું પાલન કરે અર્થાત્ રક્ષા કરે. સંયમી પુરૂષ સમસ્ત પ્રાણીઓના રક્ષક થાય છે. તે કોઈ પણ પ્રાણીને ભય ઉત્પન્ન કરતા નથી. 'સર્વ પ્રાણીઓ પર મારો મૈત્રીભાવ છે.' આ વચન પ્રમાણે તેની સર્વ પ્રાણીમાત્ર પર મિત્રતાની ભાવના હોય છે, તે કારણથી સંયમી તે જીવોને ભય ઉત્પન્ન કરતા નથી, કોઈને પણ કોઇથી ભય ઉત્પન્ન કરાવતા નથી, પરંતુ તે સર્વ પ્રાણીઓની રક્ષા કરે છે.

જો કે છદ્મસ્થ જીવોને સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોનું જ્ઞાન નથી; તે કારણથી તથા બુદ્ધિ, સંસ્કારથી રહિત હોવાથી અપ્કાયના જીવોમાં અવ્યક્ત ચેતના હોવાથી, તથા 'જલ જીવ છે' એ વાત પ્રત્યક્ષ નહિ હોવાથી ઇન્દ્રિયોદ્વારા કોઈ વખત જાણવામાં આવતી નથી તો પણ સંપૂર્ણ તીર્થનો ઉદ્ધાર કરવામાં સમર્થ તીર્થંકરના વચનોને પ્રમાણ

विश्वासो विधेयः। अवध्यादिप्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि पूर्वं भगवदाज्ञायां श्रद्धावन्तः सन्त एवाऽप्कायजीवान् विज्ञाय प्रत्यक्षज्ञानिनः संजाताः, अतः संयमिभिरवश्यमप्कायादि-जीवरक्षायां सावधानैर्भवितव्यमिति परमार्थः ॥ सू० ४ ॥

अप्कायलोकं भगवदाज्ञया विज्ञाय संयमिना यत् कर्तव्यं, तत् कथयति-'से बेमि' इत्यादि।

मूलम्—

से बेमि-णेव सयं लोगं अब्भाइक्खिज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खिज्जा, जे लोयं अब्भाइक्खइ से अत्ताणं अब्भाइक्खइ, जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं अब्भाइक्खइ ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स ब्रवीमि नैव स्वयं लोकमभ्याख्यात्, नैवात्मानमभ्याख्यात्, यो लोक-मभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति, य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्या-ख्याति ॥ सू० ५ ॥

मानकर अवश्य विश्वास करना चाहिए। अवधिज्ञानी आदि प्रत्यक्षज्ञानी भी पहले भगवान् की आज्ञा पर श्रद्धा रखते हुए अप्काय के जीवों को जान कर प्रत्यक्षज्ञानी हुए, अतः संयमी जनों को अप्काय आदि के जीवों की रक्षा में सावधान होना चाहिए ॥ सू. ४ ॥

भगवान् की आज्ञा से अप्कायलोक को जान कर संयमी को जो करना चाहिये वह प्रगट करते हैं—'से बेमि' इत्यादि।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ-स्वयं अप्कायलोक का अपलाप न करे, आत्मा का अपलाप न करे, जो लोक का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है, और जो आत्मा का अपलाप करता है वह लोक का अपलाप करता है ॥ सू. ५ ॥

માનીને અવશ્ય વિશ્વાસ કરવો જોઇએ. અવધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જ્ઞાની પણ પ્રથમ ભગવાનની આજ્ઞા પર શ્રદ્ધા રાખીને અપ્કાયના જીવોને જાણી કરીને પ્રત્યક્ષજ્ઞાની થયા, એ માટે સંયમી પુરૂષોએ અપ્કાય આદિના જીવોની રક્ષામાં સાવધાન રહેવું જોઇએ. (સૂ. ૪)

ભગવાનની આજ્ઞાથી અપ્કાયલોકને જાણીને સંયમીનું જે કર્ત્તવ્ય છે તે પ્રગટ કરે છે—'से बेमि' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું-પોતે અપ્કાય લોકનો અપલાપ-(હોવા છતાં નથી કહેવું તે) ન કરે. આત્માનો અપલાપ કરે નહિ. જે લોકનો અપલાપ કરે છે તે આત્માનો અપલાપ કરે છે. અને જે આત્માનો અપલાપ કરે છે તે લોકનો અપલાપ કરે છે. (સૂ. ૫)

टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञाताप्कायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः। लोकम्=अप्कायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्='आपो जीवा न सन्ती'-त्येवं नापलपेदित्यर्थः। अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति—चोरोऽयमिति। अत्र तु—'घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जलं, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्' एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते।

नन्वजीवानामपां जीवत्वारोपणमेवाभ्याख्यानं कुतो न भवति? मैवम्,

टीकार्थ——भगवान् के वचनों के अनुसार अप्काय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वयं अप्कायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि-'जल जीव नहीं है'।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना। यहाँ "घी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वयं जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है"। इस प्रकार का कथन ही असत्-अभियोग है। क्यों कि घोडा वगैरह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अतः जल के जीवपन का अपलाव नहीं किया जा सकता।

शंका——अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय?

ટીકાર્થ—ભગવાનનાં વચનો પ્રમાણે અપ્કાયનું સ્વરૂપ જાણવાવાળો હું કહું છું, અર્થાત્ મેં ભગવાનની પાસેથી જેવું સાંભળ્યું છે તેવુંજ કહું છું—પોતે અપકાય રૂપ લોકનો અપલાપ કરે નહિ, અર્થાત્ એવું કહે નહિ કેઃ-'જલ જીવ નથી.' અસત્ આરોપને અભ્યાખ્યાન કહે છે, જેમકે અચૌરને ચૌર કહેવો. અહિ "ઘી તેલ આદિ પ્રમાણે જલ એ જીવોનું ઉપકરણમાત્રજ હોઈ શકે છે, તે સ્વયં જીવ નથી, કારણ કે" તે જીવનું ઉપકરણ છે, આ પ્રકારનું કહેવુંજ-અસત્ (મિથ્યા) અભિયોગ છે, કારણકે ઘોડા વગેરે જીવ પણ જીવોપકરણના રૂપમાં જોવામાં આવે છે. તેથી જલનું જીવપણું અપલાપ કરી શકાય નહિ.

શંકા—અજીવ પાણીમાં જીવપણાનો આરોપ કરવો તેજ અભ્યાખ્યાન શા માટે નહિ સમજવું?

अनुमानागमाभ्यां जीवलक्षणकलापसम्बन्धाच्चापां जीवत्वनिरूपणात् ।

यद्यप्कायलोकस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्यात्मनोऽपि शरीराधिष्ठातुरभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् संभवतीत्यत आह-नैवमात्मानमभ्याख्यादिति । आत्मा हि शरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षभूतश्चेतनावानिति नापह्नोतुं शक्यः, तस्मादात्मा नास्तीत्येवमात्मानं नापलपेदित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः लोकम्=अप्कायलोकम् अभ्याख्याति=अपलपति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्निरूपितमात्मानमभ्याख्याति । यश्चात्मानमभ्याख्याति-'आत्मा नास्ती'ति यद्वा-'अहं नास्मी'ति, स महामूढः लोकम्=अप्कायलोक

समाधान-ऐसा मत कहो । अनुमान और आगमप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबंध से जल को जीव निरूपण किया गया है ।

यदि अप्काय लोक का अभ्याख्यान किया जाय तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्याख्यान करना होगा मगर वह संभव नहीं है, यही बात कहते हैं- आत्मा का अभ्याख्यान न करे । आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष चेतना वाला है, अतः उस का अपलाप नहीं किया जा सकता । अत एव 'आत्मा नहीं है" इस प्रकार आत्मा का अपलाप न करें ।

जो मन्दबुद्धि अप्कायलोक का निषेध करता है वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध आत्मा का अपलाप करता है । और जो 'आत्मा नहीं है, अथवा 'मैं नहीं हूँ' इस तरह आत्मा का अपलाप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के बल से

સમાધાન—આ પ્રમાણે કહો નહિ, અનુમાન અને આગમ પ્રમાણથી તથા જીવના લક્ષણોના સંબંધથી જલનું જીવપણું નિરૂપણ કર્યું છે. જો અપ્કાય-લોકનું અભ્યાખ્યાન કરવામાં આવે તો શરીરના અધિષ્ઠાતા આત્માનું પણ અભ્યાખ્યાન કરવું પડશે. પરન્તુ તે સંભવ નથી. એ વાત કહે છે—

આત્માનું અભ્યાખ્યાન કરશો નહિ. આત્મા શરીરનો અધિષ્ઠાતા છે, અને પ્રત્યક્ષ ચેતનાવાળો છે. તેથી તેનો અપલાપ કરી શકાશે નહિ. એટલા માટે 'આત્મા નથી' એ પ્રમાણે અપલાપ કરશો નહિ.

જે મંદ બુદ્ધિવાળા અપ્કાયલોકનો નિષેધ કરે છે, તે પ્રત્યક્ષ આદિ-પ્રમાણોથી સિદ્ધ-આત્માનો અપલાપ કરે છે, અને જે "આત્મા નથી" અથવા "હું નથી" એ પ્રમાણે આત્માનો અપલાપ કરે છે તે મહામૂઢ મનુષ્ય પોતાના અજ્ઞાનના બળથી

स्त्राज्ञानबलादभ्याख्याति। करचरणमुखाद्यवयवसहितशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातस्तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणस्याप्कायस्याभ्याख्यानं किं नु नाम दुष्करम्? ॥ सू० ५ ॥

अप्कायलोकस्याभ्याख्याने बहुदोषापातो भवतीति पर्यालोच्यानगारा अप्कायं नोपमर्दयन्ति। दण्डिशाक्यादयस्तु नानगारा भवितुमर्हन्ति, तेषामप्कायोपमर्दकत्वादित्याह–'लज्जमाणा' इत्यादि।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं

अप्काय का अपलाप करता है। जिस ने हाथ, पैर, मुख आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले आत्मा का ही अपलाप कर दिया तो उस के लिए अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले अप्काय का अपलाप करना कुच्छ भी कठिन नहीं है ॥ सू. ५ ॥

अप्काय का अपलाप करने से बहुत से दोष आते हैं, ऐसा विचार कर अनगार अप्काय की विराधना नहीं करते। दण्डी और शाक्य आदि, अनगार नहीं हो सकते, क्यों कि वे अप्काय की विराधना करते हैं। यह बात इस सूत्र में बतलाते हैं–**'लज्जमाणा'** इत्यादि।

मूलार्थ—अप्काय की हिंसासे संकोच करने वालों को अलग समझो, और **'हम अनगार हैं'** ऐसा कहने वालों को अलग समझो। जो नाना प्रकार के शस्त्रों से

અપ્કાયનો અપલાપ કરે છે. જેણે હાથ, પગ, મુખ આદિ અવયવોથી યુક્ત, શરીરના અધિષ્ઠાતા, તથા અત્યન્ત સ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા આત્માનોજ અપલાપ કરી દીધો, તેને માટે અસ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા અપ્કાયનો અપલાપ કરવો તે કાંઈ કઠિન નથી. (સૂ. ૫)

અપ્કાયનો અપલાપ કરવાથી ઘણાજ દોષ આવે છે, એવો વિચાર કરીને અણગાર અપ્કાયની વિરાધના કરતા નથી, દંડી અને શાકય આદિ, અણગારો થઈ શકતા નથી, કારણ કે તેઓ અપ્કાયની વિરાધના કરે છે. તે વાત આગળના સૂત્રમાં બતાવે છે–'લજ્જમાણા' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અપ્કાયની હિંસાનો સંકોચ કરવાવાળાને જૂદા જાણો અને "અમે અણગાર છીએ." એ પ્રમાણે કહેવાવાળાને પણ જૂદા જાણો. જે નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી

विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारंभेणं उदयसत्थं समारभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपाम् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

एके=अन्ये लज्जमानाः=अप्कायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया संकोचमापद्यमानाः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित्तु प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति पश्य । इमे सूक्ष्मबादराप्कायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैरप्कायारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

अप्काय का आरम्भ करते हैं वे अप्काय के शस्त्रों का आरंभ करने वाले अनेक प्राणियों के प्राणों का हनन करते हैं ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—तीव्रकरुणा से द्रवित हृदयवाले कोई-कोई (अनगार) अप्काय के आरंभ में संकोच करते हैं—अप्काय का आरंभ नहीं करते वे विभिन्न हैं—कोई अवधिज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, उन्हें देखो । ये सूक्ष्म बादर अप्काय का आरंभ करने में भीत हैं, त्रस्त हैं, उद्विग्न हैं, और तीन कारण तीन योग से अप्काय के आरंभ के त्यागी हैं, उन्हें देखो ।

અપ્કાયનો આરંભ કરે છે; તે અપ્કાયના શસ્ત્રોનો આરંભ કરવાવાળા અનેક પ્રાણીઓના પ્રાણોનો નાશ કરે છે. (સૂ. ૫)

ટીકાર્થ—તીવ્ર કરૂણાથી દ્રવિત હૃદયવાળા કોઈ-કોઈ અણગાર આરંભમાં સંકોચ કરે છે—અપ્કાયનો આરંભ કરતા નથી તે જૂદા છે. કોઈ અવધિજ્ઞાની, કોઈ મનઃપર્યયજ્ઞાની અને કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની ભાવિતાત્મા અણગાર છે, તેને જુઓ:-તે સૂક્ષ્મ અને બાદર અપ્કાયનો આરંભ કરવામાં ભય પામેલા છે, ત્રસિત છે, ઉદ્વિગ્ન છે, અને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી અપ્કાયના આરંભના ત્યાગી છે. તેને જુઓ.

एके=पुनरन्ये तु वयमनगाराः=साधवः स्मः, इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव अप्कायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थं प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्त्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति–'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः, द्रव्यभावरूपैः शस्त्रैः । तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकाय–परकाय–तदुभयरूपम् । स्वकायशस्त्रं–तडागाद्युदकस्य कूपाद्युदकम् । कूपाद्युदकस्य तडागाद्युदकं च । परकायशस्त्रं द्राक्षा–शाक–तण्डुल–पिष्ट–

और कोई–कोई लोग 'हम साधु हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ कहते हुए–अर्थात् 'हम ही अप्काय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस प्रकार वृथा प्रलाप करते हुए द्रव्यलिंगी हैं, उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी, अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते, और न गृहस्थ के किसी कार्य का त्याग करते हैं । यही बात आगे बतलाते हैं–'जमिणं.' इत्यादि ।

वे नाना प्रकार के शस्त्रों से जलका आरंभ करते हैं । शस्त्र अनेक प्रकार के हैं, उन में से द्रव्यशस्त्र–स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप है । तालाव का जल, कूप का जल परस्पर स्वकायशस्त्र है । इसी प्रकार कूप आदि के जल का शस्त्र–तालाव आदिका जल है यह स्वकायशस्त्र है । दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, चना, वाल आदि परकाय

અને કોઈ–કોઈ લોક "અમે સાધુ છીએ" આ પ્રમાણે અભિમાન સાથે કહેતા અર્થાત્ 'અમેજ અપકાયના રક્ષક અને મહાવ્રત ધારણ કરવાવાળા છીએ' આ પ્રમાણે વૃથા પ્રલાપ કરતા થકા દ્રવ્યલિંગી છે તેને જૂદા જાણો.

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી સાચા અણગારના ગુણોમાં જરાપણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થના કોઈપણ કાર્યોનો ત્યાગ કરતા નથી, તે વાત આગળ બતાવે છે–'जमिणं' ઈત્યાદિ.

તે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી જલનો આરંભ કરે છે. શસ્ત્રો અનેક પ્રકારના છે, તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્ર–સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય–રૂપ છે. તલાવનુ પાણી, કુવાનું પાણી, પરસ્પર સ્વકાયશસ્ત્ર છે. એ પ્રમાણે કુવા વગેરેના જલનું શસ્ત્ર તલાવ આદિનું જલ છે, તે પણ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. દ્રાક્ષ, ચાવલ, લોટ,

दाली-चणक-वल्लादिकम्। तदुभयशस्त्रं-मृत्तिकादिमिश्रं जलम्। भावशस्त्रम्=अपः प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिहितत्वम्। एतैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण=उदयकस्य कर्मसमारम्भः उदककर्मसमारम्भः=उदकमाश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध-निबन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्=अप्कायं विहिंसन्ति।

अप्कायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'उदकशस्त्र'-मित्यादि, उदकशस्त्रम्=उदकोपमर्दकं शस्त्रं, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रं, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदभिन्नं समारभमाणः=उदककायं प्रति व्यापारयन्तः, अन्यान्=अप्कायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन्—स्थावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति।

शस्त्र है। मिट्टी आदि से मिला हुआ जल उभयकायशस्त्र है। जल के विषय में मन, वचन और कायका दूषित प्रयोग करना भावशस्त्र है। इन शस्त्रों से जलकर्म का समारंभ कर के अर्थात् जल के आरंभद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के बंध कारणभूत सावद्य व्यापार कर के जलकाय की हिंसा करते हैं।

जो जलकाय की हिंसा में प्रवृत्त होते हैं वे षट्कायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, यह बतलाते हैं-'**उदयसत्थं.**' इत्यादि।

जिस के द्वारा हिंसा की जाय उसे शस्त्र कहते हैं। शस्त्र दो प्रकार के हैं-द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र। जिस से अप्काय की हिंसा हो वह अप्कायशस्त्र है। अप्काय-शस्त्र का अप्काय के विषय में प्रयोग करने वाले अप्काय से भिन्न अनेक पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की हिंसा करते हैं।

દાલ, ચણા, વાલ આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે. માટી આદિથી મળેલું જલ ઉભયકાયશસ્ત્ર છે. જલના વિષયમાં મન, વચન અને કાયાનો દૂષિત પ્રયોગ કરવો તે ભાવશસ્ત્ર છે. એ શસ્ત્રોથી જલકર્મનો સમારંભ કરીને, અર્થાત્ જલના આરંભદ્વારા જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોના બંધના કારણભૂત સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને જલકાયની હિંસા કરે છે.

જલકાયની હિંસામાં જે પ્રવૃત્ત થાય છે તે ષટ્કાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે. એ બતાવે છે—'उदयसत्थं'. ઈત્યાદિ જેના દ્વારા હિંસા કરી શકાય તેને શસ્ત્ર કહે છે. શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે—(૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર જેનાથી અપ્કાયની હિંસા થાય તે અપ્કાયશસ્ત્ર છે. અપ્કાયશસ્ત્રનો અપ્કાયના વિષયમાં પ્રયોગ કરવાવાળા અપ્કાયથી ભિન્ન અનેક પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોની દ્વીન્દ્રિય વિગેરે ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે.

जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा-'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः स्मः' इति वदन्तो दण्डिशाक्यादयः सन्ति। तत्र केचिद्देहशुद्ध्यर्थं बहूदकस्नायिनो भवन्ति। केचित्स्वनिवासार्थं गृहादि-निर्माणकरणे मृत्तिकापाषाणचूर्णादिषु निक्षेपणेनाप्कायमुपमर्दयन्ति। केचित् स्वोदर-पूर्त्यर्थं कृष्यादिषु जलसेचनं कुर्वन्ति। केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति, पार्थिवीं देवगुर्वादिप्रतिमामनेकघटजलैः स्नपयन्ति। ते हि सविधिजिनपूजायां, प्रतिमाप्रतिष्ठापने बहुविधसचित्तजलैः प्रतिमास्नपने च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो भवतीति मन्यन्ते, उपदिशन्ति च—

संसार में बहुतसे द्रव्यलिंगी हैं। जैसे—'हम पंचमहाव्रतधारी, सब आरम्भ के त्यागी, और षट्काय के रक्षक अनगार हैं' ऐसा कहने वाले दण्डी तथा शाक्य आदि हैं। इन में कोई-कोई देह की शुद्धि के लिए बहुत-से जल से स्नान करने वाले हैं। कोई अपने रहने के वास्ते मकान आदि बनाने के लिए मिट्टी कंकर और चूने वगैरह में मिलाकर जलकाय की हिंसा करते हैं। कोई अपना पेट भरने लिए कृषि (खेती) में जल सींचते हैं। कोई देकुलादिके लिये सावद्य उपदेश करते हैं। कोई देव एवं गुरु की पार्थिव प्रतिमा को बहुत से-घडे पानी से स्नान कराते हैं। वे विधिपूर्वक जिनपूजा में और प्रतिमा की प्रतिष्ठा में बहुत प्रकार के सचित्त जल से प्रतिमा के स्नान में, महा-भयंकर भवसागर से आत्मा का उद्धार होना मानते हैं और उपदेश देते हैं—

સંસારમાં બહુ સંખ્યામાં દ્રવ્યલિંગી છે. જેમ કે-'અમે પંચમહાવ્રતધારી, સર્વ પ્રકારના આરંભના ત્યાગી અને ષટ્કાયના રક્ષક અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દંડી તથા શાકય આદિ છે, તેમાંથી કેટલાક તો દેહની શુદ્ધિ માટે ઘણા જ જલથી સ્નાન કરવાવાળા હોય છે. કેટલાક તો પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવા માટે માટી કાંકરા અને ચુના વગેરેમાં મેળવીને જલકાયની હિંસા કરે છે. કોઈ-કોઈ પોતાનું પેટ ભરવા માટે ખેતીમાં જલ સીંચે છે. કોઈ દેવકુલ વગેરે માટે સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે, અને કોઈ દેવ અને ગુરૂની પાર્થિવ પ્રતિમાને ઘણાં જ-ઘડા પાણીથી સ્નાન કરાવે છે. તે વિધિપૂર્વક જિનપૂજામાં અને પ્રતિષ્ઠામાં ઘણાં જ પ્રકારના સચિત્ત જલથી પ્રતિમાને સ્નાન કરાવામાં મહાભયંકર ભવસાગરથી આત્મા-નો ઉદ્ધાર થાય છે, એવું માને છે. અને ઉપદેશ આપે છેઃ—

"सम्यक् स्नात्वोचिते काले, संस्नाप्य च जिनान् क्रमात् ।
पुष्पाहारस्तुतिभिश्च, पूजयेदिति तद्विधिः" ॥ १ ॥ (धर्मसंग्रहः)
"कुसुमक्खयधूवेहिं, दीवयवासेहि सुंदरफलेहिं ।
पूया घयसलिलेहिं, अट्ठविहा तस्स कायव्वा" ॥ १ ॥
(दर्शनशुद्धिः सटीका १ तत्त्व)

छाया—"कुसुमाक्षतधूपै-र्दीपकवासैः सुन्दरफलैः ।
पूजा घृतसलिलै,-रष्टविधा तस्य कर्त्तव्या ॥ १ ॥" इति ।

"विहिणा उ कीरमाणा, सव्व चिय फलवई भवे चेट्ठा ।
इअलोइया वि किं पुण, जिणपूया उभयलोगहिया" ॥ १ ॥
(पञ्चाशक ४ विव.)

छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वा चैव फलवती भवेच्चेष्टा ।
इहलौकिकाऽपि किं पुन,-र्जिनपूजा-उभयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥

तथैव पूजाप्रतिष्ठादिषु अप्कायोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावद्यकार्ये प्रवृत्त्याऽपि द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिनः शाक्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

"उचित काल में सम्यक् प्रकार से स्नान कर के और क्रम से जिनप्रतिमा को स्नान करा के पुष्प, आहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि है" । (धर्मसंग्रह)

"विधिपूर्वक की हुई समस्त इस लोकसंबंधी चेष्टाएँ भी सफल होती है तो जिनेन्द्र भगवान् की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् वह दोनों लोकों में हितकारी है" । (पञ्चाशक ४ विव.)

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अप्काय की हिंसारूप, शास्त्रनिषिद्ध सावद्य कार्य में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यलिंगी दंडी शाक्य आदि अपने आप को अनगार ही मानते हैं ।

"ઉચિત કાલમાં સમ્યક્પ્રકારથી સ્નાન કરીને અને ક્રમથી જિનપ્રતિમાને સ્નાન કરાવી, પુષ્પ, આહાર અને સ્તુતિથી પૂજા કરે. આ પ્રમાણે પૂજાની વિધિ છે. (ધર્મસંગ્રહ)

"વિધિપૂર્વક કરવામાં આવેલી લોકસંબંધી સમસ્ત ચેષ્ટાઓ (ક્રિયાઓ) પણ સફલ થાય છે, તો જિનેંદ્ર ભગવાનની પૂજાનું તો કહેવું જ શું? આ તો બન્ને લોકમાં હિતકારી છે ॥ ૧ ॥" (પંચાશક-૪-વિવ)

એ પ્રમાણે પૂજા પ્રતિષ્ઠા આદિ અપ્કાયની હિંસારૂપ શાસ્ત્રનિષિદ્ધ સાવદ્ય કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ કરીને પણ દ્રવ્યલિંગી દંડી, શાકય આદિ પોત-પોતાને અણગારજ માને છે.

ये उदकशस्त्रं प्रयुञ्जानाः षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति, ते द्रव्य-लिङ्गिनो नरकनिगोदादिनानाविधदुःखज्वालमालाकुले दीर्घसंसारे परिभ्रमन्ति, उक्तञ्च–

" सावज्जपूयकारी, सावज्जं उवदिसति जे अण्णू ।
आउक्कायवहाओ, भमंति ते दीहसंसारे ॥ १ ॥ " ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह ' तत्थ ' इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया। इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से

जो लोग जलशस्त्र का प्रयोग करते हुए षट्काय के समस्त जीवों की विराधना करते हैं वे द्रव्यलिंगी नरक आदि के नाना प्रकारके दुःखों की ज्वालाओं के समूह से व्याप्त लम्बे संसार में चारों ओर चक्कर लगाते हैं। कहा भी है—

"जो पुरुष ज्ञानरहित होकर सावद्य का उपदेश देते हैं वे, और सावद्य पूजा करने वाले हैं वे अप्काय की हिंसा से दीर्घ संसार में भ्रमण करते हैं" ॥ सू. ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं–' तत्थ ' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का प्रतिबोध दिया है। जो इस जीवन के सुख के लिए अपनी वन्दना, मानना, पूजा, जन्म–मरण से छुटकारा, तथा दुःखों का नाश

જે લોક જલશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને ષટ્કાયના તમામ જીવોની વિરાધના કરે છે તે દ્રવ્યલિંગી, નરક નિગોદ આદિના નાના પ્રકારના દુઃખોની જવાલાઓના સમૂહથી વ્યાપ્ત લાંબા સંસારમાં ચારેય તરફ ચક્કર લગાવે છે. કહ્યું છે કેઃ-

" જે પુરુષ જ્ઞાનરહિત થઇને સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે તે, અને સાવદ્ય પૂજા કરવાવાળા દીર્ઘ–લાંબા સંસારમાં ભ્રમણ કરે છે." ॥ ૧ ॥ (સૂ. ૬)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–' तत्थ ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો બોધ આપ્યો છે. જે આ જીવનના સુખ માટે પોતાની વંદના, માન્યતા, પૂજા, જન્મ–મરણથી મુક્તિ તથા દુઃખોનાં નિવારણ માટે; તે

सयमेव उदयसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं उदयसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणइ, तं से अहियाए तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन–मानन–पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते, अन्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत्तस्याहिताय तत्तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अप्कायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रतिबोधिता। कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः। ज्ञ–प्रत्याख्यान–भेदात् परिज्ञाया द्वैविध्यं, द्विविधायास्तस्या लक्षणं च प्रागभिहितम्।

करने के निमित्त वह स्वयं ही उदकशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से उदकशस्त्र का आरंभ कराता है, और उदकशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोदना करता है। वह उस के अहित के लिए है, वह उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अप्काय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीरने सम्यग् बोध का उपदेश दिया है। भगवान्ने कहा है कि–कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का आश्रय आवश्य लेना चाहिए। ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा, इस प्रकार परिज्ञा के दो भेद हैं। दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं।

પોતેજ જલશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે જલશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે છે. અને જલશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાની અનુમોદના કરે છે. તે પોતાના અહિત માટે છે. તે તેની અબોધિને માટે છે. (સૂ. ૭)

ટીકાર્થ—અપ્કાયના સમારંભના વિષયમાં ભગવાન શ્રી મહાવીરે સમ્યગ્ બોધનો ઉપદેશ આપ્યો છે. ભગવાને કહ્યું છે કે–કર્મબંધનો નાશ કરવા માટે જીવોએ પરિજ્ઞાનો આશ્રય જરૂર લેવો જોઈએ. જ્ઞપરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા, આ પ્રમાણે પરિજ્ઞાના બે ભેદ છે. બન્નેના લક્ષણો પ્રથમજ કહેવામાં આવ્યા છે.

उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायाप्कायजीवं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?-त्याह- 'अस्य चैवे'-त्यादि। अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे-सुखार्थं स्नान-पान -धावन-सेक-यानपात्रो-डुप-गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय- परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-जलयन्त्रण शीकरवृष्टयादौ, 'फुंहारा' इति भाषायाम्। माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा-मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ। पूजनं=वस्त्ररत्ना- दिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमादिस्नपनपूजनादौ। जातिमरणमोचनाय तीर्थ- स्नानादौः। दुःखप्रतिघातहेतुं=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारभते=व्यापारयति। अन्यैर्वा उदकशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति। अन्यान्

उपभोगद्वार—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावद्य व्यापार करता है? इस का उत्तर कहते हैं-इसी क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, धोना, सींचना, जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए। प्रशंसाके लिए, जैसे-जल से फौहारा चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे-स्नान और वस्त्र आदि का मैल दूर करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा आदि के स्नपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि में। दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए स्नान-पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराधक द्रव्य और भावशस्त्र का आरंभ करता

ઉપભોગદ્વાર—

જીવ કયા પ્રયોજનથી અપ્કાયના જીવો પ્રતિ સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે? તેનો ઉત્તર કહે છે કે-આ ક્ષણભંગુર જીવનના સુખ માટે, અર્થાત્, સ્નાન, પાન ધોવું, પાણી સીંચવું, વહાણ આગબોટમાં જવું આવવું,ઇત્યાદિ માટે. પ્રશંસાને માટે,જેમકે-નળમાંથી ફુવારા ચલા- વવા આદિમાં, લોકોથી સત્કાર પામવા માટે. જેમકે-સ્નાન કરવામાં અને વસ્ત્ર વગેરેનો મેલ દૂર કરવામાં, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન, આદિનો પુરસ્કાર મેળવવા માટે, જેમ-દેવપ્રતિમા આદિના સ્નાન અને પૂજન વગેરેમાં, જન્મ-મરણથી મુકત થવા માટે, જેમ-તીર્થસ્નાન આદિમાં, દુઃખોનો નિરોધ કરવાના હેતુથી, અર્થાત્-રોગ વગેરેની શાન્તિ માટે સ્નાન-પાન વગેરેમાં તે પોતે અપ્કાયના વિરાધક દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે અપ્કાયશસ્ત્રનો

वा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अप्कायसमारम्भणं तस्य=अप्कायसमारम्भणं कुर्वतः कारयितुरनुमोदयितुश्च अहिताय भवति, तथा तत् तस्य अबोधये=जिनधर्मप्राप्त्यभावाय भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादीनां समीपेऽप्कायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह–' से तं संबुज्झमाणे. ' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए सोच्चा भगवओ आणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

है; दूसरों से अप्कायशस्त्रों का समारंभ करवाता है और अप्कायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है । वह अप्काय का आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और अबोधि–जिनधर्म की अप्राप्ति के लिए होता है ॥सू. ७॥

जिसने तीर्थंकर आदि के सन्निकट अप्काय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है–' **से तं.** ' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान और अनगारों से सुनकर अप्काय का स्वरूप जानता हुआ जीव चारित्र अङ्गीकार करके कोई–कोई इस प्रकार जानता है–यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार (मृत्यु) है, यह नरक है । गृद्ध पुरुष नाना प्रकार के शस्त्रों से जल का आरंभ करके जलशस्त्र का समारंभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥सू. ८॥

સમારંભ કરાવે છે, અને અપ્કાયશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે તે અપ્કાયનો આરંભ કરનારને કરાવનારને અને કરવાવાળાને અનુમોદન આપવાવાળાને એ સૌને માટે અહિત કરનાર છે. અને અબોધિ–જિનધર્મની અપ્રાપ્તિ માટે હોય છે. (સૂ ૭)

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમાં અપ્કાયના જીવોનું સ્વરૂપ જાણી લીધું છે તે આ પ્રમાણે જાણે છેઃ–' से तं. ' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન અથવા અણગારો પાસેથી સાંભળીને અપ્કાયના સ્વરૂપને જાણનારા જીવો ચારિત્ર અંગીકાર કરીને કોઈ–કોઇ આ પ્રમાણે જાણે છે–આ ગ્રંથ છે, આ મોહ છે, આ મૃત્યુ છે, આ નરક છે. ગૃદ્ધ પુરુષ નાના પ્રકારનાં (અનેક પ્રકારનાં) શસ્ત્રોથી જલનો આરંભ કરીને, જલશસ્ત્રનો આરંભ કરતા થકા બીજા અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. (સૂ. ૮)

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वाऽन्तिके, इहैकेषां, ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैरुदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्=उपादेयं, सर्वसावद्ययोगपरित्यागरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्-अप्कायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ॥

स हि-एवं विचारयति इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि।

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के समीप उपदेश सुनकर सर्वसावद्य व्यापार का त्यागरूप चारित्र अंगीकार करके विचरता है, वह अपूकाय के आरंभ को समझता है-उसे अहितकर और अबोधिजनक जानता है। वह इस प्रकार विचार करता है-इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करनेवाले किन्हींर आत्मार्थियों को ही विदित होता है कि-'**यह ग्रंथ है**' इत्यादि।

ટીકાર્થ—જે પુરુષ તીર્થંકર ભગવાન તથા તેના અનુયાયી શ્રમણનિર્ગ્રંથોના સમીપ ઉપદેશ સાંભળીને સર્વ સાવદ્યવ્યાપારના ત્યાગરૂપ ચારિત્ર અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તે અપ્કાયના આરંભને સમજે છે-તેને અહિતકર અને અબોધિજનક જાણે છે, તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે કે:-આ મનુષ્ય લોકમાં શ્રમણ-નિર્ગ્રંથોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરવાવાળા કોઈ પણ આત્માર્થિઓના જાણવામાં હોય છે કે-'આ ગ્રંથ છે ઈત્યાદિ.

एषः=उदकशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः अष्टविधकर्मबन्धः। कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा एषः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः विपरीतज्ञानरूपः। तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः। तथा एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम्। इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरं दुःख-फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति। यद्वा-गृद्धः=विषयभोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकार्थमेव, प्रवर्तते।

जिस के द्वारा गूंथा जाय-बांधा जाय यह ग्रंथ कहलाता है। यह उदकशस्त्र का समारंभ ग्रंथ है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है। यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके उदकशस्त्र के समारंभ को ग्रंथ कहा है। वास्तव में वह ग्रंथ (कर्मबंध) का कारण है। आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

यह जलशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है। तथा यह मार-निगोद आदि के मरणरूप है। यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की वेदनाओं का स्थान है। कर्मबंध, मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के लिए गृद्ध होते हैं। अथवा गृद्ध अर्थात् भोगों में आसक्त, संसारी जीव इसी के लिए, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण तथा नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं।

જેના દ્વારા ગૂંથી શકાય-બાંધી શકાય તે ગ્રંથ કહેવાય છે. એ ઉદક-જલ-શસ્ત્રનો સમારંભ ગ્રંથ છે અર્થાત્ આઠ કર્મોનો બંધ છે. અહિં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને ઉદકશસ્ત્રના સમારંભને ગ્રંથ કહ્યો છે. વાસ્તવિક રીતે તે ગ્રંથ (કર્મબંધ)નું કારણ છે. આગળ પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઇએ.

આ જલશસ્ત્રનો સમારંભ મોહ-વિપરીત જ્ઞાન છે, તથા આ માર-નિગોદ વગેરેના મરણરૂપ છે, આ નરક છે-અર્થાત્ નારકી જીવોને થવાવાળી દસ પ્રકારની વેદનાઓનું સ્થાન છે. કર્મબંધ, મોહ મરણ અને નરક રૂપ ઘોરદુઃખરૂપ ફલને પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક ફરીને તેના માટે ગૃદ્ધ-આસક્ત થાય છે. અથવા ગૃદ્ધ અર્થાત્ ભોગોમાં આસક્ત સંસારી જીવ એ માટે, અર્થાત્ કર્મબંધ, મોહ, મરણ તથા નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाप्कायशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं ग्रन्थ–मोह–मरण–नरकरूपमेव लभते, अत उदककर्मसमारंभस्य तदेव फलं भवतीति भावः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव च प्रवर्तते, इति यदुक्तं तत्र हेतुमाह—' यदिमम्. ' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, गृद्धो लोकः, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकाय–परकायतदुभयरूपैः, उदककर्मसमारम्भेण=अप्कायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादक-सावद्यव्यापारेण, इमम्=अप्कायं, विहिनस्ति=प्राणरहितं करोति । तथा–उदक-

---

तात्पर्य यह है कि विषयभोगों में आसक्त जीव, शरीर आदि का पोषण करने के लिए, बन्दन–मान–पूजन के लिए, जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दुःखों का नाश करने के लिए, अप्काय के शस्त्र का आरंभ करता है मगर उस का फल–ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक–रूप ही पाता है। अत एव जलकर्मसमारंभ का वही फल होता है ।

लोक बार–बार कर्मबंध आदि के लिए ही इच्छुक होता है, और उसी के लिए प्रवृत्ति करता है, यह बात पहले कही है । यहाँ उस का कारण बतलाते हैं––

क्यों कि गृद्धजन नाना प्रकार के स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से, उदककर्म के आरंभद्वारा, अपूकायसंबंधी अष्टकर्म–जनक सावद्यव्यापारद्वारा अपूकाय की हिंसा करता है। तथा जलकाय के विराधक स्वकाय, परकाय और

તાત્પર્ય એ છે કે–વિષયભોગોમાં આસકત જીવ શરીર–આદિના પોષણ કરવા માટે વન્દન, માન, પૂજા માટે, જન્મ મરણથી મુકત થવા માટે તથા દુઃખોનો નાશ કરવા માટે અપ્કાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, પરન્તુ તેનું ફળ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરક રૂપજ પામે છે, એ માટે જલકર્મસમારંભનું ફલ તેજ હોય છે.

લોક વારંવાર કર્મબંધ વગેરે માટે ઇચ્છા કરતા હોય છે; અને તે માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે. એ વાત પ્રથમ કહી છે. અહિં તેનું કારણ બતાવે છે કેમકે–ગૃદ્ધ માણસ નાના પ્રકારના સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોથી ઉદકકર્મના આરંભદ્વારા અપ્કાયના સંબંધી આઠ કર્મજનક સાવદ્યવ્યાપારદ્વારા અપ્કાયની હિંસા કરે છે. તથા

शस्त्रम्-अप्कायमर्दकं शस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयरूपं, समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो विहिनस्ति।

अप्कायहिंसया षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुनः ग्रन्थादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्त्तते न पुनर्मोक्षायेति भावः ॥ सू० ८ ॥

पुनरपि सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—'से बेमि.' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से बेमि संति पाणा उदयनिस्सिया जीवा अणेगे ॥ सू० ९ ॥

॥ छाया ॥

स ब्रवीमि सन्ति प्राणा उदकनिश्रिता जीवा अनेके ॥ सू० ९ ॥

उभयकाय रूप शस्त्रों का आरंभ करता हुआ अन्यकाय-स्थावर और त्रस जीवों को भी हिंसा करता है, वह जलकायकी हिंसाद्वारा षड्जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है; अतः अत्यन्त घोर पाप करता हुआ पुनःपुनः ग्रंथ से लेकर नरक तक के दुष्फलको पाकरके भी उसी के लिए प्रवृत्ति करता है-मोक्ष के लिए नहीं ॥सू. ८॥

सुधर्मा स्वामी फिर जम्बू स्वामी से कहते हैं-'**से बेमि**' इत्यादि ।

मूलार्थ—मैं कहता हूँ अप्काय के आश्रित प्राणी हैं और अन्य अनेक (द्वीन्द्रिय आदि) जीव भी हैं ॥सू. ९॥

જલકાયના વિરાધક સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોનો આરંભ કરીને અન્યકાય-સ્થાવર અને ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે. તે જલકાયની હિંસાદ્વારા ષડ્જીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે. તેથી અત્યન્ત ઘોર પાપ કરતા થકા ફરી ફરી ગ્રંથ (કર્મબંધ)થી લઈને નરક સુધીના માઠા-દુઃખકારક ફળને પામીને પણ તે માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે. મોક્ષ માટે કરતા નથી. (સૂ. ૮)

સુધર્મા સ્વામી ફરીથી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે-'से बेमि.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હું કહું છું-અપ્કાયના આશ્રિત પ્રાણી છે, અને અન્ય અનેક (દ્વીન્દ્રિય આદિ) જીવ પણ છે. (સૂ. ૯)

टीका—

सः=विज्ञाताप्कायस्वरूपोऽहं ब्रवीमि=यथा साक्षाद् भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः। उदकनिश्रिताः जलरूपं कायमाश्रित्य वर्त्तमानाः अप्कायिका इत्यर्थः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति। तथाऽनेके=द्वीन्द्रियादयः नानाविधाः जीवा नीलङ्गु-पूतरक-मत्स्यादयः उदकनिश्रिताः=उदकावस्थिताः सन्ति। देहली-दीपन्यायेनोदकनिश्रिता इत्यस्योभयत्रान्वयः, अनेनोदकं सचित्तमनेकजीवाधिष्ठितं चेति प्रतिबोधितम्।

टीकार्थ—अप्काय के स्वरूप का ज्ञाता मैं कहता हूँ। जैसा कि भगवान् से मैंने सुना है कि—अप्काय को आश्रित करके रहे हुए अप्कायिक प्राणी हैं, तथा अनेक द्वीन्द्रिय आदि नाना प्रकार के जीव नीलँगु, पूरतक, मत्स्य आदि भी जल में रहे हुए हैं। **उदकनिश्रिताः**—'जलकाय के आश्रित' यह पद देहली—दीपकन्याय से दोनों ओर जोड लेना चाहिए। यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि—जलकाय के जीवों का शरीर जल ही है, जब कि जल में रहने वाले त्रस आदि जीवों का शरीर भिन्न होता है, फिरभी वे जल ही में रहते हैं और जल की विराधना करनेसे उन त्रस आदि जीवों की भी विराधना होती है। जहाँ जलकाय है वहाँ सभी काय के जीव होते हैं।

ટીકાર્થ—અપ્કાયના સ્વરૂપને જાણનાર હું કહું છું. જેવી રીતે કે મેં ભગવાન પાસેથી સાંભળ્યું છે કે—અપ્કાયને આશ્રિત—આશ્રય કરીને રહેલા અપ્કાયના જીવો છે. તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકારના જીવ નીલંગુ. પૂરતક, મત્સ્ય આદિ પણ જલમાં રહેલા છે. 'उदकनिश्रिताः' 'જલકાયને આશ્રિત' આ પદ દેહલી—દીપક—ન્યાયથી બન્ને બાજુ જોડી લેવું જોઈએ.

અહિં એટલું સમજી લેવું આવશ્યક છે કે—જલકાયના—જીવોનાં શરીર જલજ છે. જ્યારે કે જલમાં રહેવાવાળા ત્રસ આદિ જીવોના શરીર ભિન્ન—જૂદાં હોય છે. તો પણ તે જલમાંજ રહે છે, અને જલની વિરાધના કરવાથી તે ત્રસ આદિ જીવોની પણ વિરાધના થાય છે. જ્યાં જલકાય છે ત્યાં તમામ કાયના જીવ હોય છે.

अप्कायस्य लक्षणद्वारम्—

ननूदकं सचित्तमस्तीत्यत्र किं प्रमाणम्? उच्यते-आपः सचित्ताः, शस्त्रानुपहतत्वे सति द्रवत्वात्, हस्तिशरीरोपादानभूतकललवत्। वस्त्रवणादौ दोषवारणाय शस्त्रानुपहतत्वविशेषणोपादानम्। कललशब्दग्रहणेन सप्तदिवसमात्रवर्तिनो ग्रहणम्, ततः परमष्टमदिवसादौ तदेवार्बुदाद्यवस्थामापद्यते।

किञ्च-आपः सजीवाः, अनुपहतद्रवत्वात्, अण्डकमध्यस्थितकललवत्।

किञ्च-आपो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, भेद्यत्वात्, दृश्यत्वात्, करचरणादिसमुदायवत्।

अप्कायका लक्षणद्वार

शंका--जल सचित्त है, इस विषय में क्या प्रमाण है?

समाधान--जल सचित्त है, क्यों कि शस्त्र के उपघात के विना ही वह द्रव (तरल) है, जैसे-हाथी के शरीर का उपादान कलल। यहाँ मूत्र आदि से व्यभिचार हटाने के लिए 'शस्त्र के उपघात के विना' यह विशेषण लगाया गया है। 'कलल' शब्द के ग्रहण करने से सिर्फ सात दिन का गर्भाशयस्थित शुक्रशोणितमिश्रित द्रवपदार्थ लेना चाहिए। आठवें दिन से उसकी अर्बुद आदि अवस्थाएं हो जाती हैं-अर्थात् वह गाढा होने लगता है।

और भी-जल सजीव है, क्यों कि वह अनुपहत द्रव है, जैसे अंडे का रस।

और भी-जल, जीव का शरीर है, क्यों कि उसका छेदन-भेदन किया जाता है और दृश्य है, हाथ पग आदि के समूह की तरह।

અપ્કાયનું લક્ષણદ્વાર—

શંકા—જલ-પાણી સચિત્ત છે એ વિષયમાં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાન—જલ સચિત્ત છે. કેમકે શસ્ત્રના ઉપઘાત વિનાજ તે તરલ છે. જેવી રીતે હાથીના શરીરનું ઉપાદાન "કલલ". અહિં મૂત્ર આદિથી વ્યભિચાર હઠાવવા માટે 'શસ્ત્રના ઉપઘાત વિના' એ વિશેષણ લગાડ્યું છે. "કલલ." શબ્દના ગ્રહણ કરવાથી માત્ર સાત દિવસનો ગર્ભાશયમાં રહેલો શુક્રશોણિત-મિશ્રિત દ્રવપદાર્થ સમજવો જોઈએ. આઠમા દિવસથી તેની અર્બુદ આદિ અવસ્થાઓ થઈ જાય છે. અર્થાત્ તે કઠણ થવા લાગે છે.

બીજું પણ-જલ સજીવ છે, કેમકે તે અનુપહત દ્રવ છે, જેમકે ઇંડાનો રસ.

બીજું પણ જલ-જીવ-શરીર છે. કેમકે-તેનું છેદન-ભેદન કરી શકાય છે અને દૃશ્ય છે; હાથ-પગ આદિના સમૂહ પ્રમાણે.

किञ्चाऽव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवीकायोद्देशके प्रागुक्तानि, तेषां जीवलक्षणानां समन्वयादापः सचित्ता मनुष्यवदिति विज्ञायते।

एवं तेजस्कायादेरेकेन्द्रियजीवस्यैतानि जीवलक्षणानि सन्तीति बोध्यम्।

आगमोऽपि यथा—"आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता" इति (दशवै. अ० ४)

प्ररूपणाद्वारम्—

अप्काया जीवा द्विविधाः, सूक्ष्मबादरभेदात्। सूक्ष्मनामकर्मोदयात्

इस के अतिरिक्त—अव्यक्त उपभोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वीकाय के उद्देशक मे बतलाये हैं, उन सब जीव के लक्षणों की विद्यमानता होने के कारण भी जल सचित्त है, जैसे मनुष्य आदि।

इसी प्रकार तेजस्काय आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी जीव के लक्षण हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

आगम प्रमाण से भी जल सजीव सिद्ध होता है—" अप सचित कहा गया है। उसमें अनेक जीव हैं और उन का अस्तित्व, अलग—अलग है।" (दश० अ० ४)

प्ररूपणाद्वार—

अप्काय के जीव दो प्रकार के हैं— सूक्ष्म और बादर। जिनके सूक्ष्मनाम

તે સિવાય અવ્યક્ત ઉપયોગથી લઈને કષાય સુધી જીવનાં જે લક્ષણ પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશકમાં બતાવ્યાં છે. તે સર્વ જીવના લક્ષણોની વિદ્યમાનતા હોવાના કારણે પણ જલ સચિત્ત છે. જેવી રીતે મનુષ્ય આદિ. એ પ્રમાણે તેજસ્કાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં પણ જીવના લક્ષણ છે. એ રીતે સમજી લેવું જોઈએ.

આગમ પ્રમાણથી પણ જલ સજીવ સિદ્ધ થાય છે—

" અપ સચિત્ત કહેલું છે; તેમાં અનેક જીવ છે. અને તેનું અસ્તિત્વ અલગ-અલગ છે." (દશ૦ અ. ૪)

પ્રરૂપણાદ્વાર—

અપ્કાયના જીવ બે પ્રકારનાં છે—(૧) સૂક્ષ્મ અને (૨) બાદર જેને સૂક્ષ્મનામ

सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः। तत्र सूक्ष्मा द्विविधाः–पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः। बादरा लोकैकदेशे सन्ति। बादरा अप्काया अनेकविधाः –हिमा-वश्याय-मिहिका–करक-हरतनु–शुद्ध–शीतो-ष्ण–क्षाराम्ल-लवण–क्षीर–घृतोद-कादयः। ते सर्वे बादरा अप्कायाः संक्षेपतो द्विधा–पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। बादराणां यत्रैको जीवस्तत्रासंख्येयैर्बादरजीवैर्नियमतो भाव्यम्। बादराणां स्थानं समुद्रहृद-नदीप्रभृतयः।

बादराणां सूक्ष्माणां चोभयेषामप्कायानां पर्याप्तापर्याप्तभेदवदन्येऽपि शरीरत्रयादिभेदाः सन्ति, ते पृथिवीकायोद्देशे प्रागुक्तास्तत एव बोद्धव्याः।

कर्मका उदय है वे सूक्ष्म कहलाते हैं, और बादरनामकर्म के उदय वाले बादर कहलाते हैं। इन मेंसे सूक्ष्म जीव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं। सूक्ष्म सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। बादर लोक के एक देश में हैं, बादरअप्काय के अनेक भेद हैं–हिम, ओस, मिहिका (धूंवर) ओले, हरतनु (तृणके अग्र पर रहा हुआ पानी) शुद्ध, शीतउष्ण, क्षार, आम्ल, लवण, क्षीर, घृतोदक आदि। सब बादर अप्काय संक्षेप से पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं। जहाँ एक बादर जीव होता है वहां नियम से असंख्यात बादर जीव होते हैं। समुद्र, तालाब, नदी वगैरह बादर जीवों के स्थान हैं।

बादर और सूक्ष्म, दोनों प्रकार के जलकाय के जैसे पर्याप्त और अपर्याप्त भेद किये गये हैं उसी प्रकार शरीरत्रय आदि और भेद भी हैं। वे पृथ्वीकाय के उद्देशक में बतलाये हैं। वहीं से जान लेने चाहिए।

કર્મનો ઉદય છે તે સૂક્ષ્મ કહેવાય છે અને બાદરનામકર્મના ઉદયવાળા બાદર કહેવાય છે. તેમાંથી સૂક્ષ્મ જીવ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી બે પ્રકારનાં છે. સૂક્ષ્મ સર્વ લોકમાં વ્યાપ્ત છે. અને બાદર લોકના એક દેશમાં છે. બાદર અપ્કાયના અનેક ભેદ છે. હિમ, ઝાકળ, હરતનુ (તૃણના અગ્રપર રહેલું પાણી) શુદ્ધ શીત,ઉષ્ણ ક્ષાર,અમ્લ, લવણ, ક્ષીર, ઘૃતોદક આદિ. સર્વ બાદર અપ્કાય સંક્ષેપથી પર્યાપ્ત તથા અપર્યાપ્તના ભેદથી બે પ્રકારનાં છે. જ્યાં એક બાદર જીવ હોય છે. ત્યાં નિયમથી અસંખ્યાત બાદર જીવ હોય છે. સમુદ્ર, તળાવ, નદી વગેરે બાદર જીવોના સ્થાન છે.

બાદર અને સૂક્ષ્મ–બન્ને પ્રકારના જલકાયના જેવી રીતે પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવામાં આવ્યા છે. તે પ્રમાણે શરીરત્રય આદિ બીજા ભેદો પણ છે તે પૃથ્વી-કાયના ઉદ્દેશકમાં બતાવેલા છે. તે ત્યાંથી જાણી લેવા જોઈએ.

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये । केवलं शरीरसंस्थानं स्तिबुकबिन्दुक-संस्थितमेव ।

परिमाणद्वारम्—

ये बादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽसंख्येयभाग प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु बादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र विशेषः-बादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः, बादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

---

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असंख्यात हैं। अलबत्ता इन के शरीर का आकार स्तिबुकबिन्दु (बुद-बुद) के समान है।

परिमाणद्वार-

बादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्येयभाग प्रदेशों के बराबर हैं, बादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म प्रर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर हैं। यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि-बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा बादर पर्याप्त अपूकाय असंख्यातगुणा हैं, और बादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की उपेक्षा बादर अपर्याप्त अपूकाय के जीव असंख्यातगुणा हैं। सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अपकायिक जीव विशेष अधिक हैं

પૃથ્વીકાયની પ્રમાણે પ્રત્યેક પ્રકારના જીવ અસંખ્યાત છે. અલબત્ત તેના શરીરના આકાર સ્તિબુકબિન્દુ-બુદ-બુદના પ્રમાણે છે.

પરિમાણદ્વાર—

બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ સંવર્ત્તિત લોકપ્રતરના અસંખ્યેય ભાગ પ્રદેશોના બરાબર છે. બાદર અપર્યાપ્ત તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત રાશિઓ અલગ-અલગ અસંખ્યાત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે. અહિં એટલી વિશેષતા સમજવી જોઇએ કે-બાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાય અસંખ્યાત ગુણા છે, અને બાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર અપર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ અસંખ્યાત ગુણા છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અપ્કાયિક જીવ વિશેષ અધિક છે.

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः ॥ सू० ९ ॥

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमामन्त्र्य कथयति-'इहं चे.'-त्यादि।

मूलम्—

इहं च खलु भो! अणगाराणं उदयं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च खलु भोः! अनगाराणामुदकं जीवा व्याख्याताः ॥ सू० १० ॥

टीका—

'भोः' इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन भोः=हेजम्बूः! इह=जिनशासने खलु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहरहितानां मुनीनां प्रतिबोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याताः' इति, उदकं जीवपिण्डभूत-

---

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अपूकाय के जीव विशेष अधिक हैं ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को संबोधन करके कहते हैं:-'इहं च' इत्यादि।

मूलार्थ—हे शिष्य! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है कि-जल जीव है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—'भो' शब्द संबोधन के लिए है। इस का तात्पर्य यह हुआ कि-हे जम्बू! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और भाव गृह से रहित मुनियों के बोध के लिए 'जल जीव है' यह व्याख्यान किया गया है। जल, जीवों का

તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અપ્કાયના જીવ વિશેષ અધિક છે. (સૂ. ૯)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને સંબોધન કરીને કહે છે-'इहं च' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હે શિષ્ય! જિનશાસનમાં અણગારોને માટે આ વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે, કે જલ જીવ છે. (સૂ. ૧૦)

ટીકાર્થ—'ભો' શબ્દ સંબોધન માટે છે. તેનું તાત્પર્ય એ થયું કે-હે જમ્બૂ! આ જિનશાસનમાં નિશ્ચયથી અણગારોના અર્થાત્ દ્રવ્ય અને ભાવ ગૃહથી રહિત મુનિઓના બોધ માટે 'જલ જીવ છે' આ વ્યાખ્યાન કરવામાં આવ્યું છે. જલ, જીવોનો પિંડ છે, એ પ્રમાણે

मस्तीति भगवता केवलालोकेन विज्ञायानगारेभ्यः संयमरक्षणार्थमुदकं जीवत्वेन प्रतिबोधितमित्यर्थः । 'च'-शब्दात् तदाश्रिता अन्ये द्वीन्द्रियादयोऽपि जीवा व्याख्याता इति बोधितम् । यो बिन्दुमात्रोदकविराधकः, स षड्जीवनिकाय-विराधको भवतीति वर्त्तुलार्थः ॥ सू० १० ॥

शस्त्रद्वारम्—

ननु यदि जीवपिण्डभूतमुदकं भगवता प्रोक्तं तर्हि उदकसेविनां मुनीनामवश्यं प्राणातिपातदोषसम्पातः, तेन कथं संयमः संयमिनां संपद्यते ? उच्यते—

सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिविधमुदकम् । तत्र सचित्तं-नदीकूपतडागादि-

---

पिण्ड है, इस प्रकार भगवान् ने केवलज्ञान से जानकर साधुओं के संयम की रक्षा के लिए जल को जीव बतलाया है । सूत्र में दिये हुए 'च' शब्द से यह प्रकट किया गया है कि जल के आश्रित दूसरे द्वीन्द्रिय आदि जीव भी हैं । संक्षेप में तात्पर्य यह है कि-जो पुरुष एक बिन्दु जल की विराधना करता है वह षट्काय के जीवों का विराधक है ॥ सू. १० ॥

शस्त्रद्वार—

शंका—यदि जल जीवों का पिण्ड है, ऐसा भगवान्ने कहा है तो जलका सेवन करने वाले मुनियों को हिंसा का दोष लगता है । ऐसी स्थिति में साधुओं का संयम किस प्रकार कायम रह सकता है ?

समाधान—जल तीन प्रकार का है-(१) सचित्त (२) अचित्त और (३) मिश्र

ભગવાને કેવલજ્ઞાનથી જાણી કરીને સાધુઓના સંયમની રક્ષા માટે જલને જીવ તરીકે બતાવ્યું છે. સૂત્રમાં આપેલા 'च' શબ્દથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે-જલના આશ્રિત બીજા દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ પણ છે. સંક્ષેપમાં તાત્પર્ય એ છે કે-જે પુરૂષ એક ટીપા જલની વિરાધના કરે છે તે ષટ્કાયના જીવોનો વિરાધક છે. (સૂ. ૧૦)

શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—જો જલ જીવોનો પિંડ છે. એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે તો જલનું સેવન કરવાવાળા મુનિઓને હિંસાદોષ લાગે છે. એવી સ્થિતિમાં સાધુઓનો સંયમ કાયમ કેવી રીતે રહી શકે છે ?

સમાધાન—જલ ત્રણ પ્રકારનું છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર.

जलम् । मिश्रं सचित्ताचित्तसंमिलितम् । एतद् द्वयं चाग्राह्यम् । अचित्तं द्विविधं स्वभावतः, शस्त्रसंपर्कतश्च । स्वभावतोऽचित्तं जलं केवलि-मनःपर्ययाऽवधि-श्रुत-ज्ञानिनस्तज्जानाना अपि न सेवन्ते, अनवस्थादोषप्रसङ्गात्, व्यवहाराशुद्धेश्च । प्रसिद्धं च यत् कदाचित्स्वभावतोऽचित्तजलपरिपूर्णं ह्रदं, स्वभावतोऽचित्तीभूतं तिलादिकं च दृष्ट्वा व्यवहाराशुद्धत्वात्पिपासाक्षुधापरिपीडितानामपि साधूनां पानार्थं भक्षणार्थं च तत्रानुज्ञा न कृता भगवतेति । यत्तु शस्त्रसंपर्कादचित्तं जलं तत् साधूनामुपभोगाय ग्राह्यं, तेन संयमनिर्वाहो भवति । किं तच्छस्त्रम् ? इत्याह-'सत्थं.' इत्यादि ।

नदी, कूप, तालाव आदि का जल सचित्त, और अचित्त मिला जल मिश्र कहलाता है । यह दोनों प्रकार का जल साधु के लिये अग्राह्य है । अचित्त जल दो प्रकार का है-स्वभाव से अचित्त और शस्त्र के संयोग से अचित्त । स्वभाव से अचित जल को केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, तथा श्रुतज्ञानी, जानते हैं, मगर उस का सेवन नहीं करते । सेवन करने से अनवस्था दोष आता है और व्यवहार अशुद्ध हो जाता है । यह बात प्रसिद्ध है कि-कदाचित् स्वभाव से अचित्त जल से भरा हुआ तालाव, तथा स्वभाव से अचित्त तिल, आदि को देखकर व्यवहार में अशुद्ध होने के कारण प्यास और भूख से पीडित साधुओं को भी पीने-खाने की आज्ञा भगवान्ने नहीं दी है । जो जल, शस्त्र के संयोग से अचित्त हो गया हो वही साधुओं के लिए, ग्राह्य होता है । ऐसा करने से ही संयम का पालन होता है । वह शस्त्र क्या है, यह बतलाने के लिए कहते है-'सत्थं.' इत्यादि ।

નદી, કુવા, તળાવ આદિનું જલ સચિત્ત છે. સચિત્ત અચિત્ત બન્ને પ્રકારનું ભેળું થયેલું જલ મિશ્રકહેવાય છે. આ બન્ને પ્રકારનાં જલ સાધુઓ માટે અગ્રાહ્ય છે. અચિત્ત જલ બે પ્રકારનું છે.(૧) સ્વભાવથી અચિત્ત અને (૨) શસ્ત્રના સંયોગથી અચિત્ત. સ્વભાવથી અચિત્ત જલને કેવલી, મનઃપર્યયજ્ઞાની, અવધિજ્ઞાની તથા શ્રુતજ્ઞાની જાણે છે, પરંતુ તેનું સેવન કરતા નથી-સેવન કરવાથી અનવસ્થા દોષ આવે છે, અને વ્યવહાર અશુદ્ધ થઈ જાય છે. એ વાત પ્રસિદ્ધ છે કે-કદાચિત્ સ્વભાવથી અચિત્ત જલથી ભરેલું તળાવ તથા સ્વભાવથી અચિત્ત તલ આદિને જોઇને વ્યવહારમાં અશુદ્ધ હોવાના કારણે તરસ અને ભૂખથી પીડિત સાધુઓને પણ પીવા-ખાવાની આજ્ઞા ભગવાને આપી નથી. જે જલ શસ્ત્રના સંયોગથી અચિત્ત થઈ ગયું હોય તે જલ સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય હોય છે. એ પ્રમાણે કરવાથીજ સંયમનું પાલન થાય છે. તે શસ્ત્ર શું છે? એ બતાવવા માટે કહે છે-'सत्थं' इत्यादि.

मूलम्—

सत्थं चेत्थ अणुवीइ पास, पुढो सत्थं पवेइयं ॥ सू० ११ ॥

छाया—

शस्त्रं चात्र अनुविचिन्त्य पश्य, पृथक् शस्त्रं प्रवेदितम् ॥ ११ ॥

टीका—

अस्मिन् प्रस्तुतेऽप्काये शस्त्रं-शस्यते=हिंस्यते प्राणी येन तच्छस्त्रम् अनुविचिन्त्य ='इदमप्कायस्य शस्त्रम्' इति विचार्य, पश्य=हे शिष्य! ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य। शस्त्रम्=उपमर्दकं प्रस्तुतत्वादप्कायस्य पृथक्=विभिन्नरूपं स्वकायपरकायोभयकाय-भेदात् त्रिविधमित्यर्थः प्रवेदितं=प्रतिबोधितं भगवतेतिशेषः। तत्र स्वकायशस्त्रं नद्याद्युदकानां कूपाद्युदकम्। कूपाद्युदकानां नद्याद्युदकं च। स्वकायशस्त्रपरिणतं जलं साधूनामग्राह्यं व्यवहाराशुद्धेः। उभयकायशस्त्रं कूपादिजलस्योष्णजलं मृत्तिकादि-

---

मूलार्थ—अप्काय के विषय में, हे शिष्य! शस्त्र का विचार करो। अप्काय के शस्त्र पृथक्-पृथक् समझाये गये हैं ॥ सू. ११ ॥

टीकार्थ—जिस के द्वारा हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है, हे शिष्य! अप्काय के विषय में 'यह अप्काय का शस्त्र है' इस प्रकार विचार करो अप्काय के शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय के भेद से नाना प्रकार के भगवानन् ने बतलाये हैं। कुंएका जल नदी के जल के लिए स्वकायशस्त्र है, इसी प्रकार नदी आदि का जल कुँए के जल के लिए स्वकायशस्त्र है। स्वकायशस्त्र से परिणत जल साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं होता, क्यों कि वह व्यवहार में अशुद्ध है। उभयकायशस्त्र है—कुँए आदि के

મૂલાર્થ—અપ્કાયના વિષયમાં હે શિષ્ય! શસ્ત્રનો વિચાર કરો. અપ્કાયનાં શસ્ત્ર જુદાં જુદાં સમજાવ્યાં છે. (સૂ. ૧૧)

ટીકાર્થ—જેના દ્વારા હિંસા થઈ શકે તે શસ્ત્ર કહેવાય છે, હે શિષ્ય! અપ્કાયના વિષયમાં 'આ અપ્કાયનું શસ્ત્ર છે' એ પ્રમાણે વિચાર કરો અપ્કાયનાં શસ્ત્ર સ્વકાય, પરકાય, અને ઉભયકાયના ભેદથી નાના પ્રકારનાં ભગવાને બતાવ્યાં છે. કુવાનું જલ, નદી આદિનાં જલ માટે સ્વકાયશસ્ત્ર છે. એ પ્રમાણે નદી આદિનું જલ કુવાનાં જલ માટે સ્વકાયશસ્ત્ર છે. સ્વકાયશસ્ત્રથી પરિણત જલ સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય રહેતું નથી, કારણ કે તે વ્યવહારમાં અશુદ્ધ છે. ઉભયકાયશસ્ત્ર છે કુવા આદિનાં જલ. માટે ગરમ જલ, અથવા માટી વગેરેથી

मिश्रजलं च। उभयकायशस्त्रपरिणतमपि न ग्राह्यम्, तत्र मिश्रशङ्कासद्भावात्। परकायशस्त्रपरिणतमेव जलं मुनीनां ग्राह्यम्, परकायशस्त्रं चाप्कायस्य अग्नि-मृत्तिका-द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादिकम्। परकायशस्त्रपरिणतं=वर्णादीनां पूर्वावस्थावैलक्षण्यापन्नम्। तत्र वर्णतो धूसरत्वादिरूपं, गन्धतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धिगन्धवत्त्वम्, रसतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धितिक्तकटुकषायादिरसवत्त्वम्। स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम्। तदेवम्भूतमचित्तं जलमस्यैवाङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे पानैषणायामेकविंशतिविधं मुनीनां ग्राह्यत्वेन वक्ष्यते भगवता। तथाहि—

जल के लिए गर्म जल अथवा मिट्टी आदि से मिला हुआ जल। उभयकायशस्त्र से परिणत जल भी साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं है, क्यों कि उस में मिश्र (सचित्ताचित्त) की शङ्का रहती है। मुनियों के लिए परकायशस्त्रपरिणत जल ही ग्रहण करने योग्य है। अपूकाय का परकायशस्त्र—अग्नि, मिट्टी, दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, और चना आदि हैं।

पहले की अपेक्षा वर्ण, रस गंध आदि बदल जाना परकायशस्त्र से जल के परिणत (अचित्त) हो जाने की पहचान है। वर्ण से जल का धूसर आदि हो जाना, गंध से उस में मिली हुई वस्तुओं की गंध आने लगना, इसी प्रकार जल में मिली हुई वस्तुओं का तीखा, कडवा, कसैला आदि रस का स्वाद आ जाना, और स्पर्श से जल का रूखा, चिकना आदि हो जाना जल के अचित्त होने के लक्षण हैं।

મળેલું જલ. ઉભયકાય શસ્ત્રથી પરિણત જલ પણ સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય નથી. કેમકે—તેમાં મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત)ની શંકા રહે છે. મુનિઓ માટે પરકાયશસ્ત્રપરિણત જલજ ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે. અપ્કાયનું પરકાયશસ્ત્ર, અગ્નિ, માટી, દ્રાક્ષ, શાક, ચાવલ, લોટ, દાલ અને ચણા આદિ છે.

પહેલાં કરતાં જેનાં વર્ણ, રસ, ગંધ, આદિ બદલાઇ જાય તે પરાકાયશસ્ત્રથી જલ પરિણત (અચિત્ત) થઇ જવાની એ નિશાની અર્થાત્ ઓળખાણ છે.

વર્ણથી જલનું ધૂસર આદિ થઇ જવું, ગંધથી તેમાં મળેલી વસ્તુઓની ગંધ આવવી, એ પ્રમાણે જલમાં મળેલી વસ્તુઓના તીખા, કડવા, કસેલા આદિ રસનો સ્વાદ આવી જવો, અને સ્પર્શથી જલનું રૂક્ષ ચિકણું આદિ થઇ જવું. એ જલ અચિત્ત હોવાના લક્ષણ છે.

(१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंसृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्= संसेकिमं वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रशाकादिधावनजलं वा । (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् । (५) तुषोदकम्=व्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् । (७) आचामकम्=अवश्रामणजलं 'औसामण' इति भाषाप्रसिद्धम् । (८) सौवीरम्= आरनालं, तक्रपात्रधावनजलं, तक्रोपरिष्ठान्निस्तारितजलं वा 'आँछ' इति भाषायाम् । (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् । आम्रातकमिति 'अम्बाडी' इति भाषाप्रसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्= कपित्थं='कविठ' इति भषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'बिजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में '**पानैषणा**' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकारः—

(१) उत्सेद्य—आटेका मिला हुवा पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) संस्वेद्य (संसेकिम) उकाले हुए तिलोंका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छाछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छाछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आंछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्बाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

આવા પ્રકારનું અચિત્ત જલ આ સૂત્રના બીજા શ્રુતસ્કંધના પાનૈષણા—પ્રકરણમાં એકવીશ પ્રકારનું ભગવાને સાધુઓ માટે ગ્રાહ્ય કહ્યું છે, તે આ પ્રમાણે છેઃ—

(૧) ઉત્સ્વેદ્ય—લોટ ભળેલું, કથરોટ આદિનું ધોવણ.

(૨) સંસ્વેદ્ય—ઉકાળેલા તલનું ધોવણ, અથવા ઉકાળેલા પત્તાવાળાં શાકનું ધોવણ.

(૩) ચોખાનું ધોવણ. (૪) તલનું ધોવણ. (૫) ધાન્યનું ધોવણ. (૬) જવનું ધોવણ. (૭) ઓસામણ. (૮) આરનાલ—છાસના વાસણોનું ધોવણ, અથવા છાસની ઉપર નીતરેલ પાણી. જેને 'આછ' પણ કહે છે.

(૯) આંબા—આમ્ર આદિ ફળોનું ધોવણ. (૧૦) અમ્બાડીનું ધોવણ (૧૧) કોઠાનું ધોવણ. (૧૨) બિજોરાનું ધોવણ. (૧૩) દ્રાક્ષનું ધોવણ. (૧૪) દાડમનું ધોવણ. (૧૫)

इति भाषायां, तस्य पानकं=धावनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाधावनजलम् । (१४) दाडिमपानकम्=दाडिमधावनजलम् । (१५) खर्जूरपानकम्=खर्जूरधावन-जलम् । (१६) नालिकेलपानकम्=नालिकेलधावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=करीरधावनजलम् । (१८) कोलपानकम्=बदरधावनजलम् । (१९) आमलकपानकम्-आमलकधावनजलम् । (२०) चिञ्चपानकम्=चिञ्चा-अम्लिका'इमली' इति भाषायां, तस्याः पानकं=धावनजलम् । (२१) शुद्धविकृतम्=अग्न्युत्कालितमुष्णं जलं च ।

इह शेषद्वाराणि पृथिविकायवद् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यादयः सचित्ताप्कायोपभोगिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः स्वोपभोगार्थम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं सचितं मन्यमाना अपि मोहप्रमादवशतः स्वार्थमुत्कालयन्ति, परमुपदिशन्ति, च, यथा त्रिदण्डमुत्कालनीयं जलम्, इत्युपदिश्याप्कायसमारम्भं कारयन्तो न केवलमप्कायं विहिंसन्ति, किन्तु तदाश्रितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विराधयन्ति ।

का धोवन (१५) खजूर का धोवन (१६) नारियल का धोवन (१७) कैर का धोवन (१८) बेर का धोवन (१९) आँवले का धोवन (२०) इमली का धोवन (२१) अग्नि से उकाला हुआ गर्म जल ।

जो शाक्य आदि सचित्त अप्काय का सेवन करते है, उन में से शाक्य आदि अपने उपभोग के लिए '**जल सचित नहीं है**' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं । दण्डी लोक जल को सचित्त मान कर के भी मोह और प्रमाद के वश हो कर अपने लिए पानीं गरम करवाते हैं ओर दूसरों को उकालने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन दण्ड, उकालना चाहिए । अर्थात् तीन उकालेका पानी होना चाहिये इस प्रकार उपदेश देकर अप्काय का समारम्भ करते हुए न केवल अप्काय की हिंसा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विराधना करत हैं ।

ધોવણ. (૧૬) નારીએલનું ધોવણ. (૧૭) કેરનું ધોવણ. (૧૮) બોરાનું ધોવણ. (૧૯) આંબળાનું ધોવણ. (૨૦) આંબલીનું ધોવણ. (૨૧) અગ્નિથી ઉકાળેલું ગરમ જલ.

જે શાકય આદિ સચિત્તઅપ્કાયનું સેવન કરે છે. તેમાંથી શાકય આદિ પોતાના ઉપભોગ માટે 'જલ સચિત્ત નથી' એ પ્રકારની પ્રરૂપણા કરે છે. દંડી જલને સચિત્ત માનીને પણ મોહ અને પ્રમાદ વશ થઈ. પોતાના માટે પાણી ગરમ કરાવે છે, અને બીજાને પાણી ગરમ કરવાનો ઉપદેશ આપે છે કે-જલ ત્રણ દંડ-ઉકાળા આપીને ઉકાળવું જોઈએ. આ પ્રમાણે ઉપદેશ આપીને અપ્કાયનો સમારંભ કરતા થકા કેવળ અપકાયનીજ હિંસા કરે છે, એટલુંજ નહી પરન્તુ જલમાં રહેવાવાળા દ્વીન્દ્રિય આદિની પણ વિરાધના કરે છે.

दृश्यन्ते च तीर्थादिषु अधःकर्मादिदोषदूषितभक्तपानादिग्रहणेनाप्कायादिमहासमारम्भं कुर्वाणाः। न च ते स्वात्मानं भवसागरात्तारयितुं समर्था भवन्ति, उक्तञ्च–भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे–(अध्य. २०)

" चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहिं भट्ठे।
चिरंपि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए " ॥ सू० ११ ॥

न केवलं ते हिंसादोषभागिनः, अपि त्वन्यदोषभागिनोऽपि सन्ति, तदेव भगवानाह–' अदुवा. ' इत्यादि ।

मूलम्—

अदुवा अदिन्नादाणं ॥ सू० १२ ॥

छाया—

अथवा अदत्तादानम् ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आधाकर्म आदि दोषों से दूषित आहारपानी ग्रहणकरके अप्कायका महारंभ करते हुए देखे जाते हैं। वे अपने आत्मा को भवसागर से तारने में समर्थ नहीं हैं। भगवान् ने उत्तराध्ययनसूत्र (अध्ययन २०) में कहा हैं—

" जो पुरुष अस्थिर व्रत वाला है और तप तथा नियमों से भ्रष्ट है वह चिरकाल तक अपने आत्मा को क्लेश पहुँचाने पर भी संपराय (संसार से) पार नहीं हो चकता " (उत्त. अ. २०) ॥ सू० ११ ॥

सचित्त जल का आरंभ करने वाले अकेली हिंसा के ही भागी नहीं हैं, किन्तु अन्य दोषों के भागी भी हैं। यही बात भगवान् कहते हैं:–'अदुवा.' इत्यादि ।

मूलार्थ—अथवा अदत्तादान का दोष लगता है ॥ मू० १२ ॥

તીર્થ આદિ પર આધાકર્મ આદિ દોષોથી દૂષિત આહાર–પાણી ગ્રહણ કરીને અપ્કાયનો મહારંભ કરતા હોય એમ જોવામાં આવે છે. તે પોતાના આત્માને ભવસાગરથી તારવામાં સમર્થ નથી. ભગવાને–उत्तराध्ययन सूत्रमां (અધ્યયન ૨૦માં) કહ્યું છે કેઃ–

" જે પુરુષ અસ્થિર વ્રતવાળા છે અને તપ તથા નિયમોથી ભ્રષ્ટ છે, તે લાંબા સમય સુધી પોતાના આત્માને કલેશ પહોંચાડવા ઉપરાંત પણ સંસારથી પાર થઈ શકતા નથી." (ઉત્તરા૦ અ. ૨૦) (સૂ. ૧૧)

સચિત્ત જલનો આરંભ કરવાવાળા એકલી હિંસાનાજ ભાગી નથી પરન્તુ અન્ય દોષોના પણ ભાગી છે. તે વાત ભગવાન કહે છે–'अदुवा.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અથવા અદત્તાદાનનો દોષ લાગે છે. (સૂ. ૧૨)

टीका—

'अथवा'-शब्दः कथितस्यार्थस्य प्रकारान्तरेण स्पष्टीकरणे वर्त्तते। येऽप्कायारम्भिणस्तेषामदत्तादानदोषापत्तिरपि। यतोऽप्कायजीवैस्तेभ्यो नार्पितानि स्वशरीराण्युपमर्दयितुं, ते च तानि वाङ्मनःकाययोगैः कृतकारितानुमोदितैरुपमर्दयन्ति, ततश्चाप्कायारम्भिणामदत्तादानदोषोऽप्यनिवार्यो भवति, तस्मान्मुमुक्षुभिः सर्वथाऽप्कायारम्भो वर्जनीयः, इति भगवता साक्षात्प्रोक्तम् ॥ सू० १२ ॥

सचित्तजलोपभोगिनो हि पृष्टाः सन्तो यद् वदन्ति तदाह—

यद्वा-अप्कायारम्भं स्वयं परिहर्तुमक्षमाः शाक्यादयो यद्वदन्ति तदाह-'कप्पइ णे.' इत्यादि।

टीकार्थ—पहले कही हुई बात का दूसरी तरह से स्पष्टीकरण करने के लिये '**अथवा**' शब्द है। जो अप्काय का आरंभ करते हैं उन्हें अदत्तादान का दोष भी लगता है। कारण यह है कि-अप्काय के जीवों ने अपने शरीर उपमर्दन करने के लिए उन्हें सौंपे नहीं हैं, फिर भी वे लोग मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से उनका उपमर्दन करते हैं. अतः अप्काय का आरंभ करने वालों को अदत्तादान का दोष अनिवार्य है। अतः मुमुक्षु पुरुषों को अप्काय का आरंभ त्यागना चाहिए! ऐसा भगवान् ने साक्षात् कहा है ॥ सू० १२ ॥

सचित्त जलका उपयोग करनेवाले पूछनेपर जो उत्तर देते हैं सो कहते हैं—अथवा जो लोग अप्काय के आरंभ को त्यागने में असमर्थ हैं उनका कथन बतलाते हैं:—'**कप्पइ णे.**' इत्यादि।

ટીકાર્થ—પ્રથમ કહેલી વાતને બીજી રીતથી સ્પષ્ટીકરણ કરવાના અર્થમાં 'અથવા' શબ્દ છે. જે અપ્કાયનો આરંભ કરે છે, તેને અદત્તાદાનનો દોષ પણ લાગે છે, કારણ એ છે કે-અપ્કાયના જીવોએ પોતાનું શરીર ઉપમર્દન કરવા માટે તેને સોંપ્યું નથી. તો પણ તે લોકો મન, વચન અને કાયાથી અને કરવું, કરાવવું તથા અનુમોદવું તે વડે કરી ઉપમર્દન કરે છે, તે કારણથી અપ્કાયનો આરંભ કરવાવાળાને અદત્તાદાનનો દોષ પણ અનિવાર્ય (ટાળી ન શકાય તેવો) છે. એ માટે મુમુક્ષુ પુરૂષોએ અપ્કાયનો આરંભ ત્યાગી દેવો જોઇએ. એ પ્રમાણે ભગવાને સાક્ષાત્ કહ્યું છે. (સૂ. ૧૨)

સચિત્ત જલનો ઉપયોગ કરવાવાળાને પૂછતાં જે ઉત્તર આપે છે-તે કહે છે, અથવા જે લોક અપ્કાયના આરંભને ત્યજવામાંઅસમર્થ છે. તેમનું કહેવું-કથન બતાવે છે-'**कप्पइ णे.**' ઇત્યાદિ.

मूलम्—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं अदुवा विभूसाए ॥ सू० १३ ॥

छाया—

कल्पतेऽस्माकं कल्पतेऽस्माकं पातुं, अथवा विभूषायै ॥ सू० १३ ॥

टीका—

'कल्पतेऽस्माक'–मिति । न वयं स्वेच्छयोदकमुपमर्दयामः किन्त्वस्माकमागमे निर्जीवत्वेन प्रतिबोधितत्वादनिषिद्धत्वाच्च पातुं कल्पते । 'कल्पतेऽस्माकम्' इत्यस्य द्विरुच्चारणेन पुनःपुनरनेकप्रयोजनवशाद् बहुविध उपभोगोऽस्माकं कल्पते, इति बोध्यते । तथाहि—

भस्मस्नायिनो वदन्ति–अस्माकं पातुमेव कल्पते न तु स्नातुमिति ।

शाक्यादयस्त्वेवं जल्पन्ति–स्नान–पानादि सर्वं कल्पते जलेनेति ।

मूलार्थ—हमें कल्पता है, हमें कल्पता है, (जल) पीने और विभूषा करने–हाथ पैर आदि धोने, नहाने–के लिए ॥ सू. १३ ॥

टीकार्थ—हम स्वेच्छा से जल की विराधना नहीं करते, वरन हमारे आगम में जल को अचित्त बतलाया है और पीने का निषेध नहीं किया है, अतः हमें पीना कल्पता है । **'हमें कल्पता है'** यह दो बार कहने से यह सूचित किया गया है कि–प्रयोजन के वश नाना प्रकार का उपभोग करना हमें कल्पता है । जैसे—

भस्म से स्नानकरनेवाले कहते हैं–हमें पीना ही कल्पता है, स्नानकरना नहीं कल्पता ।

शाक्य आदि का कहना है कि–हमें पीना और स्नानकरना–सभी कुछ कल्पता है !

મૂલાર્થ—અમને કલ્પે છે, અમને કલ્પે છે, (જલ) પીવાને અને વિભૂષા–હાથ પગ આદિ ધોવા, નહાવા માટે (સૂ. ૧૩)

ટીકાર્થ—અમે સ્વેચ્છાથી જલની વિરાધના કરતા નથી. પરંતુ અમારા આગમમાં જલને અચિત્ત બતાવ્યું છે; અને પીવાનો નિષેધ કર્યો નથી. તેથી અમારે પીવું કલ્પે છે. 'અમારે કલ્પે છે.' આ બે વાર કહેવાથી એ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે:—પ્રયોજનવશ નાના પ્રકારનો ઉપભોગ કરવાનું અમને કલ્પે છે. જેમકે–

ભસ્મથી સ્નાનકરવાવાળા કહે છે—અમારે પીવું કલ્પે છે, સ્નાન કરવું કલ્પતું નથી.

શાકય આદિનું કહેવું છે કે–અમારે પીવું અને સ્નાન, સર્વ કાંઇ કલ્પે છે.

ते पुनरेवं वदन्ति–अथवा विभूषायै=शोभार्थं कल्पतेऽस्माकमुदकमिति । विभूषा नाम–करचरणमुखादिप्रक्षालनादिका, वस्त्रादिप्रक्षालनरुपा वा, तदर्थं जलेन व्यवहरतामस्माकं नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ॥ सू० १३ ॥

पुनः किं कुर्वन्ति ते ? इत्याह–'पुढो सत्थेहिं,' इत्यादि

मूलम्––

पुढो सत्थेहिं विउट्टंति ॥ सू० १४ ॥

छाया––

पृथक् शस्त्रैर्व्यावर्त्तयन्ति (विकुट्टंति वा) ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

आत्मानमनगारं प्रवदमाना शाक्यादयः पृथक्=भिन्नभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः= स्नानपानधावनोत्सेचनादिभिरप्कायजीवान् व्यावर्त्तयन्ति=प्राणेभ्यो व्यपरोपयन्ति । यद्वा विकुट्टन्ती'–तिच्छाया तेन विकुट्टन्ति=विशेषेण छिन्दन्ति, सर्वथा भावेन विराधयन्तीत्यर्थः ॥ सू० १४ ॥

उनका यह भी कहना है कि–विभूषा–शोभा के लिए भी जल का उपभोग हमें कल्पता है । हाथ, पैर, मुख, आदि धोना और वस्त्र आदि धोना विभूषा है । इस के लिए जलका व्यवहारकरने में हमें जरा भी दोष नहीं लगता ॥ सू० १३ ॥

वे और क्या करते हैं, सो करते हैं:–'पुढो.' इत्यादि ।

मूलार्थ––भिन्न–भिन्न शस्त्रों से जलकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० १४ ॥

टीकार्थ––अपन को अनगार कहते हुए शाक्य वगैरह भिन्न–भिन्न प्रकार के शस्त्रों से स्नान, पान, धोना, सींचना आदि कार्य कर के अप्काय की हिंसा करते हैं । अथवा पूर्णरुप से उस की विराधना करते हैं ॥ सू० १४ ॥

તેમનું એ પણ કહેવું છે કે વિભૂષા–શોભા માટે પણ જલનો ઉપભોગ અમારે કલ્પે છે. હાથ પગ, મુખ આદિને ધોવાં અને વસ્ત્ર આદિ ધોવાં તે વિભૂષા કહેવાય છે. એ માટે જલનો વ્યવહાર કરવામાં અમને જરાપણ દોષ લાગતો નથી. (સૂ. ૧૩)

તે બીજું શું કરે છે, તે કહે છે 'पुढो.' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જૂદા જૂદા શસ્ત્રોથી જલકાયની હિંસા કરે છે. (સૂ. ૧૪)

ટીકાર્થ—પોતાને અણગાર કહેનારા શાકય વગેરે ભિન્ન–ભિન્ન પ્રકારના શસ્ત્રોથી સ્નાન, પાન, ધોવું, સીંચવું આદિ કાર્ય કરીને અપ્કાયની હિંસા કરે છે. અથવા પૂર્ણ રૂપથી તેની વિરાધના કરે છે. (સૂ. ૧૪)

साम्प्रतमेषां युक्त्यागमयोर्निस्सारत्वं प्रदर्शयन्नाह–' एत्थवि.' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ वि तेसिं नो निकरणाए ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

अत्रापि तेषां नो निकरणायै ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

तेषां शक्यादीनां युक्तयः अत्र=अस्मिन्नप्कायारम्भविषये नो=नैव निकरणायै= निश्चयकरणाय समर्थाः सन्ति। अपिशब्देन तेषामागमोऽपि न निश्चेतुं समर्थो भवति। आगमत्वपि तत्र न संभवति, अनाप्तप्रणीतत्वात्, हिंसाविधायकत्वाच्च। यतो हि स एवागमशब्दवाच्यः यः खलु वीतरागप्रणीतः सर्वप्राणिहितकरो भवति॥ सू० १५ ॥

उन का कथन युक्ति और आगम से सारहीन है, यह बतलाते हुए कहते हैं– 'एत्थवि.' इत्यादि ।

मूलार्थ––उन लोगों की युक्तियाँ अप्काय के विषय में निश्चय नहीं कर सकती ॥ सू० १५ ॥

टीकार्थ––उन शाक्य आदि की युक्तियाँ अप्काय के आरंभ के विषय में, निश्चय करने में समर्थ नहीं हैं। **'वि' अपि** शब्द से यह सूचित किया है कि–उनका आगम भी निश्चय करने में समर्थ नहीं है। उनका आगम, आगम भी नहीं है, क्यों कि वह आप्तपुरुषद्वारा प्रणीत नहीं है और हिंसा का विधान करनेवाला है। आगम वही कहला सकता है जो वीतरागद्वारा प्रणीत हो और प्राणीमात्र का हितकारी हो ॥ सू० १५ ॥

તેમનું કથન–કહેવું–યુક્તિ અને આગમથી સારહીન છે. એ બતાવીને કહે છે– ' एत्थवि, ' ઈત્યાદિ.

મુલાર્થ–તે લોકોની યુક્તિઓ અપ્કાયના વિષયમાં નિશ્ચય કરી શકતી નથી. (સૂ. ૧૫)

ટીકાર્થ—તે શાક્ય આદિની યુક્તિઓ અપ્કાયના આરંભના વિષયમાં નિશ્ચય કરવામાં સમર્થ નથી. 'वि' અપિ શબ્દથી એ સૂચિત કર્યું છે કે તેમનું આગમ પણ નિશ્ચય કરવામાં સમર્થ નથી. તેમનું આગમ તે આગમ પણ નથી. કેમકે તે આપ્ત પુરૂષો દ્વારા પ્રણીત નથી. અને હિંસાનું વિધાન કરવાવાળાં છે. આગમ તે કહેવાય છે કે જે વીતરાગદ્વારા પ્રણીત હોય અને પ્રાણીમાત્રનું હિતકારી હોય. (સૂ. ૧૫)

तदेवमपां जीवत्वं प्रतिबोध्य अस्य उद्देशस्य सकलार्थमुपसंहरन्नाह-'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्य इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं उदयसत्थं समारंभेज्जा, णेवन्नेहिं उदयसत्थं समारंभावेज्जा, उदयसत्थं समारंभतेऽवि अण्णे न समणुजाणेज्जा । जस्सेते उदयसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० १६ ॥

तइओ उद्देशो समत्तो ॥ ३ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयेत्, उदकशस्त्रं

इस प्रकार जल को जीव बतलाकर इस उद्देशक के समस्त कथन का उपसंहार करते हैं—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—अप्काय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते । अप्काय में शस्त्र का आरंभ न करने वालो को ये आरंभ ज्ञात होते हैं । उन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं जल का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न करावे और आरंभ करने वाले दूसरे को भला न जाने । जो जलकाय के इस आरंभ को जानता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । भगवान् से मैंने जो सुना वह कहता हूँ ॥ सू० १६ ॥

આ પ્રમાણે જલને જીવ બતાવીને આ ઉદ્દેશકનાં સમસ્ત કથનનો ઉપસંહાર કરે છે—'एत्थ.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અપ્કાયમાં શસ્ત્રના આરંભ કરવાવાળાને આરંભ જાણવામાં આવતા નથી. અપ્કાયમાં શસ્ત્રના આરંભ નહિ કરવાવાળાને એ આરંભ જાણવામાં આવે છે. તેને જાણી કરીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ સ્વયં જલનો આરંભ કરે નહિ. બીજા પાસે આરંભ કરાવે નહિ. અને આરંભ કરવાવાળા બીજાને ભલો જાણે નહિ. જે જલકાયનો આ પ્રમાણે આરંભ જાણે છે. તે પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ છે, ભગવાન પાસેથી જે સાંભળ્યું તે કહું છું. (સૂ. ૧૬)

समारभमाणानन्यान् न समनुजानीयात्। यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १६ ॥

। तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ३ ॥

टीका--

अत्र=अस्मिन्नप्काये शस्त्रं=द्रव्यभावरूपं समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते आरम्भाः बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति। अत्र=अस्मिन्नप्काये शस्त्रं=द्रव्य-भावरूपम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः। ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति दर्शयति-'तत् परिज्ञाये'-त्यादि। तद्=उदकारम्भणं परिज्ञाय='बन्धाय भवती'-त्येवमवबुध्य मेधावी= साधुमर्यादायां सावधानः, नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भ-

---

टीकार्थ--इस अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का व्यापार करने वाला अपने व्यपारों को कर्मबंध का कारण नहीं जानता। को अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का उपयोग नहीं करते, उन्हें इस व्यापारों का ज्ञान होता है। अर्थात् वे ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देते हैं। ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है सो कहते हैं--जल के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर साधु की मर्यादा में रहने वाले बुद्धिमान् स्वयं जलकाय का आरंभ नहीं करे, दूसरों से आरंभ नहीं करावे और जलका आरंभ करने

ટીકાર્થ—આ અપ્કાયના વિષયમાં દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવા-વાળા પોતાના વ્યાપારોને કર્મબંધનું કારણુ જાણુતા નથી. જે અપ્કાયના વિષયમાં દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરતા નથી, તેને એ વ્યાપારોનું જ્ઞાન હોય છે. અર્થાત્ તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી દે છે.

જ્ઞપરિજ્ઞા પછી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા કેવા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે, તે કહે છે–જલના આરંભને કર્મબંધનું કારણુ જાણી કરીને સાધુની મર્યાદામાં રહેવાવાળા બુદ્ધિમાન સ્વયં જલકાયનો આરંભ કરે નહિ, બીજા પાસે કરાવે નહિ, અને જલનો આરંભ કરવાવાળાને

येत्, उदकशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् अपि न समनुजानीयात् नानुमोदये-दित्यर्थः। यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवति, इति ब्रवीमि, एतद्व्याख्यानं प्राग्वद् बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

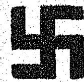
इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने
तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ १ । ३ ॥

वाले दूसरों का अनुमोदन नहीं करे। जो उदकशस्त्र के आरंभ को जानता है वह परिज्ञातकर्मा मुनि है। 'इति बेमि' का अर्थ पहले की तरह जानना चाहिए ॥ सू० १६॥

इति श्री आचाराङ्ग सूत्र की 'आचारचिन्तामणि' टीका के
हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका
तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ १-३ ॥

અનુમોદન આપે નહિ. જે ઉદકશસ્ત્રના આરંભને જાણે છે, તે પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ છે. 'इति बेमि' નો અર્થ પહેલાનાં પ્રમાણે જાણવો જોઈએ. (સૂ० १६)

ઇતિ શ્રી આચારાંગ સૂત્રની 'आचारचिन्तामणि' ટીકાના
ગુજરાતી અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો
ત્રીજો ઉદ્દેશક સમાપ્ત. ॥ ૧।૩ ॥



अथ चतुर्थोद्देशः ।

अनन्तरतृतीयोद्देशके मुनित्वप्राप्तयेऽप्कायस्य स्वरूपं निर्णीतं, तदर्थमेवाप्कायशस्त्रसमारम्भे ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदाद् द्विविधा परिज्ञाऽपि प्रवेदिता। अथैतदर्थमेव च क्रममाप्तमग्निकायं प्रतिबोधयितुकामश्चतुर्थमुद्देशकं प्रारभते । तत्रादौ 'तेजस्काया जीवाः सन्ती'ति निर्धारयितुमाद्यं सूत्रमाह-'से बेमि' इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि नेव सयं लोयं अब्भाइक्खेज्जा, नेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा, जे लोयं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ। जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं अब्भाइक्खइ ॥ सू० १ ॥

चौथा उद्देशक—

पिछले तीसरे उद्देशक में साधुता की प्राप्ति के लिए अप्काय के स्वरूप का निर्णय किया, और अप्कायशस्त्र का उपयोग करने में ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा भी बतलाई। अब उसी साधुता की प्राप्ति के लिए क्रमप्राप्त अग्निकाय का स्वरूप समझाते हुए चौथा उद्देशक आरंभ करते हैं। सर्वप्रथम तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित करने के लिए सूत्र कहते हैं—**'से बेमि'** इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा कहता हूं। स्वयं अग्निकायरूप लोक का अपलाप न करे। न आत्माका अपलाप करे। जो अग्निकाय का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है, जो आत्मा का अपलाप करता है वह अग्निकाय का अपलाप करता है ॥ सू० १ ॥

ચોથા ઉદ્દેશક—

પાછળના ત્રીજા ઉદ્દેશકમાં સાધુતાની પ્રાપ્તિ માટે અપ્કાયનો નિર્ણય કર્યો અને અપ્કાય શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવામાં જ્ઞપરિજ્ઞા તથા પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા પણ બતાવી. હવે તે સાધુતાની પ્રાપ્તિ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અગ્નિકાયનું સ્વરૂપ સમજાવતા થકા—ચોથા ઉદ્દેશકનો આરંભ કરે છે. સર્વ પ્રથમ તેજસ્કાયના જીવોનું અસ્તિત્વ નિશ્ચય કરવા માટે સૂત્ર કહે છે—'से बेमि' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાનની સમીપ જેવું સાંભળ્યું છે, તેવું કહું છું. સ્વયં અગ્નિકાય રૂપ લોકનો અપલાપ કરે નહિ; અને આત્માનો અપલાપ પણ કરે નહિ. જે અગ્નિકાયનો અપલાપ કરે છે, તે આત્માનો અપલાપ કરે છે. જે આત્માનો અપલાપ કરે છે તે અગ્નિકાયનો અપલાપ કરે છે. (સૂ. ૧)

छाया—

स ब्रवीमि, नैव स्वयं लोकमभ्याख्यायात्, नैवात्मानमभ्याख्यायात्। यो लोकमभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति। य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्याख्याति ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन मया नित्यं गुरुकुलनिवासिना भगवतः समीपे षड्जीवनिकाय-स्वरूपं निरवशेषविशेषपुरस्सरं श्रवणमननादिना परिज्ञाविषयीकृत्य निर्णीतं, सोऽहं ब्रवीमि=श्रुतं यथा भगवन्मुखात्, तथा कथयामीत्यर्थः।

लोकम्=अग्निकायलोकम्, प्रकरणसम्बन्धादिह लोकशब्देनाग्निकाय-लोकस्य ग्रहणम्। स्वयम्=आत्मना, नैव अभ्याख्यायात्=नैवापह्नुवीत। 'अग्निकाय-जीवा न सन्ती'त्येवमग्निकायजीवस्यापलापं नैव कुर्यादित्यर्थः। स्वयमित्यनेनाग्निकायजीवापलपनकर्मणा स्वमात्मानं नैव बध्नीयादित्यर्थो बोध्यते।

टीकार्थ—गुरुकुल में निवास करते हुए मैंने भगवान के मुख से षट्काय का समस्त विशेषों से युक्त जो स्वरूप श्रवण मनन आदि से परिज्ञा का विषय कर के निर्णीत किया है, उसे मैं कहता हूँ। अर्थात् जैसा भगवान् के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही कहता हूँ।

अग्निकाय का प्रकरण होने के कारण यहाँ 'लोक' का अर्थ अग्निकायरूप लोक समझना चाहिए। इस अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे अर्थात् यह न कहे कि—अग्निकाय के जीव नहीं हैं। स्वयं शब्द से यह अर्थ प्रकट होता है कि अग्निकाय के अपलापरूप कर्म से अपने आप को बद्ध न करे।

ટીકાર્થ—ગુરુકુલમાં નિવાસ કરીને મેં ભગવાનના મુખથી ષટ્કાયના સમસ્ત વિશેષોથી યુકત જે સ્વરૂપને શ્રવણ-મનન આદિથી પરિજ્ઞાનો વિષય કરીને નિર્ણીત કર્યું તે હું કહું છું. અર્થાત્ જે પ્રમાણે ભગવાનના મુખારવિંદથી સાંભળ્યું છે. તેવુંજ હું કહું છું.

અગ્નિકાયનું પ્રકરણ હોવાના કારણે અહિં 'લોક' નો અર્થ અગ્નિકાયરૂપ લોક સમજવો જોઈએ. આ અગ્નિકાયનો સ્વયં અપલાપ કરે નહિ. અર્થાત્ એ પ્રમાણે કહે નહિ કે-અગ્નિકાયના જીવ નથી 'સ્વયં' શબ્દથી એ અર્થ પ્રગટ થાય છે કે અગ્નિકાયના અપલાપરૂપ કર્મથી પોતે પોતાને બદ્ધ કરે નહિ.

अयं भावः–कृतकारितानुमोदितभेदेन, मनोवाक्कायभेदेन, तथाऽतीतानागतवर्तमान-भेदेन च प्रत्येकक्रियायाः सप्तविंशतिभेदा भवन्ति; एवमस्या अपि तेजस्काय-जीवाभ्याख्यानरूपक्रियाया एकस्या एव सप्तविंशतिभेदा भवितुमर्हन्ति। तत्र कस्याञ्चिदपि क्रियायां स्वात्मानं न नियुञ्ज्यादिति। उपपद्यतेऽप्ययमर्थः, अन्यथा हि स्वयंकृतस्यैवाभ्याख्यानस्य प्रतिषेधे कारितानुमोदितरूपाणां तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाणां प्रतिषेधाभावः प्रसज्येत। ततश्च तादृशाभ्याख्यानं पापाय न स्यात्। तथाचोत्सूत्रप्ररूपणापत्तिः।

तात्पर्य यह है–प्रत्येक के कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन काय, और अतीत, अनागत, वर्तमान के भेद से (इनका परस्पर गुणाकार करने से) सत्ताईस भेद होते हैं। इसीप्रकार इस तेजस्काय का अपलापरूप क्रिया के भी सत्ताईस भेद हो सकते हैं। इन भेदों से किसी भी भेद में आत्मा को जोडना न चाहिए। अगर ऐसा अर्थ न लगाया जाता तो यह भी समझ लिया जाता कि–अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे, मगर अपलाप कराने और अनुमोदन करने की क्रियाओं का निषेध नहीं है। ऐसा अर्थ संगत नहीं है, क्यों कि ऐसा अर्थ करने से केवल स्वयंकृत अपलापका ही प्रतिषेध होगा, किन्तु कारित और अनुमोदित अपलायका प्रतिषेध नहीं होगा और इस प्रकार का अपलाप पाप का कारण न होगा। फिर तो सूत्र के विरुद्ध प्ररूपणा का दोष आएगा।

તાત્પર્ય એ છે–પ્રત્યેક ક્રિયાના કરવું–કરાવવું અને અનુમોદના, મન, વચન, કાયા અને ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ તથા વર્તમાન કાલના ભેદથી (એનો પરસ્પર ગુણાકાર કરવાથી) સત્યાવીસ ભેદ થાય છે. એ પ્રમાણે આ તેજસ્કાયના અપલાપરૂપ ક્રિયાના પણ સત્યાવીસ ભેદ થઈ શકે છે. એ ભેદોમાંથી કોઈ પણ ભેદમાં આત્માને જોડવો જોઈએ નહિ; પરન્તુ એ પ્રમાણે અર્થ કરવામાં ન આવે તો એ પણ સમજી લેવામાં આવત કે, અગ્નિકાયનો સ્વયં અપલાપ કરે નહિ. પરન્તુ અપલાપ કરાવવાની અને અનુમોદન કરવાની ક્રિયાઓનો નિષેધ નથી. આ પ્રકારનો અર્થ સંગત નથી, કેમકે–આવો અર્થ કરવાથી કેવળ સ્વયંકૃત અપલાપનોજ નિષેધ થશે. કિન્તુ કારિત અને અનુમોદિત અપલાપનો નિષેધ થશે નહિ, અને એ પ્રકારનો અપલાપ પાપનું કારણ ન થાય, પછી તો સૂત્રના વિરુદ્ધ પ્રરૂપણાનો દોષ આવશે.

लक्षणद्वारम्--

ननु तेजस्कायजीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम्? उच्यते-अङ्गारादयो जीवशरीराणि, छेद्यत्वाद्, दृश्यत्वाद्, करचरणादिसमुदायवत्।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मप्रयोगाविर्भूतः शरीरस्थत्वात्, खद्योतदेहपरिणामवत्। यथा-रजन्यादौ विशिष्टकाले प्राणिविशेषस्य खद्योतस्य देहपरिणामो जीवप्रयोगविशेषाद् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः।

यद्वा-अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंप्रयोगपूर्वकः, शरीरस्थत्वात्, ज्वरोष्मवत्।

लक्षणद्वार—

शङ्का--तेजस्काय के जीवों के अस्तित्व में क्या प्रमाण है?

समाधान--अंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्यों कि वह छेद्य हैं, भेद्य हैं और दृश्य हैं, जैसे हाथ-पैर आदि का समूह।

अथवा--अंगार आदि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई है; क्यों कि वह शरीर में स्थित है, जैसे-जुगनू के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि वगैरह खास समय में जुगनू नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (चमकना) जीव के प्रयोग से प्रकट होता है, उसी प्रकार अंगार आदि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही उत्पन्न होता है।

अथवा--अंगार आदि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्यों कि वह शरीर में है, जैसे ज्वर की गर्मी. ज्वर की गर्मी जीव से युक्त शरीर में ही उत्पन्न होती है,

---

લક્ષણદ્વાર—

શંકા—તેજસ્કાયના જીવોના અસ્તિત્વ (હોવાપણા)માં શું પ્રમાણ છે?

સમાધાન—અંગાર આદિ જીવનાં શરીર છે. કેમકે તે છેદ્ય છે, ભેદ્ય છે, અને દશ્ય છે. જેમકે હાથ, પગ આદિનો સમૂહ.

અથવા—અંગાર આદિની પ્રકાશરૂપ પર્યાય આત્માના પ્રયોગથી ઉત્પન્ન થઈ છે; કારણકે તે શરીરમાં સ્થિત છે. જેવી રીતે-જુગનૂ (આગિયો નામના પ્રાણી)ના શરીરની પર્યાય. જેમ રાત્રી વગેરે ખાસ સમયમાં જુગનૂ (આગીઓ) નામક પ્રાણીનો શરીર-પરિણામ (ચમકવું) જીવના પ્રયોગથી પ્રગટ થાય છે. તે પ્રમાણે અંગાર આદિના પ્રકાશરૂપ પરિણામ પણ આત્માના વ્યાપારથીજ ઉત્પન્ન થાય છે.

અથવા—અંગાર આદિની ગરમી આત્માના વ્યાપારથી ઉત્પન્ન થાય છે. કારણકે તે શરીરમાં છે. જેમકે જ્વર-તાવની ગરમી. જ્વર-તાવની ગરમી જીવથી યુક્ત શરીરમાંજ

यथा–ज्वरोष्मा जीवाधिष्ठितशरीरमेवाश्रित्य भवति, जीवसंयोगं नातिक्रामति। न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते। एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सचित्तता विज्ञेया। न च सूर्यादिभिरनेकान्तो वाच्यः, सर्वेषामात्मसंयोगपूर्वक एवोष्ण-परिणामो भवति, तस्मादनेकान्तो न संभवति।

यद्वा––तेजः सचेतनम्, यथायोग्याहारग्रहणेन वृद्धिविशेषतद्विकार-वत्त्वात्, पुरुषवत्। एवमुक्तलक्षणेन तेजस्कायजीवाः सन्तीति विज्ञायते।

यद्वा–अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिव्यप्-कायवत् तेजस्कायेऽपि समुपलभ्यन्ते। एवं च जीवलक्षणसद्भावात् तेजस्कायजीवाः सन्तीति निश्चीयते। आगमोऽपि यथा—

जीव के संयोग विना उत्पन्न नहीं होती। मुर्देमें ज्वर कहीं नहीं देखा जाता। इस प्रकार अग्नि में अन्वय–व्यतिरेकद्वारा सचित्तता समझनी चाहिए। यहाँ सूर्य से हेतु में व्यभिचार नहीं है, क्यों कि सब में आत्मप्रयोगपूर्वक ही गर्मी हो सकती है, अतः व्यभिचार नहीं है।

अथवा–तेज सचेतन है, क्यों कि यथायोग्य आहार ग्रहण करने से उस में वृद्धिरूप विकार देखा जाता है, जैसे पुरुष में। इस प्रकार इस लक्षण से तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व विदित होता है। अथवा अप्रकट उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के लक्षण जैसे पृथ्वीकाय और अप्काय में पाये जाते हैं, उसी प्रकार तेजस्काय में भी पाये जाते हैं। इस प्रकार जीव के लक्षण पाये जाने के कारण तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित होता है। इसमें आगम प्रमाण भी है––

ઉત્પન્ન થાય છે. જીવના સંયોગ વિના ઉત્પન્ન થતી નથી. મુડદામાં જ્વર–તાવ કોઈ સ્થળે જોવામાં આવતો નથી; આ પ્રમાણે અગ્નિમાં અન્વય–વ્યતિરેકદ્વારા સચિત્તતા સમજવી જોઈએ. અહિં સૂર્યથી હેતુમાં વ્યભિચાર નથી. કેમકે સર્વમાં આત્મપૂર્વકજ ગરમી હોઈ શકે છે, એટલા કારણથી વ્યભિચાર નથી.

અથવા—તેજ સચેતન છે. કેમકે યથાયોગ્ય આહાર ગ્રહણ કરવાથી તેનામાં વૃદ્ધિરૂપ વિકાર જોવામાં આવે છે. જેવી રીતે પુરુષમાં. આ પ્રકારે જીવનાં લક્ષણ મળવાથી તેજસ્કાયના જીવોનું અસ્તિત્વ જાણવામાં આવે છે.

અથવા—અપ્રગટ ઉપયોગથી લઈને કષાયપર્યન્ત જીવનાં લક્ષણ જોવામાં આવે છે. તે કારણે તેજસ્કાયના જીવોનું અસ્તિત્વ નિશ્ચય હોય છે. આમાં આગમ પ્રમાણ પણ છે–

" तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं "
इत्यादि । (दशवै० अ० ४)

प्ररूपणाद्वारम्-

अग्निकायजीवा द्विविधाः, सूक्ष्मबादरभेदात् । तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः । बादरनामकर्मोदयाद् बादराः । तत्र सूक्ष्माः द्विधा, पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः । बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति ।

बादरा अग्निकाया अनेकविधाः-अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादयः । सर्वे बादरा अग्निकाया अपि द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । बादराणां यत्रैको जीवस्तत्रा-

---

" तेजस्काय सचित्त कहा गया है । उस में अनेक जीव हैं, उनका अस्तित्व अलग-अलग है, शस्त्रपरिणत अग्नि को छोड कर" इत्यादि । (दशवै० अध्य० ४)

प्ररूपणाद्वार—

अग्निकाय के जीव दो प्रकार के हैं-(१) सूक्ष्म और बादर, जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो वे सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो वे बादर जीव हैं। इनमें से सूक्ष्म के भी दो भेद हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं और बादर लोक के एक देश में हैं ।

बादर अनिकाय अनेक प्रकार के हैं । जैसे-अंगार, ज्वाला, अलात (जलता हुआ काष्ठ), शुद्ध अग्नि आदि । सब बादर अग्निकाय भी दो प्रकार के हैं-पर्याप्त

"તેજસ્કાય સચિત્ત કહેલું છે. તેમાં અનેક જીવ છે, તેનું અસ્તિત્વ અલગ-અલગ છે, શસ્ત્રપરિણુત અગ્નિને છોડીને." ઈત્યાદિ. (દશવૈ. અ. ૪)

પ્રરૂપણાદ્વાર—

અગ્નિકાયના જીવ બે પ્રકારના છે—(૧) સૂક્ષ્મ અને (૨) બાદર. જેને સૂક્ષ્મ-નામકર્મનો ઉદય હોય તે સૂક્ષ્મ અને જેને બાદર નામકર્મનો ઉદય હોય તે બાદર-જીવ છે. તેમાંથી સૂક્ષ્મના પણુ બે ભેદ છે. પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત. સૂક્ષ્મ જીવ સમસ્ત લોકાકાશમાં વ્યાપ્ત છે. અને બાદર લોકના એક દેશમાં છે.

બાદર અગ્નિકાય અનેક પ્રકારના છે. જેમકે-અંગાર, જવાલા, બળતું લાકડું, શુદ્ધ અગ્નિ વગેરે. સર્વ બાદર અગ્નિકાય પણુ બે પ્રકારના છે—પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત;

संख्येयैर्नियमतो भाव्यम् । बादराणां स्वस्थानं मनुष्यक्षेत्रमेव, न ततः परमस्ति ।

बादरास्तेजस्कायाः व्याघाताभावे सति मनुष्यक्षेत्रेऽर्धतृतीयद्वीपसमुद्रेषु पञ्चदशक्षेत्रेषु विद्यन्ते । युगलसमयरूपे व्याघाते सति तु पञ्चमहाविदेहेषु वर्तन्ते, नान्यत्र । उपपाताङ्गीकरणेन लोकसंख्येयभागवर्तिनः सन्ति ।

समुद्घातेन सर्वलोकवर्तिनः पृथिवीकायादयश्च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता बादराग्निषु समुत्पद्यमानास्तत्तद्व्यपदेशभाजः सर्वलोकव्यापिनः सन्ति ।

यत्र च बादराः पर्याप्तास्त व बादरा अपर्याप्ताः, यतस्ते तन्निश्रयो-

---

और अपर्याप्त । जहाँ एक बादर जीव होता है वहाँ नियम से असंख्यात जीव होते हैं । बादर जीवों का क्षेत्र मनुष्यलोक ही है; उससे आगे नहीं ।

बादर तेजस्काय व्याघात (अन्तर) न हो तो मनुष्य क्षेत्र में अढाई द्वीप समुद्रों में पन्द्रह क्षेत्रों में रहते हैं । युगलियों के समयरूप व्याघात (अन्तर) के होने पर पाँच महाविदेहों में रहते हैं, अन्यत्र नहीं । उपघात की अपेक्षा लोक के संख्यात भाग में रहते हैं ।

समुद्घात की अपेक्षा—समस्तलोकव्यापी पृथ्वीकाय आदि, मारणान्तिक समुद्घात करके बादर अग्नि में उत्पन्न होते हुए उस—उस व्यपदेश (नाम) के पात्र हो कर सर्वलोकव्यापी हैं ।

जहाँ बादर पर्याप्त हैं वहीं बादर अपर्याप्त हैं, क्यों कि—अपर्याप्त जीव

જ્યાં એક બાદર જીવ હોય છે ત્યાં નિયમથી અસંખ્યાત જીવ હોય છે. બાદર જીવોનું ક્ષેત્ર મનુષ્ય લોકજ છે. તેનાથી આગળ નથી.

બાદર તેજસ્કાય, અન્તર ન હોય તો મનુષ્ય ક્ષેત્રમાં અઢી દ્વીપ–સમુદ્રોમાં, પંદર ક્ષેત્રોમાં રહે છે. યુગલિઆઓના સમયરૂપ અંતર હોવા પર પાંચ મહાવિદેહોમાં રહે છે, અન્યત્ર નહિ. ઉપપાતની અપેક્ષા લોકના સંખ્યાત ભાગમાં રહે છે.

સમુદ્ઘાતની અપેક્ષા સમસ્તલોકવ્યાપી પૃથ્વીકાય આદિ મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત કરીને બાદર અગ્નિમાં ઉત્પન્ન થઈને તે–તે વ્યપદેશ-(નામ)ને પાત્ર થઈને સર્વ લોકવ્યાપી છે.

જ્યાં બાદર પર્યાપ્ત છે ત્યાંજ બાદર અપર્યાપ્ત છે; કેમકે–અપર્યાપ્ત જીવ પર્યાપ્તના

त्पद्यन्ते, तस्मात् सूक्ष्मा बादराश्च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा भवन्ति। सर्वे चैते वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैः सहस्राग्रशो भिद्यमानाः संख्येययोनिप्रमुखशतसहस्रभेदपरिमाणा भवन्ति। तेषां संवृतोष्णा च योनिः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिधा। एषां सप्त लक्षाणि योनयो भवन्ति।

सूक्ष्मबादराणामुभयेषामग्निकायानां शरीरसंस्थानं सूचीकलापाकृतिकम्, अन्ये शरीरत्रयादिभेदाः पृथिवीकाय वत्। उभयेऽग्निकायाः प्रत्येकमसंख्येयाश्च।

पर्याप्त के आश्रय ही उत्पन्न होते हैं। अतः सूक्ष्म और बादर, प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद हैं और वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श के भेद से हजारों भेदों को प्राप्त होते हुए इनकी संख्येय योनि वगैरह भेदों की संख्या लाखों की हो जाती है।

इनकी योनि संवृत और उष्ण है। वह भी सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की है। इनकी सात लाख योनियाँ हैं।

सूक्ष्म और बादर-दोनों प्रकार के अग्निकाय जीवों के शरीर का आकार सुइयों के समूह की तरह है। शरीरत्रय आदि अन्य भेद पृथ्वीकाय के समान हैं। दोनों प्रकार के अग्निकाय असंख्यात-असंख्यात हैं।

આશ્રયેજ ઉત્પન્ન થાય છે. એ કારણથી સૂક્ષ્મ અને બાદર પ્રત્યેકના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી બે ભેદ છે અને વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શના ભેદથી હજારો ભેદો પામતા થકા એની સંખ્યેય યોનિ વગેરે ભેદોની સંખ્યા લાખો થઈ જાય છે.

તેની યોનિ સંવૃત અને ઉષ્ણ છે, તે પણ સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે. એની સાત લાખ યોનિઓ છે.

સૂક્ષ્મ અને બાદર બન્ને પ્રકારના અગ્નિકાય જીવોના શરીરનો આકાર સોયના સમૂહની પ્રમાણે છે. શરીરત્રય (ત્રણ શરીર) આદિ અન્ય ભેદ પૃથ્વીકાયની સમાન છે. બન્ને પ્રકારના અગ્નિકાય અસંખ્યાત-અસંખ્યાત છે.

परिमाणद्वारम्—

बादरपर्याप्तास्तेजस्कायजीवाः क्षेत्रपल्योपमस्याऽसंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति। तदपेक्षया बादरा अपर्याप्तास्तेजस्कायजीवा असंख्यातगुणाः तदपेक्षया सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः, तदपेक्षया सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः सन्ति। पृथिवीकायेन सहाग्निकायस्य परिमाणसमालोचनायां त्वेवमवधेयम्—

ये तेजस्काया बादरपर्याप्ताः क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति, ते बादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्योऽसंख्यातगुणहीनाः। शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथिवीकायवद् विज्ञेयाः। तत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार—

बादर पर्याप्त तेजस्काय के जीव क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि के बराबर हैं। बादर अपर्याप्त तेजस्काय जीव उनसे असंख्यात गुणा हैं, सूक्ष्म अपर्याप्त इनसे भी असंख्यात गुणा हैं, और सूक्ष्म पर्याप्त इन से भी असंख्यात गुणा हैं। पृथ्वीकाय के साथ अग्निकाय के परिमाण का विचार किया जाय तो इस प्रकार है—

तेजस्काय के जो बादर पर्याप्त जीव क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर हैं, वे बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से असंख्यातगुणा हीन हैं। शेष तीनों राशियाँ पृथ्वीकाय से समान ही समझ लेनी चाहिए। विशेषता सिर्फ इतनी है—

પરિમાણુ દ્વાર—

બાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ ક્ષેત્ર-પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે. બાદર અપર્યાપ્ત-તેજસ્કાય જીવ તેનાથી અસંખ્યાત ગુણા છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાત ગુણા છે. અને સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાત ગુણા છે. પૃથ્વીકાયની સાથે અગ્નિકાયના પરિમાણુનો વિચાર કરવામાં આવે તો આ પ્રકારે છે—

તેજસ્કાયના જે બાદર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર છે; તે બાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી અસંખ્યાત ગુણા હીન છે. બાકીની ત્રણેય રાશિઓ પૃથ્વીકાયની સમાનજ સમજી લેવી જોઈએ, વિશેષતા માત્ર એટલી છે કે:—

बादरापर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो बादरा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणहीनाः, सूक्ष्माऽपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीनाः। सूक्ष्मपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीना इति।

एवं युक्त्यागमप्रमाणाभ्यामग्नेर्जीवत्वे सिद्धे यदि कश्चिदग्निकाय जीवस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्युपयोगादिलक्षणैरनुमितस्य शरीराधिष्ठातुरात्मतोऽप्यभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, परन्तु तन्न उचितं भवतीत्यत आह-"नैवाऽऽत्मानमभ्याख्याया"-दिति। केनचिदात्मना शरीरमिदं, परिगृहीतं, केनचिच्च शरीरमिदं परित्यक्तमिति प्रत्यक्षदर्शनादात्मनः शरीराधिष्ठातृत्वं सिध्यति।

बादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से बादर अपर्याप्त तेजस्काय के जीव असंख्यातगुणा कम हैं। सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्काय के जीव विशेष हीन हैं। सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय के जीव विशेष हीन हैं।

इस प्रकार युक्ति और आगमप्रमाण से अग्नि की सजीवता सिद्ध हो जाने पर भी यदि कोई अग्निकाय के जीवों का अपलाप करता है तो वह उपयोग आदि लक्षणों से अनुमान किये जाने वाले और शरीर के अधिष्टाता आत्मा का अपलाप करता है, मगर ऐसा करना उचित नहीं है, अतः सूत्रकार कहते हैं-' **आत्मा का अपलाप न करे** '। किसी आत्माने यह शरीर ग्रहण किया है और किसी ने शरीर का त्याग किया हैं, यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर, आत्मद्वारा अधिष्ठित है।

બાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી બાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ અસંખ્યાત ગુણા ઓછા છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ વિશેષહીન છે. સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ વિશેષહીન છે-વિશેષ ઓછા છે.

આ પ્રમાણે યુક્તિ અને આગમપ્રમાણથી અગ્નિની સજીવતા સિદ્ધ થઈ જવા છતાંય પણ જો કોઈ અગ્નિકાયના જીવોનો અપલાપ કરે છે તો તે ઉપયોગ લક્ષણોથી અનુમાન કરવામાં આવેલા અને શરીરના અધિષ્ઠાતા આત્માનો અપલાપ કરે છે. પરન્તુ એ પ્રમાણે કરવું તે ઉચિત નથી. તેથી સૂત્રકાર કહે છે-' આત્માનો અપલાપ ન કરે.' કોઈ આત્માએ આ શરીર ગ્રહણ કર્યું છે, અને કોઈએ શરીરનો ત્યાગ કર્યો છે, એ વાત પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે. તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે શરીર આત્માદ્વારા અધિષ્ઠિત છે.

एवं च युक्त्यागमसंसिद्धः शरीराधिष्ठाता ज्ञानादिगुणवानयमात्मा कथमपि नापलपितुं शक्यः। तस्मादात्मा नास्तीत्येवमभ्याख्यानमात्मनो न कुर्यादित्यर्थः।

यः खलु मन्दधीः, लोकम्=अग्निकायलोकम्, अभ्याख्याति, आत्मवत्सर्वप्रमाणसंसिद्धमप्यग्निकायलोकं प्रत्याचष्टे—'अग्निकायजीवो नास्ती'ति, स आत्मानमभ्याख्याति=स मूढः खलु युक्त्यागमप्रमाणसंसिद्धमात्मानमपलपति 'आत्मा नास्ती'ति। सर्वप्रमाणसंसिद्धाग्निकायलोकाभ्याख्याने प्रवृत्तस्य सुकरमेवात्मनोऽभ्याख्यानम्, अग्निकायवदेवात्मन्यपि प्रमाणसत्तायास्तुल्यत्वादिति भावः।

य आत्मानमभ्याख्याति=यश्चात्मनोऽभ्याख्याने 'आत्मा नास्ती'

इस प्रकार युक्ति और आगम से सिद्ध शरीर के अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणों वाले आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता। अत एव 'अत्मा नहीं है' इस प्रकार आत्मा का निषेध नहीं करना चाहिए।

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूप लोक का जो आत्मा की भाँति समस्त प्रमाणों से सिद्ध है–निषेध करता है अर्थात् अग्निकाय के जीवों का निषेध करता है वह युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मा का निषेध करता है। सब प्रमाणों से सिद्ध अग्निकाय लोक का अपलाप करने पर आत्मा का अपलाप करना सरल ही है, क्यों कि अग्निकाय और आत्मा के अस्तित्व में प्रमाणों का सद्भाव समान है।

जो मूर्ख 'आत्मा नहीं है' इस प्रकार आत्मा का निषेध करता है वह

આ પ્રમાણે યુક્તિ અને આગમથી સિદ્ધ, શરીરના અધિષ્ઠાતા તથા જ્ઞાન આદિ ગુણોવાળા આત્માનો નિષેધ કરી શકાતો નથી. એટલા માટે 'આત્મા નથી' આ પ્રમાણે આત્માનો નિષેધ કરી શકાતો નથી. એટલા માટે 'આત્મા નથી' આ પ્રમાણે આત્માનો નિષેધ કરવો જોઈએ નહિ.

જે મન્દબુદ્ધિ પુરુષ અગ્નિકાયરૂપલોકનો કે જે આત્મા પ્રમાણે સમસ્ત પ્રમાણોથી સિદ્ધ છે તેનો, નિષેધ કરે છે, અર્થાત્ અગ્નિકાયના જીવોનો નિષેધ કરે છે, તે યુક્તિ અને આગમથી સિદ્ધ આત્માનો નિષેધ કરે છે. સર્વ પ્રમાણોથી સિદ્ધ અગ્નિકાયલોકના અપલાપ કરવાથી આત્માનો અપલાપ કરવો તે સરલજ છે. કેમકે અગ્નિકાય અને આત્માના અસ્તિત્વમાં પ્રમાણોનો સદ્ભાવ સમાન છે.

જે મૂર્ખ 'આત્મા નથી' આ પ્રમાણે આત્માનો નિષેધ કરે છે, તે 'અગ્નિકાય

त्यपलपने प्रवर्त्तते, स मूढः लोकम्=अग्निकायलोकम् अभ्याख्याति= 'अग्निकायजीवो नास्ती'-त्यपलपति। अयं भावः-सामान्यरूपेणात्मनः सिद्धौ सत्यामेव हि तस्यात्मनो भेदाः पृथिवीकायादयः सिध्यन्ति, नान्यथा। सामान्यात्मनोऽभ्याख्याने प्रवृत्तः साहसिकः पृथिवीकायादेर्विशेषात्मनोऽभ्याख्यानं सुतरां कर्तुमर्हतीति।

अपि चायं भावः-करचरणाद्यवयवयुक्तशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातः, तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणाग्निकायाभ्याख्यानं किं नु दुष्कर?-मिति ॥ सू० १ ॥

'अग्निकाय नहीं है' इस प्रकार अग्निकाय का निषेध करता है।

तात्पर्य यह है कि-सामान्यरूप से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने पर ही उसके पृथ्वीकाय आदि भेद सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं। जो साहसी पुरुष सामान्य आत्मा का ही निषेध करने को तैयार हो गया वह पृथ्वीकाय आदि विशेष आत्माओं का निषेध करे; यह तो स्वाभाविक ही है।

इससे यह भी आशय निकलता है-हाथ-पैर आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता और भलीभाँति प्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अपने आत्मा का भी जिसने निषेध कर दिया उसके लिए अप्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अग्निकाय का निषेध करना कौन बडी बात है? ॥ सू० १ ॥

નથી' આ પ્રમાણે અગ્નિકાયનો નિષેધ કરે છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-સામાન્યરૂપથી આત્માનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થવાથી જ તેના પૃથ્વીકાય આદિ ભેદ સિદ્ધ થઈ શકે છે, અન્યથા-બીજી રીતે નહિ. જે સાહસી પુરુષ સામાન્ય આત્માનોજ નિષેધ કરવા માટે તૈયાર થઈ ગયા તે પૃથ્વીકાય આદિ વિશેષ આત્માઓનો નિષેધ કરે એ તો સ્વાભાવિકજ છે.

એમાંથી એ પણ આશય નિકળે છે કે-હાથ-પગ આદિ અવયવોથી યુક્ત શરીરના અધિષ્ઠાતા ને સારી રીતે પ્રગટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા પોતાના આત્માનો પણ જેણે નિષેધ કરી દીધો તેને અપ્રગટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા અગ્નિકાયનો નિષેધ કરવો તે શું મોટી વાત છે? (સૂ. ૧)

अयमग्निकायलोकः स्वात्मवन्नैव अभ्याख्येय इति प्रतिबोधितम्, इदानीमग्निकायजीवोपमर्दनाद् विनिवृत्त एव मुनिर्भवितुमर्हतीत्याह-'जे दीह०' इत्यादि ।

मूलम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयन्ने से दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य खेदज्ञः । योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू. २ ॥

टीका—

यो भव्यः, दीर्घलोकशस्त्रस्य=दीर्घश्चासौ लोकश्च दीर्घलोकः=वनस्पतिः, तस्य शस्त्रं दीर्घलोकशस्त्रम्=अग्निः । वनस्पतिकायस्य दाहकरणेन विनाशकतयाऽ-

---

अग्निकायलोक, आत्मा की तरह निषेध करने योग्य नहीं है, यह बतला दिया । अब बतलाते हैं कि—अग्निकाय के जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाला पुरुष ही मुनि होता है:-'जे दीह०' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो दीर्घलोक (वनस्पतिकाय) के शस्त्र (अग्निकाय) के दुःख को जानता है वही संयम के खेद को जानता है और जो संयम के खेद को जानता है वह दीर्घलोक के शस्त्र के खेद को जानता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जो भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पति के शस्त्र—अग्नि के दुःख को जानता है, वही अशस्त्र अर्थात् संयम के खेद को जानता है । वनस्पतिकाय की विराधना

અગ્નિકાયલોક, આત્માની પ્રમાણે નિષેધ કરવા યોગ્ય નથી; તે બતાવી આપ્યું છે. હવે બતાવે છે કે—અગ્નિકાયના જીવોની હિંસાથી નિવૃત્ત થવાવાળા પુરુષજ મુનિ હોય છેઃ-'जे दीह०' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જે દીર્ઘલોક (વનસ્પતિકાય)ના શસ્ત્ર (અગ્નિકાય)ના દુઃખને જાણે છે, તેજ સંયમના ખેદને જાણે છે, અને જે સંયમના ખેદને જાણે છે. તેજ દીર્ઘ-લોકના શસ્ત્રના ખેદને જાણે છે. (સૂ. ૨)

ટીકાર્થ—જે ભવ્ય પુરુષ દીર્ઘલોક અર્થાત્ વનસ્પતિનું શસ્ત્ર અગ્નિના દુઃખને જાણે છે, તેજ અશસ્ત્ર અર્થાત્ સંયમના ખેદને જાણે છે. વનસ્પતિકાયની વિરાધના કરવાના

ग्निस्तेषां शस्त्रं भवति । तस्य खेदज्ञः=खेदम्=उपमर्दनजन्यदुःखं जानातीति खेदज्ञः, स एव अशस्त्रस्य-अशस्त्रं=संयमः, संयमो हि न व्यापादको भयदो वा कस्यापीत्यशस्त्रमुच्यते। तस्य खेदज्ञः=संयमभङ्गभयजनितदुःखानुभवकुशलः। एवं संयमानुष्ठानादेव मुनित्वं लभ्यमिति भावः।

ननु-कथमिदं ज्ञायते दीर्घलोकशब्दार्थो वनस्पतिरिति? उच्यते- कायस्थितिकालेन, परिमाणेन, शरीरावगाहनया च वनस्पतिकायस्य अन्यैकेन्द्रियापेक्षया महत्त्वमस्ति। तथाहि-वनस्पतिकायस्य कायस्थितिकालोऽनन्तः, स चानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपः, तस्मिन्नसंख्येयाः पुद्गलपरावर्ता भवन्ति, ते पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असंख्येये भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः

करने के कारण अग्नि, वनस्पतिकाय का शस्त्र है। संयम से किसी की विराधना नहीं होती, न वह किसी को भयकारी है, अत एव संयम को अशस्त्र कहते हैं। संयम के भंग होने के भय से उत्पन्न होने वाला दुःख संयम का खेद कहलाता है। इस प्रकार संयम के पालन करने से ही मुनिपन होता है।

शंका—दीर्घलोक शब्द का अर्थ वनस्पति कैसे समझा जाय?

समाधान—कायस्थिति के समय, परिमाण और शरीर की अवगाहना से वनस्पतिकाय अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा महान् है। वनस्पतिकाय की कायस्थिति का काल अनन्त है, और वह अनन्त भी अनन्त उत्सर्पिणीरूप-अवसर्पिणीरूप है। उसमें असंख्यात पुद्गलपरावर्तन होते हैं। वे पुद्गलपरावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग में

કારણથી અગ્નિ વનસ્પતિકાયનું શસ્ત્ર છે. સંયમથી કોઈની પણ વિરાધના થતી નથી. તે કોઇને ભયકારી નથી. એ માટે સંયમને અશસ્ત્ર કહે છે. સંયમનો ભંગ થવાના ભયથી ઉત્પન્ન થવાવાળું દુઃખ તે સંયમનો ખેદ કહેવાય છે. આ પ્રમાણે સંયમનું પાલન કરવાથીજ મુનિપણું હોય છે.

શંકા—દીર્ઘલોક શબ્દનો અર્થ વનસ્પતિ કેવી રીતે સમજી શકાય?

સમાધાન—કાયસ્થિતિના સમય, પરિમાણ અને શરીરની અવગાહનાથી વનસ્પતિકાય, અન્ય એકેન્દ્રિય જીવોની અપેક્ષાએ મહાન્ છે. વનસ્પતિકાયની કાયસ્થિતિનો કાલ અનન્ત છે અને તે અનન્ત પણ અનન્ત ઉત્સર્પિણી-અવસર્પિણીરૂપ છે. તેમાં અસંખ્યાત પુદ્ગલપરાવર્ત્તન થાય છે. તે પુદ્ગલપરાવર્ત્તન આવલિકાના અસંખ્યાતમા

सन्ति। एतावान् कालो वनस्पतिकाल इत्युच्यते। परिमाणतस्तु प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिकानां निर्लेपना नास्ति।

शरीरावगाहनया च सातिरेकं योजनसहस्रम्। अतो वनस्पतिकायस्य दीर्घलोक इति व्यपदेशः। (प्रज्ञापना १८ पदे)

ननु प्रसिद्धमग्निशब्दं विहाय किमर्थमिह दीर्घलोकशस्त्रशब्दोपादानम्? उच्यते—वनस्पतिकायदहनप्रवृत्तोऽग्निकायो बहुतरप्राणिनां विनाशको भवति, वनस्पतिकाये बहुविधाः प्राणिनः कीट पिपीलिका भ्रमरमधुमक्षिकाकपोतादयो निवसन्ति, तरुकोटरेषु पृथिवीकायाश्च, अवश्यायरूपा अप्काया अपि, मृदुतर-

---

जितने समय होते हैं उतने हैं, इतना काल वनस्पतिकाल कहलाता है। परिमाण से प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक जीवों की निर्लेपना नहीं है। इनके शरीर की अवगाहना कुछ अधिक एक हजार योजन है। इसी कारण वनस्पतिकाय को दीर्घलोक कहते हैं।

अब प्रश्न हो सकता है कि–प्रसिद्ध 'अग्नि' शब्द को छोड कर 'दीर्घलोकशस्त्र' शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी?

इसका उत्तर यह है कि–वनस्पतिकाय को जलाने में प्रवृत्त अग्निकाय और भी बहुत से प्राणियों का विनाश करता है। वनस्पतिकाय के सहारे कीडे, चिउंटी, भौंरे, मधुमक्खी और कबूतर आदि बहुत से प्राणी निवास करते हैं। वृक्षों की खोंतरों में पृथ्वीकाय के जीव भी होते हैं। ओसरूप अप्काय भी होता है, और अत्यन्त कोमल

ભાગમાં જેટલા સમય થાય છે. તેટલા છે એટલે કાળ તે વનસ્પતિકાળ કહેવાય છે. પરિમાણથી પ્રત્યુત્પન્ન વનસ્પતિકાયિક જીવોની નિર્લેપના નથી. તેના શરીરની અવગાહના કંઈક અધિક એક હજાર યોજન છે. આ કારણથી વનસ્પતિ કાયને 'दीर्घलोक' કહે છે.

હવે પ્રશ્ન થઈ શકે છે કે:–પ્રસિદ્ધ અગ્નિ શબ્દને છોડીને 'दीर्घलोकशस्त्र' શબ્દનો પ્રયોગ કરવાની શું આવશ્યકતા હતી? તેનો ઉત્તર એ છે કે–વનસ્પતિકાયને બાળવામાં પ્રવૃત્ત (ચાલુ) અગ્નિકાય બીજા પણ પ્રાણીઓનો વિનાશ કરે છે. વનસ્પતિના આશ્રયે કીડા, મંકોડા, ભમરા, મધમાખી અને કબૂતર આદિ ઘણાંજ પ્રાણીઓ નિવાસ કરે છે. વૃક્ષોના બખોલમાં પૃથ્વીકાયના જીવ પણ હોય છે. ઝાકળરૂપ અપ્કાય પણ હોય છે.

पल्लवानुसारी वायुरपि तत्र संभाव्यते, तदेवं वनस्पतिशस्त्रीभूय दहनो बहुतर-जीवान्नाशयतीति सूचनाय भगवता दीर्घलोकशस्त्रशब्दः परिगृहीत इति ।

यद्वा—दीर्घलोकः=पृथिवीकायादिः, पृथिव्यब्वायुवनस्पतिकायानां भवस्थितिर्यथाक्रमं द्वाविंशति,-सप्त-त्रि-दश-वर्षसहस्रपरिमाणा, अग्निकायस्य तु त्रीण्येवाहोरात्राणि । यथा बादराग्निकायाः पर्याप्तकाः स्वल्पाः सन्ति, अन्ये पृथिव्यादयः पर्याप्तकाः बहवः सन्ति, अतो दीर्घलोकः पृथिव्यादिस्तस्य शस्त्रम्=अग्निकायः । अग्निरुत्पाद्यमानः प्रज्वाल्यमानो वा पृथिव्यादिजीवसमूहं प्रणिहन्तीति तस्य शस्त्रत्वम् । उक्तञ्च—

पत्तों (कोपलों) का अनुसारी वायु भी वहाँ संभव है । इस प्रकार अग्नि वनस्पति का शस्त्र हो कर बहुतेरे जीवों का विनाश करता है । यह सूचित करने के लिए भगवान् ने **'दीर्घलोकशस्त्र'** शब्द का अग्नि के लिए प्रयोग किया है ।

अथवा—**'दीर्घलोकका'** अर्थ पृथ्वीकाय आदि है । पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय की भवस्थिति क्रम से बाईस, सात, तीन और दश हजार वर्ष की है, मगर अग्निकाय की तीन रात्रि-दिन ही है । बादर अग्निकाय के पर्याप्त जीव स्वल्प हैं मगर पृथ्वी आदि के पर्याप्त जीव बहुत हैं । अतः **'दीर्घलोक'** शब्द से पृथ्वीकाय आदि का ग्रहण करना चाहिए और उनका शस्त्र अग्निकाय समझना चाहिए । अग्नि उत्पन्न होते ही और जलते ही पृथ्वी आदि के जीवों के समूह का घात करता है, अतः वह पृथ्वी आदि का शस्त्र है । कहा भी है:-

---

અને અત્યંત કોમલ પત્તા (કુંપળો)ના અનુસારી વાયુનો પણ ત્યાં સંભવ છે. આ પ્રમાણે અગ્નિ, વનસ્પતિનું શસ્ત્ર બની ઘણાંજ જીવોનો વિનાશ કરે છે. આ હકીકત સૂચવવા માટે ભગવાને 'दीर्घलोकशस्त्र' શબ્દનો અગ્નિ માટે પ્રયોગ કર્યો છે.

અથવા—દીર્ઘલોકનો અર્થ પૃથ્વીકાય આદિ છે, પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાયની ભવસ્થિતિ ક્રમથી બાવીસ, સાત, ત્રણ અને દસ હજાર વર્ષની છે. પરન્તુ અગ્નિકાયની ત્રણ રાત્રિ-દિવસજ છે. જેમકે-બાદર અગ્નિકાયના પર્યાપ્ત જીવ સ્વલ્પ છે. પરન્તુ પૃથ્વી આદિના પર્યાપ્ત જીવ ઘણાજ છે. એ માટે 'दीर्घलोक' શબ્દથી પૃથ્વીકાય આદિનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ, અને તેનું શસ્ત્ર અગ્નિકાય સમજવું જોઈએ. અગ્નિ ઉત્પન્ન થતાંજ અને બળવાની ક્રિયા થતાંજ પૃથ્વીઆદિના જીવોના સમૂહનો ઘાત કરે છે. તેથી તે પૃથ્વી આદિનું શસ્ત્ર છે. કહ્યું પણ છે કેઃ—

"भूयाणमेसमाघाओ हव्ववाहो न संसओ"। (दशवै० ३ अ०गा०३५)
तस्य खेदज्ञः=खेदयतीति खेदः=अग्नेर्व्यापारः, अग्निव्यापारो हि पृथिव्यादिजीवानां दहनात्मकतया दुःखमुत्पादयतीत्यतः खेद-शब्देन व्यपदिश्यते, तं जानातीति खेदज्ञः। अग्निकायस्य व्यापारः सर्वप्राणिपीडाकर इति विज्ञाता यः खलु भवति, स एव अशस्त्रस्य=सप्तदशविधसंयमस्य खेदज्ञः=संयमक्षरणजन्य-दुःखानुभावकः, अस्तीति शेषः। अग्निकायव्यापारेण पृथिव्यादिजीवानां विनाशस्तेन संयमक्षरणं, ततश्च मुनित्वविभ्रंश इति सर्वस्वनाशकतयाऽग्निव्यापारः साधूनां ज्ञपरिया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरणीय इति भावः।

"यह अग्नि भूतों का घातक है, इसमें संदेह नहीं"। (दशवै. ३. अ. गा. ३५)

उस अग्नि के व्यापार को पृथ्वीकाय आदि का खेद कहते हैं, क्यों कि दाहक होने के कारण वह पृथ्वी आदि को दुःख उत्पन्न करता है। उसे जानने वाला 'खेदज्ञ' कहलाता है। 'अग्निकाय का व्यापार सब प्राणियों को पीडा पहुँचाता है'-जो ऐसा जानता वही पुरुष अशस्त्र का अर्थात् सत्तरह प्रकार के संयम के खेद का-संयम के भंग से होने वाले खेद का ज्ञाता होता है। तात्पर्य यह है कि-अग्निकाय के व्यापार से पृथ्वीकाय आदि के जीवों का विनाश होता है, और उससे संयमभंग होता है, और संयम के भंग से मुनिपन का भंग होता है। इस प्रकार अग्निव्यापार सर्वस्व का नाशक होने से वह साधुओं के लिए ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागने योग्य है।

"આ અગ્નિ ભૂતોના ઘાતક છે, એમાં સંદેહ નથી." (દશ વૈ. અ. ૩. ગા ૩૫)

આ અગ્નિના વ્યાપારને પૃથ્વીકાયનો ખેદ કહે છે. કારણ કે દાહક હોવાના કારણે તે પૃથ્વીઆદિને દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે તેને જાણવાવાળા 'ખેદજ્ઞ' કહેવાય છે. 'અગ્નિકાયનો વ્યાપાર સર્વ પ્રાણીઓને પીડા પહોંચાડે છે.' જે આ પ્રકારે જાણે છે તેજ પુરુષ અશસ્ત્રનો અર્થાત્ સત્તર પ્રકારના સંયમના ખેદનો-સંયમના ભંગથી થવાવાળા ખેદનો જ્ઞાતા-જાણનાર હોય છે. તાત્પર્ય એ છે કે-અગ્નિકાયના વ્યાપારથી પૃથ્વીકાય આદિના જીવોનો નાશ થાય છે. અને તેથી સંયમ ભંગ થાય છે, અને સંયમના ભંગથી, મુનિપણું ભંગ થાય છે. આ પ્રમાણે અગ્નિવ્યાપાર સર્વસ્વનો નાશક હોવાથી સાધુઓ માટે જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યાગવા યોગ્ય છે.

उक्तमर्थं दृढीकर्तुं विपर्ययेण पुनः कथयति-'योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः' इति, व्याख्या पूर्ववत्। ॥ सू० २ ॥

॥ शस्त्रद्वारम् ॥

ननु येन शस्त्रेण वह्निः खिद्यते, तत् केन दृष्टम्? अपि चाशस्त्रं संयमस्वरूपमिति केन दृष्टम्?, इति जिज्ञासायामाह—'वीरेहिं'. इत्यादि।

मूलम्—

वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं, संजएहिं सया जएहिं सया अप्पमत्तेहिं ॥सू०३॥

छाया—

वीरैः एतद् अभिभूय दृष्टम्, संयतैः सदा यतैः सदा अप्रमत्तैः ॥सू०३॥

इसी बात को दृढ करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि-जो अशस्त्र (संयम) के खेद को जानता है वह दीर्घलोकशस्त्र के खेद को जानता है। इस की व्याख्या पहले के समान ही समझनी चाहिए ॥ सू० २ ॥

शस्त्रद्वार-

शंका होती है कि-जिस शस्त्र से अग्नि को खेद होता है वह किस ने देखा है और संयमरूप अशस्त्र किस ने देखा है? इसके उत्तर में कहते हैं:—'वीरेहिं', इत्यादि।

मूलार्थ—परिषह उपसर्ग आदि को जीतनेवाले संयत सदा यतनावान् और सदा अप्रमत्त रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

આ વાતને દૃઢ કરવાના ઉદ્દેશથી ફરી બીજા રૂપથી કહે છે કે-જે અશસ્ત્ર (સંયમ)ના ખેદને જાણે છે તે દીર્ઘલોકશસ્ત્રના ખેદને જાણે છે. તેની વ્યાખ્યા પ્રથમ કહેલી છે તે પ્રમાણે સમજવી જોઈએ. (સૂ. ૨)

શસ્ત્રદ્વાર-

શંકા થાય છે કે જે શસ્ત્રથી અગ્નિને ખેદ થાય છે તે કોણે જોયું છે? અને સંયમરૂપ અશસ્ત્ર કોણે જોયું છે? તેના ઉત્તરમાં કહે છેઃ-'वीरेहिं'. ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પરીષહ-ઉપસર્ગ આદિને જીતવાવાળા, સંયત-સંયમી સદા યતનાવાન્ અને સદા અપ્રમત્ત રહેવાવાળા વીરપુરુષોએ તે જોયું છે. (સૂ. ૩)

टीका—

वीरैरिति । घनघातिकर्मरूपरिपुगणक्षपणानन्तरं लब्धातुलकेवलालोकलक्ष्म्या विराजन्त इति वीराः । यथा–राजानश्चतुरङ्गसैन्यसमावृतं स्वकीयमरिवर्गं निहत्य लब्धराज्यविजयलक्ष्म्या विराजमाना वीरा निगद्यन्ते । यद्वा–वि=विशेषेण ईरयन्ति=रागाद्यन्तरङ्गमहासुभटान् निवारयितुमनन्ततपोवीर्यं व्यापारयन्तीति वीराः । यद्वा–विशेषेण ईरयन्ति=शिवगतिं गमयन्ति भव्यजीवानिति वीराः । यद्वा–विशेषेण ईरयन्ति=ज्ञानाचारादीन् प्रति प्रेरयन्ति भव्यजीवानिति वीराः, तीर्थङ्करा गणधराश्च, तैर्वीरैः, एतद्=अग्निकायस्वरूपं, यद्वा–अग्निशस्त्रम् अशस्त्रं चेति द्वयं दृष्टं=ज्ञानदृष्टया विलोकितम्, अर्थतस्तीर्थङ्करैः, गणधरैस्तु भगवद्वचनैरिति विशेषः ।

टीकार्थ—घातियाकर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाश करने के अनन्तर अनुपम केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है । उस लक्ष्मी से जो विराजमान हैं उन्हें वीर कहते हैं । जैसे कोई राजा, चतुरंग सेना से युक्त शत्रुओं को हराकर प्राप्त राज्य और विजय की लक्ष्मी से सुशोभित हो कर 'वीर' कहलाते हैं । अथवा राग–द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओं को रोकने के लिए अनन्त तपोवीर्य का प्रयोग करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा भव्य जीवों को विशेषरूप से मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा विशेषरूप से ज्ञानाचार आदि की ओर भव्य जीवों को प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । ऐसे वीर तीर्थंकर गणधर आदि हैं । उन वीरों ने अग्नि के स्वरूप को अथवा अग्निशस्त्र और अशस्त्र को ज्ञानदृष्टि से देखा है । अर्थ से तीर्थंकरों ने और उन के वचनों के अनुसार गणधरों ने देखा है ।

ટીકાર્થ—ઘાતિ—કર્મરૂપી શત્રુઓના સમૂહનો નાશ કર્યાના અનન્તર અનુપમ કેવલજ્ઞાન રૂપી લક્ષ્મી પ્રાપ્ત થાય છે. તે લક્ષ્મીથી જે વિરાજમાન છે તેને વીર કહે છે. જેમ કોઈ રાજા, ચતુરંગ સેનાથી યુકત (ચાર પ્રકારની સેના સહિત) શત્રુઓને હરાવીને પ્રાપ્ત કરેલું રાજ્ય અને વિજયરૂપ લક્ષ્મીથી સુશોભિત બની 'वीर' કહેવાય છે, અથવા–રાગ–દ્વેષ આદિ આન્તરિક મહાયોદ્ધાઓને રોકવાવાળાને 'वीर' કહે છે. અથવા ભવ્ય જીવોને વિશેષરૂપથી મુકિતની તરફ પ્રેરિત કરવાવાળા 'वीर' કહેવાય છે. અથવા વિશેષરૂપથી જ્ઞાનાચાર આદિની તરફ ભવ્ય જીવોને પ્રેરિત કરવાવાળા 'वीर' કહેવાય છે. એવા વીર તીર્થંકર અને ગણધર આદિ છે, તે વીરોએ અગ્નિના સ્વરૂપને અથવા અગ્નિશસ્ત્ર અને અશસ્ત્રને જ્ઞાનદૃષ્ટિથી જોયાં છે. અર્થથી તીર્થંકરોએ જોયાં છે. અને તેમનાં વચનો અનુસાર ગણધરોએ જોયાં છે.

किं कृत्वा तैरेतद् दृष्ट?-मित्याकाङ्क्षायामाह—'अभिभूय' इति। परिषहोपसर्गान्, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-ऽन्तरायाख्यघातिकर्म-चतुष्टयं च विजित्य केवलं संप्राप्येत्यर्थः। कथम्भूतैस्तै?-रित्याह-संयतैः=सम्=सम्यक्प्रकारेण यताः=परमकरुणया ईर्यासमित्यादियतनावन्तस्तैः, सकलषड्जीव-निकायपरित्राणपरायणैरित्यर्थः। यतना द्विविधा-प्रमत्तयतना, अप्रमत्तयतना च। अथ प्रमत्तस्य कीदृशी यतना? उच्यते-कषायादिनिग्रहिण ईर्याद्युपयोगवत्त्वं प्रमत्तयतना कथ्यते।

अप्रमत्तयतना कषायरहितवचनसाध्या भवति। अत्र अप्रमत्तग्रहणादि-न्द्रियादिप्रमादवर्जनं गृह्यते। यतनाग्रहणाद् यावज्जीवयतना गृह्यते। अत एव

उन्हों ने क्या कर के यह देखा है? इस शंका का उत्तर है-परीषह और उपसर्गों को तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया कर्मों को जीतकर केवल ज्ञान प्राप्त कर के उन्हों ने देखा है।

वे देखने वाले किस प्रकार के थे? इसका उत्तर यह है-सम्यक् प्रकार से, अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदि का पालन करनेवाले अर्थात् समस्त षट्काय की रक्षा में तत्पर थे। यतना दो प्रकार की है-प्रमत्त की यतना और अप्रमत्त की यतना। प्रमत्त की यतना कैसी होती है? इसका उत्तर यह है कि-कषाय आदि का निग्रह करने वाला पुरुष ईर्या आदि में जो उपयोग रखता है, वह प्रमत्तयतना है। अप्रमत्त की यतना कषायरहित वचनों से होती है। यहाँ अप्रमत्त शब्द से इन्द्रिय आदि प्रमादों का त्याग लेना चाहिए। यतना शब्द से यहाँ यावज्जीव यतना का ग्रहण करना चाहिए। अतः

તેમણે શું કરીને જોયાં છે? આ શંકાનો ઉત્તર એ છે પરીષહ અને ઉપસર્ગોને તથા જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ, મોહનીય અને અન્તરાય નામના ચાર ઘાતિયા કર્મોને જીતીને કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને તેમણે જોયાં છે.

તે જોવાવાળા કેવા પ્રકારના હતા? તેનો ઉત્તર-સમ્યક્પ્રકારે, અત્યન્ત કરુણાપૂર્વક ઈર્યાસમિતિ આદિના પાલન કરવાવાળા, અર્થાત્ સમસ્ત ષટ્કાયની રક્ષામાં તેઓ તત્પર હતા. યતના બે પ્રકારની છે-પ્રમત્તની યતના અને અપ્રમત્તની યતના. પ્રમત્તની યતના કેવી હોય છે? તેનો ઉત્તર એ છે કે:-કષાય આદિના નિગ્રહ કરવાવાળા પુરૂષ, ઈર્યા આદિમાં જે ઉપયોગ રાખે છે તે પ્રમત્તની યતના છે. અપ્રમત્તની યતના કષાયરહિત વચનોથી થાય છે. અહિં અપ્રમત્ત શબ્દથી ઇન્દ્રિય આદિ પ્રમાદોનો ત્યાગ લેવો જોઈએ. યતના શબ્દથી અહિં જીવમાત્રની યતનાનું ગ્રહણ કરવું જોઇએ. એ માટે

सद=सर्वदा यतैः=चरणकरणविषये निरतिचारतया यत्नवद्भिः, तथा–सदा= सर्वकाले अप्रमत्तैः=विषयकषायादिवर्जितैः। एवम्भूतैर्वीरैरग्निकायस्वरूपं तदीयशस्त्रमशस्त्रं च दृष्टमित्यर्थः।

ननु किं नामाग्निशस्त्रम्? उच्यते–अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्। तत् किं-स्वरूप?-मितिचेत्, अवधेहि–अग्निशस्त्रं तावद् द्विधा–द्रव्य–भावभेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं त्रिविधम् स्वकायपरकायोभयकायभेदात्। स्वकायशस्त्रं–अग्निकायस्याग्निकाय एव, यथा–तृणाग्निः, पर्णाग्नेः शस्त्रम्। परकायशस्त्रं–धूलिरापश्च, आर्द्रश्च-वनस्पतिः, त्रसाः प्राणिनश्च। उभयकायशस्त्रं तुषकरीषादिमिश्रोऽग्निरन्यस्याग्नेः,

---

सर्वदा चरणसत्तरी और करणसत्तरी में अतिचाररहित यतना करने वाले तथा सदैव विषय–कषाय आदि प्रमाद से रहित वीर पुरुषोंने अग्निकाय के स्वरूप को तथा उसके शस्त्र और अशस्त्र को देखा है।

शङ्का—अग्निशस्त्र क्या है?

समाधान—अग्नि की विराधना करने वाला शस्त्र अग्निशस्त्र कहलाता है। उसका स्वरूप क्या है? सो इस प्रकार समझो-द्रव्य और भाव के भेद से अग्नि शस्त्र दो प्रकार का है। इनमें से द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं–स्वकाय–शस्त्र, परकाय–शस्त्र और उभयकाय–शस्त्र। अग्निकाय का स्वकायशस्त्र अग्नि ही है, जैसे तिनके की अग्नि, पत्तों की अग्नि का शस्त्र है। धूलि और पानी आदि अग्निकाय का परकायशस्त्र है। गीली वनस्पति भी परकायशस्त्र है और त्रस प्राणी भी। तुष (छिलका) और करीष

સર્વદા ચરણ સીતેરી અને કરણસીતેરીમાં અતિચારરહિત યતના કરવાવાળા તથા હંમેશાં વિષય–કષાય આદિ પ્રમાદથી રહિત વીર પુરુષોએ અગ્નિકાયના સ્વરૂપને તથા તેના શસ્ત્ર અને અશસ્ત્રને જોયાં છે.

શંકા—અગ્નિ શસ્ત્ર એ શું છે?

સમાધાન—અગ્નિની વિરાધના કરવાવાળું શસ્ત્ર તે અગ્નિશસ્ત્ર કહેવાય છે. તેનું સ્વરૂપ કેવું છે? તે આ પ્રમાણે સમજો–દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી અગ્નિશસ્ત્ર બે પ્રકારનાં છે, તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે. સ્વકાયશસ્ત્ર પરકાયશસ્ત્ર, અને ઉભયકાયશસ્ત્ર. અગ્નિકાયનું સ્વકાયશસ્ત્ર અગ્નિજ છે. જેમ તણખાની અગ્નિ, પાંદડાંની અગ્નિનું શસ્ત્ર છે. ધૂળ અને પાણી આદિ અગ્નિકાયનું પરકાયશસ્ત્ર છે. લીલી વનસ્પતિ પણ પરકાયશસ્ત્ર છે. અને ત્રસ પ્રાણી પણ પરકાયશસ્ત્ર છે. તુષ અને છાણુ આદિથી મળેલી અગ્નિ

तप्तोदकादिकं च । भावशस्त्रं तु-अग्निं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपम् । शेषाणि पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्तु प्रमादवशादुपभोगार्थमग्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्फलमाह—'जे' इत्यादि ।

मूलम्—

जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडेत्ति पवुच्चइ ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः (गुणस्थितः) स खलु दण्ड इति प्रोच्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः=विषयकाषायादिप्रमादवशगः सन् गुणार्थिकः भवतीत्यन्वयः । गुणः=अग्निकायकृतोपकारः. स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स एव गुणार्थिकः, रन्धन-पचन-प्रकाश-तापनादिप्रयोजनवान् भवति । यद्वा-

---

(छाणे) आदि से मिली अग्नि तथा गर्म जल अग्नि का उभयकायशस्त्र है । अग्नि के प्रति दुष्ट मन वचन और कायका प्रवर्त्तन भावशस्त्र है। शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समझने चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के वश होकर उपभोग के निमित्त अग्निकाय के जीवों की विराधना करने वाले को होने वाला फल कहते हैं:-'जे' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थी-रांधना आदि में स्थित-है, वह उसके लिए दण्ड कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है । अग्निकाय द्वारा होने वाला उपकार यहां गुण कहा गया है। इस गुण का अर्थी गुणार्थिक कहलाता है। रांधना, पकाना, उजाला करना आदि अग्नि के गुण हैं। जो

तथा गरम जल अग्निनुं उभयकायशस्त्र छे. अग्नि प्रतिनुं दुष्ट मन, वचन अने कायानुं प्रवर्तन ते भावशस्त्र छे, बाकीना द्वार पृथ्वीकायनी समान बराबर-समजवा जोईए.(सू. ३)

प्रमादने वश थई उपभोगना निमित्ते अग्निकायना जीवोनी विराधना करवा वाळाने जे फळ थाय छे-मळे छे. ते फळ कहे छे. 'जे' ईत्यादि.

मूलार्थ—जे प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थी-रांधवुं विगेरेमां स्थित-छे ते एना माटे दंड कहेवाय छे. (सू. ४)

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादोने आधीन थइने पुरुष गुणार्थी थाय छे. अग्निकाय द्वारा थवावाळो उपकार तेने अहिं गुण कहेवामां आव्यो छे. आ गुणनो अर्थी ते गुणार्थिक कहेवाय छे. रांधवु-पकाववुं, अजवाळुं करवुं आदि अग्निना गुण छे.जे

'गुणस्थितः' इति च्छाया, तेन गुणेषु=अग्निगुणेषु रन्धनपचनादिषु, शब्दादिषु वा स्थितः=आसक्तः, रन्धनाद्यर्थमग्निमुत्पादयति प्रज्वालयति यथाकथञ्चिदुपमर्दयतीत्यर्थः। स मनोवाक्कायस्य दुष्प्रणिधानेनाग्निशस्त्रसमारम्भकरणेन चाग्न्यादीनां प्राणिनां दण्डं प्रति कारणभूतत्वाद् दण्ड इति प्रोच्यते, कारणे कार्योपचाराद्, दण्डवत् प्राणिनां हिंसकतया दण्ड इति निन्द्यनाम्ना लोके प्रसिध्यतीति भावः॥ सू० ४॥

एवं विज्ञायाग्निशस्त्रसमारम्भाद् विनिवर्तितव्यमित्याह--'तं' इत्यादि।

मूलम्—

तं परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं॥ सू० ५॥

छाया—

परिज्ञाय मेधावी इदानीं नो यदहं पूर्वमकार्षं प्रमादेन॥ सू० ५॥

पुरुष इन गुणों में अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयों में आसक्त है अर्थात् रांधने आदि के लिए अग्नि उत्पन्न करता है, जलाता है और किसी भी प्रकार उसका हनन करता है, वह पुरुष अपने मन, वचन, काय के दूषित व्यापार के कारण तथा अग्निशस्त्र का समारंभ करने के कारण अग्नि के जीवों के दंडका कारण होने से दण्ड कहलाता है। कारण में कार्य का उपचार करने से दंड के कारणभूत पुरुष को दंड कहते हैं। लोक में उस पुरुष की 'दंड' इस निंदनीय नाम से प्रसिद्धि होती है॥ सू० ४॥

अब बतलाते हैं कि पूर्वोक्त कथन जानकर अग्निशस्त्र के समारंभ से बचना चाहिए:— 'तं' इत्यादि।

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारंभ को जानकर बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे कि—प्रमाद के वश होकर मैंने पहले जो किया सो अब नहीं करूंगा॥ सू० ५॥

પુરુષ આ ગુણોમાં અથવા શબ્દ આદિ ઇન્દ્રિયવિષયોમાં આસક્ત છે. અર્થાત્ રાંધવા આદિને માટે અગ્નિ ઉત્પન્ન કરે છે, બાળે છે, અને કોઈ પણ પ્રકારે તેનું હનન કરે છે, તે પુરુષ પોતાના મન, વચન અને કાયાના દૂષિત વ્યાપારના કારણે તથા અગ્નિશસ્ત્રનો સમારંભ કરવાના કારણે અગ્નિના જીવોને દંડનું કારણ હોવાથી દંડ કહેવાય છે. કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી દંડના કારણભૂત પુરુષને પણ દંડ કહે છે. લોકમાં તે પુરુષની 'દંડ' આ નિંદનીય નામથી પ્રસિદ્ધિ થાય છે. (સૂ. ૪)

હવે બતાવે છે કે-પૂર્વોક્ત કથન જાણીને અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભથી બચવું જોઈએ—'तं' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અગ્નિકાય અથવા અગ્નિકાયના સમારંભને જાણી બુદ્ધિમાન પુરુષ નિશ્ચય કરે કે-પ્રમાદના વશ થઇને મેં પહેલાં જે કર્યું છે તે હવે નહીં કરૂં. (સૂ. ૫)

टीका—

मेधावी=ग्रहणधारणादिगुणवान्, यद्वा-साधुमर्यादारक्षणे सावधानः, यद्वा-हेयोपादेयविवेकनिपुणः, तम्=अग्निकायं, यद्वा तम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं दण्डनाम-फलप्रदं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन, प्रत्याख्यानपरिज्ञया हेयत्वेन पर्यालोच्य, प्रतिजानीते-अहं=मिथ्यात्वादिमलिनान्तःकरणः प्रमादेन=विषयकषायादिप्रमादवशतः यम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं पूर्वम्=अज्ञानावस्थायाम्, अकार्षम्=कृतवान्, यत्तदोर्नित्य-साकाङ्क्षत्वात् तम् इदानीम्=संप्रति प्रव्रज्यावस्थायाम् नो=नैव करिष्य इति शेषः ॥ सू० ५ ॥

अथ सर्वथाऽग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्र-समारम्भे प्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह-'लज्जमाणा', इत्यादि।

टीकार्थ—ग्रहण और धारणादिक गुणों से युक्त, अथवा साधुओं की मर्यादा की रक्षा करने में सावधान, अथवा हेय और उपादेय के विवेक में निपुण पुरुष अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारंभ को जानकर अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से उसे कर्मबंध का कारण समझकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से हेय समझकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं—मिथ्यात्व आदि विकारों के वश होकर मैंने अज्ञानदशा में अग्निकाय का समारंभ किया था। वह समारंभ अब दीक्षा-अवस्था में नहीं करूँगा ॥ सू० ५ ॥

अग्निशस्त्र का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों तथा अग्निशस्त्र के समारंभ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गी पुरुषों को अलग अलग कर के समझाते हैं—'लज्जमाणा'. इत्यादि।

ટીકાર્થ—ગ્રહણ અને ધારણાદિક ગુણોથી યુક્ત અથવા સાધુઓની મર્યાદાની રક્ષા કરવામાં સાવધાન, અથવા હેય અને ઉપાદેયના વિવેકમાં નિપુણ પુરુષ અગ્નિકાય અથવા અગ્નિકાયના સમારંભને જાણીને અર્થાત્ જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને કર્મબંધનું કારણ સમજીને અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી હેય-(ત્યાજ્ય) સમજીને આ પ્રમાણે પ્રતિજ્ઞા કરે છે-મેં અજ્ઞાન દશામાં મિથ્યાત્વ આદિ વિકારોને વશ થઈને અગ્નિકાયનો સમારંભ કર્યો હતો; તે સમારંભ હવે દીક્ષા-અવસ્થામાં નહીં કરૂં. (સૂ. ૫)

અગ્નિશસ્ત્રનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા અણગારો તથા અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિંગી પુરુષોને અલગ-અલગ કરીને સમજાવે છે-'लज्जमाणा.'ઈત્યાદિ.

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभेणं, अगणिसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण, अग्निशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणिनो विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

लज्जमानाः=अग्निकायसमारम्भे परमकरुणया द्रवीभूतहृदयतया संकुचितात्मानः, अग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिन इत्यर्थः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः

मूलार्थ—अग्निकाय के आरंभ में संकोच करने वालों को अलग समझो। और 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्निकर्म का समारंभ करने वाले दूसरे (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त दया के कारण अग्निकाय के समारंभ में हार्दिक संकोच करने वाले, इसी कारण अग्निशस्त्र के समारंभ के त्यागी अलग हैं, उन में कोई अवधिज्ञानी हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानी हैं, कोई केवलज्ञानी हैं। कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा

મૂલાર્થ—અગ્નિકાયના આરંભમાં સંકોચ કરવાવાળાને અલગ સમજો, અને 'અમે અણગાર છીએ' એ પણ કહેવાવાળા નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રો દ્વારા અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરવાવાળા બીજા (દ્રવ્યલિંગી) અનેક પ્રકારનાં પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. (સૂ. ૬)

ટીકાર્થ—અત્યન્ત દયાના કારણે અગ્નિકાયના સમારંભમાં હાર્દિક સંકોચ કરવાવાળા, આજ કારણથી અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભના ત્યાગી અલગ છે—જૂદા છે. એમાં કોઇ અવધિજ્ઞાની છે, કોઇ મનઃપર્યયજ્ઞાની છે, કોઈ કેવલજ્ઞાની છે. કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની ભાવિતાત્મા અણગાર છે, તે સર્વ સૂક્ષ્મ અને બાદર અગ્નિકાયનો સમારંભ કરવામાં

सन्तीति पश्य । इमे सूक्ष्मबादराग्निकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरण-त्रियोगैरग्निकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेवाग्निकायजीवरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् =पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्-यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यभावभेदभिन्नैः शस्त्रैः= अग्निकायशस्त्रैः, अग्निकर्मसमारम्भेण=अग्नेः कर्मसमारम्भः अग्निकर्मसमारम्भः=

अनगार हैं । ये सब सूक्ष्म और बादर अग्निकाय का समारंभ करने में भीत-डरने वाले हैं, त्रस्त हैं, उद्विग्न हैं और तीन करण तीन योग से अग्निकाय के समारंभ के त्यागी हैं, उन्हें देखो ।

इन से विपरीत दूसरे लोग **'हम अनगार हैं, हमीं अग्निकाय की रक्षा में तत्पर हैं, महाव्रती हैं'** इस प्रकार अभिमान के साथ प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये लोग साधुओं का तनिक भी कर्तव्य नहीं करते और न गृहस्थकार्य का त्याग करते हैं ।

वे लोग तरह-तरह के द्रव्य और भाव रूप अग्निकाय के शस्त्रों से अग्निकर्म का

ભીત-ભયવાન છે, ત્રસ્ત છે, ઉદ્વિગ્ન છે. અને ત્રણકરણ, ત્રણયોગથી અગ્નિકાયના સમારંભના ત્યાગી છે, તેને જુઓ.

એનાથી વિપરીત (ઉપર કહ્યા તેનાથી ઉલટો વ્યવહાર કરનારા) બીજા લોક 'અમે અણગાર છીએ, અમે અગ્નિકાયની રક્ષામાં તત્પર છીએ, મહાવ્રતી છીએ.' એ પ્રમાણે અભિમાનની સાથે પ્રલાપ કરે છે તે દ્રવ્યલિંગી છે, તેને અલગ સમજો.

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળા આ લોક સાધુઓના જરાપણ કર્ત્તવ્યને કરતા નથી અને ગૃહસ્થનાં કાર્યોનો ત્યાગ કરતા નથી.

તે લોક તરેહ-તરેહના દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ અગ્નિકાયના શસ્ત્રોથી અગ્નિકર્મનો

अग्निं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्= अग्निकायं विहिंसन्ति ।

अग्निकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह–' अग्निशस्त्र '–मित्यादि । अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदभिन्नं समारभमाणाः=अग्निकायं प्रति व्यापारयन्तः अन्यान् त्रसांश्च विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा–' वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षड्जीवनिकायरक्षका अनगाराः स्मः' इति वदन्तो दण्डिशाक्यादयः सन्ति । ते चात्मानमनगारं प्रवदमाना नानगारगुणेषु लेशतोऽपि प्रवर्तन्ते ।

आरंभ कर के अर्थात् अग्नि के निमित्त से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का कारणभूत सावद्य व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करते हैं ।

अग्निकाय की हिंसा में प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवों की हिंसा करते हैं, यही बतलाते हैं–अग्नि का घात करने वाले–द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र का अग्नि के विषय में प्रयोग करने वाले अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । '**हम पञ्चमहाव्रतधारी, समस्त आरंभ का त्याग करने वाले और षट्काय के रक्षक अनगार** हैं । इस प्रकार कहने वाले दंडी शाक्य आदि हैं । वे अपने को अनगार कहते हुए भी लेशमात्र भी अनगार के गुणों में प्रवृत्ति नहीं करते ।

આરંભ કરીને અર્થાત્ અગ્નિના નિમિત્તથી જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોના કારણભૂત સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે.

અગ્નિકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત પુરુષ ષટ્કાયરૂપ સમસ્ત જીવોની હિંસા કરે છે. એજ બતાવે છે–અગ્નિનો ઘાત કરવાવાળા–દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રનો અગ્નિના વિષયમાં પ્રયોગ કરવાવાળા અગ્નિકાય સાથે બીજા પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોની તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે.

સંસારમાં ઘણાંજ દ્રવ્યલિંગી છે. 'અમે પંચમહાવ્રતધારી સમસ્ત આરંભનો ત્યાગ કરવાવાળા અને ષટ્કાયના રક્ષક અણગાર છીએ.' આ પ્રકારે કહેવાવાળા દંડી શાકય આદિ છે. તે પોતાને અણગાર કહેતા થકા પણ લેશમાત્ર અણગારના ગુણોમાં પ્રવૃત્તિ કરતા નથી.

शाक्यादयः पचन-पाचन-प्रतापन-प्रकाशाद्यर्थमग्निकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन षट्कायजीवविराधका भवन्ति।

दण्डिनोऽपि-'वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनवचनाराधका अनगाराः स्मः' इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्तः शास्त्रनिषिद्धमप्यग्निकर्मसमारम्भं कारयन्ति।

दृश्यन्ते हि-शास्त्रव्याख्यानादौ देवकुलादौ प्रतिमाप्रतिश्रयादिप्रतिष्ठादौ च धूपदीपहवनादिभिरग्निकर्मसमारम्भं कारयन्तो दण्डिनः एवं कथयन्ति च-स्नानादिना पुष्पैर्धूपैश्च पायसापूपलड्डूकादिभिर्विविधैर्नैवेद्यैश्च प्रतिमापूजा

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि के लिए अग्निकर्म का समारंभ करते हैं, कराते हैं और करते हुए का अनुमोदन करते हैं, अतः वे षट्काय के विराधक हैं।

दण्डी कहते हैं-'**हम पंचमहाव्रतधारी हैं, जिनवचन के आराधक अनगार हैं**'। ये साध्वाभास सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्रनिषिद्ध अग्निकर्म का समारंभ करवाते हैं।

शास्त्र के व्याख्यान आदि में, देवकुल आदि में, प्रतिमा प्रतिश्रय और प्रतिष्ठा आदि में धूप दीप और हवन आदि द्वारा अग्निकर्म का आरंभ करवाते हुए दंडी देखे जाते हैं। वे ऐसा कहते हैं-'स्नान कराकर पुष्पों से, धूप से, खीर से, पूआ से, तथा लड्डू आदि से, तथा विविध प्रकार के नैवेद्य से प्रतिमा की पूजा करनी

શાક્ય આદિ પચન, પાચન, તાપન તથા પ્રકાશ આદિ માટે અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરે છે, કરાવે છે અને કરનારને અનુમોદન આપે છે. તેથી તે ષટ્કાયના વિરાધક છે.

દંડી કહે છે કેઃ-'અમે પંચમહાવ્રતધારી છીએ, જિનવચનના આરાધક અણગાર છીએ.' એ સાધ્વાભાસ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે. અને શાસ્ત્રનિષિદ્ધ અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરાવે છે.

શાસ્ત્રના વ્યાખ્યાન આદિમાં, દેવકુલ આદિમાં, પ્રતિમા પ્રતિશ્રય તથા પ્રતિષ્ઠા આદિમાં ધૂપ, દીપ અને હવન આદિ દ્વારા અગ્નિનો આરંભ કરાવતા હોય તેવા દંડી જોવામાં આવે છે. તે એમ કહે છે કેઃ-સ્નાન કરાવીને, પુષ્પોથી, ધૂપથી, ખીરથી, માલપૂવા તથા લાડુ આદિથી તથા વિવિધ પ્રકારનાં નૈવેદ્યથી પ્રતિમાની પૂજા કરવી જોઇએ. જિન

कर्तव्येत्यादि । पुनः-जिनस्य वामपार्श्वे धूपः स्थापनीयः, दक्षिणपार्श्वे घृतपूर्णः प्रज्वालितः प्रदीपः स्थाप्यः, पायसापूपघृतपूरलड्डूकादि नैवेद्यमपि पुरतः स्थापनीयमित्यादि । तच्च विनाग्निकर्मसमारम्भं नोपपद्यते । ओषध्यर्थं काथादि, शुण्ठिपाकादि, पातुमुष्णोदकं, भोक्तुं विविधाहारं च कारयन्तीति ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद-'तत्थ'. इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव अगणिसत्थं

चाहिए । जिन भगवान् के बाँई (डाबी) ओर धूप रखना चाहिए और दाहिनी (जिमणी) ओर घी से भरा जलता दीप रखना चाहिए । सामने खीर, मालपूआ, घेवर और लड्डू आदि नैवेद्य रखना चाहिए " । ये सब अग्निकर्म का समारंभ किये विना नहीं हो सकते । वे लोग ओषधि के लिए काथ वगैरह, सौंठ का पाक आदि, पीने के लिए गर्म जल और खाने के लिए विविध प्रकार के आहार बनवाते हैं ॥ सू० ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं:-'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस विषय में भगवान्ने बोध दिया है । इसी जीवन के लिए, वन्दन, मानना और पूजा के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, तथा दुःखों का निवारण करने के लिए वह स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से अग्निशस्त्रका

ભગવાનની ડાબી તરફ ધૂપ રાખવો જોઈએ. અને જમણી તરફ ઘીનો ભરેલો બળતો દીપક રાખવો જોઈએ. સામે ખીર, માલપૂવા, ઘેવર અને લાડું આદિ નૈવેદ્ય રાખવું જોઈએ. એ સર્વ અગ્નિકર્મના સમારંભ કર્યા વિના થઈ શકતાં નથી. તે લોક ઔષધી માટે કવાથ વગેરે; સુંઠના પાક આદિ, પીવા માટે ગરમ જલ અને ખાવા માટે વિધ-વિધ પ્રકારના આહાર બનાવરાવે છે. (સૂ. ૬)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે:-'तत्थ खलु'. ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—આ વિષયમાં ભગવાને બોધ આપ્યો છે. આ જીવન માટે વંદન, માનન, અને પૂજાને માટે, જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે તથા દુઃખોનું નિરાકરણ કરવા માટે તે પોતે અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે છે, અને

समारंभइ, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा अगणिसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव अग्निशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अग्निकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनायाग्निकायमुपमर्दयती ?–त्याह–'अस्य चैव जीवितस्ये'

आरंभ करवाता है और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है, सो यह उस के अहित के लिए है, यह अबोधि के लिए है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—अग्निकाय के समारंभ में श्री महावीरने सम्यक् उपदेश दिया है। आशय यह है कि–कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञाका आश्रय अवश्य लेना चाहिए, ऐसा उपदेश दिया है ।

उपभोगद्वार-

किस प्रयोजन से लोग अग्निकाय की हिंसा करते हैं यह बतलाते हैं–इसी

અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન કરે છે. તે એના (પોતાના) અહિત માટે છે, તે અબોધિને માટે છે. (સૂ. ૭)

ટીકાર્થ—અગ્નિકાયના સમારંભમાં શ્રી મહાવીરે સમ્યક્ ઉપદેશ આપ્યો છે. આશય એ છે કે–કર્મબંધનો નાશ કરવા માટે જીવે પરિજ્ઞાનો આશ્રય અવશ્ય લેવો જોઈએ. એવો ઉપદેશ આપ્યો છે.

ઉપભોગ દ્વાર-

કયા પ્રયોજનથી લોક અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે, એ બતાવે છે–આ ક્ષણભંગુર

त्यादि। अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्धनार्थं, धूमयानादिगतिसिद्ध्यर्थं चेत्यर्थः। तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशबाजी' इति-भाषाप्रसिद्धे क्षणनश्वरस्फुलिङ्गवृष्ट्यादौ, माननं=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भूपादीन् प्रसादयितुं दीपमालादीपवृक्षनिर्माणादौ। पूजनं=वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं धूपदीपारात्रिककरणादौ। तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनादौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=वातरोगापनयनार्थं शीतापनोदनार्थं ज्वरविषूचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवनसुखाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति।

क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, रेल आदि चलाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिनगारियाँ बरसाने के लिए अर्थात् 'अतिशबाजी' के लिए' जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा वगैरह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना। तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-वातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एवं विषूचिका दूर करने के लिए डांभ देना या तपाना आदि कार्य करने में। इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थी पुरुष स्वयं द्रव्य

જીવનના સુખ માટે, પ્રકાશ કરવા માટે, ચોખા આદિ રાંધવા માટે, રેલ આદિ ચલાવવા માટે તથા પોતાની પ્રશંસા માટે, જેમકે-અગ્નિયંત્રથી ક્ષણવિનશ્વર ચિનગારીઓ વરસાવવા માટે. અર્થાત્ 'આતશબાજી' માટે, જનસત્કાર માટે, જેમ-રાજા વગેરેને પ્રસન્ન કરવાના ઉદ્દેશથી દીપમાલિકા જગાવવી અથવા દીપકોના વૃક્ષની રચના કરવી, તથા વસ્ત્ર, રત્ન આદિ પુરસ્કાર પ્રાપ્ત કરવા માટે જેમ-દેવપ્રતિમા આદિ માટે ધૂપ-દીપ આદિ કરવું, તથા જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે જેમ-હવન આદિમાં, દુઃખોનો પ્રતિકાર કરવા માટે જેમ-વાતરોગ હઠાવવા માટે, ઠંડી દૂર કરવા માટે તથા જવર-તાવ અને કોલેરા દૂર કરવા માટે ડાંમવું-આદિ કાર્ય કરવામાં, આ સર્વ પ્રયોજનો માટે આ જીવનના સુખના અર્થી પુરુષ પોતે દ્રવ્યભાવ રૂપ અગ્નિશસ્ત્રનો

अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति। अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अग्निकायसमारम्भणं, तस्य=अग्निकायसमारम्भणं कुर्वतः, कारयितुः, अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति, तथा तत्, तस्य अबोधये= सम्यक्त्वालाभाय, भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपेऽग्निकायजीवस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह -'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ–एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं

भावरूप अग्निशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से आरंभ करवाता है और आरंभ करने वालों की अनुमोदना करता है । वह अग्निकाय का आरंभ, करने, कराने और अनुमोदन करने वाले के अहित और सम्यक्त्व की अप्राप्ति के लिए होता है ॥ सू० ७ ॥

जिस ने तीर्थङ्कर आदि से अग्निकाय का स्वरूप समझ लिया है वह इस प्रकार विचार करता है:-'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थङ्कर भगवान् या उनके अनगारों से उपदेश सुनकर चारित्र अङ्गीकार कर के विचरता है, वह इस प्रकार सोचता है–संसार में किन्हीं–किन्हीं को ही यह ज्ञान होता है कि–यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है।

આરંભ કરે છે. બીજા પાસે આરંભ કરાવે છે, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે–આ અગ્નિકાયનો આરંભ કરનાર, કરાવનાર અને કરનારને અનુમોદન આપનારના અહિત અને સમ્યક્ત્વની અપ્રાપ્તિ માટે થાય છે. (સૂ. ૭)

જેણે તીર્થંકર આદિ પાસેથી અગ્નિકાયનું સ્વરૂપ સમજી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છેઃ–'સેતં' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જે પુરુષ તીર્થંકર ભગવાન અથવા તો તેમના અણગારો પાસેથી ઉપદેશ સાંભળી ચારિત્ર અંગીકાર કરીને વિચરે છે–તે આ પ્રમાણે વિચારે છે કેઃ–સંસારમાં કોઈ–કોઈને જ આ જાણવામાં હોય છે કે–આ ગ્રંથ છે, આ મોહ છે, આ માર–મૃત્યુ છે.

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति–एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण अग्निशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति–इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरंभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश सुनकर सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है–इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रंथो के उपदेश से

આ નરક છે. ગૃદ્ધલોક નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી અગ્નિકર્મનો સમારંભ કરીને અગ્નિ-શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરતા થકા અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. (સૂ. ૮)

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ભગવાન તીર્થંકર અથવા તેમના અણુગારોની સમીપ ઉપદેશ સાંભળીને સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ ચારિત્રનો સ્વીકાર કરીને વિચરે છે. તે અગ્નિકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિકર સમજી લે છે.

તે આ પ્રમાણે વિચારે છે કેઃ–આ મનુષ્ય લોકમાં શ્રમણ નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી

संजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः-ग्रथ्यते=बध्यतेऽनेनेति-ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थं=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=

जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है. उन आत्मार्थी पुरुषों को ही विदित होता है। क्या विदित होता ? सो कहते हैं-'यह ग्रंथ हैं' इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समजना चाहिए। तथा यह अग्निसमारंभ मोह हैं-विपर्यास है-अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है-नरक की दश प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

જેને સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે, તે આત્માર્થી પુરૂષોનેજ જાણવામાં હોય છે. શું જાણવામાં હોય છે? તે કહે છે-'આ ગ્રંથ છે.' આદિ.

આ અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ નિશ્ચય-નક્કીજ આઠ પ્રકારના કર્મબંધ છે. કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનેજ કર્મબંધ કહ્યો છે. વાસ્તવિક રીતે આ સમારંભ કર્મબંધનું કારણ છે. આ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું જોઇએ. તથા આ સમારંભ મોહ છે-વિપર્યાસ-અજ્ઞાન છે, તથા આ સમારંભ મૃત્યુરૂપ છે-નિગોદ આદિ મરણરૂપ છે. અને આ નરક છે-નરકની દસ પ્રકારની યાતનાઓનું સ્થાન છે.

કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ

भोगाभिलाषी लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते इति शेषः ।

अयं भावः—भोगाभिलाषी लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाग्निशस्त्रसमारम्भं करोति, तत्फलं खलु कर्मबन्ध–मोह–मरण–नरकरूपमेव लभते, तस्मादग्निशस्त्रसमारम्भस्य तदेव फलं बोध्यमिति ।

'लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तते' इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह–'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः अग्निकर्म-

---

जीव बार–बार इसी की इच्छा करते हैं। अथवा भोगों का अभिलाषी संसारी जीव इस कर्मबंध, मोह मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्त होते हैं।

तात्पर्य यह है–भोगों का अभिलाषी लोक शरीर आदि का पोषण करने के लिए, वंदना, मानना और पूजा के लिए जन्म–मरण से मुक्त होने के लिए और दुःख का प्रतीकार करने के लिए अग्निशस्त्र का समारंभ करता है और फलस्वरूप कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप फल पाता है। अत एव अग्निशस्त्र के समारंभ का फल वही बंध आदि समझना चाहिए।

'लोक बार–बार कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करता है' यह जो कहा है सो कैसे ज्ञात हुआ ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

क्यों कि वह नाना प्रकार के पूर्वोक्तशस्त्रों से अग्नि की विराधना करने वाला

અજ્ઞાની જીવ વારંવાર તેનીજ ઇચ્છા કરે છે. અથવા–ભોગોનો અભિલાષી સંસારી જીવ આ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરક માટેજ પ્રવૃત્ત થાય છે.

તાત્પર્ય એ છે–ભોગોના અભિલાષી માણસો શરીર આદિનું પોષણ કરવા માટે વંદના, માનના અને પૂજાને માટે, જન્મમરણથી મુક્ત થવા માટે અને દુઃખનો પ્રતિકાર કરવા માટે અગ્નિશસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે અને ફલસ્વરૂપ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ફલને પ્રાપ્ત કરે છે. એટલા માટે અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનું ફલ તે બંધ આદિ સમજવાં જોઈએ.

લોક વારં–વાર કર્મબંધ વગેરે માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે. એવું જે કહ્યું તે કેવી રીતે જાણવામાં આવ્યું ? આ પ્રમાણે જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે—

કેમકે તે નાના પ્રકારના પૂર્વોક્ત શસ્ત્રોથી અગ્નિની વિરાધના કરવાવાળા સાવદ્ય

समारम्भेण=अग्न्युपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमम्=अग्निकायं विहिनस्ति । तथा अग्निशस्त्रं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरांश्च, प्राणान्=प्राणिनो, विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ८ ॥

अग्निशस्त्रं समारभमाणा अनेकविधान् जीवान् कथ विहिंसन्ति ? तत्प्रतिबोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह–' से बेमि '. इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि–संति पाणा पुढवीनिस्सिया तणनिस्सिया पत्तनिस्सिया कट्ठनिस्सिया गोमयनिस्सिया कयवरनिस्सिया, संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति, अगणिं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जंति, जे तत्थ संघायमावज्जंति,

---

सावद्य व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करता है और अग्निकाय का आरंभ करता हुआ अन्य पृथ्वीकाय आदि नाना प्रकार के स्थावर एवं त्रस प्राणियों का घात करता है ॥ सू० ८ ॥

अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाले अनेक प्रकार के जीवों की विराधना किस प्रकार करते हैं । यह समझाने के लिए श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं:–' से बेमि. ' इत्यादि।

मूलार्थ—वही मैं कहता हूँ—जीव पृथिवी के आश्रित हैं, तृण के आश्रित है, पतों के आश्रित हैं, काष्ठ के आश्रित हैं गोबर के आश्रित हैं, कचरे के आश्रित हैं; संपातिम जीव अचानक आकर अग्नि में पड जाते हैं, कोई–कोई अग्नि को छूकर सिकुड

વ્યાપાર કરીને અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે. અને અગ્નિકાયનો આરંભ કરવા સાથે અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ નાના પ્રકારના ત્રસ જીવો એ પ્રમાણે સ્થાવર પ્રાણીઓનો ઘાત કરે છે. (સૂ. ૮)

અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા અનેક પ્રકારના જીવોની વિરાધના કયા પ્રકારે (કેવી રીતે) કરે છે? તે સમજાવવા માટે, શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છેઃ–' से बेमि ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું–જીવ પૃથ્વીના આશ્રિત છે. તૃણુને આશ્રિત છે. પત્તાં–પાંદડાને આશ્રિત છે. લાકડાંને આશ્રિત છે. છાણુને આશ્રિત છે. કચરાને આશ્રિત છે. સંપાતિમજીવ અચાનક આવીને અગ્નિમાં પડી જાય છે. જે સંકોચાઈ જાય છે. તે

ते तत्थ परियावज्जंति जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायंति ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि–सन्ति प्राणाः पृथिवीनिश्रिताः तृणनिश्रिताः पत्रनिश्रिताः काष्ठनिश्रिताः गोमयनिश्रिताः कचवरनिश्रिताः, सन्ति संपातिमाः प्राणाः आहत्य संपतन्ति, अग्निं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते, ये तत्र संघातमापद्यन्ते ते तत्र पर्यापद्यन्ते, ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ सू० ९ ॥

टीका—

तद्=अग्निकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् ब्रवीमि=कथयामि, पृथिवीनिश्रिताः=पृथिवीरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः पृथिवीकायिका इत्यर्थः। 'पृथिवीनिश्रिताः' इत्युपलक्षणम्, तेन तदाश्रिताः कृमि–कुन्थु–पिपीलिका–भुजङ्गम–मण्डूक–वृश्चिक–कर्कटकादयो गृह्यन्ते। तथा च पृथिवीकायिकास्तदाश्रितास्त्रसाश्चेत्यर्थः, वृक्षलतादयश्च। तथा–तृणनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः,

---

जाते हैं; जो सिकुड जाते हैं वे मूर्छित हो जाते हैं और जो मूर्छित हो जाते है वे मर भी जाते हैं ॥सू० ९॥

टीकार्थ—अग्निकाय की हिंसा से बहुत प्रकार के जीवों का घात होता है, सो मैं कहता हूँ–पृथिवी के सहारे रहने वाले जीव पृथिवीकायिकों के अतिरिक्त और भी बहुत से हैं। जैसे–कृमि, कुंथुवा, विंउटी, साप, मेंढक, बिच्छु, कैकडा, आदि। अतः पृथिवी आश्रित का अर्थ यहां पृथिवीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेना चाहिए। वृक्ष और वेल आदि भी इसी में सम्मिलित हैं। तथा तृण–आश्रित वनस्पतिकाय के

મૂર્ચ્છિત થઈ જાય છે, અને જે મૂર્છિત થાય છે તે મરી પણ જાય છે. (સૂ. ૯)

ટીકાર્થ—અગ્નિકાયની હિંસાથી ઘણાજ પ્રકારના જીવોનો ઘાત થાય તે હું કહું છું–પૃથ્વીના આશ્રયે રહેવાવાળા જીવ પૃથ્વીકાયોની સાથે બીજા પણ ઘણા છે. જેમ કૃમિ કુંથવા, કીડીઓ, સાપ, દેડકાં, વીંછી કેંકડા આદિ. એ કારણથી પૃથ્વીઆશ્રિતનો અર્થ અહિં પૃથ્વીકાયિક સ્થાવર તથા ત્રસ જીવ લેવા જોઈએ. વૃક્ષ અને વેલા–વેલ આદિ પણ તેમાં સમ્મિલિત છે. તથા તૃણ–આશ્રિત વનસ્પતિકાયના જીવ અને તૃણના આશ્રયે રહેવા-

तृणमाश्रित्यावस्थायिनः मशककीटतृणजलौकादयश्च, तथा-पत्रनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः पत्रमाश्रित्य निवासिनः पिपीलिकाभेदाः 'घोडन' इति मगधदेशे प्रसिद्धाः, कीटपतङ्गनीलङ्गुप्रभृतयश्च, तथा-काष्ठनिश्रिताः काष्ठं शरणीकृत्य स्थिताः घुणोद्देहिका-तदण्डादयः, अत्र काष्ठं शुष्कमिन्धनरूपं सार्द्रं च गृह्यते। तथा-गोमयनिश्रिताः =गण्डूपदभूमिस्फोटादयः। तथा कचवरनिश्रिताः-कचवरः शुष्कतृणपत्ररजःसमुदायरूपः, तं निश्रिताः=समाश्रिताः कृमिकुन्थुकीटादयः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति।

तथा-संपातिमाः=उत्प्लुत्योत्प्लुत्य पतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः दंशमशकमक्षिकापतङ्गपक्षिपवनादयः सन्ति। एते संपातिमा आहत्य=अग्निशिखाकृष्टाः स्वयमेवोपेत्य, अग्नौ संपतन्ति।

जीव और तृण के सहारे रहने वाले मच्छर कीडे और घास की जलोक (जौंक) आदि तृण-निश्रित कहलाते हैं। पत्तों के सहारे रहने वाले मगध देश में प्रसिद्ध घोडन तथा कीट, पतंग एवं नीलंगु (लट) आदि जीव हैं। धुन, उदई और उनके अण्डे आदि काठ के सहारे रहने वाले जीव काष्ठनिश्रित कहलाते हैं। यहाँ 'काष्ठ' शब्द से सूखा ईंधनरूप काठ और गीला काठ, दोनों समझने चाहिए। तथा गोबर के आश्रित गिंडीला और भूमिस्फोटक (भूफोड) आदि जीव हैं। इसी केकार कचरे के सहारे रहने वाले कृमि कुंथुवा तथा कीडा वगैरह, ये सब प्राणी हैं।

उड-उड कर गिरने वाले डांस, मच्छर, मक्खी पतंग, पक्षी और पवन आदि संपातिम जीव कहलाने हैं। ये संपातिम जीव आग की शिखा से स्वयं आकार्षित हो कर आग में गिर जाते हैं।

વાળા મચ્છર, કીડા અને ઘાસની જળો આદિ, તૃણ આશ્રિત કહેવાય છે. પત્તાં-પાંદડાંના આશ્રયે રહેવાવાળા મગધદેશમાં પ્રસિદ્ધ ઘોડન તથા કીટ પતંગ અને નીલંગુ (લટ) આદિ જીવ છે. ઘુણુ ઉધેઈ અને તેનાં ઇંડાં આદિ-લાકડાના સહારે રહેવાવાળા જીવ કાષ્ઠનિશ્રિત કહેવાય છે. અહિં કાષ્ઠ શબ્દથી સૂકાં લાકડાંરૂપ કાષ્ઠ અને લીલાં કાષ્ઠ, આ બન્ને સમજવાં જોઇએ, તથા છાણમાં આશ્રય કરીને રહેલાં ગિંડોળા અને ભૂફોડા આદિ જીવ છે. આ પ્રમાણે કચરાના આશ્રયે રહેવાવાળા કૃમિ, કુંથુવા તથા કીડા વગેરે, આ સર્વ પ્રાણી છે.

ઉડી-ઉડીને પડવાવાળા ડાંસ, મચ્છર, માખી, પતંગ, પક્ષી અને પવન આદિ સંપાતિમ જીવ કહેવાય છે. એ સંપાતિમ જીવ આગની-અગ્નિની શિખાથી પોતે આકર્ષિત થઈને અગ્નિમાં પડી જાય છે.

अग्निकायसमारम्भे पृथिव्यादिसमाश्रितानां स्थावराणां त्रसानां चोपमर्दनादिकं यथा भवति तद् दर्शयितुमाह–अग्निं चेत्यादि ।

एके–केचित् प्राणिनः, अग्निम्=समुत्पादितं प्रज्वालितं चाग्निकायं स्पृष्टाः स्पर्शकर्तारः, आर्षत्वात् कर्तरि क्तः ।

संघातं=पक्षादिदहनेन गात्रसंकोचनम् आपद्यन्ते, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तत्र=अग्नौ पतित्वा ये जीवाः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते=तापाभिभूता मूर्छां प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ये तत्र=अग्नौ पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=अग्नौ, अपद्रावन्ति=प्राणान् परित्यजन्ति । अग्निसमारम्भेण केवलमग्निकायविराधना न भवति, अपितु सर्वदिक्संचारिणां त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति भावः । अत एवोक्तं भगवता—

अग्निकाय का आरंभ करने से पृथिवी आदि में आश्रित स्थावरों और त्रस जीवों का विराधन किस प्रकार होता है ? सो कहते हैं ।

कोई–कोई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं–उन के पंख वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव संघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से मूर्च्छित हो जाते हैं । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते हैं । अग्नि का समारंभ करने से केवल अग्निकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में संचार करने वाले त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए भगवान् ने कहा है:—

અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાથી પૃથ્વીઆદિમાં આશ્રય કરીને રહેલાં સ્થાવરો અને ત્રસ જીવોની વિરાધના જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે—

કોઈ–કોઈ પ્રાણી બળતી અગ્નિનો સ્પર્શ કરીને સંકોચાઈ જાય છે. તેની પાંખો વગેરે બળી જાય છે. અગ્નિમાં પડીને જે જીવ સંઘાતને પ્રાપ્ત થાય છે તે ગરમીથી મૂર્છિત થઈ જાય છે. અગ્નિમાં પડવાવાળા જીવ જે મૂર્છિત થઈ જાય છે તે પોતાના પ્રાણ પણ ખોઈ નાખે છે. અગ્નિનો સમારંભ કરવાથી કેવલ અગ્નિકાયની વિરાધના થતી નથી, પરન્તુ સર્વ દિશાઓમાં સંચાર કરવાવાળા ત્રસ અને ઘણાંજ સ્થાવર જીવોની પણ હિંસા અવશ્ય થાય છે. એ માટે ભગવાને કહ્યું છે—

"जायतेयं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए ।
तिक्खमन्नयरं सत्थं, सव्वओवि दुरासयं ॥ १ ॥
पाईणं पडिणं वावि, उड्ढं अणुदिसामवि ।
अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओवि य ॥ २ ॥
भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ ।
तं पईवपयावट्ठा, संजओ किंचि नारभे ॥ ३ ॥" (दशवै० अ० ६)

छाया—जाततेजसं नेच्छन्ति, पावकं ज्वालयितुम् ।
तीक्ष्णमन्यतरत् शस्त्रं, सर्वतोऽपि दुरासदम् ॥ १ ॥
प्राच्यां प्रतीच्यां वापि, ऊर्ध्वमनुदिक्ष्वपि ।
अधो दक्षिणतो वापि, दहेदुत्तरतोऽपि च ॥ २ ॥
भूतानामेष आघातो, हव्यवाहो न संशयः ।
तं प्रदीपप्रतानार्थं, संयतः किञ्चिन्नारभेत ॥ ३ ॥

"साधु अग्नि को जलाने की इच्छा तक नहीं करते, क्यों कि वह एक बडा ही तीखा शस्त्र है, जो किसी भी और से दुस्सह है—सभी ओर से जलाता है ॥१॥

यह अग्निशस्त्र पूर्व से भी और पश्चिम से भी ऊपर से भी और विदिशाओं की तरफ से भी नीचे से भी और दक्षिण से भी तथा उत्तर से भी जलाता है ॥२॥

अग्नि जीवों का घातक है, इस में कोई संशय नहीं है। साधु दीपक जलाने तथा प्रतापने के लिए उस का जरा भी आरंभ नहीं करते ॥३॥ (दशवै. अध्य. ६)

फिर भी कहा है—

"સાધુ અગ્નિને સળગાવવાની ઇચ્છા સુધી કરતા નથી, કારણ તે એક મહાન તીક્ષ્ણ શસ્ત્ર છે. તે કોઈપણ બાજુથી દુસ્સહ છે—ચારેય તરફથી બાળે છે." ॥ ૨ ॥

આ અગ્નિશસ્ત્ર પૂર્વથી પણ અને પશ્ચિમથી પણ ઉપરથી અને વિદિશાઓની તરફથી પણ નીચેથી અને દક્ષિણથી પણ અને ઉત્તરથી પણ બાળે છે. ॥ ૨ ॥

અગ્નિ જીવોનો ઘાતક છે, તેમાં કાંઈ પણ સંશય નથી. સાધુ દીપક સળગાવવા તથા તાપવાને માટે તેનો જરા પણ આરંભ કરતા નથી." ॥ ૩ ॥ (દશવૈ. અધ્ય. ૬)

ફરી પણ કહે છે—

"दो पुरिसा सरिसवया अन्नमन्नेहिं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं समुज्जालेति, एगे विज्झवेति, तत्थ णं के पुरिसे महाकम्मयराए? के पुरिसे अप्पकम्मयराए? गोयमा! जे उज्जालेति से महाकम्मयराए, जे विज्झवेति से अप्पकम्मयराए" ॥

छाया—द्वौ पुरुषौ सदृशवयस्कौ अन्यान्याभ्यां सार्द्धम् अग्निकायं समारभेते, तत्र खलु एकः पुरुषः अग्निकायं समुज्ज्वालयति, एको विध्यापयति, तत्र खलु कः पुरुषः महाकर्मतरकः? कः पुरुषः अल्पकर्मतरकः?। गौतम! यः (अग्नि) उज्ज्वालयति स महाकर्मतरकः, य (अग्नि) विध्यापयति स अल्पकर्मतरकः (भगवती सूत्र०) ॥ सू० ९ ॥

तदेवमग्निकायहिंसया बहुतरजीवोपमर्दनं भवतीति विदित्वा त्रिकरणत्रियोगैः कृतकारितानुमोदितैश्चाग्निशस्त्रसमारम्भो वर्जनीय इत्याह—'एत्थ सत्थं' इत्यादि ।

"समान उम्र वाले दो पुरुष परस्पर अग्निकाय का आरंभ करते हैं। एक पुरुष अग्निकाय को जलाता है और एक बुझाता है। इन में से कौन—सा पुरुष महाकर्म बाँधता है? और कौन अल्पकर्म बाँधता है?। हे गौतम! जो अग्नि जलाता है वह महा कर्म बाँधता है और जो अग्नि बुझाता है वह अल्प कर्म बाँधता है" (भगवतीसूत्र.) ॥ सू० ९॥

इस प्रकार अग्निकाय की हिंसा होती है, यह जानकर तीन करण, तीन योग से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से अग्निशस्त्र का समारंभ त्याग देना चाहिए, यही बात कहते हैं—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

"સમાન ઉમરવાળા બે પુરૂષ પરસ્પર અગ્નિકાયનો આરંભ કરે છે. એક પુરૂષ અગ્નિકાયને સળગાવે છે. બાળે છે અને એક બુઝાવે–ઓલવે છે. તે બેમાંથી કયો પુરૂષ મહા કર્મ બાંધે છે. અને કોણ અલ્પ કર્મ બાંધે છે? હે ગૌતમ! જે અગ્નિ સળગાવે છે–બાળે છે તે મહા કર્મ બાંધે છે. અને જે અગ્નિ બુઝાવે છે. તે અલ્પ કર્મ બાંધે છે." (ભગવતી સૂત્ર.) (સૂ. ૯)

આ પ્રમાણે અગ્નિકાયની હિંસાથી ઘણા પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે. એ જાણી કરીને ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી તથા કરવું, કરાવવું અને અનુમોદનાથી અગ્નિશસ્ત્રનો સમારંભ ત્યજી દેવો જોઇએ, એજ વાત કહે છે–'एत्थ सत्थं,' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति। एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति। तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणिसत्थं समारंभेज्जा, नेवऽण्णेहिं अगणि-सत्थं समारंभावेज्जा अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणु जाणिज्जा जस्सेते अगणिकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ १-४ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति। अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्। यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा-इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

॥ चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ १-४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् अग्निकाये, शस्त्रं द्रव्यभावरूपं प्रागुक्तं :समारभमाणस्य=

मूलार्थ—अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाला इन आरंभो को नहीं जानता। अग्निशस्त्र का आरंभ न करने वाला इन आरंभो को जानता है। इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से अग्निशस्त्र का आरंभ न करावे और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोदना न करे। जो इन समारंभो का ज्ञाता होता है वही मुनि परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं (भगवान् के कथनानुसार) कहता हूँ ॥सू० १०॥

टीकार्थ—अग्निकाय में द्रव्य और भावरूप पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार करने

મૂલાર્થ—અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા એ આરંભોને જાણતા નથી. અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળા એ આરંભોને જાણે છે. તેને જાણીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ સ્વયં અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ ન કરે, બીજા પાસે અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે નહિ. અને અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ. જે આ સમારંભોના જ્ઞાતા-જાણકાર હોય છે તે મુનિ પરિજ્ઞાતકર્મા છે. એ પ્રમાણે હું (ભગવાનના વચનાનુસાર) કહું છું. (સૂ. ૧૦)

ટીકાર્થ—અગ્નિકાયમાં દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ પૂર્વોક્ત શસ્ત્રનો વ્યાપાર (ઉપયોગ)

व्यापारयतः, इत्येते=पचनपाचनादयः आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः= अष्टविधकर्मबन्धकारणत्वेनाविज्ञाता भवन्ति, अग्निकाये शस्त्रं प्रयुञ्जानस्य परिज्ञाया अभावादिति भावः ।

अत्र=अस्मिन् अप्काये शस्त्रम्=पूर्वोक्तस्वरूपम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पचनपाचनादयः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाताः ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति तथा दर्शयति–'तत् परिज्ञाये'–त्यादि । तत्=अग्निकायारम्भणं, परिज्ञाय='कर्मबन्धाय भवती'-त्येवमवबुध्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेककुशलः, साधुमर्यादावधानशील इति यावत्, नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं

वाले को अर्थात् पचन–पाचन आदि पापमय कार्य करने वालों को यह ज्ञान नहीं होता कि–यह कार्य आठ प्रकार के कर्मों के बंध का कारण है, क्यों कि अग्निकाय के शस्त्र का प्रयोग करने वाले में परिज्ञा का अभाव होता है ।

अग्निकाय में पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार न करने वाले को सावद्य व्यापारों का ज्ञान होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से उन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है ? सो कहते हैं–अग्निकाय का आरंभ कर्मबंध का कारण है, यह जानकर हेय–उपादेय के विवेक में प्रवीण साधुमर्यादा का ध्यान रखने वाला स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ नहीं करता, दूसरों से

કરવાવાળાને અર્થાત્–પચન–પાચન આદિ પાપમય કાર્ય–કરવાવાળાને એ જ્ઞાન હોતું નથી કે આ કાર્ય આઠ પ્રકારનાં કર્મોનાં બંધનું કારણ છે. કારણ કે અગ્નિકાયનાં શસ્ત્રનો પ્રયોગ કરવાવાળાઓમાં પરિજ્ઞાનો અભાવ હોય છે.

અગ્નિકાયમાં પૂર્વોક્ત શસ્ત્રનો વ્યાપાર–ઉપયોગ નહિ કરવાવાળાને સાવદ્ય વ્યાપારોનું જ્ઞાન હોય છે. તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને જાણે છે, અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી આપે છે.

જ્ઞપરિજ્ઞાની પછી પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા કયા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે ? તે કહે છેઃ–

અગ્નિકાયનો આરંભ કર્મબંધનું કારણ છે. એ પ્રમાણે જાણીને હેય–ઉપાદેયના વિવેકમાં પ્રવીણ–કુશળ સાધુમર્યાદાનું ધ્યાન રાખવાવાળા પોતે અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ કરતા નથી; બીજા પાસે આરંભ કરાવતા નથી, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન

समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्। शेषं सुगमम्। यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः=कर्मणां समारम्भाः कर्मसमारम्भाः, अग्नेः कर्मसमारम्भाः अग्निकर्मसमारम्भाः=अग्निं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः उपमर्दनव्यापारा इत्यर्थः,परिज्ञाताः =सर्वथा ज्ञाताः, ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-परिज्ञातानि=ज्ञपरिज्ञया स्वरूपतो विपाकतस्तदुपादानतश्चावगतानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परित्यक्तानि कर्माणि=सावद्यव्यापाराः येन-स परिज्ञातकर्मा=मनोवाक्कायैः सकलसावद्यकरणकारणानुमतिनिवृत्तो मुनिर्भवतीत्यर्थः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं पूर्ववद् बोध्यम्।

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने
चतुर्थोद्देशकः संपूर्णः ॥ १-४ ॥

आरंभ नहीं कराता और आरंभ करने वालों की अनुमोदना नहीं करता। शेष भाग सुगम हैं।

अग्नि के निमित्त से होने वाले तथा कर्मबंध के कारणभूत यह सब पापमय व्यवहार जिस ने कर्मबंध के कारण ज्ञपरिज्ञा से समझ कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिये हैं वही परिज्ञातकर्मा मुनि है। जिसने इन व्यापारों का स्वरूप, फल और कारण ज्ञपरिज्ञा से जान लिया है तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर दिया है उसे परिज्ञातकर्मा मुनि कहते हैं। ऐसा मुनि मन, वचन काय से समस्त सावद्य के करने, कराने और अनुमोदन करने का त्यागी होता है। 'इति ब्रवीमि' की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए ॥सू० १०॥

**श्रीआचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाके हिन्दी अनुवादमें
प्रथम अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-४ ॥**

આપતા નથી. શેષ-બાકીનો ભાગ સુગમ છે.

અગ્નિના નિમિત્તથી થવાવાળા તથા કર્મબંધના કારણભૂત આ સર્વ પાપમય વ્યવહારનો જેણે કર્મબંધના કારણે જ્ઞપરિજ્ઞાથી સમજીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યાગ કરી આપ્યો છે તેને પરિજ્ઞાતકર્મા મુનિ કહે છે. એવા મુનિ-મન, વચન, કાયાથી સમસ્ત સાવદ્યને કરવું, કરાવવું અને અનુમોદન કરવું તેના ત્યાગી હોય છે 'इति ब्रवीमि'ની વ્યાખ્યા પ્રથમના સમાન સમજી લેવી જોઈએ. (સૂ. ૧૦)

**શ્રી આચારાંગસૂત્રની 'આચારચિંતામણિ' ટીકાના
ગુજરાતી-અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો
ચોથો ઉદ્દેશક સંપૂર્ણ. (૧-૪)**

अथ पञ्चमोद्देशकः—

चतुर्थोद्देशेऽग्निकायस्वरूपं मुनित्वप्राप्तये प्रतिबोधितम्। साम्प्रतं तदर्थमेव क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपं प्रतिबोधयितुकामः पञ्चमोद्देशकमुपक्रमते—'तं णो'. इत्यादि।

ननु क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनं कथं न प्रक्रम्यते? उच्यते—वायुकायः प्रत्यक्षतया दृष्टिगोचरो न भवति, अतस्तत्र श्रद्धा झटिति नोदेतुं प्रभवति, पृथिव्याद्येकेन्द्रियजीवस्वरूपं प्रतिबुध्य तु सुतरां वायुकायो विज्ञास्यते, अतः स एव क्रमो गुरुभिरुपादेयो भवति, येन जीवादितत्त्वविज्ञानाय शिष्याः

पंचम उद्देशक—

चौथे उद्देश में साधुता प्राप्त करने के लिए अग्निकाय का स्वरूप समझाया है। इसी के लिए क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप समझाने के प्रसंग में वनस्पतिकाय का स्वरूप बतलाने के लिए पाँचवाँ उद्देश आरंभ करते हैं—'तं णो.' इत्यादि।

प्रश्न—क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप क्यों नहीं बतलाया गया है? और वायुकाय को छोडकर वनस्पतिकाय के विवेचन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर—बात यह है कि वायुकाय नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता—सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय से उस की प्रतीति होती है। इस कारण उस के विषय में जल्दी श्रद्धा नहीं होती। हाँ, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों का स्वरूप समझ लेने पर वायुकाय सहज ही समझ में आ जायगा। गुरुजन वही क्रम काम में लाते हैं जिस से शिष्य जीवादि

પંચમ ઉદ્દેશક—

ચોથા ઉદ્દેશકમાં સાધુતા પ્રાપ્ત કરવાને માટે અગ્નિકાયનું સ્વરૂપ સમજાવ્યું છે. આ માટેજ ક્રમ અનુસાર વાયુકાયનું સ્વરૂપ સમજાવવાના પ્રસંગે વનસ્પતિકાયનું સ્વરૂપ બતાવવાને માટે પાંચમા ઉદ્દેશકનો આરંભ કરે છે—'तं णो.' ઈત્યાદિ.

પ્રશ્ન—ક્રમ પ્રમાણે વાયુકાયનું સ્વરૂપ શા માટે બતાવ્યું નથી? અને વાયુકાયને છોડીને વનસ્પતિકાયના વિવેચનમાં કયો ઉદ્દેશ્ય છે?

ઉત્તર—વાત એ છે કે—વાયુકાય નેત્રથી પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવતો નથી. માત્ર સ્પર્શેન્દ્રિયથી તેની પ્રતીતિ થાય છે. આ કારણથી તેના વિષયમાં જલ્દી શ્રદ્ધા થતી નથી. હા, પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય જીવોનું સ્વરૂપ સમજી લીધા પછી વાયુકાય સહજે સમજવામાં આવી જશે. ગુરુજન આ ક્રમને કામમાં લાવે છે, જે વડે કરી શિષ્ય જીવાદિ

स्वयमेवोत्सहन्ते, तस्माद् वायुकायस्वरूपमनभिधाय वनस्पतिकायः प्रथमं प्रस्तूयते—'तं णो.' इत्यादि ।

यद्वा—अनन्तरचतुर्थोद्देशेऽग्निकायो दीर्घलोकशस्त्रशब्देनादौ प्रतिबोधितः । तत्र दीर्घलोकशब्दार्थो वनस्पतिरित्याशयं समधिगम्याग्निकायप्रकरणसमाप्त्यनन्तरं प्रथमं वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञातुकामस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय पञ्चमं वनस्पतिकायोद्देशं कथयति—'तं णो.' इत्यादि ।

यथा वनस्पतिकायोपमर्दननिवृत्त्याऽनगारत्वं लभ्यते, तं प्रकारं निर्दिशति—'तं णो.' इत्यादि ।

तत्त्वों के ज्ञान में उत्साहित हों । यही कारण है कि पहले वायुकाय का स्वरूप न कह कर वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है–'तं णो'. इत्यादि ।

अथवा—चौथे उद्देश में अग्निकाय को 'दीर्घलोकशस्त्र' बतलाया है । दीर्घलोकका अर्थ वनस्पतिकाय है, यह आशय जानकर अग्निकाय के प्रकरण के पश्चात् ही शिष्य को वनस्पतिकाय का स्वरूप जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है । जिज्ञासा के अनुरूप दिया हुआ उपदेश ही अधिक सफल होता है, अतः शिष्य की जिज्ञासा तृप्त करने के लिए पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का कथन किया जाता है–'तं णो'. इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसा से निवृत्त होने पर ही साधुता प्राप्त होती है, वह किस प्रकार प्राप्त होती है ? सो कहते हैं–'तं णो.' इत्यादि।

तत्त्वोना ज्ञानमां उत्साहित थाय. आ कारणुथी प्रथम वायुकायना स्वरूपने नहि कहेतां वनस्पतिकायनुं वर्णुन करवामां आव्युं छे–'तं णो.' ईत्यादि.

अथवा—चोथा उद्देशकमां अग्निकायने 'दीर्घलोकशस्त्र' तरीके बताव्युं छे. दीर्घलोकनो अर्थ वनस्पतिकाय छे; ए आशयने समजीने अग्निकायना प्रकरणुनी पछीज शिष्यने वनस्पतिकायना स्वरूपने जाणुवानी ईच्छा होय–थवी ते स्वाभाविक छे. जीज्ञासाने अनुरूप आपेलो उपदेशज अधिक सफल थाय छे, ए कारणुथी शिष्यनी जीज्ञासा तृप्त करवाने माटे पांचमा उद्देशमां वनस्पतिकायनुं विवेचन करवामां आवे छे–'तं णो.' ईत्यादि.

वनस्पतिकायनी हिंसाथी निवृत्त थया पछीज साधुता प्राप्त थाय छे, ते कया प्रकारे प्राप्त थाय छे. ते कहे छे–'तं णो.' ईत्यादि.

मूलम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता मइमं, अभयं विदित्ता तं जे णो करए, एसोवरए एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ॥ सू० १ ॥

छाया—

तं नो करिष्यामि समुत्थाय मत्वा मतिमान्, अभयं विदित्वा तं यो नो कुर्यात्, एष उपरतः अत्रोपरतः, एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० १ ॥

टीका—

मतिमान्=मेधावी श्रमणनिर्ग्रन्थादिदेशनाश्रमणसंजातहेयोपादेयविवेकवानित्यर्थः । मत्वा=वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञाय विभावयति—अहं समुत्थाय आत्मकल्याणार्थमुद्युक्तः सन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा, तं=वनस्पतिकायसमारम्भं नो करिष्यामीति ।

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर वनस्पतिकाय का आरंभ नहीं करूँगा । जो पुरुष संयम को जानकर आरंभ नहीं करता है वही आरंभ से उपरत है—वही जिन शासन में आरंभ से निवृत्त कहलाता है । वही अनगार कहलाता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदि का उपदेश सुनने से जिसे हेय और उपादेय का विवेक उत्पन्न हो गया है वह वनस्पतिकाय का स्वरूप जानकर इस प्रकार विचार करता है:—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर—दीक्षा लेकर वनस्पतिकाय का आरंभ समारंभ नहीं करूँगा ॥

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરૂષ વિચાર કરે છે—હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને વનસ્પતિકાયનો આરંભ નહિ કરૂં. જે પુરૂષ સંયમને જાણીને આરંભ કરતા નથી તે આરંભથી ઉપરત છે, તેજ જિનશાસનમાં આરંભથી નિવૃત્ત કહેવાય છે, તેજ અણગાર કહેવાય છે. ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગ્રન્થ આદિનો ઉપદેશ સાંભળવાથી જેને હેય અને ઉપાદેયનો વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે. તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણીને આ પ્રમાણે વિચાર કરે છેઃ—

હું આત્મકલ્યાણને માટે ઉદ્યત—તૈયાર થઈને—દીક્ષા લઈને વનસ્પતિકાયનો આરંભ સમારંભ કરીશ નહિ.

अस्योद्देशस्य वनस्पतिकायविषयकतयाऽत्र तच्छब्देन वनस्पतिकायसमारम्भः परिगृह्यते। अत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं तत्समारम्भवर्जनप्रतिज्ञाप्रदर्शनेन ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष इति प्रतिबोधितम्। यः अभयं—नास्ति भयं यस्मात् कस्य चित् प्राणिनः इत्यभयः=सर्वप्राणिप्राणत्राणलक्षणः संयमः, तं—विदित्वा तं=वनस्पतिकाय-समारम्भं नो कुर्यात्। एषः उपरतः=वनस्पतिजीवविषये सर्वथा समारम्भाद् विनिवृत्तः, अत्र=अस्मिन् जिनशासने उपरतः प्रोच्यते, इत्यन्वयः। तथा एषः=पूर्वोक्तलक्षण उपरतः 'अनगारः' इति प्रोच्यते। अनगारगुणानां संपूर्णतया तत्र सत्त्वात्, स एवानगारशब्दवाच्योऽस्तीति भावः।

अथ वनस्पतिकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं प्रागुक्ताष्टविधद्वाराणि निरूपणी-

---

यह उद्देश वनस्पतिकायसंबंधी है अतः यहाँ '**तत्**' शब्द से वनस्पतिकाय का समारंभ लिया जाता है। पहले वनस्पतिकाय का ज्ञान होता है फिर उसके आरंभ का त्याग किया जाता है, यह बतलाकर सूचना की गई है कि मोक्ष, ज्ञान और क्रिया— दोनों से होता है।

जिससे किसीभी प्राणी को भय नहीं ऐसा, प्राणीमात्र की रक्षारूप संयम अभय कहलाता है। उसे जानकर वनस्पतिकाय का समारंभ न करे। इस प्रकार वनस्पतिकाय के आरंभ से विरत पुरुष जिनशासन में '**उपरत**' कहलाता है और वही उपरत पुरुष अनगार है, क्यों कि अनगार के गुण पूर्णरूप से उसीमें पाये जाते हैं।

वनस्पतिकाय का स्वरूप सम्यक् प्रकार से जानने के लिए पूर्वोक्त आठ

આ ઉદ્દેશ વનસ્પતિકાયસંબંધી છે. એ કારણથી અહિં 'तत्' શબ્દથી વનસ્પતિ-કાયનો સમારંભ લેવામાં આવે છે. પહેલાં વનસ્પતિકાયનું જ્ઞાન થાય છે. પછી તેના આરંભનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે. એ બતાવીને સૂચના કરવામાં આવી છે કે—જ્ઞાન અને ક્રિયા, આ બન્નેથી મોક્ષ થાય છે.

જેનાથી કોઈ પણ પ્રાણીને ભય થાય નહિ. એ પ્રમાણે પ્રાણીમાત્રની રક્ષારૂપ સંયમ તે અભય કહેવાય છે. તેને જાણીને વનસ્પતિકાયનો સમારંભ કરે નહિ. આ પ્રમાણે વનસ્પતિના આરંભથી વિરત પુરુષ જિનશાસનમાં 'ઉપરત' કહેવાય છે. અને તેજ ઉપરત પુરુષ અનગાર છે. કારણ કે—અણગારના ગુણ પૂર્ણરૂપથી તેમાંજ જોવામાં આવે છે.

વનસ્પતિકાયનું સ્વરૂપ સમ્યક્પ્રકારે જાણવા માટે પૂર્વોક્ત આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ

यानि, तत्र लक्षण–प्ररूपणा–शस्त्रो–पभोगद्वाराणि प्रदर्शयामोऽस्मिन्नुद्देशे, शेषाणि तु पृथिवीकायवदवगन्तव्यानि ।

लक्षणद्वारम्—

ननु कथमिदं विज्ञायते–वनस्पतिकायः सचित्तोऽस्तीति ? उच्यते–युक्त्यागमाभ्यां वनस्पतिकायस्य सचित्तत्वं निर्णीयते । तथाहि–

वृक्षलतादयो जीवशरीराणि दृश्यत्वात्, करचरणादिसमुदायवत् । तथा वृक्षादयः कदाचित् सचित्ता अपि, जीवशरीत्वात्, करचरणादिसमुदायवदेव ।

द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उनमें से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र और उपभोग द्वार यहाँ बतलाते हैं । शेष द्वार पहले कहे पृथ्वीकाय के समान समझ लेने चाहिए ।

लक्षणद्वार–

शङ्का—वनस्पतिकाय सचित्त है, यह कैसे जाना जा सकता है ?

समाधान—युक्ति और आगम से वनस्पतिकाय की सचित्तता का निर्णय होता है । वह इस प्रकार–वृक्ष और लता आदि जीव के शरीर हैं, क्यों कि वे दृश्य हैं । जो दृश्य होते हैं वे सब जीव के शरीर होते हैं, जैसे हाथ–पैर आदि । तथा–वृक्ष आदि कभी–कभी सचित्त भी होते हैं, क्यों कि वे जीव के शरीर हैं, जो जीव के शरीर होते हैं वे सचित्त होते हैं, जैसे हाथ–पैर आदि का समूह । तथा–वृक्ष अव्यक्त

કરવું જોઈએ, તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ઉપભોગ દ્વાર અહિં બતાવે છે. શેષ–બાકીના દ્વાર પ્રથમ પૃથ્વીકાયમાં જે કહ્યાં છે તેના પ્રમાણે સમજી લેવાં જોઈએ.

લક્ષણદ્વાર—

શંકા—વનસ્પતિકાય સચિત્ત છે, એ કેવી રીતે જાણી શકાય છે?

સમાધાન—યુક્તિ અને આગમથી વનસ્પતિકાયની સચિત્તતાનો નિર્ણય થઈ શકે છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ–વૃક્ષ અને લતા આદિ જીવના શરીર છે, કેમકે તે દૃશ્ય છે. જે દૃશ્ય હોય છે તે સર્વ જીવના શરીર હોય છે. જેવી રીતે હાથ–પગ આદિ. તથા વૃક્ષ આદિ કોઈ કોઈ વખત સચિત્ત પણ હોય છે, કારણકે તે જીવના શરીર છે. જે જીવનાં શરીર હોય છે તે સચિત્ત હોય છે. જેમ હાથ–પગ આદિનો સમૂહ. તથા વૃક્ષ અવ્યક્ત ઉપયોગ

तथा-वृक्षाः अव्यक्तोपयोगसुखादिमन्तः, अव्यक्तचेतनावत्त्वात्, सुप्तमूर्च्छित-पुरुषवत्। अत्र वनस्पतीनां दृश्यत्वहेतुना जीवशरीरत्वं सिद्धयति, ततश्च सचित्तत्वम्। अपरश्च-वृक्षाः सचेतनाः, सर्वत्वगपहरणे मरणात्, अजवत्। वनस्पतिकायस्य सचेतनत्वमग्रेऽपि साधयिष्यते-'से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं' इत्यत्र।

यद्वा--अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवी-

उपयोग (चेतना) और सुख आदि से युक्त हैं, क्यों कि उन में अव्यक्त चेतना हैं, जो अव्यक्त चेतनावाला होता है वह अव्यक्त चेतनावाला और सुख आदि वाला होता है, जैसे सुप्त या मूर्च्छित पुरुष।

इस प्रकार 'दृश्यत्व' हेतु से सिद्ध होता है कि-वनस्पति, जीव का शरीर है और जीव का शरीर होने के कारण सचित्त भी है। इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण है। जैसे वृक्ष चेतनावान् है क्यों कि उनकी सारी त्वचा (छाल) हटाने पर उनकी मृत्यु हो जाती है, सारी त्वचा हटाने पर जिस की मृत्यु हो जाती है वह सचेतन ही होता है, जैसे बकरा। वनस्पतिकाय को सचेतनता आगे भी-**'से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं'** इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्ध की जायगी।

अथवा--अव्यक्त उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वी-

---

(ચેતના) અને સુખ આદિથી યુક્ત છે, કેમકે તેમાં અવ્યકત ચેતના છે. જે અવ્યકત ચેતનાવાળા હોય છે તે અવ્યકત ચેતનાવાળા અને સુખ આદિવાળા હોય છે. જેમ સુતેલા અથવા મૂર્ચ્છિત પુરૂષ. આ પ્રકારે 'દૃશ્યત્વ' હેતુથી સિદ્ધ થાય છે કે-વનસ્પતિ જીવનું શરીર છે અને જીવનું શરીર હોવાના કારણે સચિત્ત પણ છે. એની સાથે બીજું પણ પ્રમાણ છે. જેમકેઃ-વૃક્ષ ચેતનાવાન્ છે કેમકે તેની તમામ ચામડી-છાલ કાઢી નાંખવાથી તેનું મૃત્યુ થઈ જાય છે; તમામ છાલ કાઢી નાંખવાથી જેનું મૃત્યુ થઈ જાય છે તે ચેતન જ હોય છે. જેવી રીતે બકરા. વનસ્પતિકાયની ચેતનતા આગળ પણ-'से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं' આ સૂત્રની વ્યાખ્યા કરતી વખતે સિદ્ધ કરવામાં આવશે.

અથવા—અવ્યકત ઉપયોગથી લઇને કષાય સુધી જીવના જે લક્ષણ પૃથ્વીકાયનાં

कायोद्देशे प्रागभिहितानि, तेषां जीवलक्षणानां वनस्पतिकायेऽपि सद्भावाद् वनस्पतिः सचित्तोऽस्ति, मनुष्यवदिति निर्णीयते।

अपिच—वनस्पतिः सचेतनः, बालाद्यवस्थासंदर्शनात्, अनुकूल-प्रतिकूलाहारादिना पुष्टिकार्श्यादिदर्शनात्, छेदनभेदनादिना म्लानतादिदर्शनाच्च मनुष्य-शरीरवत्।

यथा मनुष्यशरीरमनुकूलेनाहारादिना पुष्यति, तत्प्रतिकूलेन तदभावेन च शुष्यति, एवं वनस्पतिरप्यनुकूलजलवातादिभिः पुष्यति; प्रतिकूलजलवातादिभिश्च शुष्यति। यथा वा छेदनादिना मनुष्यशरीरं हस्तादि म्लायति, तथा

काय के उद्देश में पहले कहे गये हैं वे सब वनस्पतिकाय में भी पाये जाते हैं। इस कारण वनस्पति मनुष्य आदि के समान सचित्त है।

तथा—वनस्पति सचेतन है, क्यों कि उस में बाल्यावस्था आदि देखी जाती हैं, अनुकूल आहार से पुष्टि और प्रतिकूल आहार से कृशता आदि दिखाई देती है, और छेदन–भेदन आदि करने से मुरझाना वगैरह देखा जाता है, जैसे मनुष्य का शरीर।

तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य का शरीर अनुकूल आहार आदि से पुष्ट होता है और प्रतिकूल आहार से या आहार के अभाव से सूख जाता है, उसी प्रकार वनस्पति भी अनुकूल जल—वायु आदि से पुष्ट होती है और प्रतिकूल जल—वायु आदि से सूख जाती है। अथवा जैसे छेदन—भेदन करने से मनुष्य का शरीर हाथ आदि मुरझा

ઉદ્દેશમાં પહેલા કહ્યાં છે, તે સર્વ વનસ્પતિકાયમાં પણ જોવામાં આવે છે. આ કારણથી વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિના સમાન સચિત્ત છે.

તથા—વનસ્પતિ સચેતન છે, કેમકે તેમાં બાલ્યાવસ્થા આદિ અવસ્થાઓ જોવામાં આવે છે. અનુકૂલ આહારથી પુષ્ટિ અને પ્રતિકૂલ આહારથી કૃશતા–દુર્બલતા આદિ દેખાય છે, અને છેદન, ભેદન આદિ કરવાથી મુરઝાઈ જવું–કરમાઈ જવું સુસ્ત કે ખિન્ન થવાપણું વગેરે જોવામાં આવે છે. જેવી રીતે મનુષ્યનું શરીર.

તાત્પર્ય એ છે કેઃ–જેમ મનુષ્યનું શરીર અનુકૂલ આહાર આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ આહારથી અથવા તો આહારના અભાવથી સુકાઈ જાય છે તેવી રીતે વનસ્પતિ પણ અનુકૂલ જલ, વાયુ આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ જલ વાયુ આદિથી સુકાઈ જાય છે. અથવા જેવી રીતે છેદન–ભેદન કરવાથી મનુષ્યશરીરના હાથ–પગ આદિ કરમાઈ જાય છે. તે પ્રમાણે પાંદડા, ફલ, ફૂલ, આદિ વનસ્પતિ પણ છેદન–ભેદન

पल्लवफलकुसुमादिरूपो वनस्पतिरपि छेदनादिना म्लायति, तस्माद् वनस्पतिः सचेतन इति सिद्धम् ।

यद्वा—वनस्पतिर्जीवः, चेतनावत्त्वात्, मनुष्यवत्, यथा मनुष्यस्य शब्दादिग्रहणशक्तिरूपा चेतना, तथैव वनस्पतौ समुपलभ्यते । तथाहि-बकुलादयो गीत-सुरागण्डूष-कामिनीचरणताडनादिभिः फलन्ति, शमीलज्जालुप्रभृतिषु च स्वापावबोधसंकोचादयो दृश्यन्ते । शापानुग्रहाभ्यामान्तरौ संकोचविकाशौ समस्त-वनस्पतीनां भवतः । उक्तञ्च—

जाता है उसी प्रकार पत्ता, फल, फूल, आदि वनस्पति भी छेदन-भेदन आदि से मुरझा जाती है, इससे सिद्ध होता है कि वनस्पति सचेतन है ।

अथवा—वनस्पति जीव है; क्यों कि चेतनावाली है, जैसे मनुष्य । जैसे—मनुष्य आदि में शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना है उसी प्रकार वनस्पति में भी शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना पाई जाती है । बकुल आदि के वृक्ष गीत, मदिरा का कुल्ला, कामिनी के पैर के ताडन आदि से फलते हैं । शमी तथा लज्जावती आदि में स्वाप, (सोना) अवबोध (जागना) और संकोच (सिकुडना) देखा जाता है । शाप और अनुग्रह से सब वनस्पति में संकोच और विकास होता है । कहा भी है :—

આદિથી કરમાઈ જાય છે સુકાઈ જાય છે, આ કારણથી સિદ્ધ થાય છે કે વનસ્પતિ સચેતન છે.

અથવા—વનસ્પતિ જીવ છે, કેમકે-ચેતનાવાળી છે, જેમ મનુષ્ય. જેવી રીતે મનુષ્ય આદિમાં શબ્દ આદિને ગ્રહણ કરવાની શક્તિરૂપ ચેતના છે. તે પ્રમાણે વનસ્પતિમાં પણ શબ્દ આદિને ગ્રહણ કરવાની શક્તિરૂપ ચેતના જોવામાં આવે છે. બકુલ આદિ વૃક્ષ ગીત, મદિરાના ગંડૂષ (કોગલા), સ્ત્રીના પગથી થયેલું તાડન આદિથી ફળે છે. શમી તથા લજ્જાવંતી (રીસામણી) આદિમાં સુઈ જવું જાગવું અને સંકોચાઈ જવું વગેરે જોવામાં આવે છે. શાપ અને અનુગ્રહથી સર્વ વનસ્પતિમાં સંકોચ અને વિકાસ થાય છે. કહ્યું છે કેઃ-

"स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः शीधुगण्डूषसेकात्,
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्मवाक्याच्चट्टमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताद्,
वल्ली गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः" ॥ १ ॥ इति ॥

आगमोऽपि—

"वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं" इति । (दशवै०)

प्रदर्शितं चाधुनिकवैज्ञानिकैः प्रत्यक्षतया स्वकृतप्रयोगविशेषेण वनस्पतीनां सचित्तत्वम्, यथा–क्रोधादिमुत्पादयतां तेषां गालीप्रदानादिभर्त्सनवाक्यतो

"प्रियंगु का पेड स्त्रियों के स्पर्श से विकसित होता है, बकुल मदिरा के कुल्ले से खिल उठता है । अशोक वृक्ष स्त्री के पैर का आघात लगने से खिल जाता है । तिलक वृक्ष स्त्रियों के देखने से, तथा कुरवक उनके आलिंगन से खिल उठता है । मन्दार वृक्ष विनोदमय वाक्य सुनकर, चम्पक मृदुहँसी से, वल्ली वक्त्र (मुख) वायु से और नमेरु गीत से विकसित होता है । कनेर का पेंड सामने नाचने से खिल जाता है" ॥१॥

वनस्पति की सचेतनता आगम प्रमाण से भी सिद्ध होती है । दश वैकालिक सूत्र में कहा है–**शस्त्रपरिणत को छोडकर शेष सब वनस्पति सचित्त कही गई है, वह अनेक जीववाली है और उन जीवों की सत्ता पृथक् पृथक् है"** ।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि-वनस्पति सचित्त है । क्रोध आदि करने से–गाली देने या भर्त्सना करने से वृक्ष, लता आदि

"પ્રિયંગુનો છોડ સ્ત્રીઓના સ્પર્શથી વિકસિત થાય છે, બકુલ મદિરાના કોગળા કરવાથી ખિલી ઉઠે છે. અશોક વૃક્ષ સ્ત્રીના પગનો આઘાત લાગવાથી ખિલી ઉઠે છે. તિલક વૃક્ષ સ્ત્રીઓને જોવાથી તથા કુરવક સ્ત્રીઓના આલિંગનથી ખિલી ઉઠે છે. મન્દાર વૃક્ષ વિનોદમય વાક્ય સાંભળીને, ચમ્પક મૃદુ હાંસીથી, વલ્લી વક્ત્ર (મુખ) વાયુથી અને નમેરુ ગીતથી વિકસિત થાય છે. કનેરનો છોડ તેના સામે નાચવાથી ખિલે છે." ॥૧॥

વનસ્પતિની સચેતનતા આગમપ્રમાણોથી પણ સિદ્ધ થાય છે. દશવૈકાલિક સૂત્રમાં કહ્યું છે–"શસ્ત્રથી પરિણત–(છેદાએલી)ને છોડીને બાકીની સર્વ વનસ્પતિ સચિત્ત કહેલી છે, તે અનેક જીવવાળી છે, અને તે જીવોની સત્તા પૃથક્–પૃથક્ છે."

આધુનિક વૈજ્ઞાનિકોએ પોતાના પ્રયોગો દ્વારા પ્રત્યક્ષ–બતાવી આપ્યું છે કે વનસ્પતિ સચિત્ત છે. ક્રોધ આદિ કરવાથી, ગાળ દેવાથી અથવા તિરસ્કાર કરવાથી વૃક્ષ, લતા આદિ

वृक्षलतादयः संकोचमापद्यन्ते, स्तुतिवाक्यैश्च प्रवर्धन्ते, विकसन्ति चेति वनस्पतीनां सचेतनत्वे नास्ति केषाश्चिद् विवादः ।

ये तु सूक्ष्मा वनस्पतिकायास्ते चक्षुषा नैव दृश्यन्ते, अतस्तेषां सचित्तत्वं भगवद्वचनमात्रावगम्यमिति तत्रापि श्रद्धा करणीयैव ।

प्ररूपणाद्वारम्-

वनस्पतिजीवा द्विविधाः-सूक्ष्मबादरभेदात् । सूक्ष्माः सर्वलोके कज्जलकूपिकावत् संभृताः । बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । सूक्ष्माः पर्याप्तापर्याप्तभेदाद्द्विविधाः ।

बादरा द्विविधाः-प्रत्येकशरीर-साधारणशरीरभेदात् । एकमेकं जीवं

संकोच को प्राप्त होते हैं और प्रशंसा करने से बढते, हैं और फूलते हैं अतः वनस्पति की सचित्तता में अब किसी को भी विवाद नहीं है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव आँख से नहीं दिखाई देते । भगवान् के वचनों से ही जाने जा सकते हैं । उन पर श्रद्धा रखनी चाहिए ।

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिकाय के जीव दो प्रकार के हैं-सूक्ष्म और बादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में काजल की कुप्पी की तरह भरे हुए हैं । बादर जीव लोक के एक-एक भाग में होते हैं । सूक्ष्म जीवों के भी दो भेद हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त ।

बादर जीव प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर के भेद से दो प्रकार के हैं ।

સંકોચને પ્રાપ્ત થાય છે અને પ્રશંસા કરવાથી ફૂલે છે અને ખિલે છે એ કારણથી વનસ્પતિની સચિત્તતામાં હવે કોઈને પણ વિવાદ નથી.

સૂક્ષ્મ વનસ્પતિકાયના જીવ નેત્રથી જોઈ શકાતા નથી. તે ભગવાનના વચનોથી જ જાણી શકાય છે. તેના પર શ્રદ્ધા રાખવી જોઈએ.

પ્રરૂપણાદ્વાર—

વનસ્પતિકાયના જીવ બે પ્રકારના છે. (૧) સૂક્ષ્મ અને બાદર. સૂક્ષ્મ જીવ સમસ્ત લોકાકાશમાં કાજલની કુપ્પીની પ્રમાણે ભરેલા છે. બાદર જીવ લોકના એક-એક ભાગમાં હોય છે.

સૂક્ષ્મ જીવોના પણ બે ભેદ છે. (૧) પર્યાપ્ત અને (૨) અપર્યાપ્ત. બાદર જીવ પ્રત્યેકશરીર અને સાધારણશરીરના ભેદથી બે પ્રકારના છે. એક-એક જીવ સમ્બન્ધી

प्रति गतं प्रत्येकम्, प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । प्रत्येकनामकर्मोदयवशादेकैकस्य जीवस्य शरीरमौदारिकं वैक्रियं वा पृथक् पृथग् भवति । एवम्भूता जीवाः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । नारकदेवमनुष्याः, द्वीन्द्रियादयः, पृथिव्यादयः, वृक्षगुच्छादिवनस्पतयश्च प्रत्येकशरीरिणः सन्ति । इमे प्रत्येकाः प्रत्येकजीवा अपि कथ्यन्ते ।

प्रत्येकशरीरा द्वादशविधाः–वृक्ष–गुच्छ–गुल्म–लता –वल्ली–पर्वग–तृण–वलय–रितौ–षधि–जलरुह–कुहणभेदात् ।

तत्र वृक्षा द्विविधाः–एकास्थिकाः (एकबीजकाः) बहुबीजकाश्च । तत्रैकास्थिका अनेकविधाः–निम्बाम्रजम्बूकौशम्बादयः । बहुबीजका अप्यनेकविधाः–

एक–एक जीवसंबंधी शरीर प्रत्येकशरीर कहलाता है । प्रत्येकनामकर्म के उदय से एक–एक जीव के शरीर औदारिक और वैक्रिय अलग–अलग होता है । ऐसे अलग–अलग शरीर वाले जीव प्रत्येकशरीर कहलाते हैं–नारक, देव, मनुष्य द्वीन्द्रिय आदि, पृथ्वीकाय आदि तथा वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिजीव प्रत्येक शरीरी हैं । इन्हें प्रत्येक और प्रत्येकजीव भी कहते हैं ।

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बारह प्रकार के हैं–वृक्ष, गुच्छ गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग, तृण, वलय, हरित, औषध, जलरुह और कुहण ।

इनमें वृक्ष दो प्रकार के हैं–एकास्थिक अर्थात् एक बीज वाले और बहु-बीजक अर्थात् बहुत बीजों वाले । एक बीज वाले नीम, आम, जामन और कौशाम्ब आदि अनेक प्रकार के हैं । बहुबीजक भी अनेक प्रकार के हैं । जैसे अस्थिक, तिन्दुक,

---

શરીર પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે. પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી એક–એક જીવના શરીર ઔદારિક અને વૈક્રિય અલગ–અલગ હોય છે. એવા અલગ–અલગ શરીરવાળા જીવ પ્રત્યેકશરીર કહેવાય છે. નારક, દેવ, મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય આદિ. પૃથ્વીકાય આદિ તથા વૃક્ષ, ગુચ્છ આદિ વનસ્પતિજીવ પ્રત્યેકશરીર છે. તેને પ્રત્યેક અને પ્રત્યેકજીવ પણ કહે છે.

પ્રત્યેકશરીરી વનસ્પતિકાય બાર પ્રકારના છે–વૃક્ષ, ગુચ્છ, ગુલ્મ, લતા, વલ્લી, પર્વગ, તૃણ, વલય, હરિત, ઔષધ, જલરુહ અને કુહણ.

એમાં વૃક્ષ બે પ્રકારના છેઃ–એકાસ્થિક અર્થાત્ એક બીજવાળા, અને બહુસ્થિક અર્થાત્ ઘણાંજ બીજવાળાં. એક બીજવાળા–લીંબડો, આંબો, જાંબુ અને કૌશમ્બ, આદિ અનેક પ્રકારનાં છે. બહુબીજક એટલે ઘણા બીજવાળા પણ અનેક પ્રકારના છે. જેમકેઃ–

अस्थिक-तिन्दुक-कपित्था-म्बाडक-मातुलिङ्ग-बिल्वा-मलक-पनस-दाडिमादयः।

एकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाश्रित्य मूलकन्दस्कन्ध-त्वक्शाखाप्रवालेषु प्रत्येकमसंख्येया जीवाः सन्ति। एको मूलजीवस्तु मूलादिफल-पर्यन्तं सर्वावयवं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति।

नन्वेकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलकन्दस्कन्धत्वक्शाखादयः प्रत्येकमसंख्येयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कथमुपपद्यते, मूलादिफलपर्यन्ता वृक्षाः सर्वेऽप्येकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-देवदत्तस्य शरीरमखण्डमेकरूपमुपलभ्यते तद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवा इति ? उच्यते—

(तेंदू) कपित्थ (कविठ), अम्बाडक, मातुलिंग, बिल्व, आमला, पनस और दाडिम आदि।

एकास्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक जीव के सहारे मूल, कंद, स्कंध, छाल, शाखा,और प्रवाल में अलग-अलग असंख्यात जीव हैं। एक मूल जीव, मूल से लेकर फल तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है।

शंका—एक बीजवाले और बहुत बीज वाले वृक्षों के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा आदि प्रत्येक असंख्यात जीव वाले हैं, यह कथन सही कैसे हो सकता है ? मूल से लेकर फलपर्यन्त वृक्ष सभी एक शरीराकार ही उपलब्ध होते हैं, जैसे कि देवदत्त का शरीर अखंड एकरूप ही देखा जाता है। अतः वृक्ष एक-एक शरीररूप ही हैं। उन में असंख्यात प्रत्येक किस प्रकार हो सकते हैं ?

અસ્થિક, તિન્દુક, કપિત્થ, અંબાડક, માતુલિંગ (બિજોરૂં), બિલ્વ, (બીલી), આમલાં, પનસ અને દાડમ આદિ.

એકાસ્થિક અને બહુબીજક વૃક્ષોમાં મૂળના એક જીવના આધારે મૂલ, કંદ, સ્કંધ છાલ, શાખા અને પ્રવાલમાં અલગ-અલગ અસંખ્યાત જીવ છે. એક મૂલ જીવ, મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષના સર્વ અવયવોમાં વ્યાપ્ત થઈને રહે છે.

શંકા—એકબીજવાળા અને બહુબીજવાળા વૃક્ષોના મૂળ, કંદ, સ્કન્ધ, ત્વચા-છાલ, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવવાળા છે. આ કથન સાચું છે એમ કેવી રીતે કહી શકાય? અથવા એ કથન સાચું કેવી રીતે હોઈ શકે?

મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષ સર્વ એક શરીરાકારજ ઉપલબ્ધ થાય છે. જેમકે દેવદત્તનું શરીર અખંડ એકરૂપજ જોવામાં આવે છે. એ માટે વૃક્ષ એક એક શરીર-રૂપજ છે. તેમાં અસંખ્યાત પ્રત્યેકશરીર કેવી રીતે હોઈ શકે છે?

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रबलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकायां प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसबीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा—गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकायां तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

---

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असंख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अतः वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असंख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपडी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि-प्रत्येकशरीरी

સમાધાન—મૂલ અને સ્કંધ આદિમાં તે અસંખ્યાત જીવોના પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી અલગ-અલગ એક-એક શરીર છે, તો પણ તીવ્ર રાગ-દ્વેષના કારણે ઉપાર્જિત-પ્રાપ્ત કરેલા પ્રત્યેકનામકર્મના પ્રભાવથીજ તે સર્વ આપસમાં-પરસ્પરમાં મળેલા રહે છે, જેમ કોઈ ચિપકની (ચીકણી-ચોટી જાય તેવી) ચીજમાં મેળવીને બનાવેલી ખસખસની ગોળીના પ્રત્યેક ભાગમાં ખસખસનાં બીજ પોતાનું અલગ અલગ અસ્તિત્વ બનાવી રાખે છે. અથવા જેમ ગોળ મેળવેલી તલની તલપાપડી-તલસાંકળીમાં તલના દાણા પોત-પોતાના સ્વરૂપમાં વિદ્યમાન રહે છે, તે પ્રમાણે પ્રત્યેકશરીરી અસંખ્યાત જીવ મૂલ, કંદ આદિમાં રહે છે. સાધારણ વનસ્પતિથી તેનામાં એ ભેદ છે કે:-પ્રત્યેકશરીરી

वनस्पतिभ्यस्त्वेतावान् विशेषः- प्रत्येकशरीराः परस्परं संमिश्रिता अपि भिन्ना एव तिष्ठन्ति, साधारणशरीरास्त्वन्योन्यानुविद्धा इति ।

पत्रेषु प्रत्येकं मूलजीवाद्भिन्न एकैको जीवः । उक्तं हि प्रज्ञापनायामेकास्थिकबहुबीजवृक्षप्ररूपणावसरे-" पत्ता पत्तेयजीविया " इति ।

तथा-तालसरलनालिकेरवृक्षाणां स्कन्धश्चैकजीवः । तदुक्तम्-

" णाणाविहसंठाणा, रुक्खाणं एगजीविया पत्ता ।
खंधोवि एगजीवो, ताल-सरल-नालिएरीणं " ॥

छाया-नानाविध संस्थानानि, वृक्षणाम् एकजीविकानि पत्राणि ।
स्कन्धोऽपि एकजीवः, तालसरल नारिकेलानाम् ॥ (प्रज्ञा०)

जीव आपस में मिले हुए भी भिन्न-भिन्न रहते हैं किन्तु साधारणशरीरवाले जीव आपस में अनुविद्ध--एक रूप होकर रहते हैं । तात्पर्य यह है कि-प्रत्येकशरीरी जीवों का शरीर अलग-अलग होता है किन्तु इन साधारणशरीरी जीवों का शरीर एक ही होता है ।

पत्तों में मूल जीव से भिन्न एक-एक जीव अलग-अलग होते हैं । प्रज्ञापना सूत्र में एकबीज और बहुबीज वृक्षों की प्ररूपणा करते हुए कहा है- 'पत्ता पत्तेयजीविया' अर्थात् पत्ते प्रत्येक जीव वाले हैं ।

तथा ताल, साल, नालिकेर आदि वृक्षों का स्कन्ध एक जीव है । कहा है-

" नाना प्रकार के आकार वाले वृक्षों के पत्ते प्रत्येकजीव हैं और ताल, सरल तथा नारियल के स्कन्ध एकजीव हैं " ।

જીવ પરસ્પર મળેલા છતાં પણ ભિન્ન-ભિન્ન રહે છે; પરન્તુ સાધારણ શરીરવાળા જીવ પરસ્પરમાં અનુવિદ્ધ-એકરૂપ થઇને રહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે-પ્રત્યેકશરીરી જીવોનાં શરીર અલગ-અલગ હોય છે. કિન્તુ આ સાધારણશરીરી જીવોનું શરીર એકજ હોય છે.

પત્તાં-પાંદડાંમાં, મૂલ જીવથી ભિન્ન એક-એક જીવ અલગ-અલગ હોય છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં એકબીજ અને બહુબીજ વૃક્ષોની પ્રરૂપણા કરતા થકા કહ્યું છે કે:- 'पत्ता पत्तेयजीविया' અર્થાત્ પત્તાં પ્રત્યેક જીવવાળા છે.

તથા તાલ, સરલ, નાળિએર આદિ વૃક્ષોનાં સ્કંધ એક જીવ છે. કહ્યું છે કે:-

" નાના પ્રકારના આકારવાળા વૃક્ષોનાં પત્તાં-પાંદડાં પ્રત્યેકજીવ છે. અને તાલ, સરલ તથા નારિએલના સ્કંધ એકજીવ છે."

पुष्पेषु अनेकजीवाः-संख्याता असंख्याता अनन्ता वा सन्ति। उक्तञ्च-
"पुप्फा अणेगजीवा" इति।

"पुप्फा जलया थलया, विंटबद्धा य नालिबद्धा य।
संखिज्जमसंखिज्जा, बोधव्वाऽणंतजीवा य"॥

छाया-पुष्पाणि जलजानि स्थलजानि, वृन्तबद्धानि च नालिबद्धानि च।
सख्येयानि (संख्येय जीवानि) असंख्येयानि (असंख्येय जीवानि)
बोद्धव्यानि अनन्त जीवानि च॥ (प्रज्ञा०)

यत्तु "पुष्पाणि चैकजीवानि मन्तव्यानी"-ति शीलाङ्काचार्यैरभिहितं तत् प्रामादिकम्, प्रज्ञापनासूत्रविरोधात्।

फलेषु मूलजीवमाश्रित्य प्रत्येकं द्वौ द्वौ जीवौ स्तः। दोण्णि य जीवा फले भणिया" इति प्रज्ञापनावचनात्। वृक्षाः प्ररूपिताः, अथगुच्छादयः प्रोच्यन्ते-

---

फूलो में अनेक-संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त जीव होते हैं। कहा भी है-"पुप्फा अणेगजीवा" फूल अनेक जीव वाले होते हैं।

"जल में उत्पन्न होने वाले, स्थल में उत्पन्न होने वाले, वृन्तबद्ध या नालिबद्ध फूल संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए"। (प्रज्ञापनासूत्र)

"फूल एक जीव वाले होते हैं" यह शीलाङ्काचार्य का कथन भूलभरा है, क्यों कि यह प्रज्ञापनासूत्र से विरुद्ध है।

फलों में मूल जीव की अपेक्षा प्रत्येक दो-दो जीव हैं। प्रज्ञापना सूत्र में कहा है-
"फल में दो जीव कहे गये हैं।"

यहाँ तक वृक्षों का निरूपण किया। अब गुच्छ आदि के विषय में कहते हैं—

ફૂલોમાં અનેક સંખ્યાત અસંખ્યાત અથવા અનન્ત-જીવ હોય છે. કહ્યું પણ છે-'पुप्फा अणेगजीवा' "ફૂલ અનેક જીવવાળા હોય છે."

"જલમાં ઉત્પન્ન થવાવાળાં, સ્થળમાં ઉત્પન્ન થવાવાળાં વૃન્તબદ્ધ અથવા નાલિબદ્ધ ફૂલ સંખ્યાત અસંખ્યાત અથવા અનન્ત જીવવાળાં છે, એમ સમજવું જોઈએ." (પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર).

"ફૂલ એક જીવવાળાં હોય છે." આ શીલાંકાચાર્યનું કથન ભૂલભર્યું છે, કેમકે તે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રથી વિરુદ્ધ છે.

ફલોમાં મૂલ જીવની અપેક્ષા પ્રત્યેક બે-બે જીવ છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં કહ્યું છે-
"ફલમાં બે જીવ કહેલા છે."

અહિં સુધી વૃક્ષોનું નિરૂપણ કર્યું, હવે ગુચ્છ આદિના વિષયમાં કહે છે:-

गुच्छा अनेकविधाः-आढकी-वृन्ताकी-तुलसी-पिप्पलीप्रभृतयः । गुल्माः-ह्रस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, तेऽनेकविधाः-सेरिका-नवमालिका-कोरण्टक-बन्धुजीवकादयः । लता अनेकविधाः-पद्मलता-नागलताऽशोकलताचम्पकलतादयः । यस्य वनस्पतेस्तिर्यक् तथाविधाः शाखाः प्रशाखा वा न प्रसृताः सा लतोच्यते ।

वल्ल्योऽनेकविधाः-पुष्पफली-कूष्माण्डी-कालिङ्गी-तुम्बी- त्रपुषी-कोशातकी-पटोलादयः । पर्वगा अनेकविधाः-इक्षु-वंश-नलवंश-वेतसप्रभृतयः । तृणानि-अनेकविधानि-कुशदूर्वादीनि । वलयानि-ताल-तमाल-केतकी-कदली-कन्दल्या-

---

गुच्छ अनेक प्रकार के हैं। जैसे-अरहर वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली आदि। जिनका तना छोटा हो, कांड बहुत हो और जो पत्तों, फूलों और फलों से युक्त हों उन्हें गुल्म कहते हैं। वे भी कई प्रकार के हैं। यथा-सेरिका, नवमालिका, कोरण्टक, बन्धुजीवक वगैरह। लताएँ भी अनेक प्रकार की हैं; जैसे-पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता आदि। जिस वनस्पति की तिरछी अथवा खास तरह की शाखाएँ-प्रशाखाएँ नहीं फैलतीं वह लता कहलाती हैं।

वल्ली के भी अनेक भेद हैं। जैसे-पुष्पफली, कूष्माण्डी, कालिंगी, तुम्बी, त्रपुषी, (ककडी) कोशातकी तथा पटोलादि। पर्वग भी अनेक प्रकार के हैं। जैसे-इक्षु, (सेलरी) वंश, (बाँस) नलवंश, वेत आदि। कुश और दूब आदि तृण अनेक प्रकार के होते हैं। ताल, तमाल, केतकी, कदली, कन्दली आदि वलय

ગુચ્છ અનેક પ્રકારનાં છે. જેવાં કે-તુવેર, વૃન્તાકી, તુલસી, પિપ્પલી, આદિ. જેના થડ નાના હોય, કાંડ બહુજ હોય અને જે પત્તાં-ફૂલ અને ફળોથી યુક્ત હોય તેને ગુલ્મ કહે છે. તે પણ ઘણા પ્રકારના છે. જેમ-સેરિકા, નવમાલિકા, કોરંટક, બંધુજીવક વગેરે; લતાઓ પણ અનેક પ્રકારની છે. જેવી રીતે કે-પદ્મલતા, નાગલતા, અશોકલતા, ચમ્પકલતા આદિ. જે વનસ્પતિની તિરછી અથવા ખાસ તરહની શાખાઓ-પ્રશાખાઓ ફેલાતી નથી તે લતા કહેવાય છે.

વલ્લીના પણ અનેક ભેદ છે. જેવી રીતે પુષ્પફલી, કૂષ્માંડી, કાલિંગી, તુમ્બી, ત્રપુષી, કોશાતકી તથા પટોલાદિ. પર્વગ પણ અનેક પ્રકારના છે. જેમ-શેરડી, વાંસ, નલવંશ વેત આદિ. કુશ-દાભડો અને દૂબ-ધરો આદિ તૃણ અનેક પ્રકારનાં હોય છે. તાલ, તમાલ, કેતકી, કદલી-કેળ, કન્દલી આદિને વલય કહેવાય છે. તંદુલીયક, (તાંદલજા)

दीनि । हरितानि–तन्दुलीयक–वस्तुल–मार्जारपादिका–पालङ्क्यादीनि । ओषधयः–शालि-व्रीहि-गोधूम–यव–बर्जरी–मुद्ग–माषादयः । जलरुहाः–उत्पल–पद्म–कुमुद-नलिन–पुण्डरीक–शतपत्र–सहस्रपत्र–कोकनदा–रविन्द–पनक–पनकचट्ट–शैवालादयः । कुहणाः भूमिस्फोटकाऽऽपकाय–सर्पच्छत्रादयः ।

उक्ताः प्रत्येकशरीरा वनस्पतयः । अथ साधारणशरीराः प्ररूप्यन्ते—

साधारणनामकर्मोदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति । तस्मात् साधारणमेकं शरीरं येषां ते साधारणशरीराः ।

ननु कथमनन्तजीवानामेकं शरीरं संभवति, तथाहि–यः खलु प्रथमं

कहलाते हैं । तन्दुलीयक, वस्तुल, मार्जारपादिका, पालंकी आदि को हरित कहते हैं । शालि व्रीहि (धान) ओ गेहूँ, जौ, बाजरी, मूग, उडद आदि के पौधे ओषधि कहलाते हैं । उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक, पनकचट्ट, शैवाल आदि को जलरुह कहते हैं । भूमिस्फोटक, आपकाय और सर्पछत्र आदि कुहण कहलाते हैं ।

यहाँ तक प्रत्येकशरीर वनस्पति का विवेचन हुआ । साधारणशरीर का प्ररूपण इस प्रकार है—

साधारणनामकर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक साधारण होता है । जिनका शरीर साधारण अर्थात् एक हो, वे साधारणशरीर कहलाते हैं ।

शङ्का—अनन्त जीवों का शरीर एक कैसे हो सकता हो ? क्यों कि पहले-

---

વસ્તુલ (બથુવા) માર્જારપાદિકા, પાલંકી (સુવાપાલક) આદિને હરિત કહે છે. શાલી, વ્રીહિ (ધાન્ય) ગેહૂં-ઘઉં, જવ, બાજરો, મગ, અડદ આદિ ઓષધિ કહેવાય છે. ઉત્પલ, પદ્મ, કુમુદ, નલિન, પુંડરીક, શતપત્ર, સહસ્રપત્ર, કોકનદ, અરવિંદ, પનક, પનકચટ્ટ. શૈવાલ આદિને જલરુહ કહે છે. ભૂમિસ્ફોટક, આપકાય અને સર્પછત્ર આદિ–કુહણ કહેવાય છે.

અહિં સુધી પ્રત્યેક વનસ્પતિનું વિવેચન થયું, સાધારણ શરીરનું પ્રરૂપણ આ પ્રકારે છે–

સાધારણનામકર્મના ઉદયથી અનન્ત જીવોનું એક સાધારણશરીર હોય છે. જેનું શરીર સાધારણ અર્થાત્ એક હોય તે સાધારણશરીર કહેવાય છે.

શંકા—અનન્ત જીવોનાં શરીર એક કેવી રીતે હોઈ શકે છે ? કેમકે પહેલ વહેલો

जातस्तेन तच्छरीरमुत्पादितं, सर्वथा स्वायत्तीकृतं च, कथं तत्रान्येषां जीवानामवकाशः, न हि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्येऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सहैव परस्परानुप्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा-येनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वेतरैः सह परस्परानुप्रवेशेन स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात्, ततश्च तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तिव्यवस्था, प्राणापानादियोग्यपुद्गलोपादानं वा भवेत्, नतु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नायं प्रश्नो युक्तिपथमारोहति, शङ्काकर्तुर्जिनशासनपरिज्ञानाभावात् ।

पहले जो जीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना लिया । फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में, एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न कैसे हो सकते है ?

अथवा—जिस जीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने से भिन्न अन्य जीवोंके साथ मिलकर ग्रहण किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान होगा । ऐसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा । शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था हो सकती है ।

समाधान—यह शंका उचित नहीं कही जा सकती, क्यों कि शंकाकार को जिनशासन का परिज्ञान नहीं है ।

જે જીવ ઉત્પન્ન થયો તેણે તે શરીર ઉત્પન્ન કર્યું અને તેણે પૂરી રીતે પોતાનું કરી લીધું. પછી એ શરીરમાં બીજા જીવોને અવકાશ કેવી રીતે મળી શકે છે? દેવદત્તના શરીરમાં દેવદત્તની પ્રમાણે અન્ય જીવ પણ તમામ અવયવોમાં એક બીજાને મળીને ઉત્પન્ન કેવી રીતે થઈ શકે છે?

અથવા જે જીવે આ શરીર ઉત્પન્ન કરીને અવકાશ મળતાં પોતાનાથી ભિન્ન અન્ય જીવોની સાથે મળીને ગ્રહણ કર્યું છે તે જીવ એ શરીરમાં પ્રધાન થશે. એવી અવસ્થામાં-સ્થિતિમાં એની પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તની વ્યવસ્થા થશે. તેજ પ્રાણ-અપાન આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરશે. શેષ-બાકીના જીવોના વિષયમાં એ વ્યવસ્થા કેવી રીતે થઈ શકે છે?

સમાધાન—આ શંકા યોગ્ય નથી કેમકે-શંકા કરનારને જિન, શાસનનું પરિજ્ઞાન નથી.

साधारणनामकर्मप्रभावादनन्ता अपि जीवा एकस्मिन्नेव काले सहैवोत्पत्तिदेशे तिष्ठन्ति, सहैव पर्याप्तिं निर्वर्त्तयन्ति, सहैव प्राणापानयोग्यपुद्गलानुपाददते, सहैव च तेषामाहारादिपुद्गलग्रहणम्, तस्मान्न काचिदनुपपत्तिरिति। उक्तञ्च भगवता—

" समयं वक्कंताणं, समयं तेसिं शरीरनिव्वित्ती।
समयं आणग्गहणं, समयं उस्सानीसासा ॥ १६ ॥
एक्कस्स उ जं गहणं, बहूण साहारणाण तं चेव।
जं बहुयाणं गहणं, समासओ तंपि एगस्स ॥ १७ ॥

छाया—समकं व्युत्क्रान्तानां, समकं तेषां शरीरनिर्वृत्तिः।
समकमानग्रहणं, समकमुच्छ्वासनिःश्वासौ ॥ १६ ॥
एकस्य तु यद् ग्रहणं, बहूनां साधारणानां तदेव।
यद् बहुकानां ग्रहणं, समासतस्तदप्येकस्य ॥ १७ ॥

साधारणनामकर्म प्रभाव से अनन्त जीव एक ही काल में साथ ही उत्पत्ति देश में उत्पन्न होते हैं, साथ ही पर्याप्तियाँ पूर्ण करते हैं, साथ ही प्राणापान के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं और साथ ही आहार आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। अत एव इस कथन में तनिक भी अयुक्ति नहीं है। भगवान् ने कहा है—

"साथ ही वे जीव उत्पत्तिदेश में आते हैं, साथ ही उनका शरीर बनता है, साथ ही प्राण ग्रहण करते हैं, साथ ही उच्छ्वास–निःश्वास होते हैं (१६) एक जीव जो ग्रहण करता है वह बहुत जीवों के लिए समान होता है और बहुत जीव जो ग्रहण करते हैं वह एक जीव के लिए भी होता है (१७)

સાધારણ નામકર્મના પ્રભાવથી અનન્ત જીવ એકજ કાલમાં સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમાં ઉત્પન્ન થયા છે. સાથેજ પર્યાપ્તિઓ પૂર્ણ કરે છે. સાથેજ પ્રાણ–અપાનના યોગ્ય–પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, અને સાથેજ આહાર આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે. એ માટે આ કથનમાં જરાપણ અસ્વાભાવિકતા અથવા અયુકતતા નથી. ભગવાને કહ્યું છે કેઃ—

"તે જીવ એક સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમાં આવે છે, સાથેજ એનાં શરીરો બને છે, સાથેજ પ્રાણ ગ્રહણ કરે છે. સાથેજ શ્વાસોચ્છ્વાસ થાય છે. (૧૬) એક જીવ જે ગ્રહણ કરે છે તે બધાય જીવો માટે સમાનપણે થાય છે, અને તમામ જીવો જે ગ્રહણ કરે છે તે એક જીવને માટે પણ થાય છે. (૧૭)

साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं एयं" ॥ १८ ॥ (प्रज्ञा० ११५)

छाया-साधारणमाहारः, साधारणमानप्राणग्रहणं च।
साधारणजीवानां, साधारणलक्षणमेतत् ॥ १८ ॥

एवं च परस्परानुविद्धानन्तजीवसमूहरूपेण एकशरीरावस्थायिनो जीवाः साधारणशरीरा इति सिद्धम्। एते साधारणजीवशब्देन साधारणशब्देनापि च व्यपदिश्यन्ते।

तेऽनेकविधाः-सूरणकन्द - वज्रकन्द-शर्कराकन्द - रक्तालु-पिण्डालु - लशुन-पलाण्डु-गृञ्जन-शृङ्गबेरादयः। वनस्पतेर्मूलसंलग्नो भूम्यन्तर्गतो भागविशेषः कन्दः। एतेऽनन्तजीवपिण्डस्वरूपाः सन्ति।

साधारण जीवों का आहार साधारण होता है और साधारण प्राणापान का ग्रहण होता है, इस प्रकार उनका यह साधारण लक्षण कहा गया है" ॥१८॥ (प्रज्ञा० ११५)

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि एक दूसरे में मिले हुए अनन्तजीवसमूहरूप से एक ही शरीर में रहने वाले साधारण जीव हैं। इन जीवों के लिए 'साधारणजीव' तथा 'साधारण' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है।

साधारण जीव अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे—सूरणकन्द, वज्रकन्द, शक्कर-कन्द, रताळु, पिंडाळु, लहसुन, प्याज, गाजर, अदरख आदि। वनस्पति के मूलक साथ जुडा हुआ और जमीन के अन्दर रहने वाला हिस्सा कंद कहलाता है। ये कंद अनंत जीवों के पिंड हैं।

સાધારણ જીવોનો આહાર સાધારણ હોય છે અને સાધારણ પ્રાણાપાનનું ગ્રહણ હોય છે. એ પ્રમાણે તેનું આ સાધારણ લક્ષણ કહ્યું છે (૧૮)"

આ પ્રમાણે સિદ્ધ થયું કે એક બીજામાં મળેલા અનન્તજીવસમૂહરૂપથી એક જ શરીરમાં રહેવા વાળાં સાધારણ જીવ છે. એ જીવોને માટે 'સાધારણ જીવ' તથા 'સાધારણ' શબ્દનો પણ વ્યવહાર કરી શકાય છે.

સાધારણ જીવ અનેક પ્રકારના હોય છે. જેમ—સૂરણકંદ, રતાળું, પિંડાળુ, લસણ, ડુંગળી, ગાજર, આદુ આદિ. વનસ્પતિના મૂળની સાથે જોડાએલા અને જમીનની અંદર રહેવાવાળો ભાગ કંદ કહેવાય છે. આ કંદ અનન્ત જીવોના પિંડ છે.

बादरा वनस्पतयः संक्षेपतः षड्विधाः–अग्रबीज–मूलबीज–पर्वबीज–स्कन्ध-बीज–बीजरुह–संमूर्च्छिमभेदात्। अग्रे बीजं येषां ते–अग्रबीजाः कोरण्टकप्रभृतयः। मूलमेव बीजं येषां ते मूलबीजाः कदल्यादयः। पर्वणि=ग्रन्थौ सन्धिभागे पर्वैव वा बीजं येषां ते पर्वबीजाः इक्षु–वंश–वेत्रप्रभृतयः। स्कन्धः=स्थुडं, स एव बीजं येषां ते स्कन्धबीजाः=अरणि–शल्लकी–स्नुहीप्रभृतयः। बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-रुहाः=शालि–गोधूम–जव–मक्का–बर्जरीप्रभृतयः। संमूर्च्छन्ति=बीजं विनाऽपि दग्धभू-मावपि समुद्भवन्तीति संमूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः।

बादर वनस्पति संक्षेप में छह प्रकार की हैं–(१) अग्रबीज (२) मूलबीज (३) पर्वबीज (४) स्कन्धबीज (५) बीजरुह और (६) संमूर्च्छिम। जिन वनस्पतियोंका बीज आगे रहता है ऐसी कोरण्टक आदि वनस्पतियाँ अग्रबीज कहलाती हैं। पर्व (पोर–संधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्वबीज कहते हैं, जैसे–ईख, बाँस, बेंत आदि। स्कंध जिनका बीज हो ऐसी अरणि, शल्लकी, स्नुही (थुहर) वगैरह स्कन्धबीज कहलाती हैं। शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, बाजरी वगैरह बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं। बीज के विना भी, जली हुई जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति संमूर्च्छिम कहलाती है।

બાદર વનસ્પતિ સંક્ષેપમાં છ પ્રકારની છે– (૧) અગ્રબીજ, (૨) મૂળબીજ, (૩) પર્વબીજ, (૪) સ્કન્ધબીજ, (૫) બીજરુહ, (૬) સંમૂર્છિમ. જે વનસ્પતિઓનું બીજ આગળ રહે છે એવી કોરંટક આદિ વનસ્પતિઓ અગ્રબીજ કહેવાય છે. મૂળ એજ જેનું બીજ હોય એવી કદળી આદિ વનસ્પતિઓ મૂળબીજ છે.–(પોર–સંધિભાગ)માં જેનું બીજ હોય તેને પર્વબીજ કહે છે, જેમકેઃ–શેલડી, વાંસ, નેતર આદિ. સ્કંધ જેનું બીજ હોય તે અરણી શલ્ય, સ્નુહી (થોર) વગેરે સ્કંધબીજ કહેવાય છે. શાલી, ઘઉં, જવ, મકાઈ, બાજરી વગેરે બીજથી ઉગવા વાળી વનસ્પતિને બીજરુહ કહે છે. બીજ વિના પણ બળી ગએલી જમીન આદિમાં પણ પૃથ્વી અને જલના સંયોગમાત્રથી ઉત્પન્ન થવા વાળી વનસ્પતિ તે સંમૂર્છિમ કહેવાય છે.

आकारतः प्रत्येकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽनन्तजीवाः सन्ति। तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले भग्ने सति समश्चक्राकारो भङ्गो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति। तथा यस्मिन् स्कन्दे भग्ने सति समश्चक्राकारो भङ्गोदृश्यते तत्राप्य नन्ता जीवाः। एवं शेषेषु स्कन्ध-त्वक्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि विज्ञेयम्। ईदृशश्च भङ्गः प्रायेणापरिकावस्थायां भवति।

तथा-यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारभूतकाष्ठापेक्षया बहुलतरा स्थूला त्वग् भवति सा त्वगनन्तजीवस्वरूपा।

आकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिखाई देने वाली वनस्पतियाँ भी अनन्त जीव वाली होती हैं। उनका लक्षण यह है—

जिसका मूलभाग तोडने पर समान चक्राकार भंग होता है, उसमें नियम से अनंत जीव होते हैं। इसी प्रकार जिसका कन्द भाँगने पर समान चक्राकार भंग दिखाई दे उसमें भी अनंत जीव होते हैं। यही बात स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए। इस प्रकार के भंग प्रायः सब होते हैं जब वनस्पति कच्ची होती है।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीच के सारभाग की अपेक्षा छाल बहुत मोटी होती है वह छाल भी अनंत जीव वाली होती है।

આકારથી પ્રત્યેક વનસ્પતિના સમાન-સરખી-દેખાવાવાળી વનસ્પતિ પણ અનન્ત જીવવાળી હોય છે. તેનું લક્ષણ એ છે. કે:-જેનાં મૂળભાગને તોડવાથી સમાન ચક્રાકાર ભંગ થાય છે, તેમાં નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે. એ પ્રમાણે જેનો કન્દ ભાંગવાથી સમાન ચક્રાકાર ભંગ થયો દેખાઈ આવે તેમાં પણ અનન્ત જીવ હોય છે. એજ વાત સ્કંધ, ત્વચા, શાખા, પ્રવાલ, પત્ર-પાંદડાં, પુષ્પ, ફલ અને બીજોના વિષયમાં પણ સમજવી જોઈએ. આ પ્રકારનો ભંગ પ્રાયઃ ક્યારે થાય છે કે જ્યારે વનસ્પતિ કાચી હોય છે ત્યારે થાય છે.

એના સિવાય જે વનસ્પતિના વચ્ચમાં સારભાગની અપેક્ષા છાલ ઘણી જ મોટી હોય છે, તે છાલ પણ અનંતજીવવાળી હોય છે.

तथा–किसलयरूपे पत्राङ्कुरे उद्गम्यमाने नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति। उक्तञ्च प्रज्ञापनायां प्रथमपदे।

"सव्वोऽवि किसलओ खलु, उग्गममाणो अणंतओ भणिओ." इत्यादि।

छाया–सर्वोऽपि किसलयः खलु उद्गच्छन् अनन्त भणितः इत्यादि।

वनस्पतिर्भिद्यमानः पृथिवीसदृशेन भेदेन भिद्यते, सोऽप्यनन्तजीवस्वरूपः। अन्यच्च—

"गूढसिरागं पत्तं, सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं।
जंपि य पट्ठणसंधि, अणंतजीवं वियाणाहि॥ १॥" इति। (प्रज्ञा०)
छाया—गूढशिराकं पत्रं, सक्षीरं यच्च भवति निःक्षीरम्।
यदपि च प्रणष्टसन्धि, अनन्तजीव विजानीहि॥ १॥ इति।

तथा–कौंपल जब उत्पन्न होती है तो उसमें भी अनंत जीव होते हैं। प्रज्ञापना के पहले पदमें कहा है—

"उगते हुए सभी किसलय अनंतकाय कहे गये हैं।"

जिस वनस्पति की ग्रंथि या पोर, तोडनेपर रज से भरी हो, या जो वनस्पति, टूटने पर पृथ्वी के समान भेदों से टूटे, वह भी अनंतजीववाली होती है।

और भी कहा है:—

"जिस के तंतु साफ दिखाई न देते हों, तथा जिसकी संधि बिलकुल दिखाई न देती हो ऐसा पत्ता, अगर दूधवाला हो या उसमें दूध उत्पन्न न हो, उसे भी अनंतजीववाला समझना चाहिए"।

તથા—કુંપળ જ્યારે ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે તેમાં પણ અનંત જીવ હોય છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રના પ્રથમ પદમાં કહ્યું છે કેઃ-

"ઉગતાં હોય તે સર્વ કિશલય (પલ્લવ તાજાં કુમળા પાનનો સમૂહ) અનન્તકાય કહ્યાં છે."

જે વનસ્પતિની ગ્રંથિ–ગાંઠ અથવા પોર, તોડવાથી રજથી ભરેલી, હોય અથવા જે વનસ્પતિ, તૂટવાથી પૃથ્વીના સમાન ભેદોથી તૂટે તે પણ અનંત જીવવાળી હોય છે. બીજું પણ કહ્યું છે કેઃ-

"જેનાં તંતુઓ ચોખ્ખાં દેખાતાં ન હોય, તથા જેની સંધિ (સાંધો) બીલકુલ દેખાતી હોય નહિ, એવાં પાંદડા દૂધવાળાં હોય અથવા એમાં દૂધ ઉત્પન્ન હોય નહિ, તેને પણ અનંત–જીવ વાળા સમજવા જોઈએ."

गूढशिराकमिति=गूढाः=अलक्ष्यमाणाः शिरा=नाडीजालं तन्तुजालमिति वा यस्य तत् । प्रणष्टसंधीति-प्रणष्टः=सर्वथाऽनुपलक्ष्यमाणः, सन्धिः=पत्रद्वयसंयोगरूपो भागो यस्य तत् । एतादृशं पत्रं सक्षीरं=सदुग्धम्, निःक्षीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा तदनन्तजीवं विजानीहीत्यर्थः ।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः शैवालादयोऽनन्तजीवाः स्वबुद्ध्या गुरुगमेन वा परिभावनीयाः । विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिः प्रज्ञापनासूत्रं विलोकनीयम् ।

सूक्ष्मनिगोदास्तु भगवद्वचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसंघाते सत्यप्यतिसूक्ष्मत्वान्नास्माकं चक्षुःपथेऽवतरन्ति । "आणागिज्झा एए चक्खुप्फासं न ते इंति" इति वचनात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदजीवस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियों को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से अनंतजीववाली समझ लेनी चाहिए । जिन्हें विस्तारपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए ।

सूक्ष्म निगोद भगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं । एक शरीर में अनंत जीवों का पिण्ड होने पर भी वे जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते । कहा भी है-"ये जीव सर्वज्ञकी आज्ञा से ही ग्रहण किये (जाने) जाते हैं । आँखे उन्हें नहीं देख सकतीं" । प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोद का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

એ પ્રમાણે સેવાળ આદિ જૂદી-જૂદી વનસ્પતિઓને પણ પોતાની બુદ્ધિથી અથવા ગુરુગમથી અનંતજીવવાળી સમજી લેવી જોઇએ, જેને વિસ્તારપૂર્વક જાણવાની ઈચ્છા હોય તેઓએ પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર જોઈ લેવું જોઈએ.

સૂક્ષ્મનિગોદ ભગવાનના વચનથી જ સમજી શકાય છે (જાણી શકાય છે). એક શરીરમાં અનંત જીવોના પિંડ હોવા છતાં પણ તે જીવ એટલા સૂક્ષ્મ હોય છે કે આપણે આપણા નેત્રથી તેને જોઈ શકતા નથી. કહ્યું પણ છે કે:-"તે જીવ સર્વજ્ઞની આજ્ઞા (આગમ)થી જ ગ્રહણ કરવામાં આવે છે-જાણવામાં આવે છે, નેત્રથી તે જોઈ શકાતા નથી." પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં ઉદાહરણની સાથે નિગોદનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે-

" जइ अयगोलो धंतो, जाओ तत्ततवणिज्जसंकासो ।
सव्वो अगणिपरिणओ, निगोअजीवे तहा जाण " ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यथाऽयोगोलो ध्मातो, जातस्तप्ततपनीयसंकाशः ।
सर्वोऽग्निपरिणतो, निगोजीवान् तथा जानीहि ॥ १ ॥

यथा–अयोगोलोऽग्निना ध्मातः तप्तसुवर्णसदृशः सर्वांशतोऽग्निपरिणतोऽग्नि-रूप एव भवति हे शिष्य ! तथैव निगोदजीवान् जानीहि । निगोदजीवानां परिमाण-स्वरूपमेव विज्ञेयम्—

अयं लोकश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽस्ति । एको रज्जुरसख्यातयोजनात्मकः, योजनं संख्याताङ्गुलपरिमितम्, एकमङ्गुलमसंख्याताकाशप्रदेशात्मकं भवति । तस्याङ्गु-लस्यैकैकाकाशप्रदेशे निगोदानामसंख्याता गोलकाः, एकैकस्मिन् गोलके निगोदानाम-संख्यातानि शरीराणि, एकैकस्मिंश्च शरीरेऽनन्ता जीवा निवसन्ति । उक्तञ्च—

"जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहे का गोला तपे सोने के समान पूर्णतया अग्निरूप ही हो जाता है; हे शिष्य ! उसी प्रकार निगोद के जीव समझो " । निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार समझना चाहिए—

लोकाकाश चौदह राजू का है । एक राजू में असंख्यात योजन होते हैं और संख्यात अंगुल का एक योजन होता है । आकाश के असंख्यात प्रदेश–परिमित एक अंगुल होता है । इस अंगुल के एक–एक आकाश प्रदेश में निगोद जीवों के असंख्यात गोले होते हैं । एक–एक गोलक में असंख्यात शरीर होते हैं और एक–एक शरीर में अनन्त जीवों का निवास है । कहा भी है—

"જેમ અગ્નિમાં તપાવેલો લોઢાનો ગોળો તપેલા સોના–પ્રમાણે પૂર્ણપણે અગ્નિરૂપ જ થઈ જાય છે, હે શિષ્ય ! એ પ્રમાણે નિગોદના જીવ સમજો." નિગોદના જીવોનું પરિમાણ–એ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ—

લોકાકાશ ચૌદ રાજૂનો છે. એક રાજૂમાં અસંખ્યાત યોજન થાય છે, અને સંખ્યાત અંગુલનો એક યોજન થાય છે. આકાશના અસંખ્યાતપ્રદેશ–પરિમિત એક અંગુલ હોય છે. એ અંગુલના એક–એક આકાશપ્રદેશમાં નિગોદ જીવોના અસંખ્ય ગોળા હોય છે. એક–એક ગોલકમાં અસંખ્યાત શરીર હોય છે અને એક–એક શરીરમાં અનન્ત જીવોનો નિવાસ છે. કહ્યું પણ છે—

"गोला य असंखिज्जा, हुंति निगोया असंखया गोले ।
एक्केको य निगोओ अणंतजीवो मुणेयव्वो" ॥ १ ॥

छाया-गोलाश्च असंख्येयाः, भवन्ति निगोदा असंख्येया गोले ।
एकैकश्च निगोदः, अनन्त जीवो ज्ञातव्यः ॥ १ ॥ इति ।

तत्रस्थप्रत्येकजीवस्य तैजसकार्मणे द्वे द्वे शरीरे पृथक् पृथक् स्तः । तदेकैकं शरीरमनन्तज्ञानावरणीयादियावदनन्तान्तरायकर्मणां वर्गणाभिः संयुक्तं वर्तते । सा चैकैका वर्गणाऽनन्तसूक्ष्मपरमाणुमयी भवतीति सूक्ष्मत्वं निगोदजीवानां सिद्धम् ।

ये च शरीरत्रयाङ्गुलासंख्येयभागशरीरादिभेदाः पृथिवीकायोद्देशेऽभिहितास्ते वनस्पतिकायानामपि बोध्याः, केवलमनित्थंस्थम्=अनियताकारं शरीरसंस्था-

---

"अंगुल के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात गोले, एक गोले में असंख्यात निगोद-शरीर और एक-एक निगोदशरीर में अनंत जीव जानने चाहिए" ॥१॥

निगोद में रहने वाले हरेक जीव के अलग-अलग तैजस और कार्मण शरीर होते हैं, और प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मों की वर्गणाओं से संयुक्त है, वह एक वर्गणा अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होती है । इस कथन से निगोदिया जीवों की सूक्ष्मता सिद्ध होती है ।

पृथिवीकाय के उद्देश में तीन शरीर तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना आदि का कथन किया है, वह वनस्पतिकाय के लिए भी समझना चाहिए । यहाँ विशेष बात यह है कि वनस्पति जीवों के शरीर का आकार अनियत होता है ।

"અંગુલના એક આકાશપ્રદેશમાં અસંખ્યાત ગોળા, એક ગોળામાં અસંખ્યાત નિગોદ-શરીર અને એક-એક નિગોદ શરીરમાં અનન્તજીવ જાણવા જોઈએ." ॥૧॥

નિગોદમાં રહેવા વાળા દરેક જીવને અલગ-અલગ તૈજસ અને કાર્મણ શરીર હોય છે, અને પ્રત્યેક શરીર અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ તથા અનન્ત અન્તરાય કર્મોની વર્ગણાઓથી સંયુક્ત છે. તે એક વર્ગણા અનન્તસૂક્ષ્મપરમાણુરૂપ હોય છે. આ વચનથી નિગોદના જીવોની સૂક્ષ્મતા સિદ્ધ થાય છે.

પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમાં ત્રણ શરીર તથા અંગુલના અસંખ્યાતમા ભાગની અવગાહના આદિનું નિરૂપણ કર્યું છે. તે વનસ્પતિકાય માટે પણ સમજી લેવું જોઇએ. અહિં વિશેષ વાત એ છે કેઃ-વનસ્પતિના જીવોનો આકાર અનિયત (નિયમવગરનો) હોય છે.

नमेषाम्, शेषमन्यत् समानम्। एषां स्थानं घनोदधिवातवलयादि। संख्यामङ्गीकृत्या-नन्ताः सर्वे वनस्पतयः।

एवं वनस्पतीनां वृक्षादिभेदैः प्रत्येकसाधारणभेदैः, तथा-वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैश्च सहस्रशो भेदा भवन्ति। योन्यादिभेदैः पुनर्लक्षशो भेदा जायन्ते।

वनस्पतेर्योनिः संवृता भवति। तस्याः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः, तथा शीतोष्णमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः। एवं गणनया प्रत्येकवनस्पतियोनीनां दशलक्ष-संख्यका भेदा भवन्ति। साधारणवनस्पतीनां चतुर्दशलक्षसंख्यका भेदा जायन्ते।

शेष सब पूर्ववत् है। इन का स्थान घनोदधिवातवलय आदि हैं। संख्या की अपेक्षा पूर्वोक्त सब प्रकार की वनस्पति–संख्या अनन्त है।

वृक्ष आदि के भेदों की अपेक्षा, प्रत्येक–साधारण की अपेक्षा तथा वर्ण, रस गंध और स्पर्श के भेद की अपेक्षा वनस्पति के हजारों भेद होते हैं। योनि आदि के भेदों की अपेक्षा विचार किया जाय तो लाखों भेद हो जाते हैं।

वनस्पति की योनि संवृत है। संवृतयोनि सचित्त, अचित्त, और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की होती है। शीत, उष्ण तथा मिश्र के भेद से भी तीन प्रकार की है। इस प्रकार गणना करने से प्रत्येकवनस्पति की दस लाख योनियाँ है। साधारणवनस्पति की योनियाँ चौदह लाख हैं।

બાકી તમામ પૂર્વ પ્રમાણે છે. એનું સ્થાન ઘનોદધિવાતવલય આદિ છે. સંખ્યાની અપેક્ષા પૂર્વોકત સર્વ પ્રકારની વનસ્પતિ–સંખ્યા અનન્ત છે.

વૃક્ષ આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ, પ્રત્યેક–સાધારણ અપેક્ષાએ તથા વર્ણ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શના ભેદની અપેક્ષાએ વનસ્પતિના હજારો ભેદ થાય છે. યોનિ આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો લાખો ભેદ થઈ જાય છે. વનસ્પતિની યોનિ સંવૃત છે. સંવૃતયોનિ સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની હોય છે અને શીત ઉષ્ણ તથા મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે. આ પ્રમાણે ગણના કરવાથી પ્રત્યેકવનસ્પતિની દસ લાખ યોનિઓ છે, અને સાધારણ-વનસ્પતિની યોનિઓ ચૌદ લાખ છે.

परिमाणद्वारम्—

उक्तं प्ररूपणाद्वारम्। परिमाणद्वारमुच्यते—पर्याप्तबादराः प्रत्येकवनस्पतिजीवाः पिण्डीभूत–चतुष्कोणीकृत–लोकश्रेण्यसंख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणाः, बादरपर्याप्ततेजस्कायजीवराशेश्चासंख्यातगुणाः सन्ति।

अपर्याप्तबादराः प्रत्येकवनस्पतिजीवास्तु असंख्यातानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्तः सन्ति। इमेऽप्यपर्याप्तबादरतेजस्कायजीवराशितश्चाऽसंख्यातगुणाः। प्रत्येकवनस्पतयः सूक्ष्मा न सन्ति, शास्त्रेऽनुपादानात्।

साधारणवनस्पतिजीवाः–सूक्ष्मबादरपर्याप्तभेदैश्चतुर्विधा अपि पृथक् पृथगनन्तानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति। अत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार–

प्ररूपणाद्वार हुआ। अब परिमाणद्वार कहते हैं–पर्याप्तबादर–प्रत्येकवनस्पति जीव चौकोन की हुई लोकश्रेणी के असंख्यातवें भागवर्त्ती आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं, और बादरपर्याप्ततेजस्काय के जीवों से असंख्यातगुणे हैं। असंख्यात लोककाशों के प्रदेशों की बराबर अपर्याप्त बादर प्रत्येकवनस्पतिकाय के जीव हैं, और ये भी अपर्याप्तबादरतेजस्काय के जीवों से असंख्यात गुने हैं। प्रत्येक वनस्पति में सूक्ष्म जीव नहीं होते, क्यों कि शास्त्र में कहीं उनका उल्लेख नहीं है।

साधारण वनस्पति के जीव सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चार प्रकार के हैं। इन चारों राशियों में से प्रत्येकजीवराशि की संख्या अनन्त लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर है। इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

પરિમાણ દ્વાર—

પ્રરૂપણાદ્વાર થયું. હવે પરિમાણદ્વાર કહે છે-પર્યાપ્તબાદરપ્રત્યેકવનસ્પતિ જીવ, ચતુષ્કોણ કરેલી લોકશ્રેણિના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી આકાશપ્રદેશોની રાશિ–ઢગલાના બરાબર છે અને બાદરપર્યાપ્તતેજસ્કાયના જીવોથી અસંખ્યાતગણા છે, અસંખ્યાત લોકાકાશોના પ્રદેશોની બરાબર અપર્યાપ્તબાદર પ્રત્યેકવનસ્પતિકાયના જીવ છે. અને તે પણ અપર્યાપ્તબાદર તેજસ્કાયના જીવોથી અસંખ્યાતગણા છે. પ્રત્યેક વનસ્પતિમાં સૂક્ષ્મજીવ નથી, કેમકે-તેનો શાસ્ત્રમાં કોઈ સ્થાને ઉલ્લેખ નથી.

સાધારણ વનસ્પતિના જીવ સૂક્ષ્મ, બાદર, પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચાર પ્રકારના છે. આ ચારેય રાશિઓમાંથી પ્રત્યેકજીવરાશિની સંખ્યા અનન્ત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે. તેમાં એટલી વિશેષતા સમજી લેવી જોઈએ—

साधारणबादरपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता असंख्यातगुणाः । तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा विज्ञेया इति ।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सदृष्टान्तमुच्यते-यथा-कश्चित् प्रस्थादिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याऽन्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेयुः ।

पर्याप्तबादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः पर्याप्तकबादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पति-पर्याप्तकेभ्यो-

---

साधारणबादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा बादर-अपर्याप्त असंख्यातगुणा हैं । बादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असंख्यातगुणा हैं और सूक्ष्म-अपर्याप्त उनसे भी असंख्यातगुणा हैं ।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह बात दृष्टान्त देकर समझाते हैं—जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सेर) आदि बाँटों से धान्य तोलकर दूसरी जगह रख देता है, उसी प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अनंत लोक भर जाएँ ।

पर्याप्त बादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है—

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर पर्याप्तबादरनिगोद जीव हैं । वे प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पति

સાધારણપર્યાપ્ત જીવોની અપેક્ષા બાદરઅપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગણા છે. બાદરપર્યાપ્તની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગણા છે અને સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાતગણા છે.

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોનું પરિણામ કેટલું છે. એ વાત દૃષ્ટાન્ત આપીને સમજાવે છે-જેમ કોઈ પુરુષ પ્રસ્થ (તોળવાનું વજન ૧ શેર) આદિ તોળવાના બાંટ-વજનથી. ધાન્ય તોળીને બીજી જગ્યાએ રાખી દે છે તે પ્રમાણે જો સાધારણ સૂક્ષ્મ જીવરાશિને લોકરૂપી પ્રસ્થથી તોળવામાં આવે તો અનંત લોક ભરાઈ જાય.

પર્યાપ્તબાદરનિગોદ જીવોનું પરિમાણ આ પ્રકારે છે-ચતુષ્કોણ ઘન કરેલા સમ્પૂર્ણ લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા-ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર પર્યાપ્તબાદરનિગોદ જીવ છે.

ऽसंख्येयगुणाः। शेषास्त्रयः—अपर्याप्तबादरनिगोदाः, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाः, पर्याप्त-सूक्ष्मनिगोदाश्च प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणाः क्रमशो बहुतरकाः सन्ति। साधारणजीवाश्चैतेभ्यो निगोदपरिमाणेभ्योऽनन्तगुणाः सन्तीति बोध्यम्।

यदि लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैकः प्रत्येकवनस्पतिजीवः स्थाप्यते, तर्हि असंख्याता लोका भ्रियन्ते। यदि तु लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको निगोदजीवः स्थाप्यते, तर्हि अनन्ता लोका भ्रियन्ते।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्—१ पदे।

"लोगागासपएसे, परित्तजीवं ठवेहि एक्केक्कं।
एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा असंखिज्जा"॥ १॥

पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा हैं। शेष तीन अर्थात् अपर्याप्तबादरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद और पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं, और क्रमशः अधिक-अधिक संख्या में हैं। साधारण जीव इन से अनन्तगुणा हैं।

यदि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक प्रत्येकवनस्पति के जीव स्थापित किये जायँ तो असंख्यात लोक भर जाएँ, और यदि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोदिया जीव रक्खे जायँ तो अनन्त लोकाकाश भर जाएँ। प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पदमें कहा है—

"लोकाकाश के एक-एक प्रदेशमें अगर प्रत्येकवनस्पति के एक-एक जीव रख दिये जायँ तो असंख्यात लोक भर जाए॥ १॥

તે પ્રત્યેકશરીર-બાદરવનસ્પતિ પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત ગણા છે. બાકીના ત્રણ અર્થાત્-અપર્યાપ્તબાદરનિગોદ, અપર્યાપ્તસૂક્ષ્મનિગોદ અને પર્યાપ્તસૂક્ષ્મનિગોદ અસંખ્યાત-લોકાકાશ પ્રદેશોના બરાબર છે, અને ક્રમશઃ અધિક-અધિક સંખ્યામાં છે. સાધારણ જીવ એનાથી અનન્ત ગણા છે.

જો લોકાકાશના એક-એક પ્રદેશોમાં એક-એક પ્રત્યેક વનસ્પતિના જીવને સ્થાપિત કરવામાં આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય, અને જો લોકાકાશના એક-એક પ્રદેશમાં એક-એક નિગોદિયા જીવને રાખવામાં આવે તો અનન્ત લોકાકાશ ભરાઈ જાય.

પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રના પ્રથમ પદમાં કહ્યું છે કેઃ-

"લોકાકાશના એક-એક પ્રદેશમાં જો પ્રત્યેક વનસ્પતિના એક-એક જીવ રાખવામાં આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય." ॥ ૧ ॥

लोगागासपएसे निगोयजीवं ठवेहि ऐक्केक्कं ।
एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा अणन्ताओ ॥ १ ॥ " इति ।

छाया—लोकाकाशप्रदेशे, प्रत्येकजीवं स्थापय एकैकम् ।
एवं स्थाप्यमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥

लोकाकाशप्रदेशे निगोदजीवं स्थापय एकैकम् ।
एवं स्थाप्यमानाः भवन्ति लोका अनन्ताः ॥ १ ॥

इति परिमाणद्वारम् ॥ सू० १ ॥

शब्दादिविषयासक्त्या वनस्पतिकायोपमर्दनपराः पुनः पुनर्भवसिन्धौ निपतन्तीत्याशयेनाह–' जे गुणे. ' इत्यादि ।

मूलम्—

जे गुणे से आवट्टे । जे आवट्टे से गुणे ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो गुणः स आवर्तः । य आवर्तः स गुणः ॥ सू० २ ॥

लोकाकाश के एक–एक प्रदेश में एक–एक निगोद जीव रख दिये जायँ तो इस प्रकार रखने से अनन्त लोक हो जाएँ " । इति परिमाणद्वार ॥ सू० २ ॥

इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों में आसक्त होकर जो वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं वे बारम्बार भवसागर में डूबते हैं । इस अभिप्राय से शास्त्रकार कहते हैः– ' जे गुणे '. इत्यादि ।

मूलार्थ—जो गुण है सो आवर्त्त है । जो आवर्त्त है सो गुण है ॥सू० २॥

" લોકાકાશના એક–એક પ્રદેશમાં એક–એક નિગોદ જીવ રાખવામાં આવે તો આ પ્રકારે રાખવાથી અનન્ત લોક થઈ જાય. " ઇતિ પરિમાણદ્વાર. ॥ સૂ० १ ॥

ઇન્દ્રિયોના શબ્દ આદિ વિષયોમાં આસક્ત થઈને જે વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે. તે વારંવાર ભવ–સાગરમાં ડૂબી જાય છે. એ અભિપ્રાયથી શાસ્ત્રકાર કહે છે– ' जे गुणे. ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જે ગુણ છે તે આવર્ત્ત છે. જે આવર્ત્ત છે તે ગુણ છે. ॥ २ ॥

टीका—

यो गुणः=शब्दादिकः, स आवर्तः-आवर्तन्ते=परिभ्राम्यन्ति जीवा यत्र स -आवर्तः-जन्मजराधिव्याधिनानाविधक्लेशसंपातस्वरूपः संसारः। कारणे कार्योपचारात् संसारकारणीभूतस्य शब्दादिगुणस्य संसारत्वेन व्यपदेशः। गुणसेवनात् संसारं प्राप्नोतीति भावः। उक्तमर्थं दृढीकर्तुमुक्तवाक्यं परावर्तयन्नाह-य आवर्त इति। यश्चावर्तः=संसारः, स गुणः=शब्दादिः। रागद्वेषवशगः संसारी नैव शब्दादिगुणतो विरज्यते, न च मोक्षमार्गं प्राप्नोतीत्यर्थः।

यद्वा-'गुणे' 'आवर्ते' इति सप्तम्यन्तम्। यः गुणे=शब्दादौ वर्तते,

---

टीकार्थ—शब्द आदि जो गुण अर्थात् विषय है वही आवर्त्त है। जिसमें आवर्त्तन अर्थात् भ्रमण किया जाय उसे आवर्त्त कहते हैं। जन्म-जरा, आधि-व्याधि आदि नाना प्रकार के क्लेशों से परिपूर्ण यह संसार ही आवर्त्त है। शब्द आदि विषय संसार के कारण हैं, स्वयं संसार नहीं हैं, किन्तु यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके शब्दादि विषयों को ही संसार कहा है। आशय यह है कि—इन विषयों का सेवन करने से संसार की प्राप्ति होती है। इसी अभिप्राय को दृढ करने के उद्देश्य से वाक्य को पलट कर शास्त्रकार कहते हैं-'जो आवर्त्त है वही गुण है'। राग-द्वेष आदि के अधीन रहने वाला संसारी जीव शब्द आदि गुणों से विरक्त नहीं होता और न मोक्षमार्ग प्राप्त करता है।

अथवा—मूल में जो **'गुणे'** और **'आवट्टे'** पद आये हैं। वे सप्तमीविभक्ति में हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि—जो पुरुष शब्दादि गुणों में वर्त्तता है वह आवर्त्त

ટીકાર્થ—શબ્દ આદિ જે ગુણ છે, અર્થાત્ વિષય છે તેજ આવર્ત્ત છે. જેમાં આવર્ત્તન અર્થાત્ ભ્રમણ કરવામાં આવે તેને આવર્ત્ત કહે છે. જન્મ, જરા, આધિ, વ્યાધિ આદિ નાના પ્રકારના કલેશોથી પરિપૂર્ણ આ સંસારજ આવર્ત્ત છે. શબ્દ આદિ વિષય સંસારના કારણ છે. સ્વયં સંસાર નથી, પરન્તુ અહીં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને શબ્દાદિ વિષયોને જ સંસાર કહ્યો છે. આશય એ છે કેઃ-વિષયોનું સેવન કરવાથી સંસારની પ્રાપ્તિ થાય છે. તે અભિપ્રાયને દૃઢ કરવાના ઉદ્દેશ્યથી વાકયને બદલીને શાસ્ત્રકાર કહે છે-' જે આવર્ત્ત છે તે ગુણ છે.' રાગદ્વેષ આદિના આધીન રહેવાવાળા સંસારી જીવ શબ્દ આદિ ગુણોથી વિરકત રહેતા નથી અને મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરતા નથી.

અથવા—મૂલમાં જે ' ગુણે ' અને 'આવટ્ટે' પદ આવ્યાં છે. તે સાતમી વિભક્તિમાં છે. એનો અર્થ એ થયો કે-જે પુરુષ શબ્દાદિ ગુણોમાં વર્તે છે તે આવર્ત્ત અર્થાત્-

स आवर्ते=संसारे वर्तते । यश्चावर्ते, स गुणे वर्तते ।

ननु 'यो गुणे वर्तते, स आवर्ते वर्तते' इति यदुक्तं तत् सम्यगेव, परन्तु य आवर्ते वर्तते, न त्वसौ नियमेन गुणे वर्तते । यतस्तीर्थङ्करा भावितात्मानो मुनयः प्रतिमाधारिश्रावकाश्चावर्ते वर्तन्ते न तु शब्दादिगुणेषु, तदेतत् कथमुपपद्यते–'यश्चावर्ते वर्तते स गुणे वर्तते' इति ?।

अनुकूलशब्दादिषु रागः, प्रतिकूलशब्दादिषु द्वेषः समुद्भवतीति रागद्वेषपूर्वकं गुणेषु शब्दादिषु या प्रवृत्तिस्तस्या एवात्राधिकारः । एवं चास्य वाक्यस्य तीर्थङ्करादि-विषयकत्वाभावान्नास्त्युक्तशङ्कावसर इति ।

अर्थात् संसार में वर्तता है, और जो संसार में वर्त्तता है वह शब्द आदि में वर्त्तता है ।

शङ्का—जो शब्दादि गुणों में वर्तता है वह संसार में वर्तता है, यह कथन तो ठीक है, परन्तु जो संसार में वर्तता है वह नियम से शब्दादि विषयों में नहीं वर्तता । भगवान् तीर्थंकर, भावितात्मा मुनि और प्रतिमाधारी श्रावक संसार में तो वर्तते हैं मगर शब्द आदि विषयों में नहीं वर्त्तते । अत एव यह कथन किस प्रकार बन सकता है कि जो आवर्त्त में वर्त्तता है वह शब्द आदि में वर्त्तता है ?

समाधान—अनुकूल शब्द आदि में राग उत्पन्न होता है और प्रतिकूल शब्द आदि में द्वेष होता है । इस प्रकार रागद्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति करने का ही यहाँ प्रकरण है । तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति नहीं करते, अतः यह वाक्य तीर्थंकर या भावितात्मा मुनि आदि के लिए लागू नहीं होता । इस प्रकार उक्त शंका का यहां स्थान नहीं है ।

સંસારમાં વર્તે છે, અને જે સંસારમાં વર્તે છે તે શબ્દ આદિમાં વર્તે છે.

શંકા—જે શબ્દાદિ ગુણોમાં વર્તે છે, તે સંસારમાં વર્તે છે. આ કથન-તો ઠીક છે, પરન્તુ જે સંસારમાં વર્તે છે તે નિયમથી શબ્દાદિક વિષયોમાં વર્તતા નથી. ભગવાન તીર્થંકર ભાવિતાત્મા મુનિ અને પ્રતિમાધારી શ્રાવક સંસારમાં તો વર્તે છે, પરન્તુ શબ્દાદિ વિષયોમાં વર્તતા નથી. એ માટે આ કથન કેવી રીતે બની શકે છે, કે-'જે આવર્તમાં વર્તે છે તે શબ્દ આદિમાં વર્તે છે.'

સમાધાન—અનુકૂલ શબ્દ આદિમાં રાગ ઉત્પન્ન થાય છે અને પ્રતિકૂલ શબ્દ આદિમાં દ્વેષ થાય છે. આ પ્રમાણે રાગ-દ્વેષપૂર્વક વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ કરવી તેનું જ અહીં પ્રકરણ છે. તીર્થંકર આદિ રાગ-દ્વેષપૂર્વક વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, માટે આ વાકય તીર્થંકર અથવા ભાવિતાત્મા મુનિ આદિના માટે લાગું થતું નથી. આ પ્રમાણે પૂર્વે જે શંકા કરી છે તે શંકાને અહીં સ્થાન નથી.

गत्यागतिरूप आवर्तोऽपि न तेषां दुःखजनको भवति । सामान्यतः संसारवर्तित्वं सामान्यशब्दादिगुणोपलब्धिश्च सर्वेषां संसारिणां संभवत्येव, तस्माद् गुणोपलब्धिर्न प्रतिषिध्यते । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रतिबोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

" कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए " इत्यादि । किञ्च—

" न शक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम् ।
रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ बुधः परिवर्जयेत् ॥ "

इदमत्र तत्त्वम्—शब्दादिविषयासक्ताः खलु वनस्पतिजीवान् बहुशो

गति-आगतिरूप आवर्त्त भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्त्तीपन और विषयों की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी जीवों में होती है, अतः विषयों की उपलब्धि का निषेध नहीं किया जा सकता । हाँ विषयों में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याज्य है । अतः भगवान् ने कहा है—

" कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए " इत्यादि ।

"कानों को सुख देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए" । तथा— आँखोंके आगे आया हुआ रूप अनदेख नहीं किया जा सकता, वह तो दीख ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अलवत्ता उस रूप पर राग या द्वेष करने से हानि होती है । अतः विवेकी पुरुष राग और द्वेष का त्याग करे ।

आशय यह है—शब्द आदि विषयों में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाय के जीवों की

ગતિ-આગતિરૂપ આવર્ત્ત પણ તેઓને માટે દુઃખરૂપ નથી. સામાન્ય સંસારવર્ત્તીપણું અને વિષયોની સામાન્ય ઉપલબ્ધિ, સર્વ સંસારી જીવોમાં હોય છે. એથી વિષયોની ઉપલબ્ધિનો નિષેધ કરી શકાતો નથી. હા; વિષયોમાં જે રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામ છે, તેજ ત્યાજ્ય-ત્યજી દેવા યોગ્ય છે. એટલે ભગવાને કહ્યું છે-

" कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं पेम्मं नाभिनिवेसए " અર્થાત્ કાનોને સુખ દેવાવાળા શબ્દો પર પ્રીતિ નહિ કરવી જોઈએ. તથા નેત્રોની સામે આવેલા રૂપ, ન દીઠા-અદીઠ કરી શકાતા નથી. તે તો દેખવામાં આવેજ છે, પરન્તુ તેમાં કોઈ હાનિ થતી નથી. અલબત્ત એ રૂપ પર રાગ અથવા દ્વેષ કરવાથી હાનિ થાય છે. એ માટે વિવેકી પુરુષ રાગ અને દ્વેષનો ત્યાગ કરે.

આશય એ છે કેઃ-શબ્દ આદિ વિષયોમાં આસક્ત પુરુષ વનસ્પતિકાયના જીવોની

विहिंसन्ति । तथा हि—अनुकूलशब्दश्रवणार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहुविधान् वनस्पतीन् विनिहन्ति । प्रियरूपविलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा—गृह—तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितुं कतिचन वनस्पतीन् विनिकृन्तति । एवं घ्राणसुखार्थी कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरसचन्दना—गुरु—केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परिग्रहीतुं विविधान वनस्पतीन् विहिनस्ति । रसास्वादसुखार्थी मूलकन्दादिगतानसंख्यातानन्तान् वा जीवानुपमर्दयति । एवं स्पर्शसुखाभिलाषी च कमलदलमृणालकदलीदलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं प्रकरोति ।

बहुत हिंसा करते हैं । जैसे—अनुकूल शब्द सुनने का अभिलाषी पुरुष वेणु, वीणा, पटह (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा करता है । प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका, और स्तंभ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय के सुखका लोलुप कपुर, केतकी, पाटल, (गुलाब) लोंग, सरस चन्दन अगर, केसर, जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है । रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असंख्यात और अनन्त जीवों की हिंसा करता है । इसी प्रकार स्पर्श—सुख का अभिलाषी कमल के पत्ते, कमल की दंडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकुल वस्त्र तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के वनस्पति जीवों का प्राण लेता है ।

घणीज હિંસા કરે છે. જેમ—અનુકૂલ શબ્દ સાંભળવાના અભિલાષી પુરુષ વેણુ—વીણા, ઢોલ આદિ વાદ્ય—વાજિત્ર બનાવવા માટે નાના પ્રકારના વનસ્પતિકાયના જીવોની હિંસા કરે છે. પ્રિયરૂપ જોવાના ઇચ્છુક યુવતીની કાષ્ઠમય પ્રતિમા, ગૃહ, તોરણ, વેદિકા અને સ્તંભ બનાવવા માટે વનસ્પતિને કાપે છે. એ પ્રમાણે ઘ્રાણેન્દ્રિય (નાસિકા)ના સુખના લોલુપ—લાલચુ કપૂર, કેતકી ગુલાબ, લવીંગ, સરસચંદન, અગર કેસર, જાયફળ, જાવંત્રી આદિ મેળવવાના ઉદ્દેશ્યથી વિવિધ પ્રકારના વનસ્પતિકાયિક જીવોની હિંસા કરે છે. રસાસ્વાદના અનુરાગી જીવ મૂળ આદિ કન્દોમાં રહેવાવાળા અસંખ્યાત અને અનન્ત જીવોની હિંસા કરે છે. એ પ્રમાણે સ્પર્શસુખના અભિલાષી જીવ કમલ-પત્તાં, કમલકાકડી, કેવળનાં પત્તાં, છાલ અને અનુકૂલ વસ્ત્ર તથા રૂ પ્રાપ્ત કરવા માટે નાના પ્રકારના વનસ્પતિ જીવોના પ્રાણ લે છે.

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः संसारं प्राप्नोति, स च संसारी रागद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानश्चतुर्गतिकसंसारतो न कदाचिद् बहिर्यातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तःपतनस्य कारणं, किन्तु तत्र मूर्च्छैवेत्याह –'उड्ढं', इत्यादि ।

मूलम्—

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासइ, सुणमाणे सद्दाइं सुणेइ । उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छइ सद्देसु यावि । एस लोए वियाहिए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, शृण्वन् शब्दान् शृणोति, ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं मूर्च्छन् रूपेषु मूर्च्छति, शब्देषु चापि । एष लोकः व्याख्यातः ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय–विषयों में वर्त्तमान जीव संसार प्राप्त करता हैं । संसारी जीव राग–द्वेष से मलिन होता है, अतः फिर विषयों में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥सू० २॥

शब्द आदि विषयों को ग्रहण करने मात्र से संसार में पतन नहीं होता परन्तु उन में मूर्च्छा (गृद्धि) होना ही पतन का कारण है, यह कहते हैं–'उड्ढं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—ऊपर, नीचे, और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि डालता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर, नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपोंमें मूर्च्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोक कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

એ પ્રમાણે વનસ્પતિથી તૈયાર થવાવાળા ઇન્દ્રિય વિષયોમાં વર્ત્તમાન જીવ સંસારને પ્રાપ્ત કરે છે. સંસારી રાગદ્વેષથી મલિન થાય છે, તેથી ફરીને વિષયોમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. આ પ્રમાણે તે કોઈ દિવસ સંસારથી બહાર નીકળી શકતા નથી (સૂ.૨)

શબ્દ આદિ વિષયોને ગ્રહણ કરવા માત્રથી સંસારમાં પતન થતું નથી. પરન્તુ તેમાં મૂર્ચ્છા (ગૃદ્ધિ) થવાથીજ પતન થાય છે. તે કહે છે—'उड्ढं.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ઉપર, નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં દૃષ્ટિ નાંખીને રૂપોને જુવે છે, સાંભળતા થકા શબ્દ સાંભળે છે, ઉપર નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં રૂપોમાં અને શબ્દોમાં પણ મૂર્છિત થાય છે. આ લોક કહેવાય છે. ॥ ૩ ॥

टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया ऊर्ध्वम्=ऊर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरप्रासादहर्म्याद्युपरिभागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं विदिक्ष्ववस्थितं च गृहभित्तिप्रासादहर्म्यादिकं, प्राचीनं-तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्, प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्-अन्या अपि तिर्यग्दिशो विज्ञेयाः । यद्वा-प्राचीनमिति-ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्ष्ववस्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्-आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्=चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपवद्रव्याणि शालभञ्जिकादीनि स्त्र्यादिरूपाणि वा पश्यति ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(देखने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, भौंहरा आदि अधोदिशा में स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल आदि को देखता है । मूल में आये हुए **'पाईणं'** अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का विवरणरूप समझना चाहिए । अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् सभी दिशाओं के साथ संबंध रखता है । तात्पर्य यह निकला कि-ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित तथा तिरछी दिशामें स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है ।

ટીકાર્થ—પ્રજ્ઞાપક-(જોનારની) દિશાની અપેક્ષા ઉર્ધ્વ દિશામાં-પર્વતના શિખર પર તથા પ્રાસાદ અથવા મહેલ આદિના ઉપર ભાગમાં, સ્થિત, ભોંયરા આદિ અધોદિશામાં સ્થિત, પૂર્વ આદિ તિરછી દિશાઓમાં સ્થિત, તથા વિદિશાઓમાં સ્થિત ભીંત, હવેલી અને મહેલ આદિને દેખે છે. મૂલમાં આવેલો 'पाईणं' અર્થાત્ પ્રાચીન શબ્દને તિરછી દિશાના વિવરણરૂપ સમજવો જોઈએ, અથવા પ્રાચીન પદ ઉર્ધ્વ, અધઃ અને તિર્યક્ સર્વ દિશાઓની સાથે સંબંધ રાખે છે. તાત્પર્ય એ નિકળે છે કે-ઉર્ધ્વ દિશામાં સ્થિત, અધોદિશામાં સ્થિત, તથા તિરછી દિશામાં સ્થિત પ્રાચીન અર્થાત્ આધુનિક શિલ્પકારો માટે દુષ્કર હોવાથી આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરવાવાળા પુરાણા પદાર્થોની તરફ નજર કરતા થકા સુન્દર પુતળીઓ વગેરેને તથા સ્ત્રીઆદિના રૂપને દેખે છે.

तथा-एतासु दिक्षु च शृण्वन्=श्रोत्रोपयोगयुक्तः सन् शब्दान् वेणुवीणादि-समुत्थान् गीतनादादिकान् वा शृणोति । श्रोत्रोपयोगाभावे तु न शृणोतीत्यर्थः। उपलक्षणमेतत्-जिघ्रन् गन्धान् जिघ्रति, रसयन् रसान् रसयति, स्पृशन् स्पर्शान् स्पृशति ।

इह दर्शनश्रवणाभ्यां रूपादिगुणोपलब्धिमात्रं प्रदर्शितम् । ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्पदोपादानेन च रूपादिगुणानां सर्वदिग्व्यापित्वेन तदुपयोगो दुष्परिहरोऽस्तीति प्रतिबोधितम्। रूपादिगुणोपयोगमात्रेण संसारगर्तावर्तसंपातो न भवति, किन्तु रूपादिगुणेषु मूर्च्छयेति बोधयितुमाह-'उड्ढं.' इत्यादि ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त दिशाओं में श्रोत्रेन्द्रिय का उपयोग लगा कर वेणु वीणा आदि वाद्यों का, तथा गीत आदि का शब्द सुनता है । श्रोत्र का उपयोग न हो तो नहीं भी सुनता है । यह कथन उपलक्षण है, इस से यह भी समझ लेना चाहिए कि घ्राण, रसना और स्पर्श इन्द्रिय का उपयोग लगाकर सूंघता है, चखता है और स्पर्श करता है ।

यहाँ देखने और सुनने से रूप आदि गुणों की उपलब्धिमात्र सूचित की है । ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पद देकर यह प्रकट किया है कि-इन्द्रियों के विषय-रूप आदि, सभी दिशाओं में भरे पडे हैं । ऐसी स्थिति में उनकी ओर ध्यान न जाने देना तो बडा ही कठिन कार्य है । मगर रूप आदि गुणों की ओर उपयोग जाने मात्र से संसार के गड्ढे में पतन नहीं होता । पतन तब होता है जब उनमें मूर्च्छा या राग-द्वेष हो, यह बात प्रकट करने के लिए कहा है-'उड्ढं.' इत्यादि ।

એજ પ્રમાણે પૂર્વોક્ત દિશાઓમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયનો ઉપયોગ લગાવીને વેણુ-વીણા આદિ વાજીંત્રોના તથા ગીત આદિના શબ્દો સાંભળે છે. શ્રોત્રનો ઉપયોગ ન હોત તો સાંભળત નહિ. આ કથન ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ સમજી લેવું જોઇએ કે, ઘ્રાણ, રસના અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિયનો ઉપયોગ લગાવીને સૂંઘે છે, ચાખે છે, અને સ્પર્શ કરે છે.

અહીં દેખવા અને સાંભળવાથી રૂપ આદિ ગુણોની ઉપલબ્ધિ માત્ર સૂચિત કરી છે. ઉર્ધ્વ, અધઃ તથા તિર્યક્ પદ આપીને એ સૂચિત કર્યું છે કે-ઇન્દ્રિયોના વિષય રૂપ આદિ, સર્વ દિશાઓમાં ભર્યા પડયાં છે. એવી સ્થિતિમાં તેની તરફ ધ્યાન નહિ જવા દેવું તે તો ભારે કઠિન કામ છે. પરન્તુ રૂપ આદિ ગુણોની તરફ ઉપયોગ જવા માત્રથી સંસારના ખાડામાં પડવાનું થતું નથી, પતન-પડવાનું તો ત્યારે થાય છે કે જ્યારે. તેમાં મૂર્છા-અથવા રાગ-દ્વેષ થાય. આ વાત પ્રગટ કરવા માટે કહ્યું છેઃ-'उड्ढं.' ઇત્યાદિ.

पुनरूर्ध्वादेरुच्चारणं कस्याश्चिदेकस्यामपि दिशि रूपादिषु मूर्च्छया संसारं प्राप्नोतीति बोधनार्थम् ।

ऊर्ध्वादिदिक्ष्ववस्थितं रूपगुणं प्रति मूर्च्छन्=रागादिपरिणामं कुर्वन् सदसद्विवेकशून्यो भवन् वा रूपेषु=मनोहरेषु रूपवद्द्रव्येषु स्त्र्यादिरूपेषु वा मूर्च्छति=लोलुपो भवति । एवं शब्देषु च मूर्च्छति । अपिग्रहणाद् गन्धरसस्पर्शेषु मूर्च्छति=गृध्नुर्भवति । एषः=मूर्छाविषयीभूतो रूपादिगुणः, लोकः=संसारः, कारणे कार्योपचारात् मूर्च्छाविषयीभूतरूपादिगुणात्मको लोक इति व्याख्यातः=भगवता कथितः । ॥ सू० ३ ॥

संयमे गृहीतेऽपि प्रमादवशेन रूपादिगुणेषु मूर्च्छामुपगतः सन् पुनरगारित्वमापद्यते-इति दर्शयति-' एत्थ अगुत्ते. ' इत्यादि ।

दोवारा ऊर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करके यह बतलाया है कि-किसी भी एक दिशामें स्थिति रूपादि में मूर्च्छा होने पर भी संसार की प्राप्ति होती है ।

ऊर्ध्व आदि दिशाओं में स्थित रूप आदि विषयों में राग-द्वेषरूप परिणाम करता हुआ, सत्-असत् के विवेक से शून्य होकर मनोहर रूपों में या मनोहर रूपवाली स्त्री आदि के रूपों में पुरुष लोलुप हो जाता है । इसी प्रकार शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है । गंध, रस, तथा स्पर्श में भी मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा का विषयभूत यह रूप आदि ही, कारण में कार्य का उपचार करने से संसार कहलाता है । ऐसा भगवान् ने फरमाया है ॥ सू० ३ ॥

संयम ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी प्रमाद के वश में होकर रूप आदि गुणों में मूर्छा को प्राप्त होनेवाला फिर गृहस्थ बन जाता है, यह बात बतलाते हैं:-'एत्थ अगुत्ते.' इत्यादि ।

બેવાર ઉર્ધ્વ આદિ દિશાઓ કથન કરીને એ બતાવ્યું છે કે-કોઈ પણ એક દિશામાં સ્થિત રૂપાદિમાં મૂર્ચ્છા થતાં પણ સંસારની પ્રાપ્ત થાય છે. ઉર્ધ્વ આદિ દિશાઓમાં સ્થિત રૂપ આદિ વિષયોમાં રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામ કરતા થકા સત્-અસત્ના વિવેકમાં શૂન્ય થઈને મનોહર રૂપોમાં અથવા તો મનોહર રૂપવાળી સ્ત્રી આદિના રૂપોમાં પુરુષ લોલુપ થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે શબ્દોમાં મૂર્ચ્છિત થઈ જાય છે. ગંધ, રસ તથા સ્પર્શમાં પણ મૂર્ચ્છિત થઇ જાય છે. મૂર્ચ્છાના વિષયભૂત (મૂર્ચ્છા થવાનું કારણ) આ રૂપ આદિજ, કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી, સંસાર કહેવાય છે. એ પ્રમાણે ભગવાને ફરમાવ્યું છે. (સૂ. ૩)

સંયમ ગ્રહણ કરી લીધા પછી પણ પ્રમાદવશ થઇને રૂપ આદિ ગુણોમાં મૂર્ચ્છા પામવાવાળા ફરીને ગૃહસ્થ બની જાય છે. એ વાત બતાવે છેઃ-'एत्थ अगुत्ते.' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

एत्थ अगुत्ते अणाणाए, पुणो पुणो गुणासाए, वंकसमायारे पमत्ते अगारमावसे ॥ सू० ४ ॥

छाया—

अत्र अगुप्तः अनाज्ञायां पुनःपुनर्गुणास्वादः, वक्रसमाचारः प्रमत्तः अगारमावसति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् रूपादिगुणे, अगुप्तः=मनोवाक्कायगुप्तिरहितः मनसा-रूपादिषु रज्यते, वचसा प्रार्थयति, कायेन तदभिमुखं प्रवर्तते, स चागुप्तः अनाज्ञायाम्= अनाचारे वर्तमानः भगवदाज्ञाबहिर्वर्ती, अत एव पुनःपुनर्गुणास्वादः=असकृद् विषयसुखानुभवरसिकः, अत एव वक्रसमाचारः-वक्रः=कुटिलः समाचारः=

मूलार्थ—रूपादि विषयों में मन वचन कायका व्यापार न रोकने वाला भगवान्की आज्ञा से बाहर है, बार-बार विषयोंका आस्वादन करने वाला कुटिलाचारी, प्रमादी (साधु) फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

टीका—रूप आदि विषयों में मन, वचन और काय की गुप्ति से रहित अर्थात् मन से राग करने वाला, वचन से विषयों की प्रार्थना करने वाला और काय से उनमें प्रवृत्ति करनेवाला ऐसा अनाचारी साधु भगवान की आज्ञा से बाहर हो जाता है। वह बारम्बार विषयसुखों के भोग में रसिक होकर कुटिल आचारवाला

મૂલાર્થ—રૂપાદિ વિષયોમાં મન, વચન અને કાયાનાં વ્યાપારને નહિ રોકવા વાળા, તે ભગવાનની આજ્ઞાથી બહાર છે. વારંવાર વિષયોનું આસ્વાદન કરવાવાળા, કુટિલાચારી-પ્રમાદી (સાધુ) પાછા ગૃહસ્થ બની જાય છે.

ટીકાર્થ—રૂપ આદિ વિષયોમાં મન, વચન અને કાયાની ગુપ્તિથી રહિત અર્થાત્ મનથી રાગ કરવાવાળા, વચનથી વિષયોની પ્રાર્થના કરવાવાળા અને કાયથી તેમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા, એવા અનાચારી સાધુ ભગવાનની આજ્ઞાથી બહાર થઇ જાય છે. તે વારંવાર વિષયસુખોના ભોગમાં રસિક થઈને કુટિલ આચારવાળા-અર્થાત્ અસંયમનું

आचारो यस्य स वक्रसमाचारः-असंयमानुष्ठायी, नरकादिगतिजनकत्वादसंयमस्य वक्रतया व्यपदेशः । इत्थम्भूतः स प्रमत्तः=प्रमादवशाद् विषयेषु मूर्च्छितः, अगारं= गृहम् आवसति । गृहीतसंयमोऽपि प्रमादवशाद् विषयासक्तः सन् पुनर्गृहस्थो भवती-त्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अथ शस्त्रद्वारम्—

अथ सर्वथा वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमा-रम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह-'लज्जमाणा' इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो-त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं

अर्थात् असंमय का सेवन करने वाला प्रमादी फिर घर—वास में आजाता है । वह संयम धारण करने के पश्चात् भी प्रमाद के वश होकर विषयों में आसक्त होने के कारण फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

शस्त्रद्वार-

वनस्पतिशस्त्र के आरंभ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों का तथा अग्निशस्त्र के आरंभ में प्रवृत्त द्रव्यलिंगियोंका विवेचन करके उपदेश देते हैं:— **'लज्जमाणा.'** इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ में संकोच करने वाले साधुओं को अलग देखो । तथा **'हम अनगार हैं'** इस प्रकार कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रोंसे

સેવન કરવાવાળા પ્રમાદી ફરી ઘરવાસમાં આવી જાય છે. તે સંયમ ધારણ કર્યા પછી પણ પ્રમાદને વશ થઇને વિષયોમાં આસક્ત થવાના કારણે ફરી ગૃહસ્થ બની જાય છે. (સૂ.૪)

શસ્ત્રદ્વાર—

વનસ્પતિશસ્ત્રના આરંભનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા અણગારોનું તથા અગ્નિ-શસ્ત્રના આરંભમાં પ્રવૃત્ત દ્રવ્યલિંગીઓનું વિવેચન કરીને ઉપદેશ આપે છેઃ- 'लज्जमाणा.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વનસ્પતિકાયના આરંભમાં સંકોચ કરવાવાળા સાધુઓને જુદા જાણો. તથા 'અમે અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા, નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વનસ્પતિ-

विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थ समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति ॥ सू० ५ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयार्द्रहृदयतया वनस्पतिकायसमारम्भे पराङ्मुखाः, वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारा इत्यर्थः। पृथक्=विभिन्नाः=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति पश्य।

यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य। इमे—सूक्ष्मबादरवनस्पतिकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वनस्पतिकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति विलोकयेत्यर्थः।

वनस्पतिकाय का आरंभ करने वाले, वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ५ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त करुणा से आर्द्र हृदयवाले मुनि वनस्पतिकाय के आरंभ से विमुख रहते हैं। ऐसे मुनि कोई अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, और केवलज्ञानी होते हैं, और कोई—कोई परोक्षज्ञानी (मति—श्रुत ज्ञान के धारक) भावितात्मा होते हैं उन्हें देखो।

अथवा इन्हें द्रव्यलिंगियों से अलग ही समझना चाहिए। यह अनगार सूक्ष्म और बादर वनस्पति का आरंभ करने में भीत, त्रस्त, उद्विग्न हैं। तीन करण, तीन योग से वनस्पतिकाय के आरंभ के त्यागी हैं।

કાયને આરંભ કરવાવાળા, વનસ્પતિ શસ્ત્રને આરંભ કરતા થકા અન્ય અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. ॥ ૫ ॥

ટીકાર્થ—અત્યન્ત કરુણાથી આર્દ્ર હૃદયવાળા મુનિ વનસ્પતિકાયના આરંભથી વિરુદ્ધ રહે છે. એવા મુનિ કોઈ–કોઈ અવધિજ્ઞાની, મનઃપર્યયજ્ઞાની અને કેવળજ્ઞાની, હોય છે. અને કોઈ–કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની (મતિ–શ્રુતજ્ઞાનના ધારક) ભાવિતાત્મા હોય છે. તેને જુઓ.

અથવા તેને દ્રવ્યલિંગિઓથી જૂદાજ સમજવા જોઈએ. તે અણગાર સૂક્ષ્મ અને બાદર વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરવામાં બીએલા–ભયવાળા, ત્રસ્ત, ઉદ્વિગ્ન છે. ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી વનસ્પતિકાયના આરંભના ત્યાગી છે.

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः='वयमेव वनस्पतिजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति–'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=वनस्पतिकायशस्त्रैः, शस्त्रं हि वनस्पतिकायस्य द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकाय-परकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं दण्डलकुटादयः । परकाय-शस्त्रं=कर्तरी–पाषाण–हस्त–पाद–मुख–वह्न्यादयः । उभयकायशस्त्रं=वासी–दात्र–

इनसे विपरीत कोई–कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हैं–'हम ही वनस्पति जीवों की रक्षा करने में तत्पर और महाव्रतधारी हैं,' इस प्रकार प्रलाप करते हुए द्रव्यलिंगी साधुओं को अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी अनगार के गुणो में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते । ये गृहस्थ के किसी भी कामका त्याग नहीं करते हैं, यह बात आगे बतलाते हैं––'यदिमम्.' इत्यादि ।

नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकाय का आरंभ करके वनस्पतिकायकी हिंसा करते हैं । वनस्पतिशस्त्र दो प्रकारका है–द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं–(१) स्वकायशस्त्र (२) परकायशस्त्र (३) उभयकायशस्त्र । डंडा लकडी वगैरह स्वकायशस्त्र हैं । कैंची, पत्थर, हाथ, पैर, मुख और आग आदि

તેનાથી વિપરીત–વિરૂદ્ધ કોઈ–કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે અભિમાન પૂર્વક કહે છે–'અમેજ વનસ્પતિ જીવોની રક્ષા કરવામાં તત્પર અને મહાવ્રતધારી છીએ' આ પ્રમાણે પ્રલાપ–(બકવાટ) કરનારા દ્રવ્યલિંગી સાધુઓને જુદા સમજો.

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરનારા એ દ્રવ્યલિંગી સાચા અણગારના ગુણો માટે જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી. તે ગૃહસ્થોનાં કોઈ પણ કામનો ત્યાગ કરતા નથી. એ બતાવે છે. 'यदिमम्.' ઈત્યાદિ.

નાના પ્રકારના વનસ્પતિકાયનાં શસ્ત્રો વડે વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરીને વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે. વનસ્પતિશસ્ત્ર બે પ્રકારનાં છે–દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્ર. દ્રવ્યશસ્ત્રનાં ત્રણ ભેદ છે—(૧) સ્વકાયશસ્ત્ર, (૨) પરકાયશસ્ત્ર, અને (૩) ઉભયકાયશસ્ત્ર. ડંડા, લાકડી વગેરે સ્વકાયશસ્ત્ર છે, કેંચી–(કાતર, સાંણુસો) પત્થર, હાથ, પગ,

कुठारादयः। भावशस्त्रं तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम्। वनस्पति-कर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धजनकसावद्यव्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिकायं विहिंसन्ति।

वनस्पतिकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'वनस्पतिशस्त्र'-मित्यादि। वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, अन्यान्=वनस्पतिकायभिन्नान्, अनेकरूपान्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः हिंसन्ति।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते। तत्र शाक्यादयः कन्द-मूल-पत्र-

---

परकायशस्त्र हैं। वसूला, दांती, कुठार आदि उभयकायशस्त्र हैं। वनस्पतिकाय के प्रति मन, वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशस्त्र है। इन शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायका आरंभ करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावद्य व्यापार करके वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं।

जो वनस्पतिकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह छहों जीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, **'वनस्पतिशस्त्रम्'.** इत्यादि।

वनस्पतिकाय की हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकाय के अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिंगी हैं। उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

---

મુખ અને અગ્નિ આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે. વસૂલા દાંતી-દાતરડું, કુઠાર-કુહાડો આદિ ઉભયકાયશસ્ત્ર છે. વનસ્પતિકાય પ્રતિ મન, વચન અને કાયનો અસત્-પ્રયોગ કરવો તે ભાવશસ્ત્ર છે. એ શસ્ત્રોદ્વારા વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરીને-જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મોને ઉત્પન્ન કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે.

જે વનસ્પતિકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થાય છે. તે છજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે. એ બતાવે છે-'**वनस्पतिशस्त्रम्.**' ઈત્યાદિ.

વનસ્પતિકાયના હિંસાજનક પૂર્વોક્ત શસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા લોક વનસ્પતિકાયના અતિરિક્ત પૃથ્વીકાય, આદિ અન્ય સ્થાવરોની તથા વનસ્પતિ આશ્રિત દ્વીન્દ્રિય-બે ઇંદ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે.

સંસારમાં અનેક પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે. તેમાંથી શાક્ય આદિ કંદ, મૂલ, પત્તા,

पुष्पफलादिभोजनार्थं वनस्पतिकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन षड्जीवनिकायविराधका भवन्ति। दण्डिनोऽपि "वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति, शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वनस्पतिकर्मसमारम्भं कारयन्ति।

ते हि व्याख्यानमण्डपादौ चाशोकवृक्षपत्रादिभिर्वन्दनमालादिकं बन्धयन्ति, नानाविधपुष्पपत्रफलैः पञ्चोपचारादिपूजासु प्रवर्तयन्ति। तथाहि—

"काले सुइभूएणं, विसिट्ठपुप्फाइएहिं विहिणा उ।
सारथुइथोत्तगरुई, जिणपूया होइ कायव्वा ॥ १ ॥" (पञ्चाशकवृत्तिः)

छाया—काले शुचीभूतेन, विशिष्टपुष्पादिकैर्विधिना तु।
सारस्तुति स्तोत्रकरुचिना, जिनपूजा भवति कर्तव्या ॥ १ ॥

पत्ता, फूल आदि खाने के लिए वनस्पति का आरंभ करते हैं, कराते हैं और करने वाले की अनुमोदना करते हैं। ऐसा करके वे षड्जीवनिकाय की विराधना के भागी होते हैं। "हम पंचमहाव्रतधारी, जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं" ऐसा कहने वाले दंडी झूठे साधु भी सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध किये हुए वनस्पतिकाय के आरंभ का उपदेश देते हैं।

वे व्याख्यानमंडप आदि में अशोक वृक्ष के पत्तों से बन्दनवार आदि बँधवाते हैं, नाना प्रकार के फल फूल पतों से पंचोपचार आदि पूजाओं में (श्रावकों) को प्रवृत्त करते हैं। जैसे—

"उचित समय पर, विधिपूर्वक विशिष्ट पुष्प आदि के द्वारा सुन्दर स्तोत्र—स्तुतिपूर्वक जिन भगवानकी पूजा करनी चाहिए"।

ફૂલ આદિ ખાવા માટે વનસ્પતિનો આરંભ કરે છે, અને કરાવે છે, અને કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે. એ પ્રમાણે કરીને તે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધનાના ભાગીદાર થાય છે. 'અમે પંચ મહાવ્રતધારી, જિન ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ.' આ પ્રમાણે કહેવાવાળા દંડી જુઠા સાધુ પણ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે, અને શાસ્ત્રમાં નિષેધ કરવામાં આવેલો વનસ્પતિકાયના આરંભનો ઉપદેશ આપે છે.

તે વ્યાખ્યાન—મંડપ આદિમાં અશોકવૃક્ષનાં પાંદડાંથી તોરણુ આદિ બંધાવે છે. નાના પ્રકારના ફલ—ફૂલ અને પાંદડાથી પંચોપચાર આદિ પૂજાઓમાં (શ્રાવકોને) પ્રવૃત્ત કરે છે—જોડે છે. જેમ—"ઉચિત સમય—ચોગ્ય સમય પર વિધિપૂર્વક વિશિષ્ટ—ઉત્તમ પુષ્પ આદિ દ્વારા સુન્દર સ્તોત્ર, સ્તુતિપૂર્વક જિન ભગવાનની પૂજા કરવી જોઇએ."

अपरञ्च-उमास्वातिवाचककृतप्रकरणे—
'मध्याह्ने कुसुमैः पूजा' इति। 'गन्धवासाक्षतैः स्रग्भिः' इति।
'प्रधानैश्च फलैः पूजा' इत्यादि। किञ्च—

"न शुष्कैः पूजयेद्देवं, कुसुमैर्न महीगतैः।
न विशीर्णदलैः स्पृष्टै,-र्नाशुभैर्नाविकासिभिः" ॥ १ ॥

'न शुष्कैः पूजयेद्देवं कुसुमैर्न महीगतैः'-इत्यनेन 'आर्द्रैं त्रोटितैश्च कुसुमैर्देवं पूजयेत्'-इत्यर्थोऽवगम्यते। अहो! कीदृशो महासावद्योपदेशस्तेषाम्।

एवं देवमन्दिरादौ कदलीस्तम्भादिरोपणेन, अशोकादिवृक्षपत्रैर्वन्दन-

पञ्चाशकवृत्ति उमास्वातिकृत प्रकरण में कहा है—

"मध्याह्न में फूलों से पूजा की जाती है।" "गंध, वास और अक्षत से तथा मालाओं से पूजा होती है।" उत्तम फलों से पूजा की जाती है" इत्यादि। और भी कहा है—

"सूखे, जमीन पर गिरे हुए, टूटी पँखुडीवाले, छुए हुए, खराब और विना खिले फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिए"।

'सूखे और जमीन पर गिरे हुए फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये' इसका अभिप्राय यह हुआ कि ताजे और तोडे हुए फूलों से पूजा करनी चाहिये अरेरे! उनका वह कैसा सावद्य उपदेश है।

इस प्रकार देवमंदिर आदि में कदलीस्तंभ खडा करके, अशोक वृक्ष के पत्तों से

પંચાશકવૃત્તિ ઉમાસ્વાતિકૃત પ્રકરણમાં કહ્યું છે—

'મધ્યાહ્નમાં ફૂલોવડે પૂજા કરવામાં આવે છે.' 'ગંધ, વાસ અને અક્ષતથી તથા માળાઓથી પૂજા થાય છે.' 'ઉત્તમ ફળોથી પૂજા કરવામાં આવે છે.' ઈત્યાદિ. બીજું પણ કહ્યું છે કેઃ—

"સૂકાં, જમીન પર ખરી પડેલાં, જેની પાંખડી તુટી ગઈ હોય, સ્પર્શ કરાએલાં, ખરાબ અને ખિલ્યા વિનાનાં ફૂલોથી પૂજા નહિ કરવી જોઈએ."

'સૂકાં અને જમીન પર ખરી પડેલાં ફૂલો વડે પૂજા ન કરવી જોઈએ' આનો અભિપ્રાય એ થયો કે લીલાં અને તાજાં તોડેલાં ફૂલોથી પૂજા કરવી જોઈએ. અરેરે! તેઓનો આ સાવદ્ય ઉપદેશ કેવો છે?

આ પ્રમાણે દેવમંદિર આદિમાં કેળના સ્થંભ ઉભા કરીને અશોકવૃક્ષનાં પાંદડાંથી

मालिकादिबन्धनेन, प्रतिमोपरि सचित्तपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचित्तनालिकेरदाडिमरसालफलादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिहिंसां कारयन्तस्ते तदाश्रितानेकविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनो घातयन्ति । नहि–वीतरागाणां सावद्या सपर्या समुचिता, 'एस खलु गंथे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमे तैः साक्षात् प्रतिषिद्धत्वात् । नहि तत्तत्त्यागिभ्यस्तत्तत्त्यक्तद्रव्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांसत्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोषाय जायते । अलं बहुना ! हरितकन्दमूलादित्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु मनीषिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद–'तत्थ.' इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधकर, प्रतिमा पर सचित्त पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचित्त नारियल, दाडिम, आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति की हिंसा करते हुए वे वनस्पति–आश्रित अनेक प्रकार के त्रस–स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावद्य होना उचित्त नहीं है । 'एस खलु गंथे.' इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरंभों का वीतराग भगवान्ने साक्षात् निषेध किया है । जो पुरुष जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य–मांस का त्याग करने वालों को मद्य–मांस की भेंट संतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहें ! हरित कंद मूल के त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेंट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वयं विचार करलें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं–'तत्थ.' इत्यादि ।

वंदनवार બાંધીને, પ્રતિમા ઉપર સચિત્ત પાંદડા, ફૂલ આદિ ચઢાવીને, સચિત્ત નાળિએર, દાડમ, આંબા આદિ નૈવેદ્યના ઉપચારથી વનસ્પતિની હિંસા કરીને તે વનસ્પતિ–આશ્રિત અનેક પ્રકારના ત્રસ–સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરાવે છે. વીતરાગદેવની પૂજા સાદ્ય હોય તે યોગ્ય નથી. 'एस खलु गंथे.' ઈત્યાદિ કથન દ્વારા આ આગમમાં તમામ સમારંભોનો વીતરાગ ભગવાને સાક્ષાત્ નિષેધ કર્યો છે. જે પુરુષ જે વસ્તુના ત્યાગી છે, તેની પ્રસન્નતા તે વસ્તુને અર્પણ કરવાથી થઈ શકતી નથી. લોકમાં મદ્ય–માંસના ત્યાગી–ત્યાગ કરવાવાળાને મદ્ય–માંસની ભેટ સંતોષ ઉત્પન્ન કરતી નથી, અધિક શું કહીએ! લીલા કંદમૂળના ત્યાગી શ્રાવક પણ લીલા કન્દમૂળની ભેટથી પ્રસન્ન થતા નથી તો બુદ્ધિમાન પુરુષ પોતે વિચાર કરી લીએ. ॥ સૂ૦ ૫ ॥

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે–'तत्थ.' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया। इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुःक्खपडिघायहेउं, से सयमेव वणस्सइसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वणस्सइसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ६ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव वनस्पतिशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ६ ॥

टीका—

तत्र=वनस्पतिकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा=सम्यगवबोधः खलु=निश्चयेन प्रवेदिता=प्रतिबोधिता-कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परि-

---

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के संबंध में भगवान् ने सम्यक् बोध दिया है। इस जीवन के वन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए तथा दुःखों का विनाश करने के लिए स्वयं वनस्पतिकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से आरंभ करता और आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है। वह आरंभ उस के अहित के लिए, उसकी अबोधि के लिए होता है ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने सम्यक् उपदेश दिया है। अर्थात् भगवान ने बतलाया है कि-कर्मबंध को नष्ट करने के

મૂલાર્થ—વનસ્પતિકાયના આરંભના સમ્બંધમાં ભગવાને સમ્યક્ બોધ આપ્યો છે. આ જીવનના વંદન, માનન, અને પૂજન માટે, જન્મ-મરણથી છુટવાને માટે તથા દુઃખોનો વિનાશ કરવા માટે સ્વયં વનસ્પતિકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે આરંભ કરાવે છે, અને આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરંભ તેના અહિત માટે તેમજ તેની અબોધિ માટે હોય છે. ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ટીકાર્થ—વનસ્પતિકાયના આરંભના વિષયમાં ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ સમ્યક્ ઉપદેશ આપ્યો છે. અર્થાત્ ભગવાને બતાવ્યું છે કે:-કર્મબંધને નષ્ટ કરવા માટે

ज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वनस्पतिकायमुपर्दयती ? त्याह–' अस्य चैव जीवितस्ये '–त्यादि । अस्यैव नश्वरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्= आहार–वस्त्र–पात्र–माल्य–गन्ध–चूर्ण–तालवृन्ता–ऽर्गला–खट्वा–पल्यङ्क –शिबिका–शकट–हल–मुसल–पीठ-फलक–सिंहासन–दण्ड–लकुट–कपाट-वीणा–शालभञ्जिका-–निर्माण–तापन–प्रतापन–प्रकाशने–न्धन–तैलाद्यर्थमित्यर्थः । तथा–परिवन्दन–मानन–पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा–कश्चित् स्वप्रशंसार्थम् उपवनादौ पत्रादिकर्तनकलाकौशलेन वृक्षलतादीनां पत्रादीनि तथा छेदयति यथा तत्कर्तनेन

लिए जीव को परिज्ञा (उपदेश) अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ? यह बतलाते हैं– इसी नाशशील जीवन के सुख के लिए अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र, माला गंध, चूर्ण, तालवृन्त (पंखा), आगल, खाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, पीढा, (वाजोट) फलको (पाट), सिंहासन, डंडा, लकडी, किवाड, वीणा, पुतली आदि बनवाने के लिए, तपाना, विशेष तपाना, प्रकाशन, ईंधन, और तैल आदि के प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । तथा प्रशंसा के लिए भी वनस्पति की हिंसा करते हैं, जैसे–कोई पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए बगीचा आदि में पत्ता वगैरह काटने की कला में कुशलता प्रकट करने के अभिप्राय से वृक्ष लता वगैरह को इस प्रकार काटता है जिससे उसमें

જીવને પરિજ્ઞા (ઉપદેશ)નો અવશ્ય સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

ઉપભોગદ્વાર—

લોક શું પ્રયોજનથી વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે? તે બતાવે છે–આ નાશ પામવાવાળા જીવના સુખ માટે, અર્થાત્–આહાર, વસ્ત્ર, પાત્ર, માલા, ગંધ, ચૂર્ણ, પંખા આગરિયો, ખાટ, પલંગ, પાલખી, ગાડી, હલ, મૂસલ, બાજોઠ, પાટ, સિંહાસન, ડંડા, લાકડી, કમાડ, વીણા, પુતલી વગેરે બનાવવા માટે, તપાવવું વિશેષ તપાવવું, પ્રકાશન, ઈન્ધન-(બાળવાના લાકડા) અને તૈલ આદિના પ્રયોજનથી વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે. તથા પ્રશંસા માટે પણ વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે, જેમકે–કોઈ પુરુષ પોતાની પ્રશંસા માટે બગીચા આદિમાં પાંદડા વગેરે કાપવાની કલામાં કુશળતા બતાવવાના અભિપ્રાયથી

गजाश्वमृगव्याघ्रसिंहादीनां स्वरूपं दधाना वृक्षादयस्तस्योपवनादेर्विशिष्टशोभां जनयन्ति ।

माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, यथा-स एव पत्रादिकर्तनकलाकुशलो मालाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीशस्त्रेण वृक्षलतादीनां पत्रादिकं कृन्तति। पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थम्, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं पत्रपुष्पफलादीनां त्रोटने। तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणबन्धमोचनार्थं, यथा-मुक्तिकामन पूजायां पुष्पपत्रादिसमुच्छेदने, तथा-दुःखप्रतिघातहेतुं=व्याधिशमनाद्यर्थम्-ओषधि-वृक्षलतादीनां मूलकन्दशाखापत्रपुष्पफलादिभेदने, स जीवनसुखाद्यर्थी स्वयमेव

हाथी, घोडा, हिरन, बाघ, सिंह आदि का आकार बन जाता है और इससे उस बगीचे की सुन्दरता बढती है, ऐसा जानकर करता है ।

जनसत्कार के लिए भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे-पत्ता वगैरह काटने में कुशल वही पूर्वोक्त माली कैंची से वृक्षों या लताओं के पत्ता आदि काटता है । तथा पूजन के लिए अर्थात् वस्त्रों और रत्नों के लिए भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । जैसे-देव प्रतिमा आदि के लिए पत्र, फूल, फल तोडने में ।

जन्म मरण से छुटकारा पाने से लिए भी उक्त हिंसा की जाती है । जैसे-मुक्ति की इच्छा से पूजा के लिए फूल-फल तोडने में । दुःखों का प्रतीकार करने के लिए भी यह हिंसा की जाती है । जैसे-रोग मिटाने के लिए ओषधि, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल आदि तोडने में हिंसा की जाती है ।

વૃક્ષ લતા વગેરેને એવા પ્રકારે કાપે છે કે તેમાં હાથી, ઘોડા, હરણ, વાઘ, સિંહ આદિનો આકાર બની જાય છે, અને તેથી એ બગીચાની સુંદરતા વધે છે. એવું સમજીનેજ કરે છે.

જન-સત્કાર માટે પણ વનસ્પતિની હિંસા કરવામાં આવે છે, જેમ-પાંદડાં વગેરેને કાપવામાં કુશલ આગળ કહેલો તેજ માળી કૈંચી (કાતર)થી વૃક્ષો અથવા લતાઓનાં પત્તાં આદિ કાપે છે. તથા પૂજન માટે અર્થાત્ વસ્ત્રો અને રત્નોને માટે પણ વનસ્પતિકાયની હિંસા કરે છે, જેમ-દેવપ્રતિમા આદિ માટે પત્ર ફૂલ ફલ તોડવામાં.

જન્મ-મરણથી છુટવા માટે પણ પૂર્વ કહેલી હિંસા કરવામાં આવે છે, જેમકે-મુક્તિની ઇચ્છાથી પૂજા માટે ફલ ફૂલ તોડવામાં.

દુઃખોનો પ્રતિકાર કરવા માટે પણ એ હિંસા કરવામાં આવે છે. જેમકે-રોગનિવારણ કરવા માટે ઔષધી, વૃક્ષ, લતા, મૂલ, કન્દ, શાખા, પત્ર, ફૂલ આદિ તોડવામાં હિંસા કર-વામાં આવે છે.

वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति। अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति। अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति।

तत्=वनस्पतिकायसमारम्भ, तस्य वनस्पतिसमारम्भ कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति। तथा–तत् तस्य अबोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति। ॥ सू० ६ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वनस्पतिकायस्वरूपं परिज्ञातं, स एवं विभावयतीत्याह—'से तं.' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोचा खलु भगवओ अण-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वयं उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है–'से तं.' इत्यादि।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से सुनकर समझ–बूझकर संयम

એ પ્રમાણે જીવનને સુખી બનાવવાના અભિલાષી તે પુરુષ વનસ્પતિકાયની હિંસા કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રનો સ્વયં ઉપયોગ કરે છે, બીજા પાસે ઉપયોગ કરાવે છે અને વનસ્પતિશસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે.

વનસ્પતિકાયનો આ આરંભ, આરંભ કરવાવાળાને, કરાવવાવાળાને અને અનુમોદન કરવાવાળાને અહિત માટે છે અને સમ્યકૃત્વની અપ્રાપ્તિનું કારણ બને છે. ॥ સૂ૦૬ ॥

તીર્થંકર આદિના સમીપે વનસ્પતિકાયનું સ્વરૂપ જેણે જાણી લીધું છે. તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે–'से तं.' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તે પુરુષ ભગવાન અથવા અણગારો પાસેથી સાંભળી–સમજી–બુઝીને

गाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए। इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइ-कम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥सू० ७॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः। इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ७ ॥

टीका—यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयसर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=वनस्पतिकायसमारम्भणं संबुध्यमानः= अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन् एवं विभावयति—'एवं खलु०' इत्यादि।

ग्रहण करके विचरता है। वह इस प्रकार समझता है-वनस्पतिकाय का आरंभ ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। गृद्ध लोग इसके लिए नाना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पतिकाय का आरंभ करके, शस्त्र का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्राणियों का घात करते हैं॥ सू. ७॥

टीकार्थ--जो पुरुष तीर्थंकर से या उनके श्रमण निर्ग्रन्थों से सर्वसावद्य त्याग रूप संयम स्वरूप समझकर और उसे अंगीकार करके विचरता है वह वनस्पतिकाय के आरंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझकर इस प्रकार विचार करता है:--- 'एवं खलु०' इत्यादि।

સંયમ ગ્રહણ કરીને વિચરે છે. તે આ પ્રમાણે સમજે છે-વનસ્પતિકાયનો આરંભ ગ્રંથ છે, એ મોહ છે, એ માર છે, એ નરક છે. ગૃદ્ધ લોક એ માટે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરીને શસ્ત્રનો પ્રયોગ કરતા થકા બીજાં પણ અનેક પ્રાણીઓનો ઘાત કરે છે. ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ તીર્થંકરથી અથવા તેમના શ્રમણ નિર્ગ્રન્થો પાસેથી સર્વ-સાવદ્ય (કર્મના) ત્યાગરૂપ સંયમના સ્વરૂપને સમજી ને અને તેને અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તે વનસ્પતિકાયના આરંભને અહિતકર અને અબોધિજનક સમજી આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે-'एवं खलु०' ઈત્યાદિ.

इह=मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेवं ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु०' इत्यादि ।

एषः=वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्योपचारात् कारणभूतो वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। तथा-एषः वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः-अज्ञानम्। तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः। तथा-एष एव नरकः= नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इस मनुष्य लोक में जिन्हें श्रमण निर्ग्रंथों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है, उन्हीं को यह विदित होता है। क्या विदित होता है ? इस शंका का समाधान करने के लिए आगे कहते हैं–'एष खलु ग्रन्थ० ' इत्यादि।

वनस्पतिकाय का आरंभ निश्चय से ग्रंथ अर्थात् कर्मबंधरूप है। कारण में कार्य का उपचार करके आरंभ को कर्मबंध कहा है। वस्तुतः वह कर्मबंध का कारण है। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए।

वनस्पतिकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है–अज्ञानजनक है। यह मार है अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है। यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को दश प्रकार की यातना का कारण है।

આ મનુષ્યલોકમાં જેને નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન, અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે. તેઓ આ જાણે છે. શું જાણે છે? એ શંકાનું સમાધાન કરવા માટે આગળ કહે છે, 'एष खलु ग्रन्थ० '-ઇત્યાદિ.

વનસ્પતિકાયનો આરંભ નિશ્ચય ગ્રંથ છે-અર્થાત્ કર્મબંધરૂપ છે, કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને આરંભને કર્મબંધ કહે છે, વસ્તુતઃ તે કર્મબંધનું કારણ છે. એ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું જોઈએ.

વનસ્પતિકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે—અજ્ઞાનજનક છે, તે માર છે, અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે. તે નરક છે, અર્થાત્ નારકી જીવોને દસ પ્રકારની યાતનાઓનું કારણ છે.

इत्यर्थम्=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति। यद्वा-गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थ-मोह-मरणनरकार्थमेव प्रवर्त्तत इति शेषः।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्त्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते? इति जिज्ञासायामाह—'यदिमम्.' इत्यादि।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः, वनस्पतिकर्मसमारम्भेण=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमं=वनस्पतिकायं विहिनस्ति। तथा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन् अनेकरूपान् =त्रसान् स्थावरांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥सू० ७॥

अज्ञानी जीव कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप इन फलों को प्राप्त करके भी बार-बार इसी में गृद्ध होते हैं। अथवा भोग के अभिलाषी पुरुष इसी ग्रंथ, मोह, मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं।

लोग पुन-पुनः कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं' यह जो कथन किया है सो कैसे ज्ञात हुआ? इस जिज्ञासा के होने पर कहते हैं-'यदिमम्.' इत्यादि।

क्यों कि नाना प्रकार के पूर्वोक्त शस्त्रों द्वारा वनस्पतिकाय की हिंसा करने वाले लोग सावद्य व्यापार से वनस्पतिकाय का घात करते हैं। तथा वनस्पतिकाय का आरंभ करते हुए अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के तदाश्रित त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं॥ सू० ७॥

અજ્ઞાની જીવ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ એ ફળોને પ્રાપ્ત કરીને પણ વાર-વાર એમાં ગૃદ્ધ થાય છે. અથવા ભોગના અભિલાષી પુરુષ આ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

લોક પુનઃ પુનઃ (ફરી-ફરી) કર્મબંધ વગેરે માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે; એ કથન જે કર્યું છે, તે કેવી રીતે જાણવામાં આવ્યું? એ જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે. 'यदिमम्.' ઈત્યાદિ.

કેમકે નાના પ્રકારનાં પૂર્વોક્ત શસ્ત્રો દ્વારા વનસ્પતિ કાયની હિંસા કરવાવાળા લોક સાવદ્ય વ્યાપારથી વનસ્પતિકાયનો ઘાત કરે છે, તથા વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરતા થકા, અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ અનેક પ્રકારના તદાશ્રિત ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે. ॥ સૂ. ૭॥

वनस्पतिकर्मसमारम्भफलप्रदर्शनपुरस्सरं वनस्पतिसमारम्भेऽनेकत्रसस्थावरजीव-हिंसाऽवश्यम्भाविनीति प्रदर्शितम्, संप्रति वनस्पतेः सचेतनत्वशङ्कायां तस्य मनुष्य-शरीरवत् सचेतनत्वमस्तीति प्रदर्शयति—' से बेमि. ' इत्यादि ।

यद्वा-यथा मनुष्यशरीरे चैतन्यं सुगमं, तथा वनस्पतिकायेऽपि, तस्माद् वनस्पतेर्मनुष्यशरीरसादृश्यं दर्शयति सूत्रकारः-'से बेमि. ' इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि-इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं, इमंपि बुड्ढिधम्मयं एयंपि वुड्ढिधम्मयं, इमंपि चित्तमंतयं एयंपि चित्तमंतयं, इमंपि छिण्णं मिलाइ एयंपि

वनस्पतिकाय के आरंभ का फल प्रगट करके यह भी प्रदर्शित कर दिया गया है कि—वनस्पतिकाय का आरंभ करने से अन्य त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा भी अवश्य होती है । अब वनस्पतिकाय के सचेतन होने में शंका होने पर उसकी मनुष्य शरीर के समान सचेतनता सूत्रकार प्रकट करते हैं–**'से बेमि.'** इत्यादि ।

अथवा—जैसे मनुष्यशरीर में चैतन्य को समझना सुगम हैं उसी प्रकार वनस्पतिकाय में भी । अत एव वनस्पति मनुष्यशरीर के समान है, यह बात सूत्रकार कहते हैं–**'से बेमि.'** इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ–यह (मनुष्यशरीर) जन्मशील है, वह (वनस्पतिशरीर) भी जन्मशील है । यह वृद्धिशील है, वह भी वृद्धिशील है । यह सचित्त है वह भी सचित्त है । छेदने पर यह मुरझा जाता है, वह भी छेदने पर मुरझा जाता है ।

વનસ્પતિકાયના આરંભનું ફળ પ્રગટ કરીને એ પણ પ્રદર્શિત કરી આપ્યું છે કે–વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરવાથી અન્ય ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા પણ અવશ્ય થાય છે. હવે વનસ્પતિકાયની સચેતનતા હોવામાં શંકા હોવાથી તેની સચેતના મનુષ્યશરીરની સચેતનતા સમાન સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે–' से बेमि. ' ઈત્યાદિ.

અથવા—જેમ મનુષ્ય શરીરમાં ચૈતન્યને સમજવામાં સુગમતા છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિકાયમાં પણ સુગમતા છે. એ માટે વનસ્પતિ મનુષ્યશરીરના સમાન છે. એ વાત સૂત્રકાર કહે છે:–' से बेमि. ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું–આ (મનુષ્ય શરીર) જન્મશીલ છે તે (વનસ્પતિ-શરીર) પણ જન્મશીલ છે, આ વૃદ્ધિશીલ છે; તે પણ વૃદ્ધિશીલ છે, આ સચિત્ત છે–છેદવાથી તે સૂકાઈ જાય છે, તે પણ છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે. આ પણ આહારક છે, તે

छिण्णं मिलाइ, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणिच्चयं एयंपि अणिच्चयं, इमंपि असासयं एयंपि असासयं, इमंपि चओवचइयं एयंपि चओवचइयं, इमंपि विपरिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मयं ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स ब्रवीमि-इदमपि जातिधर्मकम् एतदपि जातिधर्मकम्, इदमपि वृद्धिधर्मकम् एतदपि वृद्धिधर्मकम्, इदमपि चित्तवत् एतदपि चित्तवत्, इदमपि छिन्नं म्लायति एतदपि छिन्नं म्लायति, इदमपि आहारकम् एतदपि आहारकम्, इदमपि अनित्यकम् एतदपि अनित्यकम्, इदमपि अशाश्वतम् एतदपि अशाश्वतम्, इदमपि चयोपचयिकम् एतदपि चयोपचयिकम्, इदमपि विपरिणामधर्मकम् एतदपि विपरिणामधर्मकम् ॥ सू० ८ ॥

टीका--

येन साक्षाद्भगवन्मुखाद् वनस्पतेः सचेतनत्वं श्रुतं सोऽहं ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं, तथा कथयामीत्यर्थः । प्रतिज्ञातमर्थं प्रदर्शयति-इदमपीत्यादि ।

यह भी आहारक है, वह भी आहारक है । यह भी अनित्य है, वह भी अनित्य है । यह भी अशाश्वत है, वह भी अशाश्वत है । यह भी चय-उपचय वाला है, वह भी चय-उपचय वाला है । यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है और वह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जिसने साक्षात् भगवान् के मुख से वनस्पतिकाय की सचेतनता सुनी है वही मैं कहता हूँ-जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ । यही बात कहते हैं-'इदमपि०' इत्यादि ।

પણ આહારક છે. આ પણ અનિત્ય છે. તે પણ અનિત્ય છે. આ પણ અશાશ્વત છે, તે પણ અશાશ્વત છે. આ પણ ચય-ઉપચયવાળા છે, તે પણ ચય-ઉપચયવાળા છે. આ પણ વિવિધ પ્રકારથી પરિણમનશીલ છે, અને તે પણ વિવિધ પ્રકારથી પરિણમન શીલ છે. ॥સૂ.૮॥

ટીકાર્થ—જેણે સાક્ષાત્ ભગવાનના મુખથી વનસ્પતિકાયની સચેતનતા સાંભળી છે.તેજ હું કહું છું-જેવું ભગવાને કહ્યું છે, તેવું જ હું કહું છું, એ વાત કહે છે-'इदमपि.' ઇત્યાદિ.

इह पुरुषस्योपदेशयोग्यतया सामर्थ्येन संनिहितत्वाच्छरीरं संनिकृष्टवाचिनेदम्शब्देन परामृश्यते। इदमपि मनुष्यशरीरं, यद्वा-सामान्यरूपेण त्रसकाये चैतन्यस्य सुज्ञेयत्वात् इदं=त्रसशरीरं, जातिधर्मकं-जातिः-जननं, तद्धर्मकं-जननस्वभावं, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि जातिधर्मकं=मनुष्यशरीरवद् वनस्पतिशरीरमपि जननस्वभावकमस्तीत्यर्थः । तथा इदमपि मनुष्यशरीरं वृद्धिधर्मकं=बालकौमाराद्यवस्थामाश्रित्य वर्धनस्वभावम्, एतदपि वनस्पतिशरीरं अङ्कुरकिसलयपत्रस्कन्धशाखाप्रशाखादिना वर्धनशीलम् । इदमपि मनुष्यशरीरं चित्तवत्=चेतना-

---

'इदम्' शब्द का प्रयोग समीपवर्ती वस्तु के लिए किया जाता है। मनुष्य ही उपदेश का पात्र है और उसका शरीर भी अत्यन्त समीप है अतः मनुष्य के शरीर को 'इदम्' शब्दद्वारा निर्दिष्ट किया गया है। अथवा त्रस जीव के शरीर में चैतन्य को समझना सुगम है, इस कारण 'इदम्' का अर्थ मनुष्यशरीर के बजाय त्रस जीव का शरीर समझ लेना चाहिए।

यह मनुष्यशरीर या त्रस जीव का शरीर उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है। तथा मनुष्य शरीर वृद्धिशील है-बाल, कुमार आदि अवस्थाओं में बढता जाता है उसी प्रकार वनस्पति—शरीर भी अंकुर, किसलय, पत्र, स्कंध, शाखा और प्रशाखा आदि रूप से बढता जाता है। मनुष्यशरीर चेतनावान् है उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी चेतनावान् है,

---

'इदम्' शબ્દનો પ્રયોગ સમીપવર્તી વસ્તુ માટે કરવામાં આવે છે. મનુષ્યજ ઉપદેશને પાત્ર છે, અને તેનું શરીર અત્યન્ત સમીપ છે. એ કારણથી મનુષ્યના શરીરને 'इदम्' શબ્દદ્વારા નિર્દિષ્ટ કર્યું છે. અથવા ત્રસ જીવના શરીરમાં ચૈતન્યને સમજવું સુગમ છે. એ કારણથી 'इदम्'નો અર્થ મનુષ્ય શરીરના બદલે ત્રસ જીવનું શરીર સમજી લેવું જોઈએ.

આ મનુષ્યશરીર અથવા ત્રસજીવનું શરીર ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળું છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળું છે. તથા મનુષ્યશરીર વૃદ્ધિશીલ છે-બાલકુમાર, આદિ અવસ્થાઓમાં વધતું જાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિશરીર પણ અંકુર, કિસલય-કુમળાં, પાન, પત્ર, સ્કંધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિરૂપથી વધ્યે જાય છે, મનુષ્યશરીર ચેતનાવાન છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ચેતનાવાન છે.

युक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीरं चित्तवत्=चेतनावत्, लज्जालुधात्र्यादीनां संकोच-विकास-स्वापा-वबोधदर्शनात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं हस्तादि छिन्नं सत् म्लायति=शुष्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पल्लवफलपुष्पादि छिन्नं सत् म्लायति=शुष्कं भवति । इदमपि आहारकम्=क्षीरौदनाद्याहारकरणशीलं, तथैव एतदपि=वनस्पतिशरीरं भूजलाद्याहारभोजि, न चैतदाहारकत्वमचेतनानां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकं= न सर्वदाऽवस्थायि, एतदपि वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आयुषोऽवधिसत्त्वात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्ट-मायुर्दशवर्षसहस्राणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमावीचीमर-

---

क्यों कि लज्जावंती धात्री आदि वनस्पत्तियों में संकोच, विकास, स्वाप (निद्रा) और अवबोध (जागना) देखा जाता है। हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर मुरझा जाता है उसी प्रकार पत्ता, फूल, फल आदिरूप वनस्पतिशरीर भी छेदने पर मुरझा जाता है। यह मनुष्यशरीर दूध और ओदन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी पृथ्वी, जल आदि का आहार करता है। आहार करने कि क्रिया अचेतन में नहीं देखी जाती।

मनुष्यशरीर अनित्य है-सदा ठहरने वाला नहीं है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी अनित्य है, क्यों कि उसकी आयु की सीमा है। वनस्पतिशरीर की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की है।

मनुष्य शरीर अशाश्वत है-आवीचिमरण प्रतिक्षण होता रहता है, और वनस्पति

કેમકે લજ્જાવંતી-(રીસામણી), ધાત્રી આદિ વનસ્પતિઓમાં સંકોચાવું, વિકાસ, નિદ્રા અને જાગવું જોવામાં આવે છે.

હાથ-આદિ મનુષ્યશરીર છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે. તે પ્રમાણે પાંદડા, ફલ, ફૂલ આદિ રૂપ વનસ્પતિશરીર પણ છેદવાથી સૂકાઇ જાય છે. આ મનુષ્યશરીર દૂધ અને ભાત વગેરેનો આહાર કરે છે, તેમ વનસ્પતિશરીર પણ પૃથ્વી, જલ આદિનો આહાર કરે છે, આહાર કરવાની ક્રિયા અચેતનમાં જોવામાં આવતી નથી.

મનુષ્ય શરીર અનિત્ય છે. હમેશાં સ્થિર રહેવાવાળું નથી, એ પ્રમાણે વનસ્પતિ-શરીર પણ અનિત્ય છે. કેમકે-તેની આયુષ્યની સીમા છે. વનસ્પતિશરીરની ઉત્કૃષ્ટ આયુ દસ હજાર વર્ષની છે.

મનુષ્યશરીર અશાશ્વત છે-આવીચિમરણ પ્રતિક્ષણ થતું રહે છે, તેમ

णेन मरणात्, एतदपि=वनस्पतिशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमरणशीलम् । यथा-इदमपि=मनुष्यशरीरं चयापचयिकम्=इष्टानिष्टाहारादिकं प्राप्य वृद्धिह्रासशीलम्, तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीरं चयापचयिकम्=अनुकूल-प्रतिकूलजलवातादिना वृद्धिह्रासस्वभावम् । यथा-इदमपि मनुष्यशरीरं विपरिणामधर्मकं=विविधपरिणाम-शीलम्, तत्तद्व्याधिवशाद् उदरवृद्धिपाण्डुकृशत्वादिरूपं, रसायनस्नेहाद्युपचार-वशाद् विशिष्टरूपबलोपचयादिरूपं वा विविधपरिणामं प्राप्नोति तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीरं विपरिणामधर्मकं=व्याधिवशात् पत्रपुष्पफलादीनां वर्णादिष्वन्यथा-भावदर्शनात्, विशिष्टदोहदप्रदानेन कदाचित्तेषामुपचयदर्शनाद् विविधपरिणाम-शीलम् । यथा जननस्वभावादिधर्माणां समुदायः सचेतने मनुष्यशरीरे

शरीर भी अशाश्वत है—उसका भी प्रतिक्षण मरण होता है। मनुष्यशरीर इष्टानिष्ट आहार आदि को पाकर बढता—घटता रहता है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी अनुकूल जल—वायु से बढता और प्रतिकूल जल—वायु से घटता है। जैसे मनुष्यशरीर में नाना प्रकार के परिणमन होते हैं—विविध बीमारियों से उदर का बढना, पाण्डु, कृशता आदि, तथा रसायन और घृत आदि के सेवन से विशिष्टरूप और बल की वृद्धि होती है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध प्रकार के परिणमनवाला है—रोग होने पर वनस्पति के पत्ते, फूल, फल आदि और ही तरह के देखे जाते हैं, विशेष प्रकार का दोहद देने से कभी—कभी उन में उपचय भी होता है। इस प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध परिणमन वाला है। जननस्वभाव आदि धर्मों का समूह सचेतन मनुष्य शरीर में या त्रस

વનસ્પતિશરીર પણ અશાશ્વત છે-તેનું પણ પ્રતિક્ષણ મરણ થતું રહે છે. મનુષ્ય શરીર ઈષ્ટાનિષ્ટ આહાર આદિથી વધતું ઘટતું રહે છે તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ અનુકૂલ જલ-વાયુથી વધે છે અને પ્રતિકૂળ જલવાયુથી ઘટે છે. જેમ મનુષ્યશરીરમાં નાના પ્રકારનું પરિણમન થાય છે, વિવિધ બિમારીઓથી પેટનું વધવું, પાંડુરોગ, કૃશતા (દુબલાપણું) આદિ, તથા રસાયન અને ઘૃતઆદિના સેવનથી વિશિષ્ટરૂપ અને બલવૃદ્ધિ થાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ વિવિધ પ્રકારના પરિણમન-વાળું છે, રોગ થતાં વનસ્પતિના પાંદડાં, ફૂલ, ફલ આદિ જૂદીજ જાતનાં દેખાય છે, વિશિષ્ટ પ્રકારના દોહદ દેવાથી કોઈ-કોઈ વખત તેમાં ઉપચય થાય છે, એ પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ વિવિધ પરિણમનવાળું છે. જનનસ્વભાવ આદિ ધર્મોનો સમૂહ સચેતન મનુષ્યશરીરમાં અથવા ત્રસજીવના શરીરમાં જોવામાં આવે છે, તેજ પ્રમાણે

त्रसशरीरे वा वर्तते, तथा-वनस्पतिशरीरेऽपि, तस्माद् वनस्पतिकायः सचेतन इति निःसंशयं जानीहीति भावः ॥ सू० ८ ॥

एवं वनस्पतिकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरणत्रियोगैस्तत्समारम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे

जीव के शरीर में पाया जाता है, उसी प्रकार वनस्पति के शरीर में भी पाया जाता है। अत एव वनस्पतिकाय सचेतन है, यह बात निःसंशय समझ लेना चाहिए ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकार वनस्पतिकाय की सचित्तता जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण और तीन योग से वनस्पतिकाय का समारंभ त्यागना चाहिए। इस अभिप्राय से कहते हैं:—' 'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते। वनस्पतिकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं। इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करे, न दूसरों से वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करावे और न वनस्पतिशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

વનસ્પતિના શરીરમાં પણ જોવામાં આવે છે. એજ માટે વનસ્પતિકાય સચેતન છે, એ વાત સંદેહરહિત સમજી લેવી જોઇએ. ॥ ૮ ॥

એ પ્રમાણે વનસ્પતિકાયની સચિત્તતા જાણીને સાધુતા પ્રાપ્ત કરવા માટે ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી વનસ્પતિકાયનો સમારંભ ત્યજવો જોઇએ. એ અભિપ્રાયથી કહે છેઃ—'एत्थ सत्थं.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વનસ્પતિકાયમાં શસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને આ આરંભ જાણવામાં નથી. (અને) વનસ્પતિકાયમાં શસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળાને આ આરંભ જાણવામાં છે. તેને જાણીને બુદ્ધિમાન્ પુરૂષ પોતે વનસ્પતિશસ્ત્રનો આરંભ કરતા નથી. બીજાની પાસે વનસ્પતિનો આરંભ કરાવતા નથી. અને વનસ્પતિશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન કરતા નથી. જે વનસ્પતિશસ્ત્રના સમારંભના જાણકાર

वणस्सइसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे–त्ति बेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया–अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्तिः तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते वनस्पतिशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका–अत्र=अस्मिन् वनस्पतिकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य= व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरण–त्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावद्यव्यापाराः अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नेव वनस्पतिकाये शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम् असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं दर्शयति-

---

करे । जो वनस्पतिशस्त्र के समारंभ का ज्ञाता है वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से शस्त्र का उपयोग करने वाले को पूर्वोक्त–तीन करण तीन योग से होने वाले वनस्पति की हिंसारूप सावद्य व्यापार-अज्ञात होते हैं, अर्थात् वह नहीं जानता कि–इन व्यापारों से कर्म का बंध होता है । जो वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का प्रयोग नहीं करता वह पूर्वोक्त सावद्य व्यापारों का ज्ञाता होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से इन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है । ज्ञपरिज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं–

છે, તેજ મુનિ છે, તેજ પરિજ્ઞાતકર્મા છે. એ પ્રમાણે હું કહું છું. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ટીકાર્થ—વનસ્પતિકાયના વિષયમાં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવાવાળાને પૂર્વોક્ત (આગળ કહેલા) ત્રણ કરણ–ત્રણ યોગથી થવાવાળી વનસ્પતિની હિંસારુપ સાવદ્ય વ્યાપાર અજ્ઞાત હોય છે, અર્થાત્ તેને જાણવામાં નથી કે આ વ્યાપારોથી કર્મનો બંધ થાય છે.

જે વનસ્પતિકાયના વિષયણાં પૂર્વોક્ત સાવદ્ય વ્યાપારોના જ્ઞાતા હોય છે. તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને જાણે છે. અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યાગ કરી દે છે.

જ્ઞપરિજ્ઞાની પછીજ પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા કેવા પ્રકારે હોય છે. તે બતાવે છે–

'तत् परिज्ञाये' त्यादि । तद्=वनस्पतिकायारम्भणं, परिज्ञाय=कर्मबन्धनस्य कारणं भवतीत्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । शेषं सुगमम् ।

यस्यैते वनस्पतिकर्मसमारम्भाः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः सावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति । 'इति ब्रवीमि'=इति=एतत्सर्वम्, ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने पञ्चमोद्देशकः संपूर्णः ॥

वनस्पतिकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेय–उपादेय का विवेक रखनेवाला बुद्धिमान् पुरुष स्वयं वनस्पतिकाय का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न करावे और आरंभ करने वालों का अनुमोदन न करे । शेष सब सुगम है । वनस्पतिकाय के आरंभ के निमित्त से होने वाले सावद्य व्यापारों को जिसने ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जान लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है, वह तीन करण तीन योग से समस्त सावद्यों का त्यागी ही मुनि होता है । सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं–हे जम्बू ! जैसा भगवान् के समीप मैंने सुना है, वैसा ही यह सब मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाके हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश समाप्त ॥ १–५ ॥

વનસ્પતિકાયના આરંભને કર્મબંધનું કારણ જાણીને હેય–ઉપાદેયનો વિવેક રાખવાવાળા બુદ્ધિમાન્ પુરૂષ પોતે વનસ્પતિકાયનો આરંભ કરતા નથી. બીજા પાસે આરંભ કરાવતા નથી, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપતા નથી. શેષ–બાકી સર્વ સુગમ છે.

વનસ્પતિકાયના આરંભના નિમિત્તથી થવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જેણે જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ જાણી લીધું છે અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યજી આપ્યા છે તે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી સમસ્ત સાવદ્યોના ત્યાગીજ મુનિ હોય છે. સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે–હે જમ્બૂ! જેવું ભગવાનની સમીપ મેં સાંભળ્યું છે; તેવુંજ આ સર્વ હું કહું છું. ॥સૂ૦ ૯॥

શ્રી આચારાંગસૂત્રની 'आचारचिन्तामणि' ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશક સમાપ્ત. ॥૧–૫॥

॥ अथ षष्ठोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चमोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रमप्राप्त-त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः, यद्-वनस्पतिकायानन्तरं त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्नागमे तथैव भगवद्देशनायाः सत्त्वात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यशरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकथनस्यौचित्यात् । त्रसकाय-स्वरूपं वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति-'से बेमि.' इत्यादि ।

छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली हैं कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमों में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक भी हैं, क्यों कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सचित्तता सिद्ध की है तो वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने कीं इच्छा रखने वाले शिष्य के प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मा स्वामी अलग सूत्र कहते हैः-**'से बेमि.'** इत्यादि ।

છઠ્ઠો ઉદ્દેશ—

પાછળના પાંચમા ઉદ્દેશમાં વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. હવે ક્રમથી પ્રાપ્ત ત્રસકાયના સ્વરૂપને બતાવવા માટે છઠ્ઠા ઉદ્દેશને કહે છે.

ભગવાનના ઉપદેશની એજ શૈલી છે કેઃ-વનસ્પતિકાયની પછી ત્રસકાયનું સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવે છે. સર્વ આગમોમાં ભગવાનનો ઉપદેશ આ પ્રમાણે છે, અને તે ઠીક પણ છે, કેમકે મનુષ્યના શરીરનું દૃષ્ટાન્ત આપીને વનસ્પતિની સચિત્તતા સિદ્ધ કરી છે, તો વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપ પછી મનુષ્યસ્વરૂપ જાણવાની ઈચ્છા રાખવાવાળા શિષ્યના પ્રતિબોધ માટે ત્રસકાયનું સ્વરૂપ સમજાવવું જોઈએ, કારણકે મનુષ્ય પણ ત્રસકાયની અન્તર્ગત છે. ત્રસકાયના સ્વરૂપને કહેવાની ઇચ્છા રાખવાવાળા શ્રી સુધર્મા સ્વામી આગળનું સૂત્ર કહે છેઃ-'से बेमि.' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

से बेमि संतिमे तसा पाणा, तंजहा–अंडया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, संमुच्छिमा, उब्भियया, उववाइया, एस संसारेत्ति पवुच्चइ मंदस्स अवियाणओ ॥ सू० १ ॥

छाया—

स ब्रवीमि, सन्तीमे त्रसाः प्राणाः, तद्यथा–अण्डजाः, पोतजाः, जरायुजाः, रसजा, सस्वेदजाः, संमूर्च्छिमाः (संमूर्च्छनजाः) उद्भिज्जाः, औपपातिकाः (उपपातजाः)। एष संसार इति प्रोच्यते मन्दस्य अविजानतः ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन भगवद्वदनारविन्दनिर्गतसकलार्थाः सम्यगवधारिताः, सोऽहं ब्रवीमि= यथा भगवन्मुखाच्छ्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः।

त्रसाः प्राणा इमे सन्तीत्यन्वयः। त्रसाः–त्रस्यन्ति–त्रसनामकर्मोदयात् तापाऽऽद्युपतप्ताच्छायाऽऽदिकं प्रत्यभिसर्पन्तीति त्रसाः=द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ–ये त्रस प्राणी हैं, जैसे–अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, संमूर्छित, उद्भिज और औपपातिक (उपपातज)। मंद एवं अज्ञानी के लिए यह संसार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जिसने भगवान् के मुखकमल से निकले हुए समस्त जीवादि स्वरूपों को भली भाँति समझ लिया है ऐसा मैं कहता हूँ, अर्थात् हे जम्बू! भगवान के मुख से जैसा मैंने सुना है वैसा तुझे कहता हूँ।

त्रसनामकर्म के उदय से ताप आदि से पीडित होकर छाया वगैरह की ओर जाने वाले द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं। इन में द्वीन्द्रिय जीव के स्पर्शन

મૂલાર્થ—તે હું કહું છું—એ ત્રસ પ્રાણી છે. જેમ–અંડજ, પોતજ, જરાયુજ, રસજ, સંસ્વેદજ, સંમૂર્છિમ, ઉદ્‌ભિજ અને ઔપપાતિક (ઉપપાતજ) મંદ અને અજ્ઞાનીઓ માટે આ સંસાર કહેવામાં આવ્યો છે. ॥સૂ૦ ૧॥

ટીકાર્થ—જેણે ભગવાનના મુખકમલથી નીકળેલા સમસ્ત જીવાદિ સ્વરૂપોના અર્થને રૂડી રીતે સમજી લીધા છે, એવો હું કહું છું, અર્થાત્ હે જમ્બૂ! ભગવાનના મુખથી જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવુંજ તને કહું છું.

ત્રસનામકર્મના ઉદયથી તાપ વગેરેથી પીડા પામીને છાયા વિગેરેની પાસે જવાવાળા દ્વીન્દ્રિય, (બે ઇન્દ્રિય) જીવથી લઇને પાંચ ઇન્દ્રિયવાળા જીવો સુધી સર્વ ત્રસ

तत्र द्वीन्द्रियाणां स्पर्शनरसनरूपे द्वे इन्द्रिये, त्रीन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणरूपाणि त्रीणीन्द्रियाणि, चतुरिन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरूपाणि चत्वारीन्द्रियाणि, पञ्चेन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि पञ्चेन्द्रियाणि सन्ति ।

यद्यपि—त्रस्यन्ति=अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु चलन्तीति व्युत्पत्त्या द्वीन्द्रियादयस्तथाऽग्निकाया वायुकाया अपि त्रसा उच्यन्ते। त्रसानां हि द्वौ भेदौ मुख्यतः स्तः—गतितो लब्धितश्च । तत्र गतिः=क्रिया चलनं, देशान्तरप्राप्तिः, स्वभावतोऽनभिसन्धिपूर्वक—तद्योगादग्निकाया वायुकायाश्च त्रसा भवन्तीति गतित्रसा उच्यन्ते। लब्धिस्तु त्रसनामकर्मोदये सति भवति,

---

और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। तीनइन्द्रियवालों के स्पर्शन, रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। पंचेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु और श्रोत्ररूप पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

जो जीव इरादापूर्वक या विना ही इरादे के, ऊपर नीचे या तिरछे चलते हैं वे त्रस जीव हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार द्वीन्द्रिय आदि तथा अग्निकाय और वायु भी त्रस कहलाते हैं। मुख्यरूप से त्रस जीवों के दो भेद हैं—(१) गतित्रस और (२) लब्धित्रस। गति कहिए अथवा क्रिया, चलना अथवा एक देश से दूसरे देश में पहुँचना कहिए। विना इरादे के यह गतिक्रिया मौजूद होने के कारण अग्निकाय और वायुकाय भी त्रस हैं। उन्हें गतित्रस कहते हैं। त्रसनाकर्म का उदय होने पर लब्धि-

---

કહેવાય છે. દ્વીન્દ્રિય જીવોને સ્પર્શન (ચામડી) અને રસના (જીભ) આ બે ઇન્દ્રિયો હોય છે. ત્રીન્દ્રિયોને ચામડી, જીભ અને નાસિકા રૂપ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે ચતુરિન્દ્રિય જીવોને ચામડી, જીભ, નાસિકા અને નેત્ર, આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે. પંચેન્દ્રિય જીવોને ચામડી, જીભ, નાસિકા, નેત્ર અને શ્રોત્ર–કાન રૂપ પાંચ ઇન્દ્રિયો હોય છે.

જે જીવ ઇચ્છાપૂર્વક અથવા ઇચ્છા વિના ઉપર, નીચે અથવા તિરછા ચાલે છે તે ત્રસ જીવ છે. આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય અને વાયુકાય પણ ત્રસ કહેવાય છે. મુખ્યરૂપથી ત્રસ જીવોના બે ભેદ છે-(૧) ગતિત્રસ (૨) લબ્ધિત્રસ. ગતિ કહો અથવા ક્રિયા કહો તે એકજ છે. ચાલવું અથવા એક દેશથી બીજા દેશમાં પહોંચવું કહો. વિના ઇચ્છાથી આ ગતિ કરવાની ક્રિયા હાજર હોવાથી અગ્નિકાય અને વાયુકાય પણ ત્રસ છે. તેને ગતિત્રસ કહે છે. ત્રસનામકર્મનો ઉદય હોવાથી લબ્ધિત્રસતા

तद्योगादभिसन्धिपूर्वकदेशान्तरप्राप्तिलक्षणक्रियायुक्तत्वाद् द्वीन्द्रियादय एव लब्धि-त्रसा उच्यन्ते। तेजोवायवः किल न त्रसनामकर्मोदयनिर्वृत्ताः, किन्तु स्थावरनाम-कर्मोदयनिर्वृतत्वाल्लब्धितः स्थावरा एव; तथाप्यत्र द्वीन्द्रियादयो लब्धित्रसा एव परिगृह्यन्ते, न तु गतित्रसाः, अग्निकायानां प्रागेव चतुर्थोद्देशे प्रतिबोधितत्वात्, वायुकायानामग्रे वक्ष्यमाणत्वाच्च।

यत्तु "लब्ध्या तेजोवायू त्रसौ, लब्धिस्तच्छक्तिमात्रं लब्धित्रसानामिहाधिकारो नास्ति, तेजसोऽभिहितत्वाद् वायोश्चाभिधास्यमानत्वाद्, अतः सामर्थ्यात् गतित्रसा एवाधिक्रियन्ते" इति कैश्चिदुक्तं, तत् प्रामादिकम्,

---

त्रसता प्राप्त होती है। इस लब्धि से इरादापूर्वक गतिक्रिया द्वीन्द्रिय आदि में ही पाई जाती है, अत एव उन्हें लब्धित्रस कहते हैं। तेजस्काय और वायुकाय में त्रसनाम-कर्म का उदय नहीं होता। उन में स्थावरनामकर्म का उदय है, अतः लब्धि की अपेक्षा ये दोनों स्थावर ही हैं। फिर भी यहाँ द्वीन्द्रिय आदि लब्धित्रस जीवों का ग्रहण करना चाहिए, गतित्रस जीवों का नहीं, क्यों कि अग्निकायिक जीवों का चौथे उद्देश में पहले ही वर्णन किया जा चुका है और वायुकाय का आगे वर्णन किया जायगा।

किसी ने कहा है-"लब्धि की अपेक्षा तेजस्काय और वायुकाय त्रस हैं। लब्धि सिर्फ शक्ति को ही कहते हैं। यहाँ लब्धित्रस जीवों का प्रकरण नही है, क्यों कि अग्निकाय का कथन किया जा चुका है और वायुकाय का कथन आगे किया जायगा, अतः सामर्थ्य से गतित्रस ही यहाँ ग्रहण करने योग्य हैं"। यह कथन प्रमादपूर्ण है;

પ્રાપ્ત છે. એ લબ્ધિથી ઇચ્છાપૂર્વક ગતિ કરવાની ક્રિયા દ્વીન્દ્રિયાદિમાંજ જોવામાં આવે છે, એટલા માટે તેને લબ્ધિત્રસ કહે છે. તેજસ્કાય અને વાયુકાયમાં ત્રસનામકર્મનો ઉદય નથી; તેનામાં સ્થાવરનામકર્મનો ઉદય છે. તેથી લબ્ધિની અપેક્ષાએ એ બન્ને સ્થાવર જ છે. ફરીને પણ અહિં દ્વીન્દ્રિય આદિ લબ્ધિત્રસ જીવોનું જ ગ્રહણ કરવું જોઈએ, ગતિત્રસ જીવોનું નહિ. કારણકે અગ્નિકાયિક જીવોનું ચોથા ઉદ્દેશકમાં પ્રથમ વર્ણન કરવામાં આવી ગયું છે, અને વાયુકાયનું આગળ ઉપર વર્ણન કરવામાં આવશે.

કોઇએ કહ્યું કે-"લબ્ધિની અપેક્ષા તેજસ્કાય અને વાયુકાય ત્રસ છેઃ-લબ્ધિ, માત્ર શક્તિનેજ કહે છે. અહિં લબ્ધિત્રસ જીવોનું પ્રકરણ નથી. કારણકે અગ્નિકાયનું વિવેચન તો કરી દેવામાં આવ્યું છે, અને વાયુકાયનું વિવેચન આગળ કરવામાં આવશે. તેથી સામર્થ્યથી ગતિત્રસનું જ અહિં ગ્રહણ કરવું યોગ્ય છે." આ કથન પ્રમાદપૂર્ણ છે.

लब्धित्रसानां गतित्रसत्वेनाङ्गीकारात्। गतित्रसानां लब्धित्रसत्वाभावात्, द्वीन्द्रियादीनां गतित्रसत्वेन शास्त्रेऽनङ्गीकाराच्च ।

प्राणाः=प्राणिनः, इमे=प्रत्यक्षतोऽवगम्याः, यद्वा-वक्ष्यमाणप्रकारकाः सन्ति । ते यथा-(१) अण्डजाः=अण्डाज्जाताः-पक्षिगृहकोकिलादयः, (२) पोतजाः=पोता एव जायन्त इति पोतजाः-हस्तिवल्गुलीचर्मजलूकादयः, (३) जरायुजाः=जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः-गोमहिष्यजा, विकमनुष्यादयः, (४) रसजाः=विकृतरसाज्जाताः, (५) संस्वेदजाः=संस्वेदाज्जाताः-मत्कुणयूकादयः, (६) संमूर्छिमाः=संमूर्छनजाः मक्षिकापिपीलिकाशलभादयः, (७) उद्भिज्जाः=उद्भेदनम्-उद्भित्,तस्माज्जाताः-पतङ्गखञ्जरीटादयः,(८) औपपातिकाः=उपपाते भवाः देवानार-

---

क्योंकि लब्धित्रसों को गतित्रसरूप में अंगीकार किया गया है। मगर गतित्रस लब्धित्रस नहीं हो सकते। द्वीन्द्रिय आदि में गति का सद्भाव है अतः शास्त्र में ऐसा अंगीकार नहीं किया गया।

त्रस प्राणी इस प्रकार हैं-(१) अण्डज-अंडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, गृहकोकिला आदि। (२) पोतज-पोतरूप पैदा होने वाले हाथी, वल्गुली, चर्मजलूक आदि। (३) जरायुज-गर्भ जिस से लिपटा रहता है वह पतली चमडी जरायु कहलाती है, उस से उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कहलाते हैं। (४) रसज-विकृत रस में पैदा हो जाने वाले, (५) संस्वेदज-पसीने से पैदा होने वाले खटमल, जूं आदि। (६) संमूर्च्छिम-मक्खी, कीडी, शलभ आदि। (७) उद्भिज-उद्भेदन से उत्पन्न होने वाले पतंग, खंजरीट आदि। (८) औपपातिक-देव और नारकी।

કારણ કે લબ્ધિત્રસોને ગતિત્રસનાં રૂપમાં અંગીકાર કરવામાં આવ્યો છે, પરન્તુ ગતિત્રસ લબ્ધિત્રસ થઈ શકતા નથી. દ્વીન્દ્રિય આદિમાં ગતિનો સદ્ભાવ છે, તેથી શાસ્ત્રમાં એ પ્રમાણે અંગીકાર કરવામાં આવ્યો નથી.

ત્રસ પ્રાણી આ પ્રમાણે છે-(૧) અંડજ-ઈંડાથી ઉત્પન્ન થવાવાળાં પક્ષી, ગૃહ-કોકિલા (ગરોળી) આદિ. (૨) પોતજ-પોતરૂપ પેદા થવાવાળા હાથી, વલ્ગુલી, ચર્મ-જલૂક (જળો) આદિ. (૩) જરાયુજ-ગર્ભ જેનાથી વિંટાએલું રહે તે પાતળી ચામડી જરાયુ કહેવાય છે. તેમાં ઉત્પન્ન થવાવાળા ગાય, ભેંસ, બકરી, મનુષ્ય આદિ જરાયુજ કહેવાય છે. (૪) રસજ-વિકૃતરસમાં પેદા થવાવાળા. (૫) સંસ્વેદજ-પરસેવાથી પેદા થવાવાળા માકડ, જૂં આદિ. (૬) સંમૂર્છિમ-માખી, કીડી, તીડ આદિ. (૭) ઉદ્‌ભિજ્જ-ઉદ્‌ભેદનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા પતંગ, ખંજરીટ આદિ. (૮) ઔપપાતિક-દેવ અને નારકી.

इह सर्वेषां त्रसजीवानामष्टविधं जन्म प्रतिबोधितम्, एतदेव संमूर्च्छनगर्भौपपातेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि शास्त्रेऽभिहितम्। सन्तीत्यनेन त्रसानामप्यस्तित्वं त्रिकालवर्तीति बोध्यते। मन्दस्य=कुशास्त्रवासनायुक्तस्य, अत एव-अविजानतः= हिताहितविवेकरहितस्य, एषः=अण्डजादिसमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविधत्रसकाये कुशास्त्रवासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः।

अथ त्रसकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्टद्वाराणि निरूपणीयानि। तत्र लक्षण-प्ररूपणा-परिमाण-शस्त्रो-पभोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रदर्श्यन्ते, अव-शिष्ट-वध-निवृत्ति-द्वारद्वयं पृथिवीकायोद्देशे यथाऽभिहितं तथैवावगन्तव्यम्।

यहाँ सभी त्रस जीवों का आठ प्रकार का जन्म बतलाया गया है। इसे संमूर्छन, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म शास्त्र में बतलाया है। 'संति' इस पद द्वारा त्रस जीवों का त्रिकालवर्त्ती अस्तित्व सूचित किया गया है। मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित, अत एव हित-अहित के विवेक से शून्य पुरुष के लिए अण्डज आदि का समूहरूप संसार कहा गया है। आठ प्रकार के त्रसकाय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार वाले का पुनः पुनः जन्म-मरणरूप संसरण होता है। वही संसरण संसार कहलाता है।

त्रसकाय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए। उन में से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र उपभोग और वेदना द्वार क्रम से बतलाते हैं। वध और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए।

અહિં સર્વ ત્રસ જીવોનો આઠ પ્રકારનો જન્મ બતાવ્યો છે. તેને સંમૂર્છન, ગર્ભ અને ઉપપાતમાં સમાવેશ કરી દેવાથી ત્રણ પ્રકારનો જન્મ શાસ્ત્રમાં બતાવ્યો છે. 'संति' આ પદ દ્વારા ત્રસ જીવોનું ત્રિકાલવર્ત્તી અસ્તિત્વ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે. મંદ અર્થાત્ મિથ્યાશાસ્ત્રોના સંસ્કારથી પ્રભાવિત, એવં હિત અહિતના વિવેકથી શૂન્ય પુરૂષ માટે અંડજ આદિના સમૂહરૂપ સંસાર કહેવામાં આવ્યો છે. આઠ પ્રકારના ત્રસકાયમાં મિથ્યાશાસ્ત્રોના સંસ્કારવાળાઓનું પુનઃ પુનઃ જન્મ-મરણ રૂપ સંસરણ થાય છે. એજ સંસરણ તે સંસાર કહેવાય છે.

ત્રસકાયનું સારૂં જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ, તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર, ઉપભોગ અને વેદના દ્વાર ક્રમથી બતાવે છે, વધ અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમાં કહ્યાં છે તેવી રીતેજ અહિં સમજી લેવા જોઈએ.

लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेषादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति। अस्य सचेतनत्वे विवादो नास्ति केषाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात्। अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं प्रज्ञप्तम् यथा–(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) संकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिमुखं क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम्। संकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

---

लक्षणद्वार—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट मालूम होते है। इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है। प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है। जैसे–(१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) संकोंचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन–त्रास पाना (८) पलायन–भागना और (९) गति–आगति का ज्ञान। प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है। प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना–पीछे लौटना प्रतिक्रमण है। शरीर को सिकोडना संकोचन है। शरीर को फैलाना

લક્ષણદ્વાર—

સુખ, દુઃખ, ઇચ્છા અને દ્વેષ આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માલૂમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ–વાંધો નથી. પ્રગટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે.

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યાં છે. જેમકે–(૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન–ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન–ભાગવું અને (૯) ગતિ–આગતિનું જ્ઞાન. પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે. પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું–પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે. શરીરને સંકોડવું તે સંકોચન છે. શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે.

रुतं=शब्दकरणम्, भ्रान्तम्=इतश्चेतश्च गमनम्, त्रसनम्=दुःखादुद्वेजनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्कचित्, गतेश्च कुतश्चित् कचिदेव च विज्ञानम्। उक्तञ्चैतद्भगवता दशवैकालिकसूत्रे- -

"जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया" ॥ १ ॥ इति।

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकायाश्चतुर्विधाः—द्वीन्द्रिय – त्रीन्द्रिय – चतुरिन्द्रिय–पञ्चेन्द्रियभेदात्। इहैव प्रथमोद्देशके लोकवादिप्रकरणे त्रसानां भेदप्रभेदाः प्ररूपिताः। विस्तरतो

प्रसारण है। बोलना रुत कहलाता है। इधर–उधर जाना भ्रमण है। दुःख से उद्वेग पाना त्रसन है। भागने को पलायन कहते हैं। एक जगह से दूसरी जगह आने–जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलाता है।

भगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है:—

"जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण, त्रसन, पलायन और आगतिगतिका विज्ञान (पाया जाता है वे सब त्रस जीव हैं।)"

प्ररूपणाद्वार—

त्रसकाय के चार भेद हैं–द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इसी शास्त्र के पहले उद्देश के अन्दर लोकवादी प्रकरण में त्रस जीवों के भेद–प्रभेद कहे हैं। विस्तार से जानने के इच्छुक वहीं से जान लेवें। इस सूत्र में भगवान् ने

બોલવું તે રૂત કહેવાય છે. અહીં–તહીં જવું તે ભ્રમણ છે. દુઃખથી ઉદ્વેગ પામવું તે ત્રસન છે. ભાગવું તેને પલાયન કહે છે. એક જગ્યાથી બીજી જગ્યાએ આવવા-જવાનું વિજ્ઞાન તે આગતિગતિવિજ્ઞાન કહેવાય છે.

ભગવાને દશવૈકાલિક સૂત્રમાં કહ્યું છે:–

"જે કોઈ પ્રાણીઓમાં અભિક્રમણ, પ્રતિક્રમણ, સંકોચન, પ્રસારણ, રુત, ભ્રમણ, ત્રસન, પલાયન અને આગતિ–ગતિનું વિજ્ઞાન (જોવામાં આવે છે તે સર્વ ત્રસ જીવ છે.)"

પ્રરૂપણાદ્વાર—

ત્રસ કાયના ચાર ભેદ છે:–દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પંચેન્દ્રિય. આજ શાસ્ત્રના પ્રથમના ઉદ્દેશમાં લોકવાદીપ્રકરણમાં ત્રસજીવોના ભેદ–પ્રભેદ બતાવ્યા છે, વિસ્તારથી

जिज्ञासुभिस्तत एवावगन्तव्याः । अस्मिन् सूत्रेऽपि भगवता-अण्डजपोतजादिभेदाः प्रदर्शितास्तेऽपि तत्रैव समाविष्टाः ॥

परिमाणद्वारम्—

क्षेत्रतः संवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः त्रसकायपर्याप्तकाः । एते च बादरतेजस्कायपर्याप्तकेभ्योऽसंख्येयगुणाः, त्रसकायपर्याप्तकेभ्यस्त्रसकायिकाऽपर्याप्तकाः असंख्येयगुणाः ।

तथा कालतः प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः सागरोपमलक्षपृथक्त्वसमयराशिपरिमाणा जघन्यपदे, उत्कृष्टप्रदेऽपि सागरोपमलक्षपृथक्त्वपरिमाणा एवेति । तथा चागमः—

अंडज और पोतज आदि जो भेद बतलाये हैं, ये सब भी उन्हीं में अन्तर्गत हो जाते हैं ।

परिमाणद्वार-

त्रसकाय के पर्याप्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि के बराबर हैं । ये बादर तेजस्काय पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा हैं । पर्याप्त त्रसकायिक जीवों की अपेक्षा अपर्याप्त त्रस जीव असंख्यातगुणा हैं । काल की अपेक्षा जघन्यपद में प्रत्युत्पन्न त्रस जीव एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम कीं समय-राशि के बराबर हैं और उत्कृष्ट पद में भी एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समयराशि के बराबर ही हैं । आगम में भी कहा है—

જાણવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાંથી જાણી લે. આ સૂત્રમાં ભગવાને-અંડજ અને પોતજ આદિના જે ભેદ બતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાયના પર્યાપ્તજીવ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સંવર્તિત લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે. તે બાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત ગણા છે. પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ અસંખ્યાત ગણા છે.

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમાં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે. આગમમાં પણ કહ્યું છેઃ-

" पडुप्पन्ना तसकाइया केवइकालस्स निल्लेवा सिया ? गोयमा ! जहन्नपए सागरोवमसयसहस्सपुहत्तस्स, उक्कोसतए वि सागरोवमसयसहस्सपुहत्तस्स" ॥ इति ।

विरहापेक्षया त्रसानां निष्क्रमणमुपपातश्च जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा भवन्ति, उत्कृष्टतस्तु प्रतरस्यासंख्येयभागप्रदेशपरिमाणाः । त्रसेषु जीवानां नैरन्तर्येणोत्पत्तिर्निष्क्रमो वा जघन्येनैकं समयं द्वौ समयौ त्रीन् वा समयान् भवति । उत्कृष्टतस्त्वावलिकाया असंख्येयभागपरिमितं कालं सततमेवोत्पत्तिर्निष्क्रमो वा भवति । नैरन्तर्येणैकजीवस्यावस्थानं तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तं त्रसकाये भवति, तदनु स पृथिव्याद्येकेन्द्रियेषु समुत्पद्यते । उत्कृष्टतः सातिरेकं सागरोपमसहस्रद्वयं सततं नैरन्तर्येण त्रसकाये तिष्ठति । ततः

" प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीव कितने काल के बराबर हैं ? गौतम ! जघन्य पद में एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम के बराबर और उत्कृष्ट पद में भी इतने ही है" ।

विरह की अपेक्षा त्रस जीवों का निष्क्रमण और उपपात जघन्य एक, दो या तीन हैं, और उत्कृष्ट प्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । त्रसकाय में जीवों की निरन्तर उत्पत्ति या च्यवन जघन्य एक समय, दो समय, तीन समयतक है । उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग परिमित काल तक निरन्तर उत्पत्ति और च्यवन होता रहता है । निरन्तर एक जीव की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक त्रसकाय में होती है और उसके बाद वह पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय में उत्पन्न होता है । उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार सागरोपमतक निरन्तर त्रसकाय में ठहर सकता है । तत्पश्चात्

"પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસકાયિક જીવ કેટલા કાલની બરાબર છે? ગૌતમ! જઘન્ય પદમાં એક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની બરાબર અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એટલાં જ છે."

વિરહની અપેક્ષા ત્રસ જીવોનું નિષ્ક્રમણ અને ઉપપાત જઘન્ય એક, બે અથવા ત્રણ છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની બરાબર છે. ત્રસકાયમાં જીવોની નિરંતર ઉત્પત્તિ અથવા નિષ્ક્રમણ (ચ્યવન) જઘન્ય એક સમય, બે સમય અથવા ત્રણ સમય સુધી છે. ઉત્કૃષ્ટ આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગ પરિમિત કાલ સુધી નિરંતર ઉત્પત્તિ અને નિષ્ક્રમણ (નિકળવું) થતું રહે છે. નિરંતર એક જીવની સ્થિતિ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી ત્રસકાયમાં હોય છે. અને તે પછી તે પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ઉત્કૃષ્ટ કાંઈક અધિક બે હજાર સાગરોપમ સુધી

पृथिव्यादिषूत्पद्यते । ॥ सू० १ ॥

त्रसजीवानां सुखं दुःखं वा यथा भवति तदाह—' निज्झाइत्ता.' इत्यादि ।

मूलम्—

निज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिनिव्वाणं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिनिव्वाणं महब्भयं दुक्खं–त्ति बेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—

निध्याय प्रतिलेख्य प्रत्येकं परिनिर्वाणं सर्वेषां प्राणानां सर्वेषां भूतानां सर्वेषां जीवानां सर्वेषां सत्त्वानाम् असातम् अपरिनिर्वाणं महाभयं दुःखमिति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

प्रकरणसम्बन्धात् त्रसजीवस्वरूपं पृथिव्यादिसकलजीवस्वरूपं वा

पृथ्वीकाय आदि स्थावरों में उत्पन्न होता है ॥ सू० १ ॥

त्रसजीवों को सुख–दुःख जिस प्रकार होता है सो कहते हैं:—' **निज्झाइत्ता.**' इत्यादि ।

मूलार्थ—विचार करके और अच्छी तरह देखकर कहता हूँ कि–सभी प्राणियों का, सभी भूतों का, सभी जीवों का, और सभी सत्वों का परिनिर्वाण अर्थात् सुख पृथक्–पृथक् है । तथा असातारूप, अपरिनिर्वाणरूप महाभयरूप दुःख भी पृथक्–पृथक् है । ॥ सू० २ ॥

टीकार्थ—त्रस जीवों का प्रकरण होने के कारण ' विचार करने ' का आशय यह है कि त्रसजीवों का स्वरूप, अथवा पृथ्वीकाय आदि समस्त जीवों का

નિરંતર ત્રસકાયમાં રહી શકે છે, તે પછી પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ॥સૂ૦ ૧॥

ત્રસ જીવોને સુખ–દુઃખ જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છેઃ–'निज्झाइत्ता.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વિચાર કરીને સારી રીતે જોઈને કહું છું કે–સર્વ પ્રાણીઓ સર્વ-ભૂતો, સર્વ જીવો અને સર્વ સત્ત્વોનું પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્–પૃથક્–જૂદાં–જૂદાં છે, તથા અસાતારૂપ અપરિનિર્વાણરુપ મહાભયરૂપ દુઃખ પણ જૂદાં–જૂદાં છે. ॥સૂ૦ ૨॥

ટીકાર્થ—ત્રસજીવોનું પ્રકરણ હોવાના કારણે ત્રસજીવોનું સ્વરૂપ અથવા પૃથ્વીકાય

निध्याय=मनसा समालोच्य, प्रतिलेख्य=विलोक्य सम्यग् विज्ञायेत्यर्थः, ब्रवीमि=कथयामि-सर्वेषां प्राणानां=प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः=प्रणिनस्तेषां, सर्वेषां भूतानाम्=उत्पत्तिशीलानाम्, सर्वेषां जीवानां=कालत्रये जीवनाद् चैतन्यस्वरूपाणामित्यर्थः, सर्वेषां सत्त्वानां=सर्वदाऽस्तित्ववताम्, त्रसजीवानाम्, यद्वा-सर्वेषामित्यस्य पुनः पुनरुपादानेन स्थावरा अपि गृह्यन्ते, तेन त्रसानां स्थावराणां च जीवानामित्यर्थः। परिनिर्वाणं=सुखं, प्रत्येकम्=एकैकं पृथक् पृथगस्ति ।

शब्दव्युत्पत्त्या विभिन्नार्थबोधकत्वात् प्राणभूतादिशब्दानामुच्चारणं न पुनरुक्तिदोषः । 'निज्झाइत्ता' 'पडिलेहित्ता' इति पदद्वयेन जीवानां पुनः पुनरनुसन्धानं प्रतिलेखनं च सूचितम्, तदेव पुनः पुनर्विधेयतया प्रतिबोधनार्थ-

---

स्वरूप मन से विचार करके तथा सम्यक् प्रकार से जानकर कहता हूँ । सभी प्राणियों का सभी भूतों अर्थात् उत्पत्तिशील जीवों का, सभी जीवों (त्रिकाल में जीवित रहने वालों) का और सभी सत्त्वों (सर्वदा अस्तित्व वाले त्रस जीवों) का, अथवा बार-बार 'सव्वेसिं' पदका प्रयोग करने के कारण यह अर्थ लेना चाहिए कि-सभी त्रस और स्थावर जीवों का सुख पृथक्-पृथक् है ।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ के बोधक प्राण, भूत आदि शब्दों का उच्चारण करने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है । अथवा प्राण भूत आदि शब्दों को एक ही अर्थ का वाचक मान लिया जाय तो भी पुनरुक्तिदोष नहीं है । 'निज्झाइत्ता' 'पडिलेहित्ता' इन दो पदों द्वारा जीवों का पुनः पुनः विचार एवं प्रतिलेखन सूचित किया है । उसी को पुनः पुनः विधेयरूप से समझाने के लिए

આદિ સમસ્ત જીવોનું સ્વરૂપ મનથી વિચાર કરીને તથા સમ્યક્ પ્રકારે જાણીને કહું છું-સર્વ પ્રાણીઓનું, સર્વભૂતોનું અર્થાત્ ઉત્પત્તિશીલ જીવોનું, સર્વ જીવો (ત્રણ કાલ જીવિત રહેવાવાળા)નું, અને સર્વ સત્વો-(સર્વદા અસ્તિત્ત્વવાળા ત્રસ જીવો)નું, અથવા વારંવાર 'सव्वेसिं' પદનો પ્રયોગ કરવાના કારણે એ અર્થ લેવો જોઇએ કે-સર્વ ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનું સુખ પૃથક્-પૃથક્ છે.

શબ્દશાસ્ત્રની દૃષ્ટિથી ભિન્ન-ભિન્ન અર્થના બોધક પ્રાણ-ભૂત આદિ શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કરવાથી પણ પુનરૂક્તિ દોષ આવતો નથી અથવા પ્રાણભૂત આદિ શબ્દોને એકજ અર્થના વાચક માની લેવામાં આવે તો પણ પુનરૂક્તિદોષ નથી. 'निज्झाइत्ता' 'पडिलेहित्ता' આ બે પદો દ્વારા જીવોનો પુનઃ પુનઃ વિચાર અર્થાત્ પ્રતિલેખન સૂચિત કર્યું છે. તેને પુનઃ પુનઃ

मनेकपर्यायशब्दैस्तेषामुपादानात् ।

तथा सर्वेषां दुःखं प्रत्येकं पृथक् पृथगस्ति । कथम्भूतं दुःखमित्याह— 'असात'-मित्यादि । असातम् असातवेदनीयकर्मफलभूतम्, तथा-अपरिनिर्वाणम्= सर्वथा शरीरमनः पीडाकरम्, तथा-महाभयम्=दुःखादधिकं भयमन्यन्नास्ति, यतः सर्वेऽपि प्राणिनः शारीरान्मानसादपि दुःखादुद्विजन्ते, तस्मान्महाभयस्वरूपमित्यर्थः ॥ सू० २ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य । तत्थ पुढो पास आतुरा, परितावंति, संति पाणा पुढो सिया ॥ सू० ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दुःख भी पृथक्-पृथक् है । दुःख किस प्रकार का है ? सो कहते हैं-वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा उत्पन्न करता है और महाभयंकर है-दुःख से बढकर और कोई भय नहीं है, क्यों कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःख से घबराते हैं, अतः वह महाभयकारी है ॥ सू० २ ॥

और मैं यह कहता हूँः—'**तसंति पाणा.**' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्राणी विदिशाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं। अलग-अलग प्रयोजनो के लोलुप लोग उन्हें संताप पहुंचाते है । वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न आश्रयो पर आश्रित हैं ॥ सू० ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમજાવવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે.

આ પ્રમાણે સર્વજીવોના દુઃખ પણ જૂદા-જૂદા છે. દુઃખ કયા પ્રકારના છે? તે કહે છે-તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે; શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા ઉત્પન્ન કરે છે. અને મહા ભયંકર છે. દુઃખથી વધારે કોઈ પણ ભય નથી. કારણકે સર્વ પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક દુઃખથી ગભરાય છે. તેથી તે મહાભયકારી છે. ॥સૂ૦ ૨॥

અને હું એ પણ કહું છું:—'तसंति पाणा.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—પ્રાણી વિદિશાઓમાં અને દિશાઓમાં ઉદ્વેગ પામે છે. અલગ-અલગ પ્રયોજનોથી લોલુપ લોક તેને સંતાપ પહોંચાડે છે. તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન આશ્રયો પર આશ્રિત છે. ॥સૂ૦ ૩॥

छाया—

त्रस्यन्ति प्राणाः प्रदिशः दिशासु च । तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुराः परितापयन्ति, सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः ॥ सू० ३ ॥

टीका—

प्राणाः=प्राणिनः प्रकरणसम्बन्धात् त्रसजीवाः प्रदिशः=प्रगता दिक् प्रदिक् विदिगित्यर्थः, ततः प्रदिशः, तथा—दिशासु प्राच्यादिदिक्षु च समागन्तुकेभ्यो दुखेभ्य, त्रस्यन्ति=बिभ्यति । सर्वदिग्विदिक्षु त्रसाः सन्ति, ते च सर्वदिग्विदिग्भ्यः समागन्तुकेभ्यो दुःखेभ्यस्त्रस्यन्तीत्यर्थः ।

कुतस्तेषां दुःखसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह-'तत्र-तत्रे' त्यादि । तत्रतत्र= तेषु—तेषु, पृथक्=विभिन्नेषु प्रयोजध्नेषु, आतुराः=अर्चाचर्ममांसादिगृध्नवः त्रसान् परितायन्ति=परिपीडयन्ति । विविधवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपणेन च सर्वथा दुःखं जनयन्तीत्यर्थः । कीदृशास्ते त्रसाः, यानातुराः परितापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

---

टीकार्थ—त्रस का प्रकरण होने से 'प्राण' शब्द का अर्थ यहाँ त्रसजीव समझना चाहिए। त्रस प्राणी विदिशाओं में आगन्तुक दुःखों से त्रस्त हैं। तात्पर्य यह है कि—सभी विदिशाओं में और सभी दिशाओं में त्रसजीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और दिशाओं से आने वाले दुःखों से वे पीडित होते हैं।

उन्हें दुःख क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोजनों से आतुर लोग अर्थात् अर्चा (शरीर), चर्म, मांस, आदि के लोलुप पुरुष त्रस जीवों को पीडा पहुँचाते हैं। उन्हें भाँति—भाँति की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण करते हैं और सब प्रकार से दुःख उत्पन्न करते हैं। वे त्रसजीव पृथिवी आदि के

ટીકાર્થ—ત્રસનું પ્રકરણ હોવાથી 'પ્રાણ' શબ્દનો અર્થ ત્રસજીવ સમજવો જોઇએ ત્રસ પ્રાણી વિદિશાઓમાં તથા દિશાઓમાં આગન્તુક દુઃખોથી ત્રાસ પામે છે. તાત્પર્ય એ છે કેઃ—સર્વ વિદિશાઓમાં અને સર્વ દિશાઓમાં ત્રસ જીવ વિદ્યમાન છે, અને સર્વ વિદિશાઓ તથા દિશાઓથી આવવાવાળા દુઃખોથી તે પીડા પામે છે.

તેને દુઃખ શા માટે થાય છે? તેનો ઉત્તર એ છે કે—જૂદા—જૂદા પ્રયોજનોથી આતુર લોક અર્થાત્ અર્ચા (શરીર), ચર્મ, માંસ વગેરેના લાલચું પુરુષ ત્રસ જીવોને પીડા પહોંચાડે છે, તેને જૂદી—જૂદી જાતની વેદના ઉત્પન્ન કરે છે. તે ત્રસ જીવ પૃથ્વી આદિના આશ્રયે

माह–' सन्ति' इत्यादि। श्रिताः=पृथिव्यादीन् समाश्रित्यावस्थिताः, पृथक्=विभिन्नाः द्वीन्द्रियादयः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति।

यद्यपि सर्वदिग्विदिग्भ्य आगामिनो दुःखाद् बिभ्यन्तस्त्रसजीवाः स्वात्मरक्षार्थं पृथिव्यादीन् समाश्रित्य वर्तन्ते तथापि मांसचर्मादिलुब्धा आतुरास्तान् बन्धनताडनादिना शावकाद्यपहारेण प्राणाद्यपहारेण च परिपीडयन्ति, ततः संसारं प्राप्नुवन्ति। तस्मादेतत् परिज्ञाय सकलसावद्यव्यापारपरिहारेण संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ३ ॥

अथ सर्वथा त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा त्रसकाय–समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह–' लज्जमाणा. ' इत्यादि।

सहारे अलग–अलग रहे हुए हैं।

यद्यपि सब दिशाओं और विदिशाओं से आनेवाले दुःखों से डरने वाले त्रस जीव अपनी रक्षा के लिए पृथ्वी आदि के सहारे टिके रहते हैं फिर भी मांस और चर्म आदि के लोभी लोग उन्हें बंधन एवं ताडन द्वारा, उनके बच्चोंका अपहरण करके तथा उनके प्राणों का हनन करके उन्हें पीडा पहुँचाते हैं और इस कारण वे हिंसक, संसार को प्राप्त होते हैं। आशय यह हैं कि–यह सब जानकर सम्पूर्ण सावद्य व्यापार का त्याग करके संयम की साधना में प्रवृत्त होना चाहिए ॥ सू० ३ ॥

अब पूर्णरूप से त्रसकाय के आरंभ का त्याग करने वाले अनगारों का तथा त्रसकाय के आरंभ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिंगियों का विवेचन करके समझाते हुए कहते हैं– ' लज्जमाणा. ' इत्यादि।

અલગ–અલગ રહેલા છે.

જો કે સર્વ દિશાઓ અને વિદિશાઓથી આવનારા દુઃખોથી ડરવાવાળા ત્રસજીવ પોતાની રક્ષા માટે પૃથ્વી આદિના આશ્રયે ટકી રહે છે. ફરી પણ માંસ અને ચામડા આદિના લોભી લોક તેને બંધન એ પ્રમાણે તાડનદ્વારા, તેના બચ્ચાંઓનું અપહરણ કરીને (ચોરી જઇને) તથા તેના પ્રાણોનું હનન–નાશ કરીને તેને પીડા પહોંચાડે છે. અને આ કારણથી તે હિંસક–સંસારને પ્રાપ્ત થાય છે. આશય એ છે કે–એ સર્વ જાણી કરીને સંપૂર્ણ સાવદ્ય વ્યાપારનો ત્યાગ કરીને સંયમની સાધનામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઇએ. ॥૩॥

હવે પૂર્ણરૂપથી ત્રસકાયનાં આરંભનો ત્યાગ કરવાવાળા અણગારોનું તથા ત્રસ-કાયના આરંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિંગિઓનું વિવેચન કરીને સમજાવતા થકા કહે છે—' लज्जमाणा. ' ઈત્યાદિ.

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं, विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं, तसकायसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्मः, इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः त्रसकायसमारम्भेण, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रहृदयतया त्रसकायसमारम्भे पराङ्मुखाः त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः, केचित्-प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित्-परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः, सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे त्रस-

---

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ में संकोच करने वाले (अनगारों को) अलग समझो । 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले कोई-कोई (द्रव्यलिंगी) नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से जिनका हृदय द्रवित है ऐसे अनगार त्रसकाय के आरंभ से सर्वथा विमुख रहते हैं । ये अनगार अलग-अलग हैं । कोई अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं । कोई-कोई परोक्षज्ञानी भाविमात्मा हैं,

---

મૂલાર્થ—ત્રસકાયના આરંભમાં સંકોચ કરવાવાળા અણગારોને અલગ-જુદા-સમજો, 'અમે અણગાર છીએ' એ પ્રમાણે કહેવાવાળા કોઈ-કોઈ દ્રવ્યલિંગી, નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી ત્રસકાયનો આરંભ કરીને, ત્રસકાયનાં શસ્ત્રોનો પ્રયોગ કરતા થકા બીજા પણ અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. તેને અલગ જુઓ. ॥સૂ૦ ૪॥

ટીકાર્થ—પરમ કરૂણાથી જેનું હૃદય દ્રવિત છે એવા અણગાર ત્રસકાયના આરંભથી સર્વથા વિમુખ રહે છે-દૂર રહે છે. તે અણગાર અલગ-અલગ છે. કોઈ અવધિજ્ઞાની, કોઈ મનઃ-પર્યયજ્ઞાની, અને કોઈ કેવલજ્ઞાની છે. કોઈ-કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની

कायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैस्त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते, इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ते तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव त्रसकायरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रर्वतन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्; विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः, शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद्

इन्हें देखो । अथवा इन्हें द्रव्यलिंगियों से अलग समझना चाहिए । ये त्रसकाय का आरंभ करते हुए डरते हैं, त्रस्त होते है, उद्विग्न होते हैं—तीन करण, तीन योग से त्रसकाय के आरभ के त्यागी हैं, यह देखो ।

और कोई-कोई **'हम अनगार हैं'** इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए तथा **'हम ही त्रसकाय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं'** इस तरह प्रलाप करते हुए कई द्रव्यलिंगी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते और न गृहस्थ के किसी काम का त्याग करते हैं । यह बात आगे बतलाते हैं:—**'यदिमम्'** इत्यादि ।

द्रव्य और भाव के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन

ભાવિતાત્મા છે. આને જુઓ. અથવા એને દ્રવ્યલિંગીઓથી અલગ સમજવા જોઇએ. જે ત્રસકાયનો આરંભ કરતાં ડરે છે, ત્રસ્ત થાય છે, ઉદ્વિગ્ન થાય છે-ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી ત્રસકાયના આરંભના ત્યાગી છે એ જુઓ.

અને કોઈ-કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' એ પ્રમાણે અભિમાકપૂર્વક કહેતા થકા તથા 'અમેજ ત્રસકાયના રક્ષક અને મહાવ્રતધારી છીએ' એ પ્રમાણે પ્રલાપ-બકવાદ કરનારા કેટલાક દ્રવ્યલિંગી છે. તેને અણગારોથી જૂદા સમજો.

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી અણગારના ગુણોમાં જરાપણ પ્રવૃત્ત નથી અને ગૃહસ્થના કોઈ પણ કામનો તેઓએ ત્યાગ કર્યો નથી. તે વાત આગળ બતાવે છે-'यदिमम्.' ઈત્યાદિ.

દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારનાં છે. દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે. સ્વકાય,

द्विविधम्, तत्र-द्रव्यशस्त्रं-स्वकाय-परकायो-भयकायभेदात् त्रिविधम्। तत्रस्वकाय-शस्त्रेत्रसकायस्य त्रसकायः, यथा-मृगादीनां व्याधकुक्कुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः। परकायशस्त्रम्-पाषाणजलाग्निलगुडखङ्गतोमरछुरिकादयः। उभयकायशस्त्रम्-लगुडखङ्गादिधारिणो मनुष्यादयः। भावशस्त्रं तु त्रसकायं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम्। त्रसकायसमारम्भेण, त्रसः=त्रसनशीलः कायः=शरीरं यस्य स त्रसकायस्तस्य समारम्भः=पीडाकरः सावद्यव्यापारस्तेन, इमं=त्रसकायं विहिंसन्ति।

त्रसकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह-'त्रसकायशस्त्रम्.' इत्यादि। त्रसकायशस्त्रं=त्रसजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=त्रसकायं प्रति प्रयुञ्जानाः अन्यान्=त्रसकायभिन्नान्

भेद हैं-स्वकाय, परकाय, और उभयकाय। त्रसकाय का त्रसकाय स्वकायशस्त्र हैं, जैसे मृग आदि के लिए व्याध, कुत्ता आदि, मनुष्य के लिए मनुष्य आदि। परकायशस्त्र जैसे पत्थर, जल, अग्नि, लकडी, तलबार, तोमर, शेरी आदि। उभयकायशस्त्र जैसे लाठी, तलवार आदि कारण करने वाला मनुष्य आदि। त्रसकाय के प्रति मन, वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार होना भावशस्त्र है। इन नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकाय का समारंभ करके लोग त्रसकाय को पीडा पहुँचाते है।

त्रसकाय की हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले छह प्रकार के जीवनिकायरूप सम्पूर्ण लोक की हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-त्रसकाय में, त्रसकाय की हिंसा करने वाले शस्त्रों का जो प्रयोग करते हैं वे त्रसकाय के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि

परकाय અને ઉભયકાય, ત્રસકાયનું ત્રસકાય તે સ્વકાયશસ્ત્ર છે, જેમ મૃગ આદિને માટે વાઘ-કુતરા આદિ, મનુષ્યને માટે મનુષ્ય આદિ. પરકાયશસ્ત્ર, જેમકે પથ્થર, જલ, અગ્નિ, લાકડી, તરવાર, ભાલું, છરી આદિ. ઉભયકાયશસ્ત્ર, જેમકે-લાકડી, તલવાર આદિ ધારણ કરવાવાળા મનુષ્ય આદિ. ત્રસકાયના પ્રતિ મન, વચન અને કાયાનો અપ્રશસ્ત વ્યાપાર થવો તે ભાવશસ્ત્ર છે. તે નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી ત્રસકાયનો સમારંભ કરીને લોક ત્રસકાયને પીડા પહોંચાડે છે.

ત્રસકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા છ પ્રકારના જીવનિકાયરૂપ સમ્પૂર્ણ લોકની હિંસા કરે છે. એ વાત કહે છે-ત્રસકાયમાં, ત્રસકાયની હિંસા કરવાવાળા-શસ્ત્રોનો જે પ્રયોગ કરે છે, તે ત્રસકાયથી જૂદા અનેક પ્રકારના પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ સ્થાવર

अनेकयरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्रपुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च घ्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च । दण्डिनोऽपि—

"वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि षड्जीवनिकायसमारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पाषाणादीनां खण्डशः करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा–बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिंगी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारंभ करके त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते हैं । दण्डी भी—

'हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगार हैं' ऐसा कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध षड्जीवनिकाय का समारंभ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए–खड्डे खोदने में, पत्थरों के टुकडे करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता हैं । बहुत–से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पंचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે.

સંસારમાં ઘણાં પ્રકારનાં દ્રવ્યલિંગી છે. એમાંથી શાકય આદિ કન્દ, મૂળ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગવવા માટે–ઉપયોગ કરવા માટે, તેના પર રહેલા ત્રસ જીવોનો સમારંભ કરીને અને પૃથ્વી આદિ સ્થાવર જીવોનો સમારંભ કરીને ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે. કરાવે છે, અને ઘાત કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે. દંડી પણ " અમે પંચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞાના આરાધક અણગાર છીએ." એ પ્રમાણે કહેવાવાળા જુઠા સાધુ સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે. અને શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ ષટ્જીવનિકાયનો સમારંભ કરાવે છે.

પ્રતિમા, મંદિર વગેરેનું નિર્માણ કરવા માટે ખાડા ખોદવા, પત્થરોના ટુકડા કરાવવા, તેને ઉપરથી પછાડવામાં મનુષ્ય આદિનો ઘાત કરાવે છે. ઘણાંજ વૃક્ષોને કાપવાથી વૃક્ષોના

तदाश्रितान् अण्डजशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिबहुविधविकलेन्द्रियांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादित्रोटनेऽपि च षड्जीवनिकायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं कथयति—'तत्थ खलु.' इत्यादि।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुःखपडिघायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

कीडी पतंग आदि वहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात कराते हैं। प्रतिमापूजन के लिए फूलोंका बगीचा बनाने में, फूल, पत्ता और फल आदि तोडने में भी षट्काय के जीवों की घात कराते हैं ॥ सू० ४ ॥

अब सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं:—'तत्थ खलु.' इत्यादि।

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ के विषय में भगवान्ने उपदेश दिया है। इसी जीवन के वन्दन, मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म-मरण से छूटने के लिए और दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता है, दूसरों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करता है और त्रसकाय का समारंभ करने वाले अन्य लोगों का अनुमोदन करता है। यह उसके अहित के लिए हैं, उसकी अंबोधि के लिए है ॥ सू० ५ ॥

આશ્રયે રહેલા અંડજ જીવોના પંચેન્દ્રિય બચ્ચાઓનો ઘાત કરાવે છે. કીડી પતંગ આદિ ઘણાજ પ્રકારના વિકલેન્દ્રિય જીવોનો ઘાત કરાવે છે. પ્રતિમાપૂજન માટે ફૂલોના બગીચા બનાવવામાં ફૂલ, પતાં (પાંદડા) અને ફળ આદિ તોડવામાં પણ ષટ્કાયના જીવોનો ઘાત કરે છે. ॥ ૪ ॥

હવે સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે:-'तत्थ खलु.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ત્રસકાયના આરંભના વિષયમાં ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે. આ જીવનના વંદન, માન, અને પૂજનને માટે તથા જન્મ-મરણથી છૂટવા માટે અને દુઃખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે, બીજા પાસે ત્રસકાયનો આરંભ કરાવે છે. અને ત્રસકાયનો સમારંભ કરવાવાળા અન્ય લોકોને અનુમોદન આપે છે, તે એમના અહિત માટે છે, એમની અબોધિ માટે છે. ॥સૂ૦ ૫॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता। अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत्तस्याहिताय, तत्तस्याबोधये ॥ सू० ५ ॥

टीका—

तत्र=त्रसकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यानभेदाद् द्विविधा, खलु निश्चयेन प्रवेदितः=प्रतिबोधिता। कर्मरजःपरिहरणार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय त्रसकायमुपमर्दयतीत्याह-'अस्य चैव जीवितस्य' इत्यादि। अस्यैव=अचिरस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्-मांसचर्माद्यर्थम्, तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थम्, यथा-व्याघ्रादिमृगयादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थम्, यथा-राज्ञः सकाशात् पदकादि

टीकार्थ—त्रसकाय के समारंभ के संबंध में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा का उपदेश दिया है। अर्थात् भगवान्ने कहा हैं कि-कर्मरज को हटाने के लिए जीव को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए।

उपभोगद्वार-

लोग किस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा करते हैं? सो कहते हैं-इसी अस्थायी जीवन के सुख के लिए, मांस और चमडी के लिए, तथा प्रशंसा के लिए, जैसे व्याघ्र आदि का शिकार करने में, मानन के लिए, जैसे राजा से पदवी पाने के उद्देश्य से

ટીકાર્થ—ત્રસકાયના સમારંભના સંબંધમાં શ્રી મહાવીરે જ્ઞપરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે. અર્થાત્ ભગવાને કહ્યું છે કે-કર્મ રજને દૂર કરવા માટે જીવે પરિજ્ઞા અવશ્ય સ્વીકારવી જોઈએ.

ઉપભોગ દ્વાર—

લોક શું પ્રયોજનથી ત્રસકાયની હિંસા કરે છે? તે કહે છે-આ અસ્થિર જીવનના સુખ માટે, માંસ અને ચામડીના માટે, તથા પ્રશંસા માટે. જેમ કે-વાઘ આદિનો શિકાર કરવામાં. માન માટે, જેમ કે-રાજા પાસેથી પદવી મેળવવાના ઉદ્દેશ્યથી જીવતા

लब्धुं सजीवसदृशव्याघ्रादिमृतकलेवरनिर्माणादौ, तथा-पूजन=वस्त्ररत्नादिलाभस्त-दर्थम्, यथा-देवीपूजार्थं बलिदानादौ,

तथा-जातिमरणमोचनार्थम् = जन्ममरणबन्धपरिहारार्थं=यथा मोक्षकामनया यागादौ, यथा-वातादिव्याधिप्रतीकाराय तैलादौ, सः-जीवनसुखाद्यर्थी स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति, तत्=त्रसकायसमारम्भणम्, तस्य=त्रसकाय समारम्भं कुर्वतः, कारयितुः, अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति। तथा तत्-तस्य अबाधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति।

जीवित व्याघ्र आदि के समान व्याघ्र आदि का कलेवर बनाने में, और पूजक के लिए जैसे वस्त्र रत्न आदि की प्राप्ति के लिए, तथा-देवीकी पूजा करने के लिए प्रयोजन से बलिदान आदि करने में हिंसा करते हैं।

तथा-जन्म-मरण-बंध आदि से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-मोक्ष की कामना से यज्ञ आदि करने में, वात आदि के रोगों का प्रतीकार करने के लिए तैल आदि तैयार करने में, जीवन के सुख का अर्थी स्वयं ही त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता है, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ कराता है और त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करने वालों का अनुमोदन करता है। यह त्रसकाय का आरंभ उस आरंभकर्ता के लिए अहितकर और अबोधिजनक होता है।

વાઘના સમાન વાઘ આદિનું કલેવર બનાવવામાં અને પૂજન માટે જેમકે-વસ્ત્ર, રત્ન આદિ પ્રાપ્તિ માટે. તથા દેવીની પૂજા કરવાના પ્રયોજનથી બલિદાન આદિ કરવામાં હિંસા કરે છે.

તથા-જન્મ, મરણ, બંધ આદિથી છુટવા માટે. જેમકે-મોક્ષની કામનાથી યજ્ઞ આદિ કરવામાં, વાત આદિ રોગનો પ્રતિકાર કરવા માટે (રોગની દવા કરવા માટે) જીવનના સુખના અર્થી સ્વયં-પોતેજ ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે. બીજા પાસે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરાવે છે. અને ત્રસકાયના શસ્ત્રનો સમારંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે. તે ત્રસકાયનો આરંભ એ આરંભ કરનારને માટે અહિતકર્તા અને અબોધિ ઉત્પન્ન કરનાર છે.

वेदनाद्वारम्-

अत्र प्रसङ्गतस्त्रसकायस्य वेदनोच्यते-वेदना यथासंभवं द्विविधा-कायिकी, मानसी च। शल्यसूच्यादिवेधाज्जाता, ज्वरातिसारकासादिव्याधिजनिता वा कायिकी, प्रियवियोगादकृता मानसी ॥ सू० ५ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे त्रसकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह— 'से तं.' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोच्चा भगवओ अनगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णाय भवइ, एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु

वेदनाद्वार-

प्रसंग पाकर त्रसकाय की वेदना का निरूपण किया जाता है-यथासंभव वेदना दो प्रकार की है-कायिक और मानसिक। कांट, सुई आदि चुमने से अथवा ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोगों से उप्तन्न होने वाली वेदना कायिक कहलाती हैं। प्रिय वस्तु के वियोग आदि कारणों से होने वाली वेदना मानसिक वेदना है ॥ सू० ५ ॥

जिसने तीर्थंकर आदि के समीप त्रसकायका स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचारता है:-'से तं.' इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान् अथवा अनगारों के समीप सुनकर वह त्रसकाय का ज्ञाता त्रसकाय को जानता हुआ संयम धारण करके इस प्रकार जानता है—यह त्रसकाय का आरंभ

વેદનાદ્વાર—

પ્રસંગ હોવાથી ત્રસકાયની વેદનાનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-સાધારણ રીતે વેદના બે પ્રકારની છે-કાયિક અને માનસિક કાંટા, સોય આદિ વાગવાથી, અથવા જવર-તાવ, અતિસાર-ઝાડા, ખાંસી આદિ રોગોથી ઉત્પન્ન થવાવાળી વેદના કાયિક કહેવાય છે. પ્રિય વસ્તુના વિયોગ વગેરેના કારણોથી થનારી વેદના માનસિક-વેદના છે. ।।સૂ૦૫।।

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમાં ત્રસકાયનું સ્વરૂપ સમજી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે વિચારે છે—'से तं.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન અથવા અણગારોના સમીપ સાંભળીને તે ત્રસકાયના જ્ઞાતા ત્રસકાયને જાણતા થકા સંયમ ધારણ કરીને આ પ્રમાણે જાણે છે-આ ત્રસકાયનો આરંભ

मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेण, तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा भगवतोऽनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति–एष खलु ग्रन्थः एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः। इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः त्रसकायसमारम्भेण त्रसकायशस्त्रं समारभमाणोऽन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य, विरहति, स तत्=त्रसकायसमारम्भणं संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन् एवं विभावयति—

ग्रन्थ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। लोलुप लोग नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रसकायका आरंभ करके, त्रसकायका आरंभ करते हुए अनेक प्रकारके अन्य प्राणियोंका (भी) विराधाता करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थंकर के मुख से अथवा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ श्रमणों के मुख से सुनकर सर्व सावद्य के त्यागरूप चारित्र को अंगीकार करके विचरता है, वह त्रसकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है। वह इस प्रकार सोचता है—

ગ્રન્થ છે, આ મોહ છે, આ માર છે; આ નરક છે, લોલુપ લોક નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોદ્વારા ત્રસકાયનો આરંભ કરીને, ત્રસકાયનો આરંભ કરતા થકા અનેક પ્રકારના અન્ય પ્રાણીઓનો પણ ઘાત કરે છે. ॥સૂ૦ ૬॥

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ભગવાન તીર્થંકરના મુખથી અથવા તેમના અનુયાયી નિર્ગ્રન્થ શ્રમણોના મુખથી સાંભળીને સર્વ સાવદ્ય ત્યાગરૂપ ચારિત્રને અંગીકાર કરીને વિચરે છે તે ત્રસકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિકર—અબોધિ ઉત્પન્ન કરનાર સમજે છે. તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છે—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव ज्ञातं भवति । किं ज्ञातं भवती ?–त्याकाङ्क्षायामाह—' एस खलु ग्रन्थः, ' इत्यादि ।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः=विपर्यासः–अज्ञानम् । तथा–एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा–एष एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ–मोह–मरण–नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा–गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते ।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त कर लेने वाले ही यह जान लेते हैं कि–त्रसकाय का समारंभ निश्चय ही कर्मबंध है । यहाँ कारण में कार्यका उपचार करके कर्मबंध के कारण को कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए । यह त्रसकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है । वह मार अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह समारंभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय यातना का स्थान है ।

ग्रंथ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग बार–बार इसी के इच्छुक होते हैं । अथवा भोगों की अभिलाषा करने वाले संसारी लोग इस ग्रंथ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

આ મનુષ્ય લોકમાં નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરી–લેવાવાળાજ એમ જાણી શકે છે કે–ત્રસકાયનો સમારંભ નિશ્ચયજ ગ્રંથ–કર્મબંધ છે. અહિં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મબંધના કારણને કર્મબંધ કહ્યો છે. આગળ પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

આ ત્રસકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે. આ માર અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે. આ સમારંભ નરક છે. અર્થાત્ દસ પ્રકારની નારકીય યાતનાનું સ્થાન છે.

ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક વારંવાર તેની ઇચ્છાવાળા થાય છે. અથવા ભોગોની અભિલાષા કરવાવાળા સંસારી લોક આ ગ્રંથ, મોહ, માર અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

'लोकः पुनः पुनर्ग्रन्थाद्यर्थमेव प्रवर्तते' इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—' यदिमम्. ' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः त्रसकायसमारम्भेण=त्रसकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमं=त्रसकायं विहिनस्ति । तथा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणः=व्यापारयन् अन्यान् पृथ्वीकायादीन् स्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ६ ॥

यस्मै प्रयोजनाय त्रसकायो हन्यते, तत् प्रयोजनं यद्यपि-'इमस्स चेव जीवियस्स.' इत्यादिनाऽभिहितम्, तथापि विशिष्य तत्तत्प्रयोजनं पुनः प्रदर्शयितुमाह—' से बेमि.' इत्यादि ।

लोग बारम्बार ग्रंथ आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं, यह बात कैसे मालूम हुई ? इस का समाधान के लिए कहते हैं-**'यदिमम्'** इत्यादि ।

क्यों कि वे नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करके त्रसकाय की हिंसा करते हैं और त्रसकाय का समारंभ करते हुए पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावर प्राणियों का भी विराधना करते हैं ॥ सू० ६ ॥

जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा की जाती है वह योजन **'इस जीवन के सुख के लिए'** इत्यादि कथन द्वारा बतलाया जा चुका है, फिर भी विशेष रूप से उस हिंसाका प्रयोजन बतलाने के लिए श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं-**'से बेमि.'** इत्यादि ।

લોક વારંવાર ગ્રંથ આદિના માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે. એ વાત કેવી રીતે માલૂમ પડી ? એનું સમાધાન કરવા માટે કહે છેઃ-' यदिमम्.' ઈત્યાદિ.

કેમ કે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોદ્વારા ત્રસકાયનો સમારંભ કરીને ત્રસકાયની હિંસા કરે છે, અને ત્રસકાયનો સમારંભ કરતા થકા પૃથ્વીકાય આદિ અન્યસ્થાવર પ્રાણીઓનો પણ ઘાત કરે છે. ॥ સૂ० ૬ ॥

જે પ્રયોજનથી ત્રસકાયની હિંસા કરવામાં આવે છે. તે પ્રયોજન **"આ જીવનના સુખ માટે"** ઈત્યાદિ વિવેચનદ્વારા બતાવ્યું છે. (બતાવી ચૂકયા છીએ.) ફરી પણ વિશેષરૂપથી એ હિંસાનું પ્રયોજન બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છેઃ-**' से बेमि.'** ઈત્યાદિ.

मूलम्—

से बेमि–अप्पेगे अच्चाए हणंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति, अप्पेगे मंसाए वहंति, अप्पेगे सोणियाए वहंति, एवं हिययाए, पित्ताए, वसाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिंगाए, विसाणाए, दंताए, दाढाए, णहाए, ण्हारूणीए, अट्ठीय, अट्ठिमिंजाए, अट्ठाए, अणट्ठाए, अप्पेगे 'हिंसिंसु मे' त्ति वा वहंति, अप्पेगे 'हिंसंति मे' त्ति वा वहंति, अप्पेगे 'हिंसिस्संति मे' त्ति वा वहंति ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि–अप्येके अर्चायै घ्नन्ति, अप्येके अजिनाय घ्नन्ति, अप्येके मांसाय घ्नन्ति, अप्येके शोणिताय घ्नन्ति एवं हृदयाय, पित्ताय, वसायै, पिच्छाय, पुच्छाय वालाय, शृङ्गाय, विषाणाय, दन्ताय, दंष्ट्रायै, नखाय, स्नायवे, अस्थ्ने, अस्थिमज्जायै, अर्थाय, अनर्थाय, अप्येके 'अवधीषुरस्मा'–निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हिंसन्त्यस्मा' निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हनिष्यन्त्यस्मा'–निति वा घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—मैं वह (प्रयोजन) कहता हूँ–कोई अर्चा शरीर के लिए त्रसकाय का विराधना करते हैं, कोई चर्म–चमडे के लिए घात करते हैं, कोई मांस के लिए घात करते हैं, कोई रक्त के लिए घात करते हैं, कोई हृदय के लिए, पित के लिए, चर्बी के लिए पंख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विषाण (सुअर का दांत) के लिए, दांत (हाथीदांत) के लिए, दाढों के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, मज्जा के लिए, अर्थ के लिए, अनर्थ के लिए–(निरर्थक) कोई 'हमें मारा था' इस भावना से, कोई 'हमें मारता है' इस भावना से, और कोई 'हमें मारेगा' इस भावना से त्रसकाय का घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

મૂલાર્થ—હું કહું છું:–કોઈ અર્ચા (શરીર) માટે ત્રસકાયનો ઘાત કરે છે. કોઈ ચામડી માટે ઘાત કરે છે. કોઈ માંસ માટે ઘાત કરે છે. કોઈ રક્ત–લોહી માટે ઘાત કરે છે. કોઈ હૃદય માટે, પિત્ત માટે, ચરબી માટે, પાંખો માટે, પૂંછડા માટે, વાળ માટે, શીંગડા માટે, વિષાણ (સૂવરના દાંત) માટે, હાથી દાંત માટે, દાઢો માટે, નખ માટે, સ્નાયુ માટે, હાડકાં માટે, મજ્જા માટે, અર્થ માટે, અનર્થ–(નિરર્થક). કોઈ 'અમને માર્યા હતા' એ ભાવનાથી, કોઈ 'અમને મારે છે' એ ભાવનાથી, અને કોઈ 'અમને મારશે' આ ભાવનાથી ત્રસકાયનો ઘાત કરે છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

टीका—

यदर्थं त्रसजीवा हन्यन्ते, तद् ब्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अत्रापि-शब्दः वक्ष्यमाणापेक्षया समुच्चयार्थः, अर्चायै-अर्च्यते=पूज्यते-इत्यर्चा=शरीरं, तदर्थं घ्नन्ति=हिंसन्ति, यथा सुलक्षणं पुरुषं व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्रं, साधयन्ति, यद्वा-स्वर्णपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशल्लक्षणं पुरुषं प्रतप्ततैले निक्षिप्य निघ्नन्ति। तथा अप्येके=केचन अजिनाय=चर्मार्थं मृगव्याघ्रादीन् घ्नन्ति। तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् घ्नन्ति। अप्येके=केचन शोणिताय=त्रिशूलालेखकरणादौ शोणितं ग्रहीतुं घ्नन्ति। एवं हृदयाय=हृदयं गृहीत्वा साधका मथ्नन्ति, तदर्थं घ्नन्ति। पित्ताय मयूरादीन्, वसायै व्याघ्रादीन्, पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोझादीन्, वालाय चमर्यादीन्, शृङ्गाय मृगादीन्,

---

टीकार्थ—हे जम्बू जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा होती है, वह कहता हूँ। कोई-कोइ अर्चा अर्थात् शरीर के लिए विराधाना करते हैं, जैसे किसी पुरुष को अच्छे लक्षण वाला समझकर उसे मार डालते हैं, और उसके शरीर से विद्या तथा मंत्र का साधन करते हैं। अथवा स्वर्णपुरुष के निर्माण के लिए बत्तीस लक्षण वाले पुरुष को तपे हुए तेल में डालकर मारते हैं। कोई चर्म के लिए मृग और वाघ आदि का घात करते हैं। कोई मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं। कोई त्रिशूल का चिह्न बनाने आदि के लिए तथा रक्त पीने के उद्देश्य से घात करते हैं। इसी प्रकार हृदय के लिए घात करते हैं-घातक लोग हृदय लेकर मथते हैं। इसी तरह पित्तके लिए मयूरों को चर्बीके लिए वाघ आदि को, पंखों के लिए मयूरों को, पूंछके लिए रोझ आदि कों, बाल के

ટીકાર્થ—જે પ્રયોજનથી ત્રસજીવોની હિંસા થાય છે; તે કહું છું. કોઈ-કોઈ અર્ચા અર્થાત્ શરીરના માટે ઘાત કરે છે. જેમકે-કોઈ પુરૂષને સારા લક્ષણવાળો સમજીને તેમ મારી નાંખે છે, અને તેના શરીરથી વિદ્યા તથા મંત્રની સાધના કરે છે અથવા-સ્વર્ણ પુરૂષના નિર્માણ માટે બત્રીસ લક્ષણવાળા પુરૂષને તપાવેલા તેલમાં નાંખીને મારે છે. કોઈ ચામડા માટે મૃગ અને વાઘ વગેરેનો ઘાત કરે છે. કોઈ માંસ માટે બકરા વગેરેને મારે છે. કોઈ ત્રિશૂલનું ચિહ્ન બનાવવા વગેરે માટે લોહી પ્રાપ્ત કરવાના ઉદ્દેશ્યથી ઘાત કરે છે, એ પ્રમાણે કોઈ હૃદય માટે ઘાત કરે છે-ઘાતકી લોક હૃદય લઈને મથે છે. એ પ્રમાણે પિત્ત માટે મોરને, ચરબી માટે વાઘ આદિને વાળ માટે ચમરી-ગાય આદિને, શીંગ માટે મૃગ આદિને મારે છે. વિષાણ-શબ્દ જો કે હાથી

विषाणाय, विषाणशब्दो गजदन्ते रूढस्तथापीह सूकरदन्तो ग्राह्यः, तदर्थं सूकरम्, दन्ताय हस्त्यादीन्, दंष्ट्रायै वराहादीन्, नखाय व्याघ्रादीन्, स्नायवे गवादीन्, अस्थ्ने शङ्खादीन्, अस्थिमज्जायै–अस्थिमज्जा=अस्थिगतरसः, तदर्थं, महीषादीन्, घ्नन्ति। इत्थम्–अर्थाय=प्रयोजनवशात् केचिद् घ्नन्ति। तथा– अनर्थाय= विनाऽपि प्रयोजनं केचिद् घ्नन्ति। अप्येके=केचिच्च, "इमे व्याघ्रसर्प-सूकरादयः शत्रवो वा अस्मान् अपीडयन्, अस्मदीयान् वाऽवधिषुः" इति द्वेषवासनया घ्नन्ति। अप्येके=केचिच्च, "इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा वर्तमानकालेऽस्मान्, अस्मदीयान् वा हिंसन्ति" इति मत्वा घ्नन्ति।

लिए चमरी गाय आदि को, सींग के लिए मृग आदि को मारते हैं। विषाण शब्द यद्यपि हाथीदांत के अर्थ में रूढ है तथापि यहाँ 'सुअर का दांत' अर्थ लेना चाहिए। सुअर के दांत के लिए सुअर का घात किया जाता है। दांत के लिए हाथी आदि को, दाढों के लिए शूकर वगैरह को, नख के लिए वाघ आदि को, स्नायु के लिए गाय आदि को, हड्डी के लिए शंख आदि को, अस्थिमज्जा अर्थात् हड्डियों में रहने वाले एक प्रकार के रस के लिए भैंसा वगैरह का घात करते हैं। इस प्रकार कोई–कोई प्रयोजन के लिए त्रसजीवों की हिंसा करते हैं और कोई–कोई विना प्रयोजन ही हिंसा करते हैं। कोई–कोई 'इस वाघ, सर्प और शूकरने तथा शत्रुओंने हमें पीडा पहुँचाई है, अथवा हमारे आत्मीयजन का वध किया है' इस प्रकार की द्वेष–वासना से इनका घात करते हैं। कोई लोग यह सोचकर कि–'ये व्याघ्र आदि अथवा शत्रु वर्तमान कालमें हमें या हमारे लोगोंको मारते हैं' उनका घात करते हैं। कोई लोग यह विचार करके कि–'यह

દાંતના અર્થમાં રૂઢ છે. તો પણ અહિં 'સૂઅરનાં દાંત' એવો અર્થ લેવો જોઇએ. સૂઅરના દાંત માટે સૂઅરનો ઘાત કરવામાં આવે છે. દાંત માટે હાથી આદિનો, દાઢાને માટે શૂકર–ભૂંડ વગેરેનો, નખ વગેરે માટે વાઘ આદિનો, સ્નાયુને માટે ગાય આદિનો, હાડકાં વગેરે માટે શંખ આદિનો, અસ્થિમજ્જા અર્થાત્, હાડકાંમાં રહેનારા એક પ્રકાર રસ માટે ભેંસા–પાડા વગેરેનો ઘાત કરે છે, આ પ્રમાણે કોઈ–કોઈ પ્રયોજન માટે ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે. અને કોઈ–કોઈ પ્રયોજન વિનાજ હિંસા કરે છે. કોઈ–કોઈ 'આ વાઘ સર્પ અને શૂકર–ભૂંડે તથા શત્રુઓએ અમને પીડા પહોંચાડી હતી. અથવા અમારા આત્મીય-જનનો (તેણે) વધ કર્યો હતો.' આ પ્રકારે દ્વેષ–વાસનાથી તેનો ઘાત કરે છે. કોઈ માણસ એવો વિચાર કરીને કે–'આ વાઘ આદિ, અથવા શત્રુ વર્ત્તમાન કાલમાં મને અથવા

अप्येके=केचिच्च, 'अस्मान् अस्मदीयान् वा इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा हनिष्यन्ति" इति हेतोस्त्रसकायान् घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

एवं त्रसकायसमारम्भं विदित्वा मुनित्वलाभाय तत्समारम्भः सर्वथा परिहर्तव्यः, इत्याशयेनोद्देशकार्थमुपसंहरन्नाह—"एत्थ सत्थं." इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं तसकायसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं तसकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे तसकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते तसकायसमा-

व्याघ्र आदि अथवा यह शत्रु हमें या हमारों को मारेंगे' उन्हें मार डालते हैं । इस प्रकार लोग त्रसकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० ७ ॥

इस प्रकार त्रसकाय के समारंभ को जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए त्रसकाय का आरंभ सर्वथा त्याग देना चाहिए । इस आशय से इस उद्देश का उपसंहार करते हुए कहते हैं–'एत्थ सत्थं'. इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ करने वाले को यह आरंभ अपरिज्ञात होते है । त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ नही करने वाले को यह आरंभ परिज्ञात होते हैं । मेधावी पुरुष उन्हें जानकर स्वयं त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ न करावे, और त्रसकाय में शस्त्र का समारंभ करने वाले का अनु-

અમારાને મારે છે' તેથી તેનો ઘાત કરે છે. કોઈ લોક 'આ વાઘ આદિ અથવા આ શત્રુ મને અથવા અમારાને મારશે.' એવું વિચારીને તેને મારી નાંખે છે. આ પ્રમાણે લોક ત્રસકાયની હિંસા કરે છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

આ પ્રમાણે ત્રસકાયના સમારંભને જાણીને સાધુતા પ્રાપ્ત કરવા માટે ત્રસકાયનો આરંભ સર્વથા ત્યાગી દેવો જોઈએ–ત્યજી દેવો જોઈએ. એ આશયથી આ ઉદ્દેશકનો ઉપસંહાર કરતા થકા કહે છે–'एत्थ सत्थं'. ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ત્રસકાયને વિષે શસ્રનો સમારંભ કરવાવાળાને આ આરંભ અપરિજ્ઞાત હોય છે. ત્રસકાયને વિષે શસ્રનો સમારંભ નહિં કરવાવાળાને આ આરંભ પરિજ્ઞાત છે. (જાણવામાં છે). બુદ્ધિમાન પુરૂષ તેને જાણીને પોતે ત્રસકાયમાં શસ્રનો સમારંભ કરે નહિ બીજા પાસે ત્રસકાયના શસ્રનો સમારંભ કરાવે નહિ અને ત્રસકાયમાં શસ્રનો સમારંભ

रंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय कम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ८ ॥

छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥ ६ ॥

छाया—अत्र शस्त्रं समारभमाणस्यइत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैस्त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते त्रसकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

॥ षष्ठोद्देशः समाप्तः ॥ ६ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् त्रसकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेवत्रसकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

मोदन न करे । जो त्रसकाय के समारंभो का ज्ञाता है वही मुनि है, परिज्ञातकर्मा है ॥सू० ८॥

टीकार्थ—त्रसकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार करने वाले को 'तीन करण और तीन योग से होने वाले सावद्य व्यापार कर्मबंध के कारण हैं' ऐसा ज्ञात नहीं होता ।

और त्रसकाय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार न करने वाला पूर्वोक्त सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ, જે ત્રસકાયના સમારંભને જાણે છે. તેજ મુનિ છે. પરિજ્ઞાતકર્મા છે. ॥ સૂ૦ ૮ ॥

ટીકાર્થ—ત્રસકાયના વિષયમાં પૂર્વોકત (આગળ કહેલાં) શસ્ત્રોનો વ્યાપાર કરવાવાળા 'ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી થવાવાળો સાવદ્ય વ્યાપાર કર્મબંધનું કારણ છે.' એ પ્રમાણે જાણતા નથી. અને ત્રસકાયમાં પૂર્વોકત (આગળ કહેલાં) શસ્ત્રોનો વ્યાપાર નહિં કરવાવાળા પૂર્વોકત (આગળ કહેલા) સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ સમજે છે, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી દે છે.

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं दर्शयति–'तत् परिज्ञाये'–त्यादि। तद्=त्रसकायारम्भणम्, परिज्ञाय=कर्मबन्धस्य कारणं भवतीत्यवबुध्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभामाणान् अन्यान् वा न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्।

यस्यैते त्रसकायसमारम्भाः=त्रसकायोपमर्दकसावद्यव्यापाराः, परिज्ञाताः= ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति। 'इति ब्रवीमि' इति। अस्य व्याख्यानं पूर्ववत्॥ सू० ८॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने षष्ठ उद्देशकः संपूर्णः॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक होने वाली प्रत्याख्यानपरिज्ञा का स्वरूप शास्त्रकार दिखलाते हैं त्रसकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर बुद्धिमान् अर्थात् हेय–उपादेय का विवेकी पुरुष स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करावे और त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग करनेवाले का अनुमोदन न करे।

जिसने त्रसकाय का घात करने वाले सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से बंध का कारण समझ लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण तीन योग से सर्व सावद्य व्यापारों का ज्ञाता पुरुष मुनि होता है। 'त्ति बेमि' पदकी व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए॥ सू० ८॥

श्री आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन का छठा उद्देश समाप्त १–६॥

જ્ઞપરિજ્ઞાપૂર્વક થવાવાળી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાનું સ્વરૂપ શાસ્ત્રકાર બતાવે છે– ત્રસકાયના આરંભને કર્મબંધનું કારણ જાણીને બુદ્ધિમાન અર્થાત્ હેય–ઉપાદેયનો વિવેકી પુરૂષ પોતે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરે નહિ, બીજા પાસે ત્રસકાયના શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરાવે નહિ, અને ત્રસકાયના શસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ.

જેણે ત્રસકાયનો ઘાત કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી બંધનું કારણ સમજી લીધું છે, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યજી દીધું છે. તે ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી સર્વસાવદ્યવ્યાપારોના જ્ઞાતા–જાણકાર પુરૂષ મુનિ હોય છે. 'त्ति बेत्ति' પદની વ્યાખ્યા પહેલાં પ્રમાણે સમજી લેવી જોઈએ. ॥સૂ૦ ૮॥

॥ શ્રી આચારાંગસૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનનો છઠ્ઠો ઉદ્દેશ સમાપ્ત. ॥ ૧ । ૬॥

। अथ सप्तमोद्देशकः ।

वायुकायस्य चाक्षुषप्रत्यक्षविषयत्वाभावात् तस्य सचित्तत्वे स्वतः श्रद्धा नोत्पद्यते, किन्तु पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां, द्वीन्द्रियादेस्त्रसकायस्य च स्वरूपं विदित्वा जातश्रद्धो वायुकायं सुतरां विजानातीत्याशयेन तद्विषयकश्चरमः सप्तमोऽयमुद्देशकः प्रारभ्यते ।

यथा वायुकायोपमर्दननिवृत्त्या मुनित्वं प्राप्यते, तं प्रकारं प्रदर्शयितुमाह—'पहू एजस्स.' इत्यादि ।

मूलम्—

पहू एजस्स दुगुंछणाए आयंकदंसी अहियं-ति नच्चा । जे अज्झत्थं

सातवाँ उद्देश-

वायुकाय के जीव चक्षु के गोचर नहीं होते, अत एव वायु की सचित्तता में स्वतः श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती । किन्तु पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रियों का, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों का स्वरूप समझ लेने से जिसे श्रद्धा उत्पन्न होगई है वह वायुकाय को स्वयं ही जान लेता है । इस आशय से वायुकायसंबंधी यह अंतिम सातवाँ उद्देश आरंभ किया जाता है ।

वायुकाय की हिंसा त्यागने से ही साधुपन प्राप्त होता है, यह बात आगे प्रदर्शित करते हैं:—'पहू एजस्स.' इत्यादि ।

मूलार्थ—दुःखदर्शी पुरुष (वायुकाय के आरंभ को) अहितकर जानकरके वायुकाय के आरम्भ को त्यागने में समर्थ होता है । जो अध्यात्म को जानता है वह

સાતમો ઉદ્દેશ-

વાયુકાયના જીવ નેત્રથી જોવામાં આવતા નથી, એ કારણથી વાયુની સચિત્તતામાં સ્વતઃ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થતી નથી. પરન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયોના તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોના સ્વરૂપને સમજી લેવાથી જેને શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ ગઈ છે, તે વાયુકાયને પોતેજ જાણી લે છે. એ આશયથી વાયુકાયસંબંધી આ અંતિમ-છેલ્લા સાતમા ઉદ્દેશનો આરંભ કરવામાં આવે છે.

વાયુકાયની હિંસા ત્યાગવાથી સાધુતા પ્રાપ્ત થાય છે. એ વાત આગળ બતાવે છે—'पहू एजस्स.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—દુઃખદર્શી પુરૂષ (વાયુકાયના આરંભને) અહિતકર જાણીને વાયુકાયના આરંભને ત્યજી દેવામાં સમર્થ હોય છે, જે અધ્યાત્મને જાણે છે. તે બહારને જાણે છે,

जाणइ, से वहिया जाणइ, जे वहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ। एयं तुल्लमन्नेसिं। इह संतिगया दविया णावकंखंति जीविउं ॥ सू० १ ॥

छाया—

प्रभुः एजस्य जुगुप्सायाम् आतङ्कदर्शी अहित-मिति ज्ञात्वा। यः अध्यात्मं जानाति, स बहिर्जानाति। यः बहिर्जानाति स अध्यात्मं जानाति। एतत् तुल्य-मन्येषाम्। इह शान्तिगताः द्रविकाः नावकाङ्क्षन्ति जीवितुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—

यः आतङ्कः=कृच्छ्रजीवनं, दुःखं, तच्च शारीरमानसभेदाद् द्विविधम्, तत्र कण्टकशस्त्रादिजनितं शारीरम्, प्रियवियोगाप्रियसंयोगाभिलषितालाभदारिद्र्यादि-कृतं मानसम्। एतद् द्विविधदुःखरूपमातङ्कं पश्यति तच्छीलश्चेत्यातङ्कदर्शी, यद्वा-षड्जीवकायसमारम्भेण वायुकायसमारम्भेण वा यद्दुःखं स आतङ्कः, तं

बाह्य को जानता है, जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है। यह (सुख-दुःख) दूसरों का भी अपने समान है। उपशम को प्राप्त और राग-द्वेष से रहित संयमी पुरुष, पर की हिंसा करके अपने जीवन की इच्छा नहीं करते ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन या दुःख को आतंक कहते हैं। शारीरिक और मानसिक भेद से दुःख दो प्रकार का है। कंटक एवं शस्त्र आदि से होने वाला दुःख शारीरिक कहलाता है। प्रियवियोग और अप्रियसंयोग, इस की अप्राप्ति और दरिद्रता आदि से होने वाला दुःख मानसिक कहलाता है, इन दोनों प्रकार के दुःखरूप आतंक को देखने वाला आतंकदर्शी कहलाता है। अथवा षड्जीवनिकाय या वायुकाय के समारम्भ से होने वाला दुःख आतंक कहलाका है, और उसे देखने वाला अतंकदर्शी है। वह

જે બહારને જાણે છે તે અધ્યાત્મને જાણે છે. આ (સુખ-દુઃખ) બીજાઓને પણ આપણા સમાન છે.

ઉપશમને પ્રાપ્ત અને રાગ-દ્વેષથી રહિત સંયમી પુરૂષ પરની-બીજાની હિંસા કરીને પોતાના જીવનની ઇચ્છા કરતા નથી. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકાર્થ—કષ્ટમય જીવન અથવા દુઃખને આતંક કહે છે. શારીરિક અને માનસિક ભેદથી દુઃખ બે પ્રકારનાં છે. કંટક અર્થાત્ શસ્ત્ર આદિથી થવાવાળાં દુઃખ શારીરિક કહેવાય છે. પ્રિયવિયોગ અને અપ્રિયસંયોગ, ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ અને દરિદ્રતા આદિથી થનારા દુઃખો તે માનસિક કહેવાય છે. આ બન્ને પ્રકારનાં દુઃખરૂપ આતંકને જોવાવાળા આતંકદર્શી કહેવાય છે. અથવા ષડ્જીવનિકાય અથવા વાયુકાયના સમારંભથી

पश्यतीत्यातङ्कदर्शी भवति, स हिताहितविवेककुशलत्वाद् अहितम्=अशुभकरं वायुकायसमारम्भगमस्तीति ज्ञात्वा, एजस्य=एजतीत्येजः कम्पनशीलत्वाद् वायुः, तस्य, जुगुप्सायां=निन्दायां, सेवनपरिवर्जने समारम्भनिवृत्तौ, इति यावत् ,

प्रभुः=समर्थो भवति । जुगुप्सा, संयमना, अकरणा, वर्जना, व्यावर्तना, निवृत्तिरित्येकार्थाः ।

अयमाशयः–वायुकायसमारम्भकरणे शारीरं मानसं च सर्वमेव दुःखं मयि समापद्येत, तस्मादिदमातङ्कजनकत्वादहितमिति विज्ञाता, तत्सेवनलक्षणसमारम्भपरिहरणे समर्थो भवतीति ।

यः अध्यात्मम्=आत्मनीति अध्यात्मम् स्वात्मगतं सुखं दुःखं वेत्यर्थः,

---

हित–अहित के विवेक में कुशल होने से वायुकाय से आरम्भ को अहितकर समझकर वायु के आरम्भ का त्याग करने में समर्थ होता है । मूल में आये हुए जुगुप्सा (दुगुंछा) शब्द के कई अर्थ होते हैं । जैसे–संयमन, अकरण (न करना), वर्जन (त्यागना), व्यावर्त्तन (हटना) और निवृत्ति (त्याग) ।

आशय यह है–'वायुकाय का आरम्भ करने से मुझे शारीरिक और मानसिक सभी दुःख प्राप्त होंगे अतः यह आरम्भ अतंकजनक होने के कारण अहितकर है' । ऐसा जानने वाला उसके सेवनरूप आरम्भ के त्याग में समर्थ होता है ।

जो अध्यात्म को अर्थात् अपने आत्मा में स्थित सुख–दुःख को जानता है

थनारूं दुःख आंतक कहेवाय छे, अने एने जोवावाळा आतंकदर्शी छे. ते हित–अहितना विवेकमां कुशळ होवाना कारणथी वायुकायना आरंभने अहितकर समजीने वायुना आरंभने त्याग करवामां समर्थ होय छे. मूलमां आवेलो 'दुगुंछणा–जुगुप्सा' शब्दना केटलाय अर्थ थाय छे. जेमकेः–संयमन, अकरण–(नहि करवुं) वर्जन, (त्यागवुं) व्यावर्त्तन, (हठवुं) अने निवृत्ति (त्याग).

आशय ए छे के–' वायुकायनो आरंभ करवाथी मने शारीरिक अने मानसिक सर्व दुःख प्राप्त थशे; ए माटे ए आरंभ आतंकजनक होवाना कारणे अहितकर छे.' ए प्रमाणे जाणुवावाळा एना सेवनरूप आरंभना त्यागमां समर्थ होय छे.

जे अध्यात्मने अर्थात् पोताना आत्मामां स्थित सुख–दुःखने जाणे छे, ते बाह्य

जानाति स बहिः=परकीयं सुखं दुःखं वा जानाति। ममात्मनि दुःखमसातवेदनीय-कर्मोदयात् समापतितं, सुखमपि सातवेदनीयकर्मोदयात् स्वानुभवसिद्धम्, एवं स्वात्मगतसुखदुःखप्रत्यक्षेण परकीयसुखदुःखानुमानं कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः। उक्तमर्थं दृढीकर्तुं पुनस्तमेव परावर्त्तयन्नाह—'यः बहिर्जानाति'. इत्यादि।

यः, बहिः=परात्मगतं सुखं दुःखं वा जानाति, स अध्यात्मं=स्वात्मगतं सुखं दुःखं वा जानाति। परेषां स्वस्य च सुखदुःखयोरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयरूपे स्वरूपे साम्यादिति भावः।

यद्वा-परविराधनापरिहारेण तत्फलभूतं स्वात्मनः सुखं, तथा परपीडनेन तत्फलभूतं स्वात्मनो दुःखं भवति, एवं परकीयमेव सुखं दुःखं वा

वह बाह्य अर्थात् दूसरे के सुख–दुःख को जानता है। मेरे आत्मा में असातावेदनीय कर्म के उदय से दुःख आया है और सातावेदनीय कर्म के उदय से सुख स्वानुभव सिद्ध है। इस प्रकार अपने आत्मा का सुख और दुःख जो प्रत्यक्ष से जानता है, वह दूसरों के सुख–दुःख का अनुमान कर सकता है। इसी अभिप्राय को पुष्ट करने के लिए यही बात पलटकर कहते हैं–जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है।

अर्थात्–जो पराये सुख–दुःख को जानता है वह अपने आत्मा के सुख दुःख को जानता है। पराये और अपने सुख–दुःख का अनुकूल वेदन और प्रतिकूल वेदन रूप स्वरूप समान है।

अथवा-परको पीडा पहुंचाने का त्याग करने से सुखरूप फल प्राप्त होता है और पीडा पहुंचाने से दुःख मिलता है। इस प्रकार पराया सुख और दुःख

અર્થાત બીજાના સુખ–દુઃખને જાણે છે. મારા આત્માને વિષે અસાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી દુઃખ આવ્યું છે, અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી સુખ સ્વાનુભવસિદ્ધ છે. આ પ્રમાણે પોતાનાં આત્માનાં સુખ–દુઃખનું અનુમાન કરી શકે છે. એ અભિપ્રાયને પુષ્ટ કરવા માટે એજ વાત પલટાવીને કહે છે:–જે બાહ્યને જાણે છે તે અધ્યાત્મને જાણે છે.

અર્થાત્—જે પરાયા સુખ–દુઃખને જાણે છે, તે પોતાના આત્માના સુખ–દુઃખને જાણે છે. પરાયા–બીજાના અને પોતાના સુખ–દુઃખનું અનુકૂલ વેદન અને પ્રતિકૂલ વેદનરૂપ સ્વરૂપ સમાન છે.

અથવા—બીજાને પીડા પહોંચાડવાના ત્યાગ કરવાથી સુખરૂપ ફલ પ્રાપ્ત થાય છે. અને પીડા પહોંચાડવાથી દુઃખ મળે છે.

स्वात्मनः सुखरूपेण दुःखरूपेण वा परिणम्यते। एवं तयोः कार्यकारणभावं यो विजानाति, स एव स्वात्मगतसुखदुःखविज्ञातेति भावः।

परकीयसुखदुःखविज्ञाता स्वात्मनः सुखं दुःखं वा जानातीत्युक्तार्थे हेतुं प्रदर्शयन्नाह– 'एयं तुल्लमन्नेसिं' इति। एतत्=सुखं दुःखं वा, तुल्यं=सदृशमेव, अन्येषाम्=परेषां जीवानां स्वस्य चेत्यर्थः।

" कट्ठेण कंटणए व, पाए विद्धस्स वेयणट्टस्स।
जा होइ अणिव्वाणी, णायव्वा सव्वजीवाणं॥
जह मम ण पियं दुक्खं, जाणिय एमेव जीवाणं "॥

छाया–– काष्ठेन कण्टकेन वा पादे विद्धस्य वेदनार्त्तस्य।
या भवति अनिर्वाणि–ज्ञातव्या सर्वजीवानाम्॥
यथा मम न प्रियं दुःखं ज्ञात्वा एवमेव सर्वजीवानाम्। " इति।

ही अपने सुख–दुःख के रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार जो उनके कार्यकारण भाव को जानता है वही अपने आत्मा के सुख–दुःख का ज्ञाता होता है।

दूसरों के सुख–दुःख का ज्ञाता ही अपने सुख–दुःख को जानता है, इस कथन में हेतु दिखलाते हुए कहते हैं:–**'यह सुख और दुःख दूसरों के और अपने समान ही है'।** कहा भी है:—

लकडी से या कंटक से पैर में विंध जाने की वेदना से पीडित पुरुष को जो असंतोष होता है, वही सब जीवों को होता है।

जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार अन्य अन्य प्राणियों को भी दुःख प्रिय नहीं हैं "।

આ પ્રમાણે બીજાના સુખ અને દુઃખજ પોતાના સુખ–દુઃખના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જે તેના કાર્ય–કારણ ભાવને જાણે છે, તેજ પોતાના આત્માનાં સુખ–દુઃખના જ્ઞાતા હોય છે.

બીજાનાં સુખ–દુઃખનાં જ્ઞાતા જ પોતાના સુખ–દુઃખને જાણે છે. આ કથનમાં હેતુ બતાવતા થકા કહે છે કેઃ—

"આ સુખ અને દુઃખ બીજાનાં અને આપણાં સમાન છે." કહ્યું છે કેઃ–

"લાકડીથી અથવા કાંટાથી પગમાં વિંધાઈ જવાની વેદનાથી પીડિત પુરુષને જે અંતર્વેદના થાય છે, તેવીજ સર્વ જીવોને (વેદના) થાય છે."

"જેમ મને દુઃખ પ્રિય નથી, તે પ્રમાણે બીજા પ્રાણીઓને પણ દુઃખ પ્રિય નથી."

अन्यत्र च—"मर्तव्यमिति यद्दुःखं, पुरुषस्योपजायते ।

शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरक्षितुम्" ॥१॥ इति ।

स्वपर-सुखदुःखयोस्तुल्यत्ववेदिनो न वायुकायं विराधयन्तीत्याह- 'इह शान्तिगताः' इत्यादि । इह=जिनप्रवचने, शान्तिगताः=स्वपरसुखदुःखयोः समत्वविज्ञानाद् औपशमिकभावं प्राप्ताः सम्यक्त्विन इत्यर्थः यद्वा=शान्तिः= सावद्यव्यापारपरिहारः, तामुपगताः द्रविकाः=रागद्वेषरहिताः, यद्वा-द्रवः= संयमः कर्मद्रवणकारित्वात्, स विद्यते येषां ते द्रविकाः= कर्मनिवारणशीलाः संयमिनः जीवितम्=व्यजनादिना वायुकायस्य समारम्भेण प्राणान् परिरक्षितुं नावकाङ्क्षन्ति=नेच्छन्ति ।

दूसरी जगह कहा है—

"तेरा मरना ही अच्छा है, ऐसा वाक्य सुनने मात्र से पुरुष को जो दुःख होता है, इसी में अंदाज लगाकर दूसरों की रक्षा करनी चाहिए" । १ ।

जो पुरुष स्व-पर सुख-दुःख को समान समझते हैं वे वायुकाय की विराधना नहीं करते, यही बात कहते हैं:—

जिनशासन में अपने और पराये सुख-दुःख को समान समझकर जो उपशम भावको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं, अथवा पापमय व्यापारों के त्यागी हैं, तथा राग-द्वेष से रहित हैं, अथवा कर्मों को निवारण करनेवाले संयम से विभूषित हैं, वे पंखा आदि से वायुकाय का समारम्भ करके अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा नहीं करते ।

બીજી જગ્યાએ પણ કહ્યું છે કેઃ-

"તારે મરવું જ સારૂં છે." એ પ્રમાણે સાંભળવાથી પુરૂષને જે દુઃખ થાય છે. તે અનુમાનથી બીજાની રક્ષા કરવી જોઈએ. ॥ ૧ ॥

જે પુરૂષ સ્વ-પરના (પોતાનાં અને પારકાના) સુખ-દુઃખને સમાન સમજે છે, તે વાયુકાયની વિરાધના કરતા નથી. તે વાત કહે છે-

જિન શાસનમાં પોતાનાં અને બીજાનાં સુખ-દુઃખને સમાન સમજીને જે ઉપશમ ભાવને પ્રાપ્ત થયા છે, અર્થાત્ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે, અથવા પાપમય વ્યાપારોના ત્યાગી છે. તથા રાગ-દ્વેષથી રહિત છે, અથવા કર્મોનું નિવારણ કરવાવાળા સંયમથી વિભૂષિત છે તે પંખા આદિથી વાયુકાયનો સમારંભ કરીને પોતાના પ્રાણોની રક્ષા કરવાની ઇચ્છા કરતા નથી.

जिनप्रवचनोक्तचरणकरणसेविनः स्वप्राणरक्षणार्थमपि परजीवोपमर्दनं नेच्छन्ति, ते हि अचाक्षुषवायुजीवविराधनाविनिवृत्ताः कथमन्यचाक्षुषपृथिव्यादिजीवोपमर्दने प्रवर्तेत, न कथमपीति भावः।

अथ वायुकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्ट द्वाराणि निरूपणीयानि। तत्र लक्षणप्ररूपणापरिमाणशस्त्रोपभोगद्वाराणि यथाक्रमं निरूप्यन्ते। अवशिष्ट-वधवेदनानिवृत्ति द्वाराणि पृथिवीकायोद्देशे यथा कथितानि तथैवात्रावगन्तव्यानि।

जिनागम में कथित चरण–करण का सेवन करने वाले अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए भी दूसरे जीव की हिंसा करने की अभिलाषा नहीं करते। वे चक्षु से न दिखाई देने वाले वायुकाय के जीवों की विराधना से भी निवृत्त होते हैं तो चक्षु-गोचर अन्य पृथ्वीकाय आदि के जीवों की विराधना में कैसे प्रवृत्त हो सकते हैं–किसी प्रकार भी नहीं।

वायुकाय का सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए। उनमें से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र और उपभोग द्वारों का क्रम से निरूपण करते हैं। शेष वध, वेदना और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए।

જિનાગમમાં કહેલા ચરણ–કરણનું સેવન કરવાવાળા પોતાના પ્રાણોની રક્ષા કરવા માટે પણ બીજા જીવોની હિંસા કરવાની અભિલાષા કરતા નથી. તે નેત્રથી નહિ દેખાતા વાયુકાયના જીવોની વિરાધનાથી પણ નિવૃત્ત હોય છે, તો પછી નેત્રથી જોઈ શકાય તેવા બીજા પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની વિરાધનામાં કેવી રીતે પ્રવૃત્ત થઈ શકે છે? કોઈ પ્રકારે પણ થઈ શકતા નથી.

વાયુકાયનું સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ. તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ઉપભોગ દ્વારોનું ક્રમથી નિરૂપણ કરે છે, શેષ–(બાકી) વધ, વેદના અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના ઉદ્દેશમાં કહ્યા છે, તેવીજ રીતે અહિં સમજી લેવું જોઈએ.

लक्षणद्वारम्-

ननु कथमिदं ज्ञायते वायुः सचित्त इति?, अत्रोच्यते-गृह्यतां तावदनुमानं प्रमाणम्, वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनवत्त्वात्, हरिणगवयादिवदिति । अनियतविशेषणोपादानात् परमाणौ अपरप्रेरिततिर्यग्गतिसत्त्वेऽपि नानैकान्तिकत्वम्, तस्य हि परप्रयोगनिरपेक्षस्य स्वाभाविकी गतिरनुश्रेणिर्भवति तस्मात् सा नियतैव । आगमोऽपि प्रमाणं, यथा-दशवैकालिकसूत्रे-" वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं " । इति,

वायुश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वः अन्यत्र शस्त्रपरिणतात् । इति च्छाया,

लक्षणद्वार-

शंका—वायु सचित्त है, यह बात किस प्रकार जानी जाय ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लीजिए:-वायु चेतनायुक्त है, क्यों कि वह दूसरों की प्रेरणा विना अनियत रूप से तिरछी गति करती है, जैसे हिरन, रोझ आदि । हेतु में 'अनियत' विशेषण लगा देने से प्रेरणा का अभाव और तिरछी गति होने पर भी परमाणु व्यभिचार नहीं होता । परमाणु दूसरे की प्रेरणा के विना जो गति करता है वह गति श्रेणी के अनुसार नियत ही होती है-अनियत नहीं । इस विषय में आगम भी प्रमाण है । दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

" वायु सचित्त कही गई है । वह अनेक जीवोंवाली है, और उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है । सिर्फ शस्त्रपरिणत वायु सचित्त नहीं है " ।

લક્ષણદ્વાર—

શંકા—વાયુ સચિત્ત છે એ વાત કેવી રીતે જાણી શકાય?

સમાધાન—પ્રથમ અનુમાનપ્રમાણ લઇએ-વાયુ ચેતનાયુક્ત છે, કેમકે તે બીજાની પ્રેરણા વિના અનિયતરૂપથી તિરછી ગતિ કરે છે, જેમ-હરણ, રોઝ આદિ. હેતુમાં 'અનિયત' વિશેષણ લગાવી દેવાથી પરપ્રેરણાનો અભાવ અને તિરછી ગતિ હોવા છતાંય પણ પરમાણુથી વ્યભિચાર થતો નથી, પરમાણુ બીજાની પ્રેરણા વિના જે ગતિ કરે છે, તે ગતિ શ્રેણી-અનુસાર નિયતજ હોય છે, અનિયત નહિં.

આ વિષયમાં આગમ પણ પ્રમાણ છે. દશવૈકાલિક સૂત્રમાં કહ્યું છે—

"વાયુ સચિત્ત કહેવામાં આવ્યો છે. તે અનેક જીવવાળો છે અને તે જીવોનું અસ્તિત્વ પૃથક્-પૃથક્ (જુદું-જુદું) છે, માત્ર શસ્ત્રપરિણત વાયુ સચિત્ત નથી."

प्ररूपणाद्वारम्–

वायुकाया द्विविधाः–सूक्ष्मा बादराश्चेति । तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापिनः, बादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । बादराः पञ्चविधाः–उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातः, गुञ्जावातः, घनवातः, शुद्धावतश्चेति । ये तु ते पौरस्त्यादिभेदा लोकवादिप्रकरणे प्रागभिहितास्तेऽप्यत्रैवान्तर्भूताः । यः स्थित्वा स्थित्वा उत्कलिकाभिर्वाति स उत्कलिकावातः, वातोलीरूपो मण्डलिकावातः, यो गुञ्जन् वाति स गुञ्जावातः, पृथिव्यादीनामाधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पोऽतिघनीभूतो घनवातः, मन्द-स्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः ।

संक्षेपेण वायुकायास्त्रिविधाः–सचित्ता अचित्ता मिश्राश्च । उत्कलिकावातादयः

प्ररूपणाद्वार–

वायुकाय दो प्रकार का है–सूक्ष्म और बादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोक में रहते हैं । बादर पाँच प्रकार के हैं–(१) उत्कलिकावात (२) मण्डलिकावात (३) गुञ्जावात (४) घनवात और (५) शुद्धवात । पौरस्त्य आदि जो भेद लोकवादी के प्रकरण में पहले बतलाये हैं वे सब भी इन्हीं भेदों में अन्तर्गत हो जाते हैं । ठहर–ठहर कर उत्कलिकारूप से बहनेवाली वायु उत्कलिकावात है । वातोलीरूप वायु को मण्डलिकावात कहते हैं । गूँज–गूँज कर बहने वाली वायु को गुञ्जावात कहते है । पृथ्वी आदि के आधार पर स्थित हिमपलट के समान अत्यन्त सघन वायु को घनवात कहते हैं । शीतकाल आदि में धीमे–धीमे चलने वाली वायु शुद्धवात है ।

संक्षेप से वायुकाय के तीन भेद हैं–(१) सचित्त (२) अचित और

પ્રરૂપણાદ્વાર—

વાયુકાય બે પ્રકારના છે. (૧) સૂક્ષ્મ અને (૨) બાદર. સૂક્ષ્મ જીવ સમસ્ત લોકમાં વ્યાપ્ત છે. અને બાદર, લોકના એક–દેશમાં રહે છે. બાદર પાંચ પ્રકારના છે. (૧) ઉત્કલિ-કાવાત, (૨) મંડલિકાવાત, (૩) ગુંજાવાત, (૪) ઘનવાત અને (૫) શુદ્ધવાત.

પૌરસ્ત્ય આદિ જે ભેદ લોકવાદીના પ્રકરણમાં પહેલાં બતાવ્યાં છે, તે સર્વે આ ભેદોમાં અન્તર્ગત થઇ જાય છે. જરા–રહી–રહીને ઉત્કલિકારૂપમાં વહેવાવાળો વાયુ તે ઉત્કલિકાવાત છે. વાતોલીરૂપ વાયુને મંડલિકાવાત કહે છે. ગૂંજી–ગૂંજી ને વહેવાવાળી હવાને ગુંજાવાત કહે છે. પૃથ્વીઆદિના આધારપર સ્થિતિ હિમપટલ સમાન અત્યન્ત સઘન વાયુને ઘનવાત કહે છે. શીતકાલ આદિમાં ધીમે-ધીમે વહેતો વાયુ તે શુદ્ધવાયુ છે.

સંક્ષેપથી વાયુકાયના ત્રણ ભેદ છે. (૧) સચિત્ત (૨) અચિત અને (૩) મિશ્ર.

सचित्ताः, उद्गारोच्छ्वासादयोऽचित्ताः सचित्ताचित्तयोः संमिश्रणेन मिश्राः ।

परिमाणद्वारम्-

ये बादरपर्याप्तका वायुकायास्ते संवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणा भवन्ति, विशेषश्चायमत्रावगन्तव्यः-बादराप्कायपर्याप्तकेभ्यो बादरवायुपर्याप्तका असंख्येयगुणाः, बादराप्कायाऽपर्याप्तकेभ्यो बादरवायुकायाऽपर्याप्तका असंख्येयगुणाः । सूक्ष्माप्कायाऽपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तका विशेषाधिकाः, सूक्ष्माप्कायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायपर्याप्तका विशेषाधिकाः ॥ सू० १ ॥

(३) मिश्र । उत्कालिकावात आदि सचित हैं, उद्गार और उच्छ्वास आदि अचित्त हैं, और मिली हुई-सचित्त-अचित्त वायु मिश्र है ।

परिमाणद्वार-

बादरपर्याप्तवायुकाय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । शेष तीनों प्रत्येक राशियाँ असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए-बादर अप्काय के पर्याप्त जीवों की अपेक्षा वायुकाय के बादर पर्याप्त असंख्यात गुणा हैं । अप्काय के अपर्याप्त बादर जीवों से वायुकाय के अपर्याप्त बादर असंख्यात गुणा हैं । अप्काय के सूक्ष्म अपर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेष अधिक हैं । अप्काय के सूक्ष्म पर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक हैं ॥ सू० १ ॥

ઉત્કાલિકાવાત આદિ સચિત્ત છે. ઉદગાર અને ઉચ્છ્વાસ આદિ અચિત્ત છે. અને સચિત્ત તથા અચિત્ત એ બંને એક સાથે મળેલા હોય તે વાયુ મિશ્ર છે.

પરિમાણદ્વાર—

બાદરપર્યાપ્તવાયુકાયના જીવ સંવર્તિત લોક પ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોના બરાબર છે. બાકી ત્રણ પ્રત્યેક રાશીઓ અસંખ્યાત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે. અહિં એટલી વિશેષતા સમજવી જોઇએ-બાદર અપ્કાયના પર્યાપ્ત જીવોની અપેક્ષા વાયુકાયના બાદર પર્યાપ્ત અસંખ્યાત ગણા છે. અપ્કાયના અપર્યાપ્ત બાદર જીવોથી વાયુકાયના અપર્યાપ્ત બાદર અસંખ્યાત ગણા છે. અપ્કાયના સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત જીવોથી સૂક્ષ્મ વાયુકાયના અપર્યાપ્ત વિશેષ અધિક છે. અપ્કાયના સૂક્ષ્મપર્યાપ્ત જીવોથી, સૂક્ષ્મ વાયુકાયના પર્યાપ્ત વિશેષાધિક છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

अथ सर्वथा वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा वायुकाय-समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—'लज्जमाणा.' इत्यादि ।

अथ शस्त्रद्वारम्–

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास । अणगारा मो–त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं, वाउसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति ॥ सू० २ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकायसमारम्भेण, वायुकायशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेक-रूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

वायुकाय के समारंभ का सर्वथा त्याग करने वाले मुनियों को और वायुकाय के समारम्भ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिंगियों को अलग–अलग बतलाने के लिए कहते हैं:—**'लज्जमाणा.'** इत्यादि ।

शस्त्रद्वार–

मूलार्थ—वायुकाय का समारम्भ करने में संकोच करने वाले अनगारों को अलग देखो, और कोई–कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा कहते हुए नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय का समारम्भ करके, वायुकाय का समारम्भ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० २ ॥

વાયુકાયના સમારંભનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા મુનિઓને અને વાયુકાયના સમારંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિંગિઓને જૂદા–જૂદા બતાવવા માટે કહે છે:— 'लज्जमाणा.' ઈત્યાદિ.

શસ્ત્રદ્વાર—

મૂલાર્થ—વાયુકાયના સમારંભમાં સંકોચ કરવાવાળા અણગારોને જૂદા જાણો, અને કોઈ–કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' એવું કહેનારા અને નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વાયુકાયનો સમારંભ કરીને, વાયુકાયનો સમારંભ કરતા થકા બીજા અનેક પ્રકારના પ્રાણિઓની હિંસા કરે છે. તેને પણ જૂદા–જૂદા જાણો. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रचित्तया वायुकायसमारम्भे पराङ्मुखाः, वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागाराः, पृथक्=विभिन्नाः, केचन प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति पश्य। यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य। इमे वायुकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति विलोकयेत्यर्थः।

एके पुनरन्येतु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव वायुकायरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य।

टीकार्थ—परम करूणा से आर्द्र-चित्त होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से विमुख, वायुकाय के समारम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगार भिन्न हैं-कोई अवधिज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं, और कोई मतिश्रुतज्ञान के धारक भावितात्मा साधु हैं, उन्हें देखो। अथवा उन्हें द्रव्यलिंगियों से भिन्न समझो। ये अनगार वायुकाय का समारम्भ करने में भीत हैं, त्रस्त हैं, उद्विग्न हैं तथा तीन करण तीन योग से वायुकाय का समारम्भ करने के त्यागी हैं।

और कोई-कोई **'हम अनगार हैं'** इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए, **'हम ही वायुकाय की रक्षा करने वाले पंचमहाव्रतधारी हैं'** ऐसा प्रलाप करने वाले द्रव्यलिंगी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो।

ટીકાર્થ—પરમ કરુણાથી આર્દ્ર-ચિત્ત હોવાના કારણે વાયુકાયના સમારંભથી વિમુખ, વાયુકાયના સમારંભનો સર્વથા ત્યાગ કરવાવાળા અણગાર જૂદા છે-કોઈ અવધિજ્ઞાની, કોઈ મનઃપર્યયજ્ઞાની અને કોઈ કેવલજ્ઞાની છે, અને કોઈ મતિ-શ્રુત જ્ઞાનના ધારક ભાવિતાત્મા સાધુ છે, તેને જુઓ. અથવા તેને દ્રવ્યલિંગિઓથી જૂદા જાણો, તે અણગાર વાયુકાયનો સમારંભ કરવામાં ભીત (બીવા વાળા) છે, ત્રસ્ત છે, ઉદ્વિગ્ન છે. તથા ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી વાયુકાયનો સમારંભ કરવાના ત્યાગી છે.

અને કોઈ-કોઈ 'અમે અણગાર છીએ' આ પ્રમાણે અભિમાનપૂર્વક કહે છે. કે 'અમેજ વાયુકાયની રક્ષા કરવાવાળા પંચમહાવ્રતધારી છીએ.' એવો બકવાદ કરનારા દ્રવ્યલિંગી છે. તેને અણગારોથી જૂદા જાણો.

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः. शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं–स्वकायपरकायोभयकायभेदात त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं–शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वदिगादिवायोः पश्चिमदिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन–तालवृन्त–शूर्प–चामर–पत्र–वेलकर्णाभिधारणादयः, घर्मार्तो यद् बहिरवतिष्ठते वातागमनमार्गे साऽभिधारणा,

तथा–चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निर्ज्वालाप्रतापश्च, तथा मुशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिंगी अनगार के गुणो में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहस्थों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं। यह आगे कहते हैं:—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है। द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं–(१) स्वकाय (२) परकाय और (३) उभयकायशस्त्र। उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, पंखा, तालवृन्त, सूप, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, धूप से पीडित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं।

तथा–चन्दन, खसखस आदि की गंध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है।

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળાઓ દ્રવ્યલિંગી (સાચા) અણગારના ગુણોમાં જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થોના કોઈ પણ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી તે આગળ કહે છે.

દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રના ભેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે, દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે. (૧) સ્વકાય, (૨) પરકાય, (૩) ઉભયકાય-શસ્ત્ર, ઉષ્ણવાયુ, શીતવાયુનો અને શીતવાયુ, ઉષ્ણવાયુનો તથા પૂર્વાદિ દિશાઓના વાયુનો પશ્ચિમ આદિ દિશાઓનો વાયુ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. વાંસનો બનાવેલો તથા તાલપત્રનો બનાવેલો પંખો, સૂપડા, ચામર, પત્ર, વસ્ત્રખંડ અને અભિધારણા આદિ, તાપથી પીડિત પુરુષ હવા આવવાના રસ્તામાં થોભી જાય છે, તેને અભિધારણા કહે છે.

તથા–ચન્દન, ખસખસ, આદિની ગંધ, અગ્નિ, અગ્નિની જ્વાલા, તાપ આદિ તથા

कण्डनं, तुषाद्यपसारणार्थं शूर्पास्फालनं, वस्त्रादिगतरजःप्रभृतिवारणाय वस्त्रादीनामाच्छोटनमास्फोटनं प्रस्फोटनं च, तथा शीघ्रगमनं वायुकायस्य विराधकं परकायशस्त्रम्। उभयकायशस्त्रम्-अनावृतमुखेन भाषणम्, एतत्सर्वं द्रव्यशस्त्रम्। भावशस्त्रं तु मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम्। एवंविधैः शस्त्रैः, वायुकायसमारम्भेण=वायुकायोपमर्दकसावद्यव्यापारेण, इमं वायुकायं विहिंसन्ति।

वायुकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह—'वायुकायशस्त्रम्.' इत्यादि। वायुकायशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणाः=वायुकायं प्रति प्रयुञ्जानाः अन्यान्=वायुकायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् स्थावरान् द्वीन्द्रियादीन्त्रसांश्च प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति।

मूसल से कूटना, छिलके हटाने के लिए सूप से फटकना, धूल-रेत आदि झाडने के लिए वस्त्र आदि को फटकारना-झटकना तथा जल्दी चलना भी वायुकाय का विराधक परकाय शस्त्र है खुले मुख से बोलना उभयकायशस्त्र। मन, वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार भावशस्त्र है। इन नाना प्रकार के शस्त्रों से द्रव्यलिंगी वायुकाय की हिंसा करने वाले सावद्य व्यापार करके वायुकाय की हिंसा करते हैं।

जो वायुकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह षट्कायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है, यह कहते हैं-वायुकाय की विराधना करने वाले पूर्वोक्त द्रव्य और भावशस्त्रों का वायुकाय के प्रति प्रयोग करने वाले वायुकाय से भिन्न अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रसजीवों की भी हिंसा करता है।

મૂસળથી કૂટવું, છાલ કાઢવા માટે, સૂપડાથી ઝાટકવું, ધૂળ-રેતી વગેરેને ખંખેરવા માટે વસ્ત્ર વગેરેને ઝાટકવું-પછાડવું, તથા જલદી-જલદી ચાલવું તે પણ વાયુકાયનું વિરાધક પરકાય શસ્ત્ર છે. ઉઘાડા-ખૂલ્લા મોઢે બોલવું તે ઉભયકાયશસ્ત્ર છે. આ સર્વ વાયુકાયનાં દ્રવ્યશસ્ત્ર છે, મન, વચન અને કાયાનો અપ્રશસ્ત (વખાણવા લાયક નહિ તે) વ્યાપાર તે ભાવશસ્ત્ર છે. આ નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી દ્રવ્યલિંગી વાયુકાયની હિંસા કરવાવાળાઓ સાવદ્ય વ્યાપાર કરીને વાયુકાયની હિંસા કરે છે.

જે વાયુકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે ષટ્કાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે. એ કહે છેઃ-વાયુકાયની વિરાધના કરવાવાળા પૂર્વોક્ત દ્રવ્ય અને ભાવશસ્ત્રનો વાયુકાયના પ્રતિ પ્રયોગ કરવાવાળા વાયુકાયથી ભિન્ન અનેક પ્રકારના પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોની, તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે.

इह बहुविधद्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, तत्र शाक्यादयो व्यजनादिशस्त्रैर्वायुकाय-समारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति, तथा च संपातिमादीनां हिंसनेन षड्जीवनिकायविराधका भवन्ति। दण्डिनोपि-"वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिना-ज्ञाराधका अनगाराः स्मः" इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति, शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वायुकायसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति च। ते हि अनावृतमुखेन वदन्ति गायन्ति च। तथा अग्रपूजादौ विविधवाद्यनृत्यादिकं कारयन्ति, एतत्सर्वं मिथ्यादर्शनशल्याभिधं पापमाचरन्ति।

उक्तञ्च—"गंधव्वनट्टवाइय-लवणजलारत्तिआइदीवाई।
जं किच्चं तं सव्वं-पि ओअरइ अग्गपूयाए" ॥ १ ॥

संसार में तरह-तरह के द्रव्यलिंगी हैं, उन में से शाक्य आदि पंखा वगैरह से वायुकाय का आरंभ करते हैं, कराते हैं और आरंभ करने वाले की अनुमोदना करते हैं, और संपातिम (उडकर अचानक आजाने वाले) आदि जीवों की हिंसा करके षट्काय के विराधक बनते हैं। झूठे साधु दण्डी भी **'हम पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं'** इस प्रकार कहते हुए सावद्य का उपदेश देते हैं। शास्त्र में निषिद्ध वायुकाय का समारंभ करते हैं और कराते हैं। वे खुले मुख से बोलते और गाते हैं, तथा अग्रपूजा आदि में विविध प्रकार से वाद्य एवं नृत्य आदि कराते हैं। यह सब मिथ्यादर्शनशल्यनामक पाप है। वे इसका आचरण करते हैं। जैसे कहा है—

સંસારમાં તરેહ-તરેહના દ્રવ્યલિંગી છે, તેમાંથી શાક્ય આદિ પંખા વગેરેથી વાયુકાયનો આરંભ કરે છે, કરાવે છે, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે, અને સંપાતિમ (ઉડીને અચાનક આવવાવાળા) આદિ જીવોની હિંસા કરીને ષટ્કાયના વિરાધક બને છે. દંડી પણ 'અમે પંચમહાવ્રતધારી તથા જિન ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક અણગાર છીએ.' આ પ્રમાણે કહેતા થકા સાવદ્યનો ઉપદેશ આપે છે. શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ મનાએલા વાયુકાયનો સમારંભ કરે છે અને કરાવે છે. તે ખુલ્લા મુખથી-ઉઘાડા મોઢે-બોલે છે અને ગાય છે, તથા અગ્રપૂજા વગેરેમાં વિવિધ પ્રકારથી વાદ્ય અને નૃત્ય આદિ કરાવે છે. આ સર્વ મિથ્યાદર્શનશલ્ય નામનું પાપ છે. તે એનું આચરણ કરે છે. જેમ કહ્યું છે—

छाया—गन्धर्वनृत्यवादित्र-लवणजलारात्रिकादिदीपादयः।
यत्किञ्चित्कृत्यं तत्सर्वमप्यवतरत्यग्रपूजायाम् ॥ १ ॥ इति।

किञ्च—सप्तदशभेदिपूजाविधावपि गीतनृत्यवाद्यानि कर्त्तव्यतयोपदिशन्ति।

किञ्चैकविंशतिविधपूजायामपि नृत्यगीतवादित्रैश्चामरवीजनैश्च वायुकायसमारम्भं कारयन्ति।

उक्तञ्च—"स्नात्रं विलेपनविभूषणपुष्पवास—
धूपप्रदीपफलतन्दुलपत्रपूगैः।
नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्र,-
वादित्रगीतनटनस्तुतिकोशवृद्धया ॥ १ ॥
इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा" इत्यादि।

"गाना, नाचना, बजाना, लवण–जल, आरती करना, दीपक जलाना आदि जितने कार्य हैं, वे सब अग्रपूजा में किये जाते हैं" ॥१॥

तथा वे द्रव्यलिंगी दण्डी 'सत्तरहप्रकार की पूजा में भी गीत, नृत्य और वाद्य आदि क्रियाएँ करनी चाहिए' ऐसा अपदेश देते हैं।

तथा इक्कीसभेदी पूजा में भी नृत्य, गीत, वादित्र तथा चामर और पंखा आदि के द्वारा वायुकाय का समारंभ कराते हैं। जैसा कहा है:—

"स्नान, विलेपन, आभूषण, पुष्प, वास, धूप, दीप, फल, चावल पत्र, सुपारी, नैवेद्य जल, वस्त्र, चामर, छत्र, वादित्र, गीत, नाटय, स्तुति और कोशवृद्धि, इस तरह इक्कीस प्रकार की जिन भगवान् की पूजा होती है" ॥१॥

"ગાવું, નાચવું, બજાવવું, મીઠું, જલ, આરતી કરવી, દીપક–દીવો બાળવો આદિ જેટલાં કાર્ય છે, તે સર્વ અગ્રપૂજામાં કરવામાં આવે છે." ॥ ૧ ॥

તથા તે દ્રવ્યલિંગી–દંડી 'સત્તરપ્રકારની પૂજામાં પણ હમેશાં નૃત્ય અને વાદ્ય-વાજીંત્ર આદિ ક્રિયાઓ કરવી જોઈએ.' એવો ઉપદેશ આપે છે.

તથા એકવીસભેદી પૂજામાં પણ નૃત્ય, ગીત, વાજીંત્ર તથા ચામર અને પંખા આદિ દ્વારા વાયુકાયનો સમારંભ કરાવે છે. જેમ કહ્યું પણ છે—

"સ્નાન, વિલેપન, આભૂષણ, પુષ્પ, વાસ, ધૂપ, દીપ, ફલ, ચોખા, પત્ર, સોપારી, નૈવેદ્ય, જલ, વસ્ત્ર, ચામર, છત્ર, વાજીંત્ર, ગીત, નાટક, સ્તુતિ અને કોશવૃદ્ધિ (ધર્માદાના નામે નાણાં–ધન–નીવૃદ્ધિ) આ પ્રમાણે એકવીસ પ્રકારની જિનભગવાનની પૂજા થાય છે." ॥૧॥

अलमधिकेन–एवमपि ते प्रलपन्ति–यदि जिनभक्त्युद्रेकेण साधुरपि नृत्येत्तदा नास्ति दोष इति ॥ सू० २ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—'तत्थ खलु.' इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वाउसत्थं समारंभंते समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परि-

ज्यादा क्या कहें ! वे यहाँ तक भी बकते हैं कि–जिनराज की भक्ति में मस्त होकर अगर साधु भी नाचने लगे तो भी कोई दोष नहीं है अर्थात् वह आराधक है ॥ सू० २ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं:–'तत्थ खलु.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने वायुकाय के आरंभ के विषय में उपदेश दिया है। इसी जीवन के परिवन्दन, मानन, और पूजन के लिए, जन्म–मरण से छुटकारा पानेके लिए, दुःख का नाश करने के लिए लोग स्वयं वायुकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से वायुकायशस्त्र का आरंभ कराता है और वायुकायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करता है। यह उसके अहित के लिए और उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ३ ॥

વિશેષ શું કહીએ, તે એટલે સુધી પણ કહે છે કે–જિનરાજની ભક્તિમાં મસ્ત થઈને અગર સાધુ પણ નાચ કરવા લાગે તો પણ કોઈ દોષ નથી અર્થાત્ તે આરાધક છે. ॥૨॥

સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છેઃ–'तत्थ खलु.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને વાયુકાયના આરંભના વિષયમાં ઉપદેશ આપ્યો છે. આ જીવનના પરિવંદન, માનન અને પૂજા માટે, જન્મ, મરણથી છુટવા માટે, દુઃખનો નાશ કરવા માટે. લોક સ્વયં–પોતે વાયુકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે, બીજા પાસે વાયુકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે છે. અને વાયુકાયશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે એના (પોતાના) અહિત માટે અને તેમની અબોધિને માટે છે. ॥ ૩ ॥

वन्दनमाननपूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव वायुशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा वायुशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=वायुकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा-ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदाद् द्विविधा, खलु=निश्चयेन, प्रवेदिता=प्रतिबोधिता। कर्मरजः-परिहरणार्थं भव्य-जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः।

उपभोगद्वार—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वायुकायमुपमर्दयतीत्याह—'अस्य चैव जीवितस्य' इत्यादि। अस्यैव=अल्पकालावस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम् व्यजन-तालवृन्त-भस्त्र-ध्मात-फूत्कारा-च्छ्वासादिभिश्च, शीतोष्णवायु-

---

टीकार्थ—वायुकाय के समारंभ के विषय में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानप्रज्ञिा बतलाई है। तात्पर्य यह है कि-कर्मरूपी रजको हटाने के लिए भव्य जीव को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करना चाहिए, ऐसा उपदेश भगवान्‌ने दिया है।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वायुकाय की विराधना करते हैं? यह बतलाते हैं-इस अल्पकालीन जीवन के सुख के लिए पंखा, ताडपंखा हिलाना, धौंकनी का धौंकना, फूंक मारना, श्वास लेना आदि क्रियाओं द्वारा, तथा शीत और उष्ण वायुका सेवन द्वारा वायुकाय की हिंसा करते हैं।

ટીકાર્થ—વાયુકાયના સમારંભના વિષયમાં શ્રીમહાવીરે જ્ઞપરિજ્ઞા તથા પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા બતાવી છે. તાત્પર્ય એ છે કેઃ-કર્મરૂપી રજને દૂર કરવા માટે ભવ્ય જીવોએ પરિજ્ઞાનો અવશ્ય સ્વીકાર કરી લેવો જોઇએ. આ પ્રમાણે ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે.

ઉપભોગદ્વાર—

લોક કયા પ્રયોજનથી વાયુકાયની વિરાધના કરે છે? એ બતાવે છે. આ અલ્પ-કાળના જીવનના સુખ માટે પંખા, તાડપંખા હલાવવા, ધમણ ધમવી-ફૂંક મારવી, શ્વાસ લેવો, આદિ ક્રિયાઓદ્વારા તથા શીત અને ઉષ્ણ (ઠંડા અને ગરમ) વાયુના સેવનદ્વારા

सेवनैश्च, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं-दृतिवाद्यवेणुप्रभृतिवादनादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, व्यजनयन्त्रादिप्रचालनादौ, पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थं वायुयान-वायुयन्त्रादिनिर्माणादौ, तथा जातिमरणमोचनार्थं=देवप्रतिमाभिमुखं नृत्यगीतवादित्रप्रयोगे, व्यजनचामरादिवीजने च, तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=व्याधिप्रतीकारार्थं नवीनवैज्ञानिकोद्भावितवायुचिकित्सायां, तथा-तालवृन्तादिना वायुकायोद्भावने स=जीवनसुखाद्यर्थी, स्वयमेव वायुशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं-शस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा वायुकायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनु-

---

तथा परिवन्दन अर्थात् प्रशंशा पाने के लिए, मशकवाद्य और बाँसुरी बजाकर, मानन अर्थात् जनसत्कार के लिए व्यजनयंत्र (बीजली का पंखा) गानयंत्र (रेडियो, ग्रामोफोन आदि) बजाकर, पूजन अर्थात् वस्त्रों एवं रत्नो आदि के लाभ के लिए वायुयान (एरोप्लेने) वायुयंत्र आदि के बनाने में, तथा जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-जिनप्रतिमा के आगे नृत्य, गीत और वादित्र का प्रयोग करने में, चामर पंखा आदि डुलाने में; तथा दुःख का नाश करने के लिए, जैसे-व्याधि मिटाने के लिए आधुनिक वैज्ञानिको द्वारा निकाली हुई वायुचिकित्सा में तथा ताडपंखा आदि द्वारा वायुकाय की उदीरणा करने में वायुकाय की हिंसा करते हैं। इस प्रकार इस जीवन के सुख के अर्थी स्वयं वायुकाय के धातक शस्त्रों का समारंभ करते हैं, दूसरों से कराते हैं और वायुकाय का समारंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

તથા પરિવન્દન, અર્થાત્ પ્રશંસા મેળવવા માટે મશકવાદ્ય અને વાંસળી વગેરે બજાવીને, વ્યજનયંત્ર તથા ગાનયંત્ર (વિજળીથી ચાલતા પંખા અને રેડીઓ તથા ગ્રામોફોન) વગેરે બજાવીને, પૂજન અર્થાત્-વસ્ત્રો એવં રત્નો આદિના લાભ માટે વાયુયાન (એરોપ્લેન) અને વાયુયંત્ર આદિ બનાવવામાં. તથા જન્મ-મરણથી છુટવા માટે. જેમકેઃ-દેવપ્રતિમાની પાસે નૃત્ય-ગીત અને વાજીંત્રનો પ્રયોગ કરવામાં, ચામર, પંખા આદિ હલાવવામાં, તથા દુઃખનો નાશ કરવા માટે, જેમકે-વ્યાધિ મટાડવા માટે આજકાલના વૈજ્ઞાનિકદ્વારા શોધ કરાએલી વાયુચિકિત્સામાં, તથા તાડપત્રના પંખાદ્વારા વાયુકાયની ઉદીરણામાં વાયુકાયની હિંસા કરે છે. એ પ્રમાણે આ જીવનના સુખના અર્થી પોતે વાયુકાયના ઘાતક શસ્ત્રોનો સમારંભ કરે છે, બીજાની પાસે કરાવે છે. અને વાયુકાયનો સમારંભ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે. વાયુકાયનો એ

जानाति=अनुमोदयति। तद्=वायुकायसमारम्भणं, तस्य=वायुकायसमारम्भणं-कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति। तथा-तत् तस्य अबोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वायुकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—'से तं.' इत्यादि।

मूलम्—

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय सोचा खलु भगवओ अणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ-एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए। इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं, वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं। वायुकाय का यह आरंभ करने वाले, कराने वाले और उसकी अनुमोदना करने वाले को अहितकर होता है तथा अबोधिजनक होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट जिसने वायुकाय का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार बिचार करता है:-'से तं.' इत्यादि।

मूलार्थ—भगवान् से या उनके अनगारों से सुनकर-समझकर जिसने संयम धारण किया है वह जानता है कि-यह वायुकाय का समारंभ ही ग्रंथ है, यही मोह है, यही मार है, यही नरक है। इसी में लोग गृद्ध हो रहे है, क्यों कि नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय के समारंभद्वारा वायुशस्त्र का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ४ ॥

આરંભ, આરંભ કરવાવાળાને, કરાવનારને અને તેની અનુમોદના આપવાવાળાને અહિતકર થાય છે, તથા અબોધિજનક થાય છે. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

તીર્થંકર આદિના સમીપમાં જેણે વાયુકાયનું સ્વરૂપ સમજી લીધું છે, તે આ પ્રમાણે વિચાર કરે છેઃ-'से तं.' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન પાસેથી અથવા તેમના અણગારો પાસેથી સાંભળી-સમજીને જેણે સંયમ ધારણ કર્યું છે તે જાણે છે કેઃ-આ વાયુકાયનો સમારંભજ ગ્રંથ છે. એજ મોહ છે. એજ માર છે. એજ નરક છે, એમાં લોકો ગૃદ્ધ થઈ રહ્યા છે, કેમકે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી વાયુકાયના સમારંભદ્વારા વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરતા થકા અન્ય અનેક પ્રકારનાં પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે. ॥સૂ૦ ૪॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकर्मसमारम्भेण वायुशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं समुत्थाय= अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=वायुकाय समारम्भणं संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनक-त्वेन विज्ञाता सन्नेवं विभावयति—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणा-मात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति। किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—' एष खलु ग्रन्थः ', इत्यादि।

एषः वायुशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे

टीकार्थ– जिस पुरुषने तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के मुखारविन्द से सुनकर सर्व सावद्य का त्यागरूप संयम अंगीकर किया है वह वायुकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता हुआ इस प्रकार विचारता है—

इस लोक में श्रमण निर्ग्रंथों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करने वाले आत्मार्थी जनों को ही यह विदित होता है कि—

वायुशस्त्र का यह समारंभ निश्चितरूप से कर्मबंध का कारण है। कारण में

ટીકાર્થ—જે પુરુષે તીર્થંકર ભગવાન અથવા તેમના અનુયાયી શ્રમણ–નિર્ગ્રંથોના મુખારવિન્દથી સાંભળીને સર્વ સાવદ્યના ત્યાગરૂપ સંયમ અંગીકાર કર્યો છે, તે વાયુકાયના સમારંભને અહિતકર અને અબોધિજનક સમજતા થકા આ પ્રમાણે વિચારે છે–

આ લોકમાં શ્રમણ નિર્ગ્રંથોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરવા-વાળા આત્માર્થી જીવોનેજ એ જાણવામાં છે કેઃ–

વાયુશસ્ત્ર આનો સમારંભ નિશ્ચિતરૂપથી કર્મબંધનું કારણ છે. કારણમાં

कार्योपचारात् । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वायुशस्त्रसमारम्भः, मोहः=विपर्यासः =अज्ञानम् । तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एष एव नरकः= नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थ=एतदर्थं ग्रन्थमोहमरणनरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थ-मेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थं-एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्त्तत इति शेषः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः वायुकर्म-

कार्य का उपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए । तथा यह वायुकाय का समारंभ अज्ञानरूप है, यह निगोद आदि में मृत्यु का कारण है, और नरक है अर्थात् नारकीय यातनाओं का स्थान है ।

ग्रंथ, मोह मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल पाकर भी अज्ञानी जीव बार-बार इसी की लालसा करते हैं । अथवा भोगों के अभिलाषी संसारी जीव इस ग्रंथ, मोह, मरण और नरकरूप फल के लिए ही प्रवृत्ति करते है ।

लोग कर्मबंध के लिए ही पुनः-पुनः प्रवृत्ति करते हैं, यह जो कहा है सो किस प्रकार जाना जाय ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं:—'यदिमम्.' इत्यादि ।

क्यों कि नाना प्रकार के, वायुकाय की विराधना करने वाले सावद्य व्यापार

કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મબંધનાં કારણને મૂલમાં કર્મબંધ કહેલ છે. આગળ પણ આ પ્રકારે સમજી લેવું જોઈએ. તથા એ વાયુકાયનો સમારંભ અજ્ઞાનરૂપ છે. એ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે (અર્થાત્ નિગોદમાં લઈ જવાવાળો છે.) અને નરક છે. અર્થાત્ નારકીય યાતનાઓનું સ્થાન છે.

ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની જીવ વારંવાર એની લાલચ કરે છે, અથવા ભોગોના અભિલાષી સંસારી જીવ આ ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ફલ માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

લોક કર્મબંધ માટેજ પુનઃ પુનઃ પ્રવૃત્તિ કરે છે. એ પ્રમાણે જે કહ્યું છે તે કેવી રીતે જાણી શકાય ? એવી જીજ્ઞાસા થતાં કહે છે-'यदिमम्.' ઇત્યાદિ.

કેમકે નાના પ્રકારથી વાયુકાયની વિરાધના કરવાવાળા સાવદ્યવ્યાપારદ્વારા તે

समारम्भेण=वायुकायोपमर्दनरूपसावद्यव्यापारेण, इमं=वायुकायं विहिनस्ति । तथा–वायुशस्त्रं समारभमाणः–व्यापारयन्, अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान् स्थावरांस्त्रसांश्च, प्राणान्=प्राणिनः विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ४ ॥

वायुशस्त्रं समारभमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहिंसन्ति, तत् च प्रतिबोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह—' से बेमि. ' इत्यादि ।

मूलम्—

से बेमि–संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति य, फरिसं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जंति । जे तत्थ संघायमावज्जंति, ते तत्थ परियावज्जंति । जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायंति ॥ सू० ५ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि–संति संपातिमाः प्राणाः, आहत्य संपतन्ति च, स्पर्शं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते । ये तत्र संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते । ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ ५ ॥

द्वारा वे वायुकाय का घात करते हैं। तथा वायुकाय के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के स्थावरों का, तथा त्रस जीवों का उपमर्दन करते हैं ॥सू. ४॥

वायुकाय के शस्त्रों का प्रयोग करने वाले नाना प्रकार के जीवों की हिंसा कैसे करते हैं ? यह बतलाने के लिए श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं:–'से बेमि.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ–एकाएक उडकर पडने वाले जीव हैं जो अचानक आपडते हैं, और वायुकाय से स्पृष्ट होकर कोई–कोई संघात को प्राप्त होते हैं। जो संघात को प्राप्त होते हैं उनका शरीर सिकुड जाता है, मूर्छित हो जाते हैं, वे मर भी जाते हैं ॥ सू० ५ ॥

વાયુકાયનો ઘાત કરે છે. તથા વાયુકાયના શસ્ત્રોનો પ્રયોગ કરતા થકા પૃથ્વીકાય આદિ અનેક પ્રકારના સ્થાવરો તથા ત્રસજીવોનું ઉપમર્દન (નાશ) કરે છે. ॥સૂ. ૪॥

વાયુકાયના શસ્ત્રોના પ્રયોગ કરવાવાળા નાના પ્રકારના જીવોની હિંસા કેવી રીતે કરે છે ? એ બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છેઃ–' से बेमि. ' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હું તે કહું છું–એકાએક (ઓચિંતા) ઉડીને પડવાવાળા જીવ છે. તે અચાનક આવી પડે છે, અને વાયુકાયથી સ્પૃષ્ટ થઈને કોઈ–કોઈ જથારૂપે થાય છે. જે સંઘાત–સમુદાય–જથારૂપમાં પ્રાપ્ત થાય છે, તેનું શરીર સંકોચાઈ જાય છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે, અને તે મરી પણ જાય છે. ॥ સૂ. ૫ ॥

टीका--

तद् ब्रवीमि=वायुकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तत् कथयामि-संपातिमाः=उत्पत्योत्पत्यपतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति = वायुकायमाश्रित्य विद्यन्ते । एते संपातिमाः आहत्य=व्यजनतालवृन्तवस्त्रादिभिः प्रोद्धावितवायुकायादाघातं प्राप्य, संपतन्ति=वायुवेगसमाकृष्टाः प्राणापगमायोद्विग्नास्तत्रैव वायुकाये संविशन्ति, संश्लिष्यन्तीत्यर्थः ।

स्पर्शं चेति । स्पर्शोऽस्यास्तीति स्पर्शः=स्पर्शवान्, तं स्पर्शं=वायुकायं, स्पृष्टाः =स्पर्शकर्तारः, आर्षत्वात् कर्तरि क्तः । एके=वायुवेगसमाहताः प्राणिनः, संघातमापद्यन्ते=परस्परसंघर्षेण गात्रसंकोचं प्राप्नुवन्ति ।

ये तत्र=वायुकाये संपतिताः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये

टीकार्थ—वायु की हिंसा से अनेक प्रकार के प्राणियो का घात किस प्रकार होता है सो कहता हूँ । संपातिम अर्थात् उड–ऊडकर पडने वाले अनेक जीव वायुकाय के आश्रित रहते हैं। ये संपातिम जीव पंखा, तालवृन्त–पंखा कि एक जाति, वस्त्र आदि से ऊदीरणा की हुई वायुकायद्वारा आघात पाकर गिर पडते हैं, अर्थात् वायु के वेग से खिंचकर घबराये हुए वायुकाय के साथ हो जुड–से जाते हैं।

यहाँ स्पर्श का अर्थ हैं स्पर्शवान् अर्थात् वायु । कोई–कोई वायु के वेग से आहत हुए जीव संघात को प्राप्त होते है अर्थात् परस्पर रगड खाकर सिकुड जाते हैं ।

वायुकाय में पडे हुए जो जीव सिकुड जाते हैं वे वायुकाय के आघात से

ટીકાર્થ—વાયુકાયની હિંસાથી અનેક પ્રકારનાં પ્રાણીઓનો ઘાત કેવી રીતે થાય છે. તે હું કહું છું:–સંપાતિમ–ઉડી–ઉડીને પડવાવાળા અનેક જીવ વાયુકાયના આશ્રયે રહે છે. તે સંપાતિમ જીવ, પંખા, તાડપત્ર, વસ્ત્ર આદિથી ઉદીરણા કરાએલા વાયુકાયદ્વારા આઘાત પામીને પડી જાય છે. અર્થાત્ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને ગભરાએલા વાયુકાયની સાથેજ જોડાઈ જાય છે.

અહીં સ્પર્શનો અર્થ છે–સ્પર્શવાન્–અર્થાત્ વાયુ કોઈ–કોઈ વાયુના વેગથી આહત–તાડન કરાએલા જીવ સંઘાત–જથાપણાને પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્ પરસ્પર ઘસડાઈને સંકોચાઈ જાય છે.

વાયુકાયમાં પડેલા જે જીવો સંકોચાઈ જાય છે તે વાયુકાયના આઘાતથી મૂર્છિત

संश्लिष्टा पर्यापद्यन्ते=वायुकायाघातेन मूर्छामाप्नुवन्ति-प्रणष्टचेतना भवन्तीत्यर्थः। ये तत्र=पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये, अपद्रावन्ति=प्राणैर्वियुज्यन्ते।

वायुशस्त्रसमारम्भेण न केवलं वायुजीवविराधना जायते, किन्तु सर्वदिक्-संचारिणां संपातिमजीवानामन्येषां च बहुविधानां हिंसाऽपि दुर्निवारा भवतीति भावः॥ सू० ५॥

एवं वायुकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वमाप्तये त्रिकरण-त्रियोगैस्तत्समारम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति।

मूर्छित हो जाते हैं—उनकी चेतना नष्ट हो जाती है, और जो मूर्छित हो जाते हैं वे प्राणों से रहित हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं।

वायुकाय के शस्त्र का आरम्भ करने से अकेले वायुकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में फिरने वाले संपातिम जीवों की तथा अन्य अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा होना भी अनिवार्य है॥ सू० ५॥

इस प्रकार वायुकाय की सचित्तता समझकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण तीन योग से वायुकाय का समारम्भ त्यागने योग्य है। इस आशय से सूत्रकार कहते हैं—**'एत्थ सत्थं.'** इत्यादि।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में शस्त्र का व्यापार करने वाला इन व्यापारों

થઈ જાય છે-તેની ચેતના નાશ પામી જાય છે. અને જે મૂર્છિત થઈ જાય છે તે પ્રાણોથી રહિત પણ થઈ જાય છે અર્થાત્ મરણ પામે છે.

વાયુકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરવાથી, એકલા વાયુકાયના જીવોનીજ વિરાધના થાય છે એટલુંજ નહિ પરન્તુ સર્વ દિશાઓમાં ફરવાવાળા સંપાતિમ જીવોની તથા અન્ય અનેક પ્રકારના જીવોની ઘાત થવી તે પણ અનિવાર્ય છે. ॥સૂ. ૫॥

આ પ્રમાણે વાયુકાયની સચિત્તતા સમજીને સાધુતા પ્રાપ્ત કરવા માટે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી વાયુકાયનો સમારંભ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. એ આશયથી સૂત્રકાર કહે છે:-'एत्थ सत्थं.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ:—વાયુકાયના વિષયમાં શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવાવાળાઓ એ વ્યાપારોને

एत्थं सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति। तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं वाउसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे वाउसत्थं समारंभते समणुजाणेज्जा, जस्सेते वाउसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति। अत्र शस्त्रमसारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति। तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वायुशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वायुशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानीयात्। यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् वायुकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं समारभणास्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः कृता आरम्भाः=वायुकायोपमर्दनरूपाः

को कर्मबंध का कारण नहीं समझता। वायुकाय में शस्त्रों का व्यापार न करने वाला इन व्यापारों को कर्मबंध का कारण समझता है। उसे जानकर विवेकी पुरुष स्वयं वायु शस्त्र का आरम्भ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरम्भ न करावे और वायुशस्त्र का आरम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे। जो वायुकाय के शस्त्रों के व्यापार को जानता है वही मुनि है, वही सावद्य व्यापार का त्यागी है। ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वायुकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का उपयोग करने वाला तीन करण तीन योग से किये जाने वाले और वायुकाय के घातक सावद्य व्यापारों को कर्मबंध

કર્મબંધનું કારણ સમજતા નથી, વાયુકાયમાં શસ્ત્રોનો વ્યાપાર નહિ કરવાવાળા તે વ્યાપારને કર્મબંધનું કારણ સમજે છે. તેને જાણીને વિવેકી પુરૂષ પોતે વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરે નહિ, બીજા પાસે વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે નહિ, અને વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ. જે વાયુકાયના શસ્ત્રોના વ્યાપારને જાણે છે તેજ મુનિ છે. તેજ સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગી છે. આવું-(આ પ્રમાણે) હું કહું છું. ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકાર્થ—વાયુકાયના વિષયમાં પૂર્વોક્ત શસ્ત્રોનો ઉપયોગ કરવાવાળા, ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી કરવામાં આવતા અને વાયુકાયના ઘાતક સાવદ્ય વ્યાપારોને કર્મબંધનું કારણ

सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगताः भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेव वायुकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति, तं प्रकारं दर्शयति–'तत् परिज्ञाय' इत्यादि । तद्=वायुकायारम्भणं, परिज्ञाय=' कर्मबन्धस्य कारणं भवती' त्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः स्वयं वायुशस्त्रं नैव समारभेत=नैव व्यापारयेत्, अन्यैर्वायुशस्त्रं नैव समारम्भयेत्, वायुशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः=वायुकायमुद्दिश्य शस्त्रैस्तदुपमर्दनरूपाः

का कारण नहीं समझता । अर्थात् उसे यह ज्ञान नहीं होता कि–'इन पाप–कृत्यों से मुझे कर्म का बंध होगा'

लेकिन इसी वायुकाय के विषय में शस्त्रों का आरंभ न करने वाला सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है ।

ज्ञपरिज्ञापूर्वक प्रत्याख्यानपरिज्ञा जिस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं–वायुकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेयोपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष स्वयं वायुशस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरंभ न करावे और वायुशस्त्र का आरंभ करनेवालों का अनुमोदन न करे ।

जिसने वायुकायसंबंधी इन आरंभों का अर्थात् सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से

સમજતા નથી. અર્થાત્ તેમને એ જ્ઞાન થયું નથી કે–'આ પાપકૃત્યોથી મને કર્મનો બંધ થશે.' પરંતુ આ વાયુકાયના વિષયમાં શસ્ત્રોનો આરંભ નહિ કરવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણે છે, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યજી દે છે. જ્ઞપરિજ્ઞાપૂર્વક પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા જે પ્રમાણે હોય છે. તે બતાવે છે–વાયુકાયના આરંભને કર્મબંધનું કારણ જાણીને હેય–ઉપાદેયનો વિવેક રાખવાવાળા પુરુષ પોતેજ વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરે નહિ. બીજા પાસે વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરાવે નહિ. અને વાયુશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ.

જે વાયુકાયસંબંધી એ આરંભોને અર્થાત્ સાવદ્ય વ્યાપારોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી 'કર્મ-

सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञ-परिज्ञया बन्धकारणतया विदिताः, प्रत्याख्यान-परिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जित-सकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति ।

ननु त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायविराधनापरिहारेण यस्तु परिज्ञातकर्मा स एव मुनिर्भवतीत्युक्तं तत्कथमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता तिष्ठता आसीनेन स्वपता भुञ्जानेन भाषमाणेन वायुकायविराधना दुष्परिहरा कथं तर्हि मुनिश्चरेत् तिष्ठेत् आसीत शयीत भुञ्जीत भाषेत ? इति । अत्रोच्यते-मुनिनां सर्वं स्वकर्त्तव्यं यतनयैव संपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता--

---

कर्मबंध का कारण जान लिया और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है ।

शंका--'तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराधना का त्याग करने वाले ही मुनि होते हैं' यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? चलने, ठहरने, बैठने, सोने, आहार करने और भाषण करने में वायुकाय की विराधना से बच नहीं सकते । ऐसी दशा में मुनि कैसे चले, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे और कैसे बोले ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यतनापूर्वक ही करनी चाहिए । भगवान्‌ने कहा है:--

---

બન્ધનું કારણ છે' એમ જાણી લીધું છે અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેને ત્યજી દીધા છે, તે ત્રણ કરણ અને ત્રણયોગથી ત્યાગ કરવાવાળા મુનિ હોય છે.

શંકા—' ત્રણ કરણ અને ત્રણયોગથી વાયુકાયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવાવાળા જ મુનિ હોય છે.' આ વચન કેવી રીતે સાચું હોઈ શકે છે? ચાલતાં, બેસતાં, રોકાતાં, સુતાં, ભોજન કરતાં અને ભાષણ કરતાં વાયુકાયની વિરાધનાથી બચી શકાતું નથી. એવી દશામાં મુનિ કેવી રીતે ચાલે, કેવી રીતે બેસે, કેવી રીતે રોકાય, કેવી રીતે સુવે, કેવી રીતે ભોજન કરે અને કેવી રીતે બોલે?

સમાધાન—મુનિએ પોતાની સર્વ ક્રિયાઓ યતનાપૂર્વક કરવી જોઈએ, ભગવાને કહ્યું છે—

"जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई" ॥ १ ॥

ननु गमनागमनादौ यतनायाः सुसंपाद्यत्वेऽपि भाषणयतना कथं विधेया ? कथमपि भाषणे हि वायुकायविराधना परिहर्त्तुं न शक्यते, कथं मुनिर्यतनया भाषेत ? भाषणे वायुकायविराधनया सार्द्धं सूक्ष्मव्यापिसंपातिमजीवानामपि विराधनाऽवश्यम्भाविनी, तेषां वायुवेगसमाकृष्टानामाहत्य संपतनेन, वायुसंस्पर्शेन च संघात पर्यापत्त्य-पद्रावणान्तं भवतीत्यत्रैवोद्देशेऽभिहितत्वात् ? इति चेदुच्यते--

मुखवस्त्रिकाबंधनं भाषणयतना भगवता प्रतिबोधिता, एष वायुकाय-

"यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खडा रहे, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक सोए, यतनापूर्वक भोजन करे और यतनापूर्वक बोले तो (साधु) पापकर्म का बंध नहीं करता है" ॥१॥

शङ्का--जाने-आने में यतना सरलता से हो सकती है मगर बोलने की यतना किस प्रकार करनी चाहिए ? बोलने में वायुकाय की विराधना कीसी भी प्रकार नहीं टल सकती तो मुनि किस प्रकार भाषण करे ?, भाषण करने में वायुकाय की विराधना के साथ सर्वत्र व्याप्त छोटे-छोटे संपातिम जीवों की विराधना भी अवश्य होती है । इसी उद्देश में बतलाया गया है कि--संपातिम जीव वायु के वेग से खिंचकर आ पडते हैं और वायु के स्पर्श से संघात को प्राप्त होते हैं, मूर्छित्त हो जाते हैं और मर भी जाते हैं ।

समाधान--भगवान् ने मुखवस्त्रिका बाँधना भाषणी की यतना बतलाई है ।

'યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક બેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય; યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વ ભોજન કરે, અને યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મનો બંધ કરતા નથી.॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ બોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી જોઈએ ? બોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે ? ભાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના-નાના સંપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે. આ ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવ્યું છે કે-સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને આવી પડે છે; અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત-(સમુદાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે. અને મરણ પણ પામે છે.

સમાધાન-ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા બાધવી તે ભાષણની યતના બતાવી છે. આ વાયુકાયનો

समारम्भः ग्रन्थमोहमारनरकरूपस्तस्मादहितोऽयमिति मत्वा वायुकायविराधनया शान्तिमार्गावलम्बिनः संयमिनः प्राणान् धारयितुमपि नावकाङ्क्षन्तीत्यत्रैवोद्देशे समुपदिशता भगवता भाषणयतनारूपं मुखवस्त्रिकाबन्धनमिति सूचितम्। उक्तञ्च समुत्थानसूत्रे—

"........तओ पच्छा गोयमा ! सलिंगे मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधे ॥ १ ॥

मुहपत्तीः णं भंते ! किंपमाणा ? गोयमा ! मुहप्पमाणा मुहपत्ती । मुहपत्ती णं भंते ! कस्स वत्थस्स कडे ? गोयमा ! एगस्सवि सेयवत्थस्स णं अट्ठपुडलाए मुहपत्तिं करेह ॥ २ ॥

कस्सट्ठं मुहपत्तीए णं अट्ठ पुडलाइं ? गोयमा ! अट्ठकम्मदहणट्ठं ॥

मुहपत्ती णं भंते ?, कहं बंधे ?, गोयमा ! एगकन्नेण दुचकन्नप्पमाणेण दोरेण सद्धिं मुहे बंधेह । मुहपत्तीएणं भंते ! के अट्ठे ?, गोयमा ? जण्णं मुहअंते सइ वट्टति से तेणट्ठेणं मुहपत्ती । कस्सट्ठंभंते ! मुहपत्तिं मुहेणसद्धिं बंधे ?, गोयमा ! सलिंगवाउ-जीवरक्खणट्ठं ॥ ३ ॥

जइ णं भंते ! मुहपत्ती वाउजीवरक्खणट्ठाए तो किं सुहुमवाउकायजीवरक्खण-ट्ठाए वा वायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वा ? गोयमा ! णोति सुहुमवाउकायजीव-रक्खणट्ठाए वायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए । नो-ति अविसेसं, एवं ते सव्वेवि अरिहंता पवुच्चंति ॥ ४ ॥" इति ।

यह वायुकाय का समारंभ ग्रन्थ है, मोह है, मार है, नरक है और इस कारण अहितकारी है, अत एव शान्ति—मोक्षमार्ग का अवलम्बन करने वाले संयमी वायुकाय की विराधना करके अपने प्राणों की भी इच्छा नहीं करते । इसी उद्देश में भगवान् ने उपदेश देते हुए भाषा यतनारूप मुखवस्त्रिका का बाँधना सूचित किया है । समुत्थान सूत्र में कहा भी है:—

સમારંભ ગ્રંથ છે, મોહ છે, માર છે, નરક છે, અને તે કારણે અહિતકારી છે. એટલા માટે શાંતિ-મોક્ષ માર્ગનું અવલંબન કરવાવાળા સંયમી વાયુકાયની વિરાધના કરીને પોતાના પ્રાણની પણ ઇચ્છા કરતા નથી. આ ઉદ્દેશમાં ભગવાને ઉપદેશ આપતા થકા ભાષા યતનારૂપ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની સૂચના કરી છે.

સમુત્થાનસૂત્રમાં કહ્યું પણ છેઃ—

छाया—

" ....ततः पश्चात् गौतम ! सलिङ्गो मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं बध्नीयात् । मुखपत्री खलु भदन्त ! किंप्रमाणा ?, गौतम ! मुखप्रमाणा मुखपत्री । मुखपत्री खलु भदन्त ! केन वस्त्रेण कृता ?, गौतम ! एकस्यापि श्वेतवस्त्रस्याष्टपुटकां मुखपत्रीं कुर्यात् ॥ २ ॥

कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्री खलु अष्टपुटका ?, गौतम ! अष्टकर्म-दहनार्थम् । मुखपत्रीं भदन्त ! कथं बध्नीयात् ?, गौतम ? एककर्णेन द्वितीयकर्ण-

"....गौतम ! तत्पश्चात् स्वलिंगी साधु मुख के साथ मुखपत्ती बाँधे ॥१॥

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का क्या प्रमाण है ?

उत्तर—गौतम ! मुँह के बराबर मुँहपत्ती होती है ।

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती किस वस्त्र की होती हैं ?

उत्तर—गौतम ! एक सफेद वस्त्र की आठ पुटकी मुँहपत्ती होती है ॥२॥

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती आठ पुटकी क्यों होनी चाहिए ?

उत्तर—गौतम ! आठ कर्मों को भस्म करने के लिए ।

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती किस तरह बाँधनी चाहिये ?

उत्तर—गौतम ! एक कान से दूसरे कान तक लम्बे डोरे के साथ मुँहपत्ती मुख पर बाँद्धनी चाहिए ।

"....ગૌતમ ! તત્પશ્ચાત્ સ્વલિંગી સાધુ મુખ સાથે મુખપત્તિ બાંધે. (૧)

પ્રશ્ન—ભગવાન્ ! મુંહપત્તીનું શું પ્રમાણ છે ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! મુખની બરાબર મુંહપત્તી હોય છે.

પ્રશ્ન—ભગવન્ ! મુંહપત્તી કયા વસ્ત્રની બને છે ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! એક સફેદ વસ્ત્રની આઠ પડની મુંહપત્તી હોય છે. (૨)

પ્રશ્ન—ભગવન્ ! મુંહપત્તી આઠ પડની શા માટે હોવી જોઇએ ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! આઠ કર્મોને ભસ્મ કરવા માટે.

પ્રશ્ન—ભગવન્ ! મુંહપત્તી કેવી રીતે બાંધવી જોઇએ ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! એક કાનથી બીજા કાન સુધી લાંબા દોરાની સાથે મુંહપત્તી મુખ પર બાંધવી જોઇએ.

प्रमाणदवरकेण सार्द्धं मुखे बध्नीयात् मुखपत्र्या भदन्त ! कोऽर्थः ?, गौतम ! यत्खलु मुखान्ते सदा वर्त्तते तेनार्थेन मुखपत्री । कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं बध्नीयात् ?, गौतम ! स्वलिङ्गवायुजीवरक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

यदि खलु भदन्त ! मुखपत्री वायुजीवरक्षणार्थाय तत्किं सूक्ष्मवायुकायजीव-रक्षणार्थाय वा बादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय ? गौतम ! नो इति सूक्ष्मवायुकाय-जीवरक्षणार्थाय, (किन्तु) बादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय, नो इति अविशेषम्, एवं ते सर्वेऽपि अर्हन्तः ब्रुवन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संप्रति केचिन्मुनिम्मन्या मुखवस्त्रिकाबन्धनं प्रतिषेधयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—वह सदैव मुँह पर बंधी रहती है इस लिए वह मुँहपत्ती कहलाती है ।

प्रश्न—किस प्रयोजन से मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ?

उत्तर—मुँहपत्ती बाँधना साधु का स्वलिंग है इस लिए, तथा वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए मुँहपत्ती बाँधी जाती है ॥३॥

प्रश्न—भगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए मुँहपत्ती है तो सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए है या बादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु बादर वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त ऐसा ही कहते हैं " ॥४॥

आजकल अपने को मुनि मानने वाले कोई-कोई मुखवस्त्रिका के बाँधने का

પ્રશ્ન—ભગવન્! મુંહપત્તીનો અર્થ શું છે?

ઉત્તર—ગૌતમ! તે હમેશાં મુખપર બાંધી રહે છે. તેથી તે મુંહપત્તી કહેવાય છે.

પ્રશ્ન—શું પ્રયોજનથી મુંહપત્તી મુખપર બાંધવી જોઈએ?

ઉત્તર—મુંહપત્તી બાંધવી તે સાધુનું સ્વલિંગ છે એ માટે, તથા વાયુકાયના જીવોની રક્ષા માટે મુંહપત્તી બાંધે. (૩)

પ્રશ્ન—ભગવન્! અગર વાયુકાયની રક્ષા માટે, મુંહપત્તી છે. તો શું સૂક્ષ્મ વાયુકાયની રક્ષા માટે છે. અથવા બાદર વાયુકાયની રક્ષા માટે છે?

ઉત્તર—સૂક્ષ્મ વાયુકાયની રક્ષા માટે નહિ પરન્તુ બાદર વાયુકાયના જીવોની રક્ષા માટે છે. સર્વ અર્હન્ત એ પ્રમાણેજ કહે છે. (૪)

આજ કાલ પોતાને મુનિ માનવાવાળા કોઈ-કોઈ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનો નિષેધ

मुखवस्त्रिकाबन्धनं स्वीकुर्वन्त्येव । उक्तञ्च जिनपतिशिष्यपूर्णभद्रगणिकृतातिमुक्तक-चरित्रे (श्लोकेषु ८०-८१-८२)—

" अथानन्यमुखस्तिष्ठन् , पुरतो निश्चलासनः ।
प्राञ्जलिर्वदनद्वारे, दधानो मुखवस्त्रिकाम् ॥ ८० ॥

इत्यादि यावत्—

शुश्रावासौ श्रुतस्यार्थ,-मतिमुक्तमुनिर्मुदा " ॥ २ ॥ इति

विक्रमसंवत्सरे द्व्यशीत्यधिकद्वादशशत (१२८२) परिमिते पूर्णभद्रगणिना विरचितोऽयमतिमुक्तकचरित्रनाधेयो ग्रन्थः, यस्यास्मिन् विक्रमसंवत्सरे द्व्यधिकद्वि-सहस्र (२००२) परिमिते विंशत्यधिकसप्तशत (७२०) वर्षाणि व्यतीतानि,इतश्च स्फुटमेतदवगम्यते मुखवस्त्रिकाबन्धनं-सादर परिगृहीतं तेषामाचार्यैस्तदनुयायिभिश्च ।

निषेध करते हैं । परन्तु उनके आचार्य मुखवस्त्रिका बांधना स्वीकार करते हैं । जिनपति के शिष्यपूर्णभद्रगणिविरचित **'अतिमुक्तकचरित्र'** (श्लोक ८०-८१-८२). में कहा हैं:—

"पर-पदार्थों में सुख न मानने वाला, निश्चल आसन से सामने हाथ जोडकर मुख पर मुँहपती धारण किये हुअ अतिमुक्तक मुनिने श्रुतका अर्थ सुना ॥८०-८२॥

विक्रम संवत १२८२ में पूर्णभद्र गणिने यह अतिमुक्तकचरित्र नामक ग्रंथ लिखा है । इस संवत् २००२ तक उसे ७२० वर्ष हो चुके हैं । इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके आचार्योंने और उनके अनुयायियोंने मुखवस्त्रिका का बाँधना आदरपूर्वक अंगीकार किया है ।

કરે છે. પરન્તુ તેમના આચાર્ય મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનું સ્વીકાર કરે છે. જિનપતિના શિષ્ય પૂર્ણભદ્રગણિ-વિરચિત ' અતિમુક્તકચરિત્ર 'માં શ્લોક ૮૦-૮૧-૮૨માં કહ્યું છેઃ-

પર પદાર્થોમાં સુખ નહિ માનવાવાળા નિશ્ચલ આસનથી સામે હાથ જોડીને મુખપર મુંહપત્તી ધારણ કરેલા 'અતિમુક્તક' મુનિએ શ્રુતનો અર્થ સાંભળ્યો. ॥૮૦-૮૨॥

વિક્રમ સંવત્ ૧૨૮૨માં પૂર્ણભદ્ર ગણિએ આ અતિમુકતકચરિત્ર નામનો ગ્રંથ લખ્યો છે. આ સંવત્ ૨૦૦૨ સુધીમાં તેને ૭૨૦ વર્ષ વ્યતીત થઈ ચૂકયાં છે. એથી સ્પષ્ટ જાણમાં આવે છે કે-તેમના આચાર્યોએ અને તેમના અનુયાયિઓએ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનું આદરપૂર્વક અંગીકાર કર્યું છે.

अपरश्च जिनपतिशिष्य लव विरचिते सनत्कुमारचरित्रे सनत्कुमारतृतीय-पूर्व-भविक—' विक्रमयशो '-नृपवर्णनेऽभिहितम्—

" मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च,
कथासु लेभे विरजा द्विजौघैः ।
निषेवितः प्रान्तनिविष्टराज,—
हंसीव विभ्राजि सरः श्रियं यः ॥ १ ॥ "

सनत्कुमारः, तृतीयपूर्वजन्मनि विक्रमयशो नाम नृपोऽभवत् । स च परिषदि धर्मकथाश्रवणार्थं यथोपविष्टस्तद्वर्णनं कुर्वन्नाह—

" मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च " इत्यादि । व्याख्या-इन्दुरिव मुखं मुखेन्दुः, मुखेन्दौ राजन्ती मुखवस्त्रिका यस्य स मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकः, मुखोपरिनिबद्धातिशुक्लवस्त्रविनिर्मितदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकः । विरजाः=निर्मलान्तः करणः,

---

इसके अतिरिक्त जिनपति के शिष्य लवद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्र में सनत्कुमार के तीसरे पूर्वभववर्ती विक्रमयश नामक राजा का वर्णन करते हुए कहा है-

सनत्कुमार अपने तृतीय पूर्वभव में विक्रमयश नामक राजा था । वह परिषद् में धर्मकथा सुनने के लिए जिस प्रकार बैठा था उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—'मुखेन्दु.' इत्यादि । इसकी व्याख्या इस प्रकार है:—

जिसके मुखचन्द्र पर मुखवस्त्रिका सुशोभित थी अर्थात् मुख के ऊपर बँधी हुई, सफेद वस्त्र की बनी हुई मुखवस्त्रिका से जिसका मुख शोभायमान हो रहा था, जिसका अन्तःकरण निर्मल था और जो द्विजों के समूह से सेवित था ऐसा विक्रमयश-

---

એ સિવાય જિનપતિનાશિષ્ય લવદ્વારા રચિત સનત્કુમારચરિત્રમાં સનત્કુમારના ત્રીજા પૂર્વભવવર્ત્તી 'વિક્રમયશ' નામના રાજાનું વર્ણન કરતા થકા કહે છે કે:-

સનત્કુમાર પોતાના ત્રીજા પૂર્વભવમાં 'વિક્રમયશ' નામના રાજા હતા, તે પરિષદ્માં (સભામાં) ધર્મકથા સાંભળવા માટે જે પ્રમાણે બેઠા હતા તેનું વર્ણન કરતા થકા કહે છે કે-'મુખેન્દુ.' ઈત્યાદિ. એની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે છે-

જેના મુખચન્દ્ર પર મુખવસ્ત્રિકા સુશોભિત હતી, અર્થાત મુખ ઉપર બાંધેલી સફેદ વસ્ત્રની બનેલી મુખવસ્ત્રિકાથી જેનું મુખ શોભાયમાન થઈ રહ્યું હતું, જેનું અન્તઃકરણ નિર્મલ હતું, અને જે દ્વિજોના સમૂહથી સેવિત હતા, એવા વિક્રમયશ નામના રાજા

द्विजौघैः=द्विजसमूहैर्निषेवितः, यः=विक्रमयशो नृपः कथासु=धर्मकथापरिषत्सु श्रियं=शोभां लेभे=प्राप्तवान् । किमिव ? प्रान्ते निविष्टा राजहंसी यस्य तत् प्रान्तनिविष्टराजहंसि, विभ्राजि=देदीप्यमानं सर इव ।

यथा प्रान्तनिविष्टया राजहंस्या विभ्राजमानं सरः श्रियं लभते तथा मुखोपरिनिबद्धदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकया विक्रमयशो नृपः सदसि श्रियं लब्धवानित्यर्थः ।

करेण मुखवस्त्रिकाधारणे तु करतलावृतमुखवस्त्रिकाया दीप्तिः समाच्छादिता स्यात्, कथं तर्हि '....राजन्मुखवस्त्रिकः'–इत्यत्र 'राजन्'–पदप्रयोगसंसूचितमुखवस्त्रिकागतप्रभायाः प्रकाशमानता तिरोहिता भवेत्, तर्हि राजहंसीप्रभया 'विभ्राजी'–ति सरोविशेषणेन साम्यमपि न सिद्धयेत् ।

नामक राजा धर्मकथा की परिषद् में शोभा को प्राप्त हुआ । कैसी शोभा को प्राप्त हुआ ? जैसे जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव सुशोभित होता है ।

जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव जैसे शोभित होता है उसी प्रकार मुख पर बंधी हुई और देदीप्यमान मुखवस्त्रिका से विक्रमयश राजा व्याख्यानपरिषद् में शोभित हुआ ।

अगर हाथ से मुखवस्त्रिका पकडी होती तो मुखवस्त्रिका की दीप्ति हथेली से छिप जाती । ऐसी स्थिति में '....राजन्मुखवस्त्रिकः' इस पद में 'राजन्' शब्द के प्रयोग से मखवस्त्रिका की जो प्रभा सूचित की है वह प्रकाशमान कैसी होती ? फिर तो वह छिपी हुई प्रभा रहजाती ! और फिर सरोवर के किनारे बैठी हुई राजहंसिनी की उपमा भी ठीक नहीं बैठ सकती ।

ધર્મકથાની સભામાં શોભાને પામ્યા છે. કેવી શોભાને પામ્યા છે? જેમકેઃ–જેના કિનારે રાજહંસી બેઠાં હોય તે તળાવ સુશોભિત થાય છે.

જેના કિનારે રાજહંસી બેઠાં હોય તે તળાવ જેવી રીતે સુશોભિત હોય છે તે પ્રમાણે મુખ પર બાંધેલી અને ઝગમગાટ શોભાયમાન મુખવસ્ત્રિકાથી વિક્રમયશ રાજા વ્યાખ્યાપરિષદ્–(સભા)માં શોભતા હતા.

અથવા હાથથી મુખવસ્ત્રિકા પકડી હોતે તો તે મુખવસ્ત્રિકાની દીપ્તિ–પ્રકાશ હથેલીથી ઢંકાઈ જાત. એવી સ્થિતિમાં 'राजन्मुखवस्त्रिकः' આ પદમાં 'राजन्' શબ્દના પ્રયોગથી મુખવસ્ત્રિકાની જે પ્રભા–(પ્રકાશ) સૂચિત કરી છે, તે પ્રકાશમાન કેવી રીતે થાત? પછી તો તે ઢંકાએલી જેવી પ્રભા રહી જાત અને પછી સરોવરના કિનારે બેઠેલાં રાજહંસીની ઉપમા બરાબર ઘટી શકત નહિ.

अपरञ्च सरसि राजहंसी यथा सर्वथाऽनावृता सती सरःशोभां जनयति तथा मुखवस्त्रिका नृपस्य श्रियं करोतीति तात्पर्यं करतलेन मुखवस्त्रिकाधारणे कथमपि नोपपद्यते ।

तस्मादेतत्सनत्कुमारचरित्रपद्यं विक्रमयशोनृपस्य सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धनमासीदिति सुस्पष्टमावेदयति ।

अहो! महीयान् मोहमहिमा यत्स्वकीयगुरुवराणां संप्रदायवाक्यमपिसमुल्लङ्घयन्तो नवीना न कथञ्चित्त्रपन्ते ।

विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिर्दशवैकालिकसूत्रस्य मत्कृताचारमणिमञ्जूषाटीकायां प्रथमाध्ययने विलोकनीयम् ।

इसके अतिरिक्त—जैसे राजहंसिनी बिलकुल उघाडी होकर ही सरोवर की शोभा बढाती है उसी प्रकार मुखवस्त्रिका राजा की शोभा बढाती थी । यह तात्पर्य हाथ से मुखवस्त्रिका धारण करने में किसी भी प्रकार नहीं घट सकता ।

अतः सनत्कुकारचरित्र का यह पद्य स्पष्टरूप से प्रकट करता है कि—विक्रम यश राजा के मुख पर डोरासहित मुखवस्त्रिका बंधी थी ।

अहो ! मोह की महिमा महान है, जिस के प्रभाव से आधुनिक लोग अपने गुरुओं के परम्परा वाक्य का उल्लंघन करते हुए भी लज्जित नहीं होते ।

विस्तार से समझने की इच्छा रखने वाले मेरी रची हुई दशवैकालिक सूत्र की 'आचारमणिमंजूषा'—टीका के अन्दर पहले अध्ययन में देख सकते है ।

એ સિવાય-જેવી રીતે રાજહંસિની એકદમ ઉઘાડી થઈનેજ સરોવરની શોભા વધારે છે, તેવીજ રીતે મુખવસ્ત્રિકા રાજાની શોભા વધારતી હતી. આ તાત્પર્ય હાથથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરે તો-અથવા કરવાથી કોઈ પણ પ્રકારે બની શકે નહિ.

એ કારણથી સનત્કુમારચરિત્રનું એ પદ સ્પષ્ટરૂપથી બતાવી આપે છે કેઃ- વિક્રમયશ રાજાના મુખપર દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકા બાંધી હતી.

અહો! મોહનો મહિમા મહાન્ છે, જેના પ્રભાવથી આધુનિક લોક પોતાના ગુરુઓના પરમ્પરા વાકયનું ઉલ્લંઘન કરતા પણ શરમાતા નથી.

વિસ્તારથી સમજવાની ઇચ્છા રાખવાવાળા, મારી રચેલી દશવૈકાલિકસૂત્રની 'આચારમણિમંજૂષા'-ટીકાની અંદર પહેલા અધ્યયનમાં જોઈ શકે છે.

इति ब्रवीमि, इति=एतत्सर्वं ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

अथ षड्जीवनिकायारम्भकरणेन कर्मबन्धो भवतीत्याह–'एत्थपि' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थंपि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणाविणयं वयंति, छन्दोवणीया अज्झोववण्ण आरंभसत्ता पकरंति संगं ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अत्रापि जानीहि उपादीयमानाः, ये आचारो न रमन्ते, आत्ममाणा विनयं वदन्ति, छन्दोपनीता अध्युपपन्नाः, आरम्भसक्ताः प्रकुर्वन्ति सङ्गम् ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं–यह सब भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा कहता हूँ ॥ सू० ३ ॥

अब यह कहते हैं कि–षड्जीवनिकाय का आरंभ करने से कर्मबंध होता है:– **'एत्थंपि.'** इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में भी आरंभ करने वाले, कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो । जो आचार में रमण नहीं करते आरम्भ करते हुए भी अपने को विनय (चारित्र) वाले मानते है, इच्छानुसार चलते है, गृद्ध हैं और आरम्भ में आसक्त हैं वे कर्मों उपार्जन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

સુધર્મા સ્વામી કહે છેઃ—આ સર્વ ભગવાનની સમીપમાં જેવું સાંભળ્યું છે તેવુંજ કહું છું. ॥ ૬ ॥

હવે એ કહે છે કે–ષડ્જીવનિકાયનો આરંભ કરવાથી કર્મબંધ થાય છેઃ– 'एत्थंपि.' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વાયુકાયના વિષયમાં પણ આરંભ કરવાવાળા, કર્મોથી બદ્ધ થાય છે એ પ્રમાણે સમજો. જે આચારમાં રમણ કરતા નથી, આરંભ કરતા થકા પણ પોતાને વિનય (ચારિત્ર) વાળા માને છે, ઇચ્છાનુસાર ચાલે છે, ગૃદ્ધ છે, અને આરંભમાં આસકત છે, તે કર્મોનું ઉપાર્જન કરે છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

टीका—

अत्रापि=एतस्मिन् वायुकायेऽपि, अपिशब्दात् अवशिष्टे पृथिव्यादिचतुष्के स्थावरे त्रसकाये च ये भोगलोलुपाः स्वार्थवशगाः आरम्भं कुर्वन्ति, ते उपादीयमानाः =ज्ञानावरणीयादिकर्मभिर्बध्यमाना भवन्तीत्येवं जानीहि ।

एकजीवारम्भप्रवृत्तः शेषजीवनिकायारम्भजनितकर्मभिर्बद्धो भवतीत्येवं विद्धी-त्यर्थः । के पुनः पृथिव्याद्यारम्भकरणेन शेषजीवारम्भजन्यकर्मभिरपि बध्यमाना भवन्तीति जिज्ञासायामाह–'ये आचारे न रमन्ते' इति ।

ये आचारे=ज्ञानदर्शनादिपञ्चविधाचारे न रमन्ते=न धृतिं कुर्वन्ति, तान् कर्मभिर्बध्यमानान् जानीहि । के पुनराचारे न रमन्ते ? दण्डिशाक्यादयः ।

कथमेतद्विज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह–'आरभमाणा विनयं वदन्ति'

टीकार्थ—इस वायुकाय के विषय में भी–(अपि) शब्द से पृथ्वी आदि अन्य स्थावरों में तथा त्रसकाय में जो भोगों के लोलुप और स्वार्थपरायण होकर आरम्भ करते हैं, वे ज्ञानावरण आदि कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो ।

तात्पर्य यह है कि–एक जीव के आरम्भ में प्रवृत्ति करने वाला शेष जीवनिकायोंके आरम्भ से उत्पन्न होने वाले कर्मों से भी बद्ध होता है ।

ऐसे कौन हैं जो पृथ्वी आदि एक कायका आरम्भ करके शेष जीवनिकायों के आरम्भ से होने वाले कर्मोंद्वारा बद्ध होते हैं ? इस का समाधान करने के लिए कहते है–

जो ज्ञानाचार दर्शनाचार आदि पाँच आचारों में स्थिर नहीं होते उन्हें कर्मबंध होता है, ऐसा जानो । आचार में कौन स्थिर नहीं होते ? दण्डी तथा शाक्य आदि ।

यह कैसे ज्ञात हुआ ? इसके उत्तर में कहते हैं–वे पृथ्वीकाय आदि की विराधना

ટીકાર્થ—આ વાયુકાયના વિષયમાં પણ 'અપિ' શબ્દથી પૃથ્વી આદિ અન્ય સ્થાવરોમાં તથા ત્રસકાયમાં જે ભોગોના લાલચુ અને સ્વાર્થપરાયણ થઈને આરંભ કરે છે. તે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોથી બદ્ધ થાય છે. એ પ્રમાણે સમજો.

તાત્પર્ય એ છે કેઃ–એક જીવના આરંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બાકીના જીવ–નિકાયોના આરંભથી ઉત્પન્ન થવાવાળા કર્મોથી પણ બદ્ધ થાય છે.

એવા કોણ છે કે જે પૃથ્વી આદિ એક કાયનો આરંભ કરીને બાકીના જીવ–નિકાયોના આરંભથી થનારા કર્મોદ્વારા થાય છે? તેનું સમાધાન કરવા માટે કહે છેઃ–

જે જ્ઞાનાચાર–દર્શનાચાર આદિ પાંચ આચારોમાં સ્થિર નથી થતા તેને કર્મ-બન્ધ થાય છે, એ પ્રમાણે જાણો.

આચારમાં કોણ સ્થિર નથી રહેતા ? દંડી અને શાકય આદિ.

એ કેવી રીતે જાણ્યું ? તેના ઉત્તરમાં કહે છેઃ–તે પૃથ્વીકાય આદિની વિરાધના

इति। आरभमाणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनयं=कर्मणां विनयाद् विनयः संयमस्तं, वदन्ति='वयमेव संयमिसेवनपराः' इति निश्शङ्कं निगदन्तीत्यर्थः।

ननु स्वात्मानं संयमिनं मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवहिंसनपराः? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह–'छन्दोपनीताः' 'अध्युपपन्नाः' इति। 'छन्दोपनीताः'=छन्दः=स्वाभिप्रायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः।

यद्वा छन्दः-अभिप्रायः=इच्छा, विषयाभिलाषस्तेनोपनीताः, तथा 'अध्युपपन्नाः,' अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्गतचित्ताः विषयसंनिविष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः। यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः। एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—'आरम्भसक्ताः'. इत्यादि। आरम्भः=सावद्यव्यापारः,

---

करते हुए भी अपने आपको निश्शंक होकर संयमी कहते हैं। वे यह मानते हैं कि हम ही संयम का सेवन करने में तत्पर हैं।

वे लोग अपने आपको संयमी मानते हुए भी पृथ्वीकाय आदि के जीवों कीं हिंसा में तत्पर क्यों होते हैं? ऐसी जिज्ञासा होने पर दो विशेषण कहते हैं, जिन में हेतु छिपा है– 'छन्दोपनीत' और 'अध्युपपन्न'

छन्द का अर्थ है–अपना अभिप्राय, उससे स्वतंत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले। अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है। कहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतंत्र हों। तथा अध्युपयन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त–विषयभोगों के लिए आतुर। तात्पर्य यह है कि–छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं। आरम्भ

કરવા છતાંય પણ પોતે-પોતાને નિઃશંક થઈને સંયમી કહે છે. તે એવું માને છે કેઃ–અમે પણ સંયમનું સેવન કરવામાં તત્પર છીએ.

તે લોક પોતે-પોતાને સંયમી માનતા થકા પણ પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની હિંસામાં તત્પર શા માટે હોય છે? એવી જીજ્ઞાસા થતાં બે વિશેષણ કહે છે જેમાં હેતુ છુપાએલો છે 'छन्दोपनीत' અને 'अध्युपपन्न' 'છન્દ'નો અર્થ છે પોતાનો અભિપ્રાય તેનાથી સ્વતંત્ર અર્થાત્ શાસ્ત્રથી વિરૂદ્ધ વિચાર કરવાવાળા. અથવા છન્દનો અર્થ ઇચ્છા છે. અહિં વિષયભોગોની અભિલાષાને છન્દ કહેલ છે. તેમાં જે સ્વતંત્ર હોય. તથા અધ્યુપપન્ન અર્થાત્ વિષયોમાં અત્યન્ત આસક્ત–વિષયભોગો માટે આતુર. તાત્પર્ય એ છે કે છન્દોપનીત અને અધ્યુપપન્ન હોવાના કારણે તે પૃથ્વી આદિની હિંસા કરે છે અને કર્મોનો બંધ કરે છે. આરંભ અર્થાત્–સાવદ્ય વ્યાપારમાં પ્રવૃત્ત પુરુષ જ્ઞાનાવરણીય

तत्र सक्ताः=प्रवृत्ताः, सङ्गं=सज्यन्ते=श्लिष्यन्ते जीवा अनेनेति सङ्गः=ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, तं सङ्गंमकुर्वन्ति=समुत्पादयन्ति ।

एवं षड्जीवनिकायारम्भकारिणः खलु कर्मबन्धनपराधीनतां समुपेत्य जन्मजरामरणेष्टवियोगानिष्टसंयोगेप्सिताऽसिद्धिविविधव्याधिजनितदुःख संकुलेघोरतरसंसारदावानले पुनः पुनः स्वात्मानमिन्धनीकुर्वन्तीति भावः ॥ सू० ७ ॥

अथ यस्तु पृथिव्यादिषड्जीवनिकायारम्भकरणाद्विनिवृत्तः स एव मुनिर्भवतीत्युदेशार्थमुपसंहरन्नाह—'से वसुमं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से वसुमं सव्वसमण्णागयपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो अण्णेसि ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन आत्मना अकरणीयं पापं कर्म नो अन्वेषयेत् ॥ सू० ८ ॥

अर्थात् सावद्य व्यापार में प्रवृत्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को ऊपार्जन करते हैं ।

इस प्रकार षड्जीवनिकाय का आरम्भ करने वाले कर्मबन्धन के अधीन होकर जन्म मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, इष्ट की असिद्धि तथा विविध प्रकार की व्याधियों से उत्पन्न होने वाले दुःखों से व्याप्त, घोरतरसंसाररूपी दावानल में अपने आत्मा को ईंधन बनाते हैं ॥ सू० ७ ॥

जो पृथ्वी आदि षड्जीवनिकाय के आरम्भ से निवृत्त है वही मुनि होता है; इस उद्देश के अर्थ का उपसंहार करते हुए शास्त्रकार कहते हैं:-'से वसुमं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वही वसुमान् है (सम्यक्त्व-चारित्रवान्-सम्यग्दृष्टि है) जो यथार्थ पदार्थों को जाननेवाले ज्ञानात्मा से पाप को अकरणीय समझकर नहीं करता है ॥ सू० ८ ॥

આદિ કર્મોનું ઉપાર્જન કરે છે.

આ પ્રમાણે ષડ્જીવનિકાયનો આરંભ કરવાવાળા કર્મબન્ધને આધીન થઈને જન્મ, જરા, મરણ, ઇષ્ટવિયોગ, અનિષ્ટસંયોગ, ઇચ્છેલી વસ્તુની અપ્રાપ્તિ, તથા વિવિધ પ્રકારની વ્યાધિઓથી ઉત્પન્ન થનારાં દુઃખોથી વ્યાપ્ત, ઘોરતર સંસારરૂપી દાવાનલમાં પોતાના આત્માને ઇંધન-(બળતણરૂપ) બનાવે છે. ॥ સૂ૦ ૭॥

જે પૃથ્વી આદિ ષડ્જીવનિકાયના આરંભથી નિવૃત્ત છે તેજ મુનિ હોય છે, આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરીને શાસ્ત્રકાર કહે છેઃ-'से वसुमं.' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તેજ વસુમાન્ છે (સમ્યક્ત્વ-ચારિત્રવાન્ સમ્યગ્દષ્ટિ છે) જે યથાર્થ પદાર્થોને જાણવાવાળા જ્ઞાનાત્માથી પાપને અકરણીય (કરવા યોગ્ય નથી એવું) સમજીને કરતા નથી. ॥સૂ૦ ૮॥

टीका—

यस्तु षड्जीवनिकायारम्भनिवृत्त्या संयमपालनपरायणः, स वसुमान्, द्विविधानि हि वसूनि सन्ति द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्यवसूनि-सुवर्णादीनि, भाववसूनि-सम्यक्त्वादीनि, अत्र भाववसुतात्पर्यको वसुशब्दः, तानि वसूनि यस्य यस्मिन् वा सन्ति स वसुमानित्यर्थः, सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=सर्वाणि समन्वागतानि प्रज्ञानानि यस्यात्मनः स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः=यथावस्थितविषयग्राहिसर्वविषयकज्ञानवान्, तेन।

यद्वा-सर्वेषु द्रव्यपर्यायेषु समन्वागतं=सम्यक्प्राप्तं तत्तद्विषयमाकलय्य सर्वद्रव्यपर्यायगतं प्रज्ञानं यस्य स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानः, तेन, आत्मना, अकरणीयम्=अकर्तव्यम्, ऐहिकपारलौकिकसुखविघातकत्वादनाचरणीयम्, इति मत्वा, पापं कर्म=प्राणातिपात-मृषावादा-दत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष

टीकार्थ—जो पुरुष षड्जीवनिकायसंबंधी आरम्भ का त्याग करके संयम के पालन में तत्पर होता है वही वसुमान् हैं। वसु के दो भेद हैं-(१) द्रव्यवसु और (२) भाववसु। स्वर्ण आदि धन द्रव्यवसु कहलाता है, और तप संयमादिरूप ऋद्धि को भाववसु कहते हैं। यहाँ 'वसु' शब्द से भाववसु ही समझना चाहिए। वसु जिसे प्राप्त हो वह वसुमान् है, अर्थात् सम्यक्त्व आदि से युक्त पुरुष वसुमान् कहलाता है।

जो वस्तु जैसी हैं उसे उसी रूप में जानने वाला सर्वग्राही ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहलाता है। अथवा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को यथार्थरूप से जानने वाला ज्ञान 'सर्वसमन्वागत प्रज्ञान' कहलाता है। ऐसे ज्ञानरूप आत्मा से पाप को इस लोक तथा परलोकसंबंधी सुखों का घातक होने से अकर्तव्य समझकर (१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन। (५) परिग्रह (६) क्रोध, (७) मान (८) माया (९) लोभ

ટીકાર્થ—જે પુરૂષ ષડ્જીવનિકાયસંબંધી આરંભનો ત્યાગ કરીને સંયમના પાલનમાં તત્પર થાય છે. તેજ વસુમાન્ (સમ્યગ્દષ્ટિ) છે. વસુના બે ભેદ છે. (૧) દ્રવ્ય-વસુ અને (૨) ભાવવસુ, સુવર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહેવાય છે. અને સમ્યકૃત્વ આદિ રૂપ ઋદ્ધિને ભાવવસુ કહે છે. અહિં 'વસુ' શબ્દથી ભાવવસુ જ સમજવું જોઇએ. વસુ જેને પ્રાપ્ત હોય તે વસુમાન્ છે. અર્થાત્ સમ્યકૃત્વ આદિથી યુક્ત પુરૂષ વસુમાન્ કહેવાય છે.

જે વસ્તુ જેવી છે તેને તેવા રૂપમાં જાણવાવાળા સર્વગ્રાહી જ્ઞાન 'સર્વસમન્વા-ગત પ્રજ્ઞાન, કહેવાય છે. અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને યથાર્થ રૂપથી જાણવા-વાળું જ્ઞાન 'સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન' કહેવાય છે. એવા જ્ઞાનરૂપ આત્માથી પાપને આ લોક તથા પરલોક-સંબંધી સુખોનું ઘાતક હોવાથી અકર્તવ્ય સમજીને (૧) પ્રાણાતિપાત, (૨) મૃષાવાદ, (૩) અદત્તાદાન, (૪) મૈથુન, (૫) પરિગ્રહ, (૬) ક્રોધ, (૭) માન,

-कलहाऽभ्याख्यान-पैशुन्य-परपरिवाद-रत्यरति-मायामृषा-मिथ्या-दर्शनशल्या-भिधानमष्टादशप्रकारं नान्वेषयेत्=न स्वयं कुर्यात्, न चान्यैः कारयेत्, न चान्यं कुर्वाणमनुमोदयेदित्यर्थः ।

योऽयमात्मा स्वकीयप्रज्ञानेन सर्वद्रव्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन च मोक्षमार्गावलम्बनतः शिवपदमपि शक्यते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरधःपतन-कारित्वात् पापं कर्म सर्वथा परित्याज्यमिति विभाव्य षड्जीवनिकायारम्भकरणा-त्सर्वथा विनिवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू०८ ॥

षड्जीवनिकायारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—'तं परिण्णाय.' इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं

(१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) रति-अरति (१७) माया-मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनरूप अठारह प्रकार का पाप जो स्वयं नहीं करता है, दूसरों से नहीं कराता है और दूसरे करने वाले का अनुमोदन नहीं करता है वही पुरुष वसुमान् है ।

तात्पर्य यह है कि—जो आत्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को भली भाँति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष-मार्ग का आश्रय लेकर मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको 'आत्मा का अधःपतन करने वाले पापकृत्य सर्वथा त्याज्य हैं' ऐसा विचार करके षड्जीवनिकाय के आरंभ से विरत हो जाना चाहिए ॥सू० ८॥

षट्काय के आरंभ का त्याग ही साधुता प्राप्त कराता है, यह बात आगे कहते हैं:-'तं परिण्णाय.' इत्यादि ।

(૮) માયા, (૯) લોભ, (૧૦) રાગ, (૧૧) દ્વેષ, (૧૨) કલહ, (૧૩) અભ્યાખ્યાન, (૧૪) પૈશુન્ય, (૧૫) પરપરિવાદ, (૧૬) રતિ-અરતિ, (૧૭) માયા-મૃષા અને (૧૮) મિથ્યાદર્શનરૂપ અઢાર પ્રકારનાં જે પાપ તેને પોતે કરતા નથી, બીજા પાસે કરાવતા નથી, અને બીજા કરવાવાળાને અનુમોદન આપતા નથી. તેજ પુરૂષ વસુમાન્ છે.

તાત્પર્ય એ છે કે:-જે આત્મા પોતાના પ્રજ્ઞાનથી સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને રૂડી રીતે જાણવાની યોગ્યતા ધારણ કરે છે, અને જે મોક્ષમાર્ગનો આશ્રય લઈને મુક્તિપદ પણ પ્રાપ્ત કરી શકે છે, તેને, 'આત્માનું અધઃપતન કરનારાં પાપકૃત્ય સર્વથા ત્યાજ્ય છે.' એવો વિચાર કરીને ષડ્જીવનિકાયના આરંભથી નિવૃત્ત થઈ જવું જોઈએ. ॥સૂ૦ ૮॥

ષટ્કાયના આરંભનો ત્યાગજ સાધુતા પ્રાપ્ત કરાવે છે. એ વાત આગળ કહે છે:-'तं परिण्णाय.' ઈત્યાદિ.

समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति बेमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्तमो उद्देसो समत्तो ॥ १ । ७ ॥

॥ आयारसुत्ते पढमज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—

तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं षड्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः षड्जीवनिकायशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् षड्जीवनिकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानीयात् । यस्यैते षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥ १७ ॥

॥ आचारसूत्रे प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

टीका—

तत्=षड्जीवनिकायारम्भणं, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया 'कर्मबन्धस्य कारणं भवती'ति बुद्ध्वा मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं षड्जीवनिकाय-शस्त्रं समारभेत । अन्यैर्नैव समारम्भयेत्=नैव प्रयोजयेत् । अन्यान् षड्जीवनिकाय-शस्त्रं समारभमाणान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते षड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः—षड्जीवनिकायानां शस्त्रैः=

मूलार्थ—यह बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से षड्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ न करावे, और षड्-जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे । षड्जीवनिकाय-संबंधी आरंभ को जो बंध का कारण जान लेता है, वही मुनि है और वही परिज्ञातकर्मा है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥सू० ८॥

टीकार्थ—षड्जीवनिकाय के आरम्भ को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष षड्जीवनिकाय के शस्त्र का स्वयं आरम्भ न करे, दूसरों से न करावे और आरम्भ करने वालों की अनुमोदना न करे ।

षड्जीवनिकायसंबंधी जो शस्त्र पहले बतलाये जा चुके हैं उनके द्वारा षड्जीवनिकाय को

મૂલાર્થ—એ વાત જાણીને બુદ્ધિમાન પુરૂષ ષડ્જીવનિકાયસંબંધી શસ્ત્રનો સમારંભ કરે નહિ, બીજા પાસે ષડ્જીવનિકાયસંબંધી શસ્ત્રનો સમારંભ કરાવે નહિ, અને ષડ્જીવનિકાયસંબંધી શસ્ત્રનો સમારંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે નહિ. ષડ્જીવનિકાયસંબંધી આરંભને જે બંધનું કારણ જાણી લે છે. તેજ મુનિ છે, અને તેજ પરિજ્ઞાતકર્મા છે. એવું હું કહું છું. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ટીકાર્થ—ષડ્જીવનિકાયના આરંભને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ જાણીને હેય-ઉપાદેયનો વિવેક રાખવાવાળા પુરૂષ ષડ્જીવનિકાયના શસ્ત્રનો પોતે આરંભ કરે નહિ, બીજા પાસે કરાવે નહિ, અને આરંભ કરનારને અનુમોદન આપે નહિ.

ષડ્જીવનિકાયસંબંધી જે શસ્ત્ર પ્રથમ બતાવી આપ્યાં છે. તેના દ્વારા ષડ્જીવનિકાયને

स्वस्वशस्त्रैः समारम्भाः=पीडाकरसावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः: परिवर्जितसकलसावद्यव्यापारः, मुनिर्भवति । इति=एतत् सर्वम्, ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामि ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रे आचारचिन्तामणिटीकायां शास्त्रपरिज्ञाख्ये प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १–७ ॥

पीडा पहुँचाने वाले सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है वही पुरुष तीन करण औन तीन योग से सावद्य व्यापारों का त्यागी मुनि होता है। यह सब भगवान् के मुखारविन्द से जैसा मैंने साक्षात् सुना है वैसाही कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रकी आचारचिन्तामणिटीका के हिन्दी–अनुवादमें प्रथम अध्ययनका सातवाँ उद्देश सम्पूर्ण ॥ १ ॥

પીડા પહોંચાડવાવાળા સાવદ્ય વ્યાપારોને જે જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મબંધનું કારણ જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યજી દે છે, તે પુરૂષ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી સાવદ્ય વ્યાપારોનો ત્યાગી મુનિ હોય છે. આ સર્વે ભગવાનના મુખારવિંદથી જેવું મેં સાક્ષાત્ સાંભળ્યું છે, તેવુંજ કહું છું. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ઇતિ શ્રીઆચારાંગસૂત્રની 'आचारचिन्तामणि' ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં પ્રથમ અધ્યયનનો સાતમો ઉદ્દેશ સમ્પૂર્ણ. ॥ ૧–૭ ॥

आद्ये चाध्ययने प्ररूपितमिदं संसारचक्रेऽनिशं,
भ्राम्यन् दिक्षु विदिक्षु गच्छति ततश्चात्मा समागच्छति ।

इत्येवं कथितं मही-जल-शिखि-प्राण-द्रुमाणां तथा,
जीवत्वं त्रस-कायिकस्यचतदारम्भे परिज्ञाऽपि च ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालव्रति विरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञाख्यं प्रथममध्ययनं संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययन में यह निरूपण किया गया है कि-आत्मा संसार चक्र में पडकर नाना दिशाओं में और नाना विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता रहता है। साथ ही पृथ्वी, अप्, तेज, वायु वनस्पति और, त्रस की सचित्तता भी सिद्ध की गई है, और उनका आरम्भ करने में परिज्ञा भी प्रदर्शित की गई है ॥ १ ॥

॥ इति श्री-आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीका के हिन्दी अनुवाद में 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ १ ॥

પ્રથમ અધ્યયનમાં એ નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે કે:-આત્મા સંસારચક્રમાં પડીને અનેક દિશાઓમાં અને અનેક વિદિશાઓમાં નિરન્તર ભ્રમણ કરતો રહે છે. સાથેજ પૃથ્વી, અપ, તેજ, વાયુ, વનસ્પતિ અને ત્રસની સચિત્તતા પણ સિદ્ધ કરી છે. અને તેનો આરંભ કરવામાં પરિજ્ઞા-વિવેક પણ પ્રદર્શિત કરેલ છે. ॥ ૧ ॥

॥ ઇતિ શ્રી આચારાંગસૂત્રની 'आचारचिन्तामणि' ટીકાના ગુજરાતી અનુવાદમાં 'शस्त्रपरिज्ञा' નામનું પ્રથમ અધ્યયન સમ્પૂર્ણ. ॥ ૧ ॥

દાતાઓની નામાવલી

આદ્ય મુરબ્બીશ્રી, મુરબ્બીશ્રી, સહાયક મેમ્બરો
તથા
મેમ્બરોની યાદી

ગામવાર કક્કાવારી લીસ્ટ

તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધીમાં
દાખલ થએલ મેમ્બરો.

(૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરી નથી.)

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ગરેડીઆ કુવા રોડ - ગ્રીન લોજ પાસે
રાજકોટ.

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ–૪

(ઓછામા ઓછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા. હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ, તથા વલ્લભદાસભાઈ	ભાણુવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા. હરગોવીંદભાઈ જેચંદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરબ્બીશ્રીઓ–૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હા. કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મ્હેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	,,	૩૨૮૯ાાના
૪	સ્વ. પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મ્હેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ લહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મ્હેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મ્હેતા પોપટલાલ માવજીભાઇ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા. દલપતરામભાઇ	,,	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણાજીભાઇ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મ્હેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મ્હેતા સોમચંદ નેણસીભાઇ (કરાંચીવાલા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુંબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	સિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો–૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગજીભાઇ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઝુંઝાભાઇ વેલસીભાઇ	વઢવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઇ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઇ હા. ગોરધનદાસભાઇ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	બાટવીયા ગીરધર પ્રમાણંદ હા. અમીચંદભાઇ	ખાખીજાળીઆ	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઇ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીબાઇ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ (કરાંચીવાળા)	મલાડ	૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસળીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ. સૌ. ચંપાબેન ગોસળીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ. સૌ. સમરતબેન (રાજસીતાપુરવાળા)	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઇ (કરાંચીવાળા)	લીંબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મ્હેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઇ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજીભાઇ શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાણુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૧૫૦ શેઠ શેષમજી જીવરાજજી ૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી ૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી ૧૦૦ દગડુમલજી ચાંદમલજી ૫૦૦	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૩	મ્હેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઇ તથા દુર્લભજીભાઇ	ધ્રાફા	૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા. ઇન્દુકુમારભાઇ	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા. બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઇ	ખાખીજાળીઆ	૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઇ હા. ફુલચંદભાઇ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઇ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ઠગલી હા. મુળજીભાઇ મણીલાલ	મુંબઇ	૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાંતીલાલભાઇના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઇ	૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	બારશેડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મ્હેતા	ભાણવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	ધ્રાફા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

*

૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હસ્તે કાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીભોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટકર્તા શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઈલાલ ઉજમશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ હા. ડૉ. કુ. સરસ્વતીબેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ કાન્તીલાલ જીવણલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	સંઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધાંગધ્રાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાહેચા હા. શાહ ઘુલાજી ચંપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૩૪	શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ	૨૫૧

૩૬	સ્વ. પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂજ્ય ચાચાજી હજારીમલજી બરડીયાના સ્મરણાર્થે હા. મૂળચંદ જવાહરલાલ	૨૫૧
૩૭	સ્વ. ભાવસાર બબાભાઈ (મંગળદાસ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ પુરીબેન	૨૫૧
૩૮	સ્વ. પિતાશ્રી રવજીભાઈ તથા સ્વ. માતુશ્રી મૂળીબાઈના સ્મરણાર્થે હ. કકલભાઈ કોઠારી	૩૦૧
૩૯	ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ	૨૫૧
૪૦	શાહ કેશવલાલ નાનચંદ જાખડાવાળા હા. પાર્વતીબેન	૨૫૧
૪૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ રાજસીતાપુરવાળા (સાબરમતી)	૨૫૧
૪૨	શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ (સાબરમતી)	૨૫૦
૪૩	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણપુરવાળા)	૩૦૧

અમલનેર

૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ ગાંડાલાલ ભીખાલાલ	૨૫૧

આણંદ

૧	રમણીકલાલ એ. કપાસી હા. મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧

આસનસોલ

૧	બાવીસી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ મણીબાઈ તરફથી હા. રસીકલાલ, અનીલકાંત, વિનોદરાય.	૨૫૧

આટકોટ

૧	શાહ ચુનીલાલ નારણજી	૩૦૧

ઉદેપુર

૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	૨૫૧
૨	શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા	૨૫૧
૩	અ. સૌ. બ્હેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરનાં ધર્મપત્નિ હા. શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ	૨૫૧
૪	સ્વ. શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા	૨૫૧
૫	સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણલાલ હીરાલાલ સાખલા	૨૫૧

૬ પૂજ્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મ્હેતાના સ્મરણાર્થે
હ. રણજીતલાલજી મોતીલાલજી મ્હેતા ૨૫૧

૭ છગનલાલજી બાગરેચા ૨૫૧

ઉમરગાવરોડ

૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧

ઉપલેટા

૧ શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ ૨૫૧

૨ સ્વ. બેન સંતોકબેન કચરા હા. ઓતમચંદભાઇ, છોટાલાલભાઈ
તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણુવાળા) ૨૫૧

૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧

૪ સંઘાણી મૂળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હ. તેમના પુત્રો જયંતીલાલભાઈ તથા રમણીકલાલ ૨૫૧

એડન કેમ્પ

૧ શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી ૨૫૧

કલોલ

૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧

૨ ડૉ. મયાચંદ મગનલાલ શેઠ હા. ડૉ. રતનચંદ મયાચંદ ૨૫૧

૩ સ્વ. નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧

૪ શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે
હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧

કડી

૧ શ્રી સ્થા. દરીયાપુરી જૈનસંઘ હા. ભાવસાર દામોદરદાસ ઇશ્વરભાઇ ૨૫૧

કોલકી

૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧

૨ પટેલ ખીમજી જેઠાભાઇ વાઘાણી (તેમના સ્વ. સુપુત્ર
રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે) ૩૦૨

ખીચન

૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૨૫૧

ખંભાત

૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. પટેલ કાન્તીલાલ અંબાલાલ ૨૫૧

૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧

૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

ગુંદા

૧ સ્વ. મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
   હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોંડલ

૧ સ્વ. બાખડ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી
   હા. માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ ૨૫૧

૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ.
   લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમાં ૩૦૧

૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકણ

૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

૧ મહેતા ગુલાબચંદ ગંભીરમલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હ. રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (બાલાસોર)

૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજોધપુર

૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭

૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

જામનગર

૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧

૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧

૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

જામખંભાળીઆ

૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧

૨ શ્રી સ્થા. જૈન. સંઘ હા. મહેતા રણછોડદાસ પરમાણંદ ૨૫૧

૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

જુનાગઢ

૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેવ (મધ્યપ્રાંત)

૧ ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા. નરભેરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧
૨ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧
૩ કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસર

૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧
૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા. શાન્તીલાલભાઈ ગોંડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

૧ સ્વ. તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા. જયંતીભાઈ ૨૫૧

ડોંડાઇચા

૧ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ ચંપાલાલ મારવે ૨૫૦

થાનગઢ

૧ શાહ ઠાકરશીભાઇ કરસનજી ૨૫૧
૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા. સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાણુ રોડ (થાણા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખંધાર (કરાંચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

ધાર (મધ્યપ્રાંત)

૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ધાંગધ્રા

૧ શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧
૨ સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ ૩૦૧
૩ ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ ૨૫૧

ધોરાજી

૧ મ્હેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઇ ૩૫૧
૨ સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે
હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી ૨૫૧
૩ અ. સૌ. બચીબેન બાબુભાઈ ૨૫૧
૪ ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ ૨૫૧
૫ સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ ૩૦૧
૬ ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ ૨૫૦

ધંધુકા

૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ૨૫૧
૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧
૩ સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ૨૫૧
૪ વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ ૨૫૧

નંદુરબાર

૧ શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ ૨૫૦

પાણસણા

૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૨૫૧

પાલણપુર

૧ લક્ષ્મીબેન હા. મ્હેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧
૨ શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા. જૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧

પાલેજ

૧ સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ ૩૦૧

બરવાળા (ઘેલાશા)

૧ સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી ૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

૧ સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે
હ. દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા. શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

બેરાજા (કચ્છ)

૧ શેઠ ગાંગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

૧ સ્વ. વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થાનવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડેલી

૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસિંહદાસ (સાણંદવાળા) ૨૫૧
૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણવડ

૧ શેઠ જેચંદભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
૨ સંઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
૫ શેઠ પદમશી ભીમજી ફોફરીઆ ૨૫૧
૬ ફોફરીઆ ગાંડાલાલ કાનજીભાઈ હા. અ. સૌ. શાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા
હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

૧ સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ ૨૫૧
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે)

મુંબઈ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (બોરીવલી)	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રીવર્ધમાન સ્થા.જૈનસંઘ હા.કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ. કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણશીની કુંપની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણેક કચ્છ (બેરાજાવાળા)	૨૫૧
૧૧	વોરા પાનાચંદ સંઘજીના સ્મરણાર્થે હા. ત્રંબકલાલ પાનાચંદ વોરા બધર્સ	૨૫૧
૧૨	સ્વ. પૂ. પિતાશ્રી વીરચંદ જેસીંગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શાહ કુંવરજી હંસરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ. માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી (પોરબંદરવાળા)	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદડીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સદ્‌ગૃહસ્થ હા. શેઠ સુંદરલાલ માણેકચંદ	૨૫૧
૧૭	અ. સૌ. પાનબાઈ હા. શેઠ પદમશી નરસિંહભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૧૮	શ્રી અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ. શાહ નાગશી સેજપાળ ગુંદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચંદ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા. રણછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશંકર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ. ગોદા વણારશી ત્રીભોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાર્થે હા. જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ. ત્રીભોવનદાસ વજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. હરગોવિંદદાસ ત્રીભોવનદાસ સજમેરા	૨૫૧

૨૬ સ્વ. કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતુશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬
ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ) ૨૫૧
૨૭ શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ ૨૫૦
૨૮ શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર (મલાડ) ૨૫૧
૨૯ સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. કાનજી પતુભાઈ ૨૫૧
૩૦ શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમનાં
ધર્મપત્નિ અ. સૌ. સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
૩૧ સ્વ.પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા.શાહ દામજી રામશી(મલાડ) ૩૦૧
૩૨ શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી
શ્રી અજરામર શાસ્ત્ર ભંડાર લીંબડી માટે (માટુંગા) ૨૫૧
૩૩ સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કોરશી તથા માતુશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ ઉજમશીભાઈ ભીમશીભાઈ કચ્છપતરીવાળા (મલાડ) ૩૦૧
૩૪ શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા ૨૫૧
૩૫ શાહ વૃજાંગભાઈ શીવજી (મલાડ) ૨૫૧
૩૬ રતીલાલ ભાઈચંદ મ્હેતા ૨૫૧
૩૭ શાહ ખીમજી મૂળજી પૂંજા (મલાડ) ૨૫૧
૩૮ મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ ૨૫૧
૩૯ ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરશીભાઈ વલભજી ૨૫૧
૪૦ અ.સૌ. સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉજમશી શાહ(મલાડ) ૨૫૧
૪૧ તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ ૨૫૧
૪૨ કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
૪૩ સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે
સુરજબેન તરફથી હા. તનસુખલાલભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
૪૪ દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૫ શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
૪૬ દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૭ દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૮ દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
૪૯ શાહ ત્રીભોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ હરખચંદ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
૫૦ શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધ્રાંગધ્રાવાળા હા. શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ ૨૫૦
૫૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

૫૨ સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. વૃજલાલ શામળજી બાવીશી	૩૦૧
૫૩ શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪ સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા. લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫ સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા. દેવશી હંસરાજ કચ્છ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬ સ્વ. માતુશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭ શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખંભાતવાળા હા. ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮ સ્વ. પિતાશ્રી શાહ અંબાલાલ પરસોતમ પાણશણાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. બાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯ બેન કેસરબાઈ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦ દડીયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧ શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨ કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩ સ્વ. માતુશ્રી કડવી બાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૬૪ શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫ શાહ કોરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬ પિતાશ્રી કુંદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા. મોતીલાલ જુબરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭ શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અંધેરી)	૨૫૧
૬૮ અ. સૌ. કમળાબેન કામદાર હા. રૂપચંદ શીવલાલ (અંધેરી)	૨૫૧
૬૯ ધી મરીના મોડર્ન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા. શાહ મણીલાલ ઠાકરસી	૨૫૧
૭૦ સ્વ. માતુશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શામજી શીવજી કચ્છ ગુંદાળાવાળા (ગોરેગાંવ)	૨૫૧
૭૧ શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની કંપની (કાંડીવલી)	૨૫૧
૭૨ અ. સૌ. લાછુંબેન હા. રવજી શામજી (કાંદીવલી)	૨૫૧
૭૩ અ. સૌ. બેન કુંદનગૌરી મનહરલાલ સંઘવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪ શાહ કરશનભાઈ લઘુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫ અ. સૌ. રંજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/O ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માટુંગા)	૨૫૧
૭૬ મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હા. અનોપચંદ ડી. મહેતા (મુંબઈ)	૨૫૧

માંડવી (કચ્છ)

૧ શ્રી. સ્થા. છ કોટી જૈન સંઘ હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૭૭

મેસાણા

૧ શાહ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

મોમ્બાસા

૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦

૨ શ્રીયુત નાથાલાલ ડી. મહેતા ૨૫૧

યાદગીરી

૧ શેઠ બાદમલજી સૂરજમલજી એન્કર્સ ૨૫૦

રાણપુર (ઝાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા. ડૉ. નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧ શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. બાબુરીખબચંદજી ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ ડાઈંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ ૪૦૦

૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧

૩ બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦

૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમનાં ધર્મપત્નિના વરસીતપ પ્રસંગે ૨૫૧

૬ ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વકીલ ૨૫૧

૭ શેઠ પ્રજારામ વીઠ્ઠલજી ૨૫૧

૮ શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ (ગોંડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર ૨૫૧

૯ બ્હેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુસાલી) ૨૫૧

૧૦ મોદી સૌભાગ્યચંદ મોતીચંદ ૨૫૧

૧૧ બદાણી ભીમજી વેલજી તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ
અ. સૌ. સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી ૨૫૧

૧૨ દોશી મોતીચંદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ ઈનજીનીયર સાહેબ) ૨૫૧

૧૩ કામદાર ચંદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦

૧૪ હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચંદ ૨૫૧

રંગુન

૧	કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન	૨૫૧

લખતર

૧	શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ. શાન્તિલાલ રાયચંદ	૨૫૧
૨	ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૩	શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી	૨૫૧
૪	શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ	૨૫૧
૫	શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી	૨૫૧
૬	દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ સમરતબેન વ્રજલાલ તરફથી હા. જયંતીલાલ ઠાકરશી	૨૫૧

લાલપુર

૧	શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા. મગનલાલભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ મૂળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ	૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧	માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા. મ્હેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ (સીવીલ એન્જીનીઅર સાહેબ)	૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

૧	શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	છાજેડ ઘાસીરામ, ગુલાબચંદ	૨૫૧ાત્ર

લોનાવલા

૧	શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા	૨૫૧

વઢવાણ શહેર

૧	શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા. સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ શાહ	૨૫૧
૨	શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા. રતીલાલ મગનલાલ કામદાર	૨૫૧
૩	સંઘવી મૂળચંદ બેચરભાઈ હા. જીવણલાલ ગફલદાસ	૨૫૧
૪	શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ	૨૫૧
૫	શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ	૨૫૧

૬ વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ ૨૫૧
૭ સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ ૨૫૧
૮ શાહ દેવશી દેવકરણ ૨૫૧
૯ વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ ૨૫૧
૧૦ વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈનસંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોબરદાસ ૨૫૧
૧૧ દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી ૨૫૧
૧૨ સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ ૨૫૧

વટામણ

૧ શ્રી વટામણ સ્થા. જૈનસંઘ હા. શ્રી ડાહ્યાભાઈ હલુભાઈ પટેલ ૨૫૧

વલસાડ

૧ શાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ ૨૫૧

વણી

૧ મ્હેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્નિ સ્વ. ચંચળબેન તથા
પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઇ મનહરલાલ નાનાલાલ ૨૫૧

વડોદરા

૧ કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોંડલવાળા) ૨૫૧
૨ વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ ૨૫૧
૩ સ્વ. પિતાશ્રી શાહ ફકીરચંદ પુંજાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ રમણલાલ ફકીરચંદ ૨૫૧

વડીયા

૧ પંચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા) ૨૫૧

વાંકાનેર

૧ માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રંબકલાલ ખંઢેરીયા ૨૫૧
૨ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ (રૂા. ૨૫૦ બાકી) ૨૫૧
૩ દફતરી ચુનીલાલ પોપટભાઈ મોરબીવાળા હા. પ્રાણલાલ ચુનીલાલ ૨૫૧

વીંછીયા

૧ શ્રી. સ્થા. જૈન સંઘ હા. અજમેરા રાયચંદ મજપાળ ૨૫૧

વીરમગામ

૧ શાહ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ ૨૫૦
૨ શાહ વિઠ્ઠલભાઇ મોદી માસ્તર ૨૫૧
૩ શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ ૨૫૧
૪ શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા) ૨૫૧
૫ શાહ અમુખલ (બચુભાઇ) નાગરદાસનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. બેન લીલાવતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમાં હા. ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૩૦૦
૬ સ્વ. શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ ૨૫૧
૭ સ્વ. મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમચંદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા) ૨૫૧
૮ સ્વ. શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ ૨૫૧
૯ સંઘવી જેચંદભાઈ નારણદાસ ૨૫૧
૧૦ સ્વ. શાહવેલશીભાઈ સાંકરચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા) ૨૫૧
૧૧ પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી (મોટીબેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
૧૨ શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. નારંગીબેનના વરસીતપ નીમીત્તે હા. શાન્તીભાઇ ૨૫૧
૧૩ સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી ૨૫૧
૧૪ શ્રી સ્થા. જૈન શ્રાવિકાસંઘ હા. પ્રમુખ અ. સૌ. રંભાબેન વાડીલાલ ૨૫૧
૧૫ સ્વ. ત્રીભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા. ડૉકટર હિંમતલાલ સુખલાલ ૨૫૧
૧૬ શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઇ ૨૫૧
૧૭ શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલ ૨૫૧
૧૮ શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નીમિત્તે હા. નથુભાઈ નાનચંદ શાહ ૩૦૧
૧૯ સ્વ. મણીયાર પરસોત્તમ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ સાકરચંદ પરસોતમદાસ ૨૫૧
૨૦ શેઠ મણીલાલ શીવલાલ ૨૫૧

વેરાવળ

૧ શાહ કેશવલાલ જેચંદભાઈ ૨૫૧
૨ શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી ૨૫૧

સતારા

૧ સ્વ. મદનલાલજી કુંદનલાલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ રાજકુંવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાલબની (બંગાળ)

૧ દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા ૨૫૦

સાણંદ

૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
૨ અ. સૌ. ચંપાબેન હા. દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
૪ શાહ સાંકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મૂળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
૭ સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા. જયંતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

સુરત

૧ શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧

સુવઇ (કચ્છ)

૧ સાવળા શામજી હીરજી તરફથી સદાનંદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલજી
મહારાજના ઉપદેશથી સુવઇ સ્થા. જૈનસંઘ જ્ઞાનભંડારને ભેટ ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

૧ શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ. કેશવલાલ મૂળજીભાઇનાં ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ (થાનગઢવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧

સંજેલી (પંચમહાલ)

૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ હલીચંદ	૨૫૧

હાટીનામાળીયા

૧	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	૨૫૦

હારીજ

૧	શાહ અમુલખભાઈ મૂળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	૩૦૧
૨	સ્વ. બેન ચંદ્રકાન્તાનાં સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મૂળજીભાઈ	૩૦૧

હુબલી

૧	શેઠ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ	૨૫૧

●

કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધી

૪ આદ્ય મુરબ્બીશ્રીઓ	૩૧૬ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૨ મુરબ્બીશ્રીઓ	૮૩ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૩૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૬૧ કુલ્લ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સદંતર બંધ કરવામાં આવેલ છે.)

રાજકોટ, તા. ૧-૩-૫૮

સાંકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ
મંત્રી,
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શા. સ.

નોટઃ—તા. ૨૩-૧૨-૫૭ ના દિને મુંબઈ મુકામે ધી યુનિયન બેંક ઓફ ઈન્ડીઆ લી. માં રૂા. ૨૫૧-૦-૦ એક સદ્ગૃહસ્થે ભરેલા છે. જેનું નામ તે ભરનાર ભાઈ તરફથી મળેલ નથી તેમજ બેંક તરફથી વધુ વિગત મળી નથી તો તે રૂા. ૨૫૧ ડીપોઝીટ તરીકે હાલ જમા પડયા છે જેનું નામ અમોને મળતાં લીસ્ટમાં લેવામાં આવશે.

●

